भारतीयविद्या-श्रेणी–ग्रन्थः ४२

# मनुस्मृतिः

मेधातिथि-सर्वज्ञनारायण-कुल्लूक-राघवानन्द-नन्दन-
रामचन्द्र-मणिराम-गोविन्दराज-भारुचि-
इति व्याख्यानवकेन समलङ्कृता



चतुर्थो विभागः
(भागः २)
(८ अध्यायात्मकः)



भारतशासनस्य शिक्षणविभागस्यार्थसाहाय्येन प्रकाशिता



सम्पादकः
जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे
महामहोपाध्याय, विद्यावाचस्पति
एम्.ए.,एल् एल्.बी., ॲड्व्होकेट (सु.को.)
इत्येनन
भारतीयविद्याभवनस्य संमान्यनियामकेन परिष्कृता



१९९०
भारतीय विद्या भवनम्
कुलपति के. एम्. मुनशीपथ; चौपाटी
मुंबई - ४०० ००७

© सर्वाधिकारा: स्वायत्ता:

प्रथमावृत्ति: १९९०

मूल्यम् : रु. २००

भारते मुद्रिता

के. वी. गोपालकृष्णन्, असोसिएटेड ॲडव्हर्टाईझर्स ॲण्ड प्रिन्टर्स
५०५ साने गुरुजी मार्ग, मुंबई - ४०० ०३४.

Bhāratīya Vidyā Series - Vol. No. 42

# MANU - SMRITI

With Nine Commentaries by Medhātithi, Sarvajñanārāyaṇa, Kullūka, Rāghavānanda, Nandana, Rāmachandra, Maṇirāma, Govindarāja and Bhāruchi

VOLUME IV (Part - II : Adhyāya - 8)

*Edited by*

**JAYANTAKRISHNA HARIKRISHNA DAVE**

Mahāmahopādhyāya, Vidyāvachaspati

M.A.,LL.B., ADVOCATE (SUPREME COURT)

**Hon. Director, Bharatiya Vidya Bhavan**

*Published with the financial assistance of the Ministry of Education, Government Of India*

1990

**BHARATIYA VIDYA BHAVAN**

Kulapati K.M. Munshi Marg, Chowpatty, Bombay - 400 007

© All Rights Reserved
First Edition, 1990

Price : Rs. 200/-

**PRINTED IN INDIA**

By K.V. Gopalakrishnan at Associated Advertisers & Printers,
505, Tardeo, Arthur Road, Bombay - 400 034.

# मनुस्मृतिः

## अष्टमाध्याय - विषयानुक्रमकोशः


| विषयाः | श्लोकाः |
|---|---|
| व्यवहारान् दिदृक्षुः सभां प्रविशेत् ... ... ... | १ |
| कुलशास्त्रादिभिर्यं कार्यं पश्येत् ... ... ... | ३ |
| अष्टादश विवादानाह ... ... ... | ४ |
| धर्ममाश्रित्य निर्णयं कुर्यात् ... ... ... | ८ |
| स्वयमशक्तौ विद्वांसं नियुञ्ज्यात् ... .. ... | ९ |
| स त्रिभिर्ब्राह्मणैः सह कार्यं पश्येत् ... ... ... | १० |
| तत्सभाप्रसंशा ... ... ... | ११ |
| अधर्मे सभासदां दोषः ... ... ... | १२ |
| सदसि सत्यमेव वक्तव्यम् ... ... ... | १३ |
| अधर्मवादिशासनम् ... ... ... | १४ |
| धर्मातिक्रमणे दोषः ... ... ... | १५ |
| दुर्व्यवहारे राजादीनामधर्मः ... ... ... | १८ |
| अर्थिप्रत्यर्थिपापे ... ... ... | १९ |
| कार्यदर्शने शूद्रनिषेधः ... ... ... | २० |
| राष्ट्रनास्तिकदुर्भिक्षादिनिषेधः ... ... ... | २१ |
| लोकपालान्प्रणम्य कार्यदर्शनम् ... ... ... | २३ |
| ब्राह्मणादिक्रमेण कार्यं पश्येत् ... ... ... | २४ |
| स्वरवर्णादिना अर्थ्यादि परीक्षेत् ... ... ... | २५ |
| बालधनं राज्ञा रक्षणीयम् ... ... ... | २७ |
| प्रोषितपतिकादिधनरक्षणम् ... ... ... | २८ |
| अपुत्राधनहारकशासनम् ... ... ... | २९ |
| अस्वामिकधनरक्षणे कालः ... ... ... | ३० |
| द्रव्यरूपसंख्यादिकथनम् ... ... ... | ३१ |
| अकथने दण्डः ... ... ... | ३२ |
| प्रणष्टद्रव्यात् षड्भागग्रहणम् ... ... ... | ३३ |
| चौरघातनम् ... ... ... | ३४ |

| विषयः | | | | श्लोकाः |
|---|---|---|---|---|
| निध्यादौ षड्भागग्रहणम् | ... | ... | ... | ३५ |
| परनिधौ अनृतकथने | ... | ... | ... | ३६ |
| ब्राह्मणनिधिविषये | ... | ... | ... | ३७ |
| राज्ञा निधिं प्राप्यार्धं विप्राय देयम् | ... | ... | ... | ३८ |
| चौरहृतधनं राज्ञा दातव्यम् | ... | ... | ... | ४० |
| जातिदेशधर्माविरोधेन करणीयम् | ... | ... | ... | ४१ |
| राज्ञा विवादोत्थापनादि न कार्यम् | ... | ... | ... | ४३ |
| अनुमानेन तत्त्वं निश्चिनुयात् | ... | ... | ... | ४४ |
| सत्यादिना व्यवहारं पश्येत् | ... | ... | ... | ४५ |
| सदाचार आचरणीयः | ... | ... | ... | ४६ |
| ऋणादाने | ... | ... | ... | ४७ |
| अथ हीनाः | ... | ... | ... | ५३ |
| अभियोक्तुर्दण्डादिः | ... | ... | ... | ५८ |
| धनपरिमाणमिथ्याकथने | ... | ... | ... | ५९ |
| साक्षिविभावनम् | ... | ... | ... | ६० |
| अथ साक्षिणः | ... | ... | ... | ६१ |
| साक्ष्ये निषिद्धाः | ... | ... | ... | ६४ |
| स्त्र्यादीनां स्त्र्यादयः साक्षिणः | ... | ... | ... | ६८ |
| वादिसाक्षिणः | ... | ... | ... | ६९ |
| बालादिसाक्ष्यादौ | ... | ... | ... | ७० |
| साहसादौ न साक्षिपरीक्षा | ... | ... | ... | ७२ |
| साक्षिद्वैधे | ... | ... | ... | ७३ |
| साक्षिणः सत्यकथनम् | ... | ... | ... | ७४ |
| मिथ्यासाक्ष्ये दोषः | ... | ... | ... | ७५ |
| श्रुतसाक्षिणः | ... | ... | ... | ७६ |
| एकोऽपि धर्मवित्साक्षी | ... | ... | ... | ७७ |
| स्वभाववचनं साक्षिणो गृह्णीयुः | ... | ... | ... | ७८ |
| साक्षिप्रश्ने | ... | ... | ... | ७९ |
| साक्षिभिः सत्यं वक्तव्यम् | ... | ... | ... | ८१ |
| रहःकृतं कर्म आत्मादिर्जानाति | ... | ... | ... | ८४ |

| विषयः | | | | श्लोकाः |
|---|---|---|---|---|
| ब्राह्मणादिसाक्षिप्रश्ने | ... | ... | ... | ८७ |
| असत्यकथने दोषः | ... | ... | ... | ८९ |
| सत्यप्रशंसा | ... | ... | ... | ९२ |
| असत्यकथनफलम् | ... | ... | ... | ९३ |
| पुनः सत्यकथनप्रशंसा | ... | ... | ... | ९६ |
| विषयभेदेन सत्यफलम् | ... | ... | ... | ९७ |
| निन्दितब्राह्मणान् शूद्रवत्पृच्छेत् | ... | ... | ... | १०२ |
| विषयभेदेऽसत्यकथने दोषः | ... | ... | ... | १०३ |
| अनृतकथने प्रायश्चितम् | ... | ... | ... | १०५ |
| त्रिपक्षं साक्ष्यकथने पराजयः | ... | ... | ... | १०७ |
| साक्षिभङ्गे | ... | ... | ... | १०८ |
| असाक्षिविवादे शपथः | ... | ... | ... | १०९ |
| वृथाशपथे दोषः | ... | ... | ... | १११ |
| वृथाशपथप्रतिप्रसवमाह | ... | ... | ... | ११२ |
| विप्रादेः सत्योच्चारादिशपथम् | ... | ... | ... | ११३ |
| शूद्रशपथे | ... | ... | ... | ११४ |
| शपथे शुचिमाह | ... | ... | ... | ११५ |
| अथ पुनर्वादः | ... | ... | ... | ११७ |
| लोभादिना साक्ष्ये दण्डविशेषः | ... | ... | ... | ११८ |
| दण्डस्य हस्तादिदशस्थानानि | ... | ... | ... | १२४ |
| अपराधमपेक्ष्य दण्डकरणम् | ... | ... | ... | १२६ |
| अधर्मदण्डनिन्दा | ... | ... | ... | १२७ |
| दण्ड्यपरित्यागे | ... | ... | ... | १२८ |
| वाग्दण्डधिक्दण्डादि | ... | ... | ... | १२९ |
| त्रसरेण्वादिपरिमाणानाह | ... | ... | ... | १३१ |
| प्रथममध्यमोत्तमसाहसाः | ... | ... | ... | १३८ |
| ऋणादाने दण्डनियमः | ... | ... | ... | १३९ |
| अथ वृद्धिः | ... | ... | ... | १४० |
| आधिस्थले | ... | ... | ... | १४३ |
| बलादाधिभोगनिषेधः | ... | ... | ... | १४४ |

| विषयः | श्लोकाः |
|---|---|
| आधिनिक्षेपादौ ... ... ... | १४५ |
| धेन्वादौ भोगेऽपि न स्वत्वहानिः ... ... ... | १४६ |
| आधिसीमादौ न भोगे स्वत्वहानिः ... ... ... | १४७ |
| बलादाधिभोगेऽर्धवृद्धिः ... ... ... | १४९ |
| द्वैगुण्यादधिकवृद्धिर्न भवति ... ... ... | १५१ |
| वृद्धिप्रकाराः ... ... ... | १५२ |
| पुनर्लेख्यकरणे ... ... ... | १५४ |
| देशकालवृद्धौ ... ... ... | १५६ |
| दर्शनप्रतिभूस्थले ... ... ... | १५८ |
| प्रातिभाव्यादि ऋणं पुत्रैर्न देयम् ... ... ... | १५९ |
| दानप्रतिभूस्थले ... ... ... | १६० |
| निरादिष्टधने प्रतिभुवि ... ... ... | १६२ |
| कृतनिवृत्तौ ... ... ... | १६३ |
| कुटुम्बार्थकृतर्णं देयम् ... ... ... | १६६ |
| बलकृतं निवर्त्यम् ... ... ... | १६८ |
| प्रातिभाव्यादिनिषेधः ... ... ... | १६९ |
| अग्राह्यमर्थं न गृह्णीयात् ... ... ... | १७० |
| ग्राह्यत्यागे दोषः ... ... ... | १७१ |
| अबलरक्षणादौ ... ... ... | १७२ |
| अधर्मकार्यकरणे दोषः ... ... ... | १७४ |
| धर्मेण कार्यकरणम् ... ... ... | १७५ |
| धनिकेन धनसाधने ... ... ... | १७६ |
| धनाभावे कर्मणा ऋणशोधनम् ... ... ... | १७७ |
| अथ निक्षेपे ... ... ... | १७९ |
| साक्ष्यभावे निक्षेपनिर्णयः ... ... ... | १८२ |
| निक्षेपदाने ... ... ... | १८५ |
| स्वयं निक्षेपार्पणे ... ... ... | १८६ |
| समुद्रनिक्षेपे ... ... ... | १८८ |
| चौरादिहृते निक्षेपे ... ... ... | १८९ |
| निक्षेपापहारे शपथम् ... ... ... | १९० |
| निक्षेपापहारादौ दण्डः ... ... ... | १९१ |

| विषयः | | | | श्लोकाः |
|---|---|---|---|---|
| छलेन परधनहरणे | ... | ... | ... | १९३ |
| निक्षेपे मिथ्याकथने दण्डः | ... | ... | ... | १९४ |
| निक्षेपदानग्रहणयोः | ... | ... | ... | १९५ |
| अस्वामिविक्रये | ... | ... | ... | १९६ |
| सागमभोगप्रमाणम् | ... | ... | ... | २०० |
| प्रकाशक्रये मूल्यधनलाभे | ... | ... | ... | २०१ |
| संसृष्टवस्तुविक्रये | ... | ... | ... | २०२ |
| अन्यां कन्यां दर्शयित्वान्याविवाहे | ... | ... | ... | २०४ |
| उन्मत्तादिकन्याविवाहे | ... | ... | ... | २०५ |
| पुरोहितदक्षिणादाने | ... | ... | ... | २०६ |
| अध्वर्य्वादिदक्षिणा | ... | ... | ... | २०९ |
| संभूय समुत्थाने | ... | ... | ... | २११ |
| दत्तानपक्रिया | ... | ... | ... | २१२ |
| भृतिस्थले | ... | ... | ... | २१५ |
| संविद्व्यतिक्रमे | ... | ... | ... | २१८ |
| क्रीतानुशयः | ... | ... | ... | २२२ |
| अनाख्याय दोषवतीकन्यादाने | ... | ... | ... | २२४ |
| मिथ्याकन्यादूषणकथने | ... | ... | ... | २२५ |
| दूषितकन्यानिन्दा | ... | ... | ... | २२६ |
| अथ सप्तपदी | ... | ... | ... | २२७ |
| अथ स्वामिपालविवादः | ... | ... | ... | २२९ |
| क्षीरभृतिस्थले | ... | ... | ... | २३१ |
| पालदोषेण नष्टस्थले | ... | ... | ... | २३२ |
| चोरहृते | ... | ... | ... | २३३ |
| शृङ्गादिदर्शनम् | ... | ... | ... | २३४ |
| वृकादिहतस्थले | ... | ... | ... | २३५ |
| सस्यघातकदण्डे | ... | ... | ... | २३७ |
| सीमाविवादस्थले | ... | ... | ... | २४५ |
| सीमावृक्षादयः | ... | ... | ... | २४६ |
| उपच्छन्नानि सीमालिङ्गानि | ... | ... | ... | २४९ |

| विषय: | श्लोका: |
|---|---|
| भोगेन सीमां नयेत् ... ... ... | २५२ |
| सीमासाक्षिणः ... ... ... | २५३ |
| साक्ष्युक्तां सीमां बध्नी० ... ... ... | २५५ |
| साक्ष्यदानविधिः ... ... ... | २५६ |
| अन्यथा कथने दण्डः ... ... ... | २५७ |
| साक्ष्यभावे ग्रामसामन्तादयः ... ... ... | २५८ |
| सामन्तानां मृषाकथने दण्डः ... ... ... | २६३ |
| गृहादिहरणे दण्डः ... ... ... | २६४ |
| राजा स्वयं सीमानिर्णयं कुर्यात् ... ... ... | २६५ |
| अथ वाक्पारुष्यदण्डः ... ... ... | २६६ |
| ब्राह्मणाद्याक्रोशे ... ... ... | २६७ |
| समवर्णाक्रोशे ... ... ... | २६९ |
| शूद्रस्य द्विजाक्रोशे ... ... ... | २७० |
| धर्मोपदेशकर्तुः शूद्रस्य दण्डः ... ... ... | २७२ |
| श्रुतदेशजात्याक्षेपे ... ... ... | २७३ |
| काणाद्याक्रोशे ... ... ... | २७४ |
| मात्राद्याक्रोशे ... ... ... | २७५ |
| परस्परपतनीयाक्रोशे ... ... ... | २७६ |
| अथ दण्डपारुष्यम् ... ... ... | २७८ |
| शूद्रस्य ब्राह्मणादिताडने ... ... ... | २७९ |
| पादादिप्रहारे ... ... ... | २८० |
| महता सहोपवेशने ... ... ... | २८१ |
| निष्ठीवनादौ ... ... ... | २८२ |
| केशग्रहणादौ ... ... ... | २८३ |
| त्वगस्थिभेदादौ ... ... ... | २८४ |
| वनस्पतिच्छेदने ... ... ... | २८५ |
| मनुष्याणां दुःखानुसारेण दण्डः ... ... ... | २८६ |
| समुत्थानव्ययदाने ... ... ... | २८७ |
| द्रव्यहिंसायाम् ... ... ... | २८८ |
| चार्मिकभाण्डादौ ... ... ... | २८९ |

| विषयः | | | | श्लोकाः |
|---|---|---|---|---|
| यानादेर्दशातिवर्तनानि | ... | ... | ... | २९० |
| रथस्वाम्यादिदण्डने | ... | ... | ... | २९३ |
| भार्यादिताडने | ... | ... | ... | २९९ |
| अन्यथा ताडने दण्डः | ... | ... | ... | ३०० |
| अथ स्तेननिग्रहणे | ... | ... | ... | ३०१ |
| चोरादितोऽभयदानफलम् | ... | ... | ... | ३०३ |
| राजाधर्माधर्मषष्ठांशभागी | ... | ... | ... | ३०४ |
| अरक्षया करग्रहणनिन्दा | ... | ... | ... | ३०७ |
| पापनिग्रहसाधुसंग्रहणे | ... | ... | ... | ३१० |
| बालवृद्धादिषु क्षमा | ... | ... | ... | ३१२ |
| ब्राह्मणसुवर्णस्तेने | ... | ... | ... | ३१४ |
| अशासने राज्ञो दोषः | ... | ... | ... | ३१६ |
| परपापसंश्लेषणे | ... | ... | ... | ३१७ |
| राजदण्डेन पापनाशे | ... | ... | ... | ३१८ |
| कूपघटादिहरणप्रपाभेदने | ... | ... | ... | ३१९ |
| धान्यादिहरणे | ... | ... | ... | ३२० |
| सुवर्णादिहरणे | ... | ... | ... | ३२१ |
| स्त्रीपुरुषादिहरणे | ... | ... | ... | ३२३ |
| महापश्वादिहरणादौ | ... | ... | ... | ३२४ |
| सूत्रकार्पासादिहरणे | ... | ... | ... | ३२६ |
| हरितधान्यादौ | ... | ... | ... | ३३० |
| निरन्वयसान्वयधान्यादौ | ... | ... | ... | ३३१ |
| स्तेयसाहसलक्षणम् | ... | ... | ... | ३३२ |
| त्रेताग्निस्तेये | ... | ... | ... | ३३३ |
| चौरहस्तच्छेदादि | ... | ... | ... | ३३४ |
| पित्रादिदण्डे | ... | ... | ... | ३३५ |
| राज्ञो दण्डे | ... | ... | ... | ३३६ |
| विज्ञशूद्रादेरष्टगुणादिदण्डः | ... | ... | ... | ३३७ |
| अस्तेयान्याह | ... | ... | ... | ३३९ |

| विषयः | श्लोकाः |
|---|---|
| चौरयाजनादौ ... ... ... | ३४० |
| पथि स्थिते क्षुद्वयग्रहणे ... ... ... | ३४१ |
| दासाश्वादिहरणादौ ... ... ... | ३४२ |
| अथ साहसमाह ... ... ... | ३४४ |
| साहसक्षमा निन्दा ... ... ... | ३४६ |
| द्विजातेः शस्त्रग्रहणकालः ... ... ... | ३४८ |
| आततायिहनने ... ... ... | ३५० |
| परदाराभिमर्षणे दण्डः ... ... ... | ३५२ |
| परस्त्रिया रहः संभाषणे ... ... ... | ३५४ |
| स्त्रीसंग्रहणे ... ... ... | ३५८ |
| भिक्षुकादीनां परस्त्रीसंभाषणे ... ... ... | ३६० |
| परस्त्रिया निषिद्धसंभाषणे ... ... ... | ३६१ |
| नटादिस्त्रीषु संभाषणे न दोषः ... ... ... | ३६२ |
| कन्यादूषणे ... ... ... | ३६४ |
| अङ्गुलिप्रक्षेपादौ ... ... ... | ३६७ |
| व्यभिचरितस्त्रीजारयोर्दण्डे ... ... ... | ३७१ |
| संवत्सराभिशस्तादौ ... ... ... | ३७३ |
| शूद्रादेररक्षितोत्कृष्टादिगमने ... ... ... | ३७४ |
| ब्राह्मणस्य गुप्ताविप्रागमने ... ... ... | ३७८ |
| ब्राह्मणस्य न वधदण्डः ... ... ... | ३८० |
| गुप्तावैश्यक्षत्रिययोर्गमने ... ... ... | ३८२ |
| अगुप्ताक्षत्रियादिगमने ... ... ... | ३८४ |
| साहसिकादिशून्यराज्यप्रशंसा ... ... ... | ३८६ |
| कुलपुरोहितादित्यागे ... ... ... | ३८८ |
| मात्रादित्यागे ... ... ... | ३८९ |
| विप्रयोर्वादे राज्ञा न धर्मकथनम् ... ... ... | ३९० |
| सामाजिकाद्यभोजने ... ... ... | ३९१ |
| अथ आकराः ... ... ... | ३९४ |
| रजकस्य वस्त्रप्रक्षालने ... ... ... | ३९५ |
| तन्तुवायस्य सूत्रहरणे ... ... ... | ३९७ |

| विषया: | | | | श्लोका: |
|---|---|---|---|---|
| पण्यमूल्यकरणे | ... | ... | ... | ३९८ |
| राज्ञा प्रतिषिद्धानां निर्हरणे | ... | ... | ... | ३९९ |
| अकालविक्रयादौ | ... | ... | ... | ४०० |
| विदेशविक्रये | ... | ... | ... | ४०१ |
| अर्घस्थापने | ... | ... | ... | ४०२ |
| तुलादिपरीक्षा | ... | ... | ... | ४०३ |
| तरिशुल्कम् | ... | ... | ... | ४०४ |
| गर्भिण्यादीनां न तरिशुल्कम् | ... | ... | ... | ४०७ |
| नाविकदोषेण वस्तुनाशे | ... | ... | ... | ४०८ |
| वैश्यादेर्वाणिज्याकरणे | ... | ... | ... | ४१० |
| क्षत्रियवैश्यौ न दासकर्मार्हौ | ... | ... | ... | ४११ |
| शूद्रं दासकर्म कारयेत् | ... | ... | ... | ४१३ |
| शूद्रो दास्यान्न मुच्यते | ... | ... | ... | ४१४ |
| सप्तदशदासप्रकारा: | ... | ... | ... | ४१५ |
| भार्यादासादयोऽधना: | ... | ... | ... | ४१६ |
| वैश्यशूद्रौ स्वकर्म कारयितव्यौ | ... | ... | ... | ४१८ |
| दिने दिने आयव्ययनिरीक्षणम् | ... | ... | ... | ४१९ |
| सम्यग्व्यवहारदर्शनफलम् | ... | ... | ... | ४२० |


**इति मनुस्मृत्यष्टमाध्यायविषयानुक्रमकोश: ।।**

# म नु स्मृ तिः

व्याख्यानवकोपेता

•

## अष्टमोऽध्यायः ८

•

**व्यवहारान्दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥**
**मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम् ॥ १ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्रजानां पालनं राज्ञो वृत्तिर्विहिता। सा चात्र (१०।७९) "शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषीविशः। आजीवनार्थं शूद्रस्य द्विजातीनां निषेवणम्॥" "एवं नृपो वर्तमानो लोकानाप्नोत्यनुत्तमान्॥" इति। तथा धर्मो वधते लोके। अन्येषामपि वर्णानां क्षत्रियवृत्त्या जीविनामस्त्येव राज्याधिकारः॥ "यः कश्चित्सर्वलोकानां पालकश्च नृपः स्मृतः। कर्मनिष्ठा च विहिता लोकसाधारणे हिते"॥ परिपालनं च पीडापहारः। द्वयी च पीडा दृष्टाऽदृष्टा च। तत्र दुर्बलस्य बलीयसा धनहरणादिना बाध्यमाना दृष्टा पीडा। इतरस्य तु विध्यतिक्रमजनितेन प्रत्यवायेनामुत्रिकदुःखोत्पादनमदृष्टपीडा। प्रजा हि द्वेषमत्सरादिभिरितरेतरमयथावदाचरन्ति कुपथेन यान्त्यदृष्टदोषेण बाध्येरन्। अतश्च राज्यनाशः। प्रजैश्वर्यं हि राज्यमुच्यते। तासु विनश्यन्तीषु कस्य राज्यं स्यात्। व्यवहारादयोऽतः शास्त्रदण्डेन व्यवस्थाप्यमाना न भयात्पृथक् प्रचलन्ति तथा चोभयथाऽपि रक्षिता भवन्ति। धनदण्डश्च राज्ञः करशुल्कादि वा। एतदन्या धर्मिष्ठजीविका न भवतीति वृत्तिपरिक्षयादपि राज्यावसादः। अतो राज्यस्थित्यर्थं व्यवहारदर्शनं कर्तव्यम्। तदिदानीमुच्यते। **व्यवहार**श्चात्र वादिप्रतिवादिनोरितरेतराशनोधाराय वृत्तिरुच्यते। अथवा ऋणादानादयः पदार्था एव विप्रतिपत्तिविषयाः सन्तो विचारगोचरसमर्थतया कर्तव्या इति। **दिदृक्षुरित्युक्त्वा** 'पश्येत्कार्याणीति' (श्लो. २) सामानाधिकरण्यम्। पुनश्च प्रत्यवमर्शः 'तेषामाद्यमृणादानमिति' (श्लो. ४)। तान् पदार्थान्विचारयेदिति सम्बन्धः। वक्ष्यमाणाधिकृतपुरुषाधिष्ठितः प्रदेशः **सभा**। **प्रवेश**स्तदभ्यन्तरभावः। किमेक एव प्रविशेच्चेत्याह **ब्राह्मणैः सहेति**। अथ **मन्त्रज्ञै**रिति कस्य विशेषणम्? न तावन्मन्त्रिणः; मन्त्रित्वादेव सिद्धेः। न हि मन्त्रमजानानो मन्त्रीति शक्यते वक्तुम्। नापि ब्राह्मणानां व्यवहारदर्शनेऽधिकृतानां तत्परिज्ञानमदृष्टं न स्यात्। अत्रोच्यते। ब्राह्मणविशेषणमेवैतत्। ते ह्यमन्त्रज्ञा भूत्वा निरपेक्षमवधारयन्तः स्युरन्यथा राज्ञोऽनर्थमावहेयुः। तथा हि महामात्याश्रितः कश्चिज्जनपदेन व्यवहरन्सहसा जितो यदि न दण्ड्यते धनं वाऽवष्टभ्य न दाप्यते तदा समत्वेन व्यवहारदर्शनं न कृतं स्यात्, पक्षपातमशङ्क्य वाऽस्य जनपदा मन्येरन्। अथ दण्ड्यते महामात्यक्षोभादपि प्रकृतिविकृतं स्यात्। मन्त्रज्ञास्तु सन्तः संशयितारो यदि निर्णेतव्यस्य केनचिदपदेशेन

प्रसङ्गरोधं कृत्वा रहसि राजानं परिबोधयन्ति 'अनयोर्विवादिनोरयं जीयतेऽयं जयतीति व्यवहारस्त्वस्माभिर्न तदानीमेव निर्णीत इति **स्वामी** प्रमाणं' तत्र राजैवं विदित्वा महामात्यमादेशयति "त्वदीयो मनुष्यो जीयते मम हानिर्मा भूदिति संप्रति निर्णयोऽवधीरितः। त्वमेव तथा कुरु यथैष मनुष्यः संधीयते बाधाऽस्य व्यपनीयते"। ते मन्त्रिणो वाऽऽदेयवाक्या मनुष्याणां सर्वेषामनर्थ्यां च प्रवृत्तिं प्रतिबध्नन्ति। अन्ये तु काकाक्षिवदुभयविशेषणमर्थभेदेन मन्त्रज्ञपदं मन्यन्ते। यदा मन्त्रिणो विशेष्यन्ते तत्तद्धातुतत्परिज्ञानमन्त्रज्ञानम्। ब्राह्मणपक्षे तु कार्यार्थसमभावश्च। मन्त्रिब्राह्मणानां न प्रवेशमात्रमेव। किं तर्हि? 'निर्णयं पश्येत्' इत्युत्तरत्र वाक्यानि यथायोग्यमितरथाऽदृष्टाय प्रवेशः स्यात्। अतो नैकाकी निर्णयं कुर्यात्। किं तर्हि? तैः सह निरूप्येति।

**विनीतो** वाक्पाणिपादचापलरहितः। वेपतो ह्यनर्थः स्यात्। **पार्थिव**ग्रहणान्न क्षत्रियस्यैवायमुपदेशः। किं तर्हि? अन्यस्यापि पृथिव्यामधिपतेर्देशेश्वरस्य न ह्यन्यथा राज्यमविचलितं भवतीति ॥१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। श्रीमहागणपतये नमः। **व्यवहारानिति** ॥१॥

(३) **कुल्लूकः**। एवंविधविपक्षमहीक्षिद्भ्रुचः प्रजानां रक्षणादवाप्तवृत्तिस्तासामेवेतरेतरविवादजपीडापरिहारार्थमृणादानाद्यष्टादशविवादे विरुद्धार्थीथिप्रत्यर्थिवाक्यजनितसंदेहहारी विचार एव व्यवहारः। तदाह **कात्यायनः** 'वि नानार्थेऽव संदेहहरणं हार उच्यते। नानासंदेहहरणाद् व्यवहार इति स्मृतः' ॥' तान्व्यवहारान्द्रष्टुमिच्छुन्पृथिवीपतिर्वक्ष्यमाणलक्षणलक्षितैर्ब्राह्मणैरमात्यैश्च सप्तमाध्यायोक्तपञ्चाङ्गमन्त्रैः सह विनीतो वाक्पाणिपादचापलविरहादनुद्धतः अविनीते हि नृपे वादिप्रतिवादिनां प्रतिभाक्षयादसम्यगभिधाने तत्त्वनिर्णयो न स्यात्तादृशो वक्ष्यमाणां सभां प्रविशेत्। व्यवहारदर्शनं चेदं प्रजानामितरेतरपीडायां तत्त्वनिर्णयेन रक्षणार्थं वक्ष्यमाणदृष्टादृष्टार्थकरणफलेनैव फलवत् ॥१॥

(४) **राघवानन्दः**। संप्रति व्यवहारार्थं सभाप्रवेशप्रकारमाह **व्यवहारानिति द्वाभ्याम्**। संगतिरानन्तर्यलक्षणा, व्यवहारनिर्णयस्य राजकृत्यत्वात्। ऋणादानाद्यष्टादशविषयो विरुद्धार्थिप्रत्यर्थिवाक्यजनितसंदेहहारी विचारो व्यवहारः॥ 'वि नानार्थेऽव संदेहे हरणं हार उच्यते। नानासंदेहहरणाद्व्यवहारः स उच्यते' इति **कात्यायन**वचनात्॥ मिताक्षरा–अन्यविरोधेन स्वात्मसंबन्धितया कथनं व्यवहारः। यथा कश्चिदिदं क्षेत्रादि मदीयमिति कथयति तद्विरोधेन मदीयमिति। मन्त्रज्ञैः पूर्वाध्यायोक्तपञ्चाङ्गमन्त्रज्ञैर्नीतिशास्त्रज्ञैः कापटिकादिभिः प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनान्तैर्वा मन्त्रिभिश्चामात्यैः ॥१॥

(५) **नन्दनः**। एवं राज्ञः स्वविषयरक्षणं परविषयलाभे प्रशमनं चोक्तं, इदानीं तस्य व्यवहारदर्शनमुच्यते **व्यवहारान्दिदृक्षुस्त्विति**। **मन्त्रज्ञै**रिति विशेषणं ब्राह्मणानां मन्त्रिणां च। विनीतः उक्तैरेतैरुभयैः॥१॥

(६) **रामचन्द्रः**। अथ व्यवहाराध्यायो निरूप्यते। पार्थिवो ब्राह्मणैः सह तथा मन्त्रिभिः सह व्यहारादीन्दिदृक्षुः सभां प्रविशेत्। अन्यानन्यविरोधेन स्वात्मसंबन्धितया कथनं व्यवहारः। **कीदृशैर्ब्राह्मणैःमन्त्रज्ञैः** वेदव्याकरणधर्मशास्त्राभिज्ञैः॥१॥

(७) **मणिरामः**। ऋणादानाद्यष्टादशविवादे विरुद्धार्थाऽर्थिप्रत्यर्थिवाक्यंजनित संदेहविघातविचारो व्यवहारः॥ नानासंदेहहरणाद्व्यवहार इति स्मृत इति **कात्यायनोक्तेः** ॥१॥

(८) **गोविन्दराजः । व्यवहारान्नृपः पश्येदिति ।** अर्थिप्रत्यर्थिनोर्ऋणादानादि-विषयाणीतरेतरविरुद्धावहरणरूपाणि कार्याणि द्रष्टुमिच्छन् राजा वक्ष्यमाणलक्षणैर्मन्त्रि-भिश्चोक्तपञ्चाङ्गमन्त्रज्ञैः सह चापलादिरहितो वक्ष्यमाणसभां प्रविशेत् ॥१॥

**तत्रासीनः स्थितो वाऽपि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ॥**
**विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥ २ ॥**

(१) **मेधातिथिः । आसीनो** धर्मासनोपविष्टः । स्थितो निषिद्धगतिरनुपविष्ट एव । स्थानासनयोश्च व्यवस्थितो विकल्पः कार्यविशेषापेक्षः । गरीयसि कार्ये बहुवक्तव्य उपविष्ट आसीनः लघीयसि स्वल्पवक्तव्ये स्थितः । क्रममाणस्य सर्वथा प्रतिषेधः । स हि मार्गावलोकनपरो नार्थिप्रत्यर्थिनोर्निपुणतो वचनमवधारयेत् । अन्ये त्वदृष्टार्थं तथा मन्यन्ते । तपस्विब्राह्मणादिषु विवादिषु स्थितेषु स्थित आसीनेष्वासीनः । **पाणिमुद्यम्येति** उत्तरपाणिमुद्धृत्योत्थानं कृत्वेत्यर्थः । सूत्रकृतोऽयं व्यतिक्रमः सर्वदा विहितत्वाद्वसनोपव्यानमेतत् । तेनायमर्थो हस्त उत्क्षेप्तव्यो न पुनः समीपवर्तिनि संलग्नः कर्तव्यः । प्रश्ननिषेधावसरे च तेनाभिनेतव्यं न तु प्रव्याणादिना । अनेन व्यवहारदर्शनेन तात्पर्यं ख्यापितं भवति । प्रायेण हि पुरुषकार्येषु प्रयत्नवन्तो हस्तमुद्य-च्छन्ति । यथासुखोपविष्टं व्रजति कर्तारं ततश्च परिजने तदेतद्राजा वित्तं न ददाति सभ्यैर्निर्भ-र्यैर्वयं जिता इति । पाणिग्रहणं बाहूपलक्षणार्थम् । केवलस्य हि हस्तस्य यावन्व्यवहारदर्शनं व्यापारणं पीडाकरम् । न चायमदृष्टार्थ उपदेशः ।

**विनीतवेषाभरण इति ।** पूर्वश्लोके बाह्याभ्यन्तरेन्द्रियविषयावधानार्थोऽभिहितः । अयं तावल्लोकानां शालीनतया सुखोपसर्पणार्थः । उद्धतवेषे हि राजनि तथाविधानामप्रतिपत्तिः स्यात् । अत उद्धतवेषाभरणं न कथंचित् स्यात् । **वेषः** केशवसनविन्यासादिविशेषः । **आभरणं** कर्णिकादि । तत्रोद्धत**वेष** ऊर्ध्ववस्त्रो जवनरक्ताम्बरधारितेत्यादि । **उद्धताभरणो** दीप्तिमद्बहु-रत्नालङ्कारो बहुहारश्च । स ह्यादित्य इव दुर्निरीक्ष्यः सामान्यजनानां विशेषतोऽभियुक्ता-नाम् । **पश्येदिति ।** सभाप्रवेशस्य प्रयोजनमाह—पश्येद्विचक्षणः । अयं च राज्ञो दर्शनोपदेशो दण्डप्रणयने यथास्थानार्थप्रतिपादनपर्यन्तो भविष्यति । तात्पर्यं तस्यैव रक्षाधिकारः प्रयुक्तः स्यात् । ईदृशस्य च दर्शनस्यान्येषामसंभावनादनधिकारः । सर्वेषां संशयच्छेदमात्रफलं तु । व्यवहारदर्शनं प्रायश्चित्तोपदेशवद्विदुषो ब्राह्मणस्यास्त्येव । उक्तं हि **'धर्मसंकटेषु ब्रूयादिति'** । तथैकवर्ण्यानां वाणिज्यकर्षकपशुपालप्रभृतीनां स्ववर्गसामयिकार्थविप्रतिपत्तावन्यस्यां वोत्सुकनिर्णयाद्भूतिरिति तथाविधव्यवहारदर्शने नियोगः । तथा हि पठितम् (ना. स्मृ. ७) "कुलानि श्रेणयश्चैव गणाश्चाधिकृतो नृपः । प्रतिष्ठा व्यवहाराणां गुर्वेभ्यस्तूत्तरोत्तरम्" ॥ इति । तत्र 'कुलानि' बन्धुजनसमूहः । तैर्या व्यवस्था कृता ततो न विचलितव्यम् । अथ तत्र नाश्वस्युस्तवैतेऽधिकतरं संबन्धिन इति वदन्तस्ततः श्रेणिषु निवेदितव्यम् । 'श्रेणयः' समानव्यवहारजीविनो वणिक्प्रभृतयः । तेषां बन्धुभ्योऽधिकगुरुत्वम् । बान्धवा हि ज्ञातिधर्मभयाद्विचलितं न नियच्छन्ति । श्रेणयस्तु राजगमनेन श्रेणिधर्मो राजपुरुष-प्रवेशात्परिभवनीयत्वेन नश्यतीति अविचलनार्थं प्रतिभूग्रहणपूर्वकं विचारयन्ति य एतस्माद्वि-चलति । परिषदि दण्डो दातव्यश्चलितुं वाऽपि त्वया न देयमिति । 'गणा' गणशश्चारिणो गृहप्रासादादिकरा मठब्राह्मणादयश्च । ते स्वगणिनां व्यवहारं पश्येयुः । तत्राविचलार्थं

उपसदः कर्तव्याः। पूर्वे समानकर्मजीविन एकाकिनोऽपि, इमे तु संभूयकारिण इति विशेषः। श्रेणिभ्यः संभूयकारितया विवादिनो भूमिज्ञत्वात्। अन्ये तु कुलानीति मध्यस्थपुरुषानाहुः। ते हि कार्याभ्यन्तरा अश्रेणिकृता एव निर्णेतारः। 'अधिकृतः' त्रैविद्यो विद्वान् ब्राह्मणः। तस्य हि धर्मसंकटेषु प्रवक्तृत्वं विहितम्। तस्य पूर्वेभ्यो गुरुत्वं वैदुष्यात्। नृपस्यापि गुरुत्वमतिशयशक्तित्वादतः स्वयं विदुषा नृपेण निर्णीते नास्त्येतत्— "यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः। द्विगुणं दण्डमास्थाय तत्कार्यं पुनरुद्धरेत्॥" इति। अन्येषु करणेष्वेतद्भवति। तत्र ह्यस्ति वचनावसरो नाधिकृतैः सम्यक् निर्णीतं राज्ञा तु विवेचिते किं वक्ष्यतीति।

अर्थान्तरम्—नृपैरधिकृतो राजस्थानीयब्राह्मणः। तथाऽन्यस्य गृहिणः 'स्वतन्त्रस्तु गृहे गृही'ति स्वातन्त्र्यस्मरणाद्दण्डपर्यन्तोऽस्त्येव व्यवहारः सुपरीक्षितो भवति। वासनाविनयार्थं श्रुतिग्राह्यप्रसक्तशिष्यसुताद्याः "अन्यत्र दण्डाच्छारीरात्पतनीयाच्च कर्मण" इति। स्वल्पेऽपराधे गृहस्थ एव राजायते। महति व्यतिक्रमे राजनिवेदनमेवोचितमित्यस्यार्थः। अतश्च यत्कैश्चित्पश्येदिति परिसंख्यार्थत्वमारोप्य ब्राह्मणादीनामधिकार आशङ्कितः पुनश्च क्लेशेन समर्थितस्तदयुक्तम्। विषयभेदादधिकारभेदात्। स्वविषयो हि राज्ञो दण्डावधिको ब्राह्मणादीनां निर्णयावधिः। अधिकारोऽपि भिन्नः। राज्ञो राज्यस्थितिप्रयोजनम्, इतरेषां संशयच्छेदादेरपरोपकारकत्वम्। अतो नो वृत्तिसङ्कराशङ्कैव नास्ति। कार्यो विप्रतिपत्तिनिरासः। अर्थिनां विप्रतिपन्नयोर्हि साम्यं व्यवहारदर्शने राज्ञा कर्तव्यम्। नो चेत्संविदाने को राज्ञः स्वाधिगमे निरोधः॥२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **उद्यम्य** उत्तरीयोपरि कृत्वा। विनीतो योग्यो वेषो देहावैकृतरूपमाभरणं च यस्य। अनुद्धतिव्यञ्जकं तदुभयं कुर्यादित्यर्थः॥२॥

(३) **कुल्लूकः**। तस्यां च सभायां कार्यगौरवापेक्षायामुपविष्टो लघुनि कार्ये उत्थितोऽपि वा। 'पाणि' शब्दो बाहुपरः। दक्षिणबाहुमुद्यम्यानुद्धतवेषालङ्कारः पूर्वत्रश्लोक इन्द्रियानौद्धत्यमुक्तं तादृशः कार्याणि विचारयेत्॥२॥

(४) **राघवानन्दः**। ततः किं तत्राह **तत्रासीन** इति। आसीनो गुरुतरकार्ये। स्थित एव शीघ्रं समाप्य पाणिमुद्यम्येति वस्त्रादिभ्यः प्रकाशितदक्षिणपाणिः। कार्याणि व्यवहारेऽनुष्ठेयानि। **पश्येत्** चिन्तयेत्। **कार्यिणामर्थिप्रत्यर्थिनाम्**॥२॥

(५) **नन्दनः**। आसीनः स्थितो वा न तु शयानः। दक्षिणं पाणिमुद्यम्य अप्रावृतदक्षिण इति यावत्। यज्ञोपवीतीत्यन्ये। कार्याणि व्यवहारान्। कार्यिणां व्यवहारिणाम्॥२॥

(६) **रामचन्द्रः**। **षड्भिराह तत्रेति**। तत्र तस्यां सभायां आसीनः कार्यिणामष्टादशविधानि कार्याणि पश्येत्। किं कृत्वा? दक्षिणं पाणिमुद्यम्य उद्धृत्य॥२॥

(७) **मणिरामः**। **आसीनः** गुरुकार्ये उपविष्टः लघुकार्ये स्थित इत्यर्थः॥२॥

(८) **गोविन्दराजः**। **तत्रेति**। तस्यां सभायां गुरुकार्यापेक्षयोपविष्टोऽन्यथोत्थितो दक्षिणबाहुं वासस उद्धृत्य अनुद्धतवेषालङ्कारः कार्यार्थिनां व्यवहारं नियमतो विचारयेत्॥२॥

**प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः॥**
**अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक्॥ ३॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वेणार्धेन निर्णयहेतवः कथ्यन्ते। उत्तरेण विवादपदसङ्ख्यानिर्देशः। 'पश्येदिति' पूर्वश्लोकादनुषज्यते कार्याणीति च। **प्रत्यहं** पश्येत्कार्याणि प्रतिदिवसगमने व्यवहारनिर्णयः कर्तव्यः। हेतुभिरिति हेतुर्निर्णयसाधनम्। स च द्विविधः। प्रमाणरूपो व्यवस्थारूपश्च। तत्र प्रमाणरूपोऽर्थनिर्णयहेतुः साक्ष्यादिः। व्यवस्थारूपो यतोऽसत्ये वाऽर्थनिश्चये व्यवहारः संतिष्ठते। यथा सत्यशपथ उभयानुमत एकः साक्षी यद्यर्थिप्रत्यर्थिभ्यामभ्युपगतप्रमाणभावः सभ्यैरपरिक्षितोऽपि निर्णयहेतुतां प्रतिपद्यते। न च परीक्षितस्य पुंसो वचनादसत्यात्पूर्ववदर्थनिश्चयः प्राश्निकानामभ्युपगमेऽपि व्यवस्थाहेतुर्भवति।

सा च व्यवस्था द्विविधा। साधारण्यसाधारणी च। देशभेदादाश्रयभेदात्साऽपि द्विविधा। अविरुद्धा विरुद्धा च। अविरुद्धा यथा केषांचिद्दाक्षिणात्यानामपुत्रा स्त्री भर्तर्युपरते सभास्थाणुमुपारोहति तमुपारूढाऽधिकृतैः परीक्षिता कृतलक्षणा तत्क्षणानन्तरं सपिण्डेषु ऋक्थं लभते। तथोदीचां लभ्यमानां कन्यां याचमानाय भोजनं यदि दीयते तत इयं तुभ्यं दत्तेत्यनुक्तेऽपि प्रतिश्रुता भवति। विरुद्धा च। क्वचिद्देशे वसन्ते धान्यं प्रयुज्यते शरदि द्विगुणं प्रत्यादीयते। तथाऽनुज्ञातभोग आधिर्द्विगुणेऽपि तदुत्थधने प्रविष्ट आ मूलहिरण्यदानाद्भुज्यत एव। एषा हि "अशीतिभागं गुह्णीयात्" "कुसीदवृद्धिर्द्विगुण्यं नात्येतीति" (१५१) विरुद्धा। तत्र भेदाश्रया देशदृष्टहेतुशब्देनाभिहिताः। शास्त्रदृष्टास्तु हेतवः शास्त्रे पठिताः। ते च केचन शास्त्रकारैः कल्पितव्यवस्थाः केचिद्यथावस्त्ववस्थिता अनुदिताः। तत्र कल्पितव्यवस्था यथालेख्यं यथोपभोगः साक्षिणश्चानुमानं वस्तुनियतं "यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम्" (४४) इति। यद्यपि सर्वं लौकिकं न शास्त्रकारवचनवत्प्रामाण्यं लभते तथाऽपि लौकिकमेव क्वचिच्छास्त्रमाश्रयितव्यम्। यच्चेदृशे चापराध इदं दिव्यं इयता च कालेन भोगः प्रमाणमिति लौकिकमपि तच्छास्त्रदृष्टमित्युक्तम्। तस्यां च व्यवस्थायां शास्त्रकाराणां मूले संभवति सा प्रमाणम्। या त्वसंभवतन्मूला सा नादरणीया। यथा लेख्यक्रमपाठः। (याज्ञ. व्यव. ८८) "उभयाभ्यर्थितेनैवं मया ह्यमुकसूनुना। लिखितं ह्यमुकेनैव लेखकस्तत्त्वतो लिखेत्॥" इति। यस्यादावेव लेखकः स्वनाम निवेशयेदिदं नामाहममुष्य पुत्रो लिखामीदमिति न कश्चिद्दोषः स्यात्। स ह्येवमर्थं नाम निवेशयत्यनेनेदं लिखितमिति लेख्यकमुपलक्षितं यथा स्यात्। यदि ह्यसौ लेखकः प्रमाणान्तरेण प्रत्ययितो भवति ततस्तल्लिखितं प्रमाणम्। यदि चासावात्मानं स्वगोत्रनाम्ना नोपलक्षयेत्ततः कस्य प्रत्ययितता प्रमाणान्तरादन्विष्यताम्। अथ तु लेख्यान्तरदर्शनेनान्येन वा हेतुना विशिष्टलेखक इति प्रत्यभिज्ञानं स्यादनुपलक्षितोऽपि न कश्चिद्दोषः। तत्र यदि लेखको न लिखेन्मयेदं लिखितमिति भवेदेव तादृशं लेख्यं परिपूर्णलक्षणम्। एषा च लेखकपरीक्षा तत्रोपयुज्यते। पत्रलेखकस्य साक्षित्वान्तर्भावोऽन्येषां साक्षिणामल्पत्वात्। यत्र त्वन्ये बहवः प्रत्ययिताः साक्षिणः स्वहस्तारूढाः सन्ति तत्र लेखकसम्बन्धिनी प्रत्ययितता नोपयुज्यते। तथेयमपरा व्यवस्था (ना. स्मृ. १। १४५)—

"लिखितं लिखितेनैव साक्षिमच्चैव साक्षिभिः। साक्षिभ्यो लिखितं श्रेयो लिखिते न तु साक्षिणः" नास्यामपि व्यवस्थायां किंचिन्निबन्धनमस्ति। तथा हि द्विविधं लेख्यम्—स्वहस्तकृतं परहस्तकृतं च। परहस्तकृतमपि द्विविधम्—स्वहस्तलेखकलिखितमधिकृतलेखकलिखितम्। तदेतत्परहस्तकृतं सर्वप्रकारं साक्ष्यात्मकमेव। तत्र साक्षिभ्यो लिखितमिति भेदानुपपत्तेः। इदं हि तस्य लक्षणम् "साक्षिणः स्वस्वहस्तेन पितृनामादिपूर्वकम्। तत्राहममुकः साक्षी लिखे-

युरिति ते समम्" (याज्ञ. व्यव. ८७)इति। नाप्येकहस्तलिखितस्य प्रामाण्यमिष्यते। यथैकस्य साक्षित्वे। "अथायं भेदहेतुसाक्षिणो हस्तारूढास्त एव लेख्यमिति" नानेन विशेषेण श्रेयस्त्वं भवति। प्रत्ययितता हि श्रेयस्त्वे हेतुः। सा चोभयत्रापि परीक्ष्या। तस्मादीदृशे लेख्य साक्षिद्वैधान्न्यायो बहुत्वं परिगृह्णीयादिति। अधिकृतत्वमपि न विशेषः। परीक्षितोऽधिक्रियत इत्येतत्तत्राधिक्यम्। न च सर्वे राजाधिकृताः सुपरीक्षिता भवन्ति। यदि तु निरुपाधिस्तादृशश्चेदत्यन्तगुणयोगात्स्यादुपेयादेवासौ एक एव संवादकत्वम्। तथा हि राजाग्रहारशासनान्येककायस्थहस्तलिखितान्येव प्रमाणीभवन्ति। अदातुः स्वाहस्तक्यं स्वयमभ्युपगमः 'इयदस्मान्मया गृहीतमिदं चास्मै दातव्यमिति'। तत्र यदि पश्चात् ब्रूते न गृहीतमिति तदा पूर्वनिबद्धं ब्रुवाणैर्जीयते। तत्र साक्षिणामवसर एव नास्ति। "ननु च यदीयाल्लेख्यादभ्युपगतमेतदनेनेत्यवगम्यते, उत्तरकालं च स एवाह न गृहीतमिति, तत्रोभयोरभ्युपगमयोः केन हेतुना पूर्वेणोत्तरा बाध्येत न पुनरुत्तरेण पूर्वा। तुल्यत्वाद्विरुद्धत्वसंशयः। ततश्च प्रमाणान्तरव्यापारणमेव युक्तम्"।

भवेदेवं यदि तुल्यता स्यात्। न गृहीतमिति ह्यभ्युपगमो लोभादिनाऽपि संभवति, न त्वगृहित्वाऽनुन्मत्तो गृहीतमिति ब्रूयात्। तत्रापि यदि ब्रूयात्प्रतिदत्तमिति लेख्यं तु न संपादितमसंनिधानात्प्रतिलेख्यं च न गृहीतं लेखकासंनिधानात्कार्यान्तरेऽतिपातिनि त्वरावत्त्वान्नास्त्येव प्रमाणान्तरस्य साक्ष्यादेरवसरः।

यदपि "लिखितं लिखितेनेति" नैषा परिभाषा वस्तुसामर्थ्यायातामवगतिं बाधितुं शक्नोति। दृश्यन्ते हि धनिकहस्तगतलेख्यं क्रमेण संशोधयन्तः, न च पृष्ठे संशोधितं धनमभिलिखन्ति। अद्य तावदिदं दत्तं प्रातरन्यदानीयैकीकृत्योपर्यारोपयिष्यामि सर्वं वा कतिपयैरहोभिः संशोध्य लेख्यं पाटयिष्यामीति। धनिकेन चोपरुद्धस्यासंभवत्यंशमूललाभधने संशुद्धिभागमात्रे दीयमाने कुत इयं तत्प्रभवति न ददाति यावत्प्रतिलेख्यं न दत्तमिति। यदि चैषा परिभाषा "लिखितं लिखितेनैवेति" तथा बलोपधिकृतत्वं कथं विचार्यताम्। न हि तत्र लेख्यान्तरसंभवः तेन यथाऽत्र सत्येव लेख्ये तन्निश्चयार्थं प्रमाणान्तरं व्यापार्यते तद्वदन्यत्रापि व्यापारणीयम्। यथा कश्चिदावेदयेत्—'अस्य प्रत्ययं गत्वा लेख्यं मया कृतमनेनोक्तमद्य पुण्याहकारणमिमां च धनमात्रां गृहाण, श्वस्ते सर्वं दाताऽस्मीत्युक्त्वा सैव धनमात्रा दत्ता परिशिष्टं न दत्तमिति'—तदाऽस्त्येव साधकान्तरव्यापारणावसरः। तत्र यद्यधमर्णस्यास्मिन्प्रकारे साक्षिणः सन्ति तदाऽभिहिते लेख्य आभासीकृते श्वो दानमुत्तमर्णेन साधनीयम्। अथ तयोरपि रहसि परिभाषेयमभूत्तदा दैव्याः क्रियाया अवसरः। अथ तु तस्यामपि व्यभिचरित्वादनाश्वासः सत्यशपथेन व्यवस्था कार्या।

"नन्वेवं सति स्वहस्तलेख्यं प्रमाणान्तरसंवेदसापेक्षत्वादप्रमाणमेव। तत्र 'विनाऽपि साक्षिभिः सिध्येत्' 'न स्वहस्तपरिचिह्नितमिति'विरोधः। अनेनैव न्यायेन प्रत्यक्षं दीयमानं द्रव्यं न पश्यति। केवलं तत्समक्षं गृहीत्वा परिभाष्यत इयदिदमस्मान्मया गृहीतमिति। तेऽपि साक्षिणः स्युः। तत्रापि शक्यते वक्तुमस्य प्रत्ययं गत्वा प्रपन्नोहमिति।"

उक्तमत्र न स्मृतिविरोधाद्वस्तुस्थितिराहन्तुं शक्यते। अपि च यत्रास्य वचनस्यावसरो नास्ति तत्र प्रमाणं भविष्यति। क्वचिन्नास्ति—यत्र चिरकालं तिष्ठति धनिकहस्ते लेख्यं यदि हि तेन धनं दत्तं तदा कथमनेन वा नाम न मार्गितं लेख्यं नत्याजितमिति। न हि चिरकालमुपेक्षा

वस्तुनीदृशे संभवति। मिथ्यावादिता त्वस्यानुमीयते। तथा चोक्तम् "सद्यस्त्यहाद्वा कार्येषु बलं राज्ञो निवेदयेदिति"। यत्र वा भोग्यबन्धो न च भोग आम्नातोऽपहारकालस्तत्र विप्रतिपत्तौ विनाऽपि साक्षिभिः स्वहस्तलेख्यं न ह्यधमर्णो वक्तुं लभन्ते प्रीत्या त्वयैतदुक्तं संप्रति त्यजेति। न च पूर्वोक्तस्य वचनस्यावसरः। कृतं लेख्यं ततो दास्यामीत्युक्त्वा न दत्तमिति। यदि न दत्तं कथं बन्धभोगो मर्षितः ?।

ननु चैवं सति लेख्यसहायो भोगः प्रमाणं स्यात्। केवलस्य तु भोगस्य प्रामाण्यमामनन्ति। "लिखितं साक्षिणो भुक्तिरिति"। किमिदं प्रत्युक्तं पर्यनुयुज्यामहे। विशिष्टकालो भोगः प्रमाणं न भोगमात्रम्। एवं हि पठ्यते (१४७) "यत्किंचिद्दशवर्षाणि"—तथा "पश्यतोऽब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकीति" (याज्ञ. व्यव. २४)।

कस्तर्ह्यस्यार्थो "लिखितं लिखितेनैवेति" ?।

व्याख्यातमन्यैः। कर्तृविशेषसंशयेऽनेनैतल्लिखितं न वेति लिखितेन निश्चिततत्कर्तृकेण निश्चीयते। यत्तु साक्षिसमक्षं तत्र कृताकृतसंदेहं साक्षिभिर्हरति। त एव तत्र प्रमाणम्। न तत्र तत्कृतलेख्यान्तरदर्शनमुपयुज्यते। बुद्धिपूर्वेषु च ऋणादानादिषु केवलेभ्यः साक्षिभ्यो लिखितं श्रेयः। साक्षिणो हि विस्मरेयुरन्यतरेण वा सम्बन्धं गच्छेयुरन्यद्वा पातकस्यासाक्षित्वे हेतुमासादयेयुः। लेख्यं त्वभियोगवत आत्माधीनतया सुरक्षमिति साक्षिभ्यः श्रेयस्त्वं तस्य। एतदेवाह "लिखिते न तु साक्षिणः" इति। स्वहस्तप्रतिष्ठेन विस्मृतमप्यर्थं वृत्तमिति मन्यते। मृता वा साक्षिणस्तद्वस्तुप्रत्यभिज्ञानेन प्रमाणीभवन्ति।

व्याख्यानान्तराणि भर्तृयज्ञेनैव सम्यक्कृतानीति तत एवावगन्तव्यानि। सर्वथा प्रमाणमूलानि स्मृतिकारणम्। व्यवस्था तु कर्तव्येति। न च स्मृतेरेव प्रमाणकल्पना युक्ता। न हि व्यवहारस्मृतिर्वेदमूला शक्यते वक्तुम् सिद्धार्थरूपत्वात्प्रत्यक्षाद्यवगम्यत्वाज्जयपराजयप्रकाराणाम्। सिद्धो ह्ययमर्थः—एवं व्यवहारे जीयत इतर इतरो जयतीति। यदाऽप्यत्र लिङ्गश्रुतिः 'सोऽपि हरीतकीं भक्षयेदारोग्यकाम' इतिवदवसेया। ईदृशेषु विधिस्वरूपेषु प्रत्ययेषु द्रव्यशुद्धेः प्रसङ्गेनार्थो विवेचित इति न पुनः प्रयतामहे।

**अष्टादशसु मार्गेषु** विषयो विवादस्य। एतानर्थानुद्दिश्य पुरुषाः प्रायेण विवदन्ते। न विरुद्धानि कार्याणि प्रयोजनान्यर्थसिद्धय इति यावत्तान्युत्तरत्र दर्शयिष्यामः।

**पृथक् पृथक्** प्राधान्यमेतेषामाह। एतानि प्रत्येकं प्रयोजकानि न पुनः परस्परमन्तर्भवन्ति। यथान्यान्यनुषङ्गादिष्वन्तर्भवन्ति। नैवमेते। अनुषक्तानि तु सहस्रशः सन्ति ॥३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रत्यहं पश्येदित्यन्वयः। देशदृष्टैः शास्त्राविरुद्धैः देशाचारसिद्धैः हेतुभिः प्रमाणैः शास्त्रदृष्टैः साक्ष्यादिभिः। अष्टादशस्वृणादानादिषु मार्गेषु कार्यनिर्गमोपायतया मार्गसदृशेषु निबद्धानि संबद्धानि कार्याणीत्यन्वयः ॥३॥

(३) **कुल्लूकः**। तानि च ऋणादानादीनि कार्याणि अष्टादशसु व्यवहारमार्गेषु विषयेषु पठितानि देशजातिकुलव्यवहारावगतैः शास्त्रावगतैः साक्षिदिव्यादिभिर्हेतुभिः पृथक्पृथक् प्रत्यहं विचारयेत् ॥३॥

(४) **राघवानन्दः**। कार्याणीत्युक्तं, तानि अष्टादशसु व्यवहारमार्गेषु कथं ज्ञेयानीत्यत्राह **प्रत्यहमिति**। **देशदृष्टैः** देशजातिकुलव्यवहारावगतैः प्रत्यक्षैर्न्यायैः हेतुभिर्वा। **शास्त्रदृष्टैः** शास्त्रोक्तसाक्ष्यादिमीमांसनैश्च (अ) ॥३॥

---

(अ) मीमांसनैश्च = मीमांसनैश्च वक्ष्यति यत्र सुविहितं कार्यं धर्मासिद्धिमभीप्सतेति। (राघ.४).

(५) **नन्दनः**। हेतवः प्रमाणानि। देशदृष्टा हेतवो द्विविधा सर्वदेशव्याप्ताः देशविशेषनियताश्चेति। शास्त्रदृष्टा हेतवः सप्तमाषादयः। अष्टादशसु मार्गेषु वक्ष्यमाणेषु विवादपदेषु निबद्धानि संबद्धानि। कार्याणि पश्येदित्यनुषज्यते ॥३॥

(६) **रामचन्द्रः**। **देशदृष्टैः** देशाचारैः **शास्त्रदृष्टैः** शास्त्राविरुद्धैः **हेतुभिः** साधनैः **अष्टादशसु मार्गेषु** अष्टादशसंज्ञेषु **पृथक्** निबद्धानि **कार्याणि प्रत्यहं पश्येत्** ॥३॥

(७) **मणिरामः**। तानि ऋणदानादीनि कार्याणि अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पठितानि **देशदृष्टैः** देशजातिकुलव्यवहारावगतैः **शास्त्रदृष्टैः** शास्त्रावगतैः **हेतुभिः** साक्षिद्रव्यादिभिर्हेतुभिः **पृथक् पृथक्** प्रत्यहं विचारयेत् ॥३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **प्रत्यहमिति**। तांश्च व्यवहारान् अष्टादशव्यवहारस्थाने ऋणादानादिषु वक्ष्यमाणेषु पृथक् पृथक् व्यवस्थितान् प्रतिनियतदेशव्यवस्थावणिक्कर्षकादिगतया शास्त्राविरुद्धया शास्त्रगतया च साक्षिशपथानुमानाद्यात्मकया प्रत्यहमालोक्यमेव ॥३॥

**तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ॥**
**सम्भूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥ ४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पाठक्रमापेक्षमृणादानस्याद्यत्वं प्राथम्यम्। अथवा मुख्यमाद्यम्। अनेन हि वनवासिनोऽपि स्पृश्यन्ते। ऋणादानानुषक्तमनृणादानमेव च। यथा ऋणं ते मया दत्तं शुद्धिलेख्यं प्रयच्छेत्यादि। नैतदृणादानम्, अनुक्तं तु तत्रेति तद्व्यपदेश्यम्। तथा "ऋणं देयमदेयं च येन यत्र यथा च यत्। दानग्रहणधर्माश्चेति।" (ना.स्मृ. १।१) तत्र देयमृणं स्वकृतं पितृकृतं च यस्य च ऋक्थं हरेत्। अदेयं स्वकृतं द्विगुणादधिकं पितृकृतं च द्यूतादिभागेनेति पुत्रेण भर्ता पित्रा चेति। तथा (ना. स्मृ. १।१६)

"न स्त्री पतिकृतं दद्यादृणं पुत्रकृतं तथा। अभ्युपेतादृते यद्वा सह पत्या कृतं भवेत्॥"

यद्यपि देयमित्यत्रैतदन्तर्भूतं तथापि द्यूतादिकृतं विशेषानपेक्षं स्वरूपतो देयम्, इदं तु कर्तृनियमादिति गोबलीवर्दवद्भवति चेद्भेदो यावदिति द्वैगुण्यपर्यन्तं तत्रापि भेदः पूर्ववत्। यत्रेति पाठे देशकालग्रहणम्। यत्रैव गृहीतं तत्रैव देयम्। सत्यां धनिकेच्छायां देशान्तरेऽपि। सति संभवे कालोऽपि। शरद्यनिच्छेत्युक्तम्। "ग्रैष्मे वा सत्सु सस्येषु यदा वाऽस्य धनागमं मन्येतेति"। 'यथा' सति संभवे सर्वम्। असति कश्चिदंशो यावत्कर्मेण संशुद्धमिति। सर्वभावेन परिक्षीणेन "कर्मणाऽपि समामिति" (मनु.८।१७७) 'दानग्रहणधर्मा' इति साक्षिलेख्यादयः। **पारुष्ये दण्डवाचिके इति।** दण्डश्च वाक् च दण्डवाचं 'द्वन्द्वाच्चदषहान्तादिति' (पा. ५।४।१०६) समासान्तस्तदस्यास्तीति "अत इनि ठनाविति" (पा. ५।२।११५) ठन्। **स्त्रीपुंधर्म इति।** स्त्रीसहितः पुमानिति शाकपार्थिवादिवत्समासः। स्त्री च पुमांश्चेति विग्रहे स्त्रीपुंसधर्म इति स्यात् ॥४–७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **आद्यं** प्रधानं बहुविषयं **ऋणस्य** न **दानमदानम्। संभूय समुत्थानम्** अनेकैर्मिलित्वा यत्र धनार्थं वाणिज्याद्युद्यमः क्रियते। **अनपकर्म** अप्रत्यर्पणम् ॥४॥

(३) **कुल्लूकः**। तान्येवाष्टादश गणयति तेषामिति। तेषामष्टादशानां मध्ये आदाविह **ऋणादानं** विचार्यते। तस्य स्वरूपमुक्तं नारदेन 'ऋणं देयमदेयं च येन यत्र यथा च यत्। दानग्रहणधर्माश्च तदृणादानमुच्यते॥ ततश्च स्वधनस्यान्यस्मिन्नर्पणरूपो निक्षेपः। अस्वामिना

च कृतो विक्रयः। संभूय वणिगादीनां क्रियानुष्ठानम्। दत्तस्य धनस्यापात्रबुद्धचा क्रोधादिना वा ग्रहणम्। कर्मकरस्य भृतेरदानम्। कृतव्यवस्थाऽतिक्रमः। क्रयविक्रये च कृते पश्चात्तापाद्विप्रतिपत्तिः। स्वामिपशुपालयोर्विवादः। ग्रामादिसीमाविप्रतिपत्तिः। वाक्पारुष्यमाक्रोशनादि। दण्डपारुष्यं ताडनादि। स्तेयं निह्नवेन धनग्रहणम्। साहसं प्रसह्य धनहरणादि। स्त्रियाश्च परपुरुषसंपर्कः। स्त्रीसहितस्य पुंसो धर्मे व्यवस्था। पैतृकादिधनस्य च विभागः। अक्षादिक्रीडा। पणव्यवस्थापनपूर्वकम् पक्षिमेषादिप्राणियोधनमित्येवमष्टादश पदानि एतानि व्यवहारप्रवृत्तेः स्थानानि। समाह्वयस्य प्राणिद्यूतरूपत्वेन द्यूतावान्तरविशेषत्वादष्टादशसंख्योपपत्तिः ॥४–७॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तानष्टादशविवादान्विशदयति **तेषामिति चतुर्भिः**। ऋणादानम् – 'ऋणं देयमदेयं च येन यत्र यथा च यत्। दानं ग्रहणधर्माश्च तदृणादानमुच्यते' इति **नारदोक्तेः**। निक्षेपः धनस्यान्यस्मिन्नर्पणं यथा दानं च। 'यथा दायस्तथा ग्रह' इति वक्ष्यते। अस्वामिविक्रयः। सोपि द्विविधः प्रकाशाप्रकाशभेदेन। संभूय समुत्थानं संहृत्य च समुत्थानमदानं प्रदानं वा दत्तस्यानपकर्म च संहृत्य वणिगादीनां क्रयाद्यनुष्ठानम्। अनपकर्म अपात्रबुद्धचा क्रोधादिना वा दत्तस्य अपयच्छत्यनेन परस्मै धनमित्यपकर्म दानादि, तद्भिन्नमनपकर्म पुनरादानमित्यर्थः ॥४॥

(५) **नन्दनः**। अष्टादशविवादपदान्याह **तेषामाद्यमिति**। तेषां कार्याणाम्। ऋणादानं ऋणस्याप्रदानम्। निक्षेपो निक्षेपापहरणम्। अस्वामिना परद्रव्यस्य विक्रयोऽस्वामिविक्रयः। बहुभिस्संभूय कर्मकरणं संभूय समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म दत्तस्याप्रदानम् ॥४॥

(६) **रामचन्द्रः**। तेषामष्टादशव्यवहाराणां संज्ञा आह चतुर्भिः। तेषामष्टादशानामाद्यमृणादानं निक्षेपः अस्वामिविक्रयः संभूय च समुत्थानं अनेकैर्मिलित्वा धनाद्युद्यमः अनपकर्माप्रत्यर्पणम् ॥४॥

(७) **मणिरामः**। तान्येवाष्टादश गणयति ॥ **तेषामित्यादिना** ॥ शास्त्रोक्तरीत्या वृद्धचर्थं द्रव्यप्रयोगो ऋणादानम् ।१। कालान्तरं विना अस्मिन् रक्षणार्थं द्रव्यार्पणं **निक्षेपः** ।२। स्वाम्याज्ञां विनाऽन्येनान्यद्रव्यविक्रयः अस्वामिविक्रयः ।३। एकीभूय वणिजां क्रयविक्रयकरणं संभूय समुत्थानम् ।४। दत्तस्य धनस्य अपात्रबुद्धचा क्रोधादिना वा परावृत्य ग्रहणं दत्तस्यानपकर्म ।५। कर्म कारयित्वा भृतेरदानं वेतनादानम् ।६। कृतव्यवस्थाऽतिक्रमः संविद्व्यतिक्रमः ।७। क्रयं कृत्वा पश्चात्तापः क्रयविक्रयानुशयः ।८। पालः पशुपालः स्वामिपशुपालयोर्विवादः ।९। ग्रामादिसीमाविप्रतिपत्तिः सीमाविवादः ।१०। आक्रोशादिना वाक्पारुष्यम् ।११। ताडनादिना दण्डपारुष्यम् । ।१२। चौर्यधनग्रहणं स्तेयः ।१३। बलात्कारे... पक्षिमेषादिप्राणियोधनद्यूतं–समाह्वयः । एवमष्टादशपदानि व्यवहारप्रवृत्तेः स्थापकानि ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

(८) **गोविन्दराजः। तेषामिति। वेतनस्येति। सीमाविवादधर्म इति। स्त्रीपुंधर्म** इति। तेषामष्टादशानामादावधर्मगृहीतस्य ऋणस्यादानमिह विचार्यते। ततःक्रमेण निक्षेपोऽस्वामिना च यः क्रियते विक्रयादिः। एकीभूय धनार्जनेहा। यागाद्यर्थं दत्तस्य प्रतिश्रुतस्य वा यागाद्यकरणे सत्यप्रदानम्। भृतेरदानम्। ग्रामादिकृतव्यवस्थाव्यतिक्रमः। क्रये विक्रये वा सति पश्चात्तापः। स्वामिपालयोः विप्रतिपत्तिः। ग्रामादिसीमाविवादव्यवस्था। वाक्पारुष्यं ताडनादि। चौर्यम्।

प्रधष्यापहरणादि साहसम्। स्त्रियश्च परस्परं च संपर्कं रामकं स्त्रीसहितस्य। पुंसो भर्तुर्व्यवस्था। पैतृकादिधनविभागोऽक्षादिक्रीडाव्यवस्थापनम्। पशुपक्ष्यादियोधनमित्येवं अष्टादशैतानि व्यवहारोत्पत्तौ लोके स्थानानि ॥४–७॥

**वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ॥**
**क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥ ५ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। संविदो नियमस्य। अनुशयः पश्चात्तापः तेन पुनर्ग्रहणप्रयत्नो लक्ष्यते। स्वामिनः पशूनां पालकस्य ॥५॥

(४) **राघवानन्दः**। वेतनस्य भृतेरदानम्। संविदः, अस्माभिः एतत्कर्तव्यमेतन्नेतिकृत-नियमस्यातिक्रमो व्यवस्थात्यागः। क्रयविक्रयानुशयः तत्कृतेऽपि तस्मिन्पश्चात्तापात्तदा दान-परित्यागौ। स्वामिपालयोः विवादो विप्रतिपत्तिः। पशुस्वामितत्पालयोः ॥५॥

(५) **नन्दनः**। वेतनं भृतिः। तस्यादानम्। ग्रामनगरादिवासिनां समयस्संवित्। स्वामिपालयोः पशुस्वामिपालयोः ॥५॥

(६) **रामचन्द्रः**। वेतनस्यादानं संविदः समयस्य व्यतिक्रमः। क्रयविक्रयस्य वस्तुनोऽनुशयः। विवादः स्वामिपालयोः ॥५॥

**सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ॥**
**स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ ६ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **सीमायां विवादधर्मः**। **दण्डवाचिके दण्डकृतवाक्पारुष्य** इत्येकम् **स्त्रीसंग्रहणं** स्त्रियाः परपुरुषेण स्वीकारः ॥६॥

(४) **राघवानन्दः**। **सीम्नि** यो **विवादस्तस्य** धर्मो मर्यादानिर्णयः। **पारुष्ये** वाक्पारुष्य-माक्रोशादि **दण्डपारुष्यं** छेदादि। **स्तेयं** निह्नवेन धनग्रहणम्। **साहसं** सहो बलं तत्कृतं प्रसह्य धनहरणम्। स्त्रीहरणं स्त्रियाः परपुरुषसंपर्कादि ॥६॥

(५) **नन्दनः**। **सीमा** ग्रामक्षेत्रादिसीमा। **पारुष्ये दण्डवाचिके** दण्डपारुष्यं वाक्पारुष्यं च परगात्रेषु हस्तादिभिः कृन्तनादिकं दण्डपारुष्यम्। जातिकुलाचारादीनामाक्रोशो वाक्पारुष्यम्। **साहसं** बलात्कारः। **स्त्रीसंग्रहणं** परदारपरामर्शः ॥६॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सीमाविवादः पारुष्यं स्तेयं साहसं स्त्रीसंग्रहः** ॥६॥

**स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च ॥**
**पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थितावि॒ह ॥ ७ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **स्त्रीपुंधर्मः** अन्योन्यवृत्तिनियमस्तयोः। **आह्वयः** पशुपक्षि-योधनम्। आहव इति पाठेऽप्ययमर्थः। पदानि स्थानानि। **व्यवहारस्य** विवादस्य। **स्थितौ** निर्णये ॥७॥

(४) **राघवानन्दः**। **स्त्रीपुंधर्मः** स्त्रीसहितपुंसो धर्मव्यवस्था। **विभागः** पैतृकादिधनादेः। **द्यूतं** अक्षादिक्रीडा। आह्वयः पणपूर्वकपक्षिमेषादियोधनम्। पदानि स्थानानि विषयाः विचार-स्येति शेषः ॥७॥

(५) **नन्दनः**। **स्त्रीपुंधर्मो** दम्पतिभ्यामन्योन्यस्मिन्कर्तव्यो धर्मः। विभागः दायविभागः। आह्वानं प्राणि**द्यूतम्**। मेषकुक्कुटादियोधनं द्यूतम् द्यूतमाह्वानमित्युभयमप्येकव्यवहारास्पदमभिप्रेतयोर्द्वयोर्विजयपराजयफलत्वात्। कारणतोऽभिभेदो न स्वरूप इति। तथा चायमेव वक्ष्यति 'अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते। प्राणिभिः क्रियते यत्तु स विज्ञेयः समाह्वय' इति ॥७॥

(६) **रामचन्द्रः**। **स्त्रीपुंधर्मः** विभागो द्यूतं मेषादियुद्धक्रीडा **एतानि अष्टादश पदानि** स्थानानि **व्यवहारस्थितौ** पश्येदित्यर्थः ॥७॥

**एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम्।**
**धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥ ८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **भूयिष्ठ**ग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम्। अन्येऽपि व्यवहारहेतवः सन्ति। यथा निवसनार्थं त्वया मे वेश्म दत्तं तत्र किमित्यर्वाग्वत्सरादन्यस्मै ददासीति। न चेदं दत्तानपकर्म, न ह्यत्र स्वस्वत्वनिवृत्तिरस्ति भोगानुज्ञामात्रं वसतः। तथा मदीयस्थण्डिलाभिमुखं त्वया वेश्मनि गवाक्षं कृतमिति। **धर्मं शाश्वतमाश्रित्येति**। अर्थकामावशाश्वतौ। अथवा शाश्वतो धर्म अनिदं प्रथमतो या व्यवस्था तामनुपालयेत्। या त्विदानीन्तनैः प्रवर्तिता साऽशाश्वतत्वादनादरणीया ॥८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भूयिष्ठप्रायशः तेनान्यान्यपि पदानि भवन्तीत्यर्थः ॥८॥

(३) **कुल्लूकः**। **एषु** ऋणादानादिषु व्यवहारस्थानेषु **बाहुल्येन विवादं कुर्वतां** मनुष्याणामनादिपारंपर्यागतत्वेन नित्यं धर्ममवलंब्य कार्यनिर्णयं कुर्यात्। भूयिष्ठशब्देनान्यान्यपि विवादपदानि सन्तीति सूचयति तानि च प्रकीर्णकशब्देन नारदाद्युक्तानि अत एव **नारदः** '—न दृष्टं यच्च पूर्वेषु सर्वं तत्स्यात्प्रकीर्णक'मिति ॥८॥

(४) **राघवानन्दः**। एष्वतीव यत्नं विधत्ते **एष्विति**। **भूयिष्ठं** बाहुल्येन **विवादं चरतां** कुर्वताम्। भूयिष्ठमित्युक्तिरष्टादशातिरिक्तसूचनार्थं तेन प्रतिज्ञादिग्रहः। अनादिपरंपरागतं तेन **शाश्वतम्** ॥८॥

(६) **रामचन्द्रः**। **एष्विति**। **एषु** स्थानेषु अष्टादशस्थानेषु **भूयिष्ठम्** अतिशयम् ॥८॥

(७) **मणिरामः**। **एषु स्थानेषु** ऋणादिव्यवहारस्थानेषु। **शाश्वतम्** अनादिपारंपर्यागतत्वेन नित्यम् ॥ ८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एष्विति**। एष्वष्टादशसु स्थानेषु व्यवस्थानेषु बाहुल्येन मनुष्याणां विवादं कुर्वताम् अनादिपारंपर्यायानां व्यवस्थामाश्रित्य व्यवहारनिर्णयं कुर्यात्। भूयिष्ठवचनादन्यान्यपि सन्ति। यथोक्तं **नारदेन** 'तेषामेव प्रभेदोऽन्यः शतमष्टोत्तरं स्मृतम्' ॥८॥

**यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम्।**
**तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥ ९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। "अष्टादशपदाभिज्ञं प्राड्विवाकेतिसंज्ञितम्। आन्वीक्षिक्यां च कुशलं श्रुतिस्मृतिपरायणम्" ॥ कुतश्चिदतिपातिकार्यान्तरव्यासङ्गादपाटवाद्वा यदि स्वयं न पश्येत्तदा विद्वान्ब्राह्मणो नियोज्यः। विद्वत्ता च या व्यवहारविषया सा तदधिकारत एवार्थ-

गृहीता । न हि यो यत्र जानाति स तत्राधिकारमर्हति । धर्मशास्त्रपरिज्ञानं तु रागद्वेषदोषे विपरीतार्थावधारणनिवृत्त्यर्थमुपयुज्यते । धर्मज्ञस्तु सतोरपि रागद्वेषयोः शास्त्रभयेन न विपर्ये इत्युपयोगवद्धर्मशास्त्रपरिज्ञानम् । व्यवहारदर्शनं तु तदर्थगृहीतम् । येन विना न शक्यते व्यवहा निर्णयः कर्तुम् तद्विज्ञानं तदधिकाराक्षिप्तम् । यत्तु ज्ञात्वाऽन्यथा क्रियते तन्निवृत्तिरुपदेशान्तर विषया । वक्ष्यति चैवमर्थं यत्नान्तरमपि—'वेदविदस्त्रयः', '—राज्ञश्च प्रकृतो विद्वानिति' शास्त्रान्तरपरिज्ञानं तु व्यवहारेऽधिक्रियमाणस्यादृष्टाय स्यात् । नियोज्यो विद्वान्स्यादि पठितव्यम् । **नियुञ्ज्यादिति** नियुञ्जीत स्वराद्यत्तोपसृष्टादिति हि कातीया आत्मनेप स्मरन्ति ॥९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । स्वयं न कुर्वीत, कारणान्तरवशात् ॥९॥

(३) **कुल्लूकः** । **यदा** कार्यान्तराकुलतया रोगादिना वा राजा **स्वयं कार्यदर्शनं** कुर्यात्तदा तद्दर्शनार्थं **कार्यदर्शनाभिज्ञब्राह्मणं नियुञ्जीत** ॥९॥

(४) **राघवानन्दः** । अत्रार्थे स्वयमसमर्थश्चेत्प्रतिनिधिं कुर्यादित्याह **यदेति** । ब्राह्मणमे नियुञ्ज्यान्नान्यमिति नियमः ॥९॥

(५) **नन्दनः** । आपत्कल्पमाह **यदा स्वयं नेति** ॥९॥

(६) **रामचन्द्रः** । **नृपतिर्यदा स्वयं** वादिप्रतिवादिनोः कार्यनिर्णयं **न कुर्यात्तद विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने नियुञ्ज्यात्** ॥९॥

(८) **गोविन्दराजः** । **यदेति** । यदा कार्यान्तरव्याकुलतयात्मना व्यवहारेक्षणं राजा कुर्यात् तदा कार्यदर्शनार्थं विद्वांसं ब्राह्मणं नियुञ्जीत ॥९॥

**सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः ।**
**सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥ १० ॥**

(१) **मेधातिथिः** । **सभ्यैरिति** जातिविशेषानुपादानेऽप्युत्तरत्र विप्रग्रहणात् ब्राह्मणै सहेति च पूर्वत्र ब्राह्मणग्रहणाद् ब्राह्मणा एव विज्ञायन्ते । त्रिग्रहणं त्वेकद्वयोः प्रतिषेधार्थम् त्रिप्रभृतयस्त्विष्यन्त एव । साक्षिप्रकरणे चैतद्वक्ष्यामः । **सभामेव प्रविश्याग्र्यामिति** । राज स्थानापत्त्या **सभां प्रविश्य** स्थानासनेषु तद्धर्मेषु । पुनर्वचनं प्रदर्शनार्थं धर्मान्तरनिवृत्त्यर्थं व तेन राजस्थाने नोपविशति ॥१०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । सभ्यैः सभास्थैः अन्यैरपि त्रिभिर्वेदज्ञैः । सभां राज्ञः प्रविश्यैव न बहिरपि ॥१०॥

(३) **कुल्लूकः** । स ब्राह्मणोऽस्य राज्ञो द्रष्टव्यानि कार्याणि त्रिभिर्ब्राह्मणैः सभायां साधु भिर्धार्मिकैः कार्यदर्शनाभिज्ञैर्वृतस्तामेव सभां प्रविश्योपविश्य स्थितो वा न तु चंक्रम्यमाणः तस्य चित्तव्याक्षेपसंभवत्वात्तादृशऋणादानादीनि कार्याणि पश्येत् ।१०॥

(४) **राघवानन्दः** । तस्य प्रतिनिधेः कृत्यप्रकारमाह **सोस्येति** । सभ्यैः सभायां साधुभि ब्राह्मणैः । अग्र्यां श्रेष्ठाम् । आसीनादिपदद्वयम् । गुरुलघुकार्यपरं चक्रमणं प्रत्याचष्टे वा ॥१०॥

(६) **रामचन्द्रः** । सः ब्राह्मणः अस्य राज्ञः समैरेभिस्त्रिभिर्वृतः कार्याणि पश्येत् ॥१०॥

(८) **गोविन्दराजः** । **स इति** । स ब्राह्मणः सभायां साधुभिर्धार्मिकैर्ब्राह्मणैः युक्त

स्तामेव राजसभां श्रेष्ठां प्रविश्योपविष्टः स्थितो वा अस्य राज्ञो द्रष्टव्यान् व्यवहारान् संपश्येत् ॥१०॥

**यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः ।**
**राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान्ब्रह्मणस्तां सभां विदुः ॥ ११ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । उक्तं सभां प्रविश्य व्यवहारान्पश्येदिति । सभाशब्दश्च लोके गृहप्रासादविशेषे वर्तते "मयेन निर्मिता दिव्या सभा हेमपरिष्कृतेति"—क्वचित्पुरुषविशेषसंघटिता सभेति तन्निवृत्त्यर्थं सभाया लक्षणमाह । यत्र त्रयो ब्राह्मणा वेदविदः सन्निधीयन्ते, राज्ञश्च सम्बन्धी प्रकृतोऽधिकृतो विद्वानिति । अथवा प्रकृतोऽनन्तरश्लोके सन्निहितः । सेह सभाऽभिप्रेता । ब्रह्मग्रहणं स्तुत्यर्थम् । यथा ब्रह्मणः सभा निरवद्यैवमियमपीति ॥११॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । त्रयो वेदविदो वेदार्थविदः एकैकवेदस्यैकैकेनाध्ययनात् । प्रकृतोऽधिकृतः । सभां निर्णययोग्याम् ॥११॥

(३) **कुल्लूकः** । यस्मिन्स्थाने ऋग्यजुःसामवेदिनस्त्रयोपि ब्राह्मणा अवतिष्ठन्ते राज्ञाधिकृतश्च विद्वान्ब्राह्मण एव प्रकृतत्वादवतिष्ठते तां सभां चतुर्मुखसभामिव मन्यन्ते ॥११॥

(४) **राघवानन्दः** । सभामित्युक्तं तल्लक्षणमाह यस्मिन्निति । वेदविदः ऋग्यजुःसामविदः । राज्ञाऽधिकृतः प्राड्विवाकः । एतां स्तौति ब्रह्मण इति प्रजापतेः । तादृशीं विदुर्मन्वादयः ॥११॥

(५) **नन्दनः** । सभालक्षणमाह यस्मिन्देश इति ॥११॥

(६) **रामचन्द्रः** । सभास्वरूपमाह यस्मिन्निति । यस्मिन्देशे स्थाने त्रयो विप्राः निषीदन्ति उपविशंतीत्यर्थः । राज्ञः संमता राज्ञः स्वभावानुकारी ॥११॥

(७) **मणिरामः** । वेदत्रयवेदिनस्त्रयः चतुर्थो विद्वान् यत्राऽवतिष्ठते तां सभां चतुर्मुखसभामिव विदुः ॥११॥

(८) **गोविन्दराजः** । **यस्मिन्निति** । यस्मिन् स्थाने ऋग्यजुःसामपारगाः त्रयोऽपि ब्राह्मणा राजाधिकृतश्च विद्वानवतिष्ठते हिरण्यगर्भामिव तां सभां मन्यन्ते ॥११॥

**धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ।**
**शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥ १२ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **धर्मः** सत्यरूपः **विद्धो** गृहीतभेदः । **अधर्मेण** असत्येन । **तच्छल्यम्** असत्यम् । **न कृन्तन्ति** न छिन्दन्ति । **विद्धाः** पापविद्धाः ॥१२॥

(३) **कुल्लूकः** । भाः प्रकाशः तया सह वर्तत इति विद्वत्संहतिरेवात्र सभाशब्देनाभिमता । यत्र देशे **सभां** विद्वत्संहतिरूपां **धर्मः** सत्याभिधानजन्योऽनृताभिधानजन्येनाधर्मेण पीडित आगच्छति । अर्थिप्रत्यर्थिनोर्मध्ये एकस्य सत्याभिधानादपरस्य मृषावादात्ते च सभासदोऽस्य धर्मस्य पीडाकरत्वाच्छल्यमिवाधर्मं नोद्धरन्ति तदा त एव तेनाधर्मशल्येन विद्धा भवन्ति ॥१२॥

(४) **राघवानन्दः**। अप्रमत्तैः सभा प्रवेष्टव्येति विधास्यन्नाह **धर्मइति**। भाः प्रकाशः कृताकृतप्रकाशकविद्वत्संगतिरूपा तया सह वर्तमाना सभा। अतो यत्र देशे सत्याभिधानजः प्रकाशरूपो धर्मः अनृतप्रच्छादकतमोरूपाधर्मेण विद्धोऽभिभूतः सन् तादृशीं सभां उपतिष्ठते धर्मः। अतएव **शल्यं शल्यमिवाधर्मं** दुःखसामग्रीत्वात्। धर्मस्य **शल्यमिति वा** तं न **निकृन्तन्ति** नोद्धरन्ति। अतस्तेन **सभासद एव** विद्धास्तत्पापयुक्ता एवेति ॥१२॥

(५) **नन्दनः**। असम्यग्व्यवहारदर्शने सभ्यानां दोषमाह **धर्मेति**। यत्र देशेऽधर्मेण विद्धो निपीडितो धर्मस्तत्परिहारार्थं सभां सभ्यानुपतिष्ठन्ति **न कृन्तन्ति** न निर्हरन्ति **चेत्तत्र** देशे **स्थिताः सभासदो** निन्द्या भवन्ति ॥१२॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अस्य** कार्यार्थिनः **शल्यं** शल्यरूपं दुःखं **न कृन्तन्ति** न छिन्दन्ति **तत्र सभासदो विद्धा भवन्ति** पापेन युक्ता भवन्तीत्यर्थः ॥१२॥

(७) **मणिरामः**। **भाः** प्रकाशः तया सह वर्तत इति **सभेति** व्युत्पत्त्याऽत्र सभाशब्देन विद्वत्समुदायोऽभिधीयते। **सभां** विद्वत्समुदायरूपाम् **धर्मः** सत्यवचनजन्यः। **अधर्मेण** असत्यवचनोत्पन्नेन विद्धः. पीडितः। अस्य धर्मस्य पीडाकरत्वात् शल्यमिव अधर्मं नोद्धरति तदा सभासद एव तेनाधर्मशल्येन विद्धा भवन्तीत्यर्थः॥ तस्मात्सभायां सत्यमेव वक्तव्यं नासत्यमित्यभिप्रायः ॥१२॥

(८) **गोविन्दराजः**। यस्मिन् द्रष्टरि धर्मशास्त्रव्यवस्थाश्चाधर्मेण व्यवस्थायापीडितः सभां उपतिष्ठते यत्रावस्थानं कुरुते सभ्याश्च ब्राह्मणास्तस्य धर्मस्य शल्यमिव शल्यमधर्माख्यं नोद्धरन्ति तत्र तेनाधर्मशल्येन सभ्या विद्धा भवन्ति ॥१२॥

**सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम्।**
**अब्रुवन्विब्रुवन्वाऽपि नरो भवति किल्बिषी ॥ १३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अनेनार्थेन द्वयं विप्रतिषिध्यते। प्रतिपन्नाधिकारेण मिथ्यादर्शनं न कर्तव्यमन्येन च क्रियमाणं नोपेक्षणीयम्। तत्रोभयथा दोषः। **अब्रुवन्नन्येन** विपरीतेऽनुष्ठीयमाने तूष्णीमासीनो हस्तक्षेपेण वा शास्त्रन्यायविरुद्धं ब्रुवन्**किल्बिषी** पापभाग्भवति। तेन नैषा प्रत्याशा कर्तव्या—द्वितीयः प्राड्विवाको मिथ्या पश्यति, स एव योज्यते, अहं तूष्णींभूत उदासीनः किमित्येनसा योक्ष्य इति। सभाप्रवेशनिषेधेन चात्र व्यवहारदर्शनाधिकारप्रतिपत्तिः प्रतिषिध्यते। **सभा वा न प्रवेष्टव्येति**। व्यवहारदर्शनाधिकारो न प्रतिपादनीय इत्यर्थः। प्रतिपन्नश्चेत्समञ्जसं वक्तव्यम्। अनेन त्वनधिकृतस्यापि यदृच्छया सन्निहितस्य मिथ्यापश्यत्सु सभ्येषु विदुषस्तूष्णींभावं नेच्छन्ति। तथा च "नियुक्तो वाऽनियुक्तो वा धर्मज्ञो वक्तुमर्हति" (नारद. ३।२) अथ राजपुरुषपर्यनुयोग आशङ्क्यते किमित्यनधिकृतो ब्रवीति ततश्च तत्प्रदेशादपसर्तव्यम्। तदिदमुक्तं दुर्बलहिंसायां चाविमोचने शक्तश्चेदिति (गौतम सू. २१।१९) ॥१३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **विब्रुवन्** विपरीतं ब्रुवन् ॥१३॥

(३) **कुल्लूकः**। यत एवमतः सभामिति सभामवगम्य व्यवहारार्थं तत्प्रवेशो न **कर्तव्यः**। पृष्टश्चेत्तदा सत्यमेव वक्तव्यम्। अन्यथा तूष्णीमवतिष्ठमानो मृषा वा वदन्नुभयथापि सद्यः पापी भवति। **मेधातिथिना** तु 'सभा वा न प्रवेष्टव्या' इति ऋज्वेव पठितम् ॥१३॥

(४) **राघवानन्दः**। एवं सभामिति । ज्ञात्वा न प्रवेष्टव्यं दैवात्प्रविष्टेन समञ्जसमेव क्तव्यम् । **न प्रवेष्टव्या** सभावेति पाठो **मेधातिथेः** । **अब्रुवन्** लोभादिना ज्ञात्वा न जानामीति ष्णीं वा तिष्ठेत् । **विब्रुवन्** श्रुतदृष्टादन्यथा ब्रुवन् । **किल्बिषी** पापी ॥१३॥

(५) **नन्दनः**। सभायामधिकृतो न भवेद्वा अधिकृतश्चेद्वक्तव्यः **समञ्जसं** न्याय्यम् । **ब्रुवन्** असमञ्जसं ब्रुवन् ॥१३॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सभेति** । **समञ्जसं** सद्धर्मानुकूलं **अब्रुवन्मौनं** कुर्वन् **विब्रुवन्** अथ रुद्धं ब्रुवन् **नरः किल्बिषी भवति** ॥१३॥

(७) **मणिरामः**। समञ्जसं सत्यं अब्रुवन् जानन् पृष्टः तूष्णीं तिष्ठन् । **विब्रुवन्** षा वदन् ॥१३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सभा वा न प्रवेष्टव्येति** । व्यवहारदर्शनार्थं सभा न वेष्टव्या । प्रविष्टश्चेत्तदा सत्यं वक्तव्यम् । अथवा तूष्णीमासीनो विरुद्धं वा ब्रुवन् सभ्य व एनस्वी भवति ॥१३॥

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ १४ ॥

(१) **मेधातिथिः**। धर्मः शास्त्रन्यायदेशनियता व्यवस्था । सा चेदधर्मेण तद्व्यति-रूपेण **हन्यते** विनाश्यतेऽर्थिना प्रत्यर्थिना वा । तथा **सत्यमनृतेन** साक्षिभिर्हन्यते । प्राड्-वाकादयश्च प्रेक्षन्ते न तत्त्वमुद्धरन्ति ततस्ते **हताः** शवतुल्या भवन्तीति निन्द्यन्ते । तस्मान्नार्थि-र्थिनौ विपरीतमाचरन्तौ सभासद्भिरुपेक्ष्यौ, साक्षिणश्च । धर्माधर्मग्रहणेन सत्यानृतग्रहणेन सिद्धं श्लोकपूरणमुभयोरुपादानम् । अतो विषयभेदेन व्याख्यातम् ॥१४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यत एव **सत्यमनृतेन हन्यते**ऽत एव **धर्मोऽधर्मरूपेण** तत्र यते ॥१४॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्यां सभायामर्थिप्रत्यर्थिभ्यामधर्मेण धर्मो न दृश्यते । यत्र च क्षिभिः सत्यमनृतेन नाश्यते । सभासदां प्रेक्षमाणानां तानादृत्य ते प्रतीकारक्षमा न न्तीत्यर्थः। 'षष्ठी चानादरे' (पा. २।३।३८) इत्यनेन षष्ठी । तत्र त एव सभासदस्तेन पापेन ा भवन्ति ॥१४॥

(४) **राघवानन्दः**। 'सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति' श्रुतिमाश्रित्य धर्मपदं स्वकारणं यं लक्षयतीति स्पष्टयन्धर्मरक्षणं सार्थवादं विधत्ते **यत्रेति चतुर्भिः**। अर्थिप्रत्यर्थिभ्यामधर्मेण र्मो नाश्यते यत्र वा **सत्यं** साक्षिभिरनृतेन नाश्यत इति प्रेक्षमाणानां 'षष्ठीचानादर' ते षष्ठी । तान् प्रतिकाराक्षमान् अनादृत्येत्यर्थः। **तेन** पापेन **हताः** हतप्रायाः ॥१४॥

(५) **नन्दनः**। कैश्चित्सभ्यैर्द्धर्मे हन्यमाने केषांचित्सभ्यानामुपेक्षमाणानां दोषमाह **र धर्मो हीति यत्र हन्यते** कैश्चित्सभासद्भिर्धर्मेण पीड्यते प्रेक्षमाणानां केषांचित्सभासदां नादरे षष्ठी' प्रेक्षमाणास्ते **सभासदो हताः स्युः** ॥१४॥

(६) **रामचन्द्रः**। किं प्रेक्ष्यमाणानां पापदर्शिनां पश्यतामधर्मेण **धर्मः हन्यते तत्र रासदः हता ज्ञेयाः** ॥१४॥

(७) **मणिरामः** । **प्रेक्षमाणानामित्यनादरे** द्वितीयार्थे षष्ठी ज्ञेया । तथा च प्रेक्षमाणान्सभासदः अनादृत्य यत्र यस्यां सभायाम् । अर्थिप्रत्यर्थिभ्यामधर्मेण **धर्मः हन्यते** । यत्र च साक्षिभिः असत्येन सत्यं हन्यते **सभासदः** प्रतीकारक्षमा न भवन्ति **तत्र** त एव सभासदः तेन पापेन हता भवन्तीत्यर्थः ॥१४॥

(८) **गोविन्दराजः** । **यत्रेति** । यस्यां सभायां सभावस्थितानां प्राड्विवाकवादीनां प्रेक्षमाणानां वादिना प्रतिवादिना वा धर्मो बाध्यते । यत्र च साक्षिभिः सत्यमनृतेन बाध्यते तत्र ते प्राड्विवाकादयः सभासदः पापेन हता भवन्ति । तस्मान्न चापि प्रतिवादिना साक्षिकृतो व्यतिक्रमो रक्षणीयः ॥१४॥

**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।**
**तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत् ॥ १५॥**

(१) **मेधातिथिः** । न भयादन्यथा दर्शनं कर्तव्यं यतो **धर्मो** व्यतिक्रान्तः सन् **हन्ति** इत्यर्थः । प्रत्यर्थी तत्सहायो राजा वा । तथा धर्म एव पालितः सर्वतो भयमपनुदति नापकर्तुमर्थ्यादयः क्रुद्धाः शक्नुवन्ति । तस्मादेवं जानानः सुखदुःखे धर्माधीने इति **धर्मो न हन्तव्यः** इति । यदि वयं धर्मं हन्मस्तदा सोऽस्मान्सर्प इव रोषितः प्रतिहन्तीत्यतो **धर्मो हतः** सन्मास्मान्**वधीदि**त्यात्मपरित्राणार्थं धर्मो रक्षितव्यः ॥१५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । हतो हन्यमानः । **मा वधीदिति पूरणीयम्** ॥१५॥

(३) **कुल्लूकः** । यस्माद्धर्म एवातिक्रान्त इष्टानिष्टाभ्यां सह नाशयति नार्थिप्रत्यर्थ्यादिः । स एव नातिक्रान्तस्ताभ्यां सह रक्षति । तस्माद्धर्मो नातिक्रमणीयः । माऽस्मान् त्वत्सहितानतिक्रान्तो धर्मो वधीदिति सभ्यानामुत्पथप्रवृत्तस्य प्राड्विवाकस्य संबोधनमिदम् । अथवा नो निषेधेऽव्ययम् नो हतो धर्मो मा वधीत् न हन्त्येवेत्यभिप्रायः ॥१५॥

(४) **राघवानन्दः** । धर्मस्य हननाद्रक्षणमेव पथ्यमित्याह **धर्म इति** । **धर्मो न हन्तव्योऽ** स्माभिः **यतः नः** अस्मान् **हतः अधर्मेण प्रतिबद्धः मा वधीत्** मा हिंस्यादित्यन्वयः । अन्यथा धर्मस्य हननाभावाद्धतो वा कथं हन्यादिति भावः ॥१५॥

(५) **नन्दनः** । कथं धर्मे हन्यमाने सभासदो हन्यन्त इत्याह **धर्म एव हत इति** यैर्धर्मो हतस्तान्धर्मो हन्त्येव । हे महर्षयः । मा नो स्वान्धर्मो वधीत् ॥१५॥

(६) **रामचन्द्रः** । धर्म एव पुरुषं हन्ति । हतो धर्मः नः अस्माकमवधीत् ॥१५॥

(७) **मणिरामः** । उत्पथप्रवृत्तस्य प्राड्विवाक् मार्गा . . . ननार्थं सभासदान् वचनमाह ॥ **धर्म इत्यादि** । नः अस्मान् त्वत्सहितान् **धर्मः हतः** नाशितः सन् मा अवधीत् । तस्माद्धर्मो न हन्तव्य इत्यर्थः ॥१५॥

(८) **गोविन्दराजः** । **धर्म इति** । तस्माद्धर्म एव व्यतिक्रान्तो दृष्टादृष्टाभ्यां नाशयति । नार्थिप्रत्यर्थ्यादि । स एव चानतिक्रान्ततया रक्षति तस्माद्धर्मो नातिक्रमणीयः मास्माकं त्वत्सहितानां धर्मो व्यतिक्रान्तो दृष्टादृष्टार्थं नाशं कार्षीदिति । सभ्यैरसत्प्रवृत्तः प्राड्विवाकः संबोधनीयः ॥१५॥

**वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।**
**वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। वृषलशब्दनिर्वचनेन मिथ्यादर्शी निन्द्यते। न जातिवृषलो वृषलः। किं तर्हि, यो वृषस्य कामवर्षिणो धर्मस्यालंकुरुते। निवृत्तिवचनोऽलंशब्दः। स वृषल इत्येतमर्थं **देवाः प्रतिपन्नाः**। मनुष्यास्तु यदि जातिशब्दमेव मन्यन्ते कामं मन्यन्तां प्रमाणतरास्तु देवाः। ते चानेन प्रवृत्तिनिमित्तेन वृषलशब्दप्रयोगं मन्यन्ते। देवग्रहणमर्थवादः। तस्माच्छ्राद्धकाले वृषलैर्न प्राप्तव्यम्। "हन्तव्यो वृषलश्चौर" इत्याद्यासु क्रियासु मिथ्यादर्शी ब्राह्मण एव वृषलशब्देन ग्रहीतव्य इति। अतो वृषलत्वं मा प्रापमिति **धर्मं न लोपयेन्न** नाशयेदिति वृषलत्वाध्यारोपो निन्दा ॥१६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **वृषो** धर्म इष्टार्थवर्षणात्। **अलं** व्यर्थत्वं निषेधं वा। **वृषलं तं विदुरतः** सोपि शूद्रादिवृषलवन्निन्द्यः ।१६॥

(३) **कुल्लूकः**। कामान्वर्षतीति **वृषः** 'वृष'शब्देन धर्म एवाभिधीयत इति। **'अलं'** शब्दो वारणार्थः। यस्माद्धर्मस्य यो वारणं करोति **तं देवा वृषलं जानन्ति** न जातिवृषलम्। **तस्माद्धर्मं** नोच्छिद्यादिति धर्मव्यतिक्रमखण्डनार्थं 'वृषल'शब्दार्थनिर्वचनम् ॥१६॥

(४) **राघवानन्दः**। धर्मस्यारक्षणे किं स्यात्तत्राह **वृषेति**। वृषः प्रवर्षत्यर्थकाममोक्षानिति। **अलं शब्दो** वारणार्थः। तेन धर्मस्य वारणात्तं वृषलं शूद्रं गवाशिचण्डालं वा विद्यादित्यन्वयः ॥१६॥

(५) **नन्दनः**। सम्यग्व्यवहारादर्शिनां शूद्रसमत्वम् वृषलशब्दनिर्वचनेनाह **वृषो हि भगवानिति**। हि हेतौ तस्माद्धर्मं लोपयेदिति ॥१६॥

(६) **रामचन्द्रः**। **तस्य** धर्मस्य **यः अलं** निवारणं लोपम् ॥१६॥

(७) **मणिरामः**। अलं निवारणम् ॥१६॥

(८) **गोविन्दराजः**। **वृष इति**। तस्मात्सकलकामवर्णानां वृषशब्देन धर्म उच्यते। तस्य व्याहरणं कुरुते। तं देवा वृषलं मन्यन्ते न जातिवृषलं तस्माद्धर्मं नोच्छिन्द्यादिति धर्मव्यतिक्रमपरिहारार्थं वृषलवचनम् ॥१६॥

**एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।**
**शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ १७॥**

(१) **मेधातिथिः**। भयाद्धर्मातिक्रमो न कर्तव्य इत्येतत् "धर्म एव हतो हन्ति" इत्यनेनोपदिष्टम्। स्नेहतो न कर्तव्य इत्यनेनोपदिश्यते। यत **एकः सुहृद्धर्मस्तत्र** स्नेहो भावनीयः। अन्योऽपि मनुष्यः सुहृत् कार्यमपेक्ष्य जहाति जीवन्तम्। योऽपि स्यादत्यन्तमित्रं तस्यापि सौहार्दमानिधनात्। धर्मस्तु मृतमपि पुरुषमन्वेत्यतो न सुहृदपेक्षया मिथ्यादर्शनमुपेक्षा वा कर्तव्या

"भार्या पुत्रो मित्रमर्थाश्च रिक्थं नश्यन्त्येते देहनाशे नरस्य ।
धर्मस्त्वेको नैनमुज्झत्यजस्रं तस्माज्जह्यात्पुत्रदारान् न धर्मम् ॥"

**यदन्यद्धर्माद्भार्यादि तत्सर्वं शरीरेण समं** सह **नाशं गच्छति**। धर्मादन्यो मृतं न परित्रातुं कश्चित्समर्थ इत्यतः सुहृद्बान्धवानुरोधादपि धर्मो न हातव्यः ॥१७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनुयाति न त्यजति ॥१७॥

(३) **कुल्लूकः**। धर्म एवैको मित्रं यो मरणेऽप्यभीष्टफलदानार्थमनुगच्छति यस्मादन्यत्सर्वं भार्यापुत्रादि शरीरेणैव सहादर्शनं गच्छति। तस्मात्पुत्रादिस्नेहापेक्षयापि धर्मो न हातव्यः ॥१७॥

(४) **राघवानन्दः**। अहो सर्वप्रयत्नेन धर्मो रक्षणीय इत्याह **एक इति**। सुहृत् प्रत्युपकारं नापेक्षतेऽथवोपकरोति अत एव ज्ञायते। धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये इति॥ अहो कष्टं यदेतादृशं धर्मं जना न पालयन्तीत्याह **शरीरेणेति स्थूलेन**। प्रत्यक्षं ह्येतत्सर्वं धनजायादि तदुक्तम्—

भार्या पुत्रो मित्रमर्था विचित्रा नश्यन्त्येते देहनाशे नरस्य।
धर्मस्त्वेको नैनमुज्झत्यजस्रं तस्माज्जह्यात्पुत्रदारं न धर्ममिति ॥१७॥

(५) **नन्दनः**। कुतश्च धर्मं न लोपयेदित्याह **एक एवेति**। अनुयाति कर्तारं रक्षति। यद्यमादिति यावत्। अन्यत्पुत्रमित्रादिकर्म। हिशब्दो हेतौ तस्मान्न लोपयेदिति ॥१७॥

(६) **रामचन्द्रः**। **एक एव** धर्मः सुहृद्रूपः यः निधने मरणे अनुयाति अनु पश्चाद्गच्छति। अन्यत्तु सर्वं शरीरेण समं नाशं गच्छति ॥१७॥

(७) **मणिरामः**। धर्म **एव एकः** सुहृत् मित्रं यः मरणेपि अभीष्टफलदानार्थमनुगच्छति। हि यस्मात् अन्यत् सर्वं भार्यापुत्रादि शरीरेण समं नाशमदर्शनं गच्छति। तस्मात्पुत्रादिभ्योपि धर्मे स्नेहाधिक्यं कर्तव्यम् ॥१७॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एक इति**। तस्मादन्यत्सर्वं भार्यापुत्रमित्रादि शरीरेणैव सह नाशं गच्छति न धर्मवत् त्राणार्थं किञ्चिदपि पश्चादन्वेति तस्मात्सुहृद् धर्मो न हातव्यः ॥१७॥

**पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति।**
**पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति ॥ १८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। न चैषा मनीषा कर्तव्या—"अर्थिना प्रत्यर्थिना वाऽन्यतरस्य भूम्याद्यपहियते स एव भूम्यपहारदोषभाग्भविष्यति। वयं तु तदकारिणः किमिति दोषवन्तः स्याम"—यतस्तत्पापं चतुर्धा विभज्यते। अर्थवादश्चायम्। न ह्यन्यकृतस्यैनसोऽन्यत्र गमनमस्ति। तेषामपि मिथ्यादर्शननिषेधातिक्रमादुत्पद्यते पापं मिथ्यालम्बनं, राज्ञः स्वयमपश्यतोऽप्यधिकृतराजस्थानीयादिदोषाद्दोषवत्त्वम्। यदि वा राजाधिकृतो मिथ्याचरितेन ज्ञापितः पराजितं दुष्टं न निगृह्णीते, न च पुनः सम्यक् निर्णयं करोति, ततः सोऽपि पापभाग्भवति। अधिकृतोपलक्षणार्थं वा राजग्रहणम्। यदा राजा स्वयं मिथ्या पश्यति तदा दुष्यति। यदा राजस्थानीयस्तदा तस्य दोष इत्यर्थः ॥१८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अधर्मस्य कृतस्य पादो यावता भवति तावद्भागः कर्तारं मिथ्याशाद्धिमृच्छति याति। एवमुत्तरत्र ।१८॥

**राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः ।।**
**एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ।। १९ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । एष एवार्थो विपर्ययेणोच्यते । यत्र दोषवान् दोषं गोपयितुं न लभते प्रकटीक्रियते तदीयो दोषस्तत्र सर्वं साधु संपद्यत इति । 'यत्र धर्म इत्यत आरभ्य मिथ्यादर्शनोपेक्षणप्रतिषेधार्थं निन्दाप्रशंसाभ्यां शुभाशुभफलदर्शनार्थो अर्थवादाः ।।१९।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **मुच्यन्ते** । मुच्यन्ते चेति चकारात्साक्षिणोऽपि ।।१९।।

(३) **कुल्लूकः** । यस्यां पुनः सभायामसत्यवादी **निन्दार्होऽर्थी** प्रत्यर्थी वा सम्यक् न्यायदर्शनेन विद्यते **तत्र राजा** निष्पापो भवति । **सभासदश्च** पापेन न संबध्यन्ते । अर्थ्यादिकमेव कर्तारं पापमुपैति ।।१९।।

(४) **राघवानन्दः** । तत्प्रतीकारमाह **राजेति** । **निन्द्यते** राजसभासदैर्यस्तन्निन्दनमेव तेषां प्रायश्चित्तम् । राजा **अनेना** पापान्मुक्तः । राजेति साक्षिसभासदानामुपलक्षणम् । **एनः** पापं कर्तर्येव स्यादिति भावः ।।१९।।

(५) **नन्दनः** । तत्रायं परिहार इत्याह **राजेति** । ये मुच्यन्ते एनसा यत्र सभायाम् ।।१९।।

(६) **रामचन्द्रः** । न एनः यस्यास्तीति **अनेनाः** । **राजा भवति** । नयार्थः **यत्र निन्द्यते** ।।१९।।

(७) **मणिरामः** । सम्यग्व्यवहारदर्शनफलमाह । **राजेति** । **अनेनाः** निष्पापाः ।।१९।।

(८) **गोविन्दराजः** । **राजेति** । यत्र पुनः सभायां असद्वादित्वादर्थी प्रत्यर्थी वा सम्यग्दर्शनेन कुत्स्यते तत्र राजाऽपापो भवति सभासदश्च पापेन न सम्बध्यन्ते चार्थादिकर्तारमेव गच्छति ।। ।।१९।।

**जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद्ब्राह्मणब्रुवः ।।**
**धर्मप्रवक्ता नृपतेर्नतु शूद्रः कथंचन ।। २० ।।**

(१) **मेधातिथिः** । उक्तं ब्राह्मणैः सह धर्मनिर्णयं कुर्यान्त्रिभिश्च मन्त्रज्ञैः तत्र मन्त्रिणाञ्जातेरविशेषितत्वाच्छूद्रा अपि सभां प्रविष्टा मन्त्रित्वादनुज्ञातव्यवहारनिर्णयास्तद्गतां धर्मव्यवस्थां कथंचित् संस्कृतबुद्धयो ब्रूयुः न च सर्वत्र व्यवहारं कृतबुद्धयो ब्रूयुः न च सर्वत्र व्यवहारे स्मृतिशास्त्रपरिज्ञानमुपयुज्यते येन तदभावादर्थलुप्तत्वादनर्थकः शूद्रप्रतिषेध आशङ्क्येत तथा हि जयपराजयकारणानि लौकिकप्रमाणवेद्यान्येव साक्ष्यादीनि अयं साक्षी धार्मिको न चैतस्य केनचित्संबन्धेन संबन्धी अयं त्वसाक्ष्यसकृत्दृष्टव्यभिचारत्वादित्येवमादिशक्यते व्युत्पन्नबुद्धिना स्वयमुत्प्रेक्षितुं न स्मृतिशास्त्रैकगोचर अतः प्राप्तस्य प्रतिषेधोऽयं न च मन्त्रित्वे पुरोहितवज्जातिनियमः तथाहि तैः सार्धं चिन्तयेदित्युक्त्वा ततो ब्राह्मणेन सह चिन्तयेदिति तेनायमर्थो यद्यपि कथंचिच्छूद्रो न्यायलेशांशमधिगच्छेत्तथापि राजाधिकरणे विवदतो मन्त्री निग्रहाधिकृतो वा न किंचित्प्रब्रूयात् पूर्वश्लोकार्थप्रतिषेधः शेषतया व्याख्येयः ।

नहि जातिमात्रोपजीविनो वैदुष्यादिगुणरहितस्य धर्मप्रवक्तृत्वनियोगः शक्यो वक्तुं तस्यैव रूपपरीक्षायां तस्माद्विषं भक्षयमाचास्य गृहे भुंक्था इतिवत्प्रतिषेधशेषभूतमिदमनुज्ञानं न पुनरनुज्ञानमेव अत एव कामभित्याह कामशब्दप्रयोगे विधित्वं व्याहन्यते। अन्ये तु ब्रुवते। ब्राह्मणस्य प्रवक्तृत्वविधानात्तदा नियोज्यो विद्वान्स्याद् ब्राह्मण इति क्षत्रियादयस्तत्रापि वर्णा निषिद्धास्तत्रेह पुनः शूद्रप्रतिषेधो विद्वद्ब्राह्मणाभावे क्षत्रियवैश्ययोरभ्यनुज्ञानार्थ इति शेषं समानं जातिमात्रमुपजीवतीति मात्रशब्दोऽवधारणे ब्राह्मणजातिमेव केवलमुपाश्रित्य जीवति नाध्ययनादीन् गुणविशेषान्निर्गुणत्वात्। ब्रुवशब्दः कुत्सायां ॥२०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। जातिमात्रोपजीवी जात्या ब्राह्मणः संस्कारहितः स एव संस्कृतोऽनध्येता ब्राह्मणब्रुवः। नतु शूद्र इति ब्राह्मणब्रुवस्याप्यसंभवे क्षत्रियवैश्यावपि स्यातामित्यर्थम् ॥२०॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणजातिमात्रं यस्य विद्यते नतु ब्राह्मणकर्मानुष्ठानं वणिगादिवत्साक्ष्यादिद्वारेण स्फुटन्यायान्यायनिरूपणक्षमो ब्राह्मणजातिरपि वा यस्य संदिग्धार्थानां ब्राह्मणं ब्रवीति स वरं उक्तयोग्यब्राह्मणाभावे च क्वचित्कार्यदर्शने नृपतेर्भवेन्नतु धार्मिकोऽपि व्यवहारज्ञोऽपि शूद्रः। ब्राह्मणो धर्मप्रवक्तेति विधानादेव शूद्रनिवृत्तिः सिद्धा पुनर्नंतु शूद्र इति शूद्रनिषेधो योग्यब्राह्मणाभावे क्षत्रियवैश्ययोरभ्यनुज्ञानार्थ अत एव कात्यायनः। 'यत्र विप्रो न विद्वान् स्यात् क्षत्रियं तत्र योजयेत्। वैश्यं वा धर्मशास्त्रज्ञं शूद्रं यत्नेन वर्जयेत्' ॥२०॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तगुणवद्विप्रालाभे तादृक् शूद्रोऽपि सभ्यः स्यादितिमन्वानं सार्थवादं प्रत्याह जातीति द्वाभ्याम्। 'ब्राह्मणो यत्र न स्यात्तु क्षत्रियं तत्र योजयेत्। वैश्यं वा धर्मशास्त्रज्ञं शूद्रं यत्नेन वर्जयेत्' इति कात्यायनोक्तेः॥ जातिमात्रोपजीवी जात्या ब्राह्मणो न तु कर्मणा जातिसंदेहेऽपि ब्राह्मणोऽहमिति ब्रवीतीति ब्राह्मणब्रुवः। सोऽपि धर्मप्रवक्ता अनेन जितमनेन नेति विचारकः। ॥२०॥

(५) **नन्दनः**। एवं तावद् व्यवहारदर्शने ब्राह्मणस्याधिकारित्वं तस्यासम्यग्दर्शने दोषश्च प्रतिपादितः। इदानीं ब्राह्मणाभावे क्षत्रियादयो व्यवहारदर्शनेऽधिकर्तव्या इति चेत्तत्राह जातिमात्रोपजीवी वेति। **कथञ्चन** आपद्यपि। शूद्रस्यैव निषेधात् क्षत्रियवैश्ययोरापद्यनुज्ञा गम्यते ॥२०॥

(६) **रामचन्द्रः**। नृपतेर्धर्मप्रवक्ता जातिमात्रोपजीवी संस्काररहितः ब्राह्मणः कामं अतिशयेन स्यात्। ब्राह्मणब्रुवः संस्कारसहितो वा धर्मप्रवक्ता स्यात्। नतु शूद्रः कथंचन ॥२०॥

(७) **मणिरामः**। यो **जातिमात्रेण** ब्राह्मणो न तु तत्कर्मकर्ता **जातिमात्रोपजीवी**। ब्राह्मणकर्माऽकरणेन ब्राह्मणजातिसंदेहे ब्राह्मणोऽहमिति यो ब्रूते स **ब्राह्मणब्रुवः**। उक्तलक्षणब्राह्मणाभावे एतादृशोऽपि नृपतेर्**धर्मवक्ता** भवेन्नतु **शूद्रः**। ॥२०॥

(८) **गोविन्दराजः**। **जातिमात्रोपजीवीति**। केवलं ब्राह्मणजातिमात्रं यस्य तेन ब्राह्मणधर्मानुसारेण स तु ब्राह्मणोऽस्य राज्ञो विद्वद्ब्राह्मणाभावे व्यवस्थानं धर्मस्य प्रवक्ता-

धिकृतः स्यात् न कदाचित् शूद्र इति। तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणमित्यनेनैव सिद्धे शूद्रप्रतिषेधे पुनर्वचनं क्षत्रियवैश्यानियोजनाच्छूद्रनियोजनस्य निषेधः।

**यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम् ॥**
**तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव पश्यतः ॥ २१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वविधिशेषोऽयमर्थवादः। **यस्य राज्ञः शूद्रो धर्मविवेचनं** धर्मनिर्णयं करोति **तस्य सीदति** नश्यति **राष्ट्रं** प्रजाः कर्दमे **गौरिव** ॥२१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **पश्यतो राज्ञः**। ॥२१॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्मात् **यस्येत्यादि यस्य** राज्ञो **धर्मविवेचनं शूद्रः कुरुते तस्य पश्यत एव पङ्के गौरिव तद्राष्ट्रमवसन्नं** भवति ॥२१॥

(४) **राघवानन्दः**। शूद्रकृते विचारे दृष्टदोषमाह **यस्येति**। पश्यतो राज्ञः रक्षकस्यापीत्यानादरे षष्ठी। तृणाद्यलाभेन यथा पङ्कस्था गौः सीदत्येवं शूद्रविचारजधर्मेण राज्यं नश्यतीति भावः। ॥२१॥

(५) **नन्दनः**। शूद्राधिकारे कोऽनर्थ इति चेत्तत्राह **यस्य शूद्रः प्रकुरुत इति** ॥२१॥

(६) **रामचन्द्रः**। यस्य राज्ञः **धर्मप्रवचनं** धर्मनिर्णयं **शूद्रः कुरुते** ॥२१॥

(७) **मणिरामः**। शूद्रे धर्मप्रवक्तरि फलमाह। **यस्येति** ॥२१॥ २२॥

(८) **गोविन्दराजः**। यस्मात् **यस्येति**। यस्य राज्ञः शूद्रो धर्मविचारं कुरुते तस्य पश्यत एव कर्दम इव गौः तद्राष्ट्रमवसीदति ॥२१॥

**यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम् ॥**
**विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥ २२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अयमपि पूर्ववदर्थवाद एव। प्रकरणाच्च शूद्रभूयिष्ठता विवादनिर्णये तु शूद्रविषया द्रष्टव्या। यत्र शूद्रा भूयांसो विवादनिर्णयकारास्तद्**राष्ट्रमाशु विनश्यति** दुर्भिक्षव्याधिपीडाभिः राष्ट्रनाशे च राष्ट्रपतेर्नाश इत्युक्तम्। **नास्तिकाक्रान्तमिति** दृष्टान्तः। यथा नास्तिकैः परलोकापवादिभिर्लोकायतिकाद्यैराक्रान्तमधिष्ठित**मद्विजम्**। न हि नास्तिकानां ब्राह्मणादिभेदो यथार्थः संकीर्णत्वात्। तदुक्तं वैद्यवणिग्व्यपदेशादिवद्ब्राह्मणादयः। यत्र वा धर्मसंकटे तु न द्विजाः प्रमाणीक्रियन्ते **तदद्विजम्** ॥२२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शूद्रभूयिष्ठमित्यादि त्रयं पृथक् पृथक् ॥२२॥

(३) **कुल्लूकः**। **यद्राष्टं शूद्रबहुलं** बहुलपरलोकाभाववाद्याक्रान्तं द्विजशून्यं तत्सर्वं दुर्भिक्षरोगपीडितं तच्छीघ्रं **विनश्यति** 'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगि'त्यस्याभावेन वृष्टिविरहात्। उपजातदुर्भिक्षरोगाद्युपसर्गशांत्यर्थकर्माभावाच्च ॥२२॥

(४) **राघवानन्दः**। अत्रैव प्रासंगिकमाह **यदिति**। **अद्विजं** द्विजशून्यम्। शूद्रबाहुल्यतोऽपि यदि नास्तिकास्तैराक्रान्तं तथापि नश्यतीत्यन्वयः ॥२२॥

(५) **नन्दनः**। न केवलं व्यवहारदर्शन एव। शूद्राधिकाराद्राष्ट्रावसादः किन्तु अन्यत्रापि तदाधिकारप्राधान्यादिति प्रसङ्गादाह **यद्राष्ट्रमिति**। **शूद्रभूयिष्ठं** शूद्राधिकारप्रधानं अत एव **नास्तिकाक्रान्तमत एवाद्विजम्** ॥२२॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यदिति**। यद्राष्ट्रं शूद्रबहुलं परलोकायतिकाक्रान्तं अविद्यमानद्विजं तत्सर्वं दुर्भिक्षव्याधिपीडितं भूत्वा विनश्यति। अग्नौ प्रास्तेत्येतदभावाच्छास्त्यर्थयागाद्यभावाच्च ॥२२॥

**धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः ॥**
**प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत ॥२३॥**

(१) **मेधातिथिः**। धर्मः प्रधानः यस्मिन्नासने भवति **तद्धर्मासनम्**। राजासने हि राज्यस्थित्यानुगुण्येनार्थमेव प्रधानीकरोति न्यक्कृत्यापि धर्मम्। व्यवहारनिर्णये तु धर्ममेव प्रधानमाश्रयेदित्यर्थः, न पुनराश्रयभेदोऽनेन ज्ञाप्यते। **संवीताङ्गः** वस्त्रादिना स्थगितशरीरः। **प्रणम्य लोकपालेभ्य** इन्द्राद्यष्टौ लोकपालास्तान्नमस्कृत्य **कार्यदर्शनमारभेते**त्यदृष्टार्थमेतद्वयं व्यङ्गसंवरणं लोकपालप्रणामश्च। **समाहितः** अनन्यचित्तः कार्यदर्शने। एवं हि दृष्टार्थं भवति। प्रणामविशेषणम्। वा समाहितग्रहणम्। यद्यप्यत्र किंचिदुक्तमेव प्रतिभाति तथापि पद्यग्रन्थत्वान्नातीव पौनरुक्त्यम्। **लोकपालेभ्य** इति चतुर्थी संप्रदाने। **कथम्?** क्रियाग्रहणं संप्रदानसूत्रे चोदितं 'श्राद्धाय निगृह्णुते' 'पत्ये शेत' इत्याद्यर्थं। न च क्रियाग्रहणं गृह्णात्यादिविषयमेव भाष्येऽनुक्तत्वात् ॥२३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। धर्मार्थमासनं **धर्मासनम्** ॥२३॥

(३) **कुल्लूकः**। **धर्म**दर्शनार्थं**मासन** उपविश्याऽऽच्छादितदेहोऽनन्यमना लोकपालेभ्यः प्रणामं कृत्वा **कार्यदर्शनमनुतिष्ठेत्** ॥२३॥

(४) **राघवानन्दः**। सभारुढः कथं व्यवहरेदित्याह **धर्मेति द्वाभ्याम्**। **धर्मासनं** धर्मादिनिर्णयार्थमास्यतेऽत्रेति सभा तां आसीनः संस्थित इत्युक्तत्वात्। **समाहितो**ऽनन्यमनाः। **कार्य**मुक्ताष्टादशाख्यं तस्य दर्शनं विचारः ॥२३॥

(५) **नन्दनः**। इदानीं व्यवहारदर्शिना राज्ञा कर्तव्यमाह **धर्मासनमधिष्ठायेति**। उत्तरीयेण संवीताङ्गः ॥२३॥

(६) **रामचन्द्रः**। **संवीताङ्गः** संकुचिकी भवत्येव ॥२३॥

(७) **मणिरामः**। **संवीताङ्गः** आच्छादितदेहः। **समाहितः** अनन्यमनाः ॥२३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **धर्मासनमिति**। **प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमाचरेत्**। धर्मदर्शनार्थं आसने उपविश्याच्छादितदेहोऽनन्यमना लोकपालान्नमस्कृत्य ततो व्यवहारेक्षणं राजा चरेत् ॥२३॥

**अर्थानर्थावुभौ बुद्धवा धर्माधर्मौ च केवलौ ।।**
**वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ।।२४।।**

(१) **मेधातिथिः**। **धर्माधर्मविव** केवला**वर्थानर्थौ** न गोहिरण्यादिलाभोऽर्थस्तद्विपर्ययो वाऽनर्थः। किं तर्हि ? धर्म एवार्थोऽनर्थश्चाधर्म इति **बुद्ध्वा** हृदि निश्चित्य **कार्याणि पश्येत्**। अथवाऽर्थानर्थावपि बोधव्यौ धर्माधर्मावपि। धर्मस्य सारता बोधव्याऽर्थस्य फल्गुता अथवा यत्र महाननर्थः स्वल्पश्चाधर्मस्तत्रानर्थं परिहरेत्। शक्यो हि महत्यर्थे नेषदधर्मो दानप्रायश्चित्तादिना निराकर्तुम्। सन्निपाते च व्यवहारिणां बहूनां वर्णक्रम आश्रयितव्यः। एष च दर्शने क्रमो वर्णानां यदा सर्वेषां तुल्यपीडा भवति। यदा त्ववरवर्णस्याप्यात्यायिकं कार्यं महद्वा तदा 'यस्य चात्ययिका पीडा' इत्यनेन न्यायेन तदेव प्रथमं पश्येत् न क्रममाद्रियेत। राज्यस्थित्यर्थो हि व्यवहारनिर्णय इत्युक्तमतो न यथाश्रुतमाश्रयणीयम् ।।२४।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अर्थः** प्रयोजनं यस्य तस्यार्थित्वं **अनर्थाल्लाभो** यस्य तस्य प्रत्यर्थित्वं मात्राधिको नात्रेति बुद्ध्वा धार्मिकस्य कार्यं प्रथमं द्रष्टव्यम्। अधर्मो धर्माभावमात्रम् केवलावसंकीर्णो वर्णक्रमेणेति च ब्राह्मणस्य दृष्टा ततो राजन्यस्येत्यादि एतदभावे धार्मिकत्वेन व्यवस्था। तस्याप्यभावेऽर्थित्वेन ।।२४।।

(३) **कुल्लूकः**। प्रजारक्षणेच्छेदाद्यात्मकावै**दिकावर्थानर्थौ बुद्ध्वा** परलोकार्थं **धर्माधर्मौ केवला**वनुरुध्य यथा विरोधो न भवति तथा **कार्यिणां** कार्याणि पश्येत्। बहुवर्णमेलके तु ब्राह्मणादिक्रमेण पश्येत् ।।२४।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्र च **अर्थानर्थौ** प्रजारक्षणोत्सादनात्मकौ ऐहिकामुष्मिकावर्थानर्थौ वा बुद्ध्वा। परलोकार्थं **धर्माधर्मावविवेक्ष्य वर्णक्रमेण** चातुर्वर्ण्योपस्थितविरोधे ब्राह्मणादिक्रमेण दृष्टविरोधं परिहृत्य ब्राह्मणादिक्रमेण धर्मं पश्येदित्यन्वयः ।।२४।।

(५) **नन्दनः**। अथ व्यवहारपरिभाषा तत्र युगपत्कार्यनिर्णये प्राप्ते क्रममाह **अर्थानर्थाविति**। **वर्णक्रमेण** प्रथमं ब्राह्मणानां **कार्यं पश्येत्** तेष्वप्यर्थानर्थौ प्रथमं सौम्ये **धर्माधर्मौ केवलौ**। कृत्स्नौ। ब्राह्मणकार्यदर्शनानन्तरं क्षत्रियादीनां कार्याणि **क्रमेण पश्येत्** ।।२४।।

(६) **रामचन्द्रः**। **केवलौ** अर्थादिहीनौ ।।२४।।

(७) **मणिरामः**। **अर्थाऽनर्थौ** प्रजारक्षणोच्छेदात्मकौ वैदिकौ **धर्माधर्मौ** परलोकार्थम् ।।२४।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अर्थानर्थाविति**। प्रकृतिसंप्रसादकोपात्मकान् तथाविधान् लोकगतानालोच्य परलोकार्थं च धर्माधर्मावेव केवलावालोक्य यथा धर्महानिः अधर्मानर्थोत्पादश्च न भवति तथा सर्वान् व्यवहारान् पश्येत् ।। सन्निपाते च वर्णानां ब्राह्मणादिक्रमेण पश्येत् ।।२४।।

**बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम् ।।**
**स्वरवर्णङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च ।। २५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। तथा चेदमाह। अनुमानेनापि सत्यानृतवादिता व्यवहारतः साक्षिणां च निश्चेतव्या इति श्लोकार्थः। अतश्च स्वरादिग्रहणं प्रदर्शनार्थम्। तेन निश्चितलिङ्गं तेनैव परिच्छिन्द्यादित्युक्तं भवति, न पुनः स्वरादिभिरेव सव्यभिचारित्वात्तेषाम्। अनुचितसभाप्रवेशा हि महाप्रकृतिदर्शनेन सत्यकारिणोऽपि स्वभावतो विक्रियन्ते। प्रगल्भास्तु संवृताकारा भवन्ति। स्वरश्च वर्णश्चेङ्गितं च स्वरवर्णेङ्गितानि तेषामाकाराः **स्वरवर्णेङ्गिताकाराः**। आकारो विकारः। स्वाभाविकानां हि स्वरादीनामन्यथात्वम्। तैर्**विभावयेन्निश्चिनुयात्**। **भावम**भिप्रायमन्तर्गतं मनुष्याणां विवादिसाक्ष्यादीनाम्। तत्र स्वरस्य विकारो वाचि गद्गद्रुदितादिवर्णस्य गात्ररूपविपर्ययादि। इङ्गितं स्वेदवेपथुरोमाञ्चादि। **चक्षुषा** संभ्रमक्रोधदृष्टिपातेन। **चेष्टितेन** हस्तनिक्षेपभ्रूविक्षेपादिः॥ स्वसंवेद्यं चैतत् यद्गूह्यमानमप्यभिप्रायं स्वरादयः प्रकाशयन्ति निपुणतो लक्ष्यमाणाः। यतः प्रसिद्धमेतेषां गूढाभिप्रायप्रकटनसामर्थ्यम्॥ २५॥

(२) **सर्वज्ञनारायण.**। **विभावयेत्** जानीयात्। **वर्णाः** रक्तगौरादिः। **इङ्गित**मभिप्रायसूचकं देहवैकृत्यमबुद्धिपूर्वकबाहुकम्पादि। **आकारः** स्वरादिः। **चक्षुषा** स्निग्धादिना **चेष्टितेन**। तद्बुद्धिकृतशरीरावयवशरीरयोश्चलनेन। एतच्च बाह्यप्रपञ्चनम्॥ २५॥

(३) **कुल्लूकः**। बाह्यैः स्वरादिलिङ्गैरित्यभिधानादेवावधारितव्यापारैः अर्थिप्रत्यर्थिनामन्तर्गतमभिप्रायं निरूपयेत्। **स्वरो** गद्गदादिः। **वर्णः** स्वाभाविकवर्णादन्यादृशो मुखकालिमादिः। **इङ्गितमधो** निरीक्षणादिः। **आकारो** देहभवस्वेदरोमाञ्चादिः। **चेष्टा** हस्तस्फालनादिः॥ २५॥

(४) **राघवानन्दः**। किं च भावं अन्तर्गतधर्माधर्मं तद्विषयाभिप्रायं वा। **लिङ्गैः** अनुमानैः। लिङ्गैरित्यस्य विवरणं **स्वरेत्यादि**। **स्वरो** वितथाभिधानं गद्गदादिर्वा वर्णः सहजवर्णातिरिक्तमुखकालिमादिः **इङ्गितमधो** निरीक्षणादि एतैरेव मनोगतं व्यक्तं स्यादिति विभावयेन्निश्चिनुयात्॥ २५॥

(५) **नन्दनः**। दुष्टादुष्टपरिज्ञानोपायमाह **बाह्यैर्विभावयेदिति**। उत्तरार्द्धेन बाह्यानि लिङ्गान्येव व्याकरोति। **आकारः** स्वेदरोमाञ्चकंपादियुक्तमङ्गम्॥ २५॥

(६) **रामचन्द्रः**। **कार्यिणां नृणां बाह्यैर्लिङ्गैः** भावं विभावयेत् जानीयादित्यर्थः॥ २५॥

(७) **मणिरामः**। स्वरगद्गदादिः॥ **वर्णः** स्वाभाविकवर्णादन्यदृशो मुखम्लानादिः। **इङ्गितं** अधो निरीक्षणादिः। **आकारः** स्वेदरोमं **चेष्टा** हस्तचालनादिः। एतैर्बाह्यैर्लिंगैर्नृणामंतर्गतं **भावं** अभिप्रायं विभावयेत्॥ २५॥

(८) **गोविन्दराजः**। **बाह्यैरिति**। गद्गदत्वादिचक्षुः स्वरपाण्डुरादिवर्णवेपथुरोमाञ्चादीङ्गितविवर्णत्वाद्याकाराधोनिरीक्षणादिचक्षुर्गतहस्तनिष्पेषादिविशेषचेष्टाकारैर्बाह्यलिङ्गैरवश्यगमकेन स्वभावैर्गूढमभिप्रायं सदसद्रूपं व्यवहारिणां निश्चयं अनुभूय॥ २५॥

**आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ।।**
**नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ।। २६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । दृष्टशक्तिताऽनेन श्लोकेन स्वरादीनां पूर्वोक्ताऽर्थाधिगमेन दर्शयतीत्यपौनरुक्त्यम् । तत्राक्रियन्ते विक्रियन्त **इत्याकारा** इङ्गितादयः । **इङ्गितं** व्याख्यातम् । व्यक्तिभेदाद्बहुवचनम् । **गतिः** पूर्वश्लोकादत्राधिका । **सा** प्रस्खलन्ती स्वभावतोऽन्यथा भूता । **भाषितं** पौर्वापर्यविरुद्धं वचनम् । **वक्त्रविकार** आस्यविशेषादिः । शेषं पूर्वश्लोक एव व्याख्यातम् । एतैर्विकृतैरन्तर्गतं चित्तं लौकिकैरन्यत्रापि गृह्यत इति समासार्थः ।। २६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अत्र युक्तिमाह **आकारैरिति** । **गत्या** शरीरगमनेन । चेष्टया अवयवचलनेन ।। २६ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यस्मात्, **आकारैरिति** आकारादिभिः पूर्वोक्तैः **गत्या** स्खलत्पादादिकया अन्तर्गतमनो बुद्धिरूपेण परिणतमवधार्यते ।। २६ ।।

(४) **राघवानन्दः** । निगमनेन पूर्वोक्तानां स्वरादीनां दृष्टशक्तितामाह **आकारैरिति** । गत्या स्खलितपदतया देशान्तरादिना । तदुक्तं **याज्ञवल्क्येन** । देशाद्देशान्तरं याति सृक्किणीं परिलेढि वा । ललाटं स्विद्यते चास्य मुखं वैवर्ण्यमेति च । परिशुष्यत्स्खलद्वाक्यो विरुद्धं बहु भाषते । वाक् चक्षुः पूजयति नो तथोष्ठौ निर्भुजत्यपि । स्वभावाद्विकृतिं गच्छेद्वाङ्मनःकायकर्मभिः । अभियोगे तथा साक्ष्ये दुष्टः स परिकीर्तित इति । नो पूजयति पूर्ववन्न । सत्करोति वाचा नोत्तरं दत्ते चक्षुषा दर्शनासमर्थः निर्भुजति सततं कुटिलीकरोतीति याज्ञवल्क्यवचनार्थः ।। २६ ।।

(५) **नन्दनः** । न केवलं व्यवहारदर्शन एव बाह्यनिर्णयलिङ्गैर्भावनिर्णयः किन्तु अन्यत्रापीत्याह आकारैरिङ्गितैरिति ।। २६ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **अन्तर्गतं** भावं हृदये स्थितं भावं जानीयात् ।। २६ ।।

(७) **मणिरामः** । **गत्या** पदस्खलनादिकया ।। २६ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । यस्मात् **लोकेऽपि आकारैरिति** । नेत्रवक्त्रविकारैश्च ज्ञायतेऽन्तर्गतं मनः । आकारादिभिः पूर्वोक्तैः गत्या च स्खलनरूपया निगूढसद्रूपं ज्ञायते ।। २६ ।।

**बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत् ।।**
**यावत्स स्यात् समावृत्तो यावच्चाऽतीतशैशवः ।। २७ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । ननु च व्यवहारदर्शनं वक्तव्यतया प्रस्तुतम् । तत्र कः प्रसङ्गो बालधनरक्षायाः ? । उच्यते । विवादपदतामेवैतद्विषयान्निवर्तयितुमिदमारभ्यते । बालधनं राज्ञा स्वधनवत्परिपालनीयम् । अन्यथा पितृव्यादिबान्धवा मयेदं रक्षणीयं

ते विवदेरन् । न चान्यः प्रसङ्गोऽस्ति । आशङ्क्यमानव्यवहारत्वाच्च । न केवलेषु
ूपदिश्यते अतोऽस्मिन्नेवासरे वक्तव्यम् । बालो दायादोऽस्य तदिदं **बालदायादिकम्** ।
स्वाम्यत्रोच्यते बालस्वामिकं धनं **तावद्राजा रक्षेद्यावदसौ समावृत्तो**
प्रत्यागतो **यावद्वाऽतीतशैशवः** अतिक्रान्तबालभावः । अयं च विकल्पः ।
ैशवो भवति तदर्थमतीतशैशवमुच्यते; यस्तु व्रतकः स निवृत्तेऽपि शैशवे आसमावर्तना-
ऽयंधनः स्यात् । अथवा द्विजातीनां समावर्तनमवधिरन्येषां शैशवात्ययः ।। २७ ।।

२) **सर्वज्ञनारायणः । बालो दायादो** भागी यस्य तत्तथा । **अनुपालयेत्** स्वगोचरी-
स्थापयेत् । **समावृत्तः** षट्त्रिंशदब्दादिषु । तन्मध्ये चेद्धनेन कार्यं तदा यावद्वेत्यवध्य-
। शैशवं षोडशाब्दात्प्राक् ।। २७ ।।

३) **कुल्लूकः ।** अनाथबालस्वामिकं धनं पितृव्यादिभिरन्यायेन गृह्यमाणं
**जा रक्षेत् यावदसौ** षट्त्रिंशदब्दादिकब्रह्मचर्यमित्याद्युक्तेन प्रकारेण गुरुकुलात्**समा-**
**त भवति** तादृशस्यावश्यक यस्त्वशक्त्यादिना बाल एव समावर्त्तते
यावदतीतबाल्यो भवति रक्षेत् । बाल्यं च षोडशवर्षपर्यंतम् । बालः
शाद्वर्षादिति **नारदवचन**

(४) **राघवानन्दः ।** प्राति ाधानिकं राजकृत्यं सप्रसंगं दायविषयमाह
श्लोकानां विंशत्या । नाथबालस्वामिकं पितृव्यादिभ्योऽनुपालयेत्
। **समावृत्तो** गुरुकुलाद **ातशैशवः** शूद्रादिर्वा **यावत्तावत्** ।। २७ ।।

(५) **नन्दनः ।** बालधन र्तव्यमाह **बालदायादिकमिति ।** दायमादत्त
**ायादः** स्वामी । यस्य ब लदायादिकं **रिक्थं** धनं ज्ञात्याद्यपहरतोऽनु-

(१) **मेधातिथिः**। यः कश्चिदनाथस्तस्य सर्वस्य धनं राजा यथावत्परिरक्षेत्। तथा चोदाहरणमात्रं वशादयः। एवं प्रजापालनमनुष्ठितं भवति। पूर्वस्तु श्लोकः कालनियमार्थः। **वशा** वन्ध्या। **अपुत्राऽसमर्थपुत्राऽविद्यमानपुत्रा** दुर्गतपुत्रा वा। वशाश्चापुत्राश्चेति द्वन्द्वः। ननु च वशाऽप्यपुत्रैव। सत्यं उभयोपादानं तु सत्यपि भर्त्तरि तस्याः संरक्षणार्थम्। तस्यां ह्यधिविन्नायां भर्ता निरपेक्षो भवति। **निष्कुलाग्रहणं** तासां विशेषणं यासां न कश्चिद्देवर,: पितृव्यः, मातुलादिः परिरक्षकोऽस्ति स्त्रीत्वाच्च स्वयमसमर्थाः बान्धवास्तु मत्सरिणः। तासामेतदुच्यते। बन्धुभिर्हि स्त्रीणां शीलशरीरधनानि रक्षितव्यानि। तदुक्तं (नारद १३-२८-२९) "विनियोगोऽस्ति रक्षासु भरणे च स ईश्वरः। परिक्षीणे पतिकुले निर्मनुष्ये प्रभुः स्त्रियाः।।" या तु स्वयमेव कथंचिच्छक्ता न तत्र बान्धवानां व्यापारोऽस्ति। अत एवाह। **आतुरास्विति**। असामर्थ्यमेतेन लक्ष्यते। अन्यैस्त्वातुरभर्तृका आतुरा व्याख्याता। अविधवाऽपि भर्तुरसामर्थ्याद्राज्ञैव रक्ष्या स्यादिति निर्मनुष्याणामेतत्। कुलं बन्धुजातं यासां नास्ति ताः **निष्कुलाः**। अन्ये तु कुलटां निष्कुलामाहुः। तासामपि वशाद्युपार्जितं धनं राज्ञा रक्ष्यम्। अस्मिंश्च पक्षे स्वतन्त्रं निष्कुलाग्रहणम्। **पतिव्रतासु विधवासु**। मृतभर्तृका विधवा। धव इति भर्तृनाम। तद्विरहिता विधवा। सा चेत्पतिव्रता भवति तदा सा रक्ष्यधना। व्यभिचाररतानां तु स्त्रीधनानर्हत्वं स्मृत्यंतरे पठ्यते। "अपकारक्रिया-युक्ता निर्लज्जा चार्थनाशिका। व्यभिचाररता या च स्त्रीधनं न तु साऽर्हति।।" इति। तस्यास्तु निष्कासनं विहितम्। निष्कासनं च प्रधानवेश्मनो बहिरवस्थापनम्। न तु निर्वासनमेव। यतः पतितानामपि तासां गृहांतरे वासो भक्ताच्छादनमात्रदानं च विहितम् "एवमेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि। वस्त्रान्नपानं देयं च वसेयुश्च गृहान्तिके।" भेदने यः कश्चित्स्त्रीणां निर्वासनविधिः 'स्त्रीधनं द्रव्यसर्वस्वम्' इत्यादिषु श्रूयते स एवं विध एव द्रष्टव्यः। तथापि यावद्भक्तात्सर्पणादिना किंचिदर्जितं तदर्हत्येव। न बान्धवा अपहरेयुः। इह त्वस्मिन्नेव निमित्ते आधिवेदनं विहितं न तु स्त्रीधनापहारः। तथा ह्याह–"मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत्। व्याधिता चाधिवेत्तव्या हिंस्राऽर्थघ्नी च सर्वदा।।" (मनु. ९-८०) अतश्च मानवस्मृतिबलेन 'स्त्रीधनं न तु साऽर्हति' इत्येषा स्मृतिरेवं व्याख्यायते। अधिवेदनिकं स्त्रीधनमेषा नार्हति नैतस्यै देयमित्यर्थः। यदुक्तम् "अधिविन्नस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम्" इति न तु प्राग्दत्तमस्या अपहर्त्तव्यम्। वयं तु ब्रूमः। पुरुषद्वेषिण्या व्यभिचाररतायाश्च युक्त एवापहारः। यत इहाप्युक्तम्– "अतिक्रामेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्तमेव वा। सा त्रीन्मासान्परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा"।। (मनु. ९-७८) विभूषणपरिच्छदैर्वियुक्ता कर्तव्येत्यर्थः।। २८।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **वशा** वन्ध्या। **अपुत्रा** मृतपुत्रा अजातपुत्रा वा। तदा यावत्तत्कुल्यगोचरेण तयोर्यदि सिद्धिस्तावत्तद्वित्तं रक्ष्यं तत्पोषणं च कार्यं, ते यदि निष्कुले रक्षक-स्वकुल्यरहिते स्यातां तदाप्येवं यावज्जीवरक्षणं स्वगोचरेण स्थापनं च राज्ञा कार्यम्। एवंविधासु च पतिव्रतासु पत्युद्देशेन ब्रह्मचर्यादिव्रतकारिणीषु वा ।।२८।।

(३) **कुल्लूकः**। **वशासु** वन्ध्यासु कृतदारान्तरपरिग्रहः स्वामी निर्वाहार्थोपकल्पित-धनोपायासु निरपेक्षः। **अपुत्रासु** च स्त्रीषु प्रोषितभर्तृकासु **निष्कुलासु** सपिण्डरहितासु

साध्वीषु च **स्त्रीषु विधवासु** रोगिणीषु च यद्धनं तस्यापि बालधनस्येव राज्ञा रक्षणं कर्त्तव्यम्। अत्र चानेकशब्दोपादाने गोबलीवर्दन्यायेन पुनरुक्तिपरिहारः ।।२८।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **वशेति**। **वशा** वन्ध्या प्रोषितभर्तृका **अपुत्रा** असमर्थादिपुत्रा **निष्कुला** वरपितृव्यमातुलादिशून्या तासु। **पतिव्रतासु** असमर्थभर्तृकासु एतासु। **विधवासु** पतिपुत्रशून्यासु। तदुक्तम् ।। विनियोगोऽस्ति रक्षासु भरणे च स ईश्वरः; परिक्षीणे पतिकुले निर्मनुष्ये निराश्रये ।। सपिण्डेष्वपिचासत्सु पितृपक्षः प्रभुः स्त्रियाः ।। पक्षद्वयावसाने तु राजा भर्ता प्रभुः स्त्रिया इति ।। **आतुरासु** कुष्ठाद्यभिभूतासु स्त्रीधनं रक्षणीयमिति वक्तव्ये वशाद्युपादानं गोबलीवर्दन्यायेन स्त्रीष्विति विरोधिलक्षणया वा कुलटाधनं न रक्षणीयमितिभावः ।।२८।।

(५) **नन्दनः**। **वशा** वन्ध्या। **अपुत्रा** स्त्री मृतप्रजा च। अपुत्रास्वित्येव वशाया अपि विनिग्रहे सिद्धे वशाग्रहणमादरार्थम्। **निष्कुला** निर्जातबन्धुः। **पतिव्रता** प्रोषितभर्तृका। **आतुरा** आतुरभर्तृपुत्रादिका **रक्षणं** रिक्थरक्षणम्। **एवं स्यात्** बालदायादरिक्थरक्षणवत्स्यात् ।।२८।।

(६) **रामचन्द्रः**। **वशापुत्रासु** पुत्राभ्यां रहितासु **निष्कुलासु** पतिपितृकुलरहितासु **एवं रक्षणं स्यात्**। **च पुनः आतुरासु** ।।२८।।

(७) **मणिरामः**। **वशासु** वंध्यासु निःकुलासु सपिंडरहितासु एतामपि धनं बालधनवद्राजा रक्षेत् ।। २८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **वन्ध्यापुत्रास्विति**। यथा बालधनस्य राज्ञो रक्षणं स्यादेवं सत्यपि भर्तरि वन्ध्यासु स्त्रीष्वप्रजासु निष्कुलासु च कन्यकासु मृतप्रोषितभर्तृकासु साध्वीषु व्याधितासु च रक्षणं स्यादत्र गोबलीवर्दन्यायेनानेकशब्दोपादानम् ।। २८ ।।

**जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः ।।**
**तांश्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ।। २९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। बान्धवानां स्त्रीधनमपहरतामयं चौरदण्डः। ते हि बहुभिरुपायैरपहरन्ति। अस्वतन्त्रैषा स्त्री किं ददाति किं वा भुंक्ते वयमत्र स्वामिन इति चौरदण्डो विधीयते। **जीवन्तीनां तासां स्वबान्धवा** देवरादयस्तद्धनं **ये हरेयुस्तांश्छिष्यात् पृथिवीपतिर्निगृह्णीयात्। चौरदण्डो** वक्ष्यमाणः "येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते। छेत्तव्यं तत्तदेवान्यत्तन्मनोरनुशासनमिति" (८।३२१)। स्वबन्धुभ्यश्चैतदविशेषेण राज्ञा रक्षितव्यम्। चौररक्षा तु सर्वराष्ट्रविषया विहिता ।।२९।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यदि तु तासां वित्तं संभवति तदाह **जीवन्तीनामिति** ।।२९।।

(३) **कुल्लूकः**। वयमत्रान्तराधिकारिणो रक्षाम इदं धनमित्यादिव्याजेन ये बान्धवास्तासां जीवन्तीनां तद्धनं गृह्णन्ति तान्वक्ष्यमाणचौरदण्डेन धार्मिको राजा दण्डयेत् ।।२९।।

(४) **राघवानन्दः**। न केवलमेवं किंतु **जीवन्तीनामिति**। **तद्धनं** तासां धनं बान्धवा देवरादयश्चेद्धरेयुर्गृह्णीयुस्तान् चौरदण्डेन शिष्यादित्यर्थः ।।२९।।

(५) **नन्दनः**। स्त्रीधनस्य रक्षणीयप्रकरणे तदपहर्तृदण्डविधानमाह **जीवन्तीनान्त्विति**। स्वदेवरादयो बान्धवास्सोदरादयः। जीवन्तीनामिति विशेषेणमृतासु बान्धवानामेव स्त्रीधने स्वामित्वं गम्यते ।।२९।।

(८) **गोविन्दराजः**। **जीवन्तीनामिति**। भाविस्वाम्यादस्मादधीनत्वादिव्याजेन ये बान्धवास्तासां जीवन्तीनां धनं हरेयुः ।।२९।।

**प्रनष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् ।।**
**अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ।। ३० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। यद्द्रव्यं स्वामिनो नष्टं प्रमादात्किंचित्पथि गच्छतो भ्रष्टमरण्ये कान्तारे वा स्थापयित्वारण्यपालैरन्यैर्वा राजपुरुषैर्लब्धं राजसकाशमानीतं तद्राजा स्वां रक्षां कृत्वा राजद्वारे राजमार्गे वा प्रकाशं स्थापयितव्यम्। पटहघोषणेन वा कस्य किं हारितमिति प्रकाशयितव्यम्। यतः प्रदेशाल्लब्धं तस्मिन्नेव प्रदेशे रक्षिपुरुषाधिष्ठितं कर्तव्यम्। एवं त्रीणि वर्षाणि स्थापयितव्यम्। तत्रावाक् त्रिभ्यो वर्षेभ्यो यः कारणतः आत्मीयं ज्ञापयेत्तस्योद्धृतवक्ष्यमाणषड्भागादिभागकं समर्पयितव्यं, परतः स्वकोष्ठे प्रवेशनीयमिति। **प्रनष्टः स्वामी** यस्य **रिक्थस्य** तत्**प्रनष्टस्वामिकम्**। **प्रनष्टो**ऽविज्ञातः। **रिक्थं** धनम्। त्रयाणामब्दानां समाहार**स्त्र्यब्दम्**। त्रिवर्षवत् त्र्यद्वे ङीबभावः। अब्दशब्दः संवत्सरपर्यायः। **निधापयेत्**स्थापयेत्। **अर्वाक्त्र्यब्दात्**पूर्वं त्रिभ्यो वर्षेभ्यः। **हरेत्स्वामी** स्वीकुर्यात्। अर्वाक् शब्दोऽवधौ दिग्देशादिकात् पूर्वमाह। अन्ये तु **नृपतिर्हरेदिति** भोगानुज्ञानमपहारमाहुः। न हि ऊर्ध्वमपि त्रिभ्यो वर्षेभ्यः परकीयस्य द्रव्यस्यापहारो युक्तः। तस्मात् त्रिभ्यो वर्षेभ्य ऊर्ध्वमनागच्छति स्वामिनि राज्ञा भोक्तव्यम्। तदयं श्लोकः कथं व्याख्यानीयो "यत्किंचिद्दशवर्षाणीति" (८-१४७)। यदि च परकीयस्यापहारो न युक्त इत्युच्यते भोगोऽपि नैव युक्तः। परकीयं वस्त्रादिवद्भुज्यमानं नश्यत्येव। तत्रानपहारोपचारो युक्तः, भोक्तुरेवापहारफलस्य सद्भावात्। गजतुरगादेस्तु कीदृशो भोग इति वाच्यम्। तस्मान्न यथाश्रुतार्थत्यागे कारणमस्ति। हरतिश्च गृह्णात्यर्थे असकृद्दृष्टप्रयोगरिक्थं हरेदित्यादौ। तस्मात्परेण नृपतिर्हरेत्स्वीकुर्यादित्ययमेवार्थः ।। ३० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **प्रनष्टो**ऽदृश्यमानः स्वामी यस्य तद्राजभृत्यैर्लब्धं धनं **प्रनष्टस्वामिकं हरेत्** स्वामी कृत्स्नं परेण नृपतिर्**हरेत्** रक्षकभागमात्रं वक्ष्यमाणम् ।। ३० ।।

(३) **कुल्लूकः**। अज्ञातस्वामिकधनं राजा कस्य किं प्रनष्टमित्येवं पटहादिनोद्घोष्य राजद्वारादौ रक्षितं वर्षत्रयं स्थापयेत्, वर्षत्रयमध्ये यदि धनस्वाम्यागच्छति तदा स एव गृह्णीयात् तदूर्ध्वं तु नृपतिर्विनियुञ्जीत ।। ३० ।।

(४) **राघवानन्दः**। किं च **प्रेति**। **प्रनष्टस्वामिसत्वे** प्रनष्टं तत्संबन्धापरिज्ञानमात्रं

न तु स्वामिनोऽभावः। **निधापयेत्** स्थापयेत्। स्वामी रिक्थस्य। अर्वाक् पूर्वम्। **परेण** त्र्यब्दादूर्ध्वं नृपतिर्हरेदित्यनुषज्यते ॥ ३० ॥

(५) **नन्दनः**। **परेण** त्र्यब्दादूर्ध्वम्। अन्ब्राह्मणस्वविषयमेतत्। ब्रह्मस्वं ब्राह्मणान् श्रयेदिति स्मृत्यन्तरानुरोधात् ॥ ३० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **प्रनष्टो** देशान्तरगतः ॥ ३० ॥

(७) **मणिरामः**। शिष्यात् दंडयेत् ॥ ३० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **प्रनष्ट स्वामिकमिति**। अज्ञापमानस्वामिकं धनं राजा कस्य किं प्रनष्टमित्येवं पटहादिनाख्याय द्वारादौ वर्षत्रयं स्थापयेत्। वर्षत्रयादर्वाक् स्वाम्यायातो गृह्णीयादूर्ध्वं पुनर्नृपतिर्गृह्णीयात्। यावत्स्वाम्यागच्छति तावदपहरेत्। एवं परको यस्य धर्मतो वर्षशतैरपि स्वापहारस्यान्याय्यत्वात् प्रनष्ट इत्यादिचार्वाक् ॥ ३० ॥

**ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि ॥**
**संवाद्य रूपसंख्यादीन्स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ॥ ३१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। कथं पुनः स्वामी प्रनष्टे धने स्वामित्वं ज्ञापयेदत आह। यः कश्चिदागत्य **ममेदं** स्वं द्रव्यमिति **ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि**। **अनुयोज्यः** प्रनष्ट इत्यर्थः। कोऽसावनुयोगविधिः? को भवान्? किं द्रव्यं हारितं, किं रूपं, किं परिमाणं, **किं सङ्ख्याकं** संपतितमपतितं वा, यदि पतितं, कस्मिन्देशे? तथा कुतः आगमितं त्वयेत्येवं पर्यनुयोगः कर्तव्यः। स यदि संवादयति **रूपसङ्ख्यादीन्**। **'रूपम्'**–प्राणिवस्त्रादिविषयं शुक्लं वस्त्रं गौर्वेत्येवमादि। तथा **'संख्या'**–दश गावो वा युगानि वा। आदिग्रहणाद्धस्तादिप्रमाणं सुवर्णं चेत्परिमाणं प्रकीर्णा रूपकं वा। एतत्सर्वं संवादयति तदाऽसौ स्वामी भवति। अतस्त-**द्द्रव्यमर्हति** स्वीकर्तुम्। संवाद उच्यते। यादृशमेकेन प्रमाणेन परिच्छिन्नं तादृशमेवा-स्यानेन परिच्छिद्यते। रूपसंख्यादिग्रहणं च प्रदर्शनार्थं स्वामित्वकारणानामन्येषामपि साक्ष्यादीनाम् ॥ ३१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **रूपं** नीलत्वदीर्घत्वादि। **संख्या**मेकादिकाम् ॥ ३१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **मदीयं** धनमिति **यो व**दति स किं रूपं किं संख्याकं कुत्र प्रनष्टं तद्धन-मित्यादिविधानेन प्रष्टव्यः ततो यदि **रूपसंख्यादी**न्सत्यान्वदति तदा स तत्र धनस्वामी तद्धनं ग्रहीतुमर्हति ॥ ३१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंचान्यत्, **ममेति**। **स** स्वामी **अनुयोज्यः** किं वर्णं किं रूपं कतिसङ्ख्यं कुत्र कथं नष्टमिति पृष्टः **संवाद्य** वर्णाद्यभिधानेन प्रतीतिं जनयित्वा **अर्हति द्रव्यमित्यन्वयः** ॥ ३१ ॥

(५) **नन्दनः**। प्रनष्टस्वामिकं द्रव्यं **ममेदमिति** ब्रुवतस्तत्त्वपरिज्ञानोपायमाह **ममेति**। अनुयुक्तः पृष्टः तस्य द्रव्यस्य रूपसंख्यादिकं सभ्यैः **संवाद्य** सभ्यानां सम्यक् वेदयित्वा ॥ ३१ ॥

(७) **मणिरामः**। **यथाविधि** किं रूपं किं संख्याकं कुत्र प्रणष्टं तद्धनमित्यादि विधानेन प्रष्टव्यः ततो **रूपसंख्यादीन् संवाद्य** सत्यान् ज्ञात्वा **स्वामी तद्द्रव्यं** गृह्णीयात् ।। ३१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **ममेति**। मत्संबन्ध्येतद्धनमिति यो ब्रूयात् स किं सारं किं संख्याकं क्व प्रनष्टमित्येवमादिविधानेन पर्यनुयोक्तव्यः। ततो यदि रूपसंख्यादीन् सत्यान् ब्रवीति तद्धनं ग्रहीतुमर्हति ।। ३१ ।।

**अवेदयानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः ।।**
**वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ।। ३२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। मिथ्या प्रवर्तमानस्य दण्डोऽयमुच्यते। यो न ज्ञापयति **नष्टस्य** धनस्य देशं कालं चास्मिन्देशे काले वा हारितम्। **तत्त्वतः** परमार्थतः। **वर्णं** शुक्लादिकम्। **रूपं** पटीशाटकयुगं वेत्यादिकमाकारम्। **प्रमाणं** पञ्चहस्तायामं सप्तहस्तमात्रं वा। **अवेदयानः**। तदा **तत्समं** यावति द्रव्ये मिथ्याप्रवृत्तस्तत्तुल्यं **दण्डमर्हति** ।। ३२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अवेदयन्न**प्रतिपादयन्। **देशमस्मिन्देश** इति। **वर्णं** नीलत्वादि। **रूपं** कण्टकत्वादि। **प्रमाणं** दैर्घ्यादेकत्वादि ।। ३२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। नष्टद्रव्यस्य **देशकालाव**स्मिन्देशेऽस्मिन्काले नष्टमिति तथा **वर्णं** शुक्लाद्याकारं कटकमुकुटादपरिमाणं च यथावदजानन्नष्टद्रव्यसम**दण्डमर्हति** ।। ३२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तदवेदने दण्डमाह **अवेदयान इति**। अवेदयानं **रूपसङ्ख्यादी**नित्यन्वयः। **प्रमाणं** संख्यां साक्ष्यादि वा ।। ३२ ।।

(५) **नन्दनः**। **प्रनष्टस्य** स्वामिसकाशात्पूर्वं **प्रनष्टं** राज्ञः। पश्चादधिगतम् ।। ३२ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **नष्टस्य** द्रव्यस्य **देशकालौ** अस्मिन्देशे अमुकसंवत्सरामुकमासपक्षदिन इति **कालवर्णरूपं प्रमाणं सङ्ख्याप्रमाणं अवेदयन्** अकथयन् **तत्समं दण्डं** सोऽर्हति ।। ३२ ।।

(७) **मणिरामः**। **नष्टस्य** द्रव्यस्य। देशादिकं **अवेदयानः** कस्मिन्देशे कस्मिन्काले इत्यादिकमजानन्। **तत्समं** नष्टद्रव्यसमम् ।। ३२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अवेदयान इति**। नष्टद्रव्यस्य देशकालौ यथासंभवं च वर्णं शुक्लादिकं आकारं कंटकत्वादिकं प्रमाणं च यथावदजानतः तत्तुल्यं दंडमिति ।। ३२ ।।

**आददीताथ षड्भागं प्रनष्टाधिगतान्नृपः ।।**
**दशमं द्वादशं वाऽपि सतां धर्ममनुस्मरन् ।। ३३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **आददीत** गृह्णीयात्**षष्ठं भागं दशमं द्वादशं वा** प्रनष्टलब्धाद् द्रव्यात्। अवशिष्टं स्वामिनेऽर्पयेत्। तत्र प्रथमे वर्षे **द्वादशो** भागो द्वितीये **दशम**स्तृतीये **षष्ठ** इति। अथवा रक्षाक्लेशक्षयापेक्षो भागविकल्पः। **सतां धर्ममनुस्मरन्** शिष्टानामेव समाचार इति जानानः ।। ३३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायण** । अब्दात्परं यदग्राह्यं तदाह **आददीतेति** । अतिनिर्गुणवदति-गुणवदपेक्षया विकल्पः । **सतां धर्ममिति** व्यवहारसिद्धं यावत्तावद्वेत्यर्थः ।। ३३ ।।

(३) **कुल्लूकः** । देशकालादिसंवादे पुनः **आददीतेति** । यदेतद्राज्ञा प्रनष्टद्रव्यं प्राप्तं तस्मात् **षड्भागं दशमं, द्वादशं वा** रक्षादिनिमित्तं पूर्वेषां साधूनामयं धर्म इति । जानन्राजागृह्णीयात् । धनस्वामिनो निर्गुणसगुणत्वापेक्षश्चायं षड्भागादिग्रहणविकल्पः । अवशिष्टं स्वामिने समर्पयेत् ।। ३३ ।।

(४) **राघवानन्दः** । किंच **आददीत** राजा । तृतीयाद्यब्दतारतम्याद्विकल्पः, तेन प्रथमाब्दे **द्वादशं** भागं, द्वितीये, **दशमं** तृतीये **षड्भागं** अत उक्तं **सतां धर्ममिति** ।। ३३ ।।

(५) **नन्दनः** । तस्मात्प्र**नष्टाधिगता**द्द्रव्यात्स्वामिप्रत्यर्पणीयं समर्पयेत् **षड्भागमाददीत** । स्वामिगुणापेक्षया रक्षणादेः कार्यापेक्षया षड्भागादिविकल्प्यव्यवस्था ।। ३३ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । पूर्वं **प्रनष्टः** देशान्तरं गतः आगतः पश्चा**दधिगतः** तस्मात्पुरुषात् राजा **षड्भागं आददीत** स्वीकुर्यात् ।। ३३ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । संख्यादिसंवादे पुनः **आददीतेति** । यदेतत्प्रनष्टं राज्ञा प्राप्तं ततः स्वामिगतसंख्यादिसंवादानन्तरं रक्षणक्लेशापेक्षया **षड्भागं दशमं द्वादशं** वा साधूनामयं **धर्म** इत्येवं राजा गृह्णीयात् शिष्टं पुनः स्वामिने उत्सृजेत् ।। ३३ ।।

**प्रनष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम् ।।**
**यांस्तत्र चौरान् गृह्णीयात्तान् राजेभेन घातयेत् ।। ३४ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । प्रनष्टमधिगतं **प्रनष्टाधिगतं** पूर्वं प्रनष्टं पश्चादधिगतम् । **अधि-ष्ठितं युक्तै**स्तत्परैरारक्षपुरुषैः । **तिष्ठेत्** । तथास्थितमपि यदि केचन **चौरा गृह्णीयुस्तान् राजा इभेन** हस्तिना घातयेत् । हस्तिग्रहणमदृष्टार्थम् ।। ३४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायण.** । **प्रनष्टं** चौरादिभिर्नीतं राजभृत्यै**रधिगतमन्यै**र्वा । **युक्तै**र्नियुक्तै राजभृत्यैः । **तत्र** तेषु गृह्यमाणेषु यांस्तच्चौरान्राजा प्राप्नुया**त्तान्धातयेत्** सुवर्णशतोपरि शतादधिके वध इति स्मृतेः ।। ३४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यद्रव्यं कस्यापि प्रनष्टं सद्राजपुरुषैः प्राप्तं रक्षायुक्तैः रक्षितं कृत्वा स्थाप्यं तस्मिंश्च द्रव्ये यांश्चौरान्गृह्णीयात्तान् हस्तिना घातयेत् । गोविन्दराजस्तु शतादभ्यधिके वध इति दर्शनात् अत्रापि शतसुवर्णस्य मौल्यादिकद्रव्यहरणे वधमाह तत्र तत्र संधिं कृत्वा तु यच्चौर्यमिति यत्स्वाम्येऽपि प्रनष्टराजरक्षितद्रव्यहरणेनैव विशेषेण वधविधानात् शतादभ्य-धिके वध इत्यस्य विशेषोपदिष्टवधेतरविषयत्वात् ।। ३४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । **युक्तैः** संयतैः । राजा **यांस्तद्धनहर्तॄन्गृह्णीयात्तान् इभेन** हस्तिना. इभेनेति वाचनिकं वचनस्य नातिभार इति न्यायात् । **गोविन्दराजस्तु** शताधिकसुवर्णहरणे वध इति । तच्च सन्धिं कृत्वा तु ये चौर्यमित्यादि वक्ष्यमाणवचनातिरिक्तविषयम् ।। ३४ ।।

(५) **नन्दनः**। प्रनष्टाधिगते द्रव्ये प्रत्यर्पणात्पूर्वं कर्तव्यमाह **प्रनष्टाधिगतमिति**। **युक्तैरधिकृतैस्तिष्ठेत्** यावत्स्वामिदर्शनं स्थापयेत्। **तत्र युक्तैरधिष्ठिते** द्रव्ये। **इभेन** गजेन ।। ३४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। पूर्वं प्रनष्टं पश्चादधिगतं द्रव्यं युक्तै रक्षकैः अधिष्ठितं रक्षितं तिष्ठेत्। तत्र यान् चौरान् राजा गृह्णीयात्तान् इमान् इभेन गजेन घातयेत् ।। ३४ ।।

(७) **मणिरामः**। **अधिगतं** राजपुरुषैः प्राप्तं **युक्तैः** रक्षायुक्तैः। **अधिष्ठितं** रक्षितं कृत्वा स्थापितम्। तस्मिंश्च द्रव्ये **यान् चौरान् गृह्णीयात् तान्** इभेन हस्तिना घातयेत् ।। ३४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **प्रनष्टाऽधिगतमिति**। यद्द्रव्यं कस्यचित्प्रनष्टं सद्राजपुरुषैर्लब्धं तद्रक्षयेत्। नियुक्तं रक्षितं कृत्वा राज्ञा स्थाप्यं तस्मिंश्च द्रव्ये **यान् चौरान् राजा गृह्णीयात्** तान् शतादभ्यधिके वध इति दर्शनात् सुवर्णशतमूल्यादिचौर्ये सति हस्तिना घातयेत् ।। ३४ ।।

**ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः ।।**
**तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा ।। ३५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। निखातायां भूमौ गुप्तं स्थापितं धनं निधिरुच्यते। वर्षशतिका वर्षसहस्रिकाश्च निधयो भवन्ति। तत्र यदि भूमेर्विदार्यमाणायाः कथंचित्केनचिन्निधिरासाद्यते स तु राजधनम्। तथा च गौतमः 'निध्यधिगमो राजधनम्' इति (१०।४३)। एतच्चास्मर्यमाणनिधातृके निधौ द्रष्टव्यम्। तस्याख्याता षष्ठं लभेतेत्युक्तम्। अयं तु श्लोको यत्राख्यातैव निधाता तत्पुरुषो वा पितृपितामहादिस्तद्विषयो द्रष्टव्यः। **ममायं निधिरिति यो ब्रूयात्सत्येन** प्रमाणेन ज्ञापयेदित्यर्थः। **तस्याददीत षड्भागमिति**। निश्चिते तत्स्वामिकत्वे राज्ञः षष्ठादिभागग्रहणम्। विकल्पश्चाऽऽख्यातृगुणापेक्षया ।। ३५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। निधिं स्वपित्रादिनिहितं स्वयमेवोद्धृतं परेण वोद्धृतं **ममेति यो ब्रूयात्**। **षड्भागं** क्षत्रियादेः। **द्वादशं** ब्राह्मणस्य विदुषः ।। ३५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यो **मानुषः** स्वयं निधिं लब्ध्वाऽन्येन वा निधौ प्राप्ते **ममायं** निधि**रिति** वदति **सत्येन** प्रमाणेन च स्वसंबन्धं बोधयति **तस्य** पुरुषस्य निर्गुणत्वसगुणत्वापेक्षया ततो निधानादष्टभागं **द्वादश**भागं वा **राजा गृह्णीयात्** अवशिष्टं तस्यार्पयेत् ।। ३५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **ममेति**। **निधिं** स्वकीयं परेण प्राप्तम्। **तस्य** निधेः। **षट् द्वादशेति** गुणवदभेदेन विकल्पः ।। ३५ ।।

(५) **नन्दनः**। य इति। **तस्य** पुरुषस्य **षड्भागं** निधेः षष्ठं भागम्। अत्रापि पूर्ववद्विकल्प्य व्यवस्था ।। ३५ ।।

(७) **मणिरामः**। **सत्येन** प्रमाणेन। विकल्पश्चात्र सगुणनिर्गुणापेक्षः ।। ३५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **ममायमिति**। तत्सम्बन्धीदं निधानमित्येवं निधिं अन्येन वा

तथ्ये सति रूपसंख्यादिपूर्वप्रतिज्ञासंवादेन मनुष्यो ब्रूयात् तस्य ततो निधानाद् देशकला-वर्णाद्यपेक्षया षड्भागं द्वादशमेव वा राजा गृह्णीयात् शिष्टं तस्योत्सृजेत् ।। ३५ ।।

**अनृतं तु वदन्दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् ।।**
**तस्यैव वा निधानस्य संख्ययाल्पीयसीं कलाम् ।।३६।।**

(१) **मेधातिथिः**। यस्तु मयाऽयं निहितो मत्पूर्वजेन वेति प्रतिज्ञां न साधयति **सोऽसत्य-वादी दण्ड्यः**। यावत्तस्य वित्तमस्ति ततोऽष्टमं **भागं** तस्यैव वा निधानस्याल्पीयसीकलां मात्रां भागमित्यर्थः। न तु तदेव द्रव्यं सुवर्णादिकं दापयेत्किन्तु तत्परिमाणमन्यद्वा सममूल्यं यया धनमात्रया दण्डितोऽवसादं न गच्छेद्विनयं वा ग्राह्येत। अनुबन्धादिविशेषापेक्षया पुरुष-गुणापेक्षया च विकल्पः आश्रयणीयः। आतिशायनिकात्पूर्वदण्डात्स्वल्पो दण्ड इति ज्ञापयति। तेन यस्य बहुवित्तं स्वल्पो निधिस्तत्र न निध्यपेक्षां मात्रामष्टमांशम् अर्थादीनां **दण्ड्यः**। सा ह्यल्पीयसी भवति ।। ३६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तस्यैवेति ब्राह्मणस्य दण्डः। **तस्य** निधानस्य शततमो भागो यावान्भागस्तावतीमल्पीयसीं कलामंशम्। **संख्याय** व्यवस्थाप्य ।। ३६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अस्वीयं स्वीयमिति। ब्रुवन्**स्वधनस्याष्टमं भागं दण्ड्यः** यद्वा तस्यैव निधेरत्यन्ताल्पभागं गणयित्वा येनासादं न गच्छति न विषयश्च लभते **तद्दण्ड्यः**। अल्पीय-सीमितीयसुन्नन्तनिर्देशात्पूर्वस्मादन्योऽयं दण्डः। विकल्पश्च निर्गुणसगुणापेक्षः ।। ३६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैव विशेषमाह **अनृतमिति**। **स्ववित्तस्यानृतवा**दिनो यावद्वित्तं तस्य। तस्यैव यं निधिं प्रति लोभान्मिथ्याभाषी। अल्पीयसीमिति नाऽतिपीडया। विकल्पस्तु गुणवदगुणवद्भेदेन ।। ३६ ।।

(५) **नन्दनः**। **अनृतं वदन्** अन्यदीयं स्वकीयमिति सकलमल्पं वा वदन्। **अल्पीयसीं कलां स्ववित्तस्यांशं दण्ड्यः** शासितव्यः। दण्डयतेः शास्तेश्च तुल्यार्थत्वाद्द्विकर्मत्वम् ।। ३६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **स्ववित्तस्य अष्टमं अंशं दण्ड्यः**। **वा** पक्षान्तरं **तस्यैव निधानस्य** द्रव्यपूर्णकुम्भस्य सङ्ख्ययाल्पीयसीं कलां तुच्छककलाम्। 'कला तु षोडशो भाग' **इत्यमरः**। षोडशीं गृह्णीयादित्यर्थः ।। ३६ ।।

(७) **मणिरामः**। **अनृतं तु** वदन् अस्वीयं स्वीयमिति ब्रुवन्। **तस्यैव** निधेरेव। **अल्पीयसीं** कलां अत्यंताल्पभागम्। येन तस्य पीडा न भवति। अत्रापि निर्गुणसगुणापेक्षो दंडविकल्पः ।। ३६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अनृतमिति**। आप्तपुनः सत्यं ब्रुवन् स्वधनस्याष्टमं भागं दण्ड्यः। यद्वा तस्यैव निधानस्यात्यन्ताल्पं भागं विगणय्य स विषादं न गच्छति विनयं च गृह्णीयात् तं दंड्यो गुणवदगुणापेक्षया विकल्पः ।। ३६ ।।

(९) **भारुचिः**। यया धनमात्रया दण्डितोऽवसादं न गच्छेद्विनयं च ग्राह्येत तावतीमर्थमात्रां दापयेत्। पुरुषविशेषापेक्षायां च दण्डविकल्पः आश्रयितव्यः ।। ३६ ।।

**विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् ।।**
**अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः ।।३७।।**

**ब्राह्मणस्तु निधिं लब्ध्वा क्षिप्रं राज्ञे निवेदयेत् ।।**
**तेन दत्तं तु भुञ्जीत स्तेनः स्यादनिवेदयन् ।।**

(१) **मेधातिथिः**। विद्वान्ब्राह्मणः पूर्वैः पित्रादिभिरुपहितं निधिं यदा पश्येत्तदा सर्वमेवादद्दीत। न राज्ञे पूर्वोक्तं भागं दद्यात्। अस्यार्थवादः **सर्वस्याधिपतिर्हि** सः। तथा चोक्तं 'सर्वस्वं ब्राह्मणस्येद'मिति। एतच्चाशेषतो ग्रहणं यो ब्राह्मणस्वामिक एव निधिः। यस्त्वविज्ञातस्वामिकः तस्मिन्विज्ञेयः ब्राह्मणदृष्टेऽप्यस्त्येव राज्ञो भागः। यतो वक्ष्यति "निधीनां तु पुराणानाम्" (८-३९) इति ।। ३७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **पूर्वैः** स्वपुरुषैरुपनिहितं **निधिम्**। **सर्वस्य** कृत्स्नस्य तस्य निधेः ।। ३७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **विद्वान्पुनर्ब्राह्मणः पूर्वमुपनिहितं निधिं दृष्ट्वा** सर्वं गृह्णीयान्न षड्भागं दद्यात् यस्मात्सर्वस्य धनजातस्य प्रभुः अत एवोक्तम् सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदमिति तस्मात्परनिहितविषयमेतद्वचनम् तथा च **नारदः**-'परेण निहितं लब्ध्वा राजा ह्यपहरेन्निधिम्'। राजगामीनिधिः सर्वः सर्वेषां ब्राह्मणादृते ।। **याज्ञवल्क्यो**ऽप्याह 'राजा लब्ध्वा निधिं दद्याद्विजेभ्यो-(व्यव. ३४) ऽर्धं द्विजः पुनः। विद्वानशेषमादद्यात्स सर्वस्य प्रभुर्यतः ।। अतो **यन्मेधातिथिगोविन्दराजाभ्यां** ममाऽयमिति यो ब्रूयादित्युक्तं राजदेयार्थनिरासार्थं पित्रादिनिहितविषयत्वमेवास्य वचनस्य व्याख्यातम्--तदनार्षम् **नारदा**दिमुनिव्याख्याविपरीतं स्वकल्पितम्। न **मेधातिथिगोविन्दराज**व्याख्यानमाद्रिये ।। ३७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। विदुषा ब्राह्मणेनोपलब्धस्य राजा नांशभाक्, प्रत्युतनिधानस्य स्वलब्धस्य दातेत्याह **विद्वांस्त्विति द्वाभ्याम्**। **पूर्वोपनिहितं** पूर्वमेवोपसमीपे निहितम्। लब्धं पश्येत् पूर्वमितिशेषः ।। ३७ ।।

(७) **मणिरामः**। **निहितं निधिं** स्वपूर्वजैर्निहितं नान्यदीयम्। **अशेषतः** सर्वं न तु तद्भागं राज्ञेत्वित्यर्थः ।। ३७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **विद्वानिति**। शास्त्रविद् पुनर्ब्राह्मणः पित्रादिस्थापितं निधिं दृष्ट्वा राज्ञो भागं न दद्यात्। अशेषं गृह्णीयाद्यस्मात्सर्वस्य धनजातस्य ब्राह्मणः प्रभुः इत्यशेषग्रहणार्थवादः। एवञ्च ममायमिति। अयमविद्वद्ब्राह्मणविषयः क्षत्रियादिविषयश्च ।। ३७ ।।

(९) **भारुचिः**। एवं च सति ममायमित्यस्मिन् पूर्वविधावब्राह्मणविषये। ब्राह्मणस्य विकल्पेन ग्रहणम् अविद्वद्ब्राह्मणविषयं वा ।। ३७ ।।

**यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ ।।**
**तस्माद् द्विजेभ्यो दत्वाऽर्धमर्धं कोशे प्रवेशयेत् ।।३८।।**

(१) **मेधातिथिः**। यो राज्ञा स्वयं निधिरधिगतस्तस्मान्निधेरयं ब्राह्मणेभ्यो दाननियमो राज्ञः। **कोशशब्देन** वित्तसंचयस्थानमुच्यते। **पुराणं निहितं क्षितावि**ति निधिरूपानुवादः॥३८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **संपश्येत्** स्वपुरुषैरन्येन चोद्धृतम्। **पुराण**मज्ञातनिधातृकम्॥३८॥

(३) **कुल्लूकः**। यं पुनरस्वामिकं पुरातनं भूम्यन्तर्गतं निधिं **राजा** लभते **तस्माद्** ब्राह्मणेभ्योऽर्धं **दत्वा**ऽर्धमात्मीयधनागारे **च प्रवेशयेत्**॥ ३८॥

(४) **राघवानन्दः**। **तस्मान्निधेः द्विजेभ्यो** विप्रेभ्यः॥ ३८॥

(५) **नन्दनः**। अस्वामिके निधौ राज्ञा दृष्टे कर्तव्यमाह **यं तु पश्येन्निधिं राजेति**॥३८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यमिति**। यं पुनः चिरन्तनस्वामिकं भूमिप्रक्षिप्तं निधिं लभेत तस्मादर्धं ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा अर्धमात्मनोऽर्थागारे प्रवेशयेत्॥ ३८॥

(९) **भारुचिः**। राज्ञोऽयं निध्यधिगमे दानविषयः न त्वन्यस्य वचनसामर्थ्यात्॥३८॥

**निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ॥**
**अर्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः॥ ३९॥**

(१) **मेधातिथिः**। अन्येनापि दृष्टस्य निधेः राज्ञा भागः पूर्वोक्तो ग्रहीतव्य इत्यस्य विधेरर्थवादोऽयम्। **निधीनां हि पुराणानामिति धातूनामेव च क्षितौ**। **अयं** त्वप्राप्तविधिः। सुवर्णरूप्यादिमृदः सिन्दूरकालाञ्जनाद्याश्च धातवः। सुवर्णाद्याकरभूमीर्यः खनति यो वा पर्वतादिषु गैरिकादिधातूनुपजीवति तेनापि पूर्ववद्राज्ञे भागो दातव्यः। **अर्धभागिति**। अर्धश दोंऽशमात्रवचनः, समासनिर्देशात्। यथा ग्रामार्धो नगरार्धमिति। नपुंसकलिङ्गस्तु समग्रविभागः। इह तु समासे लिङ्गविशेषप्रतिपत्त्यभावात्पूर्ववत् षड्दशद्वादशादेर्भागस्य प्रकृतत्वात्तद्वचनो विज्ञायते। अर्धं भजत एकदेशं गृह्णातीत्यर्थः। अत्र हेतू **रक्षणादिति**। यद्यपि क्षित्तौ निहितस्य केनचिदज्ञानान्न राजकीयरक्षोपयुज्यते तथापि तस्य बलवताऽपहारः संभाव्यते। अतोऽस्त्येव रक्षाया अर्थवत्त्वम्। एतदर्थमेवाह **भूमेरधिपतिर्हि सः**। प्रभुरसौ भूमेस्तदीयायाश्च भुवो यल्लब्धं तत्र युक्तं तस्य भागदानम्॥ ३९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **धातूनां** हेमादीनामाकरस्थानां **च**कारादत्नानां च। **रक्षणादिति भूमेरधिपति**रिति च हेतुद्वयम्॥ ३९॥

(३) **कुल्लूकः**। **निधीनां** पुरातनानामस्वकीयानां विद्वद्ब्राह्मणेतरलब्धानां सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानानां **चार्धहरो राजा** यस्मादसौ रक्षति **भूमेश्च** प्रभुः॥ ३९॥

(४) **राघवानन्दः**। विद्वद्ब्राह्मणेतरनिधिलाभे राजांशभागित्याह **निधीनामिति**। **हि**र्हेतौ। **निधीना**मस्वामिकानां **पुराणाना**मस्वकीयानाम्। **धातूनां** सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानिनां च भूमेरधिपतिरिति लिङ्गात् अर्थशब्दोऽत्र षष्ठांशवाची समासनिविष्टत्वात्। तथा च याज्ञवल्क्यः। इतरेण निधौ लब्धे राजा षष्ठांशमाहरेत्। अनावेदितविज्ञातो दाप्यस्तं दण्डमेव चेति॥ अनावेदितविज्ञातः मया प्राप्तमित्यनुक्ते यदि राज्ञा विज्ञात इत्यर्थः॥ ३९॥

(५) **नन्दनः**। अर्धग्रहणे हेतुमाह निधीनां हीति। **धातूनां** हेमरूप्यादिलोहगणानां मृतिकाविशेषाणाम् ।।३९।।

(७) **मणिरामः**। **पुराणानां** स्वकीयानां विद्वद्ब्राह्मणेतरलब्धानां **धातूनां च** सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानानां च ।।३९ ।।४०।।

(८) **गोविन्दराजः**। **निधीनामिति**। चिरन्तनानां निधीनामस्वामिकानां अन्येनापि लब्धानां भूमिगतानाञ्च सुवर्णानां अर्धहरो राजा यस्माद्रक्षणादसौ भूमिस्वामीति ।।३९।।

(९) **भारुचिः**। अर्धभागंशभाक् अर्धशब्दो ह्यंशेऽपि दृश्यते। अधिकः कुलमित्रश्चेति। एवं च सत्यंशप्रकल्प्तिदृष्टगुणापेक्षया राजाभिप्रायेण वा कल्पयितव्या। तथा च समग्रविभागार्थोऽप्यर्धशब्दः ।।३९।।

**दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम् ।।**
**राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्विषम् ।। ४० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। चौरैर्यन्नीतं किञ्चिद्धनं तद्राजा प्रत्याहृत्य नात्मन्युपयुञ्जीत। किं तर्हि य एव मुषितास्तेभ्य एव प्रतिपादयितव्यम्। **सर्वग्रहणेन** च चण्डालेभ्योऽपि देयमिति। 'चौराहृतम् इत्यन्यस्मिन्पाठे चौरैः आहृतमिति विगृह्य 'साधनं कृतेति' समासः। पाठान्तरे चौरहृतमिति तृतीयेति योगविभागात्पूर्ववद्वा समासः। अयं त्वत्रार्थो यच्चौरैर्हृतमशक्यप्रत्यानयनं तद्राज्ञा स्वकोशाद्दातव्यम्।

उत्तरश्लोकार्धं एवं योजनीयः। **राजा तदुपयुञ्जान इति**। अनेकार्थत्वाद्धातूनामुपपूर्वो युजिर्लक्षणयाऽप्रतिपादन एव द्रष्टव्यः। यो ह्यन्यस्मै प्राप्तकालं धनं न ददाति स्वप्रयोजनेषु विनियुङ्क्ते तेन तदीयमेव तदुपयुक्तं भवतीति युक्तमुच्यते। **राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्विषम्। किल्विषं** पापम् ।।४०।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। चोरैर्हृतं चोरेभ्य आकृष्य ।।४०।।

(३) **कुल्लूकः**। **यद्धनं चौरैर्लोकानामपहृतं तद्राज्ञा चौरेभ्य** ाहृत्य धनस्वामिभ्यो देयं **तद्धनं राजा** स्वयमुपयुञ्जानश्चौरस्य पापं **प्राप्नोति** ।।४०।।

(४) **राघवानन्दः**। चोराल्लब्धं सर्ववर्णेभ्यः धनस्वामिभ्यः दातव्यमित्याह दातव्यमिति। अन्यथा तदुपभुंजानो यथेष्टविनियोक्ता। तच्चोरकृतं किल्विषं चोरनिष्ठजातीयं राज्ञस्तादृशप्रायश्चित्तपरं वा ।।४०।।

(५) **नन्दनः**। **दातव्यं** चोरेभ्यः प्रत्याहृत्य कोशाद्वा ।।५०।।

(६) **रामचन्द्रः**। **राजा चौरहृतं द्रव्यं उपभुञ्जानः** स्वीकुर्वाणः **चौरस्य किल्बिषं प्राप्नोति** ।।४०।।

(८) **गोविन्दराजः**। **दातव्यमिति**। यच्चौरैर्हृतं लोकानां धनं तद्राज्ञा चौरेभ्यश्चाहृतं धनं तेभ्यो देयम्। यस्माद्राजा स्वीकुर्वन् चौरस्य यावत्पापं तावत्प्राप्नोति ।।४०।।

(९) **भारुचिः**। अस्मिन् पाठे राज्ञा नीतः स्वद्रव्येण पोषयितव्यः। चौरैरपहृतस्याशक्यादाने। चोराहृतमिति पाठे त्वयमर्थः चोरेभ्य आहृत्य राजा न भागं तस्मात् कञ्चिदुपाददीत। एवं च धर्मयशसी तेनापरित्यक्ते भवतः ॥४०॥

**जातिजानपदान्धर्मान् श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित्॥**
**समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत्॥ ४१॥**

(१) **मेधातिथिः**। कुरुकापिशकाश्मीरादिदेशो नियतावधिः 'जनपदम्'। तत्र भवा धर्मा 'जानपदाः'। केचित् तत्र भवन्ति ये तद्देशव्यपदेश्यैरनुष्ठीयन्ते। अथवा तन्निवासिनो जनाः मंचाः क्रोशन्तीतिवत् जनपदशब्देनाभिधीयन्ते। तेषामनुष्ठेया 'जानपदाः'। 'तस्येदमिति' (पा० ४। ३। १२०) तद्धितः। जातेर्जानपदा **जातिजानपदा** इति षष्ठीसमासः। जातिमात्रविषया देशधर्मा राज्ञा परिपालनीयाः। **समीक्ष्य** विचार्य। किमाम्नायैर्विरुद्धा अथ न—तथा पीडाकराः कस्यचिदुत न—एवं विचार्य येऽविरुद्धास्तान्**प्रतिपादयेद**नुष्ठापयेदित्यर्थः। तथा च वक्ष्यति "सद्भिराचरितं यत्स्यात्" इति, (८।४६)। अथवा जातयश्च ते जानपदाश्चेति विशेषणसमासः। **जाति**शब्देन च नित्यत्वं लक्ष्यते। प्रशंसामात्रं चैतद्देशधर्माणाम्। यथा जातिर्नित्या एवं देशधर्मा अपि शास्त्राविरुद्धा नित्याः। ते नित्यवदनुष्ठेया दृष्टार्था गोप्रचारोदकक्षरणादयः यथा ग्रामीणा अत्र प्रदेशे गावो न चारणीया इति समयमाश्रयन्ति कस्यचित्कार्यस्य सिद्धार्थं तत्र यो व्यतिक्रामति स राज्ञा दण्ड्यः। अथवा जनपदे भवा 'जानपदा' देशनिवासिन उच्यन्ते। जात्या जानपदा 'जातिजानपदाः'। जातिर्जन्मोत्पत्तिरिति यावत्। एतेन देशसम्बन्धस्य पुरुषाणां नित्यता लक्ष्यते। ये तद्देशजास्तद्देशाभिजनास्तन्निवासिनश्च गृह्यन्ते तेषाम्। सर्वविशेषणविशिष्टानामनिदं प्रथमतो जाता ये धर्मास्ते जातिजानपदशब्देनोच्यन्ते। 'वृद्धाच्छेति' तद्धिते प्रसक्ते छान्दसत्वादणेव कृतः। अथवाऽभेदोपचारात् पुरुषशब्दस्तत्सम्बन्धिषु धर्मेषु प्रयुक्तः। तेनायं देशनियमो धर्माणां स एवंविधात्पुरुषात्प्रतिद्रष्टव्यः। एते हि देशधर्मा म्लेच्छानां न पुनरार्याणाम्। ते हि तिर्यक्समानधर्माणोऽन्यत्रानधिकृताः स्वसमाचारप्रसिद्धं धर्ममनुतिष्ठन्ति मातृविवाहादि। सोऽयं सार्वभौमेन न निवारणीयः। स्वदेशाचारवतां तेषां जातिधर्मोऽयं जनपदनिवाससम्बन्धेनाभ्यनुज्ञानात्। आम्नायविरोधोऽप्यत्र नास्ति। अधिकृतानां विरोधात् विरोधो न तिरश्चाम्। ननु "अहिंसा सत्यमक्रोधः शौचमिन्द्रियसंयमः" इति प्रतिलोमाधिकारेणैवोक्तम् (१०। ६३)। म्लेच्छाश्च प्रतिलोका एव। तत्र यदि मातृविवाहे मूत्रोत्सर्गे चोदकशुद्धाभावे न दुष्यति क इन्द्रियसंयमः कीदृशं वा शौचमिति। उक्तमेतत्। आर्यावर्तमध्यवर्तिनामेते धर्माः शौचादयः। चातुर्वर्ण्ये तु तत्तद्देशनियमो धर्माणां नास्ति। केचिददृष्टार्था देशधर्मा इति वक्ष्यामः। एककार्यापन्ना वणिक्कुरुकुसीदचार्तुविद्यादयः। तेषां धर्माः 'श्रेणीधर्माः'। यथा केचन वणिङ्महत्तरा वचनेन परिच्छिन्नं राज्ञो भागं प्रयच्छन्ति इमां वणिज्यां वयमुपजीवाम एष ते राजभागोऽस्माकं यावल्लाभोऽस्तु न्यूनोऽधिको वा। तत्र राज्ञाऽभ्युपगते वणिज्ये लाभातिशयार्थं राष्ट्रविरोधिनीं चेतरेतरव्यवस्थां कुर्वन्ति, इदं

द्रव्यमियन्तं कालमविक्रेयम्, अयं राज्ञोऽपदेशेनार्थो दण्डः पतति, देवतोत्सवार्थो वा। तत्र यदि कश्चिद्व्यतिक्रामति स एवं श्रेणीधर्मव्यतिक्रामन् दण्ड्यः।

**कुलधर्मा इति।** 'कुलं' वंशः। तत्र प्रख्यातमहिम्ना पूर्वजेन धर्मः प्रवर्तितो भवति योऽस्मद्वंशजः कुतश्चन धनं लभेत स नादत्वा ब्राह्मणेभ्योऽन्यत्र विनियुञ्जीतेत्यादयो धर्माः। तथा सति योग्यत्वे य एव पूर्वपुरुषाणां याजकाः कन्यादिसंप्रदानभूता वा त एव कार्याः। तदतिक्रामन् राज्ञोऽनुष्ठापयितव्यः।

एतेषां च सामवायिकत्वादधर्मत्वशङ्क्या पुनर्वचनम्। न चायं संविद्व्यतिक्रम इति वक्ष्यामः॥ ४१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। जातिर्ब्राह्मणादिः जनपदोऽनेकग्रामसमुदायः**, तद्वासिनो **जानपदाः** तत्संगतान्। **श्रेणी** पाषण्डवणिगादिगणः **कुलं** वसिष्ठकुलमित्यादितन्नियतान्**धर्मान् समीक्ष्य** निरूप्य॥ ४१॥

(३) **कुल्लूकः। धर्मान्** ब्राह्मणादिजातिनियतान्याजनादीन् **जानपदांश्च** नियतदेशव्यवस्थितान् आम्नायाविरुद्धान्। देशजातिकुलधर्माश्च आम्नायैरप्रतिषिद्धाः प्रमाणमिति **गौतमस्मरणात्। श्रेणीधर्मांश्च** वणिगादिधर्मान् प्रतिनियतकुलव्यवस्थितान् ज्ञात्वा तदविरुद्धान्**राजाव्यवहारेषु** तत्तद्धर्मान्व्यवस्थापयेत्॥ ४१॥

(४) **राघवानन्दः।** प्रासंगिकं जातिधर्माद्यनुशास्ति **जातीति। जातिधर्मान्** ब्राह्मणादि**जाति**नियमान् याजनादीन् च **जानपदांश्च** नियतदेशव्यवस्थितान्। तथा च **गौतमः।** 'आम्नायाविरुद्धादेशजातिकुलधर्माप्रतिषिद्धाः प्रमाणमिति। **श्रेणीधर्मान्व**णिगादिधर्मान्। **कुलधर्मान्** तत्तत्कुलप्रतिनियतान्। **कुलं** वंशः ब्राह्मणादिर्मूर्धाभिषिक्तादिरिति वा। एतेषामेतदेव **स्वधर्ममिति वीक्ष्य परिपालयेत् राजेति**॥ ४१॥

(५) **नन्दनः। जाति**धर्मो ब्राह्मणादीनां प्रतिनियतो धर्मः। **जानपदो** धर्मो देशधर्मः यथा दाक्षिणात्यानां मातुलसुतापरिणयनम्। **श्रेणीधर्मो** वणिक्कुशीलवादिततं निकायधर्मः। यथा इयन्तं कालमिदं द्रव्यं विक्रेतव्यं न परमिति। **कुलधर्मः** पूर्वशिखापरशिखादिनियमः॥ ४१॥

(६) **रामचन्द्रः। श्रेणीधर्माः** पाषण्डवणिगादिधर्माः। एकजात्योपजीविनः **श्रेणयः**॥ ४१॥

(७) **मणिरामः। जातिधर्मान्** याजनादीन्। **जानपदान् धर्मान्** नियतदेशव्यवस्थितान् आत्मीयाऽविरुद्धान्। श्रेणीधर्मान् वणिगादिधर्मान्। कुलधर्मान् नियतकुलस्थितान्। स्वधर्मान् जात्यादिधर्मान्। स्वपदेन जातिजानपदादिर्न तु राजाज्ञेयः॥४१॥४२॥

(८) **गोविन्दराजः।** जातिधर्मान् जानपदानिति। जातिधर्मान् अध्ययनादीन् जानपदाँश्च नियतदेशव्यवहारान् अविरुद्धान् एवं वणिक्कर्षणादिगतान् श्रेणीधर्मान् कुलधर्माँश्च प्रतिनियतकुलस्थितान् ज्ञात्वा यस्य यः स्वधर्मस्तं तथा तत् स्थापयेत्। अतश्च तद्विरुद्धव्यवहारिषु वादिनं निगृह्णीयात्॥ ४१॥

(९) **भारुचिः**। जातिधर्मः प्रसिद्धो। जानपदः सामयिकः। न शास्त्रप्रमाणः गोप्रचारोदकरक्षणादिः, श्रेणीधर्मो वणिक्कारुककृषीवलानां स्वकार्यसिद्धचर्थप्रवर्तितनियत-सामयिकमपि धर्मं राज्ञा प्रतिपादनीयम्। न सामयिकोऽयमित्यनास्था कर्तव्या यदि च राजा सामयिकेष्वनादरं कुर्यात् ततो व्यवस्थाभङ्गात् मात्स्यन्यायः प्रवर्तते ॥ ४१ ॥

**स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोऽपि मानवाः ॥**
**प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥ ४२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वोक्तस्य जानपदादेर्धर्मस्य दृष्टादृष्टताऽनेन प्रदर्श्यते। **स्वानि कर्माणि** कुलस्थित्यनुरूपाणि ये कुर्वन्ति ते दूरस्था अपि **प्रिया भवन्ति**। सर्वस्यान्यो निकट-वर्त्ती संसर्गातिशयात्प्रियो भवति। स्वकर्मकारी तु दूरस्थ एव प्रियः। **स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिता** इत्यनेन परकर्माननुष्ठानमाह। ये न परकर्माणि कुर्वन्ति ते सर्वस्य प्रिया भवन्तीति श्लोकार्थः ॥ ४२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दूरे देशे देशान्तरे अतो लोका विरुद्धत्वात्स्वस्वजात्यादिधर्म एवं ग्राह्यस्तेषामित्यर्थः। स्वे स्वे धर्म इति प्रियत्वे हेतुतया पुनरुक्तम् ॥ ४२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्मात् **स्वानीत्यादि** जातिदेशकुलधर्मादीन्यात्मीयकर्माण्यनुतिष्ठन्तः **स्वे स्वे च** नित्यनैमित्तिकादौ कर्मणि वर्तमाना **दूरेऽपि सन्तः** सान्निध्यनिबन्धनस्नेहाभावेऽपि लोकस्य **प्रिया भवन्ति** ॥ ४२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अत्रैवार्थवादमाह **स्वानीति**। **स्वे स्वे** नित्ये नैमित्तिके च। यथोक्तकारी हि दूरे वर्तमानलोकस्य रक्षणादौ लोकने न रक्षणसमर्थस्य राज्ञः सामान्योक्तिर्वा ॥ ४२ ॥

(५) **नन्दनः**। उक्तार्थं प्रशंसामाह **स्वानि कर्माणीति** ॥ ४२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। यस्मात्**स्वानीति**। जातिकुलदेशधर्मण्यनुतिष्ठन्तः सन्तोऽपि निष्कर्षस्नेहाविदूरेऽपि वर्तमाना मनुष्याः स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिता परकर्माणि परलोकस्य प्रिया भवन्ति ॥ ४२ ॥

(९) **भारुचिः**। सामयिकधर्मानुपालनप्रशंसेयम्। प्ररोचनार्था ॥ ४२ ॥

**नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः ॥**
**न च प्रापितमन्येन ग्रसेदर्थं कथंचन ॥ ४३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **कार्यं** विवादवस्तु। तद्राजा **स्वयं** न प्रवर्तयेत्। कस्यचिद्द्वेष्य-स्योपघातार्थं धनिनो वा धनग्रहणार्थं न तदीयमृणिकमन्यं चापराद्धमुद्वेजयेत्—एष ते धर्म इति किमिति ममाग्रतो नाकर्षति एतेन वा तावदपराद्धं यावदहमेनं निर्धातयामीयेत्वं राज्ञा न कर्तव्यम्। सत्यपि द्वेषे धनलोभे वा। **न च प्रापितमावेदितमन्येनार्थिना ग्रसेत्** निगिरे-न्नोपेक्षेतेति यावत्। अवधीरणायां निगिरेदिति प्रयुज्यते। तत्समानार्थश्च ग्रसतिः। तथा

च वक्तारो भवन्ति यावत्किंचिदस्योच्यते तत्सर्वं निगिरति न किंचिदयं प्रतिवक्ति। अन्ये तूत्तरं श्लोकार्द्धमेवं व्याचक्षते। **न च प्रापितं** व्यवहारादन्येन प्रकारेणार्थं धनं ग्रसेत् स्वीकुर्यात्। यदि हि राजा छललेशोद्देशिकया धनदण्डे प्रवर्तेत ततः परलोके दोषो द्रष्टव्यः। स्वराज्ये चोपघातः स्यात्। अथेदमपरं केषांचिव्याख्यानम्। **नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा।** साक्षादुपलभ्याप्यपकार्यकारिणां न स्वयं किंचिद्ब्रूयात्, तस्य पराधीनेन यावद्व्यवहारेण नाकृष्टः। येन परव्यवहारदर्शनमेव पराजितस्य निग्रहाय भवति, न राजा। एतच्च ऋणादानादिष्वेव द्रष्टव्यम्। ये तु स्तेनसाहसिकादयः कण्टकस्थानीयास्तान् राजा स्वयमेवावगम्य गृह्णीयात्। शेषं समानम्। **नाप्यस्य पुरुषः इति** अस्य राज्ञः पुरुषोऽधिकारी मनुष्यः ॥ ४३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। नोत्पादयेदिति।** एतच्च ऋणादानादौ न तु साहसादावपि तत्र स्वयमप्यन्वेष्यत्वात्। प्रापितमन्येनेति स्वयमृणादिदत्तमृणिनाऽदीयमानं राज्ञे यदा निवेद्येत तदा **न ग्रसेन्नोपेक्षेत** न वा प्रापितमित्यपरः पाठः **अन्येनान्यतरेण** प्रापितं अनुप्रदर्शितप्रमाणं **न ग्रसेत्** ग्रासयेदन्यतरस्मै दापयेत् ॥ ४३ ॥

(३) **कुल्लूकः।** प्रासङ्गिकमिदमभिधाय पुनः प्रकृतमाह **नोत्पादयेदिति।** राजा राजनियुक्तो वा धनलोभादिना कार्यमृणादिविवादं नोत्पादयेत्। तदाह कात्यायनः 'न राजा तुविदत्वेवं धनलोभेन वा पुनः। स्वयं कर्माणि कुर्वीत नराणामविवादिनाम्। न चार्थिना प्रत्यर्थिना वाऽऽवेदितं विवादं धनादिलोभेनोपेक्षेत ॥ ४३ ॥

(४) **राघवानन्दः।** प्रासंगिकमुक्त्वा प्राकृतमाह नेति। कार्यं धनलोभादिना ऋणादिविवादं **नोत्पादयेन्नोत्थापयेत्** अस्य राज्ञः। अनेन नियुक्तः पुमान्। अन्येनोत्कोचादिना स्वयं वा ग्रसेत् प्राप्तं दत्तं वा गृह्णीयात् अर्थं ग्रसित्वा कार्यार्थिनां कार्यं नोपेक्षेतेति। व्यवहारादन्येन प्रापितं वा **न गृह्णीयात्** राज्ञो यन्त्वात्प्राप्तनिध्यादेर्व्यवस्थोक्तेः ॥ ४३ ॥

(५) **नन्दनः।** परिभाषान्तरमाह **नोत्पादयेदिति।** कार्यं विवादपदं दण्डदशबन्धात्-नोपेक्षया स्वयन्नोत्पादयेत्। अन्येन व्यवहारवता प्रापितमावेदितं व्यवहारं न ग्रसेन्न निर्हरेत् ॥ ४३ ॥

(६) **रामचन्द्रः। राजा कार्यं नोत्पादयेत्। अस्य** राज्ञः **पुरुषः नोत्पादयेत्। च** पुनः **अन्येन** वादिना वा **प्रापितं** निवेदितं अर्थं कार्यं कथंचन न ग्रसेत् नोपेक्षेत ॥ ४३ ॥

(७) **मणिरामः। कार्यं** ऋणादिविवादं नोत्पादयेत् धनलोभादिना अर्थं विवादं प्रत्यनेन अर्थिना प्रत्यर्थि**प्रापितं** आवेदितं **न ग्रसेत्** धनलोभादिना उपेक्षां न कुर्यात् ॥ ४३ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** एवं धनप्रसङ्गो न प्रसक्तानुप्रसक्तिकयाभिधायाधुना प्राकृतमाह। नोपादयेत्स्वयं कार्यं राजा नान्यस्य कस्यचिदिति। यद्यपि पश्येत्कार्याणि कार्यिणामित्युक्तं भवति तथापि तदाक्षेपान्तरेण ऋणादानादिराजकर्तव्यसाहसाधिरक्षणवर्जितेषु राजा स्वयमुपजापेन व्यवहारान्नोत्पादयेत्। नापि राजाऽधिकृतः स्वयमुत्पादयेत् तथा प्रत्यर्थिनामपि तदा वेदितव्यं कार्यार्थं केनापि प्रकारेण रागद्वेषादिना नोपेक्षेत ॥ ४३ ॥

(९) **भारुचिः**। नोत्पादयेत्स्वयमुपजापेनार्थिनः कस्यचिदुपघातस्य पौरजानपदस्य द्वेषाद्धनवतो वा लोभेन राजा नापि तत्प्रकृतो व्यवहाराणां द्रष्टा राजब्राह्मणः न चाप्रापितं व्यवहारेण तस्मादन्येन प्रकारेण ग्रसेदर्थं कथञ्चन, अथवा पाठान्तरं व्याख्यायते, न च प्रापितं व्यवहारादन्येन प्रकारेण ग्रसेदर्थं कथञ्चन, अन्यथा हि लोभाद्राज्ञः परलोकोऽपघातश्च स्यात् दृष्टश्च राज्यतन्त्रोऽपघातदोषः अन्यस्त्वाह—नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा सा कदाप्युपलभ्य कार्यकारिणम्। नापि तत्प्रकृतो राजपुरुषः येन व्यवहारदर्शनमेव। जयपराजययोरिष्टेन तु राजेति। नियमो राज्ञ उच्यते अतोऽस्य स्वयं दृष्ट्वाप्यतिक्रमणादिकमुत्सृजतो न दोषोऽस्ति। येन राज्ञापि नार्थिना स्वप्रत्ययेन व्यवहारेऽवस्थाप्यमाने लोभरागद्वेषप्रतीतौ राज्यतन्त्रविरोधः प्रसज्यते। एवं च बृहस्पतिसमेनापि व्यवहारेणाप्राप्यमाणं न ग्राह्यम्। तथा ह्यस्य सर्वलोकानुरञ्जनाद्धर्मं राजतन्त्रयशांसि प्रथन्ते। एवं च साक्षिप्रत्याख्यानेनाप्यनुमानप्रमाणशुद्धिमाश्रित्य व्यवहारेषु तत्प्रधानः स्यादन्वीक्षिक्यां चाविनीतः॥ ४३॥

**यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम्॥**
**नयेत्तथाऽनुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम्॥ ४४॥**

(१) **मेधातिथिः**। यदुक्तं न स्वयं दृष्ट्वाऽपि राजा सहसा कंचिदाक्रमेत वा निगृह्णीयाद्यन्मर्मणाऽप्येतत्संभवति। कथं पुनरेतदवगन्तव्यम् किं परिहासकृतमेतदुत क्रोधाद्यनुबन्धकृतमिति। अत आह **अनुमानेनैतज्ज्ञातव्यम्**। यथा **मृगयुर्मृगव्याधो** वृथा मृगं दृष्टिपथातिक्रान्तं छिद्रनिसृतैरसृक्पातैः स्रवद्भिः शोणितैः **पदं मृगस्य नयत्या**सायदत्येवं राजाऽनुमानेन परोक्षे प्रत्यक्षे वाऽर्थकारणं निश्चिनुयात्। **धर्मश्च** कृतव्यवहारविषयस्तत्वावगमः। उक्तस्याप्यनुमानस्य पुनर्वचनं स्मृतिदाढर्चार्थम्॥ ४४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यथेत्यनुमानव्यवहारदर्शनस्योक्तम्॥ ४४॥

(३) **कुल्लूकः**। यथा मृगस्य शस्त्रहतस्य रुधिरपातैर्व्याधः पदं स्थानं प्राप्नोति तथानुमानेन दृष्टप्रमाणेन वा धर्मस्य तत्त्वं निश्चिनुयात्॥ ४४॥

(४) **राघवानन्दः**। परनिष्ठाधर्मज्ञानदृष्टान्तमाह **यथे**ति। असृक्पातैर्गात्रात्पतितैर्मृगयुना घातितस्य मृगस्य पदमवस्थितिस्थलं नयेज्जानीयात्तथा। मृगयुर्व्याधः। अनुमानेन बाह्यैर्विभावादित्युक्तेन। पदं तत्त्वम्॥ ४४॥

(५) **नन्दनः**। न केवलं साक्ष्यादिभिरर्थो निर्णेतव्यः किन्त्वनुमानेनापीत्याह। **यथा नयत्यसृक्पातै**रिति पदं निर्णयम्॥ ४४॥

(६) **रामचन्द्रः**। दृष्टान्तमाह **यथे**ति। **मृगयुः** लुब्धकः। **मृगस्य** असृक्पातैर्यथा पदं नयति तथाऽनुमानेन हेतुना धर्मस्य पदं नृपतिः नयेत्प्रापयेदित्यर्थः॥ ४४॥

(७) **मणिरामः**। **मृगयुर्व्याधः पदं** स्थानं **नयति** प्राप्नोति तथा **नयेत्** निश्चिनुयात्॥ ४४॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यथेति**। यथा मृगस्य विद्धस्य सतो दृष्टिनष्टस्य पदं व्याधो रुधिरस्रावबिन्दुदर्शनेन नयति तथा राजाऽनुमानप्रमाणेन धर्मस्य गतिं नयेत्। विद्वद्भिः धर्मप्रधानैर्द्विजातिभिर्यच्छास्त्राविरुद्धमासेवितं तद्देशकुलजातीनामत्र रूपं कल्पयेत्। वादिवाद्याशयग्रहणाय यत्नातिशयं कुर्यात् इत्येवमर्थम्॥ ४४॥

(९) **भारुचिः**। तत्र दृष्टान्तमाह पूर्वश्लोकार्धेन तथा च प्रत्यक्षागमावुत्सृज्यानुमानप्रधानौ व्यवहारगतौ स्यादित्यनुमानप्रशंसैषा। येन सर्वलोकप्रत्यक्षोऽर्थः। तथा च शेषशेषिभावाद् पुनरुक्तौ पूर्वोत्तरश्लोकौ अधुना व्यवहारेषु परमार्थावधारणार्थमिदं द्रष्टुः नान्यस्तुतिः यैः प्रत्यक्षानुमानप्रत्याख्यानेन वेदितव्या। तथा च शेषशेषिभावाद्पुनरुक्तौ पूर्वोत्तरश्लोकौ। अधुना व्यवहारेषु परमार्थावधारणार्थमिदं द्रष्टुः प्रसंख्यानमुच्यते॥ ४४॥

**सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणम्॥**
**देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः॥ ४५॥**

(१) **मेधातिथिः**। **व्यवहारविधौ** व्यवहारकर्मणि **स्थितः** प्रवृत्तो न केवलं व्यवहाराक्षराणि संपश्येद्यावदेतदपरं सत्यादि। तत्र सत्यस्य दर्शनम्—यद्यप्यर्थिप्रत्यर्थिनोरन्यतरेण शालीनतया परिपूर्णाक्षरं नाभिहितं तथापि यदि राजा प्रमाणान्तरतः पूर्वोक्ताद्वाऽनुमानादेव कथंचिदीदृशोऽयमर्थ इति निश्चेतुं पारयेत् तदा तदाश्रयेन्नोपेक्षेत। अनेनैतन्न सर्वमुक्तमिति। तदुक्तम् (याज्ञ. व्यव. १९) "छलं निरस्य भूतेषु व्यवहारान्नयेन्नृप इति"। अर्थस्य दर्शनम्—अर्थशब्दो धनवचनः प्रयोजनवचनो वा। तत्र यदि महान्तमर्थमासादयेत्तदा त्यक्त्वाऽप्यन्यानि राजकार्याणि नोद्विजेत, व्यवहारेक्षणं कुर्यादेव। अथवा यदि कश्चिद् ब्रूयात्साक्षिभिरर्थ एतस्माद् गृहीतोऽन्येन वा सभ्येन तत्र निरूपयितव्यं यदेतद् व्यवहारपदं यदि स्वल्पं न संभवति धनग्रहणम्। अथ गुरुसभ्याः साक्षिणश्च दैन्यं गतास्तदा संभावनीयं प्रमाणान्तराच्च निश्चेतव्यम्। **एतच्चात्मानं साक्षिणं** कृत्वा गवेषणीयम्। एतदुक्तं भवति कण्टकशोधनन्यायेन चारैश्चारयेत्। अथवाऽऽत्मानं संपश्येदात्मनोऽवस्थां संपश्येत्कोशक्षयं महाकोशतां वा। अस्मिन् पक्षे साक्षिण इति स्वतन्त्रं पदम्। देशस्य दर्शनम्—क्वचिदल्पोऽप्यर्थो महत्त्वमासादयति, महानपि योऽन्यत्र स क्वचिल्लघुर्भवतीति। एतद्देशस्य दर्शनम्। एवं कालोऽपि द्रष्टव्यः। **रूपं** व्यवहारवस्तुस्वभावः। तस्य गुरुलघुतां पश्येदिति। अन्यैस्तु व्याख्यातम्। सत्यार्थयोः सारफलतां पश्येदात्मानं साक्षिणं कृत्वा। एतदुक्तं भवति अर्थात्सत्यं गुरुत्वेन महाप्रयोजनत्वादुभयोर्लोकसाधनरूपतयाऽऽश्रयितव्यम्। अर्थस्त्यक्तव्योऽसारत्वात्। देशः स्वर्गादिः सत्यसमाश्रयप्राप्यः। कालश्चिरं तत्र वासः। रूपं सुरूपं सुन्दरं मनोहरम्। एतदेव विपरीतम्। सत्यत्यागेन केवलार्थसमाश्रयणात्॥ ४५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **सत्यं** को भागः सत्य इति। **अर्थं** दण्डादिसिद्धं। **आत्मानं** राजानं पश्येत्। ततो राजवृत्तमनुगच्छेत् तथा **साक्षिणो देशादींश्च संपश्येत्** प्रयत्नेनानुसंदध्यादित्यर्थः देशमात्रायमाचार इति। **कालमत्रैतद्योग्यमिति**। रूपमर्थिप्रभृतिं नामाकारम्॥ ४५॥

(३) **कुल्लूकः**। व्यवहारदर्शनप्रवृत्तो राजा छलमपहाय सत्यं पश्येत् तथार्थं च। अर्शादित्वान्मत्वर्थीयोऽच्। अर्थवन्तं गोहिरण्यादिधनविषयस्थं व्यवहारं पश्येत् नत्वहमनेनाक्षिनिकोचननेनोपहसित इत्यादि स्वल्पापराधं आत्मानं च तत्त्वनिर्णये स्वर्गादिफलभागिनं साक्षिणः सत्यवादिनः **देशं कालं** च देशकालोचितं स्वरूपं व्यवहारस्वरूपं गुरुलघुतादिकं **पश्येत्** ॥ ४५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच, **सत्यमिति**। **व्यवहारविधौ** तत्तत्कर्मणि व्यवस्थितो नृपतिः छलमपहाय **सत्यं पश्येत् अर्थं** हिरण्यादिविषयकव्यवहारम् **आत्मानं च** तत्त्वनिर्णयेन स्वर्गादिफलभागिनम्। **साक्षिणो** यथा दृष्टश्रुतार्थवादिनः। **देशं** वाराणस्यादिकम्। **कालं** दुर्भिक्षादिरूपं लघुगुरुभावादिकं च। पश्येदित्यनुषज्यते ॥ ४५ ॥

(५) **नन्दनः**। **सत्यं** संपश्येत् अस्मिन् ,व्यवहारोपवादिनोः किं प्रयोजनं भविष्यतीति पश्येत् **साक्षिणः पश्येत्** यथोक्तगुणानामपि साक्षिणां रागद्वेषौ पश्येत्। इङ्गितादिभिर्देशं कालं च पश्येत्। अस्मिन्**देशेऽस्मिन्कालेऽयमर्थो** युज्यते न वेति **पश्येत्**। विवादविषय**स्यार्थस्वरूपं च पश्येत्** ॥ ४५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अर्थं** कार्यम् ॥ ४५ ॥

(७) **मणिरामः**। **व्यवहारविधौ स्थितः** व्यवहारदर्शनार्थं भासते स्थितः। **अर्थं**: गोहिरण्यादिविषयं व्यवहारं **सत्यं** छलमपहाय तत्त्वतः **रूपं** व्यवहारस्वरूपम् ॥ ४५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सत्यमिति**। व्यवहारकर्मप्रवृत्तो राजा सत्यं द्रष्टाऽद्रष्टहेतुतया संपश्येत्। अर्थञ्च सारासारत्वेन आत्मानं च सदसत्कर्मणा, देशं च समनन्तरं राजान्तरं विहारं, कालं च जीवितसम्बन्धमतिक्रान्तबलं रूपं चेदं व्याधिजराभोज्यप्रायं लोभादिनास्खलनार्थं संपश्येत् ॥ ४५ ॥

(९) **भारुचिः**। सत्यार्थयोः सारफल्गुतां पश्येदात्मानं साक्षिणं कृत्वा तथात्मनो दहति स्थाने स्वर्गादौ धर्मेणावस्थानम् ? अवस्थानकालं च तस्य महान्तं अथवा कालं च वायुषः इहाल्परजसाऽभिभवादात्मनो रूपविपर्ययः। अनेकव्याधियोगाश्च, अथवा रूपं न नमनस्कारं निरवद्यमप्रत्यनीकं निरतिशयसुखोपभोगं स्वर्गवासिनां अभिसमीक्ष्यार्थत्यागेन सत्यं परिगृह्णीयात्। स्वर्गप्राप्तिसाधनमथवा पाठान्तरमस्येदमन्यत् सत्यमर्थेषु व्यवहारं सम्पश्येत्। न छलमिति छलप्रतिषेधार्थोऽयमारम्भयत्नः। शेषमन्यद्यथोक्तम् ॥ ४५ ॥

**सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः ॥**
**तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥ ४६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सन्तः** प्रतिषिद्धवर्जकाः, **धार्मिका** विहितानुष्ठायिनः। यद्यप्येक एव शब्द उभयमर्थं प्रतिपादयितुं शक्नोति तथापि भेदोपादानाद्विषयविभागे नैवं व्याख्यायते। **तैर्यदाचरितमनुपलभ्यमानश्रुतिस्मृतिवाक्यं तद्देशकुलजातीनां प्रकल्पयेदनुष्ठापयेत्**। **अविरुद्धं** श्रुतिस्मृतिभिरुपलभ्यमानाभिः। यदुक्तं "जातिजानपदान्धर्मान्" (४१) इत्यत्र

श्लोके देशकुलाद्याचारस्य प्रामाण्यं तस्यानेन विशेषः कथ्यते। आम्नायेनाविरोधेन तत्प्रमाणम्, न विरोधे तत्प्रमाणम्। तेन दृष्टार्थान्यपि ग्रामदेशराजकार्याणि शास्त्रविरुद्धान्यादरणीयानि, न विरुद्धानि। यथा क्वचिद्देशऋणिक आत्मानं विक्रय्य धनं दाप्यते। तच्च "कर्मणाऽपि समम्" इत्यनेन विरुद्धम्। अन्यच्च श्लोकेन दर्शितम्। अन्यस्य त्वाचारस्य शिष्टसम्बन्धितयैव प्रामाण्यमुक्तम्। "आचारश्चैव साधूनाम्" इति। न च तद्विरुद्धार्थसमाचरणेन साधुत्वमुपपद्यते। तस्माच्च नादृष्टाय तद्विषयोऽयमुपदेशः। अन्यस्त्वाह। देशान्तरे धार्मिकैः सद्भिर्द्विजैर्यदविरुद्धं श्रुत्या स्मृत्यन्तरेण वाऽऽचर्यते तद्देशान्तरेऽपि राजा प्रकल्पयेत्। यथोद्वृषभयज्ञादय उदीच्येषु प्रसिद्धास्ते प्राच्यैर्दीक्षिणात्यैः प्रतीच्यैश्चानुष्ठेयाः। कुतः आचाराद्धिस्मृतिरनुमातव्या। स्मृतेः श्रुतिः। सा च यद्येवमनुमीयते उदीच्यैरेतत्कर्तव्यमिति' तत्र तद्धितस्य बहुष्वर्थेषु स्मरणात्तत्र जातस्तत्र भवस्तत आगतस्तमभिप्रस्थितः शेष इति चैतस्य लक्षणविकारोभयरूपत्वादन्येष्वप्यर्थेषु प्रतिपदमनुपातेषु तद्धितस्मरणान्नास्त्युदीच्यो नाम य उदीच्य शब्देन निवर्त्येत। ततश्च पुरुषमात्रेणैतत्कर्तव्यमित्यापतति। देशसमाख्यायानियतनिमित्तत्वाभावेनानियामकत्वात्। अथैवं वाक्यमनुमीयते–'उदीच्यां जातेन तद्देशवासिना वा' तदपि व्यभिचारि। तत्र जातोऽपि नान्यत्र करोति, तन्निवास्यप्यन्यत्र जातो न करोत्येव। अथोदग्देशाभिजनस्तन्निवासी वेति–अनित्यत्वादभिजननिवासयोस्तदपि न युक्तमेव। न हि जातिगुणगोत्राणामाभिजननिवासौ नित्यौ। तस्मान्नित्यस्य न कस्यचिदनुष्ठातृणामवच्छेदकस्यानुपपत्तेः सर्वविषया धर्माः। न देशधर्मा नाम केचन सन्ति। अनेनैव न्यायेन कुलधर्मा अपि। कथं 'तर्हि देशधर्माः कुलधर्मा' इति स्मृतिकारैर्भेदेन व्यपदिश्यन्ते। उक्तं दृष्टार्था नियता व्यवस्था। तत्र धर्मस्तस्य च नियम उपपद्यत इति उक्तम्। कुलं च गोत्रैकदेशः। यस्तु कृत्स्नगोत्रधर्मो–यथा 'न वासिष्ठा वैश्वामित्रैः सम्बन्धीयुरिति'–स नित्यत्वाद् गोत्रव्यपदेशस्य नित्य एवेति विरम्यते ।। ४६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सद्भिर्दोषरहितैर्देवादिभिः। तद्वस्तु प्रकल्पयेत् प्रकृष्टं व्यवहारेषु कल्पयेत्। यदि देशाद्यविरोधि विरोधे तु तद्देशादिधर्म एव तद्देशजानाम् एवं सामान्यतो राजधर्मा व्यवहाराऽनुगुणा उक्ताः ।।४६।।

(३) **कुल्लूकः**। विद्वद्भिर्धर्मप्रधानद्विजातिभिर्यदृश्यमानशास्त्रमनुष्ठितं तद्देशकुलजात्यविरुद्धमादाय व्यवहारनिर्णयं प्रकल्पयेत् ।।४६।।

(४) **राघवानन्दः**। **किंच सद्भिरिति। आचरितं** शास्त्रदृष्टमप्यनुष्ठितम् **सद्भिरिति** द्विजातीनां विशेषणम्। शूद्रव्यावृत्त्यर्थम्। धार्मिकैः प्रतिषिद्धवर्जनपुरःसरं धर्मानुष्ठातृभिः तद्देशकुलजातीनामविरुद्धमेव प्रकल्पयेत् प्रमाणं कुर्यात् कुलधर्माश्चेत्यत्रोक्तत्वात् ।।४६।।

(५) **नन्दनः**। तदनुरूपनिर्णयोपायपरिग्रहार्थमशास्त्रीयमपि सद्भिराचरितं धर्ममनुपालयेदित्याह **सद्भिराचरितं यत्स्यादिति**। स्वधर्मनिरता अध्यात्मविदः सन्तो विरुद्धं विरुद्धं चेत्प्रकल्पयेदनुपालयेत् ।।४६।।

(६) **रामचन्द्रः**। अविरुद्धं दण्डं प्रकल्पयेत् ।।४६।।

(७) **मणिरामः**। सद्भिः विद्वद्भिः। आचरितं शास्त्राऽविरुद्धमनुष्ठितम्। तत् **देशमविरुद्धं** देशादविरुद्धमादाय व्यवहारनिर्णयं प्रकल्पयेत्। एतत्सकलव्यवहारसाधारणं परिभाषात्मकमुक्तम् ॥ ४६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। सद्भिरिति। एतच्च विरुद्धव्यवहारेषु वादिनं गृह्णीयादिह च सद्भिराचरितमित्युपादानादिदं सदाचारविषयं जातिजानपदाद्येतत् पुनः सदाचारव्यतिरिक्त-धर्मविषयम् ॥४६॥

(९) **भारुचिः**। सद्भिः प्रतिषिद्धवर्जकैः धार्मिकैश्च विहितार्थानुष्ठातृभिः अथवा धार्मिकैः सद्भिः सच्छब्दः सत्तार्थो न पुनरुक्तसामर्थ्यात् उभयविशेषणैः ब्राह्मणैः अथवा सद्भिरध्ययनविज्ञानवद्भिः धार्मिकैश्च शास्त्रार्थस्थैर्यदाचरितं स्यात् तद्देशकुलजातीनां वेदस्मृतिशास्त्राविरुद्धं प्रकल्पयेत्। तथा च स्मृत्यन्तरं शिष्टाचारश्च। शास्त्राविरुद्धं प्रमाणं न तु तद्विरोधि शुकसारिकाभक्षणादि एवं च यच्छिष्टैः कथञ्चित् कदाचिच्चाचरितं गृह्यमाणार्थतया सद्राज्ञा निपत्य अथवा जातिजानपदादिधर्माणाम् अविरोधार्थं आरम्भः। ते हि दृष्टार्था अपि सन्तः शास्त्राविरुद्धा एव राज्ञा कर्तव्याः। न तद्विरोधिनः। यतः जातिजानपदधर्मांगश्लोकशेष एवायम्। एवं चास्यापौनरुक्त्यं विज्ञेयम्। सद्भिराचरितं यत्स्यादित्येतल्लोकार्थं देशान्तरे धार्मिकैः सद्भिर्यदाचर्यते अविरुध्यं श्रुत्या स्मृत्यन्तरेण वा तद्देशान्तरेऽपि राजा आचरेत् कारयेत्। तथा कुलैकदेशकालनियतं कर्णवेधादितदपि कृत्स्ने कुले प्रकल्पयेत्। एवं विज्ञातिनिमित्तौ यो विवाहकालेऽध्ययनं तदपि सर्वस्यां जातौ प्रकल्पयेत् राजावष्टम्भाच्चैषां धर्माणां प्रथनमवस्थितिः ॥ ४६ ॥

**अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः ॥**
**दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् ॥ ४७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यत्सर्वेषु व्यवहारपदेषु साधारणं तदुक्तम्। विशेषविवक्षाया-मिदमाह। सोपचयं कालान्तरे दास्यामीति यो धनमन्यस्माद् गृह्णाति **सोऽधमर्णः**। यस्तु सोपचयं प्रात्यादास्यामीति प्रयुङ्क्ते **स उत्तमर्णः**। सम्बन्धिशब्दावेतौ। अधमर्णस्यार्थः। अर्थो धनं प्रकरणाद्यदेवोत्तमर्णाय देयं तदेवोच्यते। तस्य सिद्धिरुत्तमर्णं प्रति **निर्णयः**। द्वितीयोऽर्थशब्दः प्रयोजनवचनः। अयं समुदायार्थः। उत्तमर्णेन यदा राजा **चोदितो** भवत्य-धमर्णेन यो गृहीतोऽर्थः स मे सिद्धयतु दापयतु भवान्—राजा त्वधमर्णात्तदा **दापयेद्धनिकस्या-र्थम्**। धनमस्यास्तीति धनिकः। उत्तमर्ण एव च प्रसिद्धया धनिक उच्यते। **दापयेदिति** सम्बन्धाच्चतुर्थी प्राप्ता। सा त्वपूर्णत्वात्संप्रदानभावस्य न कृता। यथा घ्नतः पृष्ठं ददाति, रजकस्य वस्त्रं ददातीति। न ह्यत्र मुख्यो ददात्यर्थः। इहाप्युभयोः सत्वस्य भावात्। उभयोः स्वत्त्वाभावादपरिपूर्णो ददातीत्यर्थः। किमुत्तमर्णवचनादेवासौ दापयितव्यः नेत्याह **विभावितमिति**। यदा निश्चितेन प्रमाणेन धारयतीति प्रतिपद्यते। अथवा **विभावितः** स्वयं प्रतिपन्नः। यतो विप्रतिपन्नस्य वक्ष्यति 'अपन्हवेधर्मस्येति'। कथं पुनः स्वयं प्रतिपन्नो विभावित इत्युच्यते नैष दोषः। विस्मरणे स्वहस्तलेख्यादिना स्वयं प्रतिपन्नश्च भवति। विभावितश्चाप्रतिपन्नश्च जानानोऽपि मिथ्याप्रतिपन्नः ॥४७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ऋणदानमवतारयति **अधमर्णेति**। **अधमर्णेन** गृहीतोऽधमार्णार्थस्तस्योत्तमर्णसिद्धार्थंचोदितो राज्ञा अधमर्णं दापयेत्। **विभावितं** प्रमाणेन ।। ४७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। एतत्सकलव्यवहारसाधारणं परिभाषात्मकमुक्तं संप्रति ऋणादानमधिकृत्याह **अधमर्णेति**। अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थं प्रयुक्तधनसिद्ध्यर्थं धनस्वामिना राजा बोधितो वक्ष्यमाणलेख्यादिप्रमाणप्रतिपादितं धनमुत्तमर्णस्याधमर्णं **प्रदापयेत्** अधमर्णादुत्तमर्णाय दापयेदित्यर्थः ।। ४७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। संप्रति ऋणविषयकव्यवहारमाह **अधमर्णेति**। **अधमर्णार्थसिद्धयर्थं** अधमर्णादर्थस्य सिद्धिरुत्तमर्णेन प्राप्तिस्तदर्थं **चोदितः** प्रार्थितो नृपः। मयैतस्माद्धनं प्राप्यते **यथेति**। विभाषितं संभावितं साक्ष्यादिना धनिकस्योत्तमर्णस्य दापयेदित्यर्थः ।। ४७ ।।

(५) **नन्दनः**। इदानीमाद्यमृणादानं नामव्यवहारपदं तूच्यते। **अधमर्णेति**। ऋणग्राहकोऽधमर्णस्तेन गृहीतार्थस्य लाभार्थमुत्तमर्णऋणप्रयोक्ता ।। उत्तमर्णाधमर्णौ द्वौ प्रयोक्तग्राहकौ क्रमादित्यमरः। तेनोत्तमर्णेन चोदितो राजा धनिकस्योत्तमर्णस्यार्थमधमर्णेन दापयेत्। विभावितमुत्तमर्णेन लेख्यादिना साधितं वा तदर्थस्य विशेषणम् ।। ४७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **उत्तमर्णे** धनिकेन **चोदितो** राजा **अधमर्ण**गृहीतस्य अर्थस्य सिद्ध्यर्थं धनिकस्यार्थं साक्ष्यलेख्यादिभिः स्थिरीकृतं दापयेत् ।। ४७ ।।

(७) **मणिरामः**। इदानीं च ऋणदानमधिकृत्याह **अधमर्णेति**। यस्मै कालांतरेण द्रव्यं दीयते **अधमर्णः**। येन दीयते स **उत्तमर्णः** अधमर्णार्थसिध्यर्थः प्रयुक्तधनप्राप्त्यर्थं नोदितः अयं मम धनं न ददातीति प्रेरितो राजा **विभावितं** प्रमाणेन तद्धनं **दापयेत्** ।। ४७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। एवं सकलव्यवहारसाधारणपरिभाषात्मकमुक्त्वाऽधुना ऋणदानाद्यधिकृत्याह **अधमर्णार्थसिद्धचर्थमिति**। दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णविभावितम्। अधमर्णेन धनग्राहिणा गृहीतं तत्प्राप्त्यर्थं धनस्वामिना राज्ञा ज्ञापितः सन् वक्ष्यमाणलेख्यादिना प्रतिपादितं धनं धनस्वामिनोऽधमर्णं दापयेत् इत्युत्तरप्रपञ्चस्यैवायं सामान्यनिर्देशः ।। ४७ ।।

(९) **भारुचिः**। कृतपरिभाष व्यवहारदर्शनमधुना प्रस्तूयते—अधमऋणे अधमर्णः कोऽसौ ग्रहीता कस्य हेतोः। येनासौ तदृणं सोपचयः प्रतिदेयः परिगृह्णात्यशक्यसंशोध्यं बहुक्लेशं च। दातातूत्तमर्णः। येनासौ सोपचयं प्रत्यादेयं ददाति। अतश्चोत्तमर्णे दीयमाने भवति एवं च सति कालेन द्विगुणीभूते अद्विगुणीभूते वा यदाधमर्णो याचमानस्तद्धनं न ददाति तदा तस्य सिद्धचर्थमुत्तमर्णेचोदितो राजा धनिकस्यार्थं दापयेदधमर्णादधमर्णं वा सामान्योऽयं व्यवहारनिर्देशः ।। ४७ ।।

**यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः।**
**तैस्तैरुपायैः संगृह्य दापयेदधमर्णिकम् ।। ४८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। नेहाप्राप्तार्थादुत्तमर्णाद्राज्ञे भागं वक्ष्यत्यधमर्णाद्दण्डं तत्र स्वभागतृष्णया राजानमुपायान्तरेण धनमार्गणं धनिकानां कारयेयुरतस्तन्निवृत्त्यर्थमिदमुच्यते।

यैर्यैर्वक्ष्यमाणैरुपायैः स्वधनंपूर्तप्रयुक्तमुत्तमर्णं लभेत तैस्तैरधमर्णं दापयेत्। संगृह्य स्थिरीकृत्य अनेनैवोपायेनैतस्मादेतल्लभ्यत इत्येतन्निश्चित्येत्यर्थः। अथवाऽनुकूलमुपसांत्वनग्रहः उत्तमर्णं एव उत्तमर्णिकः उत्तमं च तदृणंचोत्तमर्णं तदस्यास्तीत्युत्तमर्णिक अत इनिठनाविति रूपम्। एवमितरावपि सर्वधनादिषु प्रक्षेप्तव्यावन्यत्र वीरपुरुषकोग्रामइतिवद्बहुव्रीहिणैव सामानाधिकरण्यस्य मत्वर्थे चोक्तार्थाविशेषेण समासः मत्वर्थीयश्च दुर्लभः। वृद्धिलाभार्थं प्रयोगविषयं धनमृणं द्वौ च तस्य सम्बन्धिनः प्रयोक्ता ग्रहीताच प्रयोजकस्य च तदुत्तमं भवति। स्वतन्त्रो धनदाने प्रत्यादानेनच। इतरस्य सोपचय दानादवश्यामत्वाच्चाधमत्वं व्युत्पत्तिमात्रत्वे तद्दृढचैव त्वैतौ प्रयोक्तृग्रहीतृवाचिकौ के पुनस्तत्रोपाया इत्येतत्प्रदर्शनार्थमुत्तरश्लोकः॥ ४८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स्वयमेवोत्तमर्णः शक्तो यथाकुर्यात्तथाह यैर्यैरिति संगृह्यदापयेदुत्तमर्णः॥ ४८॥

(३) **कुल्लूकः**। कथं दापयेदित्याह यैर्यैरिति। यैर्वक्ष्यमाणैरुपायैः संप्रयुक्तमर्थमुत्तमर्णोलभते तैस्तैरूपायैर्वशीकृत्यतमर्थं दापयेत्॥ ४८॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्र यत्नमाधत्ते यैरिति। उत्तमर्णिकः उत्तमं देयत्वेन पूर्वं यदृणं तेन व्याहरतीति। गृहीतेन ऋणेनाधमर्णो निकृष्टो यस्तमधमर्णिकं धनं दापयेद्राजेति शेषः॥ ४८॥

(५) **नन्दनः**। उत्तमर्णकइति स्वार्थेकः साधयेद्दापयेत्॥ ४८॥

(६) **रामचन्द्रः**। तैस्तैरूपायैः अधमर्णिकं संगृह्य नियम्य दापयेदित्यर्थः॥ ४८॥

**धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेनच।**
**प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेनच॥४९॥**

(१) **मेधातिथिः**। तत्र धर्मस्कन्धकरीत्या स्तोकं स्तोकं ग्रहणमिदमद्य इदंश्व इदं परश्वः यथा कुटुम्बसंवाहोऽस्मैवं वयमपि तव कुटुम्बभूताः संविभागयोग्या इत्यादिपठितंप्रयोगो धर्मः यस्तु निःश्वसव्यवहारेण दापयितव्यः। अन्यत्र कर्णोदकवद्धनंदत्वा कृषिवाणिज्यादिना व्यवहारयितव्यं तत्रोत्पन्नंधनं तस्माद् ग्रहीतव्यम्। यस्तु 'व्यवहारो' राजनिवेद्यस्तस्य सर्वोपायपरिक्षये योज्यत्वाब्दलग्रहणेन च गृहीतत्वात्। यस्तु साक्षान्न ददाति विद्यमानधनोऽपि स छलेन दापयितव्यः। केनचिदपदेशेन विवाहोत्सवादिना कटकाद्याभरणं गृहीत्वानदातव्यं—यावदनेन तद्धनं न दत्तम्। आचरितमभोजनगृहद्वारोपवेशनादि। बलं राजाधिकरणोपस्थानम्। तत्र राजा साम्नाऽप्रयच्छंतं निगृह्य च प्रपीड्य दापयतीति। नतु स्वगृहसंबंधिधनादि 'बलं', यतः "प्रकृतीनां राजा" इति पठ्यते अस्मिन्नेव प्रसङ्गे उशनसा। अन्ये तु राज्ञ एवायमुपदेश इति वर्तयन्ति राजधर्मप्रकरणात्। राजा ज्ञापित उपायैरेनं दापयेत्पराजितं स्वयं प्रतिपन्नं च। न तु सहसाऽवष्टभ्य सर्वस्वं धनिने प्रतिपादनीयः। यत उभयानुग्रहो राज्ञा कर्तव्यः सर्वस्वदाने चाधमर्णस्य कुटुंबोत्सादः स्यात्सोऽपि न युक्तः। उक्तं हि।

**"नावसाद्य शनैर्दाप्यः काले काले यथोदयम् ।**
**ब्राह्मणस्तु विशेषेण धार्मिके सति राजनि " इति ॥**

तस्मात् केचनवृद्धचा संपादनीयः । कुटुम्बादधिकधनसंभवे सर्वं दापनीयः । सर्वासंभवे च 'कर्मणाऽपि समं कुर्यात्' इति । अन्यस्मिन्व्याख्याने छलाचारौ राजानमज्ञापयित्वा न कार्यौ ॥ ४९ ॥

**(२) सर्वज्ञनारायणः ।** धर्मेण परस्वानादाननियमजनितपरलोकफलादिकथनेन यथा-द्विनियमनेतिकेचित् । **व्यवहारिण** राजसन्निधौ । **छलेन** व्याजबन्धकादिग्रहेण **आचरितेन** स्वयंप्रायोवेशेन । **बलेन** गृहपतिरोधादिना व्याप्त उक्ताः दानोपाया विशेषतया निर्दिश्यते । ॥ ४९ ॥

**(३) कुल्लूकः ।** तानुपायानाह **धर्मेणत्यादि** । धर्मादिना प्रयुक्तमर्थं साधयेत्तत्र धर्मनाह बृहस्पतिः सुहृत्संबंधिसंदिष्टैः साम्ना चानुगमेन व । प्रायेण वा 'ऋणी दाप्यो धर्मएष उदाहृतः ॥ देये धनेऽधमर्णस्याविप्रतिपत्तौ व्यवहारेण । तथा च वक्ष्यति (८/५१) अर्थ-पव्ययमानंत्विति । **मेधातिथिस्तु** निःस्वो यः स व्यवहरिण दापयितव्यः । अन्यत्कर्मोप-करणधनंदत्वा कृषिवाणिज्यादिना व्यवहारयितव्यः । तदुत्पन्नंधनं तस्मात्तगृह्णीयादिति त्रीण्याह बृहस्पतिः छद्मना याचितं चार्थमानीय ऋणिकाद्धनी । अन्याहृतादिवाहृत्य दाप्य-तेतत्र सोपधिः ॥ दारपुत्रपशून्हत्वा कृत्वा द्वारोपवेशनम् ॥ यथार्थं दाप्यतेऽर्थं स्व-तदाचरितमुच्यते ॥ बध्वा स्वगृहमानीय ताडनाद्यैरुपक्रम । 'ऋणिको दाप्यते यत्र बलात्कारः प्रकीर्तितः ॥ ४९ ॥

**(४) राघवानन्दः ।** स्वयंवा यावत्तत्रोपायानाह **धर्मेणेति** । एतान्पञ्चलक्षयति बृहस्पतिः ॥ धर्मेणेति यथा ॥ सुहृत्संबन्धिसंदिष्टैः साम्ना वानुनयेन च प्रायेणवा ऋणी दाप्योधर्म एष तदादृतः इति ॥ व्यवहारणेति । यथायतोद्रव्यं विक्रीयऋणार्थं चैव गृह्यते ॥ तन्मूल्यमुत्तमर्णेन व्यवहारइति स्मृतः ॥ **छलेनेति** यथा ॥ छद्मना याचितं वार्थमानीय ऋणिकाद्धनी । अन्याहृतादिवाहृत्य दाप्यते यत्र सोपधिरिति । उपधिश्छलं । **आचरितेनेति** यथा दारपुत्रपशून्वध्वा कृत्वा द्वारोपसेवनम् । यदृणी दाप्यते ह्यर्थं तदाचरितमुच्यते ॥ **बलेनेति** यथा ॥ बध्वात्मगृहमानीय ताडनाद्यैरुपक्रमे । ऋणिकोदाप्यते यत्र बलात्कारः सकीर्तित इति बृहस्पत्युक्तधर्मादिना ॥ ४९ ॥

**(५) नन्दनः ।** के ते पुनरुपायास्तानाह **धर्मेणेति** । धर्मेणाधमर्णाय धर्मप्रदर्शनेन । व्यवहारेण व्यवहारबलप्रदर्शनेन । छलेनोत्तमर्णकरिष्यमाणसहसा ह्यपन्यासादिना । **आचरितेन** साधनेन **प्रयुक्तमधमर्णस्योत्तमर्णेन प्रयुक्तमर्थं साधयेत्** । एषामुपायानां पूर्व-पूर्वभावउत्तरो ग्राह्यः पाठक्रमात्समाथ्यांच्च ॥ ४९ ॥

**(६) रामचन्द्रः ।** उपायान् आह **धर्मेणेति** । **धर्मेण** धर्मप्रीतियुक्तेन **वचसा** धर्मोप-देशेन **व्यवहारेण** साक्ष्यलेख्यादिना **छलेन** उत्सवादिव्याजेन भूषणादिग्रहणेन **आचरितेन** अभोजनेन च पुनः **पञ्चमेन बलेन** निगडादिबन्धेन प्रयुक्तं अर्थं दत्तं द्रव्यं साधयेत् ॥ ४९ ॥

(७) **मणिरामः**। व्यवहारसाधनोपायमाहाधर्मेणेत्यादि। प्रयुक्तमर्यधर्मादिना साधयेत्। धर्मेणचेन्नदाति तदाव्यवहारेण। व्यवहारेणापिचेन्नेति तदाछलेनाप्यप्राप्यासौ प्राचरितेन द्वारे पुत्रपशून्हत्वा कृत्वा द्वारोपवेशनमिति। बृहस्पत्युक्तेन तस्याऽप्यभावे बलेन, ताडनादिनादापयेदित्यर्थः॥ ४९॥

(८) **गोविन्दराजः**। कैः पुनस्तैरित्यत आह **धर्मेणेति** यदधमर्णस्य प्रयुक्तं धनं तद्धर्मेण 'प्रीत्या' व्यवहारेण वक्ष्यमाणेन छलेनोपाधिपूर्वकं प्रतिद्रव्यग्रहणेनाचरितेनाभोजनादिना **बलेन** गृहावरोधादिना पञ्चमेनोत्तमर्णं साधयेत्॥ ४९॥

धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च। प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च॥

धर्मेण साम्ना अनुद्वेजयन् शनैरपियत् शपथेन वा सम्प्रतिपत्तौ तावदेवं प्रतिपत्तौ व्यवहारेण वक्ष्यति छलेन वा अनेकंप्रकारेणोपायास्याचरितेन वा भोजनगृहद्वारोपवेशनादिना लोकसमाचरितेन बलेन वा स्वगृहबन्धनादिना मा भूदस्यार्थक्षयो राजसमावेशनेन॥ ४९॥

**यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात्।**
**न स राज्ञाऽभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम्॥ ५०॥**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तस्यैवार्थस्य स्पष्टीकरणार्थः श्लोकः। न छलादिनोपायेन स्वेच्छयोत्तमर्णोऽधर्मणाद्धनं संसाधयन् राज्ञा किंचिद्वक्तव्यः—'मामविज्ञाप्य किमित्यस्मादाभरणादिस्वधनसंशुध्यर्थं व्याजेन छद्मना गृहीत्वा किं नास्मै॥ ५०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नाभियोक्तव्यस्त्वया बलकृतमिति। **स्वकमिति** धार्यमाणार्थस्य स्वीयत्वसिद्धावेवैतदिति तात्पर्यम्॥ ५०॥

(३) **कुल्लूकः**। य उत्तमर्णः संप्रतिपन्नमर्थमधमर्णात् **वयं** बलादिना **साधयति** सस्वीयं धनं सम्यक्**साधयन्** अस्मास्वनिवेद्य किमिति बलादिकं कृतवानसीति **न राज्ञा** निषेद्धव्यः॥ ५०॥

(४) **राघवानन्दः**। ननु स्वयं बलात्कारकरणे राजदण्डशंका स्यात्तत्राह **यइति। नाभियोक्तव्यः** एनं कदर्थीकृत्य किमति धनमस्माद्गृहीतमिति। तत्र हेतुः **स्वयं स्वंसाधयन्धनमिति**॥ ५०॥

(५) **नन्दनः**। स्वयमेवस्यार्थसाधनमुत्तमर्णस्य शक्तौ सत्यां दोषावहमित्याह **यः स्वयंसाधयेदिति। अभियोक्तव्यो**दोषमारोपणीयः अत्र हेतुः **स्वकंसंसाधयन्धनमिति** संसाधयन्तीति हेत्वर्थे शतृप्रत्ययः॥ ५०॥

(६) **रामचन्द्र**। स उत्तमर्णः **स्वकं धनं संसाधयन् राज्ञा नाभियोक्तव्यः** त्वया बलंकृतमिति नोपालम्भनीयः॥ ५०॥

(७) **मणिरामः**। **नाभियोक्तव्यः** अस्मास्वऽनिवेद्यकिमिति बलादिकंकृतवानसीति न राज्ञा निषेद्धव्यः॥ ५०॥

(८) **गोविन्दराजः**। **स्वयं य इति**। उत्तमर्णो व्यवहारमन्तरेण धर्मादिभिरुपायैर्वा नरैः स्वं राजनिरपेक्षमधमर्णात् धनं साधयेत्। स आत्मधनं साधयन् मदनपेक्षं बन्धनादि-कृतवानसीति एवं राजा न क्षेप्तव्य ॥ ५० ॥

(९) **भारुचिः**। एवं च सत्यत्र स्वगृहसंरोधनादि च कुर्वन्नकार्यकारीति कृत्वा राज्ञा नाभियोक्तव्यः। उत्तमर्णप्रतिपन्नस्तावदेवं यथासम्भवमुपायैर्दाप्यः ॥ ५० ॥

**अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम् ॥**
**दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तितः ॥५१॥**

[ **यत्र तत्स्यात्कृतंयत्र करणं च न विद्यते ।**
**नैचोपलम्भपूर्वोक्तस्तत्र दैवी क्रिया भवेत् ॥ १ ॥** ] +

(१) **मेधातिथिः**। सत्यपि विभावके प्रमाणे यो न स्वयं प्रतिपद्यते न तस्य छला-द्युपायप्रयोगः कर्तव्यः। किंतर्हि राजैव तेन ज्ञापयितव्यः। तत्र राज्ञाऽऽकारितेऽर्थे ऋणेऽ-**पव्ययमानम**पह्नुवानं—नास्मै किंचन धारयामीति वदन्तं—**कारणेन** साक्षिलेख्यभुक्त्यात्मकेन **विभावितं** धारयामीति प्रतिपादितं दापयेदुत्तमर्णाय धनम्। **दण्डलेशं च** स्वल्पं दण्डं दण्ड-मात्रमित्यर्थः। अन्यत्र दशमं भागं वक्ष्यति। यस्तु तावद्दातुमशक्तःसोऽल्पमपि दशमा-द्भागाद्दण्डं दापयितव्यः। अथवा यः। प्रमादात्कथंचिद्विस्मृत्यापजानीते तस्यायं यथाशक्ति-दशमभागाल्पतो दण्डः। कारणं प्रमाणं त्रिविधम्। तदन्यैरिह संभवतीति परिगणितम्। तथा चाहु :—

**"यत्र न स्यात्कृतं पत्रं साक्षी चैव न विद्यते ।**
**न चोपलंभः पूर्वोक्तो दैवी तत्र क्रिया भवेत्" ॥५१॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अर्थो विषये **अपव्ययमानं** संवृण्वानं निह्नुवानमित्यर्थः। पश्चाद्धनिकेन कारणेन विभावितमर्थंदापयेद्राजा दण्डलेशं च यावता पुनरपह्नवं न कुर्यात्। शक्तितोवित्तानुसारेण देये प्रतिज्ञाते प्रथमं विवादं कृत्वा पश्चाद्राजसभायां यद्यनुमन्यते तदा शते पञ्चभागान्दण्ड्यः, अर्थतंत्राप्यवह्नवं कृत्वा व्यवहारात् तं नयति तदा दशभागान् ॥ ५१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। नाहमस्मै धारयामीति धनविषयेऽपन्हवानमधमर्णकरणेन लेख्यसाक्षि-दिव्यादिना प्रतिपादितमर्थमुत्तमर्णस्य **राजा प्रदापयेत्। दण्डलेशंच** अपन्हवे तु द्विगुणमिति वक्ष्यमाणदशमभागदण्डान्न्यूनमपि दण्डं पुरुषशक्त्या दापयेत् ॥ ५१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच अर्थोपि। **अपव्ययमानं** न धारयामीत्यपह्नुवानं। **करणेन** लेख्यादिना विभावितं निर्णीतं दापयेदर्थम् दण्डलेशंच अपह्नवे तु द्विगुणमिति वक्ष्यमाण-दशमभागाद्दण्डान्न्यूनम् ॥ ५१ ॥

(५) **नन्दनः**। उत्तमर्णेन दत्तेऽर्थे वादं कुर्वाणमधमर्णं। **करणेन** साधनेन लेखादिना विभावितं साधितं धनिकस्य कृत्स्नमर्थंराजा दापयेत्। दण्डलेशंच स्वस्मैशक्तितोदण्डदापनं

निर्धन–विषयंगुणवद्विषयं वा। करणादिसाधितार्थं दशमभागस्य दण्डत्वेन वक्ष्यमाणत्वात् ॥ ५१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अर्थे द्रव्ये **अपव्ययमानं** निह्नवानम्। तु पुनः**करणेन** साक्ष्यादिना **पत्रेण वा विभावितं** प्रकटीकृतं अर्थं **धनिकस्य** राजा दापयेत् च पुनः शक्तितः शक्त्यनुसारेण अधमर्णस्य दण्डलेशः कार्यः ॥ ५१ ॥

(७) **मणिरामः**। **अपव्ययमानं** नाहमस्य धारयामीति धनविषये अपन्हववक्तारमधमर्णं। **करणेन** लेख्यसाक्ष्यादिव्यापिना **विभावितं** अयंधारयतीतिज्ञातं दण्डलेशं अपह्नवेद्विगुणं-मितिवक्ष्यमाणदशमांशमपि पुरुषशक्त्या **दापयेत्** समर्थेद्विगणमेवेत्यर्थः ॥ ५१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अर्थेविवदमानं तु करणेन विभावयेदिति**। नाहमास्मै धारयिष्यामीत्येवं धने विप्रतिपद्यमानं अधमर्णं करणेनालेख्यसाक्षिशपथात्मकेन प्रतिपादितमुत्तमर्णस्य धनं दापयेत् ॥ ५१ ॥

(९) **भारुचिः**। यः पुनरितरः। तम्। करणप्रतिपादितस्य दशभागदण्डं वक्ष्यति। "ऋणे देये प्रतिज्ञाते पञ्चकं शतमर्हति। अपह्नवे तद्विगुणं तन्मनोरनुशासनं इयं तु निर्धनस्य दशभागं दातुमशक्तस्य गुणवतो वा काचिद्दण्डमात्रोच्यते व्यवस्थार्थम्। न तु निस्स्व इत्युत्सृज्येत। कारणं च यः सन्दिग्धे वस्तुनि निर्णयसाधनं तत् पुनस्त्रिप्रकारम्। एवं चोशनाः पठति। "यत्र न स्यात् कृतं पत्रं न विद्यते। न चोपलम्भः पूर्वोक्तः तत्र दैवी क्रिया भवेत्" ॥ ५१ ॥

**अपह्नवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि ॥**
**अभियोक्तादिशेद्देश्यं कारणं वान्यदुद्दिशेत् ॥५२॥**

(१) **मेधातिथिः**। यदा राज्ञा प्राड्विपाकेन वा संसदि व्यवहाराधिकरणादिदेश उत्तमर्णाय धनमिति उक्तस्यापह्नवोपलापोधर्मेण भवति तदोमित्युक्तोधनस्य प्रयोक्तोत्तमर्णाय दिशेद्देशं साक्षिणं प्रमाणमेतंनिर्दिशेत् अन्यद्वा कारणं लेख्यादिदेशशब्देन लक्षणया धनप्रयोग-प्रदेशवर्तिनां साक्षिणामुपादानात्। कारणशब्दो सामान्यशब्दोऽपि गोवलीवर्दवत्साक्षि-व्यतिरिक्तं लेख्यादिकारणमाचष्टे। ततश्च कारणं वा समुद्दिशेदिति अस्याप्ययमेवार्थः। अथवाऽयमन्यः पाठः 'अभियुक्तो दिशेद्देशमिति'। अयं चार्थः यत्राधमर्णाः देहीत्युक्तः प्रतिजानीते नानेन धनं गृहीतं प्रतिदत्तं तु तत् इति 'यदसावभियोक्ताऽऽसीत्स एवाभियुक्तः संवृत्तः। स चाभियुक्तः संदिशेद्देशम्–'कस्मिन्देशे त्वया मे प्रतिदत्तम' कालं च निर्दिशेत्। देशग्रहणस्य प्रदर्शनार्थत्वात्। कारणं वा समुद्दिशेत्। 'अस्ति भोः किं कारणं तव प्रतिपादने तत्समुद्दिश्य' इत्येवं ब्रूयात्। अथवा **दिशद्देशम्**–यत्तस्मिन्काले नाहं साक्ष्यादिप्रदर्शनं कारणं वेति। वाशब्दः चशब्दस्य स्थाने ॥ ५२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अधर्मेणभ्य देहिधनमस्मा इति सभ्यैरुक्तस्यापह्नवे तेन क्रियमाणे-ऽपलापेइत्यर्थः। आदिशेत् ब्रूयात् **देशं** अत्रदेशे न त्वया गृहीतमिति। **देशमिति** कालादेर-प्युपलक्षणम्। देशेऽप्युक्ते विप्रतिपत्तौ कारणं प्रमाणं देशादन्यत् समुद्दिशेत् ब्रूयात् ॥ ५२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **उत्तमर्णस्य** धनं **देहीति** सभायां प्राड्विवाकेनोक्तस्याधमर्णस्य नास्मै धारयामीत्यपलापेसति अभियोक्ताऽर्थी देश्यं धनप्रयोगदेशवर्तिसाक्षिणं निर्दिशेत्। प्रायेण साक्षिभिरेव स्त्रीमूर्खादिसाधारणऋणनिर्णयात्प्राक्साक्ष्युपन्यासः **अन्यद्वा** करणं पत्रादि-कथयेत् ॥ ५२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **अपह्नवेति। संसदि** सभायां **उत्तमर्णेन** देहीत्युक्ते नोधार-यामीत्यधमर्णेन निह्नवीकृतेसतीत्यर्थः। **अभियोक्तोत्तमर्णः**। **देश्यं** धनप्रयोगदेशवर्तिनः **साक्षिणः**। **करणं** पत्रम्। **अन्यत्** मम धनेनेदं क्रीतं द्रव्यादि ॥ ५२ ॥

(५) **नन्दनः**। यदाधमर्णो युक्तार्थापह्नवं कुर्वीत तदोत्तमर्णेन कर्तव्यमाह **अपह्नवे-ऽधमर्णस्येति**। ऋणरूपेण यन्मया तव दत्तं तन्मे देहीत्युक्तस्याधमर्णस्यापह्नवेऽर्थापह्नवे सत्यभियोक्तोत्तमर्णो **देशंदिशेत्** अस्मिन्देशेऽस्मिन्कालेऽनेन प्रकारेण मया दत्तमिति **देश-कालादिकं** ब्रूयात्। यदि तत्राप्यधमर्णोविपद्येत ततः करणलेखादिकं समुद्दिशेत् ॥ ५२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **संसदि** सभायां च **देहीत्युक्तस्य अपह्नवाङ्गीकृते** गोपिते सति **अभियोक्ता** उत्तमर्णः **देश्यं** साक्ष्यादिभ्य आदिशेत्। च पुनः अन्यत्करणं प्रमाणान्तरं उद्दि-शेद्दर्शयेत ॥ ५२ ॥

(७) **मणिरामः**। संसदि सभायामधमर्णस्यप्रपन्हवे नास्मै धारयामीति अपलापेसति अभियोक्ता उत्तमर्णः देश्यं धनदानदेशवार्त्तसाक्षिणं **दिशेत्** सभायामानयेत्। अन्य-द्वाकरणं पत्रलेखादिउद्दिशेत् कथयेत् ॥ ५२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अपह्नव इति**। अभियोक्ता दिशेद्देश्यं करणं वाऽन्यमुद्दिशेत। अधमर्णस्य देहीत्युक्तमर्णस्य धनमित्येवं सभायां प्राड्विवाकेनोक्तश्च न धारयामीत्यवेमपलापे सत्याक्षेपक्रोधग्रहणदेशं तत्रत्यसाक्ष्युपन्यासाद्यपह्नवत्करणं शंसेत् ॥ ५२ ॥

(९) **भारुचिः**। इदानीमर्थिप्रत्यर्थिनोर्व्यवहारसामान्ये जयपराजयकारणं अपदिश्यते गृहीतार्थापह्नवेऽधमर्णस्य (क १ त दा) देहीत्युक्तस्य प्रयोक्ता (प्राड्विवा) केन वा संसदि व्यवहारस्थानेन स्वैरकथासु अभिप्रयोक्ता, प्रयोक्तादिशेद्दानाधिकरणं देशम्। अत्र च देशग्रहणं सामर्थ्यात् साक्ष्युपलक्षणार्थम्। एवं चार्थग्र...ज्यमानार्थे द्रष्टॄन् ब्रूयादिति यावत्। अतश्चैतदेवं, यस्मादाह–करणं वा समुद्दिशेत् पत्रसंज्ञव्यवहारस्थान एव। अतश्च गम्यते देशग्रहणं करणोपदेश....गृहीतार्थप्रतिपादकमित्यस्याप्ययमेवार्थः पाठान्तरस्य। अपह्नवेऽधमर्णस्य व्याजेन देहीत्युक्तस्य संसदि प्रयोक्ता दत्तम्...इदानीमभियुक्तो दिशेद्देशम्। देशग्रहणं च निदर्शनात् कालार्थमपि द्रष्टव्यम्। तस्मिन् देशे काले त्वया मम प्रतिदत्तं धनमिति करणं...अग्रे प्रतिपादकं करणम्। भवतो धनप्रतिपादने अथवा अभियुक्तो दिशेद्दृश्यमतिदेश्यं देष्टव्यम्। यथा गृहीतं कथयेत्। अन्यदुभयत्र समानम् ॥ ५२ ॥

**अदेशं यश्च दिशेत् निर्दिश्यापह्नुते च यः ॥**
**यश्चाधरोत्तरानर्थान्विगीतान्नावबुध्यते ॥५३॥**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तमेवाधमर्णेऽपह्नवाने धनिना राजा ज्ञापयितव्यः। ईदृशो च ज्ञापना कर्तव्या। 'अस्मिन्देशेऽस्मिन्काल इदं धनमियद्भैतेन मत्सकाशाद्गृहीतम्'। स च पृष्टो भावयति–'नैतस्मिन् देशेऽहमभवं योऽनेन च ग्रहणकाल उपदिष्टः' तदा देशे दिश्यते। अथवा देशसाक्षिणो व्याख्यातास्तान्साक्षिणो देशकालावसंभवतो निर्दिशति। निर्दिश्य देशादिकमपजानीते 'नैतन्मया' निर्दिष्टमिति **यश्चाधरोत्तरानर्थान्पौरस्त्यानौपरिष्टांश्च विगीतान्विरुद्धानभिहितान्नावबुध्यते**। यद्वा पूर्ववक्तव्यं अपरस्माद्वक्ति यत्परतस्तत्पूर्वं क्रमभेदं च वचनगतमात्मनो नानुसंधत्ते। 'हीनः स इति निर्दिशेदिति' सर्वत्र क्रियानुषङ्गी भविष्यतीति ॥ ५३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अदेशं** यत्र ऋणिकगमनं संभाव्यते तथा एकान्तादि। तथा उक्त्वा देशादि पश्चान्न मयैतदुक्तमित्यपह्नुते तथा **अधरोत्तरान्** पूर्वोत्तरवाक्यानि स्वान्येव यानि तदर्थान् विपरीतान् विरुद्धान् **बुध्यते** ॥ ५३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अपदिश्येति असंभाव्यइति ब्रूहीत्यादि अदेश्यम्। यत्र देशेऽधमर्णस्य ऋणग्रहणकाले सर्वदावस्थानं न संभवतीति निर्दिश्य चादेशादिकं नैतन्मथा निर्दिष्टमित्यपनयति यश्च पूर्वोक्तानर्थास्विर्थान्स्वोक्तान्विरुद्धान्वावगच्छति यश्च ममहस्तात्सुवर्णस्य पलमनेन गृहीतमिति निर्दिश्य मत्पुत्रहस्तादगृहीतमित्येवमादिना यः पुनरपसरति यश्च सम्यक्प्रतिज्ञातमर्थं कस्मात्वया रात्रावसाक्षिकं दत्तमित्येवमादिप्राड्विवाकेन पृष्टः सन्न समाधत्ते यश्च संभाषणानर्हनिर्जनादिदेशे साक्षिभिः सहान्योन्यं संभाषते यश्च भाषार्थस्थिरीकरणाय नितरामुच्यमानं प्राड्विवाकेन प्रश्ननेच्छेत् यश्च निष्पतेत् उक्तांश्च व्यवहारान्पुराऽनाख्याय यथा स्थानात्स्थानांतरं गच्छेत् यश्च ब्रूहीत्युक्तो न किंचिद्ब्रवीति उक्तसाध्यं न प्रमाणेन प्रतिपादयति, पूर्वसाधनमपरं साध्यं तद्योन जानाति, असाधनमेव साधनत्वेन निर्दिशति, असाध्यानेव नानेन शशशृंगधनुर्देवमित्यादिना व्यत्ययेत् निर्दिशति।

(४) **राघवानन्दः**। किंच अदेश्यादिषड्भिश्श्लोकैरधमोत्तमर्णयोः पराजयहेतूनाह। **अदेश्यं** उत्तमर्णादृणग्रहणकाले तद्देशावर्तिनमपि साक्षित्वेनोपदिशतिवदत्युत्तमर्णः। तथाः- **निर्दिश्य** देशादिस्वरूपं पुनर्मया नोक्तभित्यपलपति। अर्थानधरोत्तरान् किं तद्वस्त्विति पृष्टः पूर्वोत्तरविकलान् **विगीतान्** संख्यादिना स्वोक्तविरोधान्नावबुध्यते न जानाति उत्तमर्ण इति शेषः ॥ ५३ ॥

(५) **नन्दनः**। हीनलक्षणं पञ्चभिः श्लोकैराह **अदेयं यश्चेति**। **अदेयं** दानादानयोरयोग्यं देशकालादिकं निर्दिश्यापह्नुते नैवं मयोक्तमिति निर्दिष्टापह्नुते। **विगीताद्विइतिपन्नान्** स हीयत इति वक्ष्यमाणेन संबन्धः ॥ ५३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। पराजितस्य लक्षणमाह चतुर्भिः **अदेश्यमिति यः** अधमर्णः **अदेश्यं** असाक्षिकं **दिशति** कथयति। **च** पुनः **अदेश्यं** असाक्षिकं **निर्दिश्य** कथयित्वा **अपह्नुते** निह्नुते **च** पुनः **अधरोत्तरानर्थान्** पूर्वापरानर्थान् कार्याणि **विगीतान्** विरुद्धान् **नावबुध्यते** न जानाति ॥ ५३ ॥

(७) **मणिरामः**। यश्चअर्थीअदेश्यमित्यादि प्रकारेणअर्थसाधनं कर्तुर्नशक्नोतिस तस्मादर्थात् साध्यादर्थात् हीयते नतद्द्रव्य-श्लोके प्राप्नोतीतिचार्थेनान्वयः। श्लोकचतुष्टय-विवरणं यथा। अदेश्यं असाक्षिणंदिशति। ममसाक्षीनास्तीतिवदतिसः। यश्च निर्दिश्य। पह्नुते साक्ष्यादिकमस्तीति प्रथमत उक्तंमया नोक्तमिति पुनर्वदतिसोपि। **यश्च निर्दिश्य** अधरोत्तरानर्थान् विगीतान् विरुद्धान् नावबुध्यते। मयापूर्वकिमुक्तम् कथं किं वदामीत्यज्ञात्वैव। पूर्वोक्तविरुद्धंवदति सोऽपि॥ ५३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। अदेशं यश्च दिशति निर्दिश्यापह्नवीति चेति। अपदिश्येति। असंभाव्येति। ब्रूहीति। अभियोक्ता दिशेदित्युक्तं तत्र योऽर्थी तथाविधं देशमपह्नवादिकं निर्दिशति यत्र दानग्रहणे न संभाव्येते अधमर्णस्य वा तदानीं तत्रापस्थानं संभवतीति यश्चादेशादिकं निर्दिश्य न तन्मया निर्दिष्टमित्येवं पश्चादपजानीते यो वा पूर्वं पश्चादुक्तानर्थान् परस्परविरुद्धान्नावगच्छति यश्चानेन मम हस्तात्सुवर्णं गृहीतमित्येवं निर्देष्टव्यं निर्दिश्य एतत्पत्रेण गृहीतमित्येवमादिना पुनरपसरति यो वा प्रतिज्ञाकालोपन्यस्तमर्थं कस्मात्पुनस्तथा रात्र्यादौ दानग्रहणं कृतमित्येवमादिरूपेण पूर्वपक्षविस्तारकाले प्राड्विवाकेन सम्यक् पृष्टः सन्नन्तर्धत्ते यश्च संभाषणानर्हे उपहारादौ देशे साक्षिभिः परस्परं भाषते यश्च साक्षिप्रश्नं क्रियमाणं नो गच्छति वा सभातः प्रतिवादिसंनिहित हठादुत्प्लुत्य गच्छति यथास्मिन्पूर्वपक्षे किं ब्रूहीत्युक्त उत्तरं न ब्रूयात यो वा प्रतिज्ञातं साक्षिभिःर्न विभावयेत् पूर्वं वा साक्षिगतं न जानीयात् स्वगतस्वयञ्चाधरोत्तराणि व्यक्तत्वात्स तस्माद्व्यवहाराद्धीयते ॥ ५३ ॥

(९) **भारुचिः**। अदेश्यं ग्रहीतुर्यश्च दिशति अदेश्यं निर्दिश्याहृते च यः देशं देश्यं वा। यश्चाधरोत्तरानर्थान् देशादन्यानपि कालद्रव्यरूपसंख्यान्विगीतान् पूर्वोत्तरविरुद्धान् नावबुद्धचते, यो देहीत्यनन्तरमिति निर्दिशेतिवक्ष्यत्यर्थिनमितरंमनितरंवा ॥ ५३ ॥

**अपदिश्यापदेश्यं च पुनर्यस्त्वपधावति ।**
**सम्यक्प्रणिहितंचार्थं पृष्टः सन्नाभिनन्दति ॥५४॥**

(१) **मेधातिथिः**। **एवापदेशः**। तमपदिश्य कथयित्वा **पुनः** पश्चादपधावत्यपसरति–'नैतौ देशकालौ मम निश्चितौ'। यावत्सुदेशकालोऽवधारयति तावदयं मह्यमिति' पश्चाद्ब्रवीति। सोऽपि तस्मादर्थाद्धीयते।

**सम्यक् प्रणिहितं चार्थमनाकुलं निश्चितमुक्तं तदा पृच्छचते तदाऽनेनोक्तं तत्र किं ब्रवीषि केन वा प्रमाणेन स्वपक्षं साधयसीति पृष्टो न संधत्ते कथान्तरं प्रस्तौति–'विचारावसानेन किल मे पराजयो भवतीति कालमुपक्षिपामीति'–तस्यापि पराजय एव। अथवा-**

ऽपदेशो व्याजस्तमपदिश्योपन्यस्य योऽपसरत्यधुना मे महती पीडा समुत्पन्ना न शक्नोमि प्रतिवक्तुमलीकादिना वा प्रस्थितः सोऽपि हीयते ।। ५४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तथा बहुविधं **अपदिश्य** उक्ता पुनः स्वयमेवावधारणादय-मेवात्र हेतुर्ग्राह्यइति। प्रणिहितं विचारितम् ।। ५४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **अपेति**। देश्य एवोपदेश्यस्तमपदिश्योक्त्वा **अपधावति** पलायते। पुनर्वदति मद्धस्तात्सुवर्णंगृहीतमित्युक्त्वा मत्पुत्रहस्ताद्गृहीतमितिवा सोऽपि तस्मा-दर्थात्प्रहीयतइत्यनुवादः। अपिच सम्यक्प्रणिहितं कस्मात्त्वयेदमपहसितमितिप्राड्विवाकेन **पृष्टः सन् नाभिनन्दति** न समाधत्ते प्रमाणोपन्यासपुरःसरम् ।। ५४ ।।

(५) **नन्दनः**। **अपदेश्यमपदिश्य** वक्तव्यमुक्त्वा तत्साधने यः **पुनरपधावति** अपसरति। पूर्वंस्वयमुपन्यस्तंसदस्यैः सम्यक्प्रणिहितमवधृतमर्थं तैः पृष्टः **सन्नाभिनन्दति** नसम्यक्तया-बुद्धमिति वदतिसोऽपि हीयत इति संबन्धः ।। ५४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अपदिश्यापदेश्यं कार्याकार्यं न जानाति वाच्यावाच्यंवा न जानाति। **पुनः यः पुनः धावति** स्थानात्स्थानान्तरं गच्छति सम्य**क्प्रणिहितमर्थं** सम्यक्-प्रकारेणदत्तंद्रव्यं पृष्टः **सन्नाभिनंदति** न कथयति ।। ५४ ।।

(७) **मणिरामः**। यश्चअपदेश्यं-मम हस्तात्सुवर्णस्य पलमनेनगृहीतमिति निर्दिष्टम् **अपदेश्य** कथयित्वामत्पुत्रहस्ताद्गृहीतमित्यादिना पुनः अपधावति। अपसरतिसोपि। यश्च **सम्यक् प्रणिहितं** सम्यक् प्रतिज्ञातं अर्थं त्वयारात्रौकथमसाक्षिकं दत्तमिति प्राड्विवाकेन पृष्टः सन् न अभिनंदति न समाधत्तेसोपि ।। ५४ ।।

(९) **भारुचिः**। अपदिश्यापदेशं वा पुनर्यस्त्वपधावति। अन्यथा ब्रवीति। अनेन मम हिरण्यं गृहीतं इत्यपदिश्य पक्षान्तरे पुत्रं भृत्यं वा निर्दिशति। कस्मिंश्चित् काले देशे वा व्यवहारस्त्वया कृत इति। यदेवमादि पृच्छता राज्ञा प्राड्विवाकेन वा तत्सम्यक् पृष्टः नाभिनन्दति, माभूदिति विचारणया परमार्थदर्शनम् ।। ५४ ।।

**असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः ।।**
**निरुच्यमानं प्रश्नं च नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत् ।। ५५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। असंभाषणार्हे **देशे** गह्वरादौ **साक्षिभिः** सह **संभाषत** एकाकी तद्भेदाशङ्कया **निरुच्यमानं** पृच्छ्यमानं निरूप्यमाणं वा **प्रश्नं** विचारवस्तु नेच्छति-किंचिद्राजकार्यमुद्दिश्य राजपुत्रामात्याद्यनुग्रहेण च काललाभं करोति। **यश्चापि निष्पतेत्**। वक्ष्यमाणमेव क्रियापदं 'स हीयत' इति। यदेवोक्तं 'पुनर्यस्त्वपधावतीति' स एवार्थः 'यश्चापि निष्पतेदिति'। पुनर्वचने प्रयोजकमुक्तम्। अत्यन्तपौनरुक्त्यं मा भूदिति कश्चिद्विशेष आश्रयितव्यः ।। ५५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **असंभाष्ये** संभाषानर्हे देशे एकान्तादौ। स्वकीयं **प्रश्नं** परेण निरुच्यमानमाकलय्य नेच्छेत्तदनिच्छाविभावकं कोलाहलादिकुर्यात्। **निष्पतेत्** सभातः पलायेत ।। ५५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंचान्यत्। **असंभाष्ये** संभाषानर्हे निर्जनादिदेशे **साक्षिभिः संभाषते**सोपि तस्मादर्थाद्धीनः। यश्चापि निरुच्यमानं प्राङ्विवाकेन प्रश्नं नेच्छेदुत्तरंदातुम्। अथ च **निष्पतेत्** न युक्तं स्थातुमितिनिष्क्रामेत्सोऽपिहीनः। एतद्द्वयोः साधारणम्॥ ५५॥

(५) **नन्दनः**। साक्षिभिरसंभाव्ये। मिथोदेशे रहस्य इति यावत्। निरुच्यमाननुसृत्य विकल्पेनोच्यमानम्। प्रश्नंपृष्टमर्थम्। नेच्छेन्नसंवदेत्। निष्पतेत्सदसोपसरेत्। सोपि हीयत इति संबन्धः॥ ५५॥

(६) **रामचन्द्रः**। **असंभाष्ये देशे** अवाच्ये देशे साक्षिभिर्मिथोयः **संभाषते**। **च** पुनः **निरुच्यमानं** वाच्यमानं प्रश्नंवा **नेच्छेत्** न कथयति। **च** पुनः यः **निष्पतेत्** पलायते॥ ५५॥

(७) **मणिरामः**। यश्च **असंभाष्ये देशे** एकांते साक्षिभिः सहमिथः **संभाषते** सोपि। यश्चव्यवहारस्थिरीकरणाय प्राङ्विवाकेननिरुच्यमानप्रश्नं नेच्छेत् न शृणुयात् सोपि। यश्च **निष्पतेत्** विवादनिर्णयमकृत्वैव देशांतरं गच्छेत् सोपि॥ ५५॥

(९) **भारुचिः**। असम्भाव्ये साक्षिभिश्च देशे सम्भाषते मिथः, निरुच्यमानं प्रश्नं च नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत्। सभातोऽन्यत्रोपह्वरे एकाकी साक्षिभिः सह सम्भाषते मिथः असावपि साक्षिभेदाशङ्क्या जीयते। साक्षिणश्च पृच्छ्यमानान्नेच्छति केनचिद् याजेन व्यवहारगतेनैव राजतन्त्रोऽनुग्रहप्रदर्शनेन वा साक्षिप्रश्नकाले कार्यान्तरव्यासङ्गेन केनचिद्व्यवहारस्थानान्निष्पत्तिः राजोपकारप्रदर्शनेन वेत्युक्तं तस्मादर्थात्स हीयत इत्येवं वक्ष्यति॥ ५५॥

**ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयादुक्तं च न विभावयेत्॥**
**न च पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थात्स हीयते॥५६॥**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तार्थ एव श्लोकोऽयं श्लोकान्तरैर्दृश्यते। पुनर्वचने च प्रयोजनमुक्तम्–'बहुकृत्वोऽपि पठ्यं वेदितव्यमिति'। अक्षरार्थस्त्वर्थिना निःशेषिते पूर्वपक्षे प्रतिवादी 'ब्रूह्यस्मिन्वस्तुनीति' पृष्टो यदि न ब्रूयात्पुनः पुनः पृच्छ्यमानोऽपि। यो हि सम्यगुत्तराभावान्मिथ्योत्तरवादित्वादमुनैव मे पराजयो भवति तूष्णींभूतस्य तु मे संशय एव पराजये इत्यनया बुद्धया नोत्तरं ददाति। सोऽपि हीयते। वक्ष्यति चात्र कालावच्छेदम् "न चेत्त्रिपक्षात्प्रब्रूयादिति" (५८)। सद्यो ह्याकृष्टस्य पूर्वपक्षार्थानवबोधादुत्तराप्रतिपत्तेर्युक्तं कालहरणम्। अत्र च दिवसैः पञ्चभिर्दशभिर्द्वादशभिर्वेषदोषवदतस्त्रिपक्षसमाप्तिः न त्वियन्तं कालं तूष्णींभाव एव। यश्चातोऽधिकः कालः–'संस्थितोऽपि कच्चित्संवत्सरप्रतीक्षेताप्रतिभायामिति' (गौतम १३/२८)–न युक्तमादर्तुं यतोऽप्रतिभा यदि प्रतीक्षाकारणं सा चेत् संवत्सरादूर्ध्वं भवतीति किमित्यकारणम्। न चैष नियमः केनचित्प्रकारेणावगम्यतेऽप्रतिभावतः संवत्सरेण प्रतिभा भवतीति। तस्मात्तावन्त्येवाहान्युपेक्षा युक्ता यावद्भिः पूर्वपक्षार्थावधारणं भवत्युत्तरं च प्रतिभाति। एतच्चामुकस्य मन्दधियोप्येतावन्मात्रैरहोभिर्भवतीति नाधिकं कालमुपेक्षणीयम्। पूर्वपाक्षिकस्य तु तदहरेव स्वार्थेविनिवेशनं युक्तम्। यत इदमेष मे धारयतीदं वाऽनेन ममापकृतमिति निश्चितं तस्य भवति। स्वेच्छया ह्यसौ प्रवर्तते। केवलं तस्मै स्वपक्षमावेदयते किमित्यनिश्चितः स्वार्थो भवति-

उत्तरपाक्षिकस्त्वविदितसंबन्धस्तदानीमेव राजपुरुषैरानीयमानः कथमिव स्वपरपक्षौ निश्चिनुयात्। पक्षद्वयनिरूपणं हि तदस्य तदानीमेवापतति। नान्यथोत्तरपाक्षिको भवति। तस्मात्पूर्वपाक्षिकस्य साध्ये वस्तुनि तदहः पूर्वपक्षसमाप्तिर्द्विदिवसलाभो वा। उभावपि चैतौ पक्षौ स्मृत्यन्तरपरिगृहीतौ। तथा ह्याह–"सुनिश्चितबलाधानः पूर्वपक्षो भवेत्सदा। दशाहं द्वादशाहं वा स्वपक्षं परिशोधयेत्॥" इति। तथेदमपरम् (याज्ञ. व्य. ७) "ततोऽर्थी लेखयेत्सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम्।" सा तु संवत्सरपरीक्षा सा मूलासंभवादप्रमाणम्। न हि व्यवहारस्मृतावष्टकादिवद्वेदमूलता शक्यते वक्तुम्–अकार्यरूपत्वादर्थस्य। प्रमाणान्तरविषयत्वे च तदसंभवः प्रतिपादितः। एषाऽपि पूर्वपक्षोपेक्षा न सर्वत्र। यत उक्तम् (याज्ञ. व्य. १५)।

**"साहसस्तेयपारुष्यगोभिशापात्यये स्त्रियाम्।**
**विवादयेत्सद्य एव कालोऽन्यत्रेच्छया स्मृतः॥" इति।**

साहसादौ हि चिरमुपेक्ष्यमाणेऽपरमाराध्नुयात्। अतः सद्यो विवादो विधीयते। न चात्रास्मृत्यादयोऽनुत्तरहेतवः संभवन्ति। साहसादिकारणं हि तदानीमेव राजानं वेदयेत्। तीव्रसंवेगता हि तत्र भवति। वस्त्राद्यपहारेण तदुपेक्षायां रागशङ्का भवति। साक्षिणस्तत्र यदृच्छया संनिहिता अपि भवन्ति। ते हि देशान्तरं गता नामजात्यादिभिर्न विज्ञायन्ते। ततः स्वाभाविकप्रमाणाभावः। किंच ऋणादानादिषु कदाचिदितरेतरं संदधते। न तत्र राज्ञो हस्तप्रक्षेपः। प्रायेण च संशुद्धौ नानुसृतिरुपयुज्यते तदा कियद्वृत्तमिति। साहसकारी तु राज्ञाऽवश्यं निग्रहीतव्य इतरेण संधीयमानोऽपि। तस्मादृणादिषु कालहरणं साहसादिषु सद्य इति स्थितम्। तदुक्तम्–

**"गहनत्वाद्विवादानामसामर्थ्यात्स्मृतेरपि।**
**ऋणादिषु हरेत्कालं कामं तत्त्वबुभुत्सया॥"**

यदा संकुलः पूर्वपक्षोभवति तदा गहनत्वान्न शक्यते ग्रहीतुम्। अनाकुलो विलुप्तक्रमोऽपि गृहीतः प्रतिवचन काले महत्वान्न शक्यते सर्वेण स्मर्तुमिति स्मृत्यन्तरस्यार्थः।

**उक्तं न च विभावयेत्**। साध्यं वस्तु निर्दिश्य न साधयति साधनस्याभावात्, विपक्षे वा भावात्। **न च पूर्वापरं विद्यात्**। उक्तमेतत्। **तस्मादर्थाद्व्यवहारवस्तुनः स हीयते** पराजितो भवतीत्यर्थः॥ ५६॥

अपसाक्षित्वम्। एको लुब्धः स्वसाक्षी स्यादिति वक्ष्यति। अन्यः शूद्रः तस्य विधिप्रतिषेधात् पाक्षिकं साक्षित्वं गुणापेक्षया। अथवा चण्डालोऽन्त्यः तथा च वक्ष्यति–'स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युरित्यशूद्रानभिधाया'न्त्यानामन्त्ययोनय' इति वर्णापशब्दमात्रं वा। विकलेन्द्रियः विसंज्ञात्वात् प्रतिषिद्ध्यते॥ ५६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। न ब्रूयात्** चिन्तयन्नेव तिष्ठेत्। **उक्तं** स्वोक्तं **न विभावयेत** न व्याकुर्यात्। **नच पूर्वापरं** एतत्प्राग्वाच्यमेतत्पश्चादिति **जानीयात्। तस्मात** प्रक्रान्तादर्थात्॥ ५६॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच। **ब्रूहीत्युक्तो न ब्रूयात्**। वदतोऽवश्यं पराजय इति तूष्णींतिष्ठेत्। **न विभावयेत्**। **पूर्वापरं** साध्यं **न विद्यात्** यथावस्तु न विजानीयात्। अर्थात् शशशृङ्गधनुर्भवतीतिसाध्यत्वेन निर्दिश्य **तस्मादर्थात्**व्यवहारवस्तुतो**हीयते** पराजितो भवतीति। एतदुत्तमर्णस्य ॥ ५६ ॥

(५) **नन्दनः**। **न विभावयेत्पूर्वापरं** न च विद्यात्। इदं **पूर्वमुक्त**मिति च **न विद्यात् हीयते** जीयते ॥ ५६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। त्वं **ब्रूहीत्युक्तः** सन्योन **ब्रूयात्**। च पुनः उक्तं स्ववचनं **नविभावयेत्**। च पुनः पूर्वापरं कार्यं योन विद्यात्सपुरुषस्तस्मादर्थाद्धीयते हीनो भवतीत्यर्थः ॥ ५६ ॥

(७) **मणिरामः**। उक्तं स्वोक्तं **न विभावयेत्** न प्रमाणेन प्रतिपादयेत् सोपि। यश्च **पूर्वापरं** पूर्वं साधनं अपरं साध्यमिति न विद्यात् न जानाति असाधनमेव साधनत्वेन निर्दिशति असाध्यमेव साध्यत्वेन निर्दिशति सोपि। तस्मादर्थाद्धीयत इति सर्वत्रान्वेत्तीत्यर्थः ॥ ५६ ॥

(९) **भारुचिः**। ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयात् प्रतिपतनकाले पराभवा.....भावयेत् साक्षिभिः। अभावाद्वातेषां विवक्षा सम्यग्दर्शनाद्वा न च पूर्वाप(रतो?रं) विद्यात् साक्षितातम्। अन्यत्र व्यवहारगतमुक्तमेव तस्मादर्थात् स हीयते ज्ञातारः सन्ति....कारणैरेतैर्हीनन्तमिति निर्दिशेत्। सर्वथा साक्षिभ्योऽन्यैः प्रतिज्ञातार्थप्रतिपादकैः कारणै (रपि रवि) भाव्यमाने वस्तुनि साक्षिणः शरण....णैर्यथोक्तैरसत्प्रत्ययवचनैर्हीनमित्येव निर्दिशेत्। अर्थिनमितरं वा उभयतः सम्भवात् पराजयहेतूनाम् ॥ ५६ ॥

**ज्ञातारः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न यः ॥**
**धर्मस्थः कारणैरेतैर्हीनं तमिति निर्दिशेत् ॥ ५७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **ज्ञातारः** साक्षिणः पुरुषा मम **सन्ती**त्युक्त्वा यदोच्यते कथ्यतामिति तदा तूष्णीक आस्ते—न तान्देशनामजातिभिर्विशेषणैः कथयति तदा **एतैः** प्रत्येकं पूर्वमुक्तै**कारणैरिह हीनोऽसौ** व्यवहाराद्भ्रष्ट इति। **धर्मस्थो** धर्माधिकरणस्थः प्राड्विवाको **निर्दिशेन्नि**श्चितं ब्रूयाज्जितोऽयमिति। यथैव विपक्षबाधकप्रमाणावृत्त्या पराजय एवं स्वपक्षसाधनाभावादपि। अभावनिश्चयश्च पुनः पुनरवसरेऽनुपन्यासात्कारणान्तरस्य चानुपन्यासेऽभावादिति। **ज्ञातार** इति तृन्नन्तमेव। तत्रेदमिति द्वितीयान्तं युज्यते। "खलर्थतृनामिति" (पा. सू. २/३/६९) षष्ठीनिषेधात्। **हीनं तमिति** द्वितीयान्तः पाठः। **इति** शब्दः प्रकारार्थो द्रष्टव्यः। एभिरुक्तैः प्रकारैरन्यैश्चैवंविधैर्हीनं तन्निर्दिशेत्। यदा तु वाक्यार्थपरामर्शः तदा हीनोऽसाविति पाठः। वाक्यार्थस्य कर्मत्वाद्द्वितीयाया अभावः। एते पराजयहेतवः। न त्वाकारेङ्गितादिवव्यभिचारिणः। यो हि पुनः पुनर्विचारावसरे न सन्निधीयते संनिहितो नोत्तरं प्रतिवक्ति तत्र निश्चितमिदं भवति नास्य जयहेतुरस्तीति। यदि च सर्वदैवानुत्तरवादिनं न पराजयेद्राजा ततो व्यवस्थाभङ्ग आपद्यते। पौर्वापर्यानवबोधस्त्विङ्गितादिवद्रष्टव्यः। **यः** सर्वकालं वाग्मी प्रगल्भः प्रतिपत्तिमांस्तस्येङ्गितादयोऽन्यथाभवतः पराजयहेतौ प्रमाणान्तरेणानिश्चितेऽपि लिङ्गदर्शनस्थानीया उपोद्बलका भवन्ति ॥ ५७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एतैः कारणैः पूर्वोक्तैर्हीनं पराजितं **निर्दिशेत्** कथयेत् ।। ५७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **साक्षिणो मम विद्यन्त**इत्युक्त्वा तान्निर्दिशेत्युक्तो योन निर्दिशति तं पूर्वोक्तैरेभिः कारणैर्धर्मस्थः प्राङ्विवाकः पराजितंकथयेत् । ज्ञातारः सन्तिमेत्युक्त्वा इति वा पाठः। अत्रछान्दसमिकारस्य पररूपत्वम् ।। ५७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किं च **साक्षिण** इति। **ज्ञातार** इति पाठान्तरम्। **साक्षिणः सन्ति मे ममाप्यन्यसाक्षिण** इति। मयान गृहीतमित्यर्थे तर्हि दिशानयेत्युक्तोनानयति। मेत्युक्तेत्यार्षः। **धर्मस्थः** प्राङ्विवाकः कारणैरुक्तैः **हीनं** पराजितं **निर्दिशेत्** जानीयात्। तमपीत्यपिशब्दादधर्मणमपि ।। ५७ ।।

(५) **नन्दनः**। अविद्यमानलेख्यादिसाधनेऽर्थे **ज्ञातारः** साक्षिणः सन्तीत्युक्त्व तान् ज्ञातॄन् । **दिश** दर्शयेति सभ्यैरुक्तोऽनेन साक्ष्यनुदेशाख्येन हेतुना **धर्मस्थो** धर्मासनस्थः। प्रत्यर्थिदत्तोत्तरस्याभियोगस्याप्रतिवचने ।। ५७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **ज्ञातारः मे ज्ञातारः सन्ति इति उक्त्वा आदिश** कथय **धर्मस्थः** यः उक्तः सन् **नादिशेत्** नकथयेत् एतैः **कारणैस्तमपि** हीनंपराजितं निर्दिशेत्कथयेत् ।। ५७ ।।

(७) **मणिरामः**। **साक्षिण इति**। साक्षिणोऽत्र मम विद्यन्ते इत्युक्त्वा **ब्रूहि** तानित्युक्तो यस्मान्न ब्रूयात् तं पूर्वोक्तैरेभिः पराजयकारणैः धर्मनिर्णयप्रवृत्तः प्राङ्विवाको जितोऽयमिति कथयेत् ।। ५७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अभियोक्ता** अर्थीसन् राजस्थानेनिवेद्य कथयित्वा पश्चाद्व्यवहार-दर्शनसमयेन **ब्रूयात्** सः गुरुव्यवहारे वध्यः लघुव्यवहारे दंडचश्च धर्मतः स्यात्। प्रत्यर्थी-पुनः चेत् यदि त्रिपक्षमध्ये न ब्रूयात् तदाधर्मत एव पराजितः स्यात् न तुछलेन ।। ५७ ।।

**अभियोक्ता न चेद्ब्रूयाद्वध्यो दण्डचश्च धर्मतः ।।**
**न चेत्त्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मं प्रति पराजितः ।। ५८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अभियोक्ताऽर्थी राजान्तिकं कश्चन गत्वा ब्रूयात् ।
तदा निष्प्रयोजनाद्वन्ध्यो **दण्डचश्च**। दण्डबन्धने दण्डपरिमाणे च गुणवत्तां प्रत्यर्थिन आह्वानेन च हानिमपेक्ष्य कल्पनीयानि। अतस्तदहरेवार्थिना विवदितव्यम् प्रत्यर्थी तु ना **चेत्त्रिपक्षाद्ब्रूयादित्यर्थः** तदा नासौ दण्डयो बन्धयितव्यो वा। किं तर्हीयता कालेनोत्तरे सत्यपराजित एव। **धर्मं प्रति**। धर्मत एवायं पराजयो न छलमित्यर्थः। **त्रिपक्षादिति** पात्रादिषु द्रष्टव्यस्तेनेकाराभावः। अर्थतत्त्वमस्य श्लोकस्यास्माभिः प्राङ्निरूपितम् ।। ५८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नचेद्ब्रूयात् ज्ञातॄन् साक्षिणः ज्ञातृपदं प्रमाणपरम्। वध्य-स्ताडनादिना अभियुक्तेनाप्रमाणे वाच्ये विशेषमाह नचेदिति। त्रिपक्षादर्वाङ्नचेत्साक्षिणोब्रूयात्तदा **सः धर्मप्रति** धर्मानपेक्ष्य **पराजितो भवत्यतो** वध्योदडचश्चेत्यर्थाज्जातम्।

(३) **कुल्लूकः**। योऽर्थीसन् राजस्थाने निवेद्य भाषायां न ब्रूयात्तदा विषयगौरवा-पेक्षया वध्योलघुनि विषये **दण्डचश्च धर्मतः** स्यात्प्रत्यर्थी पुनर्यदि पक्षत्रयमध्ये न ब्रूयात्तदा धर्मत एव पराजितः स्यात् न तु छलेन ।। ५८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **अभियोक्ता** अर्थीसन् राजस्थाने निवेद्य राजपुरुषमानीय व्यवहारास्पदं भाषांनब्रूयात्। वध्य इत्यादिविकल्पस्तु विषयगौरवाद्यपेक्षया। **त्रिपक्षात्पक्षत्रयमपि** प्रत्यर्थी वा पुनर्न ब्रूयात् साक्षी वा न ब्रूयात् तदापराजित इति **सोपि दण्डार्हः** ॥ ५८ ॥

(५) **नन्दनः**। नन्दनः। अभियोक्तारं प्रति राज्ञः कर्त्तव्यमाह **अभियोक्ता न चेदिति**। प्रत्यर्थिदत्तोत्तरोभियोक्ता तत उत्तरं चेद्ब्रूयाद्वध्योहिंस्यः। दण्ड्यो दण्डार्हः। तदृणापेक्षयाविकल्पः। तत्र कालावधिरुत्तरार्द्धेनोक्तः। धर्मशब्दौ व्यवहारवचनौ ॥ ५८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अभियोक्ता उत्तमर्णः न ब्रूयात् स धर्मतोवध्योदण्डचश्च। प्रत्यर्थीचेद्धर्मं प्रति त्रिपक्षान्न ब्रूयात्सपराजितो ज्ञेयः ॥ ५८ ॥

(७) **मणिरामः**। अभियोक्ता **न चेद्ब्रूयात्**। न लेखयेद्व्यवहारम्। राज्ञः स्वकार्यनिवेदनान्तरमेव तत्रायं बन्धनार्हो दण्डार्हश्च स्यात्। गुणवद्व्यवहारवस्त्वपेक्षया चैतयोर्नियोगविकल्पसमुच्चयाः प्रकल्प्याः। च शब्दाद्वधदण्डवाग्दण्डचोरपि यथोक्तसामर्थ्यादत्रसम्भवो विज्ञेयो गुणानतिक्रमेण धर्मतः पराजितस्य सोपधत्वात् कारणान्तरतः येन सुविभावितार्थेन ह्यर्थिना भवितव्यम्। अथ केनचित् प्रमाकरणान्तरेणायमकुटिलो निरुपधत्वाद्विज्ञायते। अतो नायं वधदण्डादिः पदार्थः स्यात्। तथा चोक्तम्-धर्मं प्रति पराजितस्य नान्यथा प्रत्यर्थिनः। इदानीमर्थिकालादन्यः प्रतिवचनकालो निर्दिश्यते। न चेत् त्रिपक्षात् प्रब्रूयात् प्रतिब्रूयादित्यर्थः। अतो बध्यो दण्डचश्च धर्मतः धर्मं प्रति पराजितः सन् नेतरथेत्युक्तम् ॥ ५८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अभियोक्तेति**। योऽर्थी सद्य एव पूर्वपक्षं न ब्रूयात् तदा धर्मव्यतिक्रमतारतम्यापेक्षया वधार्हो दण्डनीयश्च स्यात्। आक्षिप्तः पुनः पक्षत्रये यदि न ब्रूयात् तदा धर्मविषये पराजितोऽन्याय्य-प्रवृत्तत्वेनाधार्मिकत्वात् ॥ ५८ ॥

**यो यावन्निह्नुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत् ॥**
**तौ नृपेणह्नयधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम् ॥५९॥**

(१) **मेधातिथिः**। येन पञ्चसहस्राणि दत्तानीति प्रमाणान्तरान्निश्चितं–लेख्यादौ तु करणे 'दश'समारोपितानि–प्रमाणान्तरं संवत्सराख्यमिति निश्चित्येदमपश्यत्केवलेन लेख्यप्रमाणेन सर्वत्र प्रवर्तमानः–छलव्यवहारीति द्विगुणं दण्ड्यः। यस्य तु विस्मृत्याऽप्यन्यथा प्रवृत्तिराशङ्कते तस्य दशकं शतम्। एवमितरस्यापि। न तु सर्वापह्नवे दशभाग एकदेशापह्नवे द्विगुणमिति। किन्तु शाठ्यादन्यथा प्रतिपाद्यमानौ द्विगुणं दण्ड्यौ। विस्मृतिदारिद्र्याभ्यां दण्डमुत्तरम्। **यो यावन्तमर्थमपह्नुवीता**पजानीतेऽधर्मर्णः **मिथ्या यावति** विपरीतं धनं **वदेदुत्तमर्णः**–तावुत्तमर्णाधमर्णावधर्मज्ञौ। **तद्द्विगुणं दमम्**। तदित्यपह्नुवमानधनपरामर्शः। यावदपह्नुतं ततो द्विगुणं दमो दण्डः। **अधर्मज्ञ**ग्रहणाच्च लिङ्गान्निश्चितछलविषयोऽयं दण्ड इत्युक्तम् ॥ ५९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्यन्ताभिनिवेशादिप्रवृत्तौ दण्डमाह **यो यावदिति**। **निह्नुवीत प्रत्यर्थिशोधितं मयेत्यादि**। **मिथ्या वदेत्** नह्यधारयत इत्यर्थः ॥ ५९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **यः** प्रत्यर्थी यत्परिमाणधनमपनयत्यर्थी वा यत्परिमाणधने **मिथ्या-वदति** तावधार्मिकावपह्नुतमिथ्योक्तधनाद्द्विगुणं **दण्डरूपं दापनीयौ**। अधर्मज्ञाविति वचनात्ज्ञानपूर्वापह्नवमिथ्योक्तिविषयमिदम्। प्रमादादिनापलापमिथ्यानियोगापह्नवे द्विगुणमिति शतदशमभागं वक्ष्यति ॥ ५९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उत्तमर्णाधमर्णयोर्दण्डप्रकारमाह **यइति**। **यः** प्रत्यर्थी **यावद्धनं निह्नुवीत अर्थीवा यावति** परिमाणे **मिथ्या भाषते** तद्द्विगुणं तौ दण्ड्याविति अन्वयः। दमंधनदण्डम् ॥ ५९ ॥

(५) **नन्दनः**। विवादिनोर्मिथ्यावचने दण्डमाह **यो यावन्निह्नुवीतेति**। यः प्रतिवादी यावद्यावन्तमेकदेशं कृत्स्नंवार्थमपह्नुवीत। **यो** वादी यावत्येकदेशे कृत्स्ने वार्थे **मिथ्यावदेत्त-द्विगुणं** तिरोहितार्था द्विगुणं **दण्डं दाप्यौ** दण्डत्वेन दाप्यौ। अपि शब्दात्तिरोहितमर्थं च ॥ ५९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **यः** अधमर्णः **यावन्निह्नुवीतार्थं** अर्थीवा **यावति मिथ्या** वदेत्तावद्धर्मज्ञौ नृपेण तस्मात्कारणात्तद्द्विगुणं दमंदाप्यौ दण्डनीयौ ॥ ५९ ॥

(७) **मणिरामः**। नः प्रत्यर्थिनो वा अर्थी प्रत्यर्थी वा। तस्मादपह्नुतादभियोगाच्च मिथ्याभियोक्तारं निह्नवतं च सोपदेशं किञ्चित् प्रतिपाद्यमानं तद्द्विगुणं दापयेत् ॥ ५९ ॥

(८) **गोविन्दराजः** य इति। यः प्रत्यर्थी यत्परिमाणं धनमपजानीते यत्परिमाणं वा धनमर्थी मिथ्या कथयति अधर्मप्रवृत्तौ तस्मादपह्नुतान्मिथ्योक्ताच्च धनात् द्विगुणं दण्डार्थं दापनीयः। अधर्मज्ञाविति वचनाददमत्यन्ताभिनिवेशादिप्रवृत्तविषयम्। अभिनिवेशे त्वपह्नवे तद्द्विगुणमपि दशकं शतं वक्ष्यति ॥ ५९ ॥

(९) **भारुचिः**। तथा च व्याख्यातम्। इदानीमर्थिप्रत्यर्थिनोर्वचनकालनियमार्थमिदमारभ्यते प्रत्यर्थी। यावति यत्परिमाणंधत्ते। मिथ्यावदति अर्थी। तौअर्थिप्रत्यर्थिनौ ॥ ५९ ॥

**अन्यानर्पिप्रकुर्वीत शुचीन्प्राज्ञानवस्थितान् ॥**
**सम्यगर्थंसमाहर्तृनमात्यान् सुपरीक्षितान् ॥६०॥**

(१) **मेधातिथिः**। पृष्टोऽपप्रयुक्तमात्मनः साधयितुमिच्छता। **साक्षिभिर्भाव्यो** विप्रतिपन्नः प्रतिपादयितव्यः। **त्र्यवरैः**। त्रय अवरे येषां तैस्त्र्यवरैः। अवरमपचयाशयमाह। यद्यत्यन्तं न्यूनास्तदा त्रयः स्युः। अन्यथा त्रिभ्य ऊर्ध्वम्। **नृपब्राह्मणसन्निधाविति**। 'ननु च तेषामेव यैर्न्यायः प्रारब्धस्तत्र तत्सन्निधान एव साक्षिप्रश्नः प्राप्तः। किमनेन नृपब्राह्मणसन्निधाविति।" नैवम्। प्रमाणपुरुषप्रेषणेनापि साक्षिप्रश्न उपपद्यत इति। साक्षात्प्रष्टव्य इति पुनर्वचनम् ॥ ६० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पृष्टः प्राड्विवाकेन किंधारयसि नवेति। अपव्ययमानो-निह्नुवानः। कृतावस्थः कृतावस्थानः। त्रयोऽवरा अल्पीयांसोयेषांसाक्षिणांतैः ॥ ६० ॥

(३) **कुल्लूकः**। **धनार्थिनोत्तमर्णेन** राजपुरुषापकर्षं कृताव्हानः प्राङ्विवाकेन **पृष्टः** सन् यदा न धारयामीत्यपह्नवानो भवति तदा नृपत्यधिकृतब्राह्मणसमक्षं **त्र्यवरैः** साक्षिभिः त्रयोवरान्यूनायेषांतैरर्थिना भावनीयः ॥ ६० ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **अपव्ययमानः** सन् पृष्टः प्राङ्विवाकेन **कृतावस्थः** राज पुरुषकृताव्हानः। **त्र्यवरैः** त्रयोऽवरान्यूनायेभ्यःसाक्षिभ्यः तैर्यथावत् तैर्वक्ष्यमाणविशेषण-विशिष्टैः साक्षिभिः **धनैषिणोत्तमर्णेन** भाव्यः ऋणवत्तया संभावनीयः **स ऋणं दाप्यः** इत्यध्याहार्यम् ॥ ६० ॥

(५) **नन्दनः**। वादिप्रतिज्ञातमर्थसभ्यैः **पृष्टस्तमर्थमपव्ययमानो**पह्नुवानः। **कृता वस्थो**यथा नापसरति तथा सभ्यैः **कृतावस्थानः** प्रतिवादी **धनैषिणा** वादिना त्र्यवरै-**साक्षिभिर्भाव**यितव्यः। प्रतिज्ञातार्थंसाधनीयः ॥ ६० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **धनैषिणा** उत्तमर्णेन **पृष्टः**सन् **अपव्ययमानः** निह्नुवानः **कृतावस्थः** कृतपीडः **नृपब्राह्मणसन्निधौ** त्र्यवरैः साक्षिभिर्भावितव्यः ॥ ६० ॥

(७) **गोविन्दराजः**। **पृष्ट इति**। प्रत्यर्थी धनार्थिनोत्तमर्णेन कृतराजपुरुषकर्षणा-दिपरिभवः प्राङ्विवाकेन पृष्टो यदाऽवधारपुरुषकर्षाणादिपरिभवः प्राङ्विवाकेन पृष्टो यदाऽवधारयामीत्येवमपह्नवानो भवति तदा राजाऽधिकृतब्राह्मणसमक्षं यद्यत्यन्तन्यूनैस्ततः त्रिभिः साक्षिभिः तत्र धनार्थिना भावनीयः ॥ ६० ॥

(८) **मणिरामः**। **धनैषिणा** उत्तमर्णेन **कृतावस्थः** राजपुरुषद्वाराकृताह्वानः प्राङ्विवाकेन पृष्टः सन् यदा प्रत्यर्थी न धारयामीत्यपव्ययमानः निह्नवंकरोति तदाः नृपब्राह्मणसन्निधौ राजाधिकृतब्राह्मणसमक्षं अपरैः त्रयादिभिः **साक्षिभिःभाव्यः** विचारणीयः ॥ ६१ ॥

(९) **भारुचिः**। साक्ष्युपलक्षणार्थमिदं प्रकरणमधुनोच्यतेएकस्य साक्षित्वे प्रतिषेधात् द्वयोरपि साक्षित्वं त्रित्वापवादाद् भविष्यति। न केवलं त्रयाणाम् ॥ ६० ॥

**यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः ॥**
**तादृशान्संप्रवक्ष्यामि यथा वाच्यमृतं च तैः ॥ ६१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। साक्षिलक्षणोपन्यासः श्लोकः। **यादृशाः साक्षिणो** यज्जातीया यद्गुणयुक्ताश्च **धनिभिरुत्तमर्णैर्व्यवहारेषु** धनप्रयोगादिषु कर्तव्यास्तादृशान्वक्ष्यमाणेन कथ-यिष्यामि। **यथा च ऋतं** सत्यं **वाच्यं** वक्तव्यं पृष्टैः सद्भिस्तैः—पूर्वार्द्ध इत्यादि—तमपि प्रकारं वक्ष्यामीति ॥ ६१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यथा यादृक्शपथादिकृत्वा। **ऋतं** सत्यम् ॥ ६१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **धनिभिरुत्तमर्णादिभिः** ऋणादानादिव्यवहारेषु यथाविधाः साक्षिणः कर्तव्यास्तथाविधान्वदिष्यामि यथा च तैरपिसत्यं वक्तव्यं तमपि प्रकारं **वक्ष्यामि** ॥ ६१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। साक्षिण इत्युक्तं तल्लक्षणमाह **यादृशा इति द्वाभ्याम्**। **व्यवहारेष्वृणादिषु साक्षित्वेन कार्याः**। **ऋतं** सत्यं **वाच्यं** साक्षिभिर्यथेति **तं च संप्रवक्ष्यामीत्यन्वयः** ॥ ६१ ॥

(५) **नन्दनः**। **धनिभिर्व्यवहारिभिः**। **तैः** साक्षिभिः। **यथा** ऋतं वाच्यं तथा **च** वक्ष्यामीति ॥ ६१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। साक्षिस्वरूपमाह **तैः** साक्षिभिः यथा **ऋतं सत्यं वाच्यम्** ॥ ६१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **या इति**। यथाविधाः साक्षिण ऋणादानादिव्यवहारेषु उत्तमर्णादिभिः कर्तव्याः तथाविधान्कथयिष्यामि यथा च तैः सत्यं कर्तव्यं तमपि प्रकारमभिधास्यामि ॥ ६१ ॥

(९) **भारुचिः**। धनव्यवहारे च साक्षिणं। लक्षणमुच्यमानमन्येष्वपि व्यवहारेषु कार्यसामान्यात् अविरोधाच्चेत्थं भूता एव प्रतीयेरन् ॥ ६१ ॥

**गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्त्रविट्शूद्रयोनयः ॥**
**अर्थ्युक्ताः साक्षमर्हन्ति न ये केचिदनापदि ॥ ६२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। कृतदारपरिग्रहा **गृहिणः**। गृहशब्दो दारेषु वर्तते। ते हि स्वकलत्रपरिभवभयान्न कूटमाचरन्ति। आत्मनि केचिन्निरपेक्षा अपि भवन्ति। अन्यदेशान्तरगमनेनात्मानं रक्षयिष्याम इहैव च क्वचिद्गुप्ता भविष्यामो धनं मित्रं वाऽर्जयाम इत्यनया बुद्ध्या , अनृतमपि वदन्ति। कुटुम्बिनस्तु स्वकुटुम्बभयात् 'क्व वाऽत्मानं न परिरक्षिष्याम' इति दूरं कृत्वा कुटुम्बस्य सापेक्षतया राजदण्डभयान्नान्यथा प्रवर्तन्ते। **पुत्रिण इति**। पुत्रस्नेहात्पुत्रिणः। अपुत्रदारश्च साक्षिप्रश्नकाले साध्वाचारोऽपि कदाचिन्न सन्निहितो भवति। स हि नैकस्मिन् देशे आस्थानवान् भवति। एवं **मौला अपि** व्याख्येयाः। मौला जानपदास्तद्देशाभिजनाः। ते हि स्वजनज्ञातिमध्ये पापभीरुतया न मिथ्या वदन्ति। 'मूलं' प्रतिष्ठा—सा येषामस्ति ते **मौलाः**। अर्थकथनमेतत्। तद्धितस्तु भवार्थ एव कर्तव्यः। यो हि यत्र भवः सोऽपि तस्यास्तीत्यविरुद्धम्। **क्षत्त्रविटशूद्रयोनयः**। न ब्राह्मणः। सर्वदा ह्यस्याध्ययनाध्यापने विहिते, अन्वहं वाऽग्निहोत्रहोमः। तत्र दूरस्थे राजनि धर्मोपरोधोऽस्य माभूदित्यसौ न कर्तव्यतयोपादीयते। यदृच्छयाऽवगतार्थस्तु साक्ष्यन्तराभावे गरीयसि कार्ये मुख्यतमः स साक्षी। तथा च "ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेदिति" साक्षिप्रश्नो भविष्यति (८८)। योनिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते। क्षत्त्रं योनिरुत्पत्तिः कारणमस्यासौ 'क्षत्त्रयोनिः' क्षत्त्रियजातीय इत्यर्थः। क्षत्त्राद्वा योनिर्जन्मास्येति पञ्चमीति योगविभागात्समासोऽप्युक्तः। अर्थिना यदोक्तं भवन्त्येते मम साक्षिणः तदा साक्षिकर्मणि योग्या भवन्ति। ये तु स्वयमागत्य

साक्ष्यं ददति न ते साक्षिणः। **अनापदि**। 'आपत्' साक्ष्यन्तराभाव इति केचित्। तदयुक्तम्। विसंवादकत्वमसाक्षित्वे कारणम्। तत्संवादकान्तराभावे नापैति। न वयं ब्रूमः–प्रतिषिद्ध-साक्षिभावा विद्यामानानृताभिधानहेतवोऽर्थसंबन्ध्यादयो वाऽस्यामवस्थायां प्रतिप्रसूयन्ते –किं तर्हि येषां कदाचिदाहूयमानानां धर्मविरोधो भवति श्रोत्रियादीनां तेषामविद्यमानेष्व-न्येष्वनुभूतार्थानामिदं प्रत्यनुज्ञानं न पुनरनृतानाम्॥ ६२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **मौलास्तद्ग्रामे** परंपरयानिवसन्तः। **अर्थ्युक्ताः** अर्थिनोक्ताः न स्वयमेव साक्ष्येऽहमिति वादिनः॥ ६२॥

(३) **कुल्लूकः**। कृतदारपरिग्रहाः पुत्रवन्तः तद्देशजाः क्षत्रियशूद्रवैश्यजातीयाः अर्थिनिर्दिष्टाः सन्तः साक्षित्वयोग्या भवन्ति ते हि कृतपरिकरपुत्रभयातद्देशवासिनाविरोधाच्च नान्यथा वदन्ति नतु ये केचिदृणादानादिव्यवहारेषु साक्षिणः स्युः। आपदि तु वाग्दण्डपारुष्य-स्त्रीसंग्रहणादिषूक्तव्यतिरिक्ताः साक्षिणो भवन्ति॥ ६२॥

(४) **राघवानन्दः**। **मौलास्तद्देशजाः अर्थ्युक्ता** अर्थिना उभयेनोक्ताः अत्रार्थे यूयं साक्षिण इति तादृशाः साक्ष्यमर्हन्ति दातुमिति शेषः। आपत्कालो वक्ष्यमाणः॥ ६२॥

(५) **नन्दनः**। गृहिणो भार्यावन्तः। **मौलाः** कुलश्रेणीप्रधानभूताः। **अर्थ्युक्ता** अर्थिना कार्यकाले सर्वेषु वर्णेषु रक्षित्वेन भाविताः॥ ६२॥

(६) **रामचन्द्रः**। **गृहिण इति**। साक्षी श्रवणाद्दर्शनाद्भवति। ते साक्षिणः कीदृशाः **गृहिणः** गृहस्थाः **पुत्रिणः मौलाः** वंशपरंपरायाताः ग्रामनिवासिनः **क्षत्रविट्शूद्रयोनयः अर्थ्युक्ताः** अर्थिना उक्ताः **अनापदि साक्षित्वमर्हन्ति आपदि** कदाचित् प्रापयेत्॥ ६२॥

(७) **मणिरामः**। **मौलाः** तद्देशजाः। **अर्थ्युक्ताः** अर्थिना आनीताः न तुये केचित् ऋणादिव्यवहारे साक्षिणः स्युः। **अनापदि**। एतदृशाः आपदितु उक्तव्यतिरिक्ता इत्यर्थः॥ ६२॥

(८) **गोविन्दराजः**। **गृहिण इति**। गृहस्थाः पुत्रवन्तः तद्देशाभिजनाः क्षत्रियवैश्य शूद्रजातीया अर्थिनिर्दिष्टाः सन्तः साक्षित्वयोग्या भवन्ति। तेऽपि गृहादिपरिभवभयान्ना-न्यथा ब्रुवते। ननु ये केचिदृणादानादनपेक्षे व्यवहारे वाग्दण्डपारुष्यादौ पुनः साक्षेप उक्त-गृहादिव्यतिरिक्ता अपि भवन्ति॥ ६२॥

(९) **भारुचिः**। श्रोत्रियस्य साक्षित्वे प्रतिषेधात् ब्राह्मणस्याश्रोत्रियस्यास्ति साक्षि-त्वमिति गम्यते। अन्त्यजस्य प्रतिषेधाद्धि नोत्कृष्टानामपि शूद्राणां ग्रहणं प्रतीयते॥ ६२॥

**आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः॥**
**सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत्॥ ६३॥**

(१) **मेधातिथिः**। **आप्ता** अविसंवादका यथादृष्टार्थवादिनः येषां लोको विप्रल-म्भकत्वं न संभावयति–धर्मानुष्ठानपरा ये ख्याताः। **सर्वधर्मविद** श्रौतं स्मार्तमाचारनिरूढं च सर्वं धर्मम्–इह नरकः फलमिह स्वर्ग इत्येवं निरवशेषं–जानन्ति ते ह्यनृताभिधाने नरकं

पश्यन्तो बिभ्यति। **अलुब्धा** उदारसत्वा न स्वल्पं धनं बहु मन्यन्ते। एकैकस्य समस्तानि सर्वाणि विशेषणानि–साक्षिक्रियायां गुणभूतत्वाद्गुणे च साहित्यस्य विवक्षितत्वात्। **सर्वेषु वर्णेष्विति**। सर्वकार्येषु न जातिनियमोऽस्तीत्युक्तं भवति। यत्पुनर्जातिव्यवस्थावचनं तदुपरिष्टाद्वक्ष्यामः। तदेतदुक्तं भवति। सर्वैः कार्यिभिः सर्वे वर्णा यथासंभवं साक्षिणः कर्तव्याः। **कार्येषु** ऋणादानादिषु। यथोक्तलक्षणात् **विपरीतांस्तु वर्जयेत्**। यद्यपि विशिष्टेष्वभिहितेषु तद्विपरीतानां प्रसङ्ग एव नास्ति तथापि लौकिकोऽयं पर्युदासः। प्रायेण हि लौकिका अन्यं विधायान्यं तद्विपरीतं निषेधयन्ति। तथा च भवन्ति वक्तारः–'क्रिया हि द्रव्यं विनमयति नाद्रव्यमिति'। किंचाविसंवादकत्वमिह प्रधानं साक्षिलक्षणम् तच्च न विधिमुखेन शक्यावसानम्, किन्तु विसंवादकरणभावमुखेन। न ह्यविसंवादकत्वं प्रत्यक्षदृश्यम्। तद्धि यथार्थाभिधानम्। श्रोत्रग्राह्यो च वस्तुनि कुतः प्रत्यक्षा यथार्थनिश्चयः। प्रत्यक्षत्वे हि नैव साक्ष्यवगमोऽन्विष्यते। न च सर्वत्र परोक्षे वस्तुनि शब्दावगम्ये प्रमाणान्तरसंवादसंभवः। तस्माद्यानि भूयस्त्वेन मिथ्याभिधानकरणतया दृष्टानि तदभावनिश्चयेनाविसंवादकत्वमनुमीयते। अतस्तत्प्रदर्शनार्थोऽयमुपक्रमो **विपरीतांस्तु वर्जयेदिति** ॥ ६३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **आप्ताः** यथादृष्टवादितया गृहीतसंवादाः तथा **सर्वविदः अलुब्धाश्च** निश्चिताः आप्तत्वेऽपि कार्याः ॥ ६३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। क्षत्रविट्शूद्रयोनय इत्युक्तत्वात्ततो ब्राह्मणपरिग्रहार्थं सर्वेषु वर्णेष्वित्यभिधानं सर्ववर्णेषु मध्ये ये यथार्थावगतवादिनः सर्वधर्मज्ञालोभरहिताः ते साक्षिणः कर्त्तव्याः उक्तविपरीतांश्चवर्ज्जयेत् ॥ ६३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच, **आप्ता** यथावगतवादिनः। **सर्वधर्मविदो** मन्वादिधर्मशास्त्रविदः। **अलुब्धा** इति च्छेदः ॥ ६३ ॥

(५) **नन्दनः**। **कार्याः** कार्येषु **आप्ता** धर्मनिश्चये प्रधानभूताः। **अलुब्धाः** रागद्वेषरहिताः। **सर्वेषु धर्मेषु** विद्वांसः। सर्वेषु विद्यमानावर्णविशेषानपेक्षयेति यावत् ॥ ६३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सर्वेषु वर्णेषु** चतुर्षु सर्वेषु कार्येषु **साक्षिणः**। **कार्याः** कीदृशाः ? **आप्ताः** गृहीतसंवादाः। पुनः कीदृशाः ? **सर्वधर्मविदः** अलुब्धाः। ब्राह्मणस्य ब्राह्मणाः क्षत्रियस्य क्षत्रियाः, एवमग्रे ॥ ६३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **आप्ता इति**। सर्ववर्णानां व्यवहारेष्वसंवादिनः सर्वधर्म शास्त्रज्ञा लोभरहिताः साक्षिणः कार्याः। एतद्विपरीतान् पुनर्वर्जयेदित्यर्थः। सिद्धस्य तु शब्दाभिधानं दण्डार्थम् ॥ ६३ ॥

**नार्थसंबन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः ॥**
**न दृष्टदोषाः कर्तव्या न व्याध्यार्ता न दूषिताः ॥ ६४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। तानीमानि संभाव्यमानमिथ्याभिधानकरणत्वेन पठ्यन्ते। तत्रार्थ**सम्बन्धिन** उत्तमर्णाधमर्णाद्याः। उत्तमर्णा ह्यधमर्णवचनेन पराजीयमानास्तदानी-

मेव रोषावेशवशतः स्तंभयन्ति धनं प्रत्यादातुमधमर्णम्। अतोऽसौ सन्निहितधनिकचित्त मनुवर्तमानः तदनुगुणं वक्तुं शक्नोति। तस्मादसौ न साक्षी। उत्तमर्णोऽपि निर्धनेऽधमर्णे-व्यवहारजयाच्च धनप्राप्तौ मह्यमयं प्रतिदास्यतीत्यनया बुद्धया कदाचित्तत्पक्षानुगुणं वक्तीति सोऽप्यसाक्षी। अथवाऽर्थः प्रयोजनं यस्य साक्षिणो विवादिभ्यां किंचित्प्रयोजनं साध्यं, तेन वा तयो; स उपकारगन्धान्न साक्षी। यो वा व्यवहारगतेनार्थेन समानफलः। इत्येवंप्रकारार्थ**सम्बन्धिनः**। **आप्ता** मित्रबान्धवतया कार्याभ्यन्तराः पितृव्यमातुलादयः। **सहायाः** प्रतिभूप्रभृतयः। **वैरिणः** प्रसिद्धाः। **दृष्टदोषा** अन्यत्र कृतकौटसाक्ष्याः। अन्यद्वा प्रतिषिद्धमाचरतिवन्तः। **व्याध्यार्ता** रोगपीडिताः। न पुनरीषद्रोगिण इत्यार्त्तग्रह-णम्। पीडितस्य हि क्रोधविस्मृत्यादयो मिथ्या वचने संभाव्यन्ते। **दूषिताः** पातकिनोऽ-भ्यस्तोपपातकाश्च। दृष्टदोषग्रहणं तु तेषामेव कृतनिग्रहाणां परिग्रहार्थम्। ते हि राजनि वृत्तदण्डा ग्राहितविनयत्वान्न संप्रति 'दूषिता' भवन्ति॥ ६४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अर्थसंबंधिनस्तज्जयफलभागिनः**। **आप्ताः** स्निग्धाः स्वस्य परस्य वा असाधारण्येन। **सहायाः** भृत्याः वक्तुः। **दृष्टदोषाः** दृष्टसाक्ष्यमिथ्याभिधानाः। **दूषिताः** अभिशस्ताः॥ ६४॥

(३) **कुल्लूकः**। ऋणाद्यर्थ**संबंधिनो**ऽधमर्णाद्याः **आप्ता** मित्राणि सहायास्तत्परि-चारकाः शत्रवः स्थानान्तरावगतकौटसाक्ष्याः रोगपीडिता महापातकादिदूषिताः **साक्षिणो न कर्तव्याः**। लोभरागद्वेषस्मृतिभ्रंशादीनामन्यथाभिधानहेतूनांसंभवात्॥ ६४॥

(४) **राघवानन्दः**। विपरीतान्वर्जयेदित्युक्तंतानाह **नेतिचतुर्भिः**। **अर्थसंबंधिनः** ऋणाद्यर्थसंबंधिनः। **आप्ताः** पुत्रादयः। **दृष्टदोषाः** कूटसाक्षिणः। **न व्याध्यार्ताः** कुष्ठा-द्याक्रान्ताः। **दूषिताः** महापातकादिना॥ ६४॥

(५) **नन्दनः**। **अर्थसंबन्धिनो** वादिप्रतिवादिनोरन्यतरेण कृतोपकाराः। **आप्ता** एकतरस्मिन्पक्षे स्निग्धाः। **सहायाः** सहचारिणः। **दृष्टदोषाः** पूर्वकौटसाक्ष्यादिकृत-दूषिताः। अभिशस्ताः॥ ६४॥

(६) **रामचन्द्रः**। निषिद्धानाह **नेति**। **अर्थिसंबधिनोन कार्याः**। **आप्ताः** शक्ता न। **अर्थिसंबंधिसहायाः** न। **वैरिणः** सहायानकार्याः। **दृष्टदोषाः** कुष्ठाद्यपस्मारसहितान कर्तव्याः। **व्याध्यार्ता न** कर्तव्याः। **दूषिताः** अभिशस्ता न **कार्याः**॥ ६४॥

(७) **मणिरामः**। न **दूषिताः** महापातकादिदूषिताः॥ ६४॥

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः सर्वकर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत्। विपरीतांस्तु वर्जयेदित्यर्थसिद्धस्याप्यनुवादो वाक्यस्वाभाव्यादादरार्थः। सर्ववर्णग्रहणा-च्चात्र ब्राह्मणस्यापि साक्षित्वं प्रतीयते। श्रोत्रियस्य प्रतिषेधादितरस्य॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नेति**। साक्षिणो भयलोभरागद्वेषस्मृतिभ्रंशादिनान्यायाभि-धानाशङ्कायां न कार्याः। ऋणाधमर्णसम्बन्धिमित्रवैरकृतकौटसाक्षिव्याधिमूर्च्छितमहा-व्याधिका दूषिता न कार्याः॥ ६४॥

(९) **भारुचिः**। अन्यस्मिन् व्यवहारे कूटसाक्षित्वेन तेहि स्मृतिपरिमाणादुभयत्र नस्युः। निमित्तेन च प्रतिषेधादनातुरो व्याधितोऽपि स्यात्। पातकोपपातकाभिशंसाद्दूषितोऽपि न स्यात्॥ ६४॥

**न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ॥**
**न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न सङ्घेभ्यो विनिर्गतः॥ ६५॥**

(१) **मेधातिथिः**। **कारुकाः** शिल्पोपजीविनः सूपकारायस्कारादयः। **कुशीलवाः** नटनर्तकगायनाद्याः। **श्रोत्रियो** वेदपाठकः। यस्त्वध्ययनतत्परः स इह गृह्यते। अथवा श्रोत्रियत्वं कर्मानुष्ठानोपलक्षणार्थम्। तेनानुष्ठानपरस्य तद्विरोधतया प्रतिषेधः। **लिङ्गस्थो ब्रह्मचारी**। परिव्राजकपाखण्डलिङ्गधारिणस्तु कुशास्त्रवर्तित्वादेवाप्राप्ताः। **सङ्घेभ्यो विनिर्गता** वेदसंन्यासिनो गृहस्थाः। 'सङ्घः' अभ्यासतो विषयोपभोगः; दृष्टार्थकर्मारम्भो वा॥ ६५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। न नृपतिः तस्य। बहुव्यासक्तत्वेनाऽस्मरणात्। एवं **कारुकः**। शिल्पी। **कुशीलवो** नटः। **श्रोत्रियो** वेदाध्ययनपरः। **लिङ्गस्थः** परिव्राजकादिः। **संगनिर्गतः** सर्वदैकान्तसेवनादिशीलः॥ ६५॥

(३) **कुल्लूकः**। प्रभुत्वात्साक्षिधर्मेण प्रष्टुमयोग्यत्वान्न राजा **साक्षी कार्यः**। **कारुः** सूपकारादिः **कुशीलवो**नटादिः तयोः स्वकर्मव्यग्रत्वात्। प्रायेण धनलोभत्त्वाच्चासाक्षित्वम्। श्रोत्रियोप्यध्ययनाग्निहोत्रादिकर्मव्यग्रतया न साक्षी। लिङ्गस्थो ब्रह्मचारी सङ्घनिर्गतः परिव्राजकः तयोरपिस्वकर्मव्यग्रत्वाद्ब्रह्मनिष्ठत्वाच्चासाक्षित्वम्। श्रोत्रियग्रहणादध्ययनाग्निहोत्रादिव्यग्रेतरब्राह्मणस्यानिषेधः॥ ६५॥

(४) **राघवानन्दः**। एतेषट् न साक्षिणइत्याह **नेति**। **कारुकुशीलवावुक्तौ**। **राजादी**नांस्वस्वकर्मव्यग्रतया अस्थिरचित्तत्वात्। न श्रोत्रियः अध्यापनाध्ययनाग्निहोत्रव्यग्रत्वात्। **संगेभ्योविनिर्गतः** संन्यासीति केचित्। **कुटुम्बबहिष्कृतः** मण्डलाच्च बहिष्कृत इति। वा लिङ्गस्थपदेन संन्यासिनोग्रहणात्॥ ६५॥

(५) **नन्दनः**। राज्ञः साक्षित्वे शपथादिना लाघवं संभवेदिति राज्ञःप्रतिषेधः। **कारुः** कर्मकरोरजकादिः। **कुशीलवो**गायकः। परिकरभूतत्वात्तयोर्नृपसदस्याह्वाने परकार्यविरोधः स्यादिति प्रतिषेधः। श्रोत्रियादीनांत्रयाणामाह्वाने धर्मपीडास्यादिति प्रतिषेधः। न पुनरेषामसत्यवचनत्वात्। **लिङ्गस्थः** संन्यासी। **सङ्घेभ्योविनिर्गतो**विरक्तः॥ ६५॥

(६) **रामचन्द्रः**। **नृपतिः** राजा **साक्षी न कार्यः**। **कारुकः** कारकर्ता **कुशीलवौ** कुत्सितं शीलं यस्य स कुशीलः। **न लिङ्गस्थः सङ्घेभ्योविनिर्गतः** संन्यासी **न कार्यः**॥ ६५॥

(७) **मणिरामः**। **न कारुः** सूपकारादिः। **कुशीलवो**नटादिः **लिंगस्थोचारी**। ब्रह्मचारी **सङ्घेभ्योविनिर्गतः** संन्यासी॥ ६५॥

(८) **गोविन्दराजः। न साक्षीति।** राजानन्तत्वाद् व्यवहारदृष्टत्वाच्च शास्त्रधर्मेण च प्रष्टुमशक्यत्वान्न साक्षी कार्यः। सूपकारनटादयश्च वेदसंन्यासिनो गृहस्था एते धर्मपरा न कार्याः नटादयश्च प्रायेणार्थपराः स्वकर्मग्रस्ताश्च व्यग्राश्च ते न कार्याः। श्रोत्रियब्रह्मचारितापसभिक्षवश्च लिङ्गस्थाः सङ्गवर्जिता न कार्याः। श्रोत्रियग्रहणादध्ययनानुष्ठानरहितस्य ब्राह्मणस्य न निषेधः॥ ६५॥

(९) **भारुचिः।** नृपतेः साक्षित्वप्रतिषेधः सत्यविभावनेऽपि तस्य (च ? प) क्षपरिग्रहाशङ्कया अवचनेन च परिक्षयो जानपदानाम्। अथवा समानदेशस्य राज्ञः अवश्यत्वात् प्रतिषेधः। अथवा व्यवहारद्रष्टू राज्ञः साक्षित्वमयुक्तम् कारका नित्यव्यापृताः। कुशीलवा नित्यप्रेषिताः सर्वजनपदसम्बन्धेन वा तेषामनृताशङ्कया तत्प्रत्यवायदर्शन...श्रोत्रियस्य धर्मोपरोधशङ्कया तदानयनपीडशङ्कया च एतेन लिङ्गस्थो व्याख्यातः। अथ तु सोपधः सुतरां तस्य प्रतिषेधो युक्तः। नृप...क्षत्रियत्वान्नयापराभिः॥ ६५॥

**नाध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत्।**
**न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः॥ ६६॥**

(१) **मेधातिथिः।** **अध्यधीन**शब्दोऽत्यन्तपरतंत्रगर्भदासादौ रुढ्या वर्तते। अन्ये तु तुल्यसंहितत्वादध्याधीन इति पठन्ति। 'अध्याधीनो' बन्धकीकृतः। **वक्तव्योऽनुशास्यः** शिष्यपुत्रादि; आचार्याधीनत्वात्। अथवा कुष्ठादिना कुत्सितकायः। **दस्युः** भृतिदासः वैतनिकः। 'स ह्युपादासयति' कर्माणीति नैरुक्ते निरुक्तः। तस्य च दिवसभृतत्वान्नात्यन्तपारतन्त्र्यमस्तीति पृथगुपदेशः क्रियते। कर्मजीवनत्वापत्तौ तथा विधानां जीविकोच्छेदः लघुवृत्तित्वाच्च लोभादिसंभवेनाप्रत्ययितता?पि। चौरस्य तु शब्दान्तरोपादानान्न दस्यु,-ग्रहणेन ग्रहणम्। कठिनहृदयो वा **दस्युः** क्रूरचेष्टः। **विकर्म**कृच्छास्त्रविरुद्धं यः कर्म करोति। यथा ब्राह्मणः क्षत्रियवृत्तिं वैश्यो वेत्यादि। **वृद्धो** वयःपरिणामादसंस्मृतिः। **शिशुर्बालो**ऽप्राप्तव्यवहारः। **एकः।** व्यवरग्रहणेनैकस्याप्राप्तेः प्रतिषेधो द्वयोः कस्यांचिदवस्थायामभ्यनुज्ञानार्थः। यथा त्रिहस्ताचारोपपन्ने। 'यद्यपि तत्र तृतीयलेखको न भवति तथापि लेखनमात्रस्य व्यापारो न साक्षित्व इति' कस्यचिदियमाशङ्का स्यात्। **अन्त्यो** बर्बरचाण्डालादिः—स्ववर्गादन्यत्र। शूद्रयोनित्वेन प्राप्तस्य प्रतिषेधः। **विकलेन्द्रियो**ऽन्धबधिरादिः—शरीरपीडयोपलब्धिर्विकलत्वाच्च॥ ६६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **अध्यधीनो**ऽन्यस्य गर्भदासः। **वक्तव्यो** दुराचारत्वादिना गर्हितः। **दस्युर्धातकः। विकर्मकृत्** सूनादिः। **नैक इति।** अभावे द्वयोरपि ग्रहणम्। **अन्त्यो**ऽन्त्यजः॥ ६६॥

(३) **कुल्लूकः।** **अध्यधीनो**त्यन्तपरतन्त्रो गर्भदासोन **वक्तव्यो** विहित कर्मत्यागाल्लोकविगर्हितः। **दस्युः** क्रूरकर्मा न चौरो नापि तस्करइति वक्ष्यमाणत्वात्। विकर्मकृन्निषिद्धकर्मकारी एतेषांरागद्वेषादिसंभवात्। **न वृद्धः** प्रायेण स्मृतिभ्रंशसंभवात्। न बालोऽप्राप्त व्यवहारत्वात्। नैकोविनाशप्रवासशङ्कया तस्य व्यवरैरितिविधानात्।

अर्थप्रतिषेधसिद्धौ कस्याञ्चिदवस्थायां द्वयोरभ्यनुज्ञानार्थं निषेधवचनम्। **अन्त्यश्चां**-डालादिः धर्मानभिज्ञात्वात्। **विकलेन्द्रियः** उपलब्धिवैकल्यान्नसाक्षीकार्यः ।। ६६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। एते सप्तदश न साक्षिणइत्याह **नेति द्वाभ्याम्**। **अध्यधीनः** अत्यन्तपरतन्त्रः। **गर्भदासो**विचित्तत्वात्। **वक्तव्ये** सर्वलोकविगर्हितः **वृद्धो**ऽत्यन्तवयसा। **अन्त्यश्च**ाण्डालादिः। **विकलेन्द्रियः** बाधिर्यादियुक्तः।। ६६ ।।

(५) **नन्दनः**। अध्यधीनोत्यन्तपरतन्त्रः **गर्भदास** इति केचित्। वक्तव्यो निन्द्यः। **दस्यु**र्हीनजातिः। अध्यधीनादीनामसाक्षित्वे कारणं सत्यवाचक नियमाभावः। पूर्वसाक्षिणां-त्र्यवरमुक्तं अत्रैकत्वं प्रतिषिद्धं तेनायमर्थो गम्यते त्र्यधिकत्वमुत्तमः पक्षः। **त्र्यवरत्व**मध्यमः। द्वित्वमधमः। नकदाचिदप्येकमिति ।। ६६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **अध्यधीनो न गर्भदासः अत्यन्ताधीनः वक्तव्यः** शिष्यपुत्रादिर्न-कार्यः। **दस्यु**र्धार्तकोवा**विकर्म**कृत्। नवृद्धः न भृतिदासः नान्त्यः अन्त्यः शूद्रचाण्डालः ।। ६६ ।।

(७) **मणिरामः**। **अध्यधीनः** अत्यंतपरतंत्रः गर्भदासः। **वक्तव्यः** लोकबहिष्कृतः। **दस्युः** क्रूरकर्मा **अन्त्यः** चांडालादिः ।। ६६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **नाध्यधीन इति**। अध्यधीनो गर्भदासोऽत्यन्तपरत्वान्नकार्यः। न वक्तव्य सर्वकर्मदोषाद्गर्हणीयः यः कुत्सादितरत एव वचनादिदस्युर्भृतक सत्युपदास इति कर्माणीति नैरुक्तात्सोऽपि पारतन्त्र्यान्न कार्यः। तस्करस्य तथाऽभिधास्यमानत्वात्प्रति-षिद्धकर्मकृदनास्वासात् न वृद्धोऽतिक्रान्त व्यवहारकत्वात्। न शिशुः अव्यवहारकरत्वात्। एकोऽपि न नाश प्रवासाऽशङ्कया तस्य त्र्यवरैरिति निषेधसिद्धौ कस्याञ्चिदवस्थायां द्वयोरभ्यनुज्ञानार्थवचनम्। अन्त्यश्चाण्डालादिः धर्मानभिज्ञत्वात्। विकलेन्द्रिय उप लब्धिवैकल्यात् ।। ६६ ।।

(९) **भारुचिः**। अध्यधीनो गर्भदासः। अत्यन्त····पीसि वक्तव्योऽङ्ग्व्यसनः कुष्ठ्यादिश्च स च जात्यन्तरे दोषाशङ्कया। एवं कर्मावशेषेणेति वक्ष्यति। दस्युर्दास-उपसादयति कर्माणि क्षपयतीति···नदस्युस्तस्करः। न विकर्मकृत् अधार्मिकत्वात्। वृद्धशिश्वोरतीताप्राप्तव्यवहारत्वात् प्रतिषेधः एकस्यसाक्षित्वप्रतिषेध (स्त्य ? स्त्व) परै-रिति सिद्धा। यत ए····· एकस्यापि (विशेषेधात् ? विप्रतिषेधात् ? निषेधात्) पाक्षि(कम? कः) पूर्वश्लोकः। अयं पुनः प्रतिषिद्धप्रतिप्रसवार्थः एवं च सति यथा (स्त्रिया? स्त्या) दिनां सादृश्याभावेऽप्यसदृशा एव क्वचिद् भवन्ति। एवं बालादीनाम् ।। ६६ ।।

**नार्त्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः ।।**
**न श्रमार्त्तो न कामार्त्तो न क्रुद्धो नापि तस्करः ।। ६७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **आर्तो** बन्धुधनादिनाशेन। **मत्तो** मद्यमदक्षीबः। अपस्मारगृहीत **उत्मत्तः** पिशाचकी। **क्षुत्तृष्णोपपीडितो** बुभुक्षापिपासाभ्यां व्यथितः। **श्रमः** कायचेष्टा-

धिक्येन दूराध्वगमनयुद्धादिनोत्पन्नस्तेनार्तः पीडितः। **कामः** स्त्रीसङ्गाभिलाषस्तेनाऽऽर्तः। विप्रलंभोऽत्यन्तसंयोगो द्वावपि तावत्प्रत्ययौ। चित्तोपप्लवात्तत्साधने च विप्रलंभाशङ्क्या च। **क्रुद्धोऽन्यस्मिन्नपि** बहुतरक्रोधः। स हि क्रोधेन व्याप्तचित्तत्वान्न यावदनुभवति नाप्यनुभूतं स्मरति। **तस्करश्चोरः**। यद्यप्यसौ विकर्मकृत्तथाऽपि भेदोपादानाद्गोबलीवर्दन्यायो द्रष्टव्यः॥ ६७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नार्त इति। एतेचार्तत्वादयः साक्षिकरणकाले दोषाः। आर्तःशोकादिना। मत्तोमद्यादिना। उन्मत्तोवातादिना। तस्करः साक्ष्यकाले दृष्टपरार्थापहारः॥ ६७॥

(३) **कुल्लूकः**। आर्तोबन्धुविनाशादिना मत्तोमद्यादिना उन्मत्तउत्क्षेपभूतावेशादिना क्षुधापिपासादिनापीडितः श्रमार्त्तोवर्त्मगमनादिना खिन्नः कामार्त्तउत्पन्नक्रोधः चौरश्च न साक्षी कार्य इति सर्वत्र संबध्यते। तत्रार्तादिर्बुद्धिवैकल्यात् चौरस्त्वधार्मिकत्वात्॥ ६७॥

(४) **राघवानन्दः**। आर्तोधनपुत्रादिनाशेन। मत्तोमद्यादिना। उन्मत्तोवातुलः। श्रमार्तोभारोद्वहनादिना। तस्करः चोरः। वृद्धादिक्रुद्धान्तानां प्रायेण स्मृतिलोपात् आर्तायष्टसु स्मृतिलोपः प्रसिद्धः॥ ६७॥

(५) **नन्दनः**। आर्त्तः पुत्रशोकादिपीडितः॥ ६७॥

(६) **रामचन्द्रः**। नउन्मत्तोन ग्रहाभिभूतः॥ ६७॥

(७) **मणिरामः**। **मत्तः** मद्यादिना **उन्मत्तः** भ्रांतावेशादिना॥ ६७॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नार्त इति**। **आर्तो** बन्धुविनाशादिना **मत्तो** मद्यादिना **उन्मत्तो** भूताद्याविष्टः क्षुधा पिपासया चाक्रान्तः **श्रान्तोऽध्वगमनादिखिन्नः** कामाक्रान्त अत्यन्तक्रोधबुद्धिवैकल्यात् न कार्याश्चौरा अधार्मिकत्वात्॥ ६७॥

(९) **भारुचिः**। **आर्तः** उपबन्धुविनाशादिना। एवं चोक्तव्याध्यार्तादन्योऽयं। मत्तोन्मत्तौ प्रसिद्धौ क्षुत्तृष्णोपपीडितश्च। **क्रुद्धः** क्रोधनत्वादप्रत्ययवृत्तिः। **तस्करः**। गोबलीवर्दन्यायेन विकर्मकृत्। उपदेशाद्विज्ञेयः॥ ६७॥

**स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः।**
**शूद्राश्चसन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः॥ ६८॥**

(१) **मेधातिथिः**। यत्र पुमांसावर्थिप्रत्यर्थिनौ तत्र स्त्रीणां साक्ष्यं नास्ति यत्र तु स्त्रिया सह पुंसः कार्यं स्त्रीणामेव चेतरेतरं स्वल्पं तत्र भवन्त्येव स्त्रियः साक्षिण्यः न चार्यं नियमः स्त्रीणां स्त्रिय एव साक्ष्यं कुर्युर्न पुमांसः। केवलं पुंविषये व्यवहारे क्वचिदेव स्त्रीणां साक्ष्यं यतोऽस्थिरत्वादिति हेतुरूपात्तः। भवन्ति काश्चन स्त्रियो ब्रह्मवादिन्य इव सत्यवादिन्यः स्थिरबुद्धयश्च। **द्विजानां सदृशा द्विजाः**। यः प्रमाणतरो द्विजः स विसदृश शङ्कामानप्रमाणभावमपि दिशन्साक्ष्ये न श्रद्धेयवचनो भवति। यतस्तथाभूतेन प्रमाणभूत एव द्रष्टव्यः। स हि तस्य सदृशः। सदृशानां हि समानदेशस्थानमितरेतरकार्यज्ञत्वं च

संभाव्यते। इतरस्य तु तत्प्रदेश सन्निधिर्यत्नेन साध्यः। सदृशयोस्त्वौचित्यात्सिद्ध एव। वंशहीनस्य हीनगुणोऽपि सादृश्याद्ग्रहीतव्यः। न तूत्कृष्टगुणो न ग्रहीतव्यः। सादृश्यं जात्या शिल्पादिना वा गुणेन क्रियया वा श्रुताध्ययनादिकया समानशीलतया च। एतच्च नातिमहति कार्ये द्रष्टव्यम्। न हि हीनगुणेषु प्रत्ययितता निश्चीयते। **अन्त्यानां** चाण्डाल-श्वपचादीनां तादृशा एवा**न्त्ययोनयः**। अन्ते भवा अन्त्या, सा योनिरुत्पत्तिकारणं येषामिति विग्रहः। प्रदर्शनं चैतत्। ये समाना जातिशिल्पशीलादिभिस्तेषामिहानुक्तानामपि वणिक्कारुकुशीलवादीनां–हेतोः स्वमानत्वात्॥ ६९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एतद्दोषविरहे चाण्डालादयोपि ग्राह्या इत्येतदर्थं **स्त्रीणा**-मित्यादिप्रतिषेधः। **द्विजा** ब्रह्मक्षत्रविशो**न्योन्यं कुर्युः**। **सदृशा इति** नोत्तमा नात्यधमा-इत्यर्थः। **सन्तोऽसंभावित दोषाः**॥ ६८॥

(३) **कुल्लूकः**। स्त्रीणामन्योन्यव्यवहारे ऋणादानादौ स्त्रियः साक्षिण्यो भवन्ति। **द्विजानां** ब्राह्मणक्षत्रियविशां **सदृशाः** सजातीयाः **साक्षिणः स्युः**। एवं शूद्रा साधवः शूद्राणाम्। चाण्डालादीनां चाण्डालादयः **साक्षिणो** भवेयुः। एतच्च सजातीयसाक्ष्यभिधानमुक्त-लक्षणसजातीयसाक्षिसंभवेऽसंभवे विजातीया अपि साक्षिणो भवन्ति। अतएव **याज्ञवल्क्यः** (अस. ६९) 'यथा जातियथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः'॥ ६८॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तेषु प्रतिप्रसवतया व्यवस्थितिमाह **स्त्रीणामिति**। **कुर्युः** दद्युः। वर्णव्यवस्थितिमाह **द्विजानामिति**। **सन्तो** द्विजशुश्रूषादिरताः॥ ६८॥

(५) **नन्दनः**। बहुशुचयोऽपि च **स्त्रिय इति**। स्त्रीणां साक्षित्वस्य वक्ष्यमाणस्यायम-पवादः। **सदृशाः** सजातीयाः॥ ६८॥

(६) **रामचन्द्रः**। उक्तानाह **स्त्रीणामिति**। **द्विजानां सदृशा** सवर्णाः द्विजाः। **अन्त्यानां** अन्त्ययोनयः॥ ६८॥

(७) **मणिरामः**। **स्त्रीणां** परस्परऋणादानादौ न तु स्त्रीपुरुषयोर्व्यवहारे॥ ६८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **स्त्रीणामिति**। स्त्रीणां स्त्रियः साक्षिणो भवन्तीति अन्या-गोचररहस्यप्रायः स्त्रीकार्यविषयमिदम्। तत्र पुंसः साक्षित्वेको यस्मान्न गोचर इति नित्या-भिधानाशङ्का स्यात्। अन्यत्र ऋणादानादिव्यवहारे तासां पूर्वोक्ता एव साक्षिणो भवन्ती त्येव द्विजानामित्येवमादावपि द्रष्टव्यम्। द्विजानां ब्राह्मणादीनां समानजातिगुणा द्विजाः शूद्राणां साधवः शूद्राः चाण्डालादीनां तज्जातीया एव भवन्ति॥ ६८॥

(९) **भारुचिः**। अर्थव्यवहारेषु स्वस्थवृत्तयः आत्मनो जात्यादिसादृश्येन साक्षिणः स्युः। अर्थप्रयोक्तारो (अन्यो? अन्ये) वार्थसम्बन्धिनः। एवं च प्रदर्शनार्थत्वादस्य तापस-प्रव्रजितवणिक् (शीलव? कृषीवल) गोपालकादीनां सादृश्येन साक्षिणः स्युः। तथा च 'क्षत्रविट्शूत्र'क्षत्रविट्शूद्रयोनय' इति सामान्यनिर्देशोऽयं द्रष्टव्यः। अर्थव्यवहारे(ह्य?) प्रव्रजितवणिक् (शीलव? कृषीवल) गोपालकादीनां सादृश्येन साक्षिणः स्युः। तथा 'क्षत्रविट्शूत्र'क्षत्रविट्शूद्रयोनय' इति सामान्यनिर्देशोऽयं द्रष्टव्यः। अर्थव्यवहारे(ह्य?)

"अनुभा(वि?वी) तु (र्यः ? यः)कश्चित् कुर्यात् साक्ष्यं विवादिनाम् अन्त्रर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यैव चात्यये", अतिपातिनिकार्ये (तु?ऽन्तु) (वे ? र्वे) श्मादिष्वसदृशोऽपि साक्ष्यं कुर्यात्। तथा च सति "स्त्रियोऽप्यसम्भवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा। शिष्येण बन्धुना वापिदासेन भृतकेन वा" सादृश्यापवादार्थः।। ६८।।

**अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम्।**
**अन्तर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये ।।६९।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अन्तर्वेश्मनि** यत्कार्यमतर्कितोपनतं वाग्दण्डपारुष्यसंग्रहस्तेयसाहसादिरूपम्, अरण्ये वा तादृशमेव, शरीरे च पीड्यमाने तत्काले दस्युभिरन्यैर्वा यतः कुतश्चिद्गृहीतं, यो वा धननिमित्तं प्रतिभूत्वेन स्थापितः न च साक्षिणो लभ्यन्ते न वा तावत्काल प्रतिपालयन्ति, रहसि चोक्तो वाऽर्थमाददते अप्रकाशम्–तादृशे विषये **यः कश्चिदनुभावी** स साक्षित्वेन ग्रहीतव्यः। **अनुभावी** साक्षाद्दृष्ट्वा। **यः कश्चिदिति** न जातिनियमः, सदृशं च तदा नास्तीत्याह। **अन्तर्वेश्मनीति** विरलजनोपलक्षणार्थम्। तेन शून्यदेवतायतनादीन्यपि विरलजनानि गृह्यन्ते। तथा **चारण्य**ग्रहणमस्यैवार्थस्य प्रदर्शनार्थम्। अन्ये तु **शरीरस्यापि चात्यय** इत्यन्यथा व्याख्यानयन्ति। कार्यशरीरस्यातिपाते यः कश्चित्साक्षी। यत्कार्यमनुष्ठीयमानमतिपतत्युत्तरकालमशक्यानुष्ठानं तत्र साक्षिणां जातिलिङ्गवयः–सादृश्यसंबन्धाभावादि नियमोनास्ति। एतदेवोत्तरेण दर्शयति।। ६९।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनुभावी येन तत्कार्यं प्रसंगादप्यनुभूतम्। यः कश्चिदधमोऽपि। अन्तर्वेश्मन्यरण्य इत्यसंभवत्पुरुषान्तरदेशोपलक्षणम्। **शरीरस्यात्यये** तत्साक्ष्यकरण तदैव यदि मृत्युस्तदापीत्यर्थः।। ६९।।

(३) **कुल्लूकः**। **गृहाभ्यन्तरेऽरण्यादौ** वा चौरादिकृतोपद्रवे देहोपघाते वाऽऽतताय्यादिकृते यः कश्चिदुपलभ्यते स वादिनोरेव साक्षी भवति नतु ऋणादानादिवदुक्तलक्षणोपेतः।। ६९।।

(४) **राघवानन्दः**। विवादे सत्युक्तविधजनासंभवे नृमात्रं साक्षीत्याह **अनुभावीति**। **अन्वगन्वक्षं तत्र भावी** वर्तमानः। **शरीरस्यात्यये** मृतौ **साक्ष्यं कुर्यात्** दद्यात्।। ६९।।

(५) **नन्दनः**। यथोक्तगुणसाक्ष्यभावे **यः कश्चिदनुभावितापि**साक्षीत्याह **अनुभाव्यपीति**। **अनुभावी** अर्थानुसन्धायी। यः कश्चित्सजातीयोऽपि। **अन्याये** पीडायाम्।। ६९।।

(६) **रामचन्द्रः**। **यः कश्चित्** अनुभावी प्रसङ्गादपि येन तत्कार्यमनुभूतम्। **शरीरस्यापि अत्यये** नाशे उपस्थिते तस्य।। ६९।।

(७) **मणिरामः**। **अंतर्वेश्मादौ** अरण्ये वा चौराद्युपद्रवे **शरीरस्यापि चात्यये** शस्त्रकृतक्षते तत्र उक्तसाक्ष्यमानात्। **अनुभावी** वृत्तांतज्ञः यः कश्चित् स एव साक्ष्यं कुर्यात्।। ६९।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अनुभावीति**। येन गृहाभ्यन्तरे रत्नादिचौरकृतोपद्रवे शरीरोपघाते चाततायादिभिः क्रियमाणे ऋणादानादिस्वस्थकार्यवशाच्चोक्तसाक्षिसम्पादनाय शक्ते यः कश्चिदुपलब्धवान् स वादिनां साक्षी भवति ॥ ६९ ॥

**स्त्रियाप्यसंभवे कार्यं बालेन स्थविरेणवा ।**
**शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भृतकेन वा ॥ ७० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **स्त्रियेति** लिङ्गव्यत्यय उक्तः। **बालेन स्थविरेण वेति** वयोव्यत्ययः। **शिष्येणेत्यादिना** संबन्धिनः प्रतिप्रसवः। एतच्च प्रदर्शनमेवं विधानं नियमानांव्यभिचाराय। तेन जातिसादृश्येऽपि नाद्रियेते। सुहृद्वैरिदृष्टदोषादयस्तु नेष्यन्ते। येषां किञ्चिदसत्याभिधानकरणत्वं दृष्टं नापि व्यापकं ते न प्रतिप्रसूयन्ते। येषां तु बहुव्यापकं क्वचिदेव गुणातिशयं चेत व्यभिचरेत्ततः क्वचिदेव तत्साक्षिणः। उक्तं च "एकः सहस्राल्लभ्येत न सौहृदान्न शात्रवात्। नार्थसंबन्धतो वाऽपि पुरुषोऽनृतमाचरेदिति ॥" असंभवेऽन्येषां साक्षिणां स्त्रियाऽपि कार्यम्। किम्? साक्ष्यमिति पूर्वश्लोकादनुषज्यते। **शिष्येणेति** मौखश्रौतसंबन्धप्रदर्शनार्थमेतत्। **बन्धुनेति** अहार्योत्पत्तिकायादिसंबन्धप्रतिप्रसवः। सत्यपि संबन्धत्वे यो नातिप्रत्यासन्नः स गृह्यते। तेन भ्रातृव्यमातुलश्वशुर्यादयो न साक्षिणः। तथाविधे हि बन्धुशब्दो रूढः। **दासेनेति** स्वस्वामिसंबन्ध उपलक्ष्यते। न स्वाम्युपाध्यायो याजकश्च सर्वविधे विषये साक्षिणः। **दासो** गर्भदासः। **भृतको** वैतनिकः। ननु चासामर्थ्याद्बालादयः साक्षित्वे निरस्ताः। न ह्येते साक्ष्यमवधारयितुं शक्नुवन्ति बुद्धेरस्थैर्यात्परिपाकादिभिर्दोषैस्तदादिप्रतिप्रसूयमानसमञ्जसमिति, न ह्यापदि शक्तिरस्याविर्भवति। यो हि ब्रूयात् 'न वा नवौदनः पक्तव्यः—सत्याग्नौ तु पक्तव्य इति' तादृगेतत्स्यात्। नैष दोषः एवमर्थमेवोत्तरश्लोक आरक्ष्यते ॥ ७० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अस्यप्रपञ्चः **स्त्रियापीति**। **दासोऽगर्भदासः**। **भृतकः** भृत्या परिक्रीतः ॥ ७० ॥

(३) **कुल्लूकः**। तदेवोदाहरणात्स्पष्टयति **स्त्रियापीति**। अन्तर्वेश्मादावुक्तसाक्ष्यभावे सति स्त्रीबालवृद्धशिष्यबन्धुदासकर्मकरा अपि **साक्षिणः स्युः** ॥ ७० ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच, **स्त्रियेति**। स्त्र्यादिसप्तभिः **कार्यं देयं** साक्ष्यमिति शेषः ॥ ७० ॥

(५) **नन्दनः**। **असंभवे** यथोक्तगुणसाक्ष्यलाभे **कार्यं** साक्ष्यमिति शेषः। पूर्वं प्रतिषिद्धानां शिष्यादीनां सह पाठादिहचायोग्यत्वमनुमीयते ॥ ७० ॥

(७) **मणिरामः**। एतदेवोदाहरणेन स्पष्टयति। **स्त्रियापीति** ॥ ७० ॥

**बालबृद्धातुरणां च साक्ष्येषु वदतांमृषा ।।**
**जानीयादस्थिरां वाचमुत्सिक्तमनसां तथा ।। ७१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अयमस्यार्थः। नेहात्यन्ताप्राप्तनिबद्धभ्रान्तबुद्धयो बालादयो गृह्यन्ते येनारभ्योऽर्थं उपदिष्टः स्यात्। किन्तु ये शक्नुवन्त्यवधारयितुं न चातिस्थिरचेतस्तेभ्यः अनुज्ञायन्ते। तेषां वचनमनुमानेन परीक्ष्यम्। यदि संबद्धं वदन्ति न चस्खलन्ति न शङ्कयमानदोषेण केनचित्संगतास्ततः प्रमाणम्। तदाह तेषां **मृषा वदतामस्थिरां वाचं जानीयात्**। एतदुक्तं भवति वाचोऽस्थैर्येण मृषात्वं निश्चिनुयात्। तत्र वाचोऽस्थैर्यं पदानामितरेतरमसंगतिः, अस्फुटापरिपूर्णाक्षरत्वं च। एतच्च बालादीनामवस्थोपलक्षणार्थम्। ये च वयसा व्याधिना वाऽप्यवस्थामियंतो गता यदन्यद्विवक्षन्तोऽन्यदुच्चारयन्ति तच्चाव्यक्तं न ते साक्षिणः। एतत्प्रत्यक्षवेद्यमसाक्षित्वकारणम्। अन्यत्तु रागद्वेषधनलोभादिसाधारणमनुमानतः परीक्ष्यम्। तच्चोक्तमेव। **उत्सिक्तचेतसः** प्रकृत्यैवोपप्लुता अधीरधियः ।। ७१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। बालादिषु कर्तव्यविशेषमाह **बालेति**। तत्र मिथ्याभिधानव्यभिचर्यस्थिरत्वादिकं वाचः प्रतिसन्धेयम्। तदभावे तद्वचनेनाप्यर्थनिश्चयः संभवतीत्यर्थः। **उत्सिक्तमनसा**मस्थिरचेतसाम् ।। ७१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। नन्वस्थिरबुद्धित्वादिना स्त्रीबालादीनां कथमत्रापि साक्षित्वमित्यत्राह **बालवृद्धेति**। **बालवृद्धव्याधितानामुपप्लुतमनसा** च मत्तोन्मत्तादीनां साक्ष्येऽनृत **वदता**मस्थिरावाग्भवति। अतस्तामनुमानेन **जानीयात्**। यथोक्तम् वाग्भिर्विभावयेल्लिङ्गैरिति ।। ७१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। बालादिसाक्षिषु प्रमाणान्तरं सहायं विधत्ते **बालेति**। **जानीयाद** नुमानादिना। **उत्सिक्तमनसां** कामाद्युपप्लुतमनसाम् ।। ७१ ।।

(५) **नन्दनः**। आपद्विषयसाक्षिपरिग्रहे राज्ञः कर्तव्यमाह **बालवृद्धातुरणान्विति**। सत्यासत्यरूपां वाचं राजा चिन्हैर्जानीयान्नोक्तिमात्रेण **परिगृह्णीयात्**। संख्यानां च गुणानां च साम्ये द्विजोत्तमान्परिगृह्णीयात् ।। ७१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **साक्ष्यं** मृषा वदतां **उत्सिक्तमनसां** चञ्चलचित्तानां **वाचमस्थिरां जानीयात्**। **बालः** अप्राप्तव्यवहारः। वृद्धः अशीतिवर्षः वृद्धग्रहणं वचनानिषिद्धानामन्येषामपि ।। ७१ ।।

(७) **मणिरामः**। **उत्सिक्तमनसां** उपप्लुतमनसां। अतस्तादृशस्थले अनुमाने न स्वबुद्धया निश्चयं कुर्यादित्यर्थः ।। ७१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। नन्वस्थिरबुद्धित्वादिकारणावगमे स्त्र्यादीनां साक्ष्यं निषिद्धमतोऽत्रापि कथं तद्वचनान्निश्चय इत्यत आह **बालवृद्धातुराणामिति**। बालवृद्धव्याधितानां अप्लुतमनसां च मत्तोन्मत्तादीनां अनृतं वदतां अस्थिरा वाग्भवति अतस्तान्साक्ष्ये अनुमानेन बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैरिति जानीयात् ।। ७१ ।।

(९) **भारुचिः**। यत इदमनुमानं तद्विशुद्धचर्थमाह केन सत्यानृतवचनविभागार्थेनानुमानेन उक्तं च 'बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैरि'त्यादि। 'यथा नयत्यसृक्पातै'रिति च। एवं चानुमानोपदेश इहायमर्थो भवति। यदि यथोक्तानां साक्षिणामसम्भवे साहसादिषु प्रतिषिद्धा अपि साक्षिणो भवन्त्यनुमानेन विशोध्यन्ते अप्रतिषिद्धाश्च कदाचित् ॥ ७१ ॥

**साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च ॥**
**वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥ ७२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'सहो' बलं, तदाश्रित्य यत्क्रियते **तत्साहसम्** राजवाल्लभ्येन महापक्षतया स्वशरीरबलेन बलवदाश्रयेण वा यदकार्यकरणं तत्साहसम्। यथा वस्त्रपाटनाग्निदाहकेशछेदादि। अन्यत्प्रसिद्धम्। अत्र साक्षिणो न परीक्ष्याः। 'गृहिणः पुत्रिण इत्येवमादिरूपपरीक्षाऽत्र प्रतिषिध्यते। या तु व्यभिचारहेतुतया शङ्क्यते रागद्वेषधनलोभादिरूपां सा कर्तव्यैव। दृष्टमूलत्वादस्याः स्मृतेरित्युक्तम् ॥ ७२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **न परीक्षेत** बालत्वादिना नत्यजेत् किंतु तत्र युक्तरीत्या स्थैर्यादिप्रतिसंधेयम्। ॥ ७२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। गृहदाहादिषु साहसेष्वाचार्यस्त्रीसंग्रहणे वाग्दण्डपारुष्ये चगृहिण इत्युक्त साक्षिपरीक्षा न कार्या। स्त्रियाप्यसंभवे कार्य'मित्यस्यैवायमुदाहरण प्रपञ्चः ॥ ७२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। साहसादिषु साक्षी न परीक्षणीय इत्याह **साहसेष्विति**। **साहसेषु** गृहदासादिषु। सहो बलं तेनायं भवतीति साहसः। **संग्रहणे** स्त्रीभोगादौ। **वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये** वाक्पारुष्ये धिगाद्युक्तौ दण्डपारुष्ये ताडनादौ साक्ष्यन्तराभावान्न **परीक्षेत** गृहिणः पुत्रिण इत्यादिधर्मेण ॥ ७२ ॥

(५) **नन्दनः**। **संग्रहणं** परदारपरिग्रहः ॥ ७२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सर्वेषु** चतुर्विधेषु साहसेषु साक्षी कार्यः। चतुर्विधत्वमाह 'मनुष्यमारणं चौर्यं परदाराभिमर्शनम। पारुष्यमुभयं चेति साहसं स्याच्चतुर्विधम्।' ॥ **च** पुनः **स्तेय**कर्मणि **संग्रहणेषु** रहसि क्रियमाणे संग्रामे धैर्यपारुष्यसाहसेषु साक्षिणः कार्याः, अत्र गुणरहिता साक्षिणो भवन्तीति भावः ॥ ७२ ॥

(७) **मणिरामः**। **साहसेषु** गृहदाहादिषु। **संग्रहणे** आचार्यादिस्त्रीसंग्रहणे ॥ ७२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **साहसेष्विति**। वस्त्रपाटनाग्निदानादिसर्वेषुसाहसेषु चौर्यस्त्रीसंग्रहणवाग्दण्डपारुष्येषु च गृहस्थपुत्रधनादिना साक्षिणो न परीक्षेत। बालार्थसम्बन्धादीनां पुनरनुमानपरीक्षा न निषिध्यते। तथा सति नन्वनिश्चयभावः बालवृद्धातुराणाञ्चेत्यादेश्चोक्तत्वात् ॥ ७२ ॥

(९) **भारुचिः**। वस्त्रपाटनोल्कादहनकोशच्छेदनादिष्वप्रत्ययकारी पुरुषः क्रोधचापलप्रभवेषु। स्तेयादीनि प्रसिद्धा(दि?नि) एवमादिषु न परीक्ष्येत साक्षिणम्। गृहिणः पुत्रिण इत्येवमादिना लक्षणेन अर्थसम्बन्धादिभिस्तु सामर्थ्यात्परीक्ष्या एव अनुमानेन च

प्रतिषिद्धा अपिसन्तः परीक्ष्या एव साक्षिणोऽनुमानतः। एवं चानुमानोपदेशोऽत्रार्थवान भवतीत्युक्तः। यत्र पुनः साक्षिणां समगुणानां विप्रतिपत्तिः ॥ ७२ ॥

**बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः ॥**
**समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥ ७३ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** यत्र भूमिभागादौ विप्रतिपत्तिर्द्वाभ्यां च भोगसाधने साक्षिणो निर्दिष्टाः। ते च केचिदर्थिनो भोगमाहुरपरे प्रत्यर्थिनः। तत्र बहूनां वचनं ग्राह्यम्। समसङ्ख्येषु तु ये गुणैरुत्कृष्टा बहुगुणा इत्यर्थः। एकेन वा गुणेन दृष्टपुरुषार्थोपकारिणा सातिशयेन युक्ताः। गुणवतां समगुणानां भेदे जातिरादर्तव्या। सर्वसाम्ये शपथः। अन्यद्वा तत्समानम्। **बहुत्वं परिगृह्णीयात्**। बहूनां वचनं प्रमाणीकुर्यात्। द्वैधं परस्पर विरुद्धार्थाविधानम् ॥ ७३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। बहुत्वमिति।** यद्यन्येऽन्यथा वदन्ति सद्विरोधेऽपि बहूनां वचो ग्राह्यमित्यर्थः। **द्विजोत्तमान्** ब्राह्मणान् ॥ ७३ ॥

(३) **कुल्लूकः।** साक्षिणां परस्परविरुद्धानां बहुभिर्यदुक्तं तदेव निर्णयार्थत्वेन राजा **गृह्णीयात्**। समेषु तु विरुद्धार्थाभिधायिषु गुणवतः प्रमाणीकुर्यात्। गुणवतामेव विप्रतिपत्तौ द्विजोत्तमान् **द्विजेषु ये उत्तमाः** क्रियावन्त इत्यर्थः। अत एव **बृहस्पतिः** गुणिद्वैधे क्रिया-युक्ता इति ॥ ७३ ॥

(४) **राघवानन्दः।** यत्र परस्परं साक्षिणां विरुद्धभाषितया द्वैधं तत्र बहुभिरुक्तं तत्र बहुभिरुक्तं ग्राह्यमित्याह **बहुत्वमिति। समेतु गुणोत्कृष्टान्** गुणाधिकान्। **द्विजोत्तमान्** विशिष्टगुणवतो विप्रान् सम्यञ्चो बहवश्चेति न्यायात् ॥ ७३ ॥

(५) **नन्दनः।** अर्थसाक्षिद्वैधे बलाबलमाह **बहुत्वमिति।** विवादिनोः साक्षित्वे द्वैधे साक्षिणां बहुत्वं **परिगृह्णीयात्** समेषु समसंख्येषु साक्षिषु ॥ ७३ ॥

(६) **रामचन्द्रः। नराधिपः साक्षिद्वैधे** विविधे साक्षिबहुत्वं **परिगृह्णीयात्। समेषु** तुल्येषु **गुणोत्कृष्टान्** ॥ ७३ ॥

(७) **मणिरामः। साक्षिद्वैधे** उभयत्र साक्षिसत्वे बहुत्वं यस्य बहवः साक्षिणः सजयी ॥ ७३ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** यत्रार्थिप्रत्यर्थिनः साक्षिणस्तत्र बहुत्वमिति। साक्षिणः सर्वेषु अधिगतानां परस्परविरुद्धभावे सति बहुभिः यदुक्तं तदेव निर्णयार्थत्वेन प्राङ्विवाको गृह्णीयात्। समेषु तूभयोरुक्तवत्सु गुणवतः प्रमाणी कुर्यात्। गुणवतां विप्रतिपत्ता-वुभयत्र गुणवत्सुब्राह्मणान् प्रमाणी कुर्यात् ॥ ७३ ॥

(९) **भारुचिः।** समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणसाम्य द्विजोत्तमान् तत् विधिप्रतिपत्ता-वेष्वेवं न्यायः। अनुमानं यथोक्तं क्वचिच्च शपथाद्यपि वक्ष्यति। 'असाक्षिकेषु त्वर्थेषु शपथे नापि लम्भयेदि'ति। अपि च जागर्ति भगवान् धर्मः स बाह्येऽपि सति केनचित्कार-

णेनात्मानं दर्शयति। द्विजोत्तमानिति चेदलिङ्गं ब्राह्मणानां साक्षित्वे, तथा चोक्तम्–'आप्ता सर्वेषु वर्णेष्वि'ति। न चैत(मु?दु)क्तवर्णानुवादार्थं सर्वग्रहणम् किं तर्हि ब्राह्मणवर्णावबोधार्थम् तथा च कृत्वैवमादीनि लिङ्गानि श्रोत्रियप्रतिषेधश्च ।। ७३ ।।

**समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति ।।**
**तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ।।७४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। ननु च "अनुभावी तु यः कश्चित्" इत्यनेनोक्तमेवैतत्कथं चान्यथासिद्धिराशङ्कते येनेदमुच्यते दर्शनश्रवणाभ्यां साक्ष्यसिद्धिरिति। अत्रोच्यते। साक्षी व्यवहरिष्यता कर्तव्यः त्वं मे साक्षी भविष्यसि इत्युक्तम्। तत्र एवन्नोक्तः स न प्राप्नोति। एवमर्थमिदमुच्यते। यस्तत्र संनिहितः कथंचिदनुभविता त्वं स्मर्त्तुमर्हस्यावयोरमुमर्थमित्येवमनुक्तेऽपि भवत्येव साक्षी–**समक्षदर्शनात्साक्षादनुभावाच्छ्रवणाच्च**। समक्षशब्दानुषङ्गः कर्तव्यः। यत्कुतश्चिदेकेन श्रूयते ततोऽन्येन तत्परंपराश्रुतं तेन परंपराश्रावी न साक्षी। यथैतेनेदमकार्यं कृतमिदमस्मै वा धारयतीति लोकप्रसिद्धचाऽगतम्, न तु प्रमाणतः। तत्र समक्षदर्शनं साक्षादनुभवनमर्थविषयमृणप्रयोगदण्डपारुष्यादिसाक्षाद् दृष्टं चक्षुर्व्यापारेण वाक्पारुष्यं तथेदमस्मान्मया गृहीतमित्येवमादिविषयं शब्दश्रवणम्। यद्यपि दृशिरुपलब्धिमात्रवचनः तथापि वृत्तानुरोधितया श्रोत्रज्ञानं श्रवणं भेदेनोपात्तम्। एतावच्चात्र विवक्षितम्। प्रमाणतो येनानुभूत स साक्षी। समक्षशब्दग्रहणं प्रमाणशास्त्रोपलक्षणार्थम्। तेनानुमानादि नाऽप्यनुभूतमनुभूतमेव। अत आप्तागमाच्छ्रुतमप्रत्यक्षमपि प्रमाणम्। उत्तरस्तु श्लोकार्धोऽनुवाद एव। सत्यवचनस्य विहितत्वात् असत्यवादिनो धर्मार्थहानेश्च प्रमाणान्तरावगतत्वात् ।। ७४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **समक्षदर्शनात्** प्रत्यक्षतो दर्शनात्। **श्रवणा**दाप्तवचन संज्ञानात्। अर्थाहानिर्दण्डाभावात् ।। ७४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **गोविन्दराजस्तु** गुणवतां विप्रतिपत्तौ द्विजोत्तमान् ब्राह्मणान्प्रमाणी कुर्यादित्याह **समक्षेति** चक्षुर्ग्राह्ये **साक्षाद्दर्शनात्**। श्रोत्रग्राह्ये **श्रवणात्साक्ष्यंसिध्यति**। तत्र साक्षी सत्यं **वदन्धर्मार्थाभ्यां न मुच्यते**। सत्यवचनेन धर्मोपपत्तेर्दण्डाभावेऽर्थहान्यभावात् ।। ७४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **साक्ष्यं** हि यथा दृष्ट श्रुताभिधानमिति प्रकटयन्साक्षिपदस्य यौगिकत्वमाह **समक्षेति**। अक्षमत्रेन्द्रियमात्रंतेन। श्रुतदृष्टस्पृष्टेऽर्थे। **सत्यं** दृष्टादिप्रतिपादकं **ब्रुवन्** वधादि। **धर्मार्थाभ्यां धर्मतो न हीयते** स्वर्गतो न हीयते अर्थतो न हीयते **न श्रुतंदण्डं प्राप्नोति** श्रुतादिमत्त्वात् ।। ७४ ।।

(५) **नन्दनः**। साक्षिणां लक्षणं कर्तव्यं चाह **समक्षदर्शनादिति**। ।। ७४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। सार्धेनाह **तत्रेति**। तत्र सभायां **सत्यं ब्रुवन्** साक्षी **सधर्मार्थाभ्यां न** हीयते ।। ७४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **समक्षदर्शनादिति**। चक्षुर्ग्राह्ये साक्षाद्दर्शनात् श्रोत्रग्राह्ये च साक्षात् साक्ष्यं सिद्धचति तत्र साक्षी सत्यमभिवदन्धर्मार्थाभ्यां नमुच्यते सत्यवचनधर्मोत्पादाद्दण्डाभावः ॥ ७४ ॥

(९) **भारुचिः**। दर्शनश्रवणाभ्यां साक्षित्वसिद्धिः न तु निबन्धनतः। अतोऽन्तरेणापि निबन्धनं साक्षी स्यादेव। एतावांस्तु साक्षिणो नियमः। निबन्द्धे(ना?वि) पृष्टेन सता सत्यं वक्तव्यमिति येन ॥ ७४ ॥

**साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि ॥**
**अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥७५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। असत्यामिधाने साक्षिणां फलदर्शनार्थमिदम्। दृष्टश्रुतशब्दउपलब्धिपर्याय इत्युक्तम्। तस्मादन्यदनुपलब्धम्। तच्चेद्ब्रवीति। **आर्याः** सभ्याः सम्यक्कारिणः। तेषां **संसदि** सभायाम् अवाक् अधोमुखः। **नरकं** याति यमयातनास्थानंगच्छति। **प्रेत्य** मृत्वा। **स्वर्गाच्च हीयते** भ्रश्यति। यदप्यनेन स्वर्गारोहणिकं कर्म कृतं तदपि कौटसाक्ष्यपापस्य गुरुत्वात्प्रतिबध्यते। न तु स्वर्गस्य कर्मणः पापेनान्येन नाशः। स्वफलविधित्वात् कर्मणामन्यत्र प्रायश्चित्तेभ्यः ॥ ७५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **विब्रुवन्** विशेषेण ब्रुवन्। नरकानुभवान्तेऽपि सुकृतनाशात् **स्वर्गाद्धीयते न स्वर्गं** प्राप्नोति ॥ ७५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **साक्षी** दृष्टश्रुतादन्यादृशसाधुसभायां वदन्नधोमुखो **नरकं** गच्छति परलोके च कर्मान्तरजन्यस्वर्गरूपफलादानेन पापेन **हीयते**। ॥ ७५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तवैपरीत्ये दण्डमाह **साक्षीति**। **विब्रुवन्** सुवर्णे रूप्यमिति विरुद्धप्रकारकं वा ब्रुवन्। **आर्यसंसदि** विद्वद्ब्राह्मणसभायाम्। **अवाङ्मुखः सन्नरकमभ्येति**। न केवलमेवमपितु **हीयते स्वर्गाच्च** तज्जनकशुभादृष्टस्यनरकेण प्रत्यन्तरितत्वात् स्वर्गहेतुधर्मनाशाद्वा ॥ ७५ ॥

(५) **नन्दनः**। तत्र दर्शनश्रवणयोर्विपर्यये दोषमाह **साक्षी दृष्टश्रुतादिति**स्वर्गात्पुण्यान्तरार्जितात् ॥ ७५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। साक्षी आर्यसंसदि दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन् अन्यथा ब्रुवन् अर्वाक्शिरा **नरकं एवैतिप्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते** ॥ ७५ ॥

(७) **मणिरामः**। **अवाङ्नरकं** अधोमुखनरकं ॥ ७५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **साक्षीति**। साक्षीदृष्टश्रुतविपरीतंब्राह्मणसभायां विरुद्धवदन्नधोमुखो नरकं व्रजति। परलोके धर्मान्तरजनकात् स्वर्गादिस्तत्पापप्रतिबन्धे सति प्रतिहीयते ॥ ७५ ॥

(९) **भारुचिः**। न केवलमधर्मानुत्पत्त्या वा स्वर्गाद्धीयत इत्युक्तम्। अयं च पूर्वश्लोकशेष एवार्थवादस्तथा च सम्बन्धेन दर्शितः एवायमर्थः। यतश्च दर्शनश्रवणाभ्यां साक्षित्वेन निबन्धात् ॥ ७५ ॥

**यत्रानिबद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वाऽपि किंचन ॥**
**पृष्टस्तत्रापि तद्ब्रूयाद्यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। "ननु चोक्तं समक्षदर्शनादित्यत्र यथाकथंचिदनुभूतवतोऽनियुक्त-स्यापि साक्ष्यमस्तीति। तत्र किमनेन यत्रानिबद्धोऽपीति को वा विशेषः?" उच्यते लेख्यारूढस्य व्यापारविशेषाद्युक्तं साक्षित्वं न पुनरनारूढस्य। आरोहणस्यानर्थक्यप्रसङ्गा-दुभयोः साक्षित्वे। अत एतामाशङ्कामपनेतुमिदमुच्यते। पूर्वस्तु श्लोको यत्रानुक्ताः साक्षिणः। अयं तु यत्र ससाक्षिकं लेख्यम्। **अनिबद्धो** लेख्यमनारूढोऽपीत्यर्थः। ईक्षण-श्रवणे व्याख्याते। शेषं सुबोधम् ॥ ७६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अनिबद्धोऽ**नधिकृतः। प्रसंगात्तत्रागतः ॥ ७६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। त्वस्मिन्विषयेसाक्षी भवइत्येवमकृतोऽपि यत्किंचिदृणादानादि-पश्यति वाक्पारुष्यादिकं वाशृणोति तत्रापि साक्षी सपृष्टः सन्यथोपलब्धंकथयेत्। अयं त्वकृतसाक्षी सामान्येन मनुनोक्तः। अस्य ग्रामश्च प्राङ्विवाकश्च राजाचेत्यादिना **नारदा-**-दिभिः षाङ्विध्यमुक्तम् ॥ ७६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। दर्शनश्रवणमात्रं न साक्षिता प्रयोजकं किंतु तद्विशेष इत्याह **यत्रेति**। निबद्धस्त्वमस्मिन्विषये अवधानं कुर्विति नियुक्तः तदभावेपि ब्रूयादेवेत्यन्वयः यथादृष्टं तमपि पृष्टः सन् ॥ ७६ ॥

(५) **नन्दनः**। साक्षित्वेनानिमन्त्रितोऽपि यादृच्छिकसाक्ष्यमर्हतीत्याह **यत्रानिबद्धोऽ-पीति**। **यत्र** विवादपदे **अनिबद्धः** साक्षित्वेनानिमन्त्रितः यादृच्छिक इति यावत् ॥ ७६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **यत्र** साक्ष्ये **अनिबद्धः सन्** साक्षित्वेनानधिकृतः **स किंचन शृणुयात्** वीक्ष्येत वा **तत्रापि पृष्टः स तुतत्सत्यं यथाश्रुतं** यथा दृष्टं **ब्रूयात्** ॥ ७६ ॥

(७) **मणिरामः**। **अनिबद्धः** अस्मिन्नर्थेत्वं साक्षीभवेत्येवमनुक्तोऽपि ॥ ७६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यत्रेति**। त्वं मे साक्षी स्या इत्येवं निबद्धोऽपि यत्र किञ्चि-दृणादानादिपश्येद्वाक्पारुष्यादिशृणुयात्तत्रापि पृष्टः सन् साक्षी न ह्यर्थोपलब्धं कथयेत् ॥ ७६ ॥

(९) **भारुचिः**। उपसंहारार्थः श्लोकः ॥ ७६ ॥

**एकोऽलुब्धस्त्वसाक्षी स्याद्वहवचः शुच्योऽपि न स्त्रियः ॥**
**स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः ॥ ७७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। एकस्य पुनःप्रतिषेधो लोभादिरहितस्य प्रतिप्रसवार्थः। तेन सत्यवादितया निश्चित एकोऽपि साक्षी भवत्येव। स्त्रियस्तु न कथंचित्साक्ष्यमर्हन्त्यल्पा वा बहव्यो वा। **शुच्योऽपीति** गुणवत्योऽपीत्यर्थः। अत्र हेतुः। **स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वादिति**। प्रकृतिरेषा स्त्रीणां यद्बुद्धेश्चापलम्। यथाऽऽमयाविनो घृतादिनोत्पन्नेऽप्यग्नेः स्थैर्ये स्वल्पे-नापि प्रमादे पुनः सहजामयावितोनुवृत्तिः। अतोऽनया शङ्कया गुणवतीष्वपि तासु नाश्वासः।

यत्तु "स्त्रियाऽप्यसंभवे कार्यम्" (श्लो. ७०) इति तद्यत्र तत्क्षणादेव पृच्छ्यन्ते। यत्रेयमाशङ्का न भवति केनचिदासां संचलितं मन इति। यत्र तु कालव्यवधानं तत्र जीयमानेन कदाचिदनुकूल्यन्ते इतिन क्वचित् साक्षिण्यः। **दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः**। रोगादिभिर्दोषैर्ये स्त्रीभ्योऽन्येऽपि पुरुषा **वृता** आक्रान्ता भूयिष्ठदोषा इत्यर्थः। के पुनरमी दोषा नाम? उक्तं च। रागादयः शास्त्रप्रतिषिद्धाः शंक्यमानव्यभिचारहेतुभावाः। यद्यपि केवलेन स्वशब्देनैवोक्ता दोषाः तथाप्यनुक्तपरिग्रहार्थमिदमपुनरुक्तम्। सामान्यविशेषाभिधानं हि सर्वत्र ग्रन्थकारा अनुमन्यन्ते। अन्ये त्वकारप्रश्लेषेणालुब्धोऽप्येको न साक्षी किं पुनर्लुब्ध इत्येवमाचक्षते। तथा च द्वयोरभ्यनुज्ञानं भवति। शुच्य इतीकारो दुर्लभो "वोतो गुणवचनात् इति (प. सू. ४/१/४४) विधानात्। कृदिकारादिति (वा. ४/१/४५) केचित्समर्थयन्ते ॥ ७७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एकोप्यलुब्धः पुमान्। शुच्योऽलुब्धाअपि। दोषैश्चान्येपियेवृताः अर्थसंबन्धित्वादिभिस्तेपि नबहवः साक्षिणः। एकस्मिन्नलुब्धे विपरीतवादिनि सति ॥ ७७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एकोऽलुब्धइत्यत्राकारप्रश्लेषो द्रष्टव्यः। एकोऽपि **साक्षी लोभादिरहितः** स्यात्। अत एव **व्यासः** 'शुचिक्रियश्च धर्मज्ञः साक्षी यत्रानुभूतवाक्। प्रमाणमेकोऽपि भवेत्साहसेषु विशेषतः।' **मेधातिथिगोविन्दराजा**भ्यामेकोलुब्धस्त्वसाक्षीस्यादिति पठितं व्याख्यातं च। लोभात्मकः एकः **साक्षी न भवति** एवं चालुब्धो गुणवान्कस्यांचिदवस्थायामेकोऽपि भवतीति। स्त्रियः पुनरात्मशौचादियुक्ताबहवचोऽप्यस्थिरबुद्धित्वादृणादानाद्यैर्पर्यालोचितव्यवहारे साक्षिण्येन भवन्ति अपर्यालोचिते तुस्तैयवाग्दण्डपारुष्यादौस्त्रियाप्यसंभवे कार्यमिति साक्षित्वमुक्तम्। अन्येऽपि ये स्तेयादिदोषैर्व्याप्तास्तेऽपि पर्यालोचितव्यवहारे साक्षिणोन स्युः ॥ ७७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। बहुष्वपि लोभाद्यनभिभूतः एकः साक्षीत्याह **एक इति**। अलुब्ध इति च्छेदः। **शुच्योपि** अपरपुत्रलोभान्निवृत्ता अपि तत्र हेतुः **अस्थिरबुद्धि**रादीतिये दोषदुष्टाः पुमांसस्ते नादरणीया इत्याह **दोषैरिति**। अतएव **व्यासः** शुचिक्रियश्च धर्मज्ञः साक्षी यत्रानुभूतवाक्। प्रमाणमेकोऽपि भवेत्सदृशेषु शेषतः' इति। शुचिक्रियः अर्थादिव्यवहार शुचयः क्रियाः यस्यसः। धर्मज्ञपदेन यज्ञादिसत्क्रियस्योक्तेः अनुभूतवाक् त्वं अत्र साक्षीत्यादिकानुभूता वाग्येनसइतिव्यासोक्त्यर्थः। **गोविन्दराजस्तु** लोभाभिभूतो न साक्षीति लुब्धस्त्वसाक्षीति पाठं चक्रे ॥ ७७ ॥

(५) **नन्दनः**। पुनरपि साक्षिणां नियममाह **एकोबुधस्त्विति**। **येऽन्ये दोषैर्वृतास्तेऽप्यसाक्षिण** इति वचनविपरिणामः ॥ ७७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अलुब्धःसाक्षी स्यात्**। शुच्योऽपि पाविल्ययुक्ताः **स्त्रियः बहव्यः** साक्ष्येन **कार्याः**। कस्मात्? स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्। च पुनः अन्येऽपि ये पुरुषादोषैर्वृतावेष्टिताः ॥ ७७ ॥

(७) **मणिरामः**। **अलुब्ध** इत्यकार प्रश्लेषोत्र बोद्धव्यः ॥ ७७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एको लुब्धस्त्वसाक्षीति**। लोभवानेकः साक्षी न भवत्येवं चालुब्धोऽत्यन्तगुणवान् कस्याञ्चिदवस्थायामेको भवति। स्त्रियश्च स्थिरचापल्यात् बहव्योऽपि अर्थशौचयुक्ता अपि साक्षिण्यो न भवन्त्येव ऋणादानादौ स्वस्थे व्यवहारे आत्यन्तिकेतूक्तं स्त्रियोऽप्यसंभवे कार्यमित्येवमन्यतोऽपि ये यैः अशुच्यादिभिर्दोषैः प्राप्तास्तेपि स्वस्थव्यवहारे साक्षिणो न भवेयुः ॥ ७७ ॥

(९) **भारुचिः**। एकस्य सत्यपि प्रतिषेधे गुणातिशयादलुब्धत्वानाञ्च ज्ञानार्थमिदम्। अपि वै अलुब्धः अपिरुभयत्रापि बोद्धव्यः। शुच्योऽपीत्यथमेव वाऽलुब्धोऽप्येको न साक्षी-स्यात्। उत्तरविवक्षार्थश्चायमारम्भः। एवं स्त्रियो बह्व्यः शुच्योऽपि न स्युः यथैकोऽलुब्धोऽपितासां हि बुद्धेर्धर्मा . . . दमपि सम्बन्धः। व्याख्यानं शास्त्रविरोधान्नाति पेशलम्। यत एकस्य लोभात् प्रतिषेधाद्वैकयोरलुब्धयोरभ्यनुज्ञानार्थमिदम्। अन्यत्रापि च प्रतिषेधे . . . तुल्यत्वादेवं च सति बह्व्यः शुच्योऽप्यलुब्धा अपि प्रकरणात् स्त्रियो न स्युः। स्त्री-बुद्धेरस्थिरत्वादित्युक्तम्। दोषैरन्यैरपि ये वृताः पुरुषा अति . . . किं पुनरन्यत्र पुनर्वचन चास्य यदर्थं तदुक्तमेवात्र ॥ ७७ ॥

**स्वभावेनैव यद्ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम् ॥**
**अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥ ७८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। साक्षिणो यत् **स्वभावेन व्यावहारिकं** ब्रुवन्ति तद्ग्राह्यम्। यत्तु स्वभावाद्विचलिता धर्मबुद्धया धर्मार्थं ब्रूयु**स्तदपार्थकमग्राह्यमित्यर्थः**। यद्यथा दृष्टस्यार्थस्य वचनं तत् स्वभावतः। यत्त्वन्यथा—माभूदस्य तपस्विनो मद्वचनेन बाध इत्यनया बुद्धया—**तदपार्थकम्**। यथाकेनचिदावेदितं भवति अनेनाहमाक्रुष्ट इति—तत्र परेणापह्नुतम्—साक्षिण आहुः सत्यमाक्रुष्टः नर्मणा, न तु रोषेणेति। तत्राक्रुष्ट इत्येतत्साक्षिणां वचो ग्राह्यम्। नर्मणेत्येतदुत्तरवादिनानुक्तत्वादपृष्टमुक्तमपि न ग्राह्यम्। **व्यावहारिकं** व्यवहारगतम्। अपगतयोजन**मपार्थकम्**। अन्ये व्याचक्षते। यदप्रागल्भ्यादिभिः स्खलित-पदमुदाहरन्ति न तावता तदनादेयं किन्तु स्वभाव एषामुपलक्षितव्योऽनुमानेन—किममी अप्रागल्भ्यात्स्खलन्ति उतासत्याभिधायितयेति। तत्तु प्रागुक्तं न चाक्षरार्थं इत्युपेक्ष्यम् ॥ ७८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **स्वभावेना**विचार्यैव द्राक्। **व्यावहारिकं** व्यवहारसंपादकम्। **यदन्यत्** पश्चादालोचनादिना **अपार्थकं** व्यर्थम् ॥ ७८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यत्साक्षिणोभयादिव्यतिरेकेण **स्वभावाद्यद्ब्रूयुस्तद्**व्यवहारनिर्णयार्थं ग्राह्यं **यत्पुनः** स्वभाविकादन्यत्कुतोऽपि **कारणाद्ब्रूयु**स्तद्धर्मविषये निष्प्रयोजनं **तन्न ग्राह्यम्** ॥ ७८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एवं तर्हि स्त्रीणां वाक्यं सर्वत्राश्रद्धेयं तत्राह **स्वभावेनेति**। अन्यथा भक्षणादिव्यवहारलोपापत्तिः। तत्रापि व्यावहारिकं न सदुपदेशादिविशिष्टमपि ब्रूयुः स्त्रीबुद्धिःप्रलयंकरीत्युक्तेः। अतोऽपार्थकं शास्त्रदृष्टचभावेनापगतोऽर्थो धर्मरूपो-यस्मात्तदपार्थकमतोमिथ्यात्वादश्रद्धेयम्।

(५) **नन्दनः**। **स्वभावेन** सत्येन। **व्याहारिकं** व्यवहारोपयोगी। **धर्मार्थं** व्यवहारार्थम् ॥ ७८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **स्वभावेनैव यत्** ब्रूयुः तत् **व्यावहारिकं** व्यवहारप्रवर्तकं **ग्राह्यम्**। अतः कारणात् **अन्यधर्मार्थं**विब्रूयुः तत् **अपार्थकं** व्यर्थं स्यात् ॥ ७८ ॥

(७) **मणिरामः**। **स्वभावेन** भयादिव्यतिरेकेण ॥ ७८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **स्वभावेनेति**। असाक्षिणः स्वाभाविकं सत्यरूपं ब्रूयुः। तद्व्यवहारनिर्णयार्थत्वाभाविकात्पुनः यदन्यकारणार्थं विरुद्धं युस्तन्निष्प्रयोजनमतश्च न ग्राह्यम् ॥ ७८ ॥

(९) **भारुचिः**। ...ग्रामिणामन्येषां चाप्रागल्भ्यादतिभावकम्पादयो जायन्ते तेषां व्यावहारिकं ब्रुवतां स्वभाव उपलक्षयितव्योऽनुमानतः पुरुषशीलतो वा किमेषाममी मिथ्यावचनकृताः कम्पादराः तां प्रागल्भ्यात् अनुचितमहाजनसमवायाद्वा येन ह्यनुमानागम्यं किञ्चिन्नास्ति एवं धृष्टप्रगल्भ्यानामपि स्वभावो वावधारणीयः ॥ ७८ ॥

**सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ ॥**
**प्राड्विवाकोऽनुयुंजीत विधिनाऽनेन सान्त्वयन् ॥ ७९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। सभायामन्तः **सभान्तः**। शौण्डादित्वात्समासः (पा. २/१/४०)। व्यवहारदेशगता उभयोरर्थिप्रत्यर्थिनोः संनिधानेऽनुयोक्तव्या वक्ष्यमाणेन विधिना। **सांत्वयन्** अपरुषम्ब्रुवन्। पारुष्येण हि प्राड्विवाकाद्बिभ्यतोऽप्रकृतिस्था न सर्वं स्मरेयुः संस्कारभ्रंशहेतुत्वाद्भयस्य। प्राड्विबाको राज्ञा व्यवहारदर्शनाधिकृतो रूढ्योच्यते। यद्यप्यवयवार्थो राजन्यपि संभवति–पृच्छति विविनक्तीति तथाऽपि भेदेन प्रयोगदर्शनम्–"अमात्यः प्राड्विवाको वा यः कुर्यात्कार्यमन्यथा" इति (९/२३४)। पृच्छतीति प्राट् "किब्बचिप्रच्छिश्रिद्रुस्रुप्रुवां दीर्घोऽसंप्रसारणं चेति" प्राट्। विशेषेण धर्मसंकटेषु विवेक्तीति विवाकः। "कृत्यल्युटो बहुलम्" इति (पा. सू. ३/३/११३)। कर्तरि घञ्। "चजोः कुधिण्यतोः" (पा. सू. ७/३/५२) इति कुत्वम्। प्राट् चासौ विवाकश्च प्राड्विवाकः ॥ ८९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायण**। सभामध्यं साक्षिणः संप्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसमक्षं राजाधिकृतो ब्राह्मणः प्रियोक्तिरचयन्वक्ष्यमाणप्रकारेण पृच्छेत् ॥ ७९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। साक्षिणः कथं प्रष्टव्या इत्याकांक्षायामाहम**सभान्तरिति**। **अनुयुञ्जीत** पृच्छेत्। **अनेन** वक्ष्यमाणेन **विधिना** धर्मोपदेशेन सान्त्वयन् ॥ ७९ ॥

(५) **नन्दनः**। अथसाक्षिप्रश्नविधिमाह **सभान्तः साक्षिण इति**। प्राड्विवाको व्यवहारनिर्णायकः ॥ ७९ ॥

(६) **रामवन्द्रः**। अनेन विधिना सभान्तः सभामध्ये अर्थिप्रत्यर्थिसंनिधौ प्राप्तान्साक्षिणः **सान्त्वयन् प्राड्विवाकः** प्रकर्षेण विविनक्ति' विचारयति **सोनियुञ्जीत** आज्ञा-

पयेत्। तत्राह विवादानुगतं दृष्ट्वा समेभ्यस्तत्प्रयत्नः। विचारयति येनासौ प्राड्विवाकस्ततः स्मृतः' ॥ ७९ ॥

(७) **मणिरामः**। **अनेन** वक्ष्यमाणेन ॥ ७९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सभान्तरिति**। सभामध्ये साक्षिणः संप्राप्तान् अर्थिप्रत्यर्थि समक्षं राजाऽधिकृतो ब्राह्मणः प्रियं कुर्वन्वक्ष्यमाणप्रकारेणपृच्छेत् ॥ ७९ ॥

(९) **भारुचिः**। अधुना साक्षिणां सत्यवचनार्थो योगोऽत ऊर्ध्वं वर्तिष्यते प्राड्विवाको ब्राह्मणो राजाधिकृतो विद्वान् न राजा सामर्थ्यात्। तथा च वक्ष्यति–"अमात्यः प्राडिववाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथे"ति। क्विन्स्वचिप्रच्छयायतनुस्नुकरिब्रबूजीस्त्रीणां दीर्घोऽप्रसारणं चेत्यनेन पृच्छतीति प्रा(ट्?क्) सृष्ट्वा विशेषेण धर्मसङ्कटेषु विशिष्टं वा वक्ष्यति विवाकः प्राक् चासौ विवाकश्चेति प्राड्विवाकः पृच्छति चासौ विविनक्ति चेति यावत् एष प्राड्विाको धर्मज्ञो ब्राह्मणः साक्षिणोऽनुयुञ्जीत। विधिनानेन वक्ष्यमाणेन सान्त्वयन्न परुषम्। किं कारणं प्रकृतिस्थो यथा सत्यं ब्रूयात् साक्षी ॥ ७९ ॥

**यद्द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिंश्चेष्टितं मिथः ॥**
**तद्ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥ ८० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यज्जानीथ **अस्मिन्** व्यवहारवस्तुनि **अनयोर्मिथः** प्रत्यक्षं रहसि वा **चेष्टितं** वृत्तं **यत्सर्वं सत्येन** तथ्येन **ब्रूत** कथयत। **युष्माकं** ह्यत्र **साक्षिता** भवतामत्र प्रामाण्यम्। युष्मद्वचनाधीने सत्यानृते। इत्यनेन प्रोत्साह्यन्ते। साक्षिभूता अस्मिन् कार्य इति सामान्यनिर्देशेऽप्यखिलवस्तु श्रावणं सामर्थ्याद्द्रष्टव्यम्। न ह्यश्रुतविशेषा प्रश्नविषयं वेदितुमर्हन्तीति ॥ ८० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वेत्थ जानीथ ॥ ८० ॥

(३) **कुल्लूकः**। **यद्द्वयोरर्थिप्रत्यर्थिनोरनयोः** परस्परमस्मिन्कार्ये **चेष्टितंजानीथ** तत्सर्वंसत्येन कथय यतोयुष्माकमत्र साक्षित्वम् ॥ ८० ॥

(४) **राघवानन्दः**। तमेवविधिमाह **यदति**। **अनयोरर्थिप्रत्यर्थिनोः**। **वेत्थ**-वेत्थविजानीत। **अस्मिन्** व्यवहारे। **युष्माकं** यत्रार्थे तदर्थजातं सत्येन ब्रूतेत्यन्वयः ॥ ८० ॥

(५) **नन्दनः**। अनेन वक्ष्यमाणेन विधिमाह **यद्द्वयोरिति**। **वेत्थ**जानीथ। **मिथः** अन्योन्यम् ॥ ८० ॥

(७) **मणिरामः**। विधिरेवाह। **यद्द्वयोरिति** : **द्वयोः** अर्थिप्रत्यर्थिनोः ॥ ८० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। यदिति। असम्यक् वस्तु **ह्यनयोरर्थिप्रत्यर्थिनोर्यत्परस्परं** वृत्तं जानीध्वे यत्सर्वं सत्येन कथय। तद्युष्माकमत्र साक्षात् द्रष्टव्यम् ॥ ८० ॥

(९) **भारुचिः**। एवं सत्यवचनार्थोऽयमधुनार्थवादः प्रक्रियते ॥ ८० ॥

**सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन् साक्षी लोकानाप्नोत्यनिन्दितान् ॥**
**इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥ ८१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। इतःप्रभृति सत्यवचनार्थः साक्षिणामनुयोगविधिः। **सत्यं** वदन् **लोकान्** स्वर्गादिलक्षणान**निन्दितान**गर्हितानभिप्रेतफलभोगहेतून् लभते **साक्षी**। जाति वचनो वालोकशब्दः। शुभे जन्मनि जात इत्यर्थः। अस्मिंश्च जन्मनि **कीर्ति** ख्यातिम् **अनुत्तमां** यस्यं अन्यदुत्तमं प्रकृष्टं नास्ति तां लभते। साधुवादो जनेनास्मै दीयते। यस्मादेषा च वाक् **सत्या** सरस्वती **ब्रह्मणा** प्रजापतिना **पूजिता** ॥ ८१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **ब्रह्मपूजिता** ब्राह्मणाऽनुमोदिता ॥ ८१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। साक्षी **साक्ष्ये** कर्मणि सत्यंवदन्सनुत्कृष्टान्ब्रह्मलोकादीन्प्राप्नोति पुष्फलानिहलोकेषु चात्युत्कृष्टांख्यातिंलभते यस्मादेषा सत्यात्मिका वाक् चतुर्मुखेन पूजिता ॥ ८१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रार्थवादमाह सत्यमिति। पुष्कलान् अप्रतिबद्धतया पूर्वादृष्टाकृष्टान् चानेनास्य किंचित्पुण्यं परार्थे क्लिश्यन्तीति वक्ष्यमाणत्वात्। **ब्रह्मपूजिता** ब्रह्मणा सत्येन विशिष्टा यतः ॥ ८१ ॥

(५) **नन्दनः**। एषा वागेतत्सत्यवचनम्। **ब्रह्मपूजिता** वेदप्रशस्ता ॥ ८१ ॥

(७) **मणिरामः**। **ब्रह्मपूजिता** चतुर्मुखपूजिता ॥ ८१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सत्यमिति**। साक्ष्यकर्मणि सत्यं कथयन् सर्वोत्कृष्टान् ब्रह्मलोकादीन् इहलोके चाप्युत्कृष्टां ख्यातिं प्राप्नोति। यस्मादेषा सत्यात्मिका वाक् प्रजापतिनापूजिता ॥ ८१ ॥

**साक्ष्येऽनृतं वदन् पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम् ॥**
**विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् ॥८२ ॥**

**ब्राह्मणोवै मनुष्याणामादित्यस् जसांदिवि ।**
**शिरोवा सर्वगात्राणांधर्माणांसत्यमुत्तमम् ॥ १ ॥***

**नास्ति सत्यात्परोधर्मोनानृतात्पातकंपरम् ।**
**साक्षिधर्मं विशेषेण तस्मात्सत्यंविशिष्यते ॥ २ ॥***

**एकमेवाद्वितीयं तु प्रबुवन्नावबुध्यते सत्यंस्वर्गस्य सोपानंपारावारस्य नौरिव ॥ ३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वेण दृष्टशुभफलप्रदर्शनेन सत्यवचने साक्षिणः प्रोत्साहिताः। अनेन विपरीताभिधाने दुःखोत्पत्तिदर्शनम्। सत्यवचनार्थमेवैतत्। साक्षिणः कर्म **साक्ष्यम्**। तत्रासत्यं ब्रुवाणो **वारुणैः** पाशै**र्बध्यते** पीड्यते। **भृशमत्यर्थम्**। **विवशः** परतन्त्रीकृतः सर्वचेष्टासु वाक्चक्षुर्गतास्वपि। **शतं** यावज्जन्मनि वारुणाः पाशा घोराः सर्परज्जवो जलोदराणि वा। एतद्दोषपरिहारार्थं सत्यं वदेदिति विधिः। **आजाती**रिति नायं मर्यादा-

भिविध्योराङः। तथा सति पञ्चमी स्यात्। तस्मादुपसर्गोऽयमनर्थकः, प्रलंब इतिवत्। द्वितीया चेयं आवृत्तिश्चात्र गम्यते। शतं जन्मान्यावर्तते उदरगृहीत। ।। ८२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **शतं** शतसंख्याः। अज्ञातीरावृत्त्या जन्मानि ।। ८२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यस्मात्साक्षी मृषावाचं कथयन् वरुणसंबन्धिभिः पाशैः सर्परज्जुभिः जलोदरेण परतन्त्रिकृतः शतंजन्मानि यावदत्यर्थं पीडचते तस्मात्**साक्ष्ये** सत्यंब्रूयात् ।। ८२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अन्यथावदनेन नरकप्राप्तिमाह **साक्ष्य इति**। **विवशः** परतन्त्रीकृतः। **शतभाजातीर्जन्मशतं** व्याप्य। **ऋतं** यथाश्रुतदृष्टम् ।। ८२ ।।

(५) **नन्दनः**। आप्रेत्य जायतइत्याजातिरितिजन्मकालोविवक्षितः। तेनात्यन्तसंयोगे द्वितीया ।। ८२ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **साक्ष्येऽनृतंवदन्विवशः** परवशःसन् शतमाजातीः शतजन्मानि **भृशं दारुणैः** पाशैर्बध्यते तस्मात्कारणात्साक्षी ऋतं ।। ८२ ।।

(७) **मणिरामः**। **शतंआजातीः** शतंजन्मानि यावत्। **अनृतं** मिथ्या ।। ८२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **साक्षीति**। यस्मात्साक्ष्यकर्मणि साक्ष्यसत्यं कथयन् वरुणसम्बन्धिभिः पाशैः सर्परज्जुभिः परवशः सन् जन्मशतं बाध्यतेऽत्यर्थं तस्मात्साक्ष्ये सत्यमेव वदेत् ।। ८२ ।।

(९) **भारुचिः**। तथा प्रदर्शयति–साक्ष्य इति ।। ८२ ।।

**सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ।।**
**तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ।।८३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **पूयते** शुद्धचत्यन्यस्मादपि पापान्मुच्यत इति यावत्। शेषं गतार्थम् ।। ८३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **पूयते** पूर्वकृतात्पापात् ।। ८३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यस्मात्**सत्येन** पूर्वार्जितादपि पापात्साक्षी मुच्यते धर्मश्चास्य सत्याभिधानेन वृद्धिमेति तस्मात्सर्ववर्णविषये साक्षिभिः सत्यं वक्तव्यम् ।। ८३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। लोकानाप्नोतीत्युक्तं तत्र हेतुः **सत्येनेति**। **पूयते** तत्प्राप्तिप्रतिबन्धकादधर्मान्मुच्यते। अतएवतद्धर्मोऽप्रतिबन्धतया स्वफलं जनयतीत्याह **वर्धत इति**। अतआह **सर्ववर्णेष्विति**। निमित्तार्था सप्तमी अवच्छेदार्था वा संकरः सर्ववर्णाविशिष्टैः **साक्षिभिरिति** ।। ८३ ।।

(७) **मणिरामः**। **पूयते** पवित्रो भवति ।। ८३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **सत्येनेति**। यस्मात्सत्येनान्यस्मादपि पापकर्मणः साक्षी मुच्यते। धर्मश्चास्य सत्याभिधानेन वृद्धिमेति। तस्मात्सर्ववर्णविषये साक्षिभिः सत्यं वक्तव्यम् ।। ८३ ।।

(९) **भारुचिः**। यस्मात्, **सत्येनेति** ।। ८३ ।।

**आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा थाऽऽत्मनः ।।**
**माऽवमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ।।८४।।**

(१) **मेधातिथिः**। एष एवार्थो विस्पष्टीक्रियते उत्तरेण श्लोकेन ।। ८४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **आत्मा** परमात्मा आत्मनः शरीरस्य जीवस्य च। **साक्षी** चेष्टितसाक्षात्कारी। **गतिर्ज्ञानहेतुः**। **माऽवमंस्थाः** आत्मना दृष्टस्य विपरीताभिधानात् ।। ८४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यस्माच्छुभाशुभकर्मप्रतिष्ठा। **आत्मैवात्मनः** शरणं तस्मादेव् स्वमात्मानं नराणां मध्यमादुत्तमं साक्षिणं मृषाभिधाने नावज्ञासीः ।। ८४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तन्मिथ्यात्वापरिज्ञानात्कथं प्रत्यवैति **साक्षी** तत्राह **आत्मेति**-त्रिभिः। आत्मा जीवः मिथ्योक्तं ममेत्यनुसंधत्तेऽवश्यम् गतिगमनसाधनं तत्पुण्यादिना तत्तल्लोकावाप्तेः। **माऽवमंस्थाः** आत्मानंकथं पश्यन्तीतिमावजानीहि। **उत्तमं** अत्यन्त-विजनेपि साक्षात् दृष्ट्वात् ।। ८४ ।।

(५) **नन्दनः**। **आत्मा** परमात्मा। **आत्मनः** शरीरिणः। **आत्मानंपरमात्मानं**। **नृणां** शरीरिणाम् ।। ८४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **आत्मनः** जीवस्य **आत्मैव** परमात्मैव **साक्षी**। तथा आत्मनः जीवस्य **गतिरात्मैव**। तस्मात् आत्मानं **माऽवमंस्थाः**। **नृणां** उत्तमं साक्षिणंज्ञेयः ।। ८४ ।।

(७) **मणिरामः**। **मावमंस्थाः** मिथ्या कथनेन ।। ८४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **आत्मेति**। यस्मात् शुभाशुभकर्मप्रवृत्तस्यात्मनः चात्मैव साक्षी तथात्मैवात्मनः शरणं तस्मादेनं स्वमात्मानं नराणां मध्यादुत्तरं साक्षिणमसत्यभिधानेन मावज्ञासीः केन ममैतद् दृष्टमित्येवं बुद्धिं कृत्वा, यत आत्मा तवात्र सर्वसाक्ष्युत्तमः साक्षी विद्यते एकस्यैवात्मनः कर्मकर्तव्यापदेशोऽसत्यनिवृत्त्यर्थः ।। ८४ ।।

(९) **भारुचिः**। येन **आत्मैवेति** ।। ८४ ।।

**मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ।।**
**तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ।। ८५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। न शब्दो व्यवहितः। पापकृतः कूटादिकारिण एवं जानते। **न कश्चिदस्मान्पश्यतीति**। इतिकारेण मन्यतेर्वाक्यार्थः कर्मेति प्रतिपाद्यते। न नः कश्चित्पश्यतीत्येष वाक्यार्थः। तांस्तु **देवा** वक्ष्यमाणाः पश्यन्ति। स्वस्य चान्तरात्मा। तदुक्तम् –"आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी" इति। ननु कःपुनरयं पापचारी तस्य च कोऽन्यो द्रष्टा ? यावताऽऽत्मैव कर्त्ता शुभाशुभानां न चान्तरपुरुषो द्रष्टेति। सत्यम्। तस्यैव देवतात्वमध्यारोप्य भेदेन कर्मकर्तृव्यपदेशोऽनृतनिवृत्त्यर्थः। देवतारूपं त्वं जानीषे। तात्त्विकमात्मीयमान्तरं रूपं शरीरम्, तथा बाह्यमनात्मीयमसारम्, एतदुपभोगार्थं मा दुष्कृतं कार्षीरिति

प्रोत्साह्यते। अतो 'माऽवमंस्थाः स्वमात्मानम्' माऽवज्ञासीः 'नृणां साक्षिणमुत्तमम्'। अन्यो हि साक्षी अस्मिन्नेव लोके, अयं तु मृतस्यापि। साक्ष्यं ददाति। तस्मादेतस्माद्भेतव्यम्। असत्यवादी कदाचिन्मन्यते—आत्मान्तरं प्रतिपन्नस्य किमेष मे द्रष्टाऽपि करिष्यतीति। तन्न। 'गतिरात्मा तथात्मनः'। आत्मानमन्तरेणान्या गतिर्नास्ति। न हि द्वावात्मानावेकस्य भवतः। अन्ये तु मन्यन्ते परमात्मा साक्षी संसार्यात्मानो नियोज्या इति भेदः॥ ८५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **देवाः** इन्द्रियस्थाः सूर्योदयः। **आन्तरपुरुषः** परमात्मा॥ ८५॥

(३) **कुल्लूकः**। पापकारिण एवं मन्यन्ते अस्मानधर्मप्रवृत्तान्न **कश्चित्पश्यतीति** तान्पुनर्वक्ष्यमाणा**देवाः पश्यन्ति स्वस्यान्तरपुरुषः** पश्यति॥ ८५॥

(४) **राघवानन्दः**। **तान्**पापकृतः। **आन्तरपूरुषः** अन्तर्यामी॥ ८५॥

(६) **रामचन्द्रः**। **पापकृत** च नःअस्माकं न **कश्चित् पश्यति इति** वै मन्यन्ते॥ ८५॥

(७) **मणिरामः**। **देवाः** वक्ष्यमाणाः॥ ८५॥

(८) **गोविन्दराजः**। **मन्यन्तेऽमीति**। तांश्च देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरूषः। अस्मान्न कश्चित्पश्यतीत्येवं पापवृत्तावबुध्यन्ते न पुनर्वक्ष्यमाणा देवाः पश्यन्ति स्वश्चान्तरात्मा पश्यति॥ ८५॥

(९) **भारुचिः**। इह प्रकरणादनृताभिधायिनः पापकृत् उच्यते। सामर्थ्यात्तु सर्वस्य व्यतिक्रमकारिण इदं ग्रहणम्॥ ८५॥

**द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः॥**
**रात्रिः सन्ध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम्॥ ८६॥**

(१) **मेधातिथिः**। **हृदय**शब्देन हृदयायतनो लिङ्गपुरुष उच्यते। दिवादीनां द्रष्टृत्वे अचेतनेषु चैतन्यमारोप्यते। दर्शनान्तरे तु महाभूतानि देवतात्मतया चेतनान्येव। तथा च पृथिवी भारावतरणाय ब्रह्माणमुपागमदिति वर्ण्यते। सर्वगतत्वात्तेषां न किञ्चिदप्रत्ययमस्तीति सर्वशरीरिणां वृत्तं शीलं चात्मनः कायगतं शुभमशुभं च जानते॥ ८६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **हृदयं** मनः॥ ८६॥

(३) **कुल्लूकः**। द्युलोकपृथिवी जलहृदयस्थजीवचन्द्रादित्याग्नियमवायुरात्रिसंध्याद्वयधर्माः सर्वशरीरिणां शुभाशुभकर्मज्ञाः। दिवादीनांचाधिष्ठातृदेवतास्ति सा च शरीरिण्यैकत्रावस्थापिता तत्सर्वंजानातीति आगमप्रामाण्याद्वेदान्तदर्शनं तदङ्गीकृत्येदमुक्तम्॥ ८६॥

(४) **राघवानन्दः**। एतेपि द्वादशजानन्तीत्याह **द्यौरिति**। द्युभूम्यादीनामचेतनत्वेपि तदभिमानिव्यपदेशादिति न्यायेन तदभिमानासाक्षित्वात्। यतश्चित्तं हृदयं वृत्तं जातं पुण्यं पापं वा जानन्तीति **वृत्तज्ञा** एव देवाः। पश्यन्तीत्यनुषज्यते॥ ८६॥

(५) **नन्दनः**। के पुनस्ते देवास्तानाह **द्यौर्भूमिरापइति**। **हृदयं** हृदयस्थः परमात्मा॥ ८६॥

(६) **रामचन्द्रः**। **वृत्तज्ञाः** शुभाशुभज्ञाः ।। ८६ ।।

(७) **मणिरामः**। देवताह। **द्यौरित्यादि**। **वृत्तज्ञाः**। देहिनां शुभाऽशुभधर्मज्ञाः। दिवादीनांचाऽधिष्ठानात् देवताऽस्ति सा च शरीरिण्ये कुत्रावस्थापि तत्सर्वं जानातीत्यभिप्रायेणेदमुक्तं ।। ८६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **द्यौरिति**। द्युलोके पृथिव्युदकचन्द्रमादित्याग्निवायुरात्रिसंध्याधर्माणां इतिहासादिदृष्ट्या विग्रहवद्रूपसद्भावा एते हृदयायतनश्चात्मा यमश्च सर्वशरीरिणामाचरितं जानन्ति ।। ८६ ।।

(९) **भारुचिः**। देवास्त इत उच्यन्ते अन्तरपूरुषः स्वक्षेत्रोऽन्तर्यामी परमात्मा, एवं चानेन रहस्यपि पापं वर्तयेदन्योऽपि ।। ८६ ।।

**देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् ।।**
**उदङ्मुखान्प्राङ्मुखान्वा पूर्वाह्णे वै शुचिः शुचीन् ।। ८७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **देवा** दुर्गामार्तण्डादयः प्रतिमाकल्पिताः। **शुचीन्** कृतस्नानाचमनादिविधीन्। **शुचिः** प्रष्टा स्वयमपि तथाविध एव स्यात्। **ऋतमिति** श्लोकपूरणार्थमेव। प्रसिद्धमन्यत् ।। ८७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एतत्सर्वं श्रावयित्वाऽनन्तरं **साक्ष्यं पृच्छेत्**। **ऋतं** सत्यम्।। ८७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। प्रतिमा देवता। ब्राह्मणसन्निधाने शुचीन्द्विजातिप्रभृतीन् **प्राङ्मुखानुदङ्मुखान्वा** स्वयंप्रयतः प्राङ्विवाकः **पूर्वाह्णे** काले याथातथ्यं **साक्ष्यं पृच्छेत्** ।। ८७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। साक्षिणः कुत्र किंमुखान् कदाकीदृशान् कीदृशः पृच्छेदित्यपेक्षायामाह **देवेति**। देवादुर्गादिप्रतिमाः। शुचीननुष्ठितस्नानाचमनादीन्। स्वयं च तथा **शुचि ऋतं** श्लोकपूरणार्थम्। **साक्ष्यं** पृच्छेदित्यन्वयः ।। ८७ ।।

(५) **नन्दनः**। देवोदेवताप्रतिमा ।। ८७ ।।

(७) **मणिरामः**। **पृच्छेत्** प्राङ्विवाकः ।। ८७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **देवब्राह्मणसान्निध्य इति**। आलेख्यादिविन्यस्तोक्तदेवसन्निधाने ब्राह्मणानां समक्षं सभ्यानां यत्नकरणेन सत्यरूपतामापन्नं साक्ष्यं द्विजातीन् प्रयतानुत्तराभिमुखान् पूर्वाभिमुखान्वा प्रयतः सन् प्राङ्विवाकः पूर्वाह्णकाले तु पृच्छेत् ।। ८७ ।।

(९) **भारुचिः**। यतश्चैतदेवम् अतस्तेषां नियम उच्यते ।। ८७ ।।

**ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत् सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम् ।**
**गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तुपातकैः ।। ८८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। "क पुनरियं तृतीया **गोबीजाकाञ्चनैरिति**। यदितावत्पृच्छेदितिः क्रियासंबन्धात्करणमुच्यते, पदमुपपन्नम्। शब्दो हि तत्र करणम्, नार्थः"। नैष दोषः।

यथा गवादीनि प्रश्नकरणत्वं प्रतिपद्यन्ते तथा व्याख्येन्यम्। पातकैरित्युभयशेषो विज्ञेन्य **गोबीजकाञ्चनैः पातकैरिति**। तेनायमर्थो भवति। गोबीजकाञ्चनविषयैः पातकप्रदर्शनैः पृच्छेदिति। गां हृत्वा हृत्वा वा यत्पातकं तद्भवति तव मिथ्या वदत इति प्रश्नवाक्यं पठितव्यम्। एवं वक्ष्यमाणैः पातकैः शूद्रं पृच्छेत्। पातकशब्दस्तु पातकप्रदर्शनार्थेष्वभिधानेषु एवं वक्ष्यमाणैः पातकैः शूद्रं पृच्छेत्। पातकशब्दस्तु प तकप्रदर्शनार्थेष्वभिधानेषु द्रष्टव्यो मुख्यानां प्रश्नकरणत्वाभावादित्युक्तम्॥ ८८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **गोबीजकाञ्चनै**रेतेषांतेहानिमिथ्योक्ताविति। एतैः **पातकै**कैर्वक्ष्यमाणैः ब्रह्मघ्नइत्यादिभिः। साक्षिणंप्रति कथितैः॥ ८८॥

(३) **कुल्लूकः**। **ब्रूहीत्येवंशब्दमुच्चार्य ब्राह्मणं पृच्छेत्। सत्यं ब्रूहीति** पार्थिवंक्षत्रियं पृच्छेत्। **गोबीज**सुवर्णापहारे यत्पापंतद्भवतोऽनृताभिधाने स्यादित्येवं वैश्यम्। **शूद्रं** पुनः सर्वैर्वक्ष्यमाणपापैः संबध्यसे यदि मृषावदसीति **पृच्छेत्**॥ ८८॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैव व्यवस्थितप्रश्नप्रकारानाह्। **ब्रूहीति** शब्दमुच्चार्य **ब्राह्मणं पृच्छेत्। सत्यमिति**। शब्दं **पार्थिवं** क्षत्रियम्। **वैश्यं गोबीजकाञ्चना**पह्नवेन यत्पापंतत्तव स्यादिति शपथेनेति। यत आह पातकैरिति। वक्ष्यमाणसर्वपातकयुक्तोसीति शपथेन **शूद्रम्**॥ ८८॥

(५) **नन्दनः**। **पार्थिवं** क्षत्रियम्। **गोबीजकाञ्चनानि** स्पर्शयित्वेत्यर्थः। **सर्वैः** पातकैः। अनृतवादिनस्तव सर्वाणि पातकानि संभवन्तीत्युक्त्वेत्यर्थः॥ ८८॥

(६) **रामचन्द्रः**। गोवधेन्यत्पापं बीजापहारेयत्पापं काञ्चनापहरेयत्पापं तद्वैश्यस्य॥ ८८॥

(७) **मणिरामः**। **गोबीजकांचनैः** गोबीजसुवर्णाऽपहरणजनितं पापं मिथ्याभिधानेतवभविष्यतीत्येवं रूपेणवैश्यं **पृच्छेत्**। तथा **सर्वपातकैः शूद्रं पृच्छेत्**॥ ८८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **ब्रूहीति**। गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रमेभिस्तु पातकैः। ब्रूहीत्येवं शब्दमुच्चार्य ब्राह्मणं पृच्छेत्। सत्यमित्येवमभिधाय क्षत्रियम्। गोबीजसुवर्णापहारे यत्पातकं तवानृतवदने स्यादित्येवं वैश्यम्। शूद्रं वक्ष्यमाणैः पापप्रतिपादकैः शब्दैः पृच्छेत्॥ ८८॥

(९) **भारुचिः**। यथा च ते प्रष्टव्यास्तथेदं ब्राह्मणादिजात्याश्रयनियमकारिशास्त्रम् उच्यते। पातकार्था अनुयोगाः पातकशब्देनोच्यन्ते मिथ्यावचनप्रतिषेधार्थाः। इदं चापरं ब्राह्मणस्य साक्षित्वेन निदर्शनम्॥ ८८॥

**ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः॥**
**मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा॥ ८९॥**

(१) **मेधातिथिः**। ब्राह्मणं हत्वा ये लोका नरकादिलक्षणाः प्राप्यन्ते तत्कारिभिस्ते तव भवन्ति मिथ्यावदतस्तस्मात्सत्यं ब्रूहीत्यनुयोगः। यश्च मित्रं द्रुह्यति ब्राह्मणादीन् दार-

सर्वस्वापहरणादिना नाशयति–यश्च कृतमुपकारं विस्मृत्य तमेवोपकर्तारमपकरोति–यत्तस्य **कृतघ्नस्य** परत्र दुःखं तदवाप्नोति ।। ८९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणहन्तुः **स्त्रीधा**तिनो**बाल**घातिनश्च ये नरकादिलोकाऋषिभिः स्मृताः ये च मित्रद्रोहादिकारिणः येचोपकर्त्तुरपकारिणस्ते तव मिथ्यावदतो भवेयुः ।। ८९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। पातकानांस्वरूपसत्त्वं नानानर्थावहमिति तत्फलपर्यवसायित्वमाह **ब्रह्मघ्नेति**। **ये स्मृताः** शास्त्रप्रमाणकालोका भोगभूमयः ते तव शूद्रस्य साक्ष्ये मिथ्यावदतः स्युरित्येवं श्रावयेत्। एवमुत्तरत्र सर्वमेव श्रावयेदितियावत् ।। ८९ ।।

(५) **नन्दनः**। एतदेव विशदयति **ब्रह्मघ्न इति** ।। ८९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **ते लोकाः** तेमृषा ब्रुवतःस्युः भवेयुः ।। ८९ ।।

(७) **मणिरामः**। साक्षिप्रश्नेमंत्रेत्यादिना **ब्रह्मघ्नइत्याह** ।। ८९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **ब्रह्मघ्नानां स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनामिति**। ब्राह्मण स्त्रीबालघातिनां ये नरकादिलोका ऋषिभिः स्मृता ये चाऽऽऽपकारिणां, ये च कृताऽपकारिणः ते तव च मिथ्यावदतो भवेयुः ।। ८९ ।।

**जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्पुण्यं भद्रत्वयाकृतम् ।।**
**तत्ते सर्वं शुनो गच्छेत् यदिब्रूयास्त्वमन्यथा ।। ९० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। शुनो गच्छेन्निष्फलं स्याद्भवत इत्यर्थः। अन्येषु दोषप्रदर्शनार्थं श्वगमनवचने यथो कृछ्रेण महता सुवर्णाद्युत्तमद्रव्यमर्जयित्वा शुचिप्रवाहे त्यजेत्तादृक् सुकृतं भवति ।। ९० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भद्रेति। शूद्रसम्बोधनं ।। ९० ।।

(३) **कुल्लूकः**। शुभाचारयत्त्वया जन्मत आरभ्य किंचित्सुकृतं तत्सर्वं त्वदीयं कुक्कुरादिकं संक्रामति यदि त्वमसत्यं ब्रवीषि ।। ९० ।।

(४) **राघवानन्दः**। शपथान्तरं तस्याह जन्मेति। भद्र हे मङ्गलाश्रय। शुनो गच्छेत् ते पुण्यफलस्य श्वाभोक्तेति ।। ९० ।।

(५) **नन्दनः**। अन्यथाऽसत्यम् ।। ९० ।।

**एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यस्त्वं कल्याण मन्यसे ।।**
**नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः ।। ९१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **पुण्यपापयोरीक्षिता** द्रष्टा **मुनि**स्तूष्णींभूतः ।। ९१ ।। कः पुनरसौ **मुनिः**।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **मुनिर्ज्ञानवा**न्परमात्मा ।। ९१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। हे भद्र एकएवाहमस्मि जीवात्मक इति यदात्मानं **मन्यसे** मैवंमंस्थाः यस्मादेवं पापानां पुण्यानां च द्रष्टा मननान्**मुनिः** सर्वज्ञस्तवहृदये परमात्मा नित्यमवस्थितः।

तथा च श्रुतिः। द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षंपरिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ९१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। मिथ्यात्वसर्वदेवज्ञेयत्वमनुवदन् सत्यवादिनः सर्वतीर्थगमनफलवदेनतन्निषेधरूपस्तुतिमाह **एकोहमिति**द्वाभ्याम्। मुनिर्मननादन्तर्यामी ईशः पुण्यपापयोर्ज्ञातैषहृदिस्थत्वात् ॥ ९१ ॥

(५) **नन्दनः**। यस्त्वं **मन्यसे** तस्य ते पुण्यपापेक्षिता पुण्यपापयोर्द्रष्टा। तदानीं **मुनिर्मौनी** ॥ ९१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। हे कल्याण ते हृदये **पुण्यपापेक्षकः मुनिर्मननशीलः साक्षी** स्थितः ईश्वरः ॥ ९१ ॥

(७) **मणिरामः**। हे कल्याण मुनिः जीवात्मा ॥ ९१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एक इति**। हे भद्र एक एवाहं भवान् शरीरमात्रात्मकएव। अहमित्येवंरूपमात्मानं यस्त्वं बुध्यसे तन्मैवं मंस्थाः। यस्मादेष पुण्यपापानां द्रष्टा मुनिस्वरूपतोऽत्यन्त शुद्धरूपस्तव हृदये नित्यमवस्थितः ॥ ९१ ॥

**यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः ॥**
**तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरुन् गमः ॥ ९२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। कः पुनरसौ मुनिभिर्भयातिशयप्रदर्शनार्थमाह यथैष सर्वप्राणिनां देहधनाद्युच्छेदकारीयातनाभिश्च निगृह्णीतेति श्रुतिपथमागतो भवतः सोऽयं ततहृदये वर्तते न विप्रकृष्टं स चापराधं मामेवं नयति मा चैवं मनसि कृथा एष आत्मा मदीयो मामुपेक्षिष्यत इति नह्येतस्य कश्चिदात्मीयस्तेन चेदविवादः स चेत्प्रसन्नः प्रत्ययिता किं गङ्गागमनेन स्नानार्थिनः पापशुद्धये किं कुरुक्षेत्रगमनेऽस्ति प्रयोजनं तत्फलं पापक्रमोपलक्षणार्थं ततः पुण्यमिहैवाविसंवादिनि परमात्मनि नहि पापकारिणि आत्मा निर्विशङ्को भवति किं मेऽतः स्यादेतेनेति नास्तिकस्यापि किं कथिका भवत्येव गङ्गानदीपावयन्ती कुरुक्षेत्रं तु देश एव पावनः ॥ ९२ ॥

(२) **सर्वज्ञनाराधणः**। हृदिस्थितः पुण्यपापेक्षणार्थम्। अविवादस्तद्दर्शनाविरुद्धवादः। कुरुत् कुरुक्षेत्रम्। तदविवादे च सर्वतीर्थफललाभ इत्यर्थः ॥ ९२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सर्वसंयमनाद् यमः परमात्मा वैवस्वत इति दण्डधारित्वात्। देवनाद्देवः। यस्तवैष हृदि तिष्ठति तेन यथार्थकथ्यते यदि तवाविवादः यदा त्वन्मनोगतमसावन्यञ्जानाति त्वं चान्यथा कथयसि तदान्तर्यामिना सह विप्रतिपत्तिः स्यात्। एवं चात्र सत्याभिधानेनैव निःपापः कृतकृत्योऽसि पापनिर्हरणार्थं मा गङ्गां मा च कुरुक्षेत्रं यासीः। मनूक्तमेवात्र गङ्गाकुरुक्षेत्रयोः साम्यं मत्स्यपुराणे व्यासेन स्फुटीकृतम् ॥ कुरुक्षेत्रसमा गंगा यत्र तत्रावगाहितेति। मेधातिथिगोविन्दराजौ तु विवस्वतः पुत्रोयो यमोदक्षिणदिक्पतिर्लोकतः कर्णगोचरीभूतत्वात्तवहृदये परिस्फुरति तेन सह यदि तवाधर्मकारित्वाद् विवादो नास्ति तदा मा गङ्गां मा कुरुक्षेत्रं यासीरिति व्याचक्षाते ॥ ९२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। यमश्चासौ वैवस्वतश्च। तेन विज्ञातेनानेन विवादः संवादश्चेन्मा गमः गङ्गादिकं मा गच्छेत्यन्वयः। विसंवादश्चेत्पापभीरोर्गङ्गादिगमनं वृथेति स्तुतिनिन्दे ॥ ९२ ॥

(५) **नन्दनः**। पश्चात् किं करिष्यतीति चेत्तत्राह यमो वैवस्वत इति देवोयस्तवैष-हृदिस्थितः स वैवस्वतो यमो नान्यः। यमो भूत्वा त्वां घातयतीत्यभिप्रायः ॥ ९२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। वैवस्वतो यमो नियन्ता तेन यमेन सह अविवादः ते तव चेत्तर्हि गङ्गास्नानार्थं मा गमः कुरून् कुरुक्षेत्रं मा गमः मा गच्छ। आत्मैव शुद्ध इत्यर्थः ॥ ९२ ॥

**नग्नो मुण्डः कपाली च भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः ॥**
**अन्धः शत्रुकुलं गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ ९३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। कपालं शरावादिपात्रैकदेशः सुबोधम् ॥ ९३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कपालेन घटादिकर्परेण। एतावद्दुःखजनकं पापं भवेदित्यर्थः ॥ ९३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यः साक्ष्यमसत्यंवदेत्सनग्नः कृतमुण्डनपरिभावोऽन्धः कर्परेणोपलक्षितः भिक्षार्थी शत्रुकुलं गच्छेत् ॥ ९३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अनृतवदने दृष्टरूपदण्डान्तरमाह नग्नइतित्रिभिः। मुण्डः कृतमुण्डनपरिभवः शत्रुगृहं भिक्षार्थी गच्छेदित्यन्वयः। यएवं दृश्यतेसोऽनृतवदनफलभागित्युन्नेयः ॥ ९३ ॥

(५) **नन्दनः**। कपालं अलाबुपात्रम् ॥ ९३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यः पुरुषः साक्ष्यमनृतंवदेद्वदति स एवं विधःस्यात् नग्नोमुण्डः कपालीति ॥ ९३ ॥

(७) **मणिरामः**। अनृतसाक्ष्यदोषानाह नग्न इत्यादिना। मिथ्या साक्ष्यदाता एतादृशोभवतीत्यर्थः ॥ ९३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नग्न इति**। **अन्धः शत्रुगृहं गच्छेदिति**। **य साक्ष्यमनृतं ब्रूयात्** स नग्नः कृतकेशमुण्डनः परिभवादन्धः क्षुत्तृष्णार्तः कर्परेण युक्तो भिक्षार्थं शत्रुगृहं गच्छेदिति साक्षिमात्रविषयत्वेनैतदुच्यते न शूद्रप्रश्नार्थमध्यपुरुषनिर्देशादेते शपथा अभूवुः ॥ ९३ ॥

**अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरकं व्रजेत् ॥**
**यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्टः सन् धर्मनिश्चये ॥ ९४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। निमित्तं पृष्टो यो वितथमसत्यं वक्ति स तेन **किल्बिषेन** पापेन गृहीत ऊर्ध्वपादोऽधोमुखो महति गाढे तमसि नरकं यातनास्थानं तत्प्राप्नोतीत्यर्थः। अन्यस्मिंस्तमसि किंचिद्दृश्यते तत्र तु न किंचिदेवेत्यन्धग्रहणम् ॥ ९४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अन्धे अन्धताहेतौ ॥ ९४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। योधर्मनिश्चयनिमित्तं पृष्टः सन्नसत्यंब्रूयात्सपापवान्। अधोमुखोमहान्धकारं योनरकस्तं गच्छति ।। ९४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंचान्यत् अवागिति। सकिल्बिषी पापी अन्धेतमसि नरके अवाक्शिराउर्ध्वपादःसन्पतेदिति। विशिष्टधर्मनिश्चये कर्तव्ये अयमेव धर्मइति अविनयधर्मइतिवितथमधर्मब्रूते इति। सोपि कूटसाक्षिवदधार्मिकः उक्तनरकपातीति शेषः ।। ९४ ।।

(५) **नन्दनः**। प्रश्नंपृष्टंसाक्ष्ये धर्मनिश्चये व्यवहारनिर्णये ।। ९४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अवागिति**। यो धर्मनिश्चयनिमित्तं पृष्टः सन्असत्यं प्रश्नं ब्रूयात् स पापी अधोमुखोऽतिसान्द्रे तमसि नरके पतेत् ।। ९४ ।।

**अन्धो मत्स्यानिवाश्नाति स नरः कण्टकैः सह ।।**
**यो भाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्षं सभां गतः ।। ९५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अर्थवैकल्यं** सत्यादपेतं **भाषते**। यथा कण्टका अशिता भक्षिता जनयन्ति न तादृशीं मत्स्याः प्रीतिं जनयन्ति। यदा धनलोभेन काचित्प्रीतिमात्रा भवति यथापि महद्दुःखं भवतीति सकण्टकमत्स्याशनोपमा ।। ९५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। मत्स्यानिवाश्नाति कण्टकैरिति तत्र यथा आपाततः सुखं दुःखंतु महत्तथात्रेत्यर्थः। अर्थवैकल्यम् यथार्थयथाभवति। अप्रत्यक्षमचक्षुर्विषयम् ।। ९५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यः सभांप्राप्तस्तत्त्वार्थस्यायथार्थस्याभिप्रायमनुपलब्धमुत्कोचादिसुखलेशेन कथयति सनरो अन्ध इव सकण्टकान्मत्स्यान् भक्षयति सुखबुद्धया प्रवृत्तोदुःखमेव महल्लभते ।। ९५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अन्धस्य कण्टकैर्विशिष्टं मत्स्यादनं दुःखं दूरदृष्टजमिति तद्विदः प्रसिद्धमयमपि तादृशदुःखभागित्युन्नेयः। कोयोयमेतादृशं भाषत इत्यन्वयः। अर्थवैकल्यं अर्थस्य विकलता शून्यत्वं यत्र तत्। अप्रत्यक्षं प्रत्यक्षेतरंवचः अनुपलब्धंवा ।। ९५ ।।

(५) **नन्दनः**। सभागतेऽर्थे आत्मनोऽप्रत्यक्षं वैकल्यमर्थसद्भावंयो भाषते सनर इहजन्मन्यन्धोभूत्वा वृत्यभावात्कैवर्त्तादिवत्समुद्रादितीरवर्तिमत्स्योदरस्थैः कण्टकैः सहमत्स्यानश्नाति ।। ९५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। यःसभांगतः सन्नर्थवैकल्यं अप्रत्यक्षंयथाभवति तथा अप्रत्यक्षं भाषते सनरः अन्ध इव कण्टकैः सह मत्स्यानिवाश्नाति ।। ९५ ।।

(७) **मणिरामः**। अर्थवैकल्पं अयथार्थीं अप्रत्यक्षं अदृष्टश्रुतं ।। ९५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अन्ध इति**। यः सभां प्राप्तः तत्त्वस्य विप्रलब्धं मुखलेखभ्रान्त्या चादृष्टं भाषते सोन्ध इव सकण्टकान् मत्स्यान् भक्षयति सः। सुखहेतोर्वर्तमानो दुःखमेवातिशयं तदुपार्जयति ।। ९५ ।।

**यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नातिशङ्कते ।**
**तस्मिन्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः ॥ ९६ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । **यस्य वदतः** साक्षिणो **विद्वान्**सत्यानृते जानानः **क्षेत्रज्ञो**ऽन्तर्यामी पुरुषो **नातिशङ्कते** किमयं सत्यं वक्ष्यत्यनृतं वेत्येवं नाशङ्कते–निश्चितमेवैष सत्यं वक्तीति यस्यात्मा निर्विशङ्कः तस्मात्पुरुषान्नान्यं **श्रेयांसं** श्रेष्ठं प्रशस्ततमं **पुरुषं देवा** जानते । कः पुनरयं वेदिता । कश्च ततोऽन्य आशङ्किता । एक एव ह्यात्मा स्वप्रयत्नद्वारेण वाचमीरयन्वेदिता संपद्यते । स एव तद्धर्मेण किं कथं स्यादित्येवंरूपेणाशङ्काख्यानेन युज्यते । तत्र भेदानुपपत्तिः । सत्यमेतत् । काल्पनिकेन भेदेनैवमुक्तम् । यथा हन्त्यात्मानमात्मनेति ॥ ९६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । क्षेत्रज्ञः परमात्मा विशङ्कते विपरीतंशङ्कते ॥ ९६ ॥

(३) **कुल्लूकः** । यस्य वदतः सर्वज्ञोन्तर्यामि किमयं सत्यं वदत्युतानृतमिति नशङ्कते किन्तु सत्यमेवायंवदति निर्विशङ्कः संपद्यते तस्मादन्यं प्रशस्ततरं पुरुषदेवा न जानन्ति ॥ ९६ ॥

(४) **राघवानन्दः** । आत्मनो[1] मिथ्यावादित्वेनाशङ्कितंस्तौति यस्येति । क्षेत्रज्ञः क्षेत्रभासकः साक्ष्यतएव विद्वान् यस्यमिथ्यावदतः पुंसो सत्यमेव वदति नाशङ्कते स्वयंवासत्येमेवोक्तमितिवा श्रेयांसंश्रेष्ठतरं भृगुर्हि प्रतिज्ञान्तरं प्रतिजानीते ॥ ९६ ॥

(५) **नन्दनः** । वदतोयस्य वाक्यादिति शेषः । क्षेत्रज्ञः परमात्मा न तुष्यतीति ॥ ९६ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । यस्य वदतोविद्वान्नातिशङ्कते यस्य क्षेत्रज्ञोनातिशङ्कते ॥ ९६ ॥

(७) **मणिरामः** । क्षेत्रज्ञः आत्मा नाभिशंकते अयं सत्यंवदति अथवा मिथ्येति न शकते ॥ ९६ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **यस्येति** । यस्य वदतः शुभाशुभं सत्यं वदति उतानृतमित्येवं साशङ्को न भवत्यपि निश्चितमेवार्थं सत्यं वक्तीत्येवं निर्विशङ्कस्तस्मात्पुरुषादन्यं प्रशस्यतरं पुरुषं देवा न मन्यन्त इत्यर्थः ॥ ९६ ॥

(९) **भारुचिः** । अष्टौ श्लोकाः शूद्रशपथानुयोगार्थाः एवमेभिरनेकैर्वाक्यार्थप्रकारैस्सत्यवचनार्थाः सम्पद्यन्ते.....नियोगः । यथा ब्राह्मणादिवर्णान् ॥ ९६ ॥

---

(राघ० ४) चिह्नितपुस्तके ९६ । ९७ श्लोकौव्युत्क्रमौस्तः ।

१ आत्मानो...प्रतिजानीते=आत्मनोमिथ्यावादित्वेनाशङ्कितं स्तौतियस्येति । यस्यवदतः सर्वज्ञोऽन्तर्यामीकिमयंसत्यमाह उतानृतमिति न शङ्कते किंतुसत्यमेवायंवदतीति निर्विशङ्कः संपद्यते । तस्मात्पुरुषादन्यं प्रशस्ततरं पुरुषं देवान जानन्ति ॥ (न, श)

**यावतो बान्धवान्यस्मिन्हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ।**
**तावतः संख्यया तस्मिन् शृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥ ९७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। द्रव्यविशेषानृताश्रयाः पापविशेषाः **कूटसाक्षिण** इत्येतत्प्रदर्शनार्थं प्रकरणमारभ्यते। तत्रायं श्लोकः संबोधनद्वारेणोपदिश्यमान आदरार्थः संपद्यते। यद्गुह्यं मिथ उपदिश्यते तद्यथाकथंचिद्भवतीत्यवधारितं ग्रहणं नातिगुरु इदं त्वतिमहाप्रयोजनमवसितैः श्रोतव्यमिति। **सौम्येति** चैकवचनमनेकशिष्यसन्निधाने भृगावेव विवक्षितम्। **यस्मिन् साक्ष्य** इति व्यधिकरणसप्तमी।

[ **एवंसंबन्धनात्तस्मान्मुच्यते नियतावृतः ।**
**पशून्गोश्वपुरुषाणां हिरण्यं भूर्यथा क्रमम् ॥ १ ॥** ]

**यस्मिन्** द्रव्यभेदभिन्ने व्यवहारे यत्साक्ष्यं तत्र तन्निमित्तं यदनृतमित्येषा विषयसप्तमी। अपरा 'यस्य च भावेनेति' (पा. सू. २।३।३७)। अथवा द्रव्यभेदात्साक्ष्यभेदः, तत्र समानाधिकरण एव। **तावत** इति परिमाणे व्युत्पाद्यते। तत्र यत्प्रभूतनिमित्तमपि परिमाणं संभाव्यते इत्यतो विशिनष्टि **संख्ययेति अनुपूर्वश** इति सुखप्रतिपत्तयेऽनुपूर्वेण ह्यभिधीयमानं सुखेन प्रतीयते। आनुपूर्वी सङ्ख्यागताऽत्राभिप्रेता। तस्या एव वक्ष्यमाणत्वात् 'पञ्च पञ्चित्यादि'॥ ९७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। बान्धवान् पूर्वपुरुषान् हन्ति नरकेपातयति। केचित्तु तावत्पुरुषहन्तृदोषो भवतीत्यस्यार्थ इत्याहुः॥ ९७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्मिन्पश्वादिनिमित्ते साक्ष्येऽनृतंवदन् यत्संख्याकान्पित्रादिबान्धवान्नरके योजयति तत्संख्याकान्क्रमेण परिगणनया मयोच्यमानान्साधोश्टणु अथवा यावतोबान्धवान्यस्मिन्हन्ति यावतांबान्धवानां स ननु फलं प्राप्नोति तावत्संख्याकान् श्रृणु। पक्षद्वयेऽनृतनिन्दार्थमिदम्॥ ९७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। शृण्वितियावत इति। यस्मिन्पश्वादिहरणनिमित्ते बान्धवान्पित्रादीन्हन्त्युत्तमलोकात्पातयतितिर्यग्योनिं प्रापयतिवा आत्मनोऽनाशोक्तेः तस्मिन्साक्ष्येकर्मणि तावतोबान्धवान् संख्यया संख्याविशिष्टत्वेन॥ ९७ ॥

(५) **नन्दनः**। यस्मिन्साक्ष्येऽनृतंवदन् यावतोबांधवान् इति। इति नरके योजयति। तावत्संख्यया तावत्संख्याकान् गणनया। मयोच्यमानान् हे सौम्य हे साधो शृणु ॥ ९७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। कूटसाक्षिणामेतत्तामि...रवोपभोगस्य कालपरिमाणार्थमधुना सामर्थ्यात् न केवलं प्रकरणाच्छ्रद्धाणामेव। अतश्च चित्तप्रणिधानार्थं सर्वेषामेवायं श्लोक आरब्धः। कथं नाम दत्तप्रणिधानास्साक्षिणः श्रुत्वैतन्मिथ्यावचनप्रत्यवायमतिमहान्त निर्वर्तेरन् मिथ्यावचनादिति ॥ ९७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यावन्त इति**। यस्मिन्पश्वादिनिमित्ते साक्ष्येऽनृतं ब्रुवन् यत्संख्याकान् मित्रादिबान्धवान् नरकेण योजयति तस्मिन्साक्ष्ये तत्संख्याकान् क्रमेण संख्यया

मयोच्यमानान् शृणुत इत्यतश्च नरकपातनिमित्ताचरणस्तस्यापि नरकं भवति इत्युक्तं भवति, तत्र चानृतवादिबान्धवाः स्वार्जितकर्मचरान्नरकमुपयन्ति। अकृताभ्यागमकृत विप्रणाशचोद्यापत्तिर्यथा विषादिना क्वचित्किञ्चिद् व्यापादयति तत्र प्राक्जन्मार्जित-कर्मवशतोऽसौ तथा म्रियते यथा यमपि तं निमित्तभावमुपगच्छन् फले चात्र निरालम्बनार्थ-वादमात्रपर्यवसायिता युक्ता अप्रमादाभिधा इति ।। ९७ ।।

**पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।**
**शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ।। ९८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। पशुनिमित्तमनृतम्। शाकपार्थिववत्समासः। पञ्चबान्धवां-श्चानृतं हन्ति। ततश्च तेषां नरकपातनम्। मातापितरौ जायामिथुनं चापत्यमिति पञ्च। कथं पुनरन्यकृतेनैनसाऽन्यस्य फलम्। अन्यकृतेन पुण्यपापादिनाऽन्यस्य स्वर्गनरकादिप्राप्तिः संसर्गादिति ब्रूमः। तैरयं परित्यज्यत इत्युक्तं भवति। अथवा तैर्हतैर्यत्पापं तदस्य भवती-त्यघ्नन्नपि हन्तीत्युच्यते। अदृष्टकार्यतुल्यत्वात्। अर्थवादश्चायं न तत्कार्योपदेशः। तत्कार्यो-पदेशे हि हिंसाप्रायश्चित्ती स्यात्। कौटसाक्ष्यप्रायश्चित्तमेतद्भवति। उत्तरोत्तरसङ्ख्यादि वृद्धिः प्रायश्चित्तगौरवार्था न पुनर्विवक्षितैव। तेनोत्तरोत्तरस्य गरीयः प्रायश्चित्तमित्युक्तं भवति। अयं पुरुषः कस्य दास इत्येवं संशये यदनृतं **तत्पुरुषानृतमुच्यते** ।। ९८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पश्वनृते गवाद्यन्यपश्वर्थमनृते। सहस्रं पूर्वपूर्वपुरूषानेव ।। ९८ ।।

(३) **कुल्लूकभः**। पशुविषयेऽनृते पञ्चबांधवान् नरके योजयति पञ्चानांबान्धवानां-हननफलं प्राप्नोति। एवंदशगोविषये शतमश्वविषये सहस्रं पुरुषविषये संख्यागौरवं चेदं-प्रायश्चित्तगौरवार्थम् ।। ९८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तदेवाह पञ्चेतित्रिभिः। पञ्चसङ्ख्याकान् पितॄन्। एव-मुत्तरत्र। हननं तिर्यग्योनित्वप्राप्तिः। पश्वनृते पश्वर्थमिथ्याभाषणे। एवं सत्यत्रपशुत्वेन गवादीनां प्राप्तत्वे पुनर्वचनं प्रायश्चित्तगौरवार्थम्। पुरुषानृते मनुष्यविषयानृते ।। ९८ ।।

(५) **नन्दनः**। पञ्चबान्धवानित्यनुवर्त्तते पशुरजादिः। पुरुषानृते अयंदासोऽदासो-वेत्येवमादिके हन्ति ।। ९८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। पश्वनृते पशोःसाक्ष्येऽनृतंवदति सपञ्चपूर्वपुरुषान्हन्ति घातयति। यद्वा नरके योजयति पातयति। हन्हिंसागत्योरित्यस्य धातोरूपम् गत्यर्थे हन्ति इति ज्ञेयम् गवानृते दशपुरुषान्हन्ति नरके पातयति। अश्वानृते शतंपुरुषान् हन्ति पातयति। सहस्र-पुरुषानृतेहन्ति ।। ९८ ।।

(७) **मणिरामः**। संख्यामाह। पंचेति ।। ९८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **पञ्चेति**। पशुविषयेऽनृते पञ्चबान्धवान्नरकेण योजयति दश-गोविषये शतमश्वविषये सहस्रं पुरुषविषये ।। ९८ ।।

**हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ।**
**सर्वं भूम्यनृते हन्ति माऽस्म भूम्यनृतं वदीः॥ ९९ ॥**

[पशुवत्क्षौद्रघृतयोर्यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥ गोवत्सहिरण्येषु धान्यपुष्पफलेषु च ॥ अश्ववत्सर्वयानेषु खरोष्ट्रवाराहिषु ॥ ]

(१) **मेधातिथिः**। कथं पुनरजातानामसति संसर्गे परकीयेन संयोगो येनेदमुच्यते **हन्ति जातानजातांश्चेति**। उक्तमर्थवादोऽयमिति। सर्वं भूम्यनृतं वदन्। **माऽवदीः** भूमिसंबन्ध्यसत्यम्। **माऽवदीरित्यादरार्थमप्येतत् प्रत्यक्षं संबोधनम्**। का पुनरियं भूमिर्नाम। यदेतत्पृथिवीगोलकं पर्वतावष्टंभनं सागरावधिप्रसिद्धम्। नन्वियत्याः कः स्वामी को वाऽपहर्ता। न हि सार्वभौमः कश्चिदस्ति। तथा च गाथा भूमेः—"न मां मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति"। न कश्चित्सार्वभौमोऽस्तीत्यभिप्रायः। 'विश्वकर्मन् दासिथ भौवनमादिविश्व कर्मभौमनेति पितृव्यापदेशेन स्वनाम्ना च राज्ञामन्वृणं श्रुतं मयाऽसौ रन्तुमिच्छतीति उप मैष्यति सलिलस्यमध्ये निमज्जेऽहं सलिलस्य मध्यमेवं संकल्पं वृथा संकल्पितवति त्वयि सलिले मज्जामि। सलिलमज्जनेन नैष्फल्यमत्र दानसंकल्पस्याह। यथा सलिले निक्षिप्तं निष्फलमेवमेतदपीति। मृषैष कश्यपाय संगरः। तवैष संगरः प्रतिश्रवः प्रतिज्ञानं कश्यपाय ददामिति मोघो वंध्योऽस्तु सर्वसाधारणाऽहम्। सर्वजनोपभोग्या। केवलं राजानो रक्षानिबंधमात्रभाज इत्यभिप्रायः। अत एतावत्या भूमेर्न दानापहारासंभव इति कुतो विवादः। सत्यम्। यथैवायं भूमिशब्दोऽत्र वर्तते एवं क्षेत्रग्रामस्थण्डिलादावपि। तत्र च संभवत्येव स्वाम्यम्। प्रत्यक्षस्यैव दानापहाराविति न किंचिदनुपपन्नम्। अपहारश्चास्या यादृशेन रूपेण अपहारः गृहादेर्न वीरुद्विच्छेदः। अतश्च यः परकीये क्षेत्रे चक्रम्येत मृदो वा कश्चिदादद्यान्नासौ भूम्यपहारी स्यात्। मीमांसकैरुक्तं "न भूमिः स्यात्सर्वान्प्रत्यविशिष्टत्वादिति।" (मी. सू. ६।३।३) एकदेशवचनं च भूमिशब्दमधिकृत्य भगवान् कृष्णद्वैपायनो दानधर्मेषु पठितवान्—"परैरप्यनुमन्तव्यो दानधर्मो नृपैर्भुवि। अक्षयो हि निधिर्ब्राह्मो विहितोऽयं महीभृताम्" इति। कृत्स्नगोलकाभिप्रायमेव चादेयत्वं भूमेर्विश्वजिति मीमांसकैरुक्तं "न भूमिः स्यात्सर्वान्प्रत्यविशिष्टत्वादिति" (मी. सू. ६।३।३।)। सर्वान्पुरुषान्प्रतिचंक्रमणादियोग्यतयाऽविशिष्टा भूमिः स्वात्मीकर्तुमशक्या कथं दीयत इत्यर्थः। अस्मिंस्तु पक्षे ग्रामनगरादिविश्वजिति दातव्यम्। अन्ये तु पठन्ति 'अन्तरेण सदः पलीशालं च दक्षिणा नयन्तीति' भूमौ गुणविधेरस्या संभवात्क्षेत्रादेरप्यदानम्। **वदन्निति** चैकवचननिर्देशाच्छृणु सौम्येति साक्षिविषयमेवैतत्संबोधनम् न शिष्यविषयम्। 'शूद्रमेभिस्तु पातकैः इत्यत आरभ्य यावतो मध्यमपुरुषनिर्देशास्ते सर्वेषां पातकभूयस्त्वसमानाख्यातरूपाद्येक वाक्यत्वाच्छूद्रानुयोगार्थाः। 'अन्धः शत्रुगृहं गच्छेत्' इत्यत आरभ्य सर्वे साक्षिविषया अनुयोगाः। आख्यातवैरूप्येन प्रकरणस्य विच्छेदात् मध्यमपुरुषे समानार्थक्रमत्वात्कर्तव्ये गच्छेदिति प्रथमपुरुषनिर्देशः पूर्वाधिकारनिवृत्त्यर्थः॥ ९९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अजातान् पुत्रादीन् हंति नरके योजयति। सर्वं सर्वजीवन**हननफलं प्राप्नोति**।

अजातान् पुत्रादीन् । अत्रापि सहस्रमित्यन्वयः । सर्वं सहस्रादप्यधिकम् ९ ॥

(३) **कुल्लूकः** । हिरण्यार्थेऽनृतंवदन् जातानजातांश्च पुत्रप्रभृतीन्नरके योजयति एषां फलप्राप्नोति । भूमिविषये चानृतंवदन् सर्वप्राणिनांहननफलं प्राप्नोति तस्माद्भूमि ऽनृतंमावदीरिति विशिष्याभिधानम् ॥ ९९ ॥

(४) **राघवानन्दः** । अजातानुत्तरकालीनान् । अर्थवादोयमिति मेधातिथिः । सर्व-अपरिमितंदेयमितिवत्सहस्रादधिकउक्तसङ्ख्याया अन्तर्भावात् । एवं सर्वजातादीन् ९ ॥

(५) **नन्दनः** । सर्वजगत् ॥ ९९ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । हिरण्यार्थे । अनृतंवदन् जातानजातांश्चहन्ति नरके योजयति । मित्यनुवर्तते । न सहस्रजातान् सहस्रमुत्पद्यमानान्हन्ति ॥ ९९ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **हन्तीति** । हिरण्यविषयेऽनृतं वदन् जातान् पित्रादीन् अनु-श्च पुत्रादीन् आत्मानृतत्वान्नरके योजयति । भूमिविषये चानृतं वदन् सर्वप्राणिजातं योजयति, तस्माद्भूमिविषयेऽनृतं न वदेत् ॥ ९९ ॥

(९) **भारुचिः** । पूर्वापरान् यदयमाह । नन्वियंश्रुतिर्विरुध्यते । न मां मन्येः कश्चन र्हतीति । अतश्च स्वामित्वाभावः । तदभावाद्व्यवहाराभावः । ततश्च वादाभावे ादोषाभावः साक्षिणामिति । तच्च न अर्थपरिज्ञानात् नहि कश्चित् समर्थः कृत्स्नान् विजयस्याभावादित्येषोऽन्नार्थः, दानापहारमिथ्यावचनेषु गुणदोषप्रदर्शनशास्त्रारम्भ-र्यात् तथा च व्यासादयः । 'षष्टि वर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः । आच्छेत्ता ान्ता च तान्येव नरकं वसेदि'ति । भूमिच्छलार्थे त्वेवदानापहारादय इति केचित् । द्विचारणीयम् मीमांसादर्शनं तु ' न भूमिः स्यात् सर्वान् प्रत्यवशिष्टत्वादि'ति । सर्वान् ार्थान् गुणविधीन् प्रत्यवशिष्टत्वाद्दक्षिणाद्रव्येषु हि गुणः श्रूयते । अन्तरेण सदः पत्नी दक्षिणां नयन्तीति । स चायं गुणविधिरत्यन्ताशक्यः । पृथिव्यां ततोऽस्मादन्यन्नास्त्य-दोषे स्यात् । एवं च तावद्विवादेऽनृतदोषः साक्षिणां सिद्धः सर्वस्य च कार्यस्य पृथिवी ात्वात्तदनृते सर्वं हन्तीत्युच्यते एवं च पुरुषाभिनयने स्मृतिः सादरं वारयति मास्म नृतं वदीः ॥ ९९ ॥

**अप्सु भूमिवदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने ।**
**अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च ॥ १०० ॥**

**पशुवत्क्षौद्रघृतयोर्यानेषु च तथाश्ववत् ।**
**गोवद्रजतवस्त्रेषु धान्ये ब्राह्मणवद्विधिः ॥**

(१) **मेधातिथिः** । कूपतडागादिस्थे महति जले स्वल्पे वा **भूमिवद्दोषः** । **स्त्रीणां** च मैथुनाख्ये—केनेयं स्त्री भुक्ता मैथुनधर्मेणेति । **अब्जेषु रत्नेषु** मणयो रत्नानि मुक्ताद्याः ।

**अश्ममयेषु** वैडूर्यादिषु। रत्नेष्विति संबध्यते। द्विविधान्येव रत्नानि जलजान्यश्ममयानि च। अतो रत्नग्रहण एव कर्तव्ये विशेषणद्वयोपादानं श्लोकपूरणार्थम्। अद्भ्यो जाता-**न्यब्जानि**। अश्मनो विकारा **अश्ममयानि** ॥ १०० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भूमिवत् भूम्यनृतवद्दोषः। स्त्रीणां भोगेमैथुने मैथुनरूपस्त्री-संभोगविषयमिथ्योक्तौ अब्जेषु रत्नेषु मुक्तादिषु। अश्ममयेषुरत्नेषुमाणिक्यादिषु ॥ १०० ॥

(३) **कुल्लूकः**। वैदूर्य्यादिष्वनृतंवदतोभूमिवद्दोषमाह अप्स्विति। तडागकूपग्राह्यादेक-विषयेऽनृते स्त्रीणांच मैथुनाख्योपभोगविषये अब्जेषु च रत्नेषु च मुक्तादिषु पाषाणमयेषु वैडूर्या-दिष्वनृते भूमिवद्दोषमाहुः ॥ १०० ॥

(४) **राघवानन्दः**। भोगे मैथुनधर्मेण। निजस्त्रियः न जाने इति ब्रूते जानन्नपि ॥ १०० ॥

(५) **नन्दनः**। उक्तार्थं वस्त्वन्तरेष्वतिदिशति अप्सु अब्धिविषये ऽनृते। मैथुने भोगे मिथुनभोगविषयेऽनृते। अब्जानि शङ्खमुक्तादिकम् ॥ १०० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अप्सु जलस्यानृते भूमिवत् भूमेर्यत्पापमुक्तं तज्जलानृत इत्यर्थः। च पुनः स्त्रीणांभोगे निथ्योक्तौ भूमिवत्पातकम्। च पुनः अब्जेषु मौक्तिकादिषु भूमिवत्। च पुनः सर्वेष्वश्ममयेषु माणिक्यादिषु अनृतेभूमिवत् ॥ १०० ॥

(७) **मणिरामः**। मैथुने भोगे मैथुनाख्योपभोगविषये अब्जे रत्ने मुक्ताफलादौ। पाषाणमये वैडूर्यादौ भूमिविषयाऽनृतवत् फलमित्यर्थः ॥ १०० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अप्स्विति**। उदकविषयेऽनृते स्त्रीणां भोगेषु विषये अब्जेषु पद्मरागादिषु पाषाणमयेषु च सर्ववैडूर्यादिषु अनृते भूमिवद् दोषमाहुः सर्वं हन्तीति ॥ १०० ॥

**एतान्दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे।**
**यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद ॥ १०१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। ऊहापोहौ वर्जयित्वा यथादृष्टं यथाश्रुतं चादृष्टं तत्त्वेन ब्रूहि ॥ १०१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अञ्जसाशीघ्रम् ॥ १०१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एतानसत्यभाषणदोषानधिगम्य दृष्टश्रुतानतिक्रमेण सर्वमेवाञ्जसा तत्त्वतोब्रूहि ॥ १०१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। साक्षिवाचनमुपसंहरति एतानिति। ब्रह्मघ्नानित्यादिवदित्य-न्तान् शूद्रायैव श्रावणीयं संदेशन्यायात् शूद्रवदाचरेदिति गोरक्षकादिषु शूद्रधर्मातिदेशाञ्च। ॥ १०१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अञ्जसा शीघ्रंवदेति ॥ १०१ ॥

(७) **मणिरामः**। अंजसा तत्त्वतः ॥ १०१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एतानिति**। एतान्सर्वाननृतभाषणे दोषान् ज्ञात्वा दृष्टश्रुतानतिक्रमेण सर्वमेतत्तत्वतो ब्रूहि ।। १०१ ।।

(९) **भारुचिः**। अमी पंच श्लोकाः सर्वसाक्षिसाधारणाः। अनृतवचनप्रतिषेधविद्वेषणार्था अर्थवादाः। न फलविषयः। आकृताभ्यागमकृतविप्राणां नाशदोषप्रसंगात् एवं च प्रतिपुरुषं शास्त्राधिकारो हीयेत। आनर्थं चास्यस्यात्। येन स्वकृतकर्मफलयोगशास्त्रस्यार्थवत्वं। अतः शास्त्रविरोधान्न्यायविरोधाच्च प्रतिषेधार्थवादाएवैते विज्ञेयाः ।। १०१ ।।

**गोरक्षकान्वाणिजकांस्तथा कारुकुशीलवान् ।**
**प्रेष्यान्वार्द्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ।। १०२ ।।**

[ **येप्यतीताः स्वधर्मेभ्यः परपिण्डोपजीविनः ।**[+]
**द्विजत्वमभिकांक्षन्तितांश्च शूद्रानिवाचरेत् ।। १ ।।** ]

(१) **मेधातिथिः**। **कारवः** शिल्पिनस्तक्षायस्कारसूपकारादयः। **कुशीलवा** नर्तकगायनाद्याः। **प्रेष्या** जीविकार्थं परस्याज्ञाकारा दासा इति प्रसिद्धाः। **वार्धुषिका** वृद्ध्युपजीविनः। एते ब्राह्मणा अपि सन्तः प्रकरणात्साक्ष्ये शपथे च **शूद्रवद्द्रष्टव्या** न क्रियांतरे। यथा शूद्रो न दानपुण्यादिना पृच्छ्यते साक्ष्ये शपथे चाग्निहरणादिना शोध्यते तद्वदेषोऽपि शपथो यद्यपि पूर्वत्रापकृतः तथाप्युत्तरत्रानन्तर्याद्दोषवत्वात्प्रयतत्वात् प्रयतत्वेऽप्यानन्तर्यस्य संबन्धहेतुत्वाद्वक्ष्यमाणस्यापि प्रत्यासत्त्या पूर्ववद्द्वयोःसन्निपातात् शपथेऽपि तुल्यम् ।। १०२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। गोरक्षकान् पशुपालनेन जीवतः। कारून् सूपकारादिवृत्तीन् कुशीलवान् नटवृत्या प्रेष्यान् ब्राह्मणस्यादास्येऽपि स्वतःप्रतिपन्नदास्यान्। वार्द्धुषिकान् वृद्धिजीविनः। शूद्रवत् सर्वपातकैः पृच्छेदिति ।। १०२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। गोरक्षणजीविनोवाणिज्यजीविनः सूपकारादिकारुकर्मजीविनः दासकर्मजीविनः नटकर्मनृत्यगीतादिजीविनः प्रतिषिद्धजीविनोब्राह्मणान् प्रकृतसाक्ष्यदर्शने शूद्रवत्पृच्छेत् ।। १०२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। वाक्यप्रकरणपठितं* पश्वनृतइत्याद्यधर्मज्ञातंद्विजानामपि भवत्येव। सर्वपातकादियुक्तं निकृष्टद्विजेऽपि वाचयेदित्याह गोरक्षेति ।। १०२ ।।

(५) **नन्दनः**। गोरक्षकान्विप्रान् शूद्रवदाचरेत्सर्वैः पातकैर्ब्रूहीति ब्रूयादित्यर्थः ।। १०२ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। ब्राह्मणान्प्रत्याह गोरक्षकानिति। पाशुपाल्यादिवृत्तिजीविनोविप्रान्साक्ष्ये शूद्रवत्पातकैः पृच्छेत् ।। १०२ ।।

(७) **मणिरामः**। वार्द्धुषिकान् प्रतिषिद्धजीविनः। गोरक्षकादीन् ब्राह्मणानपि शूद्रवत्साक्ष्यं पृछेदित्यर्थः ।। १०२ ।।

---

[+] (ङ)। (ट) चिह्नतपुस्तकेतु येप्यपेताः स्वकर्मभ्यः परकर्मोपजीविनः।। द्विजाधर्मविजानन्तस्तांश्च शूद्रवदाचरेदितिपाठः।

* पठितं=प्रमितं (राघ० ४)

(८) **गोविन्दराजः**। **गोरक्षकानिति**। गोरक्षकवाणिज्यसूपकारादिकारुकर्मदास्य प्रतिषिद्धजीविनो ब्राह्मणान् साक्षिप्रश्ने शूद्रवत् पृच्छेत् ॥ १०२ ॥

(९) **भारुचिः**। प्रकरणाद् ब्राह्मणशपथानुयोगापवादः। 'शूद्रमेभिस्तु पातकै'रिति वचनाद् एषां गोरक्षकादीनां ब्राह्मणानामेव मतां शूद्रशपथानुयोगः। एवं च नान्यत्र प्रयोज शूद्रवदाचरणम् इतरथा प्रकरणमुपरुद्धयेत ॥ १०२ ॥

**तद्वदन्धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथानरः ।**
**न स्वर्गाच्च्यवते लोकाद्दैवीं वाचं वदन्तिताम् ॥ १०३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। तदन्यथाऽपि जानन्नन्यथा **वदन्नस्वर्गाद्भ्रश्यति**। कूटमपि वद दुष्यतीत्यर्थः। किं सर्वदैव? नेत्याह। **धर्मतोऽर्थेषु**। **धर्मेण** दयादिना निमित्तेनार्थे व्यवहारेषु। धर्मस्य च निमित्तत्वमक्तमन्तरश्लोके दर्शयिष्यति। एतच्च न स्वमनीषि कयोच्यते किं तर्ह्येतां **दैवीं वाचं** वदन्ति—अस्मानपूर्वेऽपि स्मर्तारः। का पुनर्दैवी वाक्। यया स्मिन्निमित्तेऽनृतं वदितव्यमित्येषा देवाना संबन्धिनी वाक् तां मन्वादयः श्रुत्वा **वदन्तीं** विशेषेऽनृतप्रशंसा। अन्यैस्तु पूर्वविधिशेषतयाऽयं श्लोको व्याख्यातः। तदेतद्गोरक्षकादि एवनुयोगवाक्येषु ब्राह्मणेन भवितव्यम्। अन्यथा ब्राह्मणेन सत्यं ब्रूहीति यथा ब्राह्मणा ए कथं शूद्रवदनुयोज्या इति तद्विद्वानपि न दृश्यतीति यतो मन्वादय एवंविधा वाचं वदन्ति यथै शूद्रवदाचरणीया इति। ते च धर्माधर्मयो प्रमाणम्। तेन सत्यं वदितव्यम्। तच्च यथ विहितं तच्च स एव धर्मो यत्र वाऽनृतं तत्तानृताभिधानमेव धर्म इति ॥ १०३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तस्माच्च धर्मतोऽधर्मतोऽर्थं जानन्नप्यन्यथावदन् स्वर्गान्नच्यव यतस्तत्रानृतापि वाग्देव्यैवेति वदन्ति ॥ १०३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तदेतत्साक्ष्यमन्यथापि जानन्मनुष्यो धर्मेण दयादिना व्यवहारेष्वन्यथ वदन्स्वर्गलोकान्नभ्रश्यति यस्मात्तेनाभिमतविशेषणान्यथाभिधानात्तदेवसंबन्धिनीवाचंमन्त दयोवदन्ति ॥ १०३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। क्वचिदेतस्य प्रतिप्रसवमाह तद्वदित्यादिद्वाभ्याम्। तत् साक्ष्य विषयभूतंसत्यं जानन्नप्यन्यथानब्रुवन्स्वर्गान्न्यवते यतोऽस्यामपि नावाचं दैवीवदन्येन नुद्धरिष्यामीतिविजिगीषाहेतुत्वात्। धर्मतोदयादिना। अर्थेषु व्यवहारेषु ॥ १०३ ॥

(५) **नन्दनः**। अर्थेषु वानुबंधव्यवस्थापनेषु। अन्यथा जानन्नप्यन्यथा वदन्न धर्तोहेतोर्वदन्स्वर्गान्न्यवते। कुतस्ताधर्मोन्मारिणीवाचंदेवीमन्यावदन्ति यतस्तस्माद्धर्म विरुद्धचेदसत्यमपि साक्षिभिर्वक्तव्यं न धर्मविरुद्धमन्यामपि ॥ १०३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तद्वदित्यनेन साधयति। तस्माच्च धर्मतोऽर्थेषु वणिग्व्यवहारेष्वन्यत धर्मार्थेषु जानन्नप्यन्यथावदन्नरः स्वर्गान्न्यवते ॥ १०३ ॥

(७) **मणिरामः**। कुत्रचिन्मिथ्या साक्ष्येपि दोषाभावमाह। तद्वदनित्यादिना धर्मत:दयादिना अन्यथा वदन्नपिनस्वर्गाच्यवतेतां दयादिनाऽन्यथावाचं। दैवीं देवसंबंधिनीम् ॥ १०३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **तद्वदन्निति**। तदेतत्साक्ष्यमन्यथा जानन्नपि मनुष्यो धर्मेण दयया हेतुभूतयोपाधिरहितो व्यवहारेष्वन्यथा ब्रुवन् न स्वर्गात् लोकात् भ्रश्यति यस्मादे-तन्निमित्तविशेषाणां अनृताभिधानं एतां दैवसम्बन्धिनीं वाचं मन्वादयो वदन्ति। अन्ये तु प्राड्विवाकविषयामिदं व्याचक्षते प्राड्विवाको गोरक्षकादिषु ब्राह्मणेषु सच्छूद्रप्रश्नं कुर्वन्न धर्महानिं प्राप्नोति ॥ १०३ ॥

(९) **भारुचिः**। प्राड्विवाकस्तच्छूद्रानुयोगवचनमन्यथा गोरक्षकादिषु ब्राह्मणेषु वदन् धर्मतोऽर्थेषु व्यवहारेषु ये साक्षिणः तेषु जानन्नपि यथावर्णमनुयोगः नाधर्मेण युज्यते। येन देवीं शास्त्रवतीं वाचं वदन्ति तां स्मृत्वा मन्वादयः विप्राञ्छूद्रवदाचरेदित्यस्यानन्तरविधेः स्तुत्यर्थवादः ॥ १०३ ॥

**शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रतोक्तौभवेद्वधः ।**
**तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धिसत्याद्विशिष्यते ॥ १०४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। तत्र नानृतं वदेदिति यः प्रतिषेधस्तस्याशूद्रादिविषयताऽनेनोच्यते, न पुनरनृतवदनं विधीयते। तथा सति प्रतिषेधेनैकवाक्यता बाध्येत। का पुनरत्र निमित्त-श्रुतिः **तत्रेति**। तस्य वधविशेषणत्वान्न वधः। तस्यासतोनिमित्तत्वानुपपत्तेः। अतश्च कृते वधे पश्चात्तद्विषयमतद्विषयं वाऽनृतं वक्तव्यमित्यर्थं आपतति। तत्त्वनिष्टम्। ननु च **यत्रेति** व्यवहारवस्तु निर्दिश्यते पुनस्तत्रेति तदेव प्रतिनिर्दिश्यते। ततश्च यस्मिन् व्यवहारे पराजिताः सन्तो वधार्हा भवंति तस्य नानुपपन्नो निमित्तभावः। अत्र वदन्ति न चात्र वधार्हेष्वनृतमिष्यते। यतोऽनिष्टं पापीयसो जीवनमिति। यस्त्ववधार्हानवकाशान्न पुरदास्या दिस्खलितादनुहृतदंडताख्यापनाय वा जनैः स्वल्पापराधात् न घातयित्वोपपत्तिराजसत्वात् क्रोधस्य दण्डस्य चाशास्त्रीयत्वादस्थितपरिमाणतया निश्चयाभावो न तस्यापि निमित्तत्वो-पपत्तिः। अतः प्रतिषेधशेषतैव न्याय्या। गौतमीये त्वनृतविध्याशङ्काऽपि नास्ति। "नानृतवदने दोषो जीवनं चेत्तदधीनम्" इत्येवमादिप्रतिषेधे सत्यानृतयोः कामचारप्रसङ्गे सत्यवचनेन निमित्तभावः प्रतिपद्यमानो 'न हिंस्यात्सर्वभूतानीति' प्रतिषेधव्यतिक्रमतया चानृतं प्रतिपद्यत इति युक्तत्वेनेदं कृतम्। न चेदसौ पृष्ट आचष्टे न पुनर्हन्ति, अघ्नंश्च कथंहिंसारोषेणानुषज्यते। अथ सत्यपि स्वातन्त्र्ये तद्वचनेन राज्ञा हन्यमानत्वात्तद्धेतुभावापत्त्या-प्रयोजककर्तृत्वमिति चेत् न। सर्वो हेतुः प्रयोजकः—धनेन कुलं, विद्यया यश इति, भवति विद्या यशसो हेतुर्न प्रयोक्त्री। न चान्य एवायं लौकिकफलोत्पत्तियोग्यता हेतुलक्षणे हेतु-भावः, अपि तु द्रव्यगुणाः। यत्रापि क्रिया श्रूयते 'अग्निना पाक इति' साऽपि स्वरूपेण सिद्ध-रूपाभिधानात्कृदन्तैर्भावस्य। अन्यश्चायं शास्त्रीयः कर्तृव्यापारस्य प्रयोजको हेतुर्न तु तत्प्रयोजकत्वमेवमित्यर्थम्। यदि तावत्प्रेषणाध्येषणे आज्ञाप्रार्थनारूपे प्रयोजकत्वं साधयेते

व्रीहीनातप इत्यादावचेतनेषु णिजुत्पत्तिर्दुर्लभा। ननु च परिहृतमेतद्व्याख्यातृभिः मुख्योपचरितक्रिय इति चेतनावद्वस्तूपचारे 'भिक्षा वासयति' 'कारीषोऽध्यापयतीति'। न ह्यत्र चैतन्यकृत उपकारः अपि तु निश्चिततत्वात्तदन्यस्य प्रोजकस्य। अध्ययनं ह्याचार्यकरणविधिप्रयुक्तं कुर्वाणस्य माणवकस्य शीतादिलक्षणं प्रतिबन्धकमनुवदति। कारीषे प्रयोजकत्वाध्यारोपः। प्रेरकत्वाद्धि प्रयोजकमुच्यते। तच्चाचैतन्यस्य वायुजलादेरग्निकाष्ठादौ सुतरां दृश्यते। तदा विधिप्रयोजकस्तुतिप्रयोक्तृभिः प्रेषणाद्यभावाद्गौणार्थाः शब्दाः स्युः। अथैतस्थमर्थाचरणं प्रयोजकत्वं तच्च प्रयोजकस्य व्यापारानुगुणं प्रेषणादिव्यतिरिक्तक्रियान्तरावरणं संविधानाख्यम्। संविदधान एव हि कारयतीत्युच्यते। यथा बुभुक्षमाणस्य कश्चित्पात्रमाहरत्यन्यो भक्तमुपनयति। कस्यचिद्वधप्रवृत्तस्य कश्चिदायुधमर्पयत्यन्यो वध्यदोषाविष्करणेन मन्युमुपदीपयति। एवंलक्षणः प्रेषित्रादिरूपरहितः सव्यापारः प्रयोज्यफलसिद्धावानुकूल्यं प्रतिपद्यमानस्तत्सामर्थाचरणपक्षे प्रयोजकः। अस्मिन् पक्षे कारीषोपाध्यायौ तुल्यौ प्राप्नुतः। अत्रापि यमन्तरेण क्रियाया अनिवृत्तिर्यस्य च कारकविशेषसंज्ञा न प्रवर्तेत स मुख्यः प्रयोजकः कर्त्ता। अध्यापयितारं चान्तरेण कारीषो न शक्नोत्यध्ययनहेतुभावं प्रतिपत्तुम्। आचार्यस्तु तमन्तरेणापि शक्त एवेति गौणः कारीषः। यत्र च करणादिभावो निश्चितो हेतुमत्प्रत्ययदर्शनात्तत्रापि गौणार्थतैव यथा कश्चित्स्वल्पेनापि प्रयोजनेन दूरं ग्रामं पुनः पुनर्गतवन्तं दृष्ट्वा ब्रवीति 'अश्वो गमयति देवदत्तम्' इति। यत्रतु-नकस्य चिदासत्तिविप्रकर्षावन्तरङ्गबहिरङ्गभावो वा गम्यते तत्र यावन्तस्तदानुकूल्यं प्रतिपद्यन्ते सर्वे ते प्रयोजकाः। ननु च कारकसंज्ञायामन्तरङ्गयोगो नास्तीति को विशेषः कारीषोपाध्याययोः। स्वप्रकियैव सा तत्र भवताम्। न वस्त्वाश्रया। वस्त्वाश्रयौ न विधिप्रतिषेधौ इदमपि तत्र पठ्यते–विवक्षातः कारकाणि भवन्तीति। एवं च सति यत्रकर्तुरेव कर्तृत्वं कश्चिद्विवक्षेत्तत्र कर्तृप्रत्ययविधिप्रतिषेधावपि स्याताम्। यथा पातकपरिगणनायामनु-पठति। "क्रयविक्रयी संस्कर्ता चोपहर्ता चेति"। तस्मादन्वाख्यानसिद्धचर्था तावकी सा व्यवस्था न वस्त्वधिष्ठानमर्थमवस्कन्दति। अत एव व्याख्यातृभिरुक्तं–समर्थाचरणं चेद्धेतुः हेतुमान्प्रसङ्गः। ततश्च योऽपि कस्मैचिद्भोजनं ददाति स चौदरिकतयाऽतिसौहित्येन व्यापद्येत प्राप्तं तत्र दातुर्वधकर्तृत्वमिति। न च तत्प्रयुक्तं भवति। क्रियान्तरेण ह्यसौनिश्चितो भोजनाख्यप्रयोजको न वधो न वेष्र्यादि कथंचिन्निमित्तं भवति। भवतु वा तन्निमित्तम्' प्रयोजकत्वाभावात्तु कर्तृत्वं नास्तीति ब्रूमः। यस्य तु भूमिसुवर्णापहारादिनाऽपराध्येत् स च तदपहारमन्युना कथंचिन्म्रियेत किं तत्रापहर्तुरपहारदोष एवेति वधेऽपि निमित्तिभाव इति चिन्त्यम्।

किमत्र चिन्त्यते? सव्यभिचारावगम्यत्वाद्धेतुहेतुमद्भावस्य न खड्गप्रहारभोजनविच्छेदादेरिव भूम्यादिहरणस्य नियतनिमित्तत्वोपपत्तिः। कोऽयं नियमोऽभिप्रेतः? यदि ह वा केचिन्म्रियन्ते केचिन्नेत्यनियतो नियमो भवति। पुरुषस्वभावभेदात् तदेवौषधं श्लेष्मिकाय हितं विपरीतमन्यस्येति। सर्वेषामेव च भावनादेशकालस्वभावभेदसहकारिसापेक्षः शक्त्यन्तरप्रादुर्भावः। तदेव लक्षणं पुरुषवित्तसंततिसापेक्षपिपासाहेतुप्राण्यन्तरसापेक्षं

तद्विच्छेदहेतुरिति। एवमत्यन्तामर्षिणो । किं तत्र शक्यो निमित्तभावोऽपह्नोतुम् ? पेशलमानसस्य तूपेक्षैव तत्र। ये पुनर्मन्युपरीता अनशनश्वभ्रपतनविषभक्षणादिनोऽपराद्धारमुद्दिश्य म्रियेरंस्तत्राप्येष एव न्यायः। ननु चान्यस्यैव प्रसिद्धहेतुभावस्य विषभक्षणनिमित्तस्य तत्र दर्शनान्न भूम्यादिहरणस्यापराधो हन्तृत्वमाप्नुयात्। तेनोपजनितमन्युर्मरणहेतौ प्रवर्तत इति पारंपर्यतौ निमित्तत्वमिति चेत्। एवं सति सभ्योपदेशेनापि केचिदुद्विजमाना आत्मानं व्यापादयन्ति' ततश्च तत्रोपदेष्टारो हन्तारः स्युः। तथा मत्सरिणः परद्रव्येष्वीर्ष्यया शुष्यन्ता धनिषु दोषमाददीरन्। तथाऽन्ये मूढमनसः प्रियान्पुत्रान्स्वामिनश्चानुम्रियन्ते, तत्र प्रियादीनां हन्तृतापत्तिः। अपरे च रूपवत्स्त्रीदर्शनेन परिफल्गुमनसोऽसूयन्ते भज्यमानहृदयाश्च विवेकशून्यात्मानस्तत्र शीलवत्यः स्त्रियो दुष्येयुः। तदेवेदमापतितं मृतस्य ब्रह्महत्येति। सत्यमेवं यदि विधिप्रतिषेधविशेषो न स्यात्। विहितो हितोपदेशः प्रतिषिद्धं स्वहरणादि। तथा चाहुः—"उपकारप्रवृत्तानां कथंचिच्चेद्विपर्ययः। न तत्र दोषः केषांचिदभेषजामौषधी यथा।" अत्र न केवलं वैद्यादेरातुरोपकारार्थिनः प्रयुक्तौषधस्य कथंचिद्विपरीततयोपपत्तावदोषः—किंतर्ह्यन्यस्यापि गवादेर्महति पङ्के निमग्नस्योद्धर्तृभुजाकर्षणाय यथाश्रमेण यदि व्यापत्तिर्न तत्रोद्धर्त्ता दुष्येदिति कथितं भवति। एवं सर्वत्र। योऽपि कस्मिंश्चित्स्वव्यापारानुष्ठानवति धनरूपातिशयसंपद्वति दृश्यमाने दन्दह्यते न तं प्रति कस्यचिच्छास्त्रार्थातिक्रमः। निश्चितो हि निमित्तभावः प्रतिषेधस्य विषयो भवितुमर्हति। न च प्राण्यन्तराश्रयिषु चैतसिकेषु धर्मेषु प्रतिक्षणमन्यथाभवत्सु स्वभावविशेषावसायः। न हि शक्यमवसादितुमयमस्या रूपसंपदा व्यापद्यत इति। न च निश्चिते प्रतिषेधविषये संभवत्यनिश्चितविषयता न्याय्या। यत्र तर्हि कथंचिद्वर्णविपर्ययशरीरशोषणादिना कुतार्किकपरीता स्यादपि निमित्तावगतिस्तत्र किं भ्रंशयितुं शीलं संयुज्यतां कामिना, भवतु वा पुरुषघातिनीति। नैतदेवम्। न हीदृशो भवन्त्यपि निमित्तता प्रतिषेधस्य विषयः, विध्यन्तरविरोधात्। अस्ति ह्यत्र व्यभिचारप्रतिषेधविधिः न वाऽपि विध्यन्तरेणानवष्टब्धे विषये कृतावकाशा विषयविरोधिवध्यन्त विषयमास्कंदितुमर्हन्ति। येऽतिमन्यन्ते रागलक्षणां प्रवृत्तिं शीलसंरक्षणोपदेशो निषेधति न शास्त्रलक्षणां तेन महानुभावतया मास्य तपस्विनो जीवितमुच्छेत्सीदिति प्राणोज्जिहीर्षया मुमूर्षुणा संप्रयुज्यते नासौ व्यभिचारप्रतिषेधमतिक्रामेत्। यत्तु विध्यन्तरविषये न विध्यन्तरं प्रवर्तत इति नैवायं विध्यन्तरस्य विषयो रागलक्षणत्वात्। ननु च प्रवृत्तावपि नैव शास्त्रमस्ति नियोगविधाविव व्यभिचारानुज्ञानस्मृत्यभावात्। अथाप्रवृत्तौ कामयेत मारणमिति प्रतिषेधभयात्प्रवर्तते सोऽपि प्रतिषेधो रागलक्षणामेव हिंसां प्रतिषेधयति। न चासौ रागतो न प्रवर्ततेऽपितु प्रतिषेधभयात्। या तु परोपकारतः प्रवृत्तिः साऽपि प्रतिषेधविषयपरिहारेण। योऽपि किंचिद्याचेदयमहमात्मानं हन्मीति हन्यान्न प्रयच्छतो घातत व्यवहारोच्छेदप्रसङ्गात् ॥ १०४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यत्रान्यथा वाच्यंतदाह **शूद्रेति**। ऋतोक्तौ। ब्राह्मणस्य। वधाभावेप्युग्रदण्डादधार्मिकाद्राज्ञोवधः संभवत्येव तत्र च प्रमादस्खलितादिकृतदोषविषयम् बुद्धिपूर्वसाहसादौतु दृष्टे वधसंभवेपि सत्यंवाच्यम्। तथा च **गौतमः** नानृतवचने दोषो-

जीवनंचेत्तदधीनं न तु पापीयसोजीवनमिति ।।' एवं चात्र विषये राज्ञा साक्षिव्यतिरिक्त-प्रमाणेनैव तत्त्वमन्वेष्यम् ।। १०४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। क्वपुनस्तदसत्यं वक्तव्यमित्यतआह **शूद्रेति**। यस्मिन्व्यवहारे सत्याभिधाने सति शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणानांवधः संपद्यते तत्रासत्यंवक्तव्ययंस्माद्यस्मिन्विषयेऽनृतप्राणरक्षणेन सत्याद्विशिष्यते एतच्च प्रमादस्खलिता धर्मविषयत्वे नत्व त्यन्ताधार्मिकस धिकारस्तेनादिविषये। तथा गौतमः। 'नानृतवदने दोषोयज्जीवनंचेत्त-दधीनं न तु पापीयसोजीवनमिति।' न च। न जातुब्राह्मणंहन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितमिति मनुनैव वक्ष्यमाणत्वात् न ब्राह्मणवधप्रसक्तिरिति वाच्यम् उग्रदण्डत्वाद्राज्ञः कथंचित्सं-भवात्। अत्र वचने शूद्रादिक्रमेणाभिधानंवधस्यामङ्गलत्वात् ।। १०४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। स वाक्कुत्रवाच्येत्यत आह यत्र ऋतोक्तौ सत्योक्तौ **शूद्रविट्** क्षत्रियाणांवधो भवेत्तत्र वक्तव्यमनृतं। तत्र हेतुः तद्धीति। **तदनृतं**। सत्येनधर्ममात्रमत्रतु विप्रादिरक्षा दृष्टार्थाऽहिंसाऽदृष्टार्थेति तद्वयमतोविशेष इति भावः। **शूद्रेति**क्रमवैपरीत्यं कूष्माण्डैरित्यापि प्रायश्चित्तचतुष्टयस्य सूचनार्थं अन्यथा तदसंभवात् ।। १०४ ।।

(५) **नन्दनः**। अथ साक्षिणांक्वचित्सत्यवचनेऽपवादमाह **शूद्रविडिति**। **उक्ते** ऋत इति पदच्छेदः सन्धिकार्यमार्षम्। उक्त्वार्त्तमिति वा पाठः। **तत्र** समानकर्तृत्वमार्षम् ।। १०४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। यत्रसाक्ष्ये ऋतोक्तौ प्राणिनां मनुष्याणांवधो भवेत्। तत्र योगीश्वरः प्राणिनां हि वधोयत्र तत्र साक्ष्यनृतंवदेत् ।। १०४ ।।

(७) **मणिरामः**। तत् मिथ्या ।। १०४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। क्व पुनस्तदनृतं वक्तव्यमित्यत आह **शूद्रविटक्षत्रविप्राणां यत्र चैव भवेद्वध इति**। यत्र तत्प्राणसंरक्षणेनेदं चात्यन्तधार्मिकप्रमादस्खलितपुरुषविषयं न त्वत्यन्ताधार्मिकविषयं, तथा च गोतमो नानृतवचने दोषो जीवनं चेत्तदधीनं न तु पायीयसो जीवनमित्यादिविषये प्रमाणान्तरेण राजा निर्णयं कुर्यात् न साक्षिभिः न प्रमाणान्तरान्न चैवानुमानादिनाऽत्यन्तं साक्षिपरीक्षां कुर्यात्। न जातु ब्राह्मणं हन्यादिति वचनात् कथं ब्राह्मणस्य वध आपतेदित्याशङ्कनीयं कृतदण्डत्वाद्राज्ञः कथं संभवाद् व्यवहारोऽन्यत्रापि चैवंविधे विषयेऽनृतस्येष्यमाणत्वात् वधस्यामङ्गलत्वाच्छूद्रादिक्रमेण निर्देशः ।। १०४ ।।

(९) **भारुचिः**। सत्यवचनापवादोऽयम्। कारणतः आदरार्थं वेति। शूद्रादीनां प्रातिलोम्येन ग्रहणमनृताभ्यनुज्ञानार्थम्। अ.....निवृत्त्यर्थात्तु युक्तारम्भमिदम्। तैः एवं तर्हि सत्यप्रतिषेध एवात्र वक्तव्यम्। नानृताभ्यनुज्ञेति। न त्वेवमर्यानृताभ्यनुज्ञाकृत् भवति। न च .....वक्तव्यतास्येति। ननु च पुरुषार्थं कारित्वात् शास्त्रस्य प्रत्यवायात् उपदेशो न न्याय्य इति पुरुषार्थकारित्वादेवास्यायमुपदेशो युक्तः। भू.....पुरुषानुग्रह-धर्मोपेक्षया च। तथा च सति धार्मिकपुरुषविषयमिदमनृताभ्यनुज्ञानमुपदेशसामर्थ्याद्विज्ञायते। तथा च स्मृत्यन्तरम्—नानृतवचने जीवे दोषो जीवनंचेत्तदधीनं न तु पापीयसो जीवनमिति। ।। १०४ ।।

**वाग्दैवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्तेसरस्वतीम् ।**
**अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥ १०५ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । वाक् चासौ देवता च सा वाग्देवता । तदर्थं च चरवो **वाग्दैवत्याः** । तण्डुला नातिपक्वाश्चरवः । तै **र्यजेरन्निति**बहुवचननिर्देशात् **चरुभिरिति** बहुवचनम् । पुनरेकैकशो बहवश्चरवो नापि संहतानां व्रात्यस्तोमवद्यागो 'देवश्चेद्वर्षेद्वहवो ब्राह्मणा यजेरन्निति तद्वद्बहुवचनम्, नतु कपिंजलैश्च त्रिभिर्यजेरन्नितिवत् । तदेतद्ब्राह्मणाद्यनुग्रहार्थमनृतमुक्तं भवति । **अनृतमेवैनः** पापमसत्याभिधानलक्षणा क्रिया । यथा धर्मक्रियावत् एवं समानाधिकरणे षष्ठी । येषां तु क्रियाजन्यौ धर्माधर्मौन क्रियैव–तन्मतेऽनृतस्य यदेन इति वैय्यधिकरण्येऽनृतनिमित्तत्त्वादेनोऽनृतम्, उपचारतः समानाधिकरणे एव । तस्य **निष्कृतिः** शोधनं पावनं प्रायश्चित्तमिति यावत् **परा** प्रकृष्टा । ननु च कुतोऽत्र पापम्–यावताऽस्मिन्निमित्तेनानृतवचने दोष इत्युक्तम् । केचिदाहुः "निवृत्तिस्तु महाफलेति" । अस्माच्छास्त्रात्तु यावज्जीवमनृतं मया न वक्तव्यमिति येन संकल्पितं तस्य मिथ्यासंकल्पदोषो मा भूदिति प्रायश्चित्तमुच्यते । गेहदाहवधप्रतिषेधेऽपि नैमित्तिकं विधानम् । एनसो निष्कृतिमित्यर्थवादः । कथं तर्हि **वाग्दैवत्यैः सरस्वतीं यजेरन्** । यदि वाग्देवता सरस्वती कथमिज्यते । अथ वाक्सरस्वत्योरेकत्वेनैवं देवताभावे शब्दावगम्यरूपत्वाद्देवताया भिन्नौ चैतौ । वाक्सरस्वतीशब्दौ । यथाऽग्नये जुहोतीति चोदितेन ज्वलनाय कृशानवे वा स्वाहेति हूयते, वायवे निरूप्य जुहुयाद्वायुर्वै प्राण इत्युक्तेऽपि न प्राणायेति हूयते । सत्यम् । वागेव देवता । सामानाधिकरण्याद्देवतार्थे तद्धितः । न सरस्वतीमिति द्वितीयानिर्देश्या देवता । कर्मणि हि द्वितीया । संप्रदानंच देवता न कर्म । कथं तर्हि सरस्वतीपदान्वयः । अर्थवादोऽयम् । अग्नये जुहोत्यग्निर्वै सर्वा देवता इति । वागेव सरस्वती–तयेष्टया साऽपीष्टा भवति । यागेन देवताऽवगम्यते । कथम् । अग्निर्यष्टव्यः प्रजापतिर्यष्टव्यस्तथाग्निं यजति यदग्निं यजतीत्यादि केचिदाहुः । देवताः स्वतस्तत्र तत्र पूज्यते । दैवतपूजावचनोऽत्र यजिः । पूजा च पूज्यमानकर्मिका । तत्र युक्ता द्वितीया । तथा च देवता पूजनीयेत्यादि स्मर्यते । एतच्च न युक्तम् । अस्मिन् हि पक्षे देवतात्वमन्यतोमृग्यम् । तत्र यागसंप्रदानं देवतेति स्मरणविरोधः । एषा च स्मृतिर्बलीयसी । निरपेक्षत्वात् । पूर्वा देवता उद्देश्या ध्येया च । यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्तां मनसा ध्यायेदिति तत्क्रियाकर्मत्वात्कर्मण्येषा द्वितीया ॥ १०५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । संभूयानेकैः साक्षिभिर्मिथ्याभिधानेपि स्वस्वाग्निषु प्रत्येकमेकैकएवचरुः पृथक्पृथङ्निर्वाप्यः । यदुक्तंयाज्ञवल्क्येन ॥ तत्पावनाय निर्वाप्यश्चरुः सारस्वत इति ॥ अत्रच सरस्वत्येव देवता वाक्पदं तदुपलक्षकम् ॥ १०५ ॥

(३) **कुल्लूकः** । ते साक्षिणोऽनृताभिधायिनोवाग्देवताकैश्चरुभिः सरस्वतींयजेरन् तस्यानृताभिधानजनितपापस्य प्रकृष्टांशुद्धिकुर्वाणाः । साक्षिबहुत्वापेक्षंचेदम् । नत्वेकस्यैव साक्षिणः कपिञ्जलन्यायेनचरुत्रयम् । यद्यपि वाग्देवताके चरौ वाक्शब्देनैव देवतात्वंन

सरस्वतीशब्देन विधिशब्दस्य मन्त्रत्वे भावः स्यादिति न्यायात्तथापि वाग्वैसरस्वतीति श्रुतेर्वाक्सरस्वत्योरेकार्थत्वात्सरस्वतीमित्युपसंहारः। अत्र प्रकरणे चेदंप्रायश्चित्ताभिधानं लाघवार्थम्। तत्र क्रियमाणे शूद्रविट्क्षत्रियब्राह्मणवधविषयानृतवादिनइत्यपि वक्तव्यंस्यात् ॥ १०५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अनृतवदनस्याकर्तव्यत्वंद्रढयन्नेवंविधेपि प्रायश्चित्तमाह वाग्वि तिद्वाभ्याम्। चतुर्भिश्चरुभिः चत्वारः शूद्रादयः ते साक्षिणः अनृतस्यैनसः। अनृतजन्यस्य पापस्य निष्कृतिं शुद्धिं कुर्वाणाः सरस्वतींयजेरन्नित्यन्वयः ॥ १०५ ॥

(५) **नन्दनः**। एवमप्यसत्यवचने प्रायश्चित्तंश्लोकद्वयेनाह वाग्दैवत्यैश्चेति। ध र्महेतोरनृतवादिनः साक्षिणोनिष्कृतिंप्रायश्चित्तम् ॥ १०५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। वाग्दैवत्यैः सारस्वतैर्मन्त्रैः। एनसः पापस्य ॥ १०५ ॥

(७) **मणिरामः**। अतश्च महाप्रत्यवायपरिहरार्थं यो...आश्रितो नृपवत्तेनव्यति क्रमः तस्य प्रायश्चित्तार्थमिदमारभ्यते–सरस्वतीं यजेरन्नहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामीत्यनेन ष्टर्चेन सूक्तेन त्रिरभ्यासश्चरोः। अनाश्रितबहुत्वविशेषाच्चेतनायाः यथा वसन्ताय कपिञ्ज लानालभेतेति ॥ १०५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **वाग्दैवतैरिति**। वाग्वै सरस्वतीति श्रुतेर्वाक् सरस्वत्योरैक्य द्वाग्देवताकैश्चरुभिः सरस्वतीं ते साक्षिणोऽनृताभिधायिनस्तस्यासत्यस्य यत्पापं तस्य प्रकृष्ट संसिद्धिकुर्वाणा यजेरन्। अत्रैके साक्षिणः अपि कपिञ्जलवच्चरुत्रयं आहुस्तदसद्देवश्चेद्वर्षे वहवो ब्राह्मणा यजेरन्निति। इत्येतत्प्रायश्चित्तं कर्तृबहुत्वापेक्षया चरुभिरिति बहुवच व्रात्यस्तोमवदेषां संपाद्य यागाश्चोत्पादिताः। अत्र प्रायश्चित्तस्यप्रकरणोत्कर्षो लाघवा तत्र हि क्रियमाणे विट्क्षत्रियविषयानृताभिधाने वृद्ध एतत्कर्तव्यं स्यात् ॥ १०५ ॥

(९) **भारुचिः**। दयादिनामिथ्यासाक्ष्ये प्रायश्चित्तमाहावाग्देवेति। वाग्देवत त्रिकैश्चरुभिः सरवस्तीं यजेदित्यर्थः ॥ १०५ ॥

**कूष्माण्डैर्वाऽपि जुहुयाद्घृतमग्नौ यथाविधि।**
**उदित्यृचा वा वारुण्या त्र्यृचेनाब्दैवतेन वा ॥ १०६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **कूष्माण्डा** नाम मन्त्रा यजुर्वेदे पठ्यन्ते। **तैर्घृतमग्नौ जुहुयात्** जुहोतिश्च देवतामुद्दिश्य द्रव्यस्य त्यागः। आधारविशेषणे तत्रेहाग्नावित्यधिकरणनिर्देः न्मांत्रवर्णिकी देवता वेदितव्या। येषु च मन्त्रेषु देवताविशेषलिङ्गं न दृश्यते–यथा 'देवकृ स्यैनसोवयजनासि' इत्यादिषु–तत्र प्रजातिर्देवतेति याज्ञिकाः। अथवा यस्यान्यत्र देवत दृष्टं सह संबन्धियावत्। तथा च निरुक्तकाराः 'अपि वा सा कामदेवता स्यादिति'। यद्य याऽन्यस्य हविषो देवता साऽन्यस्य न कदाचित् तथाऽपि यजति श्रूयते द्रव्यं मन्त्राश्च तेऽ सत्यां देवतायां जुहोतीति रूपं तदुत्तरेण जुहुयादिति व्याख्येयम्। तच्चायुक्तम्। तथा धारयेदिति वक्तव्यं स्यात्। वयं तु ब्रूमो 'देवकृतस्यैनसोवयजनमसि' इत्यत्र कर्मैवावयव

मेवावयाजनिमत्युच्यते। अतस्तद्देवता। सर्वत्र च मन्त्राभिधेयं वस्त्वस्त्विति न देवतायां मन्त्रवर्णाभावः। **उदित्यृचा वा वारुण्येति।** उदुत्तमं वरुणपाशमस्मत् इति (ऋग्वेद १।२४। २५) एषा ऋक् वरुणदेवता उदिति प्रतीकेन लक्ष्यते। वारुणोग्रहणं चान्यस्या 'उत्वा मदं स्तोमा' '(ऋग्वेद ऽ।६४।१) इत्युच्छब्दप्रतीकाया निवृत्त्यर्थम्। **त्र्यृचेनाब्दैवतेन चेति।** देवतैवदैवतमें' आपो दैवतम् अस्य त्र्यृचस्य तेन–'आपो हिष्ठा' इत्यादिना (ऋग्वेद १०।९।१) अतश्चैकैकया एकैकाहुतिः प्रत्येकशब्दवत्' समस्तेन च समुदायाहुतिरेकेति। घृतमग्नाविति सर्वत्रानुषङ्गः। **यथाविधि।** यादृशः शिष्टसमाचार इत्यर्थः। तेन च हविषः सत्वादप्राप्ता-वाशब्दाद्वैकल्पिकाः सर्व एव ।। १०६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** उदित्यृचा उदुत्तमंवरुणेत्यृचा जुहुयात् घृतमेव पापोत्कर्षा-पेक्षया सहस्रादप्यधिकं होतव्यम्। अल्पेतु सहस्रम्। तृचेनापोहिष्ठीयेन। गुणजात्याद्यु-त्कर्षापेक्षया च प्रायश्चित्ततचतुष्कव्यवस्था। अत्रचाग्नाविति वचनात्पूर्वोक्तोवाग्दैवत्यश्च रुर्वैतानिकेष्वेवेति गम्यते ।। १०६ ।।

(३) **कुल्लूकः।** कूष्माण्डमंत्रायजुर्वेदिकायद्देवादेवहेडनमित्येवमादयः तैर्मंत्रदेवता-यैघृतमग्नौ जुहुयात्। यथाविधि परिस्तरणादित्वात्स्वधर्मेण स्वगृह्योक्तेन। उदुत्तमं-वरुणपाशमित्येतया वरुणदेवताकयाआपोहिष्ठाइति तृचेन वाद्वैवताकेन जुहुयात्। घृतमग्ना-विति सर्वत्रानुषङ्गः ।। १०६ ।।

(४) **राघवानन्दः।** कूष्माण्डमन्त्रायाजुर्वेदिकाः। यद्देवादेवहेडनं देवासश्च क्रमावय आदित्यास्तस्मान्मामुञ्चतर्तस्यर्तेनमामित्स्वाहा आदित्येभ्यइदं नममेत्युद्देश त्यागेन मन्त्रान्तः पाती। एवमुत्तरत्रापिज्ञेयम्। प्रयोगश्च महार्णवोक्तः। यथाविधि पर्युक्षणादिहोमधर्मेण स्वगृह्योक्तेन। तदित्यृचा गायत्र्या तदादिकेत्युक्तत्वात्। उदुत्तमंवरुणपाशमित्येतया वारुण्या। अब्दैवतेन आपोहिष्ठेत्यनेन। अत्र यदि शूद्रः साक्ष्यंवक्ति सोपि ब्राह्मणद्वारा होमंकारयेत्। तदुक्तं याज्ञवल्क्येन। वर्णिनांहिवधोयत्रतत्र साक्ष्यनृतंवदेत्। तत्पावनाय निर्वाप्यश्चरुःसारस्वतोद्विजैरिति। अत्र द्विजैरिति निर्देशाद्गुणमुख्यसाधारणं अन्यथा शूद्रो-मिथ्यावदन्नेवंविषये न प्रत्यवेयात्। द्विजैरिति स्वरसात्तान्प्रत्येव नियमः शूद्रस्यतु दानादि ।। १०६ ।।

(५) **नन्दनः।** उदित्यृचाउदुत्तमंवरुणेत्यृचेन। आपोहिष्ठेत्यादिना द्विजानामिदं प्रायश्चित्तं। शूद्रस्य तु स्मृत्यन्तरे प्रोक्तं शूद्रस्य द्वादशकस्य ग्रासदानम् ।। १०६ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** कूष्माण्डैः मन्त्रैः यद्देवादेवहेळनमित्यादिमन्त्रैः। वारुण्याऋचा तृचेनाब्दैवतेनवा आपोहिष्ठेति तिसृभिः ।। १०६ ।।

(७) **मणिरामः।** प्रायश्चित्तोत्तरमाह। कूष्मांडैरिति। कूष्मांडैः यद्देवादेवहेलनमि त्यादियजुर्वेदोक्तैर्मंत्रैः। उदित्ऋचावारुणा उदुत्तमंवरुणपाशमित्येतया। अद्वैतमतेनऋचेन्तः आपोहिष्ठा इत्यादिना घृतमग्नाविति सर्वत्रानुषंगः ।। १०६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **कूष्माण्डैरिति**। यद्देवा देवहेडनमित्येभिर्मन्त्रदेवताकैर्घृतमग्नौ परिस्तरणादिहोमविधिना जुहुयात्। उदुत्तमं वरुणदेवताकया ऋचा आपो हिष्ठेत्यनेनाब्देवताकेन जुहुयात् ॥ १०६ ॥

(९) **भारुचिः**। अग्निग्रहणं जुहोति सिद्धमप्यग्निविशेषार्थं विज्ञेयम् इदं च पूर्वपूर्वप्रायश्चित्तवैकल्पिकम् ॥ १०६ ॥

**त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः।**
**तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं दशबंन्धं च सर्वतः ॥ १०७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पञ्चदशाहोरात्राणि पक्षः। त्रयाणां पक्षाणां समाहारः **त्रिपक्षम्**। 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः' इति (वार्षिक २।४।१७) स्त्रीत्वे प्राप्ते पात्रादिदर्शनात्प्रतिषेधः। यद्येव त्रिपक्षीति न प्राप्नोति। छान्दसस्तत्र लिङ्गव्यत्ययः। ल्यब्लोपे कर्मणि पञ्चमी। त्रीन्पक्षान्यावदतीत्य यः साक्ष्यं न ददाति। **अगदोऽपीडितशरीरस्तदृणं प्राप्नुयादित्यर्थः**। **दशबन्धं** च। दशमं च भागं दण्डनीयस्तस्मादृणात्। **ऋणादिषु** इत्यादिग्रहणेन सर्वव्यवहारोपक्रमः। द्वितीयमृणग्रहणमुपलक्षणार्थम्। यस्मिन्व्यवहारे साक्ष्यमियन्तं कालं न भवति पराजीयमानस्य साक्षिणो बोढारइत्युक्तं भवति। **गदो** रोगः तत्समानप्रत्युत्थानहेतूपलक्षणार्थम्। तेनात्र कुटुम्बोपद्रवधनिकोपरोधाद्यपि परीक्ष्यम्। **बन्धशब्दः** सङ्ख्यादिपरो दण्डविषये दशमांशवचनः। **नरग्रहणं सर्वतोग्रहणं** च श्लोकपूरणार्थम्। अन्ये त्वाहुस्तदृणं **प्राप्नुयादित्यस्यायमर्थः**—ऋणापहरणलक्षणेन पापेन युज्येत। राज्ञे वा जीयमानस्य यो दण्डस्ततो दशमंशं दद्यादिति दण्डितः पुनः दंड्यते ॥ १०७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। त्रिपक्षात् त्रिपक्षपर्यन्तं साक्ष्यमवदन्धनिकाय तद्धनंदद्यात्। तथा दशबन्धं तद्धनदशमभागं राज्ञेदण्डम्। बध्यत इति बन्धः दशानां भागानां संबन्धीबन्धः भागस्तदेशोदशबन्धः। सर्वतः सर्वस्माद्विवादविषयधनात्। इदं च स्मरणार्थं त्रिपक्षदानम्। यदितु व्याध्याद्यभिभवात्तावतापि न स्मर्तुयोग्यस्तदा न दोषइत्येतदर्थमगद इति ॥ १०७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अव्याधितः साक्षी ऋणादानादिव्यवहारे त्रिपक्षपर्यंतंयदि साक्ष्यंन वदेत्तदा तद्विवादास्पदं सर्वमृणमुत्तमर्णस्य दद्यात्तस्य च सर्वस्य ऋणस्यदशमभागंराज्ञो दण्डंदद्यात् ॥ १०७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। साक्ष्यदानावधिंकुर्वन् तदुत्तरे दण्डमाह त्रिपक्षादिति। तथा भूत्वायदि त्रिपक्षपर्यन्तं साक्ष्यंन ब्रूयात् तस्मात्साक्षिणः सर्वमृणंप्राप्नुयात् प्रापयेदुत्तमर्णम्। दशबन्धं दशमंभागं आत्मानंप्रत्यपि नृपः। सर्वतः सर्वेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यः ॥ १०७ ॥

(५) **नन्दनः**। प्राप्नुयात् दण्डत्वेन राज्ञे देयात्। न केवलमेतावदेव किन्तु सर्वतः सर्वद्रव्येषु विवादविषयादन्यत्र द्रव्यान्तरेष्वपि दशबन्धंदशभागं दण्डंप्राप्नुयादित्यर्थः ॥ १०७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। साक्षी नरः ऋणादिषु साक्ष्यंजानन् ब्रुवन् न वदति तदा राज्ञा धनिनेसर्वं सवृद्धिकमृणं दाप्यः। च पुनः दशबन्धं सर्वतः सर्वस्माद्विवादविषयाद्धनाद्दशमं-भागंच दाप्यः ॥ १०७ ॥

(७) **मणिरामः**। अगदः नरः अरोगः साक्षी। तदृणं विवादास्पदंसर्वं ऋणं अधमर्णः उत्तमर्णायदद्यात्। दशवधं च सर्वतः सर्वद्रव्यस्य दशमांशं राज्ञेदंडं च दद्यात्। रोगी चतत्साक्षीतदारोगान्मुक्तो भवति तदा साक्ष्यं दातव्यंतत्पर्यंतं विवादमेवेति विवाद-मेवतिष्ठतीत्यर्थः ॥ १०७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **त्रिपक्षानिति**। अव्याधितः साक्षी ऋणादानादिव्यवहारेषु पक्षत्रयं यावत् यदि साक्ष्यं न दद्यात् तदा तद्विवादास्पदीभूतसर्वंऋणमप्युत्तमर्णस्य दद्यात्। तस्माच्च ऋणात्सर्वस्माद् दशमं भागं राज्ञो दण्डं दद्यात् ॥ १०७ ॥

(९) **भारुचिः**। उत्तरे च यावतो द्रव्यस्याभियोगः तद्दशभागं साक्षिणं दापयेत् येना-रोगः सन् त्रिपक्षादपि साक्षी नान्यतरं ब्रवीति। दण्डयित्वापि तं साक्षिणंव्यवहारदर्शन मनुतिष्ठेत्। एवमपरिसमाप्तत्वादस्येति। ऋणव्यवहारादन्यत्र साक्षिकार्यद्रव्यापेक्षया दण्डयितव्यः ॥ १०७ ॥

**यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः।**
**रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः ॥ १०८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सप्ताहादिति** पञ्चमीदर्शनादर्वागित्यध्याह्रियते। सप्तानां दिवसानामन्यतमस्मिन्नहनि यस्य साक्षिणा रोगादि दृश्यते स मृषावादी दैवेन विभावितः पूर्वोक्तेन विधिना दापयितव्यः। **रोगोऽत्यन्तपीडाकरः, अग्निर्गोवाहनदहनः, पुत्रदारादि-प्रत्यासन्नज्ञातिमरणं**, तस्य कूटसाक्षित्वे लिङ्गम् ॥ १०८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उत्कटदिव्ये फलावधिरयम्। क्षुद्रेषु त्ववाक्चतुर्दशादित्यादि स्मृत्यन्तरोक्तः। **एतच्च** तत्प्रागनुपजातनिमित्तकृतंग्राह्यम्। अग्निर्गृहादिदाहः ॥ १०८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्य साक्षिणउक्तसाक्ष्यस्य सप्ताहमध्ये व्याध्यग्निदाहसन्निहित-पुत्रादिज्ञातिमरणानामन्यतमंभवति दैवसूचितमिथ्याभिदोषत्वादृणमुत्तमर्णस्य दण्डंच राज्ञा दाप्यः ॥ १०८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तसाक्षिणांदृष्टरोगादिलिङ्गेन वैतथ्ये निश्चिते दण्ड्यतामाह यस्येति। ससाक्षी उत्तमर्णस्यऋणंदशमं दशमभागंदण्डरूपंराज्ञादाप्यइति ॥ १०८ ॥

(५) **नन्दनः**। कूटसाक्षिपरिज्ञानोपायमाह यस्यदृश्येतेति। अग्निः गृहादिष्वग्नि-दाहः। रोगादिर्यस्य सप्ताहान्तर्दृश्यते सऋणंदाप्यः ॥ १०८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। उक्तवाक्यस्य साक्षिणः रोगः अग्निः ज्ञातिमरणंवादृश्यते तदा राज्ञा धनिने ऋणं धनं दाप्यः। चपुनः राज्ञा दमंचदाप्यः ॥ १०८ ॥

(७) **मणिरामः**। यस्यसाक्षिणः उक्तवाक्यस्य साक्ष्यस्य। सप्ताहात् सप्ताहमध्ये रोगादिदृश्यते। मिथ्यावादे दोषात्। उत्तमर्णस्येदं ऋणंदाप्यः। दमं दंडं च ॥ १०८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यस्येति**। यस्य साक्षिण उक्तसाक्ष्यस्य सप्ताहस्य मध्यान्निमित्तान्तरं विनापि व्याध्यग्निबन्धुदाहमरणानामन्यतममुत्पद्यते सदैव प्रतिपादितमिथ्याभावात्तादृश दण्डं दाप्यः ऋणञ्च ॥ १०८॥

(९) **भारुचिः**। अर्वाक् सप्ताहात् साक्षिकुटुम्बरोगादिदर्शनेन मिथ्यावचनः साक्षादेव प्रतिपादितो दण्डयितव्यः। यावन्तं तदनृते दापितोवा दण्डितश्च ऋणव्यवहारार्थं त्वन्यत्र ॥ १०८॥

**असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः।**
**अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनापि लम्भयेत् ॥ १०९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अविद्यमानाः साक्षिणो येष्वर्थेषु व्यवहारेषु तेऽ**साक्षिकाः**। तेषु सत्यमजानानो राजा**तत्त्वतो** लौकिकेनानुमानेनापीत्यर्थः। तत्र **शपथेनापि** वक्ष्यमाणेन दैवेनानुमानेन **लम्भयेत्** जानीयात्। लभिः प्राप्तिवचनोऽपि सामर्थ्याज्जानात्यर्थः। न ह्यन्यः सत्यस्य 'लाभः'। 'न विन्दन्' इति पाठेऽप्येवमेव व्याख्येयम्। 'असाक्षिकेषु शपथेन लम्भयेत्' इत्येतावद्विध्युद्देशवाक्यावासनात् श्लोकपूरणार्थं**मिथः**—परस्परम् ॥ १०९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शपथेनात्मशिरःस्पर्शादिनापि तत्त्वं लम्भयेत् प्रापयेत् वादिनम् ॥ १०९॥

(३) **कुल्लूकः**। अविद्यमानसाक्षिकेषु व्यवहारेषु परस्परंविवदमानयोस्तत्त्वत-श्छलादिव्यतिरेकेण सत्यमलभमानः प्राङ्विवाकोवक्ष्यमाणेन शपथेन सत्यमुन्नयेत् ॥ १०९॥

(४) **राघवानन्दः**। असाक्षिकेकथं निश्चयस्तत्राह असाक्षिकेत्विति। अविन्दन्सत्या-सत्यतामलभमानः शपथेनापि लम्भयेदुत्तरयेत् ॥ १०९॥

(५) **नन्दनः**। शपथविमुखः कृतशपथश्च रोगाद्यभिभूतौ पराजिताविति। शपथेनापि विप्रतिपन्नार्थनिर्णयोपायः। शपथोनामयदीदंमयोक्तमेतदन्यथा चेत्पातकीस्यामित्यादि-वचनंयदुक्तमृषिणा अद्यापुनीयदियातुधान 'इति' ॥ १०९॥

(६) **रामचन्द्रः**। सत्यं सत्त्वतः अविदन् अजानन् राजा शपथेन लम्भयेत् प्रापयेत् ॥ १०९॥

(७) **मणिरामः**। साक्ष्यभावेविवादनिर्णयप्रकारमाह। असाक्षिकेष्विति ॥ १०९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **असाक्षिकेष्विति**। अविद्यमानसाक्षिके परस्परं विवदमानयोः वादिनोस्तत्त्वेन सत्यमलभमानः प्राङ्विवाकः शपथेन वक्ष्यमाणेन सत्यमुद्धरेत् ॥ १०९॥

(९) **भारुचिः**। सत्यप्रशंसार्थं पुराकल्पार्थवाद उदाह्रियते। विहितानुष्ठान प्ररोचनयः ॥ १०९॥

**महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः कृताः ।**
**वसिष्ठश्चापि शपथं शेपे पैजवनेनृपे ॥ ११० ॥**

(१) **मेधातिथिः** । अर्थवादोऽयं पूर्वोक्तस्य शपथविधेः । **महर्षिभिः** सप्तर्षिप्रभृतिभिः **कार्यार्थं** संदिग्धकार्यनिर्णयार्थं **शपथाः कृताः** । अस्मिन्नर्थे च भगवतः कृष्णद्वैपायनस्याख्यानमुदाहर्तव्यम् । पुष्करेषु तेष्वपहारितेष्वितरेतरं सप्तर्षयः शेपिरे 'यस्ते हरति पुष्करं स इमां पापकृतो गतिं गच्छेत्' इत्यादि । **देवैरिन्द्रप्रभृतिभिः** । इन्द्रो ह्यहिल्यां प्रत्यभिशप्तः शापभयाद्बहुविधं शपथं चकार । **वसिष्ठश्चेति** पृथङ्निर्देशः प्राधान्यख्यापनार्थः । शपथं कृतवानित्यर्थः । उपपदादेव विशेषावगतेः शपतिः **करोत्यर्थमात्रे** वर्तते । यथा 'यज्ञं यजत' इति 'स्वपोषं पुष्ट' इति तथा 'शपथं शेप' इति ज्ञेयम् । 'शप उपलंभने' इति लिटि प्रथमपुरुषात्मनेपदैकवचने शेपे इति रूपम् । पैजवनो राजा बभूव । तस्मिन्काले विश्वामित्रेणाक्रुष्टो मण्डलमध्यगतः कामक्रोधाभ्यां संक्षुब्धाचरणोऽघासुरो यातुधानोऽस्मीति शपथं गृहीतवान् । विश्वामित्रेणोक्तस्तस्य राज्ञः समक्षमनेनैव तत्पुत्रशतमशितमेष हि रक्ष इति । ततः स उवाच । अद्यैव म्रिये यदि रक्षः स्यामित्यात्मन्यनिष्टाशंसनमत्र शपथः । पुत्रदारादिशिरःस्पर्शने एतदनिष्टाशंसनं शपथो मन्तव्यः ॥ ११० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । महर्षिभिर्देवैश्च विशस्तैन्यादौ शपथाःकृताः । **कार्यार्थः** कार्यनिर्णयार्थम् । अनेन पुत्रशतं भक्षितमिति विश्वामित्रेणोक्ते सुदासः पैजवनस्याग्रे वसिष्ठः शपथं चक्रे अद्यापुनीययदियातुधानो अस्मीत्यादिभिर्ऋग्भिः ॥ ११० ॥

(३) **कुल्लूकः** । सप्तर्षिभिर्देवैश्च इन्द्रादिभिः संदिग्धकार्यनिर्णयार्थं शपथाः कृताः वसिष्ठोप्यनेन पुत्रशतंभक्षितमिति विश्वामित्रेणाक्रुष्टः स्वपरिशुद्धये पिजवनापत्ये सुदासि राजनि शपथंचकार । अनेकार्थत्वाद्धातूनांशपिरपि करोत्यर्थः ॥ ११० ॥

(४) **राघवानन्दः** । शपथे सदाचारंप्रमाणयति महर्षिभिश्चेति । हेपैजवनअनेन पुत्रशतंते भक्षितमित्यभिशस्तोविश्वामित्रेण वसिष्ठः । पैजवने पिजवनस्यापत्ये सुदासि । शपथं शेपे चकार ॥ ११० ॥

(५) **नन्दनः** । कार्यार्थसंदिग्धस्यनिर्णयार्थकृतवान् । नृपेसन्निधौ ॥ ११० ॥

(६) **रामचन्द्रः** । पैजवनेनृपे पिजवनाऽपत्ये सुदासनाम्नि । शपथंशेपे कृतवान् । धातूनामनेकार्थत्वात् शपिरपिकरोत्यर्थः ॥ ११० ॥ ॥ १११ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **महर्षिभिरिति** । महर्षिभिरगस्त्यादिभिर्विशस्तैन्याद्देवैश्चन्द्रादिभिः संदिग्धकार्यनिर्णयार्थं शपथाः कृताः । वसिष्ठोऽपि अनेन पुत्रशतं भक्षितमित्येवं विश्वामित्राक्रुष्टः पिजवनापत्ये सुदासे राजनि परिशुद्ध्यर्थं शपथं चकार । न वृथा शपथं चकार ॥ ११० ॥

(९) **भारुचिः** । अप्यन्ये महर्षयः तथा च व्यासो 'यस्ते हरति पुष्कर'मिति शपथाख्यानकं प्रोवाच एवं च सत्यधर्मपरिहारापेक्षया ॥ ११० ॥

**न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः ।**
**वृथा हि शपथं कुर्वन् प्रेत्य चेह च नश्यति ॥ १११ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । मिथ्याशपथे फलाख्यानमेतत् । **वृथाऽन्यथाऽसत्यमिति** यावत् । तत्रापह्रियमाणसुवर्णादिद्रव्यजात्यपेक्षोऽनृतशपथदोषोऽन्यथाशपथे स्वल्पे । गरीयसि तु कार्ये गौरवादधिकतरो दोषोऽस्त्येव । प्रेत्य नाशो नरकम्, इह महदयशः । प्रमाणान्तरैस्तु ज्ञाते राजदण्डः ॥ १११ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । वृथा मिथ्या ॥ १११ ॥

(३) **कुल्लूकः** । स्वल्पेपि कार्ये न वृथा शपथंपण्डितः कुर्यात् । वृथाशपथंकुर्वन्परलोके-इहलोके नरकप्राप्त्याऽकीर्तिप्राप्त्याच नाशंप्राप्नोति ॥ १११ ॥

(४) **राघवानन्दः** । अल्पकार्ये तंनिषेधति नेति । सत्येनापि शपेद्यस्तु देवाग्निगुरु-सन्निधौ । तस्य वैवस्वतोराजाधर्मस्यार्थंनिकृन्ततीति । निंदाश्रवणात् शपथंनकुर्यादित्यर्थः । मिथ्याशपथकारिणोरोगादिदर्शनादैहिकानर्थः पापादामुष्मिकइत्याह प्रेत्येति ॥ १११ ॥

(५) **नन्दनः** । शपथकारिणंप्रत्याह नवृथाशपथमिति । वृथाशपथंमिथ्याशपथम् । महत्स्वर्थेषु दोषातिशयः सूचितः । स्वल्पेप्यर्थंइति शपथस्य क्वचित् ॥ १११ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । बुधः पण्डितः ॥ १११ ॥

(७) **मणिरामः** ।

(८) **गोविन्दराजः** । **नेति** । स्वल्पेऽपि कार्ये विद्वान् मिथ्याशपथं न कुर्यात् । मिथ्या-शपथं कुर्वन् इहलोकपरलोकयोरकीर्तिः, नरकावाप्त्या च नश्यति ॥ १११ ॥

(९) **भारुचिः** । इयं च मिथ्याशपथनिन्दाप्रत्यवायदर्शनेन प्रतिषिद्धवर्जनार्थापि सती सत्यशपथ प्रशंसनार्था सम्पद्यत इत्यर्थः शास्त्रसामर्थ्यापेक्षया । एवमुभयं निथ्यावचनेषु साक्षिषु प्रकल्प्यम् । असाक्षिकेषु तावद् व्यवहारेष्वेवमनुमानसाक्षिनिमित्तोनिर्णयः ॥ १११ ॥

**कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने ।**
**ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् ॥११२ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । कामः प्रीतिविशेषो विशिष्टेन्द्रियस्पर्शजन्यः, स यासु भवति पुरुषस्य ताः कामिन्यो भार्यावेश्यादयः । तत्र यः शपथः । कामसिद्ध्यर्थो यथा 'नाहमन्यां कामये प्राणेश्वरी मे त्व'मित्याद्यः । यस्तु 'संप्रयुज्यस्व मया' 'इदं त्वया देयं' 'दास्य' इति–तत्र भवत्येव दोषः । **शपथे**–विषयसप्तमी चेयं न निमित्तसप्तमी । तेन यस्यामेवैकाकिन्यां यथाप्यते तत्रोक्तरूपशपथे न दोषः निमित्तसप्तम्यां तु निमित्ते परद्रव्यापहारे दोषः स्यात् । अतश्च 'कामाद्दशगुणं पूर्वम्' (८।१२१) इत्यादिकं दण्डविधानं न युज्यते । तथापि निमित्तानन्तरकृते विवादेऽस्त्येव वृथाशपथदोषः । एवं सर्वत्र । **विवाहेषु** । न त्वयाऽन्या वोढव्या न वाऽन्यो वोढव्य इति अन्यस्यापि सुहृदादेर्विवाहार्थमेवंविधमनृतमदोषः ।

न पुनर्जात्यपह्नवादौ। **गवां भक्ष्ये**। गवां यवससिद्धार्थं मयाऽपहर्तव्यं–न मयाऽपहृतं परस्य चातत्संबन्धिभिरभियुक्तस्य वृथासाक्ष्ये शपमानस्य न दोषः। एव**मिन्धने**। **ब्राह्मणानाम-भ्युपपत्ति**रनुग्रहः। सर्ववर्णानुग्रहेऽनुज्ञातमेव। किमिह पुनर्वचनेन। केचिदाहुः–शपथो ब्राह्मणेऽनुज्ञायते, शूद्रादिषु त्वनृतमेव। एतच्च '**तद्धि**सत्याद्विशिष्यते' इति (८।१०४) वचनान्नैतदनृतम्। अतो न भवति प्रतिषेधो ह्यसौ। वृथाशपथस्य पूर्वेण प्रतिषिद्धस्य प्रति-प्रसवशास्त्रमेतत्। तस्मात्सर्ववर्णानुग्रहे शपमानस्य न दोषः किमर्थं तर्हीदमुच्यते। तत्र वधात्परित्राणमुक्तं सर्ववर्णविषयम्। **अभ्युपपत्तिस्तु** ब्राह्मणस्यैव। सा हि धनलाभादिना संभवति। सर्वतश्च परसंबन्धिनीषु क्रियास्वेवंविधासु शपथाभ्यनुज्ञानमुपायान्तरेण तत्सिद्धा-संभव एव द्रष्टव्यम्॥ ११२॥

(३) **कुल्लूकः**। वृथाशपथप्रतिप्रसवार्थमाह कामिनीष्विति। बहुभार्यस्य नान्या-महंकामये त्वमेव मत्प्रेयसीत्येवंविशिष्टः सुरतलाभार्थंकामिनीविषये विवाहविषये च मयान्या न वोढव्येत्यादौ। गवार्थंघासाद्युपहारे च। अग्नौ होमार्थमिन्धनाद्युपहारे। ब्राह्मणरक्षार्थ-मङ्गीकृतधनादौ वृथा शपथे पापं न भवति॥ ११२॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच कामिनीष्विति। कामिनीषु सुरतलाभार्थं त्वत्सदृशी मम प्रेयसी नास्तीति बहुभार्यस्य तथा विवाहार्थं त्वामृते नान्या वोढव्येति अधिकरणसप्तम्यौ। अग्न्यर्थमिन्धने। ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ ब्राह्मणार्थमङ्गीकृतधनादौ पातकं निकृन्ततीत्यादिदोषो-नास्तीत्याशयः॥ ११२॥

(५) **नन्दनः**। प्रतिप्रसवमाह कामिनीष्विति। ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ ब्राह्मणरक्षणे-पातकम्॥ ११२॥

(६) **रामचन्द्रः**। कामिन्यादिषु शपथे कृते पातकंनास्ति। कामिनीषु त्वंमे प्रियेति तथा विवाहेषु। गवांभक्ष्ये गोग्रासार्थे। तथा इन्धने होमार्थं। च पुनः ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ ब्राह्मणरक्षार्थं शपथेपातकंनास्ति॥ ११२॥

(७) **मणिरामः**। कार्यार्थं। संदिग्धकार्यनिर्णयार्थं महर्षिभिः सप्तर्षिभिः। देवैः इंद्रादिभिः मिथ्याशपथे दोषभावस्थलान्याह। कामिनीष्विति। कामिनीषु नान्याहंकामये त्वमेव मत्प्रेयसीत्येवं विशिष्टः सुरतलाभार्थं। विवाहे अन्या न वोढव्येत्यादौ। गवांभक्ष्ये घासाद्यपहारे इंधने होमार्थमिंधनोपहारे। ब्राह्मणाभ्युपत्तौ ब्राह्मणरक्षार्थं अंगीकृतधनादौ मिथ्याशपथे दोषो न भवतीत्यर्थः॥ ११२॥

(८) **गोविन्दराजः। कामिनीष्विति**। बहुभार्यस्य नान्यामहं कामये त्वं मे प्राणे-श्वरीत्येवं विधिविषये न च त्वयान्या वोढव्या इत्येवंविधे गवार्थं घासापहारे वा संभवा-दुपायान्तर एवं शास्त्रितान्निहोमार्थं चर्वपहारे ब्राह्मणरक्षायां च धनदानादिविषयायां मिथ्या-शपथे पातकं न भवति॥ ११२॥

(९) **भारुचिः**। कामिन्या कामतन्त्राभियोगे यः प्रतिज्ञातार्थसम्पादनार्थं मिथ्याशपथः क्रियते तत्र नास्ति पातकधर्म इत्यर्थः। एवं विवाहे कृताकृतसन्देहे अभियोगे वास्य कर्माङ्ग-भूतानां च गवां भक्तस्य हरणाभियोगेन गोमात्रस्य व्यवहारः।

**सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ।**
**गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥ ११३ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । ननु च यद्यहमेवं कुर्यां तदिदमनिष्टमाप्नुयामिति संकीर्तनक्रिया-शपथास्तत्रयः शाप्यते स एवं वाच्यते सत्येनशपेस **शापयेदित्युच्यते** । 'सत्येन शपे' सत्यादि-निबन्धनोऽयं 'धर्मो वा मे निष्फलः स्यादिति' । एवं चायुधानामपि करणत्वं वाहनानां च । एतैरात्मानं शपेत्–'एतानि निष्फलानि स्युरिति' । **गोबीजकाञ्चनानि** वैश्यो हस्तेन स्पर्श-यित्वाऽभिशपेदेतानि वा मे निष्फलानि पूर्ववत् । **शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः** । वक्ष्यमाणानि पात-कानि मे स्युरिति शूद्रो वाच्यते ॥ ११३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । सत्येन सत्यंत्वया हतंभवति मिथ्योक्ताविति । वाहनायुधैः एतानि त्वया हतानि स्युरिति । एतच्च लघुकार्ये ॥ ११३ ॥

(३) **कुल्लूकः** । ब्राह्मणंसत्यशब्दोच्चारणेन शापयेत् । क्षत्रियंवाहनायुधंमम निष्फलं-स्यादित्येवम् । वैश्यंगोबीजकाञ्चनानि च ममनिष्फलानि स्युः । शूद्रंच सर्वाणि मे पातकानि स्युरित्येवंशापयेत् ॥ ११३ ॥

(४) **राघवानन्दः** । शपथेनापि लम्भयेदित्युक्तस्य शपथस्य ,चातुर्वर्ण्ये व्यवस्थितिमाह सत्येनेति । सत्यशब्दोच्चारणं शापयेत् । शपथंकारयेदिति यत्सत्यंते तन्निष्फलंभवेदितिवा । एवंवाहनादिषु साक्षिवाचनेन स्पर्शस्योक्तत्वात् । ब्रह्मघ्न इत्यादिवाक्योक्तैःपातकैरेतानि पातकानि ते स्युरितिशूद्रं शापयेदित्यनुषज्यते ॥ ११३ ॥

(५) **नन्दनः** । अथकेन पुनः प्रकारेण वर्णानांशपथः कारयितव्यइत्याह सत्येनशाप-येदिति । शापयेच्छपथंकारयेद्राजा ॥ ११३ ॥

(७) **मणिरामः** । सत्येन सत्यं मे गच्छत्विति शब्दोच्चारणेन । एवमग्रेपि । वाहनं आयुधं वाममनिष्फलं भवत्विति क्षत्रियं । गोबीजकाञ्चानानि मम निष्फलानिस्युरिति वैश्यं । सर्वाणि मे पातकानि स्युरिति शूद्रं ॥ ११३ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **सत्येनेति** । ब्राह्मणं वादिनं सत्यशब्दोच्चारणेन शापयेत् । क्षत्रियञ्च वाहनायुधं निष्फलं स्यादित्येवम् । वैश्यञ्च गोबीजकाञ्चनादीनि ते निष्फलानि स्युरित्येवम् । शूद्रं सर्वाणि ते पातकानि स्यु'रित्येवं शापयेत् ॥ ११३ ॥

(९) **भारुचिः** । सत्यशपथक्रियामिदानीं निर्दिश्यते वर्णविशेषसन्नियोगेन शपथाः स्वरूपतः । असाक्षिके तत्त्वाभिगमार्थं ब्राह्मणादीन् वर्णान् अभियुक्तान् यथापदेशं शपथैरेभिः शापयेत् ॥ ११३ ॥

**अग्निं वाऽऽहारयेदेनमप्सु चैनं निमज्जयेत् ।**
**पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक् ॥ ११४ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । **अग्निमाहारायेदेनं** हस्तेनाश्वत्थपर्णव्यवहितेन तयोः प्रदेशान्तरं

सप्तपदसंहितमित्यादिस्मृत्यन्तरान्निपुणतोऽन्वेष्यम् । पारंपर्यप्रसिद्धेश्चैतदेवोच्यते । **अप्सु** जले **निमज्जयेत्** प्राड्विवाक इत्यर्थः । **पुत्रदारशिरांसि स्पर्शयेत्** । पुत्रस्य दारस्य शिरः स्पर्शयेत्–हस्तेन, शपथाधिकाराद्वाचाऽपि, शपथस्यैवंरूपत्वादित्युक्तम् । **पृथगेकैकस्य**।। ११४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । गुरुण्याह अग्निवेति ।। ११४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । कार्यगौरवलाघवापेक्षया अग्निमिति । अग्निसन्निभंपञ्चाशत्पलिकमष्टाङ्गुलमयः पिण्डं हस्तद्वयविन्यस्य सप्ताश्वत्थपत्रं शूद्रादिकै सप्तपदानि पितामहाद्युक्तविधानादाहारयेत् । जलौकादिरहितजले चैनंनिमज्जयेत् । अशेषेपि कर्त्तव्यता स्मृत्यन्तरे ज्ञेया । पुत्राणांदाराणां च पृथक्शिरस्येनं स्पर्शयेत् ।। ११४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । शपथेन द्रव्यालाभे परीक्षणमेवोचितमित्याह अग्निमिति । अग्निसन्निभमयः पिण्डं पञ्चाशत्पलपरिमितमष्टाङ्गुलम् । एनं अधमर्णत्वेन संभाव्यमानम् । स्पर्शयेत् तेषांशिरसि हस्तंदापयेत् । पृथगितिपदं व्यवहारस्य गुरुलघुतया विकल्पसूचनार्थम् ।। ११४ ।।

(५) **नन्दनः** । शूद्रसच्छूद्रमसच्छूद्रंप्रत्याह अग्निवाहारयेदिति । अग्निवर्णप्रतप्तमयः-पिण्डम् । वृत्तापेक्षयाविकल्पः ।। ११४ ।।

(७) **मणिरामः** । अग्नि अग्निसन्निभं पंचाशत्पलिकमष्टांगुलमयः पिंडं अप्सुजलौ कादिरहितजले ।। ११४ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । कार्यगुरुत्वापेक्षया च **अग्निमिति** । अग्निवर्णसुवर्णपिण्डं शूद्रमश्वत्थपत्रावृतहस्तं याज्ञवल्क्याद्युक्त्येतिकर्तव्यतया सप्तपदानि भावयेत् । अप्सु वा गृहीत्वान्तर्जलं विशेदित्येवमादितदेनद्युक्त्येतिकर्तव्यतयैव निमज्जयेदथवा पुत्राणां दाराणाञ्च एतस्य शल्य इत्येवं पृथगेकैकस्य शिरांसि स्पर्शयेत् ।। ११४ ।।

(९) **भारुचिः** । शूद्रस्य वृत्तापेक्षयाऽन्यादयोऽपि कल्प्येरन्, शपथैरेवं तत्राग्नि-हरणे सप्तपदान्यश्वत्थपर्नैरियद्भिव्यवधान् (रि. ? मि) ति त्वि.....श्रुत्यन्तरा-पेक्षयैतत् स्यात् । इह वचनं तं गुणविधेः स्मृतिपारम्पर्याविच्छेदात् तथाप्सु निमज्जने कालः ।। ११४ ।।

**यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ।**
**न चार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ।। ११५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । तप्तायसपिण्डोऽनवद्य गृहीतो न दहति । **आपश्च** नोर्ध्वं प्लावयन्ति, सत्य**शपथे** । केशादौ **न चार्तिमृच्छति** पीडां न प्राप्नोति । रोगोऽग्निरित्यन्यत्रोक्तम् । **स** शुद्धः **शुचि**र्निर्दोषः । **क्षिप्रम्**–चतुर्दश वाऽह्नान्यवधिः स्मृत्यन्तरात् ।। ११५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । नचार्तिपुत्रादिशिरः स्पर्शेकृते ।। ११५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यंप्रदीप्तोऽग्निर्न दहति आपश्च यंनोर्ध्वंनयन्ति न चार्त्तिमेव महतीं-प्राप्नोति सशपथे विशुद्धोज्ञेयः ॥ ११५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। शपथस्य परीक्षणमाह यमिति। यमुक्तशपथकर्तारम्। इद्धः उत्तेजितः। आर्त्तिं रोगधनक्षयपुत्रमरणादिकाम्। क्षिप्रंत्रिपक्षाभ्यन्तरे ॥ ११५ ॥

(५) **नन्दनः**। तत्र शुद्धस्य लक्षणमाह यमिद्धोनदहतीति। आर्त्तिशरीरपुत्रदारादि-पीडाम्। क्षिप्रंसप्ताहात्। शपथेऽग्निहरणादिके ॥ ११५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यंपुरुषं इद्धोग्निः स्पर्शनान्न दहति सशुचिर्ज्ञेयः। यः शपथेक्षिप्रमार्ति न ऋच्छति न गच्छति सशुचिर्ज्ञेयः ॥ ११५ ॥

(७) **मणिरामः**। इद्धः प्रदीप्तः ॥ ११५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यमिति**। दीप्तोऽग्निर्यं न दहति आपश्चनो प्लावयन्ति न च समनन्तरमेव निर्निमित्तां मूर्च्छावस्थां प्राप्नोति स शपथेषु वृद्धो ज्ञेयः ॥ ११५ ॥

(९) **भारुचिः**। दहनोन्मज्जनाभ्यामार्तिः पृथगुपदेशसामर्थ्यात् अन्या रोगाद्या-भिघातलक्षणा। सा चोक्ता पुरस्ताद् ॥ ११५ ॥

**वत्सस्य हृच्यभिशस्तस्य पुरा भ्रात्रा यवीयसा।**
**नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतः स्पृशः ॥ ११६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। कथं पुनरग्निर्न धक्ष्यति, आपो नोन्मज्जयिष्यन्ति। न हि महा-भूतानि विपरियन्ति स्वभावतो चैतन्यादिति–पर्यनुयोगमाशङ्क्यार्थवादेनोक्तमर्थं दृढीकरोति। यद्यप्ययमन्वयव्यतिरेकसमधिगम्योऽर्थः प्रत्यक्षवेद्यो वा तथापि धूर्तकल्पितेन्द्रजालवद् भ्रान्ति-वदत्र मुखविभीषिकासञ्जनमात्रफलं शपथं मन्यमानो वैदिकं निदर्शनमुपन्यस्यति। भवन्ति प्रतिपत्तारोऽर्थागमेन पूर्ववृत्तदर्शनाद्दृढतां प्रतिपद्यन्ते। वत्सो नाम काण्व ऋषिरभवत्। स च कनीयसा वैमात्रेयेण भ्रात्राऽभिशस्त आक्रुष्टः–न 'त्वमसि ब्राह्मणः शूद्रापुत्र' इति। स तं प्रत्युवाच–'सत्येनाग्नि प्रविशामि यदि न ब्राह्मण' इति। तस्येदमुक्तवतः प्रविष्टस्य **नाग्निः-ददाह रोमापि**। कथम्? **सत्येन** हेतुना। कथमग्निः सत्यं जानातीति चेदत आह **जगतः स्पृशः**। गूढात्मा परकीयकृताकृतज्ञः 'स्पृश' उच्यते। स च चारः प्रणिधिरिति च प्रसिद्धिः अग्निर्हि भगवान्सर्वभूतान्तरचारी कृताकृतानां वेदिता। तथा च छान्दोग्ये ताण्डके प्रयोगो-देवासुरसेनयोरभ्यन्तरे गौतममाश्रयन्ति गौतममिन्द्रं द्रढयेत्तत्र चाह "इह नो भवान्स्पृशश्चर-त्विषेत्यादि"। अर्थवाचिनिदर्शनेऽपि पञ्चविंशब्राह्मणमुदाहार्यम्–'वत्सश्च ह वै मेधातिथिश्च काश्यपावास्ताम्। तं वत्सं मेधातिथिराक्रोशत् अब्राह्मणोऽसि इत्यादि तस्य हालमेववौषधम्' इति। ननु च चौरा अपि न दह्यन्ते। साधवोऽपि दह्यमाना दृश्यन्ते। तत्कथं शपथे आश्वासः। उच्यते। न दृश्येन व्यभिचारेण व्यवस्थेयमपनेतुं शक्यते। कादाचित्कत्वा-द्व्यभिचारस्य। प्रत्यक्षादिष्वपि प्रमाणेषु दृश्यत एव तादृशो व्यभिचारः। न च तानि न प्रमाणम्। अथ व्यभिचारवन्ति नैव प्रत्यक्षादिशब्दवाच्यानि–यद्व्यभिचरति न तत्

प्रत्यक्षं, यत्प्रत्यक्षं न तद्व्यभिचरतीति वचनात्। इहापि शक्यते तद्वक्तुं–यद्व्यभिचरतिनासौ शपथो यः शपथः स न व्यभिचरतीति। कः पुनः शपथः। यः समस्तेतिकर्तव्यतामात्राद्यपग्रहेण निरूपितकुहकः स्तंभनाभावः। विपरीतोऽशपथः। न तादृशस्य व्यभिचारोऽस्ति। अथापि तत्रापि प्राक्कृतस्य कर्मणः फलविपाको भवति, निमित्तत्वात्। कृतापराधोऽपि। पूर्वकृतेन गरीयसा शुभेन मुच्यते। अकृतापराधो जन्मान्तरदोषेण निगृह्यते। विचित्रा हि कर्मणां फलपाकाभिव्यक्तिहेतवः, सहस्रादेको मिथ्या गृह्यते, उत्सर्गतस्त्वमिथ्यात्वम्। पुत्रेष्टि, कार्यादिष्वप्येतत्समानम्। तस्मात्साक्षिवच्छपथेऽपि प्रत्येतव्यम्। तेऽपि हि कदाचिन्मिथ्यावदन्ति। न भयप्रदर्शनमात्रमेतत्। रूढया शपथा उक्ताः सत्यं प्रतिष्ठत इति ॥ ११६ ॥

परकृतिरियमधिकृतविध्यर्थवादार्था वत्सस्यह्यभिशस्तस्येति लिङ्गादभिशस्तस्यायं शपथ इति केचित्। एवं च शूद्रशपथो यन्नस्यात् किं तर्हि अस्माल्लिङ्गात् ब्राह्मणस्यैवायं यः स्यात्। न चैतदिष्टम्। तेन यथा ब्राह्मणविषयः श्रुतः शूद्रस्यैव(ति? मति) शास्त्रसामर्थ्यात्। एवमभिशंसने श्रुतोऽन्यत्रापि जगतः स्पर्शो निश्चर इत्यर्थः। इह नोभावात् 'स्पशश्चरोऽस्ती'ति श्रुतेः ॥ ११६ ॥

साध्यमेतत् किं व्यवधानकालयोरल्पमहत्त्वाभ्यामेतौ भवत उत दैवकृताविति। असमानं चैतत्, येन साम्येऽपि व्यवधानकालयोरेतौ दृश्यते तस्मान्नेमौ तद्वैषम्यकृतौ विज्ञेयौ। यतश्च जिह्वया तप्तायः पिण्डाभिस्पर्शनेनोभयं दृष्टम् अतो नैतयोर्वचनक्रिययोस्त्रासनमात्रमेव प्रयोजनम्। कथं नामायमभीतः प्रपद्येति। यच्च पुनरिदमुच्यते। यदि च किल त्रासनार्थ वादो भवति ततो नाग्निर्ददाह रोमापीति रोमादहनवचनमात्रार्थवद् भवति। इतरथा ह्यग्निहरणविधौ कल्प्यमाने हस्ततलयोर्लोमाभावाल्लोमादहनवचनमनर्थकं स्यात्। अपि चेक्षिते त्वग्निहरणे यथाकथञ्चिदग्निसम्बन्धस्तु यत इति। अत्र रोमशब्दोऽयं न स्वार्थवाची। गुणतो लोकपदत्वार्थः यथोक्तसामर्थ्यात्। अतः साक्षिमिथ्यावचनवन्मिथ्याशपथवच्चाग्निहरणोदकनिमज्जने अपि तद्वदेव विज्ञेये इति ॥ ११६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। "यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः। रोगाग्निर्ज्ञातिमरणमि"ति। ननु च साक्ष्यनृतविभावनार्था सोक्ता, समानकारणत्वात्तु मिथ्या शपथभावनार्थापि सैवेह स्यात्। अन्यस्यां आर्तेरिहानिर्देशात् सैव गम्यते अत्र कश्चिदाह–'इद्धो नामाग्निनैव धक्ष्यति न चोन्मज्जयिष्यन्त्यापः' इति। दृष्टविरुद्धमेतत् न हि महाभूतस्य चैतन्यात् स्वभावव्यतिकरो निमित्तमन्तरेणोपलभ्यते। मन्त्रौषधाभ्यां तु भवति। तदिह समानम् अत्र हि सत्यशपथप्रयोगोपहृतयोरग्न्यम्भसोरयं निमित्ततः स्वभावव्यतिकरः स्यात्। सदेव तत्त्वाच्च तयोर्विशेषतोऽस्मिन् काले निमित्तः स्यादयं व्यतिकरो यतस्तदचैतन्यमकारणम्। यच्च व्यवधानकालयोरल्पमहत्त्वाभ्यामेतौ भवतः, उत दैवकृताविति, असमानं चैतत्। येन साम्येऽपि व्यवधानकालयोरेतौ दृश्यते जयस्तद्विपर्यये च पराजय इति ॥ ११६ ॥

वत्सस्य ऋषेः। शूद्रोसीति वैमात्रेयेणभ्रात्राभिशस्तस्याग्निप्रविष्टस्यस्पशश्चरः ॥ ११६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अत्र प्रकृतमर्थवादमाह वत्सस्येति यस्मात्पूर्वकाले वत्सनाम्नऋषेर्न त्वंब्राह्मणः शूद्रापत्योऽसीत्येवंकनीयसा वैमात्रेयेणाभिक्रुष्टस्य नैतदेवमिति सयथार्थमग्निं प्रविष्टस्याग्निः सर्वस्य जगतः शुभाशुभकर्तव्ये चारभूतः सत्येनाहेतुना रोमैकमपि वन्हिर्न दग्धवान्॥ ११६॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्र हेतुतया सदाचारमाह वत्सस्येति। हि यस्मात्पुरा वत्सनामऋषेर्नब्राह्मणस्त्वंशूद्रापत्योसीतिकनीयसा वैमात्रेयेनाक्रुष्टस्याग्निप्रविष्टस्यापिनाग्निर्ददाहेति तस्मात्सत्यंशुचि न दहत्यग्निः अथयदितस्याकर्ताभवतिसनदह्यतेऽथ मुच्यतइत्यादिश्रुतेः। जगतः सर्वस्य कृतस्यशुभाशुभकर्तव्यस्यस्पशश्चारभूतइति। लेख्यसाक्षिणोरभावेशपथः। यथाह याज्ञवल्क्यः। तुलाग्न्यापोविषंकोशोदिव्यानीह विशुद्धये। महाभियोगेष्वेतानि शीर्षकस्थेऽभियोक्तरि। दिव्यग्राहिणि शीर्षकस्थे विद्यमानेऽभियोक्तरि। रुच्या वान्यतरंकुर्यादपरोवर्तयेच्छिरः। अपरोवादी वर्तयेच्छिरः शारीरमर्थदण्डंवाअङ्गीकुर्यात्। विनापिशीर्षकंकुर्याद्राजद्रोहे च पातके। राजभिःशङ्कितानां च निर्दिष्टानांच दस्युभिः। आत्मशुद्धिपराश्च दिव्यंदेयशिरोविनेति पातके ब्रह्मवधाद्यभिशस्ते। इत्यधिकारिनिर्णयः॥ सचैलंस्नानमाहूय सूर्योदयउपोषितं। कारयेत्सर्वदिव्यानि देवब्राह्मणसन्निधौ। इति कर्तव्यता। तुलास्त्रीबालवृद्धान्धपङ्गुब्राह्मणरोगिणाम्। अग्निर्जलंवा शूद्रस्य यवाःसप्तविषस्यवा। इत्यधिकारिव्यवस्थितिः। नासहस्राद्धरेदग्निं नविषं नतुलां तथा। सहस्रपणान्यूने विवादेनृपार्थेष्वभिशापेषु वहेयुः शुचयः सदा। इत्यधिकारिनिर्णयः। तुलाधारणविद्धाङ्करभियुक्तस्तुलाश्रितः। प्रतिमानसमीभूतोलेखां कृत्वाऽवतारितः। इति तुलामानम्। त्वं तुले सत्यनामासि पुरा देवैर्विनिर्मिता। तत्सत्यं वद कल्याणि संशयान्मां विमोचय। यद्यस्मि पापकृन्मातस्ततोमां त्वमधोनय। शुद्धश्चेद्गमयोर्ध्वं मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत्। एह्येहि भगवन्धर्म अस्मिन्दिव्ये समाविश। सहितोलोकपालैश्च वस्वादित्यमरुगद्गणैः। धर्मोजयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्। क्षमा जयति न क्रोधोविष्णुर्जयति नासुराः। तुलितोयदि गच्छेत्सशुद्धः स्यान्नतुसंशयः। समोवा हीयमानोवा अविशुद्धोभवेन्नरः। यद्यधोयात्यशुद्धः स्यात्तुलाभङ्गे च सर्वदा। नविशीर्यति शिक्यंचेदूर्ध्वं याति विशुद्धयति। इति तुलापरीक्षणम्। करौ सुमृदितव्रीहैर्लक्षयित्वा ततोन्यसेत्। सप्ताश्वत्थस्य पत्राणि तावत्सूत्रेण वेष्टयेत्। त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावक। साक्षिवत्पुण्यपापेभ्योब्रूहि सत्यं कवे मम। इत्यग्न्यभिमन्त्रणम्। तस्येत्युक्तवतोलोहं पञ्चाशत्पणिकं समम्। अग्निवर्णं न्यसेत्पिण्डं हस्तयोरुभयोरपि। सतमादाय सप्तैव मण्डलानि शनैर्व्रजेत्। षोडशाङ्गुलकं ज्ञेयं मण्डलं तावदन्तरम्। त्यक्ताग्निमृदितव्रीहिरदग्धः शुद्धिमाप्नुयात्। अन्तरा पतिते पिण्डे संदेहे वा पुनर्हरेत्। इत्यग्निपरीक्षणम्। सत्येन माभिरक्षत्वं वरुणेत्यभिशाप्यकम्। कं जलमित्यर्थः। नाभिदघ्नोदकस्थस्य गृहीत्वोरू जलं विशेत्। समकालमिषुं क्षिप्तमानीयान्योजवी नरः। गते तस्मिन्निमग्नाङ्ग पश्येच्छुद्धिमवाप्नुयात्। इति जलपरीक्षणम्। इषुक्षेपसमकालं योगतः सचेदागत्य पश्येदित्यन्वयः। त्वं विष ब्रह्मणः पुत्रः सत्यधर्मे व्यवस्थितः। त्रायस्वास्मादभीशापात्सत्येन भव मेऽमृतम्। एवमुक्ता विषं शार्ङ्गे भक्षयेद्विमशैलजम्। यस्य वेगैर्विना

जीर्येच्छुभंतस्य विनिर्दिशेत् । इति विषपरीक्षा । वेगैर्मूर्च्छाद्युपद्रवैः । देवानुग्रात्समभ्यर्च्यतत्स्नानोदकमाहरेत् । संश्राव्य पावयेत्तस्माज्जलात् प्रसृतित्रयम् । अर्वाक्चतुर्दशादह्नोयस्य नोराजदैविकम् । व्यसनं जायते घोरं सशुद्धः स्यान्नसंशयः । महापराधे निर्धर्मे कृतघ्ने क्लीबकुत्सिते । नास्तिकव्रात्यदासेषु कोशपानं विगर्हितम् । इति कोशपरीक्षा । तत्र । पूर्वाह्णेग्निपरीक्षा स्यादपराह्णे घटोभवेत् । मध्याह्नेतुजलं देयं धर्मत्त्वमभीप्सता । दिवसस्यतु पूर्वाह्णे कोशशुद्धिर्विधीयते । रात्रौतु पश्चिमे यामे विषं देयं सुशीतलमितिपितामहोक्तेः परीक्षाकालः । घटस्तुला ।। ११६ ।।

(५) **नन्दनः** । अत्र परकृतिरूपमर्थवादमाह वत्सस्यहीति । वत्सोनामकश्चिदृषिः जगत्: स्पृशः जगतश्चारः शुभानुसंधायीति यावत् । तथा चाग्निप्रमन्त्रवर्णः इहतोभगवाञ्जगतश्चारोस्त्विति । एवंवदता ब्राह्मणादीनामप्यग्निकरणादिकंसूचितम् ।। ११६ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । पुरा यवीयसा भ्रात्रा वत्सस्यऋषेः अभिशस्तस्य शूद्रइति निन्दितस्य सः अग्निः रोमापि न ददाह ।। ११६ ।।

(७) **मणिरामः** । वत्सस्य वत्सनाम्नोऋषेः अभिशस्तस्य न त्वं ब्राह्मणः शूद्रपुत्रोसीति यवीयसा कनीयसा भ्रात्रेण वैमात्रेण अभिक्रुष्टस्य । जगतः स्पृशः शुभाशुभे चारभूतः एतादृशःअग्निः ।। ११६ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । अतः पुराकृतार्थवादमाह **वत्सस्येति** । यस्मात्पूर्वस्मिन्काले च समाप्ते ऋषे ब्राह्मणोऽसि शूद्रापुत्र इत्येवं वैमात्रेयेण कनीयसा भ्रात्राक्रुष्टस्य नैतदेवमिति शपथार्थं अग्निप्रविष्टस्य अग्निः सर्वस्य जगतः सदसत्कर्तव्येषु चारभूतः सत्येन हेतुभूतेन लोममात्रमपि न दग्धवान् ।। ११६ ।।

**यस्मिन्यस्मिन्विवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् ।**
**तत्तत्कार्यं निवर्त्तेत कृतं चाप्यकृतं भवेत् ।। ११७ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **यस्मिन्यवहारे** कूटसाक्षिभिर्व्यवहारः कृतः स्यात्स निवर्तयितव्यः । **कृतं चाप्यकृतं भवेत्** । गृहीतधनोऽप्युत्तमर्णः प्रतिपादयितव्यः, इतरोदण्डोगृहीतोऽपि त्याज्यः । वाङ्मात्रेण जितस्त्वमसीति निश्चिते कार्यं निवर्तते इत्युच्यते । दण्डपर्यन्तं कृतमपीति विशेषः । वीप्सा श्लोकपूरणायाम् ।। ११७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । तत्कार्यं निवर्तेत पुनर्विचार्य कृतंचापि दण्डाद्यकृतंभवेत्प्रत्यर्पणीयमित्यर्थः ।। ११७ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यस्मिन्यस्मिन्व्यवहारे साक्षिभिरनृतमुक्तमिति निश्चितंभवेत्तत्कार्यमसमाप्तंप्राड्विवाकः पुनरपि निवर्तयेत् यदपि च दण्डसमाप्तिपर्यंततांनीतंतदपि पुनः परीक्षेत ।। ११७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । कौटसाक्ष्यकृतमप्यकृतमित्याह यस्मिन्निति । निवर्तेतेत्यस्य विवरणं कृतमित्यादि ।। ११७।।

(५) **नन्दनः**। कूटसाक्षिभिर्निर्णीतोप्यर्थोनिवर्त्तत इत्याह यस्मिन्यस्मिन्निति ।। ११७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **य**स्मिन्विवादे कौटसाक्ष्यं कपटेन साक्ष्यं भवेत् ।। ११७ ।।

(७) **मणिरामः**। कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत्। अनेन मिथ्यासाक्ष्यं दत्तमिति निश्चितं भवेत्। तत्कार्ये पुनर्विचारणीयमित्यर्थः ।। ११७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यस्मिन्निति**। यस्मिन्यस्मिन्व्यवहारे साक्षिभिरनृतमुक्तं स्यात् तत्तत्कार्यमप्यकृतमेव प्राड्विवाको निवर्तयेत्। यद्यपि कृतं दण्डपर्यन्तं तदपि पुनः परीक्षेत ।। ११७ ।।

(९) **भारुचिः**। अर्धसमाप्ते निवर्तनं दण्डा(न्तेऽपि) कृते अकृतं भवेत्, एवं च सति पुनस्तत्परीक्ष्यं निवृत्तिवचनात् ।। ११७ ।।

**लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च ।**
**अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ।। ११८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। कौटसाक्ष्यं लोभादिनिमित्तम्। विषयकथनं दण्डविशेषभावार्थम्। **वितथ**मसत्यम्। सर्वत्र पञ्चमी हेत्वर्था ।। ११८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। लोभोऽर्थलिप्सा। मोहोविपरीतज्ञानम्। कामः स्त्रीरागः। अज्ञानं तद्विषयस्फुटज्ञानाभावः। बालभावः साक्ष्ययोग्यवयोवस्थाभावः। वितथं मिथ्या-साक्ष्यमुच्यते लोकैः ।। ११८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। वक्ष्यमाणविशेषार्थंलोभादीन्पृथक् निर्दिशति लोभेन विपरीतज्ञानेन भयेन स्नेहेन कामेन क्रोधेनाज्ञानेनानवधानेन साक्ष्यमसत्यमुच्यते ।। ११८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। कृतमप्यकृतमिति कस्मादिति तत्र हेतून्प्रदर्शयन्तत्साक्ष्यभावमाह लोभादिति। मोहाद्वैचित्त्यात् सच त्रिविधोरोगादिकृतो धत्तूरादिकृतः प्रमादकृतश्च। भयाद्दस्युवृत्तिभ्यः। कामात्तदीयस्त्रपादिषुभोग्यज्ञानादज्ञानाददृष्टश्रुतं जानामीत्यभिधाना-द्बालभावादधर्माज्ञानात् ।। ११८ ।।

(५) **नन्दनः**। कौटसाक्ष्ये कारणानि दण्डतारतम्यार्थमाह लोभान्मोहादिति। बाल-भावः ऊनषोडशवयस्कत्वम् ।। ११८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। कामात्। स्त्रीरागात् स्फुटज्ञानाभावात् कृतं साक्ष्यं वितथं व्यर्थं उच्यते ।। ११८ ।।

(७) **मणिरामः**। वक्ष्यमाणदंडविशेषार्थं लोभादीन्पृथक् निर्दिशति। लोभादिति ।। ११८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **लोभादिति**। लोभविपरीतज्ञानभयमैत्री कामक्रोधादज्ञान-मौर्ख्यैः बालभावात्साक्ष्यमसत्यमुच्यते इति दण्डवैचित्र्यार्थोऽयमुपन्यासः ।। ११८ ।।

(९) **भारुचिः**। तच्च पुनः अनृतवचने कारणनिर्देशोऽयं दण्डविशेषार्थः ।। ११८ ।।

**एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ।**
**तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।। ११९ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । लोभाद्यो वितथं वक्ति स सहस्रं दण्डनीय इत्येवं कर्तव्या ।। ११९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अन्यतमस्थाने अन्यतमनिमित्तंप्राप्य ।। ११९ ।।

(३) **कुल्लूकः** । एषांलोभादीनांमध्यादन्यतमस्मिन्निमित्ते सति योमिथ्यासाक्ष्यं कथयेत्तस्यदण्डविशेषाणि क्रमशोवदिष्यामि ।। ११९ ।।

(४) **राघवानन्दः** । अत्रार्थे किं स्यात्तत्राह एषामिति । लोभादीनांमध्येऽन्यतमनिमित्ते स्थाने युक्तान्दण्डविशेषान्वक्ष्यामीत्यन्वयः ।। ११९ ।।

(५) **नन्दनः** । स्थाने करणे ।। ११९ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । एषां लोभादीनां अन्येषांवा ।। ११९ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **एषामिति** । एषां लोभादीनामन्यतमस्मिन् निमित्ते सति योऽसत्यं साक्ष्यं ब्रूयात्तस्य दण्डविशेषान् क्रमेण वक्ष्यामि ।। ११९ ।।

**लोभात्सहस्रंदण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वंतु साहसम् ।**
**भयाद् द्वौमध्यमौदण्डौमैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ।। १२० ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **मोहात्** । स्वभावतो यथार्थवादी यथादृष्टार्थवादी च केनचिच्चित्तसंक्षोभहेतुना प्रश्नकाले व्यारूढः सम्यक् प्रश्नार्थमनवधार्यास्मृतत्वाद्वाऽन्यथा ब्रूयात्स **मोहादित्युच्यते** । **भयं** त्रासः । यदि मदीयेन सत्यवचनेनायं जीयेत तत्रायं कदाचित् ज्ञातिधनादिबाधया मां व्यापादयेदित्याशङ्क्य । **सहस्रमिति** संख्येयविशेषावगतिर्वाक्यान्तरात्पणानामिति । **पूर्वं तु साहसं** प्रथमं 'पणानां द्वे शते सार्धे' (श्लो. १३८) इत्यादौ । **द्वौ मध्यमौ** साहसाविति विपरिणामः । **पूर्वं चतुर्गुणं** सहस्रमेवेत्यर्थः । वृत्तानुरोधेन विचित्रया शब्दवृत्त्या स एवार्थः कथ्यते ।। १२० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । सहस्रपणाः । पूर्वं प्रथमं साहसम् । द्वौमध्यमौ मध्यमसाहसंद्विगुणम् ।। १२० ।।

(३) **कुल्लूकः** । लोभेन मिथ्याभिधाने सति वक्ष्यमाणपणानांसहस्रंदण्ड्यः । मोहेन प्रथमं साहसंवक्ष्यमाणंभयेन च वक्ष्यमाणौ मध्यमसाहसौ मैत्रात्प्रथमसाहसं चतुर्गुणम् ।। १२० ।।

(४) **राघवानन्दः** । तानेवाह द्वाभ्यांलोभादिति । सहस्रं पणानामितिशेषः । पूर्वं प्रथमपरिभाषितं सपञ्चाशच्छतद्वयम् । मध्यमोमध्यमः शतानि पञ्च तेन सहस्रम् । पूर्वंचतुर्गुणं सहस्रद्वयम् ।। १२० ।।

(५) **नन्दनः** । लोभात्कौटसाक्ष्ये कृते ताम्रकार्षापणानांसहस्रं दण्ड्यः । पूर्वंसाहसं अध्यर्द्धशतद्वयं मध्यमौ मध्यमसाहस्रौ पञ्चशतानिमध्यमः साहस्रः तौद्वौसहस्रत्रयम् ।। १२० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। द्वाभ्यामाह **लोभादिति**। लोभादन्यथाकारी पुरुषः **सहस्रं** सहस्रपणान् दण्ड्यः। तु पुनः मोहात् अन्यथाकारी पूर्वसाहसं पञ्चाशदधिकशतद्वयपणपरिमाणं पूर्वसाहससंज्ञं दण्ड्यः। मैत्र्यात् पूर्वं प्रथमसाहसं चतुर्गुणम्। तत्राह याज्ञवल्क्यः॥ साशीतिः पणसाहस्रोदण्डउत्तमसाहसः। तदर्धमध्यमः प्रोक्तस्तदर्धमधमःस्मृतः।
पणानांसहस्रं तत्परिमाणमस्येतिपणसाहस्रः अशीत्या सहवर्तत इति साशीतिः अशीत्यधिकपणसहस्रपरिमितदण्डो यः स उत्तमसाहससंज्ञो वेदितव्यः॥ १२०॥

(७) **मणिरामः**। सहस्रं पणानांपूर्वं तु पूर्वं तु साहसं प्रथमसाहसं वक्ष्यमाणं पणसार्द्धशतद्वयमितं। मध्यमौ मध्यमसाहसौ वक्ष्यमाणौ पूर्वं चतुर्गुणं प्रथमसाहसं चतुर्गुणम्॥ १२०॥

(८) **गोविन्दराजः**। **लोभादिति**। लोभेनानृताभिधाने सति पणानां वक्ष्यमाणानां सहस्रं दण्ड्यः। मोहेन प्रथमसाहसं वक्ष्यमाणम्। भयेन वक्ष्यमाणसाहसौ द्वौ। मैत्र्यात्प्रथमसाहसं चतुर्गुणम्॥ १२०॥

**कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम्।**
**अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु॥ १२१॥**

(१) **मेधातिथिः**। मन्मथः **कामः**। यत्र स्त्रियो विवदन्ते तत्संबन्ध्यन्यतरां कामयमानोऽनृतं वदति अर्धतृतीयानि सहस्राणि दण्ड्यते। **क्रोधात्त्रिगुणं परं** प्रथमसाहसस्य प्रकृतत्वात्ततः परो मध्यः। सर्वान्ते लोकविज्ञानादिति वा उत्तम एव 'परः'। द्वेषः 'क्रोधः'। **अज्ञानादिति** यो विपरीतं प्रथमं ब्रूयाद्भ्रान्त्या, नतु प्रश्नकाले। **द्वे शते** दमः। प्रदर्शनमेव विपरीतं नाभिधानम्। **बालिश्यं** बालभावः अप्राप्तव्यवहारता। ईषदपक्रान्तबालभावस्याप्राप्तबुद्धिस्थैर्यस्यायं बालिश्यदण्डोऽन्यस्य त्वसाक्षितैव॥ १२१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पूर्वं प्रथमसाहसं दशगुणम्। परमुत्तमसाहसं। द्वेशते पणानाम्॥ १२१॥

(३) **कुल्लूकः**। स्त्रीसंभोगरूपकामानुरोधेन मिथ्यावदन्प्रथमसाहसंदशगुणं दण्डयः। क्रोधेन तु परंमध्यमसाहसंत्रिगुणवक्ष्यमाणम्। अज्ञानत्वाद्द्वेशते। बालिश्यादनवधानात्पणशतमेवदण्ड्य इति सर्वत्रानुषङ्गः॥ १२१॥

(४) **राघवानन्दः**। कामेतिदशगुणं पूर्वं प्रथमसाहसं ततः पञ्चशताधिकसहस्रद्वयम्। त्रिगुणं परमुत्तमसाहसं तेन न सहस्रत्रयम्॥ १२१॥

(५) **नन्दनः**। बालिश्याद्बाल्यात्॥ १२१॥

(६) **रामचन्द्रः**। कामात् कामतः अन्यथाकारी पूर्वसाहसं पञ्चाशदधिकशतद्वयपणपरिमितं दशगुणं दण्ड्यः। क्रोधात्तु त्रिगुणं उत्तमसाहसं त्रिगुणं दण्ड्यः॥ १२१॥

(७) **मणिरामः**। पूर्वं प्रथमसाहसं दशगुणं परं मध्यमसाहसं त्रिगुणं द्वेशतेपणशतद्वयं बालिश्यात् अनवधानात् शतं पणाः॥ १२१॥

(८) **गोविन्दराजः**। **कामादिति**। कामेनानृतं वदन् प्रथमसाहसं दशगुणं दण्ड्यः। क्रोधेनोत्तमसाहसं वक्ष्यमाणं त्रिगुणम्। अज्ञानेन द्वे शते पणे संपूर्णे मौरव्येण शतमेव च ॥ १२१ ॥

**एतानाहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डान्मनीषिभिः।**
**धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च ॥ १२२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। उभयप्रयोजनो दण्ड इति दर्शयत्यवश्यानुष्ठेयत्वाय। शास्त्राचारनिरूढा व्यवस्था 'धर्मः', तस्य 'अव्यभिचारो'ऽनिवृत्तिरुच्यते ॥ १२२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अव्यभिचारार्थं सर्वथानिश्चयार्थम् ॥ १२२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सत्यरूपधर्मस्यापरिलोपार्थमसत्यरूपाधर्मस्य च वारणार्थमेतान्कौटसाक्ष्यविषये पूर्वैर्मुनिभिरुक्तान्दण्डान्मन्वादयआहुः। एतच्च सकृत्कौटसाक्ष्ये ॥ १२२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अत्रार्थे मुन्यन्तरवाक्यं प्रमाणयति एतानिति। मुनिभिः प्रोक्तान्मन्वादयआहुः। तत्किमर्थं तत्राह धर्मस्येति। दण्डे कृते कोपि न स्वधर्माव्यभिचरेदित्याह। अव्यभिचारार्थमिति। अधर्मान्नियमनं निवृत्तिस्तस्मैच ॥ १२२ ॥

(५) **नन्दनः**। धर्मस्य सत्यस्य। अधर्मनिधनायासत्यस्य निवृत्तये ॥ १२२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। धर्मस्याव्यभिचारार्थं यथा धर्मस्य व्यभिचारः धर्मव्यतिक्रमः न भवेच्च पुनः अधर्मनियमाय पापापनुत्यर्थम् ॥ १२२ ॥

(७) **मणिरामः**। अव्यभिचारार्थं अनाशार्थं नियमाय नाशाय ॥ १२२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एतानिति**। शास्त्रव्यवस्थाया अपरिलोपार्थमव्यवस्थायाश्चोत्पत्तिवारणार्थं एतान् कूटसाक्षिविषये चिरन्तनैर्विद्वद्भिः प्रोक्तान् दण्डान् मन्वादयः प्राहुः। एतच्च सकृदधिकरणे ॥ १२२ ॥

(९) **भारुचिः**। त्रयः श्लोकाः दण्डप्रकृत्यर्थाः। साक्षिणां मिथ्यावचनेषु सहस्रं शतमिति च यदुक्तमत्र तत्रा...विकृतस्य वा। एवं प्रथममध्यमोत्तमसाहसग्रहणेषु विशेषतः सर्वं वक्ष्यति ॥ १२२ ॥

**कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः।**
**प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ १२३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। सकृदपराद्धानां पूर्वो दण्डः। अभ्यासात्प्रवर्तमानानां **दण्डयित्वा प्रवासनं** राष्ट्रान्निष्कासनं मरणं वाऽर्थशास्त्रे प्रयोगदर्शनात्तद्रूपत्वाच्च दण्डविधेः। **ब्राह्मणं तु विवासयेत्**। वाससोऽपहरणं विवासनं गृहभंगो वा। विवासं करोति तत्करोतीति णिचि णाविष्ठवदिति टिलोपे रूपम्। **त्रीन्वर्णानिति** क्षत्रादयस्त्रयः, ब्राह्मणस्य दण्डान्तरविधानात् ॥ १२३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रवासयेत् स्वदेशात्। विवासयेत् प्रवासयेदेव न दण्डयेत्। गोविन्दराजस्तुदण्डयित्वा नग्नीकुर्यादित्यस्यार्थमाह ॥ १२३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। भूयोभूयः कौटसाक्ष्यकरणेतु कौटसाक्ष्यमिति क्षत्रियादीन् त्रीन्वर्णान्कौटसाक्ष्यात्पूर्वोक्तेन दण्डयित्वा धार्मिकोराजा स्वराष्ट्राद्विवासयेत् ब्राह्मणन्तुधनदण्डव्यतिरेकेण स्वराष्ट्रान्निःसारयेत्। न जातु ब्राह्मणंहन्यात्सर्वपापेष्ववस्थितम्। राष्ट्रादेनंबहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतमिति ॥ धनसहितनिर्वासनस्याभिधास्यमानत्वात्। गोविन्दराजस्तु ब्राह्मणंपुनः पूर्वदण्डेन दण्डयित्वानग्नंकुर्यादितिव्याचष्टे। मेधातिथिस्तु ब्राह्मणस्य विवासस्त्वंवासोपहरणंगृहभङ्गोवेत्याचष्टे ॥ १२३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। दण्डोत्तरकालीनंकृत्यमाह कौटेति। विवासयेत् दण्डंविना वासयेत् स्वराज्यादन्यत्र। तथाच वक्ष्यति। न जातु ब्राह्मणंहन्यात्सर्वपापेष्वपिस्थितम्। राष्ट्रादेनंबहिः कुर्यात् समग्रधनमक्षतमिति। गोविन्दराजस्तु दण्डंकृत्वा नग्नंकुर्यात्। मेधातिथिस्तु वस्त्रशून्यंगृहमिति। विवासनपदस्यान्यत्र वसतौ भूरिप्रयोगात्अनयोर्व्याख्यानमसाध्विति। कौटसाक्ष्याभ्यासपरंवक्ष्यन्निति केचित् ॥ १२३ ॥

(५) **नन्दनः**। ब्राह्मणंदण्डयित्वा विवासयेत्। प्रवासनंप्रमापणम्। विवासनन्तुदेशान्तरप्रापणम्। कुर्वाणानित्यनेनबहुशः कौटसाक्ष्यकरणंसूचितम् ॥ १२३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। कौटेन कपटेन। ब्राह्मणं तुविवासयेत् ॥ १२३ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रवासयेत् देशान्निष्काशयेत् विवासयेत् अदंडयित्वा निःसारयेत्। अग्रेतथैववक्ष्यमाणत्वात् ॥ १२३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **कूटसाक्ष्यमिति**। क्षत्रियादीन् त्रीन्वर्णान् कृतकूटसाक्ष्यान् पूर्वोक्तेन दण्डेन दण्डयित्वा धर्मप्रधानो राजा राष्ट्रान्निर्वासयेत्। ब्राह्मणं पुनर्दण्डयित्वा नग्नीकुर्यात् ॥ १२३ ॥

(९) **भारुचिः**। ...अभ्यसतां तु कौटसाक्ष्यं त्रयाणां वर्णानां दण्डश्चायं यथाशास्त्रं प्रवासनं च मारणं शास्त्रान्तरे परिभाषितत्वादिह च तद भासान्नियसिनमेव...दण्डितमेव निवासयेदिति गृहभङ्गेन चायोजयेदित्यर्थं पूर्वस्मिश्चार्थे प्रवासनशब्दस्य निर्वासनं ब्राह्मणस्यैव। कामापराध उपस्थमाद्रे दण्डं पातयेत् न व्यतिरिक्तेऽन्यस्मिन्नङ्गे ताडनादिकुर्यात्। अन्नदोषे चोदरदण्डसदारप्रतिषेध आक्रोशापराधे च जिह्वाश्रयं। ताडने च हस्ताश्रयम्। पादापराधे च पादगतम्। चक्षुरपराधे च। एवं नासिकायां कर्णे चाधनापहारे च धनाश्रयम्। शरीरगते च पातनम् स्वशरीरगतं वैनयिकं कुर्यात् तस्यास्त्वन्यद्वक्ष्यति। येन येन यथा गेहेनेति। ध(नं ? न) हरणं चात्र निक्षेपादिविषयं द्रष्टव्यम्। यतो न पौनरुक्त्यं चोदरदण्डेन दडचेष्वपि च न दण्डमूलहरं पातयेत् ॥ १२३ ॥

**दश स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्।**
**त्रिषु वर्णेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥ १२४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **स्थान**शब्दो विषयपर्यायः। एतैः प्रदेशैः पीडयितव्यः प्रत्यपराधम्। शब्देन ब्राह्मणस्य धनदण्डविधानादक्षतत्वोपदेशः शरीरपीडापरिहारार्थः कल्पते–सत्यपि

धनस्य दशसङ्ख्यान्तर्भावे। वयं तु ब्रूमः–'समग्रधनमक्षत' मित्यत्र धनपीडाऽपि निषिद्धैव ब्राह्मणस्य। तस्माद्यः सकृत्कथंचिदपराद्धः श्रुतशीलाभिजनयुक्तस्य धनदण्डोऽपि नास्ति। तथा च गौतमस्तादृशमेव ब्राह्मणमधिकृत्य 'द्वौ लोके धृतव्रतौ' इत्युपक्रम्य 'षड्भिः परिहार्यश्चेत्यादि' (अ. ८ सू. १-१३) ॥ १२४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स्थानानि विषयान् ॥ १२४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। हैरण्यगर्भीमनुर्दशदण्डस्थानान्युक्तवान् यानि क्षत्रियादिवर्णत्रयविषये भवन्ति। ब्राह्मणः पुनर्महत्यपराधेऽक्षतशरीरोदेशान्निः सार्यते ॥ १२४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। धनदण्डप्रसंगेन दण्डान्तरंससंख्यंवक्ष्यन्ब्राह्मणस्य तद्भावमाह दशेति। अक्षतोहीनोधनाद्यैः ॥ १२४ ॥

(५) **नन्दनः**। व्रजेद्विवसेत् ॥ १२४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। दण्डस्य अङ्गच्छेदरूपस्य दशस्थानानिस्युः अक्षतः अव्रणः ब्राह्मणोव्रजेत् गच्छेत् ॥ १२४ ॥

(७) **मणिरामः**। तदेवस्पष्टयति दशेति। स्वायंभुवोमनुः दंडस्यदशस्थानानियानि अब्रवीत्। तानित्रिषुवर्णेषुस्युः ब्राह्मणः पुनः महत्यपराधेपिअक्षतः धनसहितः देशान्निः सार्य इत्यर्थः ॥ १२४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **दशेति**। हैरण्यगर्भो मनुर्दशदण्डस्याश्रयानुक्तवान्। ये क्षत्रियादिवर्णत्रयविषये भवन्ति ब्राह्मणं पुनर्महत्यपि अपराधे अक्षतशरीरं देशान्निर्वासयेत् ॥ १२४ ॥

(९) **भारुचिः**। शरीरस्थानादि दश दण्डस्य ॥ १२४ ॥

**उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम्।**
**चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ॥ १२५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **उपस्थं** प्रजनधर्मः स्त्रीपुंसयोः। उद्देशमात्रमिदं विनियोगस्तूत्तरत्र भविष्यति। यत्र च दण्डविशेषो नाम्नातस्तत्र यो येनैवाङ्गेनापराद्धः स तत्रैव पीडयितव्यः। तत्रागम्यागमनउपस्थनिग्रहः। चौर्यं **उदरत** आहारनिवृत्त्यादिना। वाग्दण्डपारुष्ये **जिह्वा-हस्तयोः**। पादव्यलेन व्यक्तिक्रमन्पादयोः। विवृत्य विश्रब्धं राजदारान्वीक्षमाणश्**चक्षुषोः**। अनुलेपनगन्धमाजिघ्रन्नासिकायाम्। रहसि राजानं मन्त्रयमाणं कुड्यपटान्तरित उपशृण्वन् **कर्णयोः**। **धने** प्रसिद्धो दण्डः। **देहे** मारणं महापातकिनः ॥ १२५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उपस्थादीनांछेदनादिदण्डविषयत्वम्। धनस्यतु ग्रहंदण्डः। देहःकृत्स्नस्ताडनवधादिदण्डविषयः ॥ १२५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। लिङ्गादीन्येतानि दशदण्डस्थानानि अतस्तत्तदङ्गेनापराधे सत्यपराधलाघवगौरवापेक्षया तत्तदङ्गताडनवेदनादि कर्तव्यम्। अल्पापराधे यथाश्रुतंधनदण्डः। देहदण्डोमारणंमहापातकादौ ॥ १२४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तानेव दण्डानाह उपस्थमिति। एषांविच्छित्तिःकार्येत्यर्थः। धनंचग्राह्यम् ॥ १२५ ॥

(५) **नन्दनः**। तान्येवदशस्थानान्याह उपस्थमुदरमिति। पञ्चमंस्थानमितिशेषः ॥ १२५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। दशस्थानान्याह उपस्थेति ॥ १२५ ॥

(७) **मणिरामः**। दंडस्य दशस्थानान्याह। उपस्थमित्यादि। यदंगेनापराधः तदंगस्य-प्रतिषेधगौरवापेक्षयाताडनछेदनादि कर्तव्यंअल्पापराधे पूर्वोक्तधनदण्डः कार्यः ॥ १२५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **उपस्थमिति**। लिङ्गादेतानि दण्डस्थानानि ततस्तदङ्गापराधे अपराध भूयिष्ठापेक्षया तत्तदङ्गापराधताऽनादिकर्तव्यम्। अल्पापराधे तु धनदण्ड इति ॥ १२५ ॥

(९) **भारुचिः**। तानि पुनः विशिष्टजातिपरिमाणस्य द्रव्यस्य संज्ञार्थं उपदेशो दण्ड-विशेषार्थः ॥ १२५ ॥

**अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः।**
**सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्डचेषु पातयेत् ॥ १२६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तानुक्तदण्डचेष्वपराधेषु मातृकाश्लोकोऽयम्। एतदर्थानुसारेण सर्वत्र दण्डक्लृप्तिः कर्तव्या। तत्र पौनःपुन्येन प्रवृत्तिरनुबन्धः। प्रवृत्तिकरणं वा, अनुबध्यते प्रयुज्यते येन तस्मिन्कर्मणि। तं **परिज्ञाय**। किमयमात्मकुटुम्बक्षुदवसायेन धर्मतंत्रप्रसङ्गेन वा—अथ मद्यद्यूतादिशौण्डतया—तथा प्रमादाद्बुद्धिपूर्वं वा परप्रयुक्तस्वेच्छया वेत्यादिरनुबन्धः। **देशो** ग्रामारण्यगृहजलजन्मप्रसवभूम्यादिः। **कालो** नक्तं दिवादिः। सुभिक्षदुर्भिक्षबाल्य-यौवनादि वा। **सारः** शक्त्यशक्ती आढ्यत्वदारिद्र्ये। **अपराधो**ऽष्टादशानां पदानामन्यतमः। एतत्सर्वं पौर्वापर्येण निरूप्य तथा **दण्डं पातयेत्**कुर्याद्यथा स्थितिः सांसारिकी न भ्रश्यतीति ॥ १२६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनुबन्धंपुनःपुनःकरणम्। देशंग्रामवनादि। कालं रात्र्यादि। सारं चित्तस्यगुरुताम्। अपराधं न्यूनाधिकम् ॥ १२६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पुनः पुनरिच्छातोऽपराधकरणमपेक्ष्य ग्रामारण्यादिचापराधिस्थानं-रात्र्यादिकंवाऽपराधस्यापेक्ष्य सारंचापराधकारिणोधनशरीरादिसामर्थ्यमपराधं च गुरुलघु-भावेन चालोक्य दण्डनीयेषु दण्डंकुर्यात्। एतच्चाभिहिताभिधास्यमानदण्डशेषभूतम् ॥ १२६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। दण्डचेषु राज्ञातावद्यत्नवता भाव्यमित्याह अनुबन्धमिति। अनुबन्धंसकृदसकृदाद्यपराधकारणम्। सारापराधौ अपराधकारिणोधनदेहादिसामर्थ्यं सारं अपराधंच लघुगुरुतया विज्ञाय। आलोच्येतिक्वचित्पाठः विचार्येति ॥ १२६ ॥

(५) **नन्दनः**। दण्डविधाने राज्ञा बोद्धव्यमाह अपराधमिति। सारासारदण्डस्य बलाबलम् ॥ १२६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अनुबंध पुनः पुनरिच्छातोऽपराधकारणं ।। १२६ ।। १२७ ।। १२८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अनुबन्धमिति**। पुनः पुनरिच्छातोऽपराधकारणमवलोक्य ग्रामारण्यादि चापराधस्थानं, दिवाराल्यादिकं चापराधकालं सम्यगवेक्ष्य सारं चापराधिनो-धनशरीरादि सामर्थ्यमपराधं च गुरुलघुभावेनालोक्य दण्डनीयेषु दण्डं कुर्यात् इतीदमुक्तानु-क्तदण्डशेषभूतम् ।। १२६ ।।

(९) **भारुचिः**। किं तर्हि– अनुबन्धं परिज्ञायेति। केचिदत्र व्यतिक्रमानुष्ठानस्य पौनःपुन्यं क्रियानुष्ठानाभ्यासलक्षणमाह । वयं पुनरनुबन्धमपराधकारणमाचक्ष्महे । अनुबध्यते अनेनेति अनुबन्धो लोभादिपदार्थः। किं तदपराधश्चौर्यादिः। तं परिज्ञाय। किमयं चौर्यादिरपराधोऽस्य कामात् उतक्रोधात्। अथ लोभान्मोहाद्वा। अथात्मकुटुम्ब-स्थित्यै धर्मतन्त्रानुग्रहायवेत्येवम्। अस्य चापराधहेतोरनुबन्धस्य विज्ञाने प्रयोजनम्। तद्वे-दाद्दण्डविशेषो यथा स्यादिति। देशकालौ च तन्वतः परिज्ञायेति वर्तते। तत्र गृहरथ्या-खलक्षेत्रस्वविषयादिनिर्देशः अपराधेऽपेक्षितव्यः। क्वायमपराधः। तथा कालः सुभिक्षदुर्भिक्षाकुलानाकुलवयोऽवस्थादिः। सारं चापराधस्य द्रव्याभिजनादिः। तद्विपर्ययं चासारं, निदर्शनार्थत्वासारग्रहणस्यापराधं चावेक्ष्य गुरुबन्धुत्वेन ज्ञानाज्ञानकृतं वस्त्र-हिरण्यादिकृतं वा दण्डं दण्डचेषु।

**अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनम्।**
**अस्वर्ग्यं च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।। १२७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अधर्मप्रधानदण्डमधर्मदण्डनम्। पूर्वोक्तमनपेक्ष्येदं शास्त्रपाठ-मात्रेण राजेच्छया रागद्वेषादिभिर्वा। तद्यशोनाशकं कीर्तेश्च विच्छेदकम्। स्वदेशे गुण-ख्यातिर्**यशः** देशान्तरे **कीर्तिः**। जीवतो वा पूर्वकालिकं **यशः** उत्तरकालिकी **कीर्तिः**। निर्दोष-गुणवतीकीर्तियशसी। अन्यो वा भेद उन्नेयोऽर्थवादत्वात्। **अस्वर्ग्यं** स्वर्गप्राप्तौ कर्मान्तर-जन्यायां प्रतिबन्धकम्। **परत्रापीति** श्लोकपूरणार्थम्, स्वर्गस्यामुष्मिकत्त्वात्- ।। १२७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यशोबहुभिःपरैर्गुणानांज्ञातम्। कीर्तिस्तत्कथनम् ।। १२७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। जीवतः ख्यातिर्यशः मृतस्य ख्यातिः कीर्तिः। यस्मादनुबन्धाद्यनपेक्ष्य दण्डनमिहलोके यशोनाशनंमृतस्य च कीर्तिनाशनंपरलोके च धर्मान्तरार्जितस्वर्गप्रतिबन्धकं तस्मात्तत्परित्यजेत् ।। १२७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। वैपरीत्ये। दोषमाह अधर्मेतिद्वाभ्याम्। अधर्मेणदण्डनेऽयशो-जीवति मृतेऽकीर्तिरित्यनयोःकथंचिद्भेद इति केचित्। यशोज्ञातिप्रशंसाकीर्तिर्जनप्रशं-सेतिनृसिंहतापनीयभाष्ये अस्वर्ग्यमधर्मदण्डनेन पापोत्पत्तेः ।। १२७ ।।

(५) **नन्दनः**। अदण्डयदण्डनमिति गुणवत्ताप्रसिद्धिर्यशः तत्कथनंकीर्तिः ।। १२७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। लोकेअधर्मदण्डितं जीवतः यशोघ्नं मृतस्यकीर्तिनाशनम् तत् अधर्मदंडनं परिवर्जयेत् ।। १२७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अधर्मदण्डनमिति**। यस्मादनुबन्धाद्यनपेक्ष्य दण्डनमिह लोके यशसो जीवनख्यातेर्नाशमनृतस्य च परलोके समनन्तरनरकपातात्कर्मान्तराजितस्वर्गप्रतिबन्धकं तस्मात्तत्परिहरेत् ॥ १२७ ॥

**अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ॥**
**अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥ १२८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वश्लोकोऽनुबन्धादिनिरूपणविधिशेषः। अनेन त्वनपराधानां दण्डनं प्रतिषिध्यते सापराधानां विधीयते। वृत्त्यर्थतां दण्डस्य मन्यमानोऽनुग्रहेणाहासीदिति (अयशः) ॥ १२८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अयशोयशोनाशनम् ॥ १२८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। राजा दण्डानर्हान्धनलोभादिनादण्डयन् दण्डार्हांश्चानुरोधादिनोत्सृजन् महतीमख्यातिप्राप्नोति नरकंचव्रजति ॥ १२८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अस्वर्ग्यमित्येन स्वर्गायोग्यत्वमुक्तं न केवलमेतत्प्रत्युत नरकंचैवेतीत्याह अदण्ड्यानिति ॥ १२८ ॥

(५) **नन्दनः**। दण्ड्यादण्डनेऽपि राज्ञांदोषमाह अदण्ड्यानिति ॥ १२८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अदण्ड्यानिति**। राजा दण्डानर्हान् दण्डयन् दण्डार्हांश्चोत्सृज्य महदयशः प्राप्नोति नरकं च गच्छति ॥ १२८ ॥

**वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनंतरम् ॥**
**तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतःपरम् ॥ १२९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यो गुणवानीषत्प्रथममेवापराद्धः स वाचा निर्भर्त्स्यते 'न साधु कृतवानसि मा पुनरेवं कार्षीरिति'। तथा विनीयमाने यदि न निवर्तते 'कोऽव्रदोष' इति वा प्रतिजानीयात्तदा धिग्धिगादिशब्दैः परुषवचनैः कुत्सार्थैः क्षिप्यते। ततोऽप्यनिवर्तमानो यथाशास्त्रं धनेन दण्डनीयः। तदप्यगणयन्नैश्वर्यादिना हंतव्यः। वधदण्डश्च ताडनाङ्गच्छेदनादि, न मरणमेव ॥ १२९ ॥ यत आह

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वाग्दण्डं ताडयतैनमित्युक्तं। प्रथमं कूटसाक्ष्यादौप्रथमप्रवृत्तौ। धिग्दण्डं धिग्त्वामिति तदनन्तरं द्वितीये। तृतीये तृतीयवारकरणे। अतः परं चतुर्थवारापराधे वधदण्डमङ्गच्छेदम् ॥ १२९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। न साधुकृतवानसि मैवंभूयः कार्षीः इत्येवंवाङ्निर्भर्त्सनंप्रथमापराधेगुणवतः कुर्यात् तथापि यदि नोपशाम्यति तदा धिक्जाल्ममजीवनिस्ते पापस्य भूयादित्येवमादितस्य कार्यम्। तदापि यद्यसन्मार्गन्न निवर्त्तते तदा धनदण्डमस्य तृतीयं कुर्यात्। एवमपि चेन्नावतिष्ठते तदातः परंवधदण्डंताडनाद्यङ्गच्छेदरूपंतस्य कुर्यान्न मारणम् ॥ १२९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। दण्डत्वेन देहपदं वाग्दण्डंउपलक्षयतीतिकृत्वाह वाग्दण्डमिति। गुणवतोहि वाग्दण्डः सचैवं नसाधुकृतंत्वयेत्यादिः प्रथमापराधे। तथापि न शाम्यतीति चेत् धिग्जन्मा त्वमिति द्वितीयः। वधदण्डंकर्णच्छेदादि प्रत्येकं कुर्यात्॥ १२९॥

(५) **नन्दनः**। दण्डनक्रममाह वाग्दण्डमिति। वाग्दण्डंपरुषभाषणम्। धिग्दण्डः सदोमध्याद्वाचानिर्भर्त्स्यं निष्कासनम्। धनदण्डः स्वर्णादानम्। वधदण्डः शरीरपीडनम्। कुतएतदुत्तरश्लोकानुगुण्यात्। एते दण्डाः क्रमादल्पतरेऽल्पे महति महत्तरे वापि प्रयोज्या अपराधे॥ १२९॥

(६) **रामचन्द्रः**। वाग्दण्डंप्रथमं कुर्यात्। धिग्दडं धिक्तामित्येवंरूपं तदनन्तरम्। तृतीयं धनदण्डम्। वधदण्डं अङ्गच्छेदरूपम्॥ १२९॥

(७) **मणिरामः**। दंडक्रममाह वाग्दंडमिति। मैवं पुनःकार्षीदिति वाग्दण्डं। धिक्-जन्म माजीव इत्यादि धिग्दंडं॥ १२९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **वाग्दण्डमिति**। न साधु कृतवानसि नैवं भूयः कार्षीः इत्येवं वाऽग्निर्भर्त्सनं कर्मभिरधर्मापराधे गुणवतः कुर्यादिति। यदि तु तथा नोपशाम्यति तदा-धिङ्जाल्म, त्वामभिभवति स्तेयं भूयादित्येवमादितस्य कार्यं ततोऽपि यदि तन्मार्गान्न निवर्तते तदा धनदण्डं तृतीयं तस्य कुर्यात्। एवमपि चेन्नावतिष्ठते, अतः परं वधताडनाङ्गच्छेदादि-रूपं तस्य कुर्यात्॥ १२९॥

(९) **भारुचिः**। अपराधापेक्षयैषां दण्डप्रक्लृप्तिः क्रमेणस्यात् विधिश्चात्र ताडने न तु मारणे सामर्थ्यात्॥ १२९॥

**वधेनापि यदा त्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात्।**
**तदैषु सर्वमप्येतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम्॥ १३०॥**

(१) **मेधातिथिः**। मारणं चेद्वधः किं तदन्यद्यन्न शक्यते–कथं चैनं पापं निगृह्णीते-त्यादिपरुषवाक्यपूर्वे दुर्विनीतेषु धनदण्डवधौ समुच्चेतव्यौ। कृतेऽपि शरीरदण्डे यदि नाव-तिष्ठते ततो न कृतनिग्रह इत्युत्सृजेदपि तु स वधदण्डः कर्तव्यः। धनवधदण्डयोश्च पुनः-प्रवृत्त्यर्थोऽयमारम्भः। वाग्दण्डे तु मृदुत्वात्कः पृच्छति। धनेन निगृहीतस्य पुनर्वधो दृष्टो-"ऽङ्गुलिग्रन्थिभेदस्येति" (९।२७७)॥ १३०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सर्वमेवैतद्दृशविधंदण्डंप्रागुक्तं वाग्दण्डादित्रयंच॥ १३०॥

(३) **कुल्लूकः**। यतोवक्ष्यति वधेनापि यदा त्वेतानिति। व्यस्तेनाङ्गच्छेदेनापि दण्डचान्वशे कर्तुन शक्नुयात्तदैतेषु सर्ववाग्दण्डादिचतुष्टयंकुर्यात्॥ १३०॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तदण्डेन यदा न शाम्यन्ति तदा वाग्दण्डादिचतुष्टयंसंप्रयोक्त-व्यमित्याह वधेनेति। एतान् पापिनः। चतुष्टयमिति उपस्थादीनांवधदण्डत्वेन संग्रहात्॥ १३०॥

(५) **नन्दनः**। वधेन शरीरपीडनेन॥ १३०॥

(६) **रामचन्द्रः**। तत् तस्मात्कारणात् एषुचतुर्विधेषुदण्ड्येषुएतत्सर्वं चतुष्टयं प्रयुञ्जीत ।। १३० ।।

(७) **मणिरामः**। एतान् दंड्यान् ।। १३० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **वधेनेति**। यदा पुनस्ताऽनाङ्गच्छेदनादिनापि एतान्वशीकर्तुं न शक्नुयात्तदैष्वपराधिषु एतद्विग्दण्डादि चतुष्टयमपि सर्वं कुर्यात् ।। १३० ।।

(९) **भारुचिः**। तथा च दर्शयति अविनेयत्वादेतेषाम्। कृतेऽपि शरीरे दण्डे यदि नोपतिष्ठेतापराधात् ततोऽस्य वाग्दण्डादि चतुष्टयं समस्तं क्रियते। न पुनरपराधी कृतनिग्रह इत्युत्सृज्येत् व्यवस्थार्थं लोकस्य इतरथा मत्स्यन्यायः स्यात्। धनदण्डार्थश्चायं पुनरारम्भः। वाग्दण्डधिग्दण्डौ तु मृदुत्वात्का प्रयच्छतीति ।। १३० ।।

**लोकसंख्या संज्ञाः प्रथिता भुवि।**
**ताम्ररूप्यसुवर्णानाः ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ।।१३१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **ताम्रादीनां** लिक्षादयः **संज्ञा भुवि** प्रसिद्धाः। "किं शास्त्रपरिभाषया। तत्र वृद्धव्यवहारो गवादिशब्दवत्" इत्यत आह **लोकसंव्यवहारार्थम्**। अर्थशब्दो विषयवचनः। तेन व्यवहारप्रसिद्धिराश्रिता भवति। "ततश्च गवादिशब्दतुल्यतया व्यवहारात् प्रसिद्धः-किं शास्त्रोपदेशेन"। उच्यते। नियमार्थ उपदेशः। अन्येषामपि परिमेयानामयस्कांस्यसुवर्णादीनामेताः संज्ञाः सन्ति, तन्निवृत्त्यर्थः। क्वचिद्देशे परिमाणे भेदोऽप्यस्ति, तन्निवृत्त्यर्थश्च। क्वचित् संबन्धतया नियम्यते। तथा च क्वचिदष्टाचत्वारिंशता माषबन्धं क्वचिच्चतुःषष्टया व्यवहारात् शास्त्रोपदेशेन शतेन। तदेतत्सर्वं नियम्यते। अथ चैवं संबन्धः क्रियते-**याः संज्ञा भुवि प्रथितास्ता लोकसंव्यवहारार्थं वक्ष्यामि**। सर्वस्य लोकस्याभिरेव संव्यवहारो यथा स्याद्दण्डादिनियोगस्याप्यन्यथा प्रसिद्धिः ।। १३१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। संव्यवहारार्थं दृष्टादृष्टव्यवहारसिद्ध्यर्थम् ।। १३१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। ताम्ररूप्यसुवर्णानां याः पणादिसंज्ञाः क्रयविक्रयादिलोकव्यवहारार्थपृथिव्यां प्रसिद्धास्ताःदण्डाद्युपयोगार्थंसाकल्येन कथयिष्यामि ।। १३१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। धनदण्डस्य ताम्रपणसुवर्णादिभेदेन नानात्वात्तद्दण्डप्रसंगेन तत्परिमाणं प्रतिजानीते लोकेति। संज्ञाधर्मशास्त्रपरिभाषाः ।। १३१ ।।

(५) **नन्दन** : चतुष्टयंवाग्दण्डादिकं वक्ष्यमाणेषु धनदण्डादिकेष्वियत्तानियामिकामानसंज्ञा प्रस्तूयते लोकसंव्यवहारार्थमिति। संव्यवहारः क्रयविक्रयादिः ।। १३१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। ताम्ररूप्यसुवर्णानांपरिमाणमाह लोकेति। याः संज्ञाः प्रथिताः प्रसिद्धास्ताः संज्ञाः प्रवक्ष्यामि ।। १३१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **लोकसंव्यवहारार्थमिति**। ताम्ररूप्यसुवर्णानां पणादिसंज्ञा क्रयविक्रयलोकव्यवहारार्थं पृथिव्यां विशेषेणाभिधास्याम्युपयोगार्थं दण्डादेः ।। १३१ ।।

**जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।**
**प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ १३२ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । इमं श्लोकं केचिन्नाधीयते त्रसरेणौ विप्रतिपत्त्यभावात् । गवाक्षकुचिकाविवरप्रविष्टे सूर्ये यो रेणुर्दृश्यते स त्रसरेणुः । अन्तरशब्दो विवरपर्यायः । **प्रथमं तत्प्रमाणानामिति** ॥ १३२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । भानौरश्मौ । रजोऽदन्तेपुंसि । प्रमाणानां परिमाणानांमध्ये ॥ १३२ ॥

(३) **कुल्लूकः** । गवाक्षविवरप्रविष्टसूर्यरश्मिषु यत्सूक्ष्मंरजोदृश्यते तदृश्यमानपरिमाणानांप्रथमं त्रसरेणुंवदन्ति ॥ १३२ ॥

(४) **राघवानन्दः** । ताआह जालेतिषड्भिः । जालं गवाक्षं तदन्तरगे भानौ सूर्यकरे यत्सूर्यमरीचिस्थंसूक्ष्मंदृश्यते तत्प्रमाणानां परिमाणपरिच्छेद्यानांमध्ये प्रथमं यद्रजोधूलिः त्रसरेणुं त्रसरेणुसंज्ञकम् ॥ १३२ ॥

(५) **नन्दनः** । भानौ रविकिरणे ॥ १३२ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । जालान्तरजः प्रमाणानां परिमाणानां प्रथमं त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ १३२ ॥

(७) **मणिरामः** । जालांतरगतेभानौ गवाक्षविवरप्रविष्टसूर्यरश्मिषु ॥ १३२ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **जालान्तरगत इति । त्रसरेणव इति । सर्षपा इति । पलमिति त इति । धरणानीति** । गवाक्षादिप्रविष्टाभिरादित्यरश्मिषु यद्रजो दृश्यते तत् त्रसरेणुः । तेऽष्टौ लिक्षैका प्रमाणेन विज्ञेया ताःलिक्षास्तिस्रो राजसर्षपः । ते त्रयः गौरसर्षपः । ते षट् यवो मध्यमः न स्थूलो नापि सूक्ष्मः त्रिभिर्यवैः कृष्णलम् । पञ्चभिः कृष्णलैः भाषः । षोडश माषाः सुवर्णः । चत्वारः सुवर्णाः पलम् । दशपणाधरणम्, कृष्णलद्वयं तुलया धृतं रूप्यमाषको बोधव्यः । षोडशरूप्यमयमाषकाः रूप्यं धरणं पुराणं वोच्यते । राजतो रूप्यसम्बन्धी कर्षप्रमाणः ताम्रमयः कार्षापणः इति विज्ञेयः दशरूप्यधरणानि रूप्यशतमानो बोद्धव्यः चतुर्भिः सुवर्णैर्निष्कः प्रमाणेन विज्ञेयः ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३७ ॥

**सरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ।**
**ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥ १३३ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । तत्रोपचितपरिमाणाः । न पुनरयं **लिक्षा**शब्दः स्वेदजक्षुद्रजन्तुवचनः । **तास्तिस्रो लिक्षा** एको राजसर्षपाख्यपरिमाणपदार्थः । एवं योजनीयम् । ततश्च ये व्यभिचारयन्ति न यथोक्तपरिमाणा यवादयोऽर्था इति ते निरस्ता भवन्ति । नहि यवादीनामर्थानां परिमाणम् । "कथं तर्हि यथोक्तपरिमाणार्थः" । यथा चोपक्रान्तसंज्ञाः प्रवक्ष्यामि परिमाणमिति । त्रसरेणुश्चार्थो नियतपरिमाणस्तेनैतत्सर्वं निश्चेयम् । शक्नुवन्ति च

निपुणास्त्रसरेणून् संहन्तुमिति नानारभ्यार्थोपदेशः। एतत्स्वर्णकाराभिमानसंख्यास्मृतिरूपं निर्बाधं भवति। तत एव वस्तु निपुणतोऽशेषतोऽवधारयितव्यम्॥ १३३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। लीक्षा यूकाडिम्बं। राजसर्षपोराजिका॥ १३३॥

(३) **कुल्लूकः**। अष्टौ त्रसरेणवोलिक्षैकापरिमाणेन ज्ञेया तास्तिस्रोलिक्षाराजसर्षपोज्ञेयः ते राजसर्षपास्त्रयोगौरसर्षपोज्ञेयः॥ १३३॥

(४) **राघवानन्दः**। लिक्षेतिसंज्ञान्तरमेवमुत्तरत्र। ताः लिक्षास्तिस्रः राजसर्षपः। तेत्रयोगौरसर्षपइत्यन्वयः॥ १३३॥

(६) **रामचन्द्रः**। अष्टौत्रसरेणवएकालिक्षा तास्तिस्रः लिक्षाराजसर्षपः। ते त्रयोराजसर्षपाएकोगौरसर्षपः॥ १३३॥

(७) **मणिरामः**। ताः लिक्षाः राजसर्षपाः॥ १३३॥

(९) **भारुचिः**। सर्वसंज्ञार्थाल्लोकः तत्र य एतेषु संछन्नेषु कुटीमठेषु आदित्या.. तद्गताः...णवस्त्रसरेणवः॥ १३३॥

**सर्षपाः षट् यवो मध्यस्त्रियवंत्वेककृष्णलम्।**
**पञ्चकृष्णलिको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश॥ १३४॥**

(१) **मेधातिथिः**। "मध्यशब्दो भ्रान्तिहेतुः। परिमाणपरत्वे नात्यन्तमपचितो नातिस्थूलः सर्षपपरिमाण इति मध्यग्रहणमर्थवत्। संज्ञापरत्वे तु न किंचिन्मध्यशब्देन, यवशब्दसंज्ञात्वात्"। तदसत्। नायं संदर्भो येन प्रत्यवयवं प्रयोजनमुच्यते। पद्यग्रन्थोऽयम्। तत्र गतार्थमपि वृत्तानुरोधार्त्किचिदुच्यते। अस्ति चास्यान्वयः। अनन्विताभिधानं हि वाक्यार्थविरोधान्न प्रमाणम्। न चावगताभिधानमपि। परिमाणभेदांस्त्रसरेणुशतमानादीनाद्यन्तानपेक्ष्य मध्यपठितत्वान्**मध्यो** यवाख्यः परिमाणविशेषः। पञ्चकृष्णला अस्मिन्सन्ति **पञ्चकृष्णलिकः**। "अत इन ठनौ" इनि ठन् कर्त्तव्यः। 'पञ्चकृष्णलक' इति पाठे कबन्तो बहुव्रीहिः। ते कृष्णलाः षोडश एकः **सुवर्णः**॥ १३४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। मध्योयवोनातिसूक्ष्मोनातिमहान्वा॥ १३४॥

(३) **कुल्लूकः**। गौरसर्षपाः षट् मध्योन स्थूलोनापि सूक्ष्मोयवोभवति त्रिभिर्यवैः कृष्णलंरक्तिकेति प्रसिद्धं पञ्चभिः कृष्णलैर्माषः षोडशमाषाः सुवर्णः स्यात्। पुल्लिङ्गश्चायंपरिमाणवचनः॥ १३४॥

(४) **राघवानन्दः**। यवोमध्यः स्थूलसूक्ष्मभिन्नः। त्रयोयवापरिच्छेदकायस्य तदेक कृष्णलं। ते षोडश माषाः सुवर्णइत्यन्वयः॥ १३४॥

(५) **नन्दनः**। संव्यवहारेषु सूक्ष्मोमध्यमस्थूल इति त्रिविधोयवउक्तः अंशद्वयभयवस्य लक्षणमुक्तंसर्षपाषडयवोमध्य इति॥ १३४॥

(६) **रामचन्द्रः**। षट् सर्षपाः मध्योयवः नस्थूलोनसूक्ष्मः। त्रियवंत्रयोयवाः एक कृष्णलम् पञ्चकृष्णलकोमाषः। ते माषाः षोडशएकः सुवर्णः ॥ १३४ ॥

(७) **मणिरामः**। सर्षपाः गौरसर्षपाः षट्यवोमध्यः नस्थूलोनातिसूक्ष्मः एतादृशोयवः। कृष्णलं रक्तिकेतिप्रसिद्धं। ते माषाः षोडशसुवर्णः ॥ १३४ ॥

**पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ।**
**द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रूप्यमाषकः ॥ १३५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **पल**मिति संज्ञानिर्देशः। **सुवर्ण**मिति संज्ञी। **चत्वार** इति विशेषणम्। **धरण**मिति संज्ञा। **दश पलानी**ति संज्ञी। **द्वे कृष्णले** इति संज्ञा। **रूप्यमाषक** इति समुदायसंज्ञां मन्यन्ते। "ननु रूप्यविषयमाषकनिर्देशे द्वे कृष्णले प्रतिपत्तव्ये इति प्रतिजानीते। ततश्चानिश्चयः।" **समधृते**। तुलासूत्रके उन्मानादिहीने यदि धार्येते। प्रयोजनं मध्यशब्दवत्, यतोऽसमयाद्धार्यमाणतया परिमाणानिश्चयः ॥ १३५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पलानि दश सुवर्णस्य धरणम् ॥ १३५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। चत्वारः सुवर्णाः पलंस्यात् दशपलानि धरणं कृष्णलद्वयंसमंकृत्वा तुलया धृतंरूप्यमाषकोबोद्धव्यः ॥ १३५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। सुवर्णाश्चत्वारः पलंस्यात्। पलानि दश धरणं धरणसंज्ञक परिमाणान्तरम् रूप्यमाषमानमाह द्वेइति। समधृते समंकृत्वा तुलयाऽवधृते ॥ १३५ ॥

(५) **नन्दनः**। उत्तरार्द्धेन रूप्यमानमुच्यते। समधृते सहोन्मिते ॥ १३५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। चत्वारः सुवर्णाः पलम् दश पलानि धरणसंज्ञं भवति। रूप्यपरिमाणमाह। द्वेकृष्णले रूप्यमाषकः ॥ १३५ ॥

(७) **मणिरामः**। दशपलानिधरणं समधृते तुलातोलितः तथा च रक्तिकाद्वयस्य रूप्यमाष इति संज्ञेत्यर्थः ॥ १३५ ॥

**ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः ।**
**कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥ १३६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **षोडश**रूप्यमाषका रूप्यस्य धरणं भवति। **पुराण** इति संज्ञान्तरम्। **कार्षापणः** पण इति च द्वे संज्ञे ताम्रकर्षस्य। कर्षाख्यश्च शब्दो लोकत एव प्रसिद्धार्थ इह गृह्यते व्यभिचारदर्शनासत्त्वेन न कृष्णलादिवत्परिभाष्यते ॥ १३६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। राजतोरजतसंबन्धी। पुराणोधरणंचेतिमाषाः षोडश। कार्षिकः कर्षः ताम्रिकः ताम्रः। कार्षापणःपणश्चोच्यते। अत्रचानुक्ते सुवर्णमनाग्रहणात् कर्षः पलचतुर्थभागः पञ्चकृष्णलकः षोडशमाषात्मकोग्राह्यः ॥ १३६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ते षोडशरूप्यमाषकारौप्यधरणंपुराणश्च राजतोरजतसंबन्धी स्यात्।

कार्षिकः ताम्रमयः कार्षापणः पणइति विज्ञेयः। कार्षिकश्च शास्त्रीयपलचतुर्थभागोबोद्धव्यः। अतएव पलंकर्षचतुष्टयमित्याभिधानिकाः ॥ १३६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। राजतोरजतसंबन्धी। ते रूप्यमाषकाः षोडश धरणंस्यात् राजतं धरणमस्यैव संज्ञान्तरं पुराणइति। पणमानमाह कार्षइति। कार्षिकः कर्षप्रमाणः स एव पणइति पणएव कार्षापणः। ताम्रिकः ताम्रमयश्चेत्कार्षिके ताम्रिके पणइत्यभिधानात् ॥ १३६ ॥

(५) **नन्दनः**। ते रूप्यमाषकाः षोडशराजतंधरणम्। पुराणमनादिसिद्धं। उत्तरार्द्धेन ताम्रिकमानंसूच्यते माषषोडशकस्य कर्षइति संज्ञा लोकप्रसिद्धा कर्षेणमितः कार्षिकः ताम्रस्य विकारस्ताम्रिकःकर्षमिति। ताम्रीकृतःपणोत्रव्यवहारेकार्षापणसंज्ञोज्ञेयः नतुलोकप्रसिद्धोरूप्यादिमान इत्यर्थः ॥ १३६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तेषोडशमाषाः रजतः धरणं भवति। राजतः पुराणेतिसंज्ञो भवति। कर्षःस्याद्दशमाषिकइति निघण्टुः। पलचतुर्थांशकः कषकयोन्मानितः कार्षिकः ताम्रस्य विकारः ताम्रिकः कर्षसंमिततताम्रविकारः ढब्बूकस्यार्धः ॥ १३६ ॥

(७) **मणिरामः**। तेषोडश रूप्यमाषकाः षोडशधरणं पुराणश्चराजतः। तथा व द्वात्रिंशद्रक्तिका परिमितस्य रौप्यधरणं रौप्यपुराणश्चेति संज्ञाद्वयंज्ञेयं। कार्षिकः ताम्रमयः कार्षापणः पण इति ज्ञेयः। कार्षिकः पलचतुर्थांशः तत्परिमिततताम्रघटितस्पटे ब्रूक सदृशस्यपण इति संज्ञा। कार्षापण इति च संज्ञाज्ञेयेत्यर्थः ॥ १३६ ॥

**धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः।**
**चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥ १३७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **शतमान** इति संज्ञा दशानां धरणानाम्। **रजतशब्देन** सुवर्णमप्युच्यते। तेन रूप्यसुवर्णयोरियं संज्ञा। सुवर्णस्य मानं तु शास्त्रान्तरात्परिमातव्यम्। तथा च विशेषयिष्यति **शतमानं तु राजतमिति** ॥ १३७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। राजतः शतमानोदशभिर्धरणैः। चतुर्भिःसुवर्णैर्निष्कः। सुवर्णस्यैव स्थूलयवैः कृष्णलपरिकल्पनायांव्यवहारिकनिष्कस्य षोडशांशः कृष्णलोभवतीति दानप्रकरणादौ व्यावहारिकी विशिष्टसंज्ञानिष्कस्य ॥ १३७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। दशरूप्यधरणानि रौप्यशतमानोज्ञातव्यः। चतुर्भिः सुवर्णैर्निष्कः प्रमाणेन बोद्धव्यः ॥ १३७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंचान्यत् धरणेति। धरणानि रौप्याणि दशशतमानइति मानान्तरम्। चतुःसौवर्णिकंचतुर्भिः सुवर्णैः परिमितः निष्कः पलंसुवर्णाश्चत्वारइति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ १३७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। पणसंज्ञाः शतं भवन्ति राजतः रूप्यस्य दश धरणानि शतमानोज्ञेयः ॥ १३७ ॥

(७) **मणिरामः**। दशरौप्यधरणानिरौप्य शतमानोज्ञेयः। चतुःसौवर्णिकः पल प्रमाणः निष्कोज्ञेयः पलंसुवर्णाश्चत्वार इत्युक्तेः ।। १३७ ।।

**पणानां द्वे शते सार्द्धे प्रथमः साहसः स्मृतः।**
**मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः ।।१३८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **मध्यम उत्तम** इत्यत्र साहसपदानुषङ्गः कर्त्तव्यः। मध्यमोत्तमशब्दावत्र केवलावपि शास्त्रान्तरदृष्टौ–'आभ्यां दण्ड उत्तम' इति। तत्र शास्त्रसिद्धया साहचर्यात्साहसं प्रतीयते। अवयवाः स्पष्टाः ।। १३८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पणानां ताम्रकर्षाणां। प्रथमसाहसइत्यस्य दण्डादिप्रकरणेषु संज्ञा। मध्यमः पञ्चपञ्चशतानि। सहस्रं पणानाम्। ऋणेदेयेप्रतिज्ञातइति श्लोकमत्र केचित्पठन्ति ।। १३८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। पञ्चाशदधिके द्वे पणशते प्रथमसाहसोमन्वादिभिः स्मृतः। पणपञ्चशतानि मध्यमः साहसोज्ञेयः। पणसहस्रन्तूत्तमसाहसोज्ञेयः ।। १३८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। मोहात्पूर्वंतुसाहसमित्यत्र प्रथमसाहसादिपरिमाणयुक्तंतत्पारिभाषिकमितिज्ञापयति पणानामिति। पञ्चाशदुत्तरशतद्वयाभ्यां प्रथमः। मध्यमः साहसः पणानांपञ्च शतानीतिशेषः। एतन्माषकादिपरिमाणंलोकाप्रसिद्धमपि शास्त्रीयत्वेन विधेयमिति ।। १३८ ।।

(५) **नन्दनः**। कार्षापणानामयंसंज्ञाविशेषमाह पणानामिति। कार्षापणानांसार्द्धेवर्ध्शतसहिते पञ्चाशत्साहितइतियावत्। पञ्चशतानीतिवचनविपरिणामः ।। १३८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। पञ्चाशदधिकशतद्वयपरिमितःप्रथमसाहसः। मध्यमसाहसः पञ्चशतपरिमितः। सहस्रंचोत्तमः उत्तमसाहसोविज्ञेयः ।। १३८ ।।

(७) **मणिरामः**। द्वेशतेसार्द्धे पंचाशदधिके द्वेशते पंच पंचशतानि ।। १३८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **पणानामिति**। सार्द्धे द्वे शते पणानां प्रथमः साहसो मन्वादिभिः मृतः, पञ्चपणशतानि मध्यमो विज्ञेयः, सहस्रं त्वेवं चोत्तमः ततः सहस्र एव ।। १३८ ।।

**ऋणं देये प्रतिज्ञाते पञ्चकं शतमर्हति।**
**अपह्नवे तद्द्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् ।। १३९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। यो राजसभायामानीतो धर्मेण ऋणं देयतया प्रतिजानीते सत्यमस्मै धारयामि स **पञ्चकं शतमर्हति** दण्डमिति शेषः। अनेन संकल्पितेन विंशतितमो भागो दण्ड्यते–'किमिति मत्सकाशमुत्तमर्णः प्रेषितो बहिरेव कस्मान्न परितोषित' इत्यतोऽनेन शास्त्रव्यतिक्रमेण दण्डमर्हति। यस्तु व्यतिक्रमान्तरं करोत्यपह्नुते–'नाहमस्मै धारयामीति'–स तैः प्रतिपादितस्तद्द्विगुणम्। तस्मात्पञ्चकाद्द्विगुणं दशकं शतमित्यर्थः। **तन्मनोः** प्रजापतेर**नुशासनं** सृष्टिकालप्रभृति व्यवस्था नीतिरिति यावत्। अन्ये तु तच्छब्देन देयमेव

प्रत्यवमृशन्ति । यावत्तस्मै देयं तद्द्विगुणम् । तेन यावदृणमित्यनेनैकवाक्यं भवति । अन्यथा वाक्यभेदः । विषयविशेषानिर्देशादेकविषयत्वे विकल्पः प्राप्नोति । स च न युक्तो द्विगुणस्यात्यन्तबहुत्वात् । असत्यपि निर्देशे तस्य विषयो दर्शनं तस्य प्रत्यासन्नेषु-पञ्चकमित्यर्थस्तस्यैवानुप्रत्यवमर्शो युक्तः ।। १३९ ।।

(३) **कुल्लूकः** । मयोत्तमर्णस्य धनंदेयमिति सभायामधमर्णेनोक्ते सत्यधमर्णः पण-शतात्पञ्चपणाइत्येवदण्डमर्हति । यदा तु सभायामपि न किंचिदस्मै धारयामीत्येवमपलपति तदा पणशताद्दशपणाइत्येवं दण्डमर्हतीत्येवंमनुस्मृतौ दण्डप्रकारः ।। १३९ ।।

(४) **राघवानन्दः** । प्रासंगिकमुक्ता प्रकृतंदण्डमाह ऋणइति । अधमर्णोत्तमर्णं प्रति देयमिति सभायांप्रतिज्ञातेयदि न ददाति तदा पणानां तच्छतंप्रतिपणंपञ्चकंदण्डमर्हतीत्यर्थः । धारयामीत्यपह्नवे तद्विगुणंदशपणम् । एवंसहस्रादिष्वपिज्ञेयम् ।। १३९ ।।

(५) **नन्दनः** । इदानीमृणमप्रयच्छतोऽधमर्णस्य दण्डमाह ऋणेदेयइति । उत्तमर्णा-भियोगानन्तरमधमर्णेन देये प्रतिज्ञाते । देयत्वेन संप्रतिपन्ने ऋणेसोधमर्णः पञ्चकंशतमर्हति । यस्माच्छतादेयत्वेन राज्ञे पञ्चकंदीयतइति तत्पञ्चकंशततस्मिन्वृद्ध्यादीयते । संप्रति-पन्नादृणाद्विंशतिभागदण्डइत्यर्थः । अपह्नवे ऋणस्यासंप्रतिपत्तौ तत्पञ्चकज्ञाते ऋणदश-भागदण्डइति ।। १३९ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । ऋणे देये पञ्चशतग्रहीतुमर्हति । अधमर्णेनापह्नवे कृते गोपिते तत्पञ्चशताद्विगुणंग्रहीतुमर्हति ।। १३९ ।।

(७) **मणिरामः** । ऋणेदेये प्रतिज्ञाते उत्तमर्णस्य धनं मयादेयमितिसभायामधमर्णे-नोक्ते । पंचकं शतमर्हति शतपरिमित द्रव्यात् पंचपलाः द्विशतात् दशपला एवं दंडमिति । नास्मै धारयामीत्यपह्नवेत द्विगुणं शताद्दशपला इत्येवं रूपं ।। १३९ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **ऋण इति** । देयं मयोत्तमर्णस्य ऋणमित्येवं अधमर्णेन सभाया-मुक्ते सत्यसौ अधमर्णः पणशतात्पञ्चपणा इत्येवं दण्डमर्हति । न किञ्चिदस्मै धारयामीत्येव-मपह्नुते सति दशकशतं दण्डमर्हति । एतन्मनुस्मृतं दण्डनम् ।। १३९ ।।

**वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद्वित्तविवर्द्धिनीम् ।**
**अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते ।। १४० ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **अशीतीति** विधेयनिर्देशः । **वसिष्ठविहितामित्यादिरर्थवादः** । वसिष्ठो भगवान् त्रिकालज्ञो लोभादिदोषरहित इति तां वृद्धिं गृहीतवानत एषा प्रशस्ता । धनं तया वृद्धिमुपैति । न च लोभदोषोऽस्ति । **सृजेत्प्रयुञ्जीत** यदा धनं तदाऽधमर्णस्य तां वृद्धिं धनप्रयोगकाले निर्दिशेत् । सर्वद्रव्येषु वस्त्रधान्यहिरण्यादिष्वेतदेव वृद्धिपरिमाणम् । संख्येयपरमेयादिषु 'रसस्याष्टगुणा वृद्धिः' इत्यादिषु द्वैगुण्यापवाद इति वक्ष्यामः ।। १४० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **अशीतिभाग इति** । वसिष्ठविहता वृद्धिः पणशतात्पञ्चका-किण्यः । एतच्च सबन्धके स्मृत्यन्तरदर्शनात् अनेनत्वेवाधाविति बन्धकावताराच्च ।। १४० ।।

(३) **कुल्लूकः**। वसिष्ठेनोक्तां वृद्धिं धर्म्यत्वाद्धनवृद्धिकरींवृद्धिजीवी गृह्णीयात्। तामेव दर्शयति **शते** प्रयुक्तेऽशीतिभागं प्रतिमासं **वृद्धिं गृह्णीयात्**। ॥ १४० ॥

(४) **राघवानन्दः**। ऋणप्रसंगेन तल्लभ्य परिमाणमाह वसिष्ठेतित्रिभिः। **सृजेत्** गृह्णीयात्। अधमर्णोवा दद्यात्। शत इति पणसुवर्णवस्त्रादिसाधारणधान्यादेर्वक्ष्यमाणत्वात्। वसिष्ठेत्यर्थवादोवृद्धेर्दोषापनुत्याइतिमेधातिथिः॥ १४० ॥

(५) **नन्दनः**। **सृजेत्**कुर्यात्। वसिष्ठविहितादिभिरुत्तरार्धेनोच्यते ॥ १४० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **वार्धुषिकः** उत्तमर्णः **शते** शतसङ्ख्यके द्रव्ये **मासात् अशीतिभागं** अशीतितमभागं **गृह्णीयात्** ॥ १४० ॥

(७) **मणिरामः**। सृजेत् गृह्णीयात् वसिष्ठविहितां वृद्धिमेववक्ति अशीति। अशीभागः सपादमुद्रात्मकः। इदं सवंधके अशीतिभागोवृद्धिः स्यान्मासि मासि सवंधक इति याज्ञवल्क्योक्तेः॥ १४० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **वसिष्ठविहितामिति**। वसिष्ठोक्तां वृद्धिं धर्मत्वाद् धनवृद्धिकरीं वृद्धिजीव्युत्पादयेत्। साकल्यत आह अशीतिभागमिति। शते प्रयुक्ते मासाद् गतात्तस्माच्छतादशीतिभागं वृद्धयर्थं गृह्णीयात्॥ १४० ॥

**द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन्।**
**द्विकं शतं वा हि गृह्णानो न भवत्यर्थकिल्बिषी॥ १४१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। द्वौ वृद्धिरस्मिन् शते दीयते तद् **द्विकं शतम्**। द्विशता पूर्वयाऽजीवतो बहुकुटुम्बस्यायं द्विकशतविधिः। मासमनुवर्तते। **सतामित्यादिरत्रायमर्थवादः सतां धर्ममिति**। एषाऽपि वृद्धिः साधूनां धर्मः। नैतया साधुत्वं हीयते। नात्यन्तमर्थपर उच्यते तदृर्शयति **न भवत्यर्थकिल्बिषी**। अन्यायेन परस्वग्रहणात्पापमर्थकिल्बिषं तदस्यास्तीत्यर्थकिल्बिषी॥ १४१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अबन्धेकत्वाह द्विकमिति। पणानांशतात्पणद्वयमित्येतद्ब्राह्मणात्। अर्थकिल्बिषी परस्वग्रहणदोषवान्॥ १४१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। साधूनामयंधर्मइति मन्यमानः पणशते प्रयुक्ते पणद्वयंवा प्रतिमासंगृह्णीयात् यस्माद्विकंशतंहिगृह्णानोवृद्धिधनग्रहणे किल्बिषी न भवति॥ १४१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। सबन्धकेशतंप्रत्यशीतिभागमेवाबन्धके द्विकमेव नाधिकमित्याह द्विकमिति। कार्यवशादपिनभवत्यर्थकिल्बिषीयुक्तत्वात्॥ १४१ ॥

(५) **नन्दनः**। संबन्धकविषयमेतदुक्तंपक्षद्वयंब्राह्मणविषयंनान्यवर्णविषयमिति सूचयन्नाह द्विकमिति। द्विकादिषु पूर्ववत्कन्प्रत्ययः॥ १४१ ॥

(७) **मणिरामः**। अबंधकेत्वाहाद्विकमिति। द्विकं शतं शतपरिमिते मासिकं मुद्राद्वयं ग्राह्यमित्यर्थः॥ १४१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **द्विकमिति**। पणशताद्वा मासेन द्वौ पणौ पूर्ववृद्धया च जीवन् साधूनामर्थधर्मः नाधर्म इति। मन्यमानो गृह्णीयात्। यस्मात् द्विकं शतं गृह्णन् परस्वादान-पापयुक्तो न भवति ।। १४१ ।।

**द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च शतं समम्।**
**मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ।। १४२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। ब्राह्मणादिवर्णक्रमेण चतुर्णां वर्णानां सकाशाद् द्विकादयश्चत्वारः कल्पा यथासङ्ख्यं न ग्राह्यतयाऽनुज्ञायन्ते। **समम्**। न पादेन वाऽर्धेन वाऽधिकम्। तदा-धिकोऽपि सपादद्विकं सार्द्धद्विकमिति द्विकादिव्यपदेशस्यानिवृत्तेराशङ्कानिवारणार्थं **सम**-ग्रहणम्। यथा मात्रान्यत्वेऽपि संज्ञान्तरव्यपदेशं निवर्तयति। इदमपि पूर्वेणाजीवतः कल्पा-न्तरम्। यस्य वाऽल्पं धनं महते धर्माय गृहीतारश्च नातिधार्मिकास्तत्रायं विधिः। 'येऽसाधु-भ्योऽर्थमादायेति' न्यायेन।

**समामिति** पाठान्तरम्। संवत्सरं यावदेषा वृद्धिर्न परतोऽपि महत्त्वाद् द्वैगुण्यं स्यात् ।। १४२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एतदेवानूद्य क्षत्रादिष्वाह द्विकमिति। समं तदूनमधिकंवा ।। १४२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणादिवर्णानांक्रमेण द्विकंत्रिकंचतुष्कंपञ्चकंशतसममितो-नाधिकंमासस्य संबन्धिनींवृद्धिंगृह्णीयात्। नन्वशीतिभागोलधुद्विकशतग्रहणंगुरु कथमिमौ ब्राह्मणस्य लघुगुरुकल्पौ विकल्पेताम् अत्र मेधातिथिगोविन्दराजौ तु पूर्ववृद्धयानिर्वाहासंभवे द्विकशतपरिग्रह इति व्याचक्षाते। इदन्तुवदामः सबन्धकेष्वशीतिभागग्रहणं बन्धकरहिते तु द्विकशतवृद्धिपरिग्रहः। तदाह याज्ञवल्क्यः। अशीतिभागोवृद्धिः स्यान्मासिमासिसबन्धके। वर्णक्रमाच्छतंद्वित्रिचतुः पञ्चकमन्यथा। वेदान्तोद्गीतमहसोमुनेर्व्याख्यानमाद्रिये। तद्विरुद्धंस्वबुद्धयाच निबद्धमधुनातनैः ।। १४२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। निर्बन्धकेतु चतुर्णां व्यवस्थितिमाह द्विकमिति। अशीतिभागो-वृद्धिः स्वान्मासिमासि सबन्धके। वर्णक्रमाच्छतंद्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा। अन्यथा अबन्धक-इति याज्ञवल्क्योक्तेः। अतोद्विकादिकमशक्तपरमिति व्याख्यानंत्वश्रद्धेयमिति ।। १४२ ।।

(५) **नन्दनः**। ब्राह्मणानांद्विकम्। क्षत्रियाणांत्रिकम्। वैश्यानांचतुष्कम्। शूद्राणांपञ्चकं शूद्रात्पञ्चकंमासस्य गृह्णीयादित्यर्थः ।। १४२ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। ब्राह्मणेऽधमर्णे द्विकं शतं गृह्णीयात्। क्षत्रिये त्रिशतं। वैश्ये चतुष्कं। शूद्रेपञ्चकं। मासि मासीतिसर्वत्रसंबध्यते। समं नन्यूनाधिकं। वर्णानामनु-पूर्वशः क्रमेण ।। १४२ ।।

(७) **मणिरामः**। वर्णक्रमेण वृद्धिग्रहणमाह **द्विकं त्रिकमिति**। शतपरिमितंचेद्ददाति-तदा ब्राह्मणात् मुद्राद्वयं क्षत्रियात् त्रयं वैश्याच्चतुष्टयं शूद्रात्पंचकं समं नातोधिकं मासि-मासिग्राह्यमित्यर्थः ।। १४२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **द्विकमिति**। ब्राह्मणादिवर्णानां क्रमेण द्विकत्रिकचतुष्कपञ्चशतं सममन्यूनाधिकं मासस्य संबन्धिवृद्धिं गृह्णीयात् ।। १४२ ।।

**न त्वेवाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात् ।**
**न चाधेः कालसंरोधान्निसर्गोऽस्ति न विक्रयः ।। १४३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। बहुधा प्रयोगो गृहीत्वाधिमन्यथा च आधिरपि द्विविधो—गोप्यो भोग्यश्च। भोग्योऽपि द्विविधः—समयादुह्यमानभोगः स्वरूपतो वा। आधिर्दोग्ध्री गौः पिहितसुवर्णादि। तत्र भोग्यमाधिमधिकृत्येदमुच्यते **न त्वेवाधौ सोपकार इति**। विविधः सोपकारः—क्षीरिणो गौः क्षेत्रारामादि च। तस्मिन् भुज्यमाने। कुसीदे भवा **कौसीदी** अनन्तरोक्ता वृद्धिस्तां **नाप्नुयात्**। आधि तु भुञ्जानो नान्यां वृद्धिं लभेत। गोप्येऽप्याधौ **कालसंरोधाच्चिरमवस्थानाद्** द्विगुणीभूतेऽप्यमोक्षमाणे **न निसर्गोऽस्ति न विक्रयः**। अन्यत्र च विधिनार्पणं **निसर्गः**। अन्यत्र संक्रामितं द्विगुणीभूतमपि पुनर्वर्धत एव। तथा च पठिष्यति 'सकृदाहृतेति'। **विक्रयः** प्रसिद्धः। सोऽपि न कर्तव्यः। "किं तर्ह्यस्यामवस्थायां कर्तव्यम्"। तावदाधि भुञ्जीत यावद्द्विगुणं धनं प्रविष्टं ततो मोच्य आधिः। तदुत्पन्ने प्रविष्टे द्विगुणे धने भोग्यस्तावदेव, अभोग्यस्तदनन्तरम्। भोग्यस्त्वाधिः शांतलाभस्तिष्ठत्येव यावदाधाता नागतः। यस्तु कथंचिद्धनिको दरिद्रतामुपगतस्तावन्मात्रशेषधनः स कञ्चित्कालं प्रतीक्ष्य राजनि निवेद्य विक्रीणीत बन्धम्—ततो विक्रयादुत्पन्नं द्विगुणमात्मनो धनं गृहीत्वा शेषं मध्यस्थहस्तेऽृणिकसात्कुर्यात्। ननु च "आधिः प्रणश्येद्द्विगुणे धने यदि न मोक्षयेत्" इति पठ्यते (याज्ञ. २।५८)। एतदुत्तरत्र व्याख्यास्यामः। प्रणश्यत्वान्न पूर्वस्वामिनः स्वाम्यहानिः प्रयोक्तुश्च स्वत्वापत्तिः। यदि च निसर्गविक्रयौ न स्तः कीदृशमस्य स्वाम्यमुच्यते? तस्मात्प्रतिषेधसामर्थ्येन प्रणाशवचनं प्रतिषिद्धभोगस्य भोगानुज्ञानार्थं व्याख्यायते। वस्त्रादिविषयं वा। तस्य हि भुज्यमानस्य प्रणाश एव। न क्षेत्रादेरिव तिष्ठतः स्वरूपात्प्रपच्यवमानस्य भोग्यता संभवति। तेनैतत्स्मृतिव्यवस्थायां व्याख्येयम्। गौणौ चात्र प्रणाशनिसर्गौ। विक्रयप्रतिषेधस्तु मुख्य एव। न ह्यसौ गौणतया प्रतिपत्तुं शक्यते। एतदेव प्रस्तुत्य "न स्यातां विक्रयाधीने" इति स्मृत्यन्तरे पठितम्। अत इह **निसर्गोऽन्यत्राधानम् विक्रयसाहचर्यात्**। सदृशौ हि तौ केनचिदंशेन ।। १४३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सोपकारे गोप्यादिनापि प्रसंगादुपकारसिद्धौ वृद्धिर्नग्राह्या। कौसीदीं कुसीदवृत्तिसंबन्धिनीम्। कालसंरोधात् कालातिक्रमेपि द्वैगुण्योर्ध्वं आधेर्बन्धकद्रव्यस्य ननिसर्गोदानमस्ति नच विक्रयोस्ति किंतु प्रतिरोधादिना धनस्यैव ग्रहणम् ।। १४३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। भूमिगोधनादौ भोगार्थेबन्धके दत्ते धनप्रयोगभवामनन्तरोक्तांवृद्धिमुत्तमर्णोन लभते कालसंरोधाच्चिरकालावस्थानात् द्विगुणीभूतमूलधनप्रवेशेऽपि न निसर्गोऽन्यस्मैदाननवान्यतो विक्रयः। मेधातिथिगोविन्दराजौ तु आधेश्चिरकालावस्थानेऽपि न निसर्गोनान्यत्र बन्धके नार्पणमिति व्याचक्षाते। अत्र तु सर्वदेशीयशिष्टाचारविरोधः बन्धकोकृतभूम्यादेरन्यत्राधीकरणसमाचारात् ।। १४३ ।।

(४) **राघवानन्दः।** सबन्धकेऽशीतिभागइत्युक्तं तत्र द्रव्यविशेषे तदभावमाह नेति। आधौ गोभूमिदासादौ सोपकारि भोगार्थंदत्ते तत्र भोगएव वृद्धिः। कौसिदीलभ्यइतिप्रसिद्धां-नाप्नुयादित्यन्वयः। तत्रैव बन्धकस्य विशेषमाह नेति। कालसंरोधात् चिरकालावस्थानात् द्विगुणीभूतमूलप्रवेशेवा। त्रिसर्गोत्र स्वच्छन्देनान्यस्मै दानम्। नापि विक्रयः। तथाच याज्ञ-वल्क्यः। आधिःप्रणश्येद्विगुणे धने यदि न मोच्यते। काले कालकृतोनश्येत्फलभोग्योन नश्यति। एतावताकालेन ननीयतेचेत्तदैवतदितिकालकृतस्य वचनादेव सर्वस्वत्वहानिरि-त्यर्थः। फलभोग्यउक्ताधिरूपः॥ १४३॥

(५) **नन्दनः।** अथाधिविषये वृद्धिप्रकारमाह नत्विति। ऋणप्रदानार्थमधमर्णा-दुत्तमर्णेन गृहीते बन्धआधिः तस्मिन्सोपकारे सत्ये च धेन्वनड्वहादिरूपतया भोगक्षेमे सत्यपि योभोगानुज्ञापरस्परमाधिराहितः यस्य चाननुज्ञातभोगमन्तरेण वैगुण्यप्रसङ्गः तस्मिन्नाधौ भुक्तेसत्यपीत्यर्थः। कौशिदीऋणसंबन्धिनीसंरोधात्। सकालःसमाप्तइत्यधमर्णायदद्यात् किन्तु यावदृणलाभंभुञ्जीत। नचलब्धमृणमिति। विक्रीणीयादिति॥ १४३॥

(६) **रामचन्द्रः।** ननुतर्के। वा पक्षान्तरे सोपकारे आधौ बन्धके कौसीदींवृद्धिमा-प्नुयात् गृह्णीयात् विश्वासार्थंयआधीयतइतिआधिरितियावत् आधेः कालसंरोधात् कालाति-क्रमात् ननिसर्गोस्ति। न दानं। न विक्रयः। तथायोगीश्वरः। आधिःप्रणश्येद्विगुणोधने-यदिनमोच्यते। कालेकालकृतोनश्येत्फलभोग्योन नश्यति। क्षेत्रारामादि फलभोग्यादि कदाचिदपि न नश्यति॥ १४३॥

(७) **मणिरामः।** आधौ बंधके सोपकारे भोगार्थं दत्ते भोगबंधके इति यावत्। कौषिकीः धन प्रयोगभवां आधेः भोगबंधकस्य कालसंबोधात् चिरकाल्यवस्थानात् विसर्गः स्वद्रव्य ग्रहणार्थमन्यत्ररक्षणं विक्रयश्च न भवतीत्यर्थः॥ १४३॥

(८) **गोविन्दराजः। नत्विति।** भोजनार्थबन्धे दत्ते धनप्रयोगाभवानन्तरोक्ता या वृद्धिस्तामुत्तमर्णो न लभते। न च वृद्धिदत्तस्य बन्धस्य द्विगुणीभूत धनकालादूर्ध्वं अव्यवस्था-नादन्यत्र बन्ध वेतनत्वेनार्थमस्ति नापि विक्रयोपि द्विगुणीभूतधनकालादूर्ध्वं समीक्षणादाधि-र्भुज्यत एव अन्यथा धनप्राप्त्यभावात्॥ १४३॥

**न भोक्तव्या बलादाधिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत्।**
**मूल्येन तोषयेच्चैनमाधिस्तेनोऽन्यथा भवेत्॥ १४४॥**

(१) **मेधातिथिः।** "ननु च प्रागप्येतदुक्तं 'न त्वेवाधाविति (१४३)"। सत्यम्। यत्र यावत्येव वृद्धिस्तावानेव भोगः स पूर्वस्य विषयः। यत्र तु महती वृद्धिः स्वल्पोपभोगश्चे-द्वलादिना भुञ्जानस्य सर्वेण सर्ववृद्धिहानिः। यत्र क्षेत्रगवादिर्बन्धस्तद्भोगश्च न वृद्धि-सम्मितः स चोपचितामपि वृद्धिं न ददाति, न च बन्धनं द्विगुणं, तत्र कयाचिदतिमत्यात्यन्त-मुक्तैव वृद्धिर्निश्चेतव्या। यदि तु वस्त्रादि भुज्यमानं नश्येत्तत्र **मूल्येन तोषयेदेनम्** आधातारम्। इतरोऽपि वृद्धिं लभते। **अतोऽन्यथाऽददन्मूल्यमाधिस्तेनो भवेत्।** यज्जातीयमाधिंभुक्तवां-स्तदपहारे यो दण्डः स एव दाप्यः। **स्तेनश्चौरः।** अन्ये व्याचक्षते। बलाद्भुक्ते वृद्धिहानिः।

भुञ्जीत तन्मूल्यत एव वा । यदृणिकस्य मूल्यं मूल्यहिरण्यम् । यत्र भुञ्जान उच्यते 'मा मे बन्धं विनीनशो मा भुङ्क्ष्व कतिपयैरहोभिर्मोक्षयामि' तथाऽप्युच्यमानो भुङ्क्त एवेति सोऽस्य विषयः ।। १४४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । शयनादिषु भुज्यमानेष्वप्यविनाशिषु बन्धकदात्रा यदि भोगनिषेधः कृतस्तदा नतद्भोक्तव्यं भोगे वृद्धित्यागः । यदातु वृद्धिरतिभूयसी तदा वृद्धिगृह्णीयात् । किंतु मूल्येन तोषयेत् । यावता तावद्भोगसिद्धिस्तद्देयम् ।। १४४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । गोप्याधिविषयंवचनमिदंवस्त्रालङ्कारादिर्गोप्याधिर्बलान्न भोक्तव्यः भुञ्जानोवृद्धिमुत्सृजेत्प्राङ्मूल्येनात्मैनंतोषयेत् । यद्वा भोगेनासारतामाधौ नीते सारावस्थाधिमूल्यदानेन स्वामिनंतोषयेत् अन्यथा बन्धकचौरः स्यात् ।। १४४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । वस्त्रालंकारादेराधौ विशेषमाह (नभोक्तव्यइति) नभोक्तव्यस्त्वयाधिरितिनिषेधे कृते बलाद्भुञ्जानःउत्सृजेन्न गृह्णीयात् । प्रत्युत मूल्येन भोगेनासारतांगते तन्मूल्येन एनं पूर्वस्वामिनम् । अन्यथा तन्मूल्यस्यादाने आधिस्तेनः उत्तमर्णोपि गोप्यबन्धविषयः ।। १४४ ।।

(५) **नन्दनः** । भुञ्जानएनमधमर्णमूल्येन भुक्तेन फलेन तोषयेत् भुक्तंफलमधमर्णाय दद्यादित्यर्थः । अन्यथा यदि न तोषयेदाधिः स्तेनोभवेत् आधिश्चोरः स्यात् ।। १४४ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । बलादाधिर्न भोक्तव्यः । भुञ्जानःसन्वृद्धिमुत्सृजेत् । भोगेनाधौ नष्टे व्यवहाराक्षमेएनंमूल्येन तोषयेत् । अन्यथा आधिस्तेनः चौरः भवेत् ।। १४४ ।।

(७) **मणिरामः** । गोप्याधिविषयमाह **न भोक्तव्येति** । आधिः वस्त्रालंकारादिर्गोप्याधिः । मूल्येनतोषयेत् चरिधानेन मूलन्यूनतायां पूर्वमूल्येनाऽधमर्णं तोषयेत् ।। १४४ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **न भोक्तव्य इति** । मा भुङ्क्ष्वेति स्वामिवचनमवगणयन् यद्वलाद्धनं न भुञ्जीत तथा भुञ्जानो वृद्धिं नाप्नुयात् यदि भोजेन बन्धः क्षयं यातस्तदा अक्षतबन्धसम्बन्धिमूल्येन बन्धस्वामिनं तोषयेदन्यथा बन्धचौरः स्यात् ।। १४४ ।।

**आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः ।**
**अवहार्यौ भवेतां तौ दीर्घकालमवस्थितौ ।। १४५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । आधिमोक्षणकालो द्विगुणीभूतं धनं तस्यातिक्रमस्तस्मिन्नपि कालेऽमोक्षः उपनिधिरपि यावता कालेन नास्यावसरोभवति मदीयमेवैतद् भोक्ताहमिति स प्रत्याहारकालः ततोऽधिकःकालः **कालात्ययः** । **तं नार्हतः** स न कर्तव्य इत्यर्थः । हेतुमाह । **अवहार्यौभवेतां ताविति** । तौ हि दीर्घकालमवस्थितावप्रत्याह्रीयमाणौ **अवहार्याविति** स्थितम् । तस्माद्द्विगुणीभूतधनेऽधिमोक्षणे प्रयतितव्यम् । सुहृदुपदेशोऽयं न त्वेवाध्युपनिध्योर्भूयसाऽपि कालेनापहारः । यतो वक्ष्यति–"आधिसीमाबालधनमिति" (१४९) । अतस्तस्यैवायमनुवादः । अन्ये त्वाधिविषयमुपदेशमिच्छन्ति । यो द्वेषेण द्विगुणीभूते धने कालं क्षपयति, तल्लिलाभं धनं नाधिकं वर्द्धते, न चास्याधुनाऽन्यत्राधानविक्रयौ स्तः, इह वृद्धिमयं

मालभतामित्यनेन मात्सर्येण–तत्रेदमुच्यते **अवहार्यौ भवेतां ताविति**। अनया बुद्धचाऽमोक्षयतः स्वाम्यमस्य निवर्तते। यस्तु कथंचिदसति धने न मोक्षयति तस्य निसर्गविक्रयौ न स्त इति। अथवाऽपरोऽर्थो मुखेनोपेक्षयति–परहस्तगतया शङ्क्योच्यते **अवहार्यौ भवेतामिति** ॥ १४५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आधिग्रहणान्तरमल्पमूल्यापत्तौ तत्पूरकतया यत्नेनसह स्थाप्यते सउपनिधिः। कालात्ययं कालातिक्रमं नाशम्। अवहार्यौ स्वामिना आनेतव्यौ ॥ १४५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। आधिर्बन्धकः उपनिधीयतइत्युपनिधिः प्रीत्याभोगार्थमर्पितं द्रव्यं नारदस्मृतिलक्षितौ च निक्षेपोपनिधी तावेवात्रोपनिधिशब्देन गृह्येते। एतावाध्युपनिधी चिरकालावस्थितावपि न कालात्ययमर्हतः यदैव स्वामिना प्रार्थितौ तदैव तस्यावहार्यौ समर्पणीयावित्यर्थः ॥ १४५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। आधिप्रसंगेन उपनिधेः कालात्ययेऽपि दानविक्रयौ नस्तइत्याह आधिरिति। आधिः बन्धकत्वेन दत्तः उपनिधिः प्रीत्या भोगार्थमुपनीय मानोहारकुण्डलपात्रादिः कालेन चिरकालेनापि अत्ययं विनाशं धनिकान्नार्हतः किंच। अवहार्यौ समर्पणीयौ। स्वामिप्रार्थनेसति सुदीर्घकालेपि उपनिधिरिवाधिरपि न नश्यतीति वार्थः। नत्वेवाधावित्यत्रात्याया भावस्योक्तत्वात् ॥ १४५ ॥

(५) **नन्दनः**। आधिःप्रसिद्धः स्वामिनास्वीकर्त्रपेक्षामात्रेण भोगमनुज्ञाय निहितोर्थः उपनिधिः। तौ परिभाषिते काले प्राप्तव्यौ न कालात्ययमर्हतः। कालोतीतश्चेत्तावपहार्य्यौ अपहाराहौं। दीर्घकालावस्थानात्परिग्रहीत्रा भुञ्जानेन ममेदमित्यपहर्त्तुंसुशकावित्यर्थः ॥ १४५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। आधिश्च उपनिधिश्च उभौ कालात्ययं चिरंकालं न नाशनं अर्हतः। तौ आध्युपनिधी दीर्घकालस्थितौ अवहार्यौ प्रयत्नेन नेतव्यौ भवेताम्। असङ्ख्यातमविज्ञातं समुद्रं यन्निधीयते। तं जानीयादुपनिधिनिक्षेपं गणितं विदुः ॥ १४५ ॥

(७) **मणिरामः**। आधिः बंधकः उपनिधिः प्रीत्याभोगार्थं यत् दत्तं द्रव्यं। एतौद्वौ दीर्घकालावस्थितावपि न कालात्ययं अर्हतः। यदैवस्वामिना प्रार्थितौ न दैवतस्य अवहार्यौ समर्पणीयावित्यर्थः ॥ १४५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **आधिरिति**। बन्धः प्रीतिभोग्यश्च पदार्थ एतौ द्वौ कालातिक्रमणं नार्हतोऽपि तु प्राप्ते काले स्वामिना प्रत्याहरणीयौ यस्मात्तस्मात्तौ दीर्घकालमन्यहस्तावस्थितौ आधित्वोपनिधित्वात्साक्ष्याद्यभाषेन हारयितुं शक्याविति सुहृदुपदेशरूपतयैवेदं न कदाचिदपि ह्रियते आधिःसीमेत्यपहारस्य वक्ष्यमाणत्वात् ॥ १४५ ॥

**संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन।**
**धेनुरुष्ट्रोवहन्नश्वोयश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥ १४६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्रीतिरेव **संप्रीतिः**। तया हेतुभूतयोपभुज्यन्ते धेन्वादयस्ते **न नश्यन्ति**। पूर्वस्वामिसंबन्धहान्या भोक्तुः स्वत्वापत्ति'र्नाशः' स बान्धवादीनांप्रीत्या भुज्यमानांनां न भवति। "ननु च सर्वस्यैवोपनिधेर्भोगेनापहारोनास्ति। वक्ष्यति 'निक्षेपोपनिधिश्च य' इति (१४९) को विशेषो धेन्वादीनाम्"। उच्यते। यत्र दशवर्षो भोगो न च स्वरूपनाशस्तत्र 'यत्किंचिदिति' (१४७) सामान्यवचनेन प्राप्तेऽपहारे उपनिधेः प्रतिषेधेः। धेन्वादीनां तूपनिधित्वमेव नास्त्यतः प्रतिषेधस्य नायं विषय इति स्यादाशङ्काधाननिमित्तो हि धेनुशब्दो यदि परसंवत्सरे धेनुः स्यात् परत उपसर्या यदि गर्भमादध्याद्धेनुत्वमापद्येत तदा जनयेदाशङ्कामस्यैवेयं न देवदत्तस्य। यतः प्रष्ठौही न भोग्या प्रीतिसंभोग्यश्चोपनिधिः। येन स्वकैर्भोग्यं परिपाल्य पुनर्भुज्यमानं दृष्टम्। न पुनरुपनिधेरेतद्रूपम्। भोग्यो ह्युपनिधिः। असद्भावाद्भोगस्य च कीदृशगुणमुपनिधित्वम्। उपनिधेश्चासौ प्रतिषेधः। तस्मादुपनिधिरूपातिक्रमादसति तस्मिन्प्रतिषेधे यत्नान्तरमुक्तम्। उष्ट्रादीनामपि दशवर्षाणिभुज्यमानानामवस्थान्तरापत्तिः। अतस्तत्रापि नोपनिधित्वम्। **वहन्निति** केचिदश्वविशेषणं मन्यन्ते। वृषस्य नायं विधिः। अपरे तु गर्दभाश्वतरार्थे मन्यन्ते। **दम्यो** बलीवर्दः। **प्रयुज्यते** वहनार्थं यो दीयते। अन्ये तु पुनः प्रतिषेधं विकल्पार्थं मन्यन्ते। एतद्व्यतिरेकेणान्यस्योपनिधेरस्ति कादाचित्कोऽपहारः। तेन यद्वस्त्रादि प्रीत्या भुज्यते तच्च परिक्षीणं तत्रास्त्येवापहारः। न हि प्रीत्या गृहीते वस्त्रे परिक्षीणे स्वामिनोपेक्ष्यते पुनरवसरोऽस्ति देहि मे वस्त्रं विनाशितं त्वया तत्समेन मूल्येन संसाधयति ॥ १४६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एते दशवर्षोर्ध्वमपि न नश्यन्ति। धेनुर्दुह्यमाना गौः। वहन्नश्वोनत्ववहन्। दम्योदमनीयोबलीवर्दोयः स्वयंदान्तः कृत्वाप्रयुज्यते हले ॥ १४६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यत्किंचिद्दशवर्षाणीत्यनन्तरंभोगेन स्वत्वहानिंवक्ष्यति तदपवादार्थमिदम्। दृश्यमानागौरुष्ट्रोश्वश्चवहन् दमनार्थं च प्रयुक्तोबलीवर्दादिः एते प्रीत्याऽन्ये नतु भुज्यमानाः कदाचिदपि स्वामिनोन नश्यन्ति प्रदर्शनार्थमिदंप्रीत्योपभुज्यमानंन नश्यतीति विवक्षितं सामान्योपक्रममंचेदंविशेषाभिधानमिति नपुंसकलिङ्गता ॥ १४६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। यत्किंचिद्दशवर्षाणीतिभोगेनवक्ष्यमाणस्वत्वहानेर्बाधकमाह संप्रीत्येति। न नश्यन्ति स्वामिनः सत्त्वे दशवर्षाभ्यन्तरेकृतेपि निषेधे भुञ्जानस्यापि स्वत्वंन जायतेऽतःस्वामिप्रार्थनायांदातव्याधेन्वादयश्चत्वारः। चन्द्रे कलङ्कसुजने दरिद्रतेतिवन्न नश्यन्तीत्यन्वयः। दुग्धार्थधेनुर्वाहनार्थमुष्ट्रोश्वश्च दमनार्थमन्यद्बलीवर्दादि ॥ १४६ ॥

(५) **नन्दनः**। या धेनुर्दुह्यमाना गौर्वहन्नुष्ट्रोश्वोदम्योबलीवर्दः प्रयुज्यते तानिसर्वाण्याहितानि उपहितानि वा समवृत्त्या भुज्यमानानि चिरकालावस्थानेऽपि नश्यन्ति परिग्रहीत्रा ममेदमिति नापहर्त्तुंशक्यानीत्यर्थः ॥ १४६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। संप्रीत्या अनुज्ञया धेन्वादीनि भुज्यमानानि कदाचन ॥ १४६ ॥

(७) **मणिरामः**। दम्यः अन्नदमनार्थं प्रयुज्यमानो वलीवर्दः। प्रदर्शनार्थमिदमुक्तं तेन प्रीत्योप भुंजानं किमपिननश्यतीति ज्ञेयं ॥ १४६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **संप्रीत्येति**। दोग्ध्री गौरुष्ट्रो वहंश्चाश्व एते प्रीत्या अन्योन्यं

भुज्यमाना न कदाचिदपि स्वामिनोऽपहार्यन्ते । अश्वादिदमनार्थं दमनस्य दीयते संप्रीत्या भुज्यमानानीति सामान्योपक्रमविशेषाभिधानम् ।। १४६ ।।

**यत्किंचिद्दशवर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी ।**
**भुज्यमानं परैस्तूष्णीं न स तल्लब्धुमर्हति ।। १४७ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । कस्य तर्हि तत्संभवतीत्येवमर्थमुत्तरश्लोकः **यत्किंचिद्भुज्यमानमिति** व्यवहितेन संबन्धः । **धनीति** सन्निधानात्सामान्यनिर्देशेऽपि भुज्यमानधनोपेक्षणं प्रतीयते । **यत्किंचिदिति** दासीदासारभाण्डादि सर्वं ग्राहयति । न हि तल्लोकेऽत्यन्तं धनमिति प्रसिद्धं गोभूहिरण्याद्येव महार्घे धनमिति प्रसिद्धतरम् । तेनायमत्र वाक्यार्थः । **यत्किंचिद्**द्रव्यं परेण **भुज्यमानं धनी** धनस्वामी **दशवर्षाणि** यावत्**प्रेक्षते**–न किंचिद्वक्ति, न राजनि व्यवहरति, न कुलसमक्षं भोक्तारं वदति 'मदीयमेतत्किमिति त्वया स्वयं भुज्यत' इति– **स** दशभ्यो वर्षेभ्य उत्तरकालं न **तल्लब्धुं** स्वीकर्तु**मर्हति** । निवर्ततेऽस्य स्वमिति यावत् । प्रेक्षणेन ज्ञेयतामात्रमुच्यते न प्रत्यक्षतैव । **संनिधाविति** वक्ष्यामः । **परैः**–न ज्ञातिसंबन्धिभिः । तथा च स्मृत्यन्तरं– 'ज्ञातिसंबन्धिभिर्विना' इति । "संबन्धिबान्धवैश्चैव भुक्तं यज्जातिभिस्तथा । न तद्भोगो निवर्तेत भोगमन्यत्र कल्पयेत् ।।" तदयुक्तम् । अव्यवस्थैवं सति स्यात् । के ज्ञातयः के वा संबन्धिन इति संबन्धमात्रग्रहणे न किंचिद्व्यावर्त्यम् । तस्माद्येनान्यदायं भुज्यते स एवं भवति । किन्तु तथा सति परशब्दोनुवादमात्रमनर्थः, कस्यापि न परव्यपदेशः । स निरस्यते । यथा भार्यापती पितापुत्राविति । तत्र ह्यात्मन्यपि व्यपदेशोऽस्ति "अर्द्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया"–"आत्मा वै पुत्र नामासि" इति । तेन दम्पत्योः पितृपुत्रयोर्न भोगाभोगौ कारणम् । तेषामपि विभक्तधनानां भोगकाले प्राप्तेऽभोगो बाधक एव । भार्याया अपि स्त्रीधने भर्तृसकाशाद्गृहीते बन्धेन पत्युर्भोगे नासिद्धिः । सा ह्यत्यन्तपरवती । नोभयोर्विभागोऽस्ति । स्त्रीधनमपि तेनैव तस्याः परिपालनीयम् । 'राजा स्त्रीश्रोत्रियद्रव्यादन्यत्र' इति च पठ्यते । एवमनेन स्वामिन उपेक्षमाणस्य स्वाम्यहानिरुक्ता ।। १४७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । द्रव्यान्तरेष्वाह यत्किंचिदिति ।। १४७ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यत्किंचिद्धनजातंसमक्षमेव प्रीत्यादिव्यतिरेकेण परैर्दशवर्षाणि भुज्यमानंस्वामी प्रेक्षतेमाभुङ्क्ष्वेत्यादिप्रतिषेधोक्तिन रचयति नासौ तल्लब्धुंयोग्यो भवति तस्य तत्र स्वाम्यंनिवर्तत इति भावः ।। १४७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । भूम्यतिरिक्तंयत्किंचित्कालनियमार्थदशवर्षाणि भुज्यमानंकदापि माभुंक्ष्वेति ननिषिद्धं सधनी स्वामी नाप्नुयादित्यन्वयः । अयमर्थः । प्रतिषेधभुक्त्योः समानत्वेपि स्वत्वानुपादकत्वम् । अनागमंतु योभुङ्क्ते बहून्यब्दशतान्यपि । चोरदण्डेन तंपापंदण्डयेत्पृथिवीपतिरिति वचनात् । आगमेन प्रमाणेन भोगोयाति विशुद्धतामितिकात्यायनोक्तेश्च प्रतिग्रहादिविनास्वत्वं नास्त्येव किंतु पूर्वभुक्तभूम्यादिफलं बहुमूल्यमपिपूर्वस्वामिना न प्राप्यते भूम्यादि प्राप्यते । एवंच वक्ष्यमाणंभग्नंतदेयवहारेणेति यभग्नंनष्टंतद्धनं किंन्तु तदुत्पन्नंबहुसस्यादि नष्टमित्यर्थः ।। १४७ ।।

(५) **नन्दनः** । आहितमुपहितमितियावत् । किंचिद्वस्तुदशवर्षाणिपरैर्ग्रहीतृभिर्भुज्यमानंतूष्णीमासीनोधनी आधातोपानिधाता वा यः प्रेक्षते न तल्लब्धुमर्हति ॥ १४७ ॥

(७) **मणिरामः** । तूष्णीं प्रेक्ष्यते माभुङ्क्ष्वेति निषेधं न करोति पश्यति च ना सौ तल्लब्धुं योग्यो भवति । तत्र स्वाम्यं निवर्तत इतिभावः ॥ १४७ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **यदिति** । यत्किञ्चिद्धनजातं समक्षमेवान्यैर्दशवर्षाणि भुज्यमानं धनस्वामी तूष्णीं प्रतीक्षते किमेतन्मा मैवं भुङ्क्ष्वेति न प्रतिबध्नाति नासौ तत्पुनर्न्यायेन स्वीकर्तुमर्हति ॥ १४७ ॥

**अजडश्चेदपोगण्डो विषये चास्य भुज्यते ।**
**भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्धनमर्हति ॥ १४८ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । न स तल्लब्धुमर्हतीत्यस्य शेषः । **अजडश्चेदपोगण्ड** इति । **जडः** अप्रतिपत्तिमान् । **पोगण्डो** बालः । प्राक्षोडशाद्बालः पोगण्ड इत्युच्यते । एतच्च स्वधनसंरक्षणासामर्थ्यकारणानामन्येषामप्युपलक्षणार्थम् । मद्यद्यूतविषक्तता दीर्घरोगगृहीतता तपःस्वाध्यायैकपरत्वं व्यवहारेष्वनैपुण्यं वागिन्द्रियाभावो बाधिर्यम् । यस्यैतेऽसामर्थ्यहेतवः सन्ति न तदीये धने भोक्तुर्बहुतरेणापि कालेन स्वत्वमापद्यते । **विषये चास्य भुज्यते** । **अस्येति** धनिनः प्रत्यवमर्शः । **विषयः** काश्मीराणां कश्मीरः, पञ्चालानां च पञ्चालः । यदि भोक्ता च स्वामी चैकस्मिन्नेव देशे वसेत्तथापि शक्तिविहीनस्यायं व्यवहारः । अत्रापि व्याख्याने प्रपञ्च एवायम् । अजडापोगण्डग्रहणस्य प्रदर्शनार्थतया व्याख्यातत्वात् । तेन यस्य जानतो यदुपेक्षाकारणं न संभाव्यते तदीयं धनं दशवर्षाणि भुञ्जानो भोक्तैवार्हति—तस्य तत्स्वमित्यवगन्तव्यम् । ननु च न भोगात्स्वत्वं युक्तम् । स्वत्वे सति भोगो युक्तः । भोगाद्धि स्वत्वेऽव्यवस्था स्यात् । यश्चायमवधिर्दशवर्षाणीति स स्मृत्यन्तरेण न सर्वस्मिन्धन इष्यते । किं तर्हि ? "पश्यतोऽब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी" इति (याज्ञ. व्य. २४) । अन्ये तु विंशतिवार्षिकेणापि भोगेन स्वाम्यमनुमन्यन्ते । एवं ह्याहुः "अनागमं च यो भुङ्क्ते बहून्यब्दशतान्यपि ।" (नारद ८७।७०) तथा

**"संभोगो यत्र दृश्येत न दृश्येतागमः क्वचित् ।**
**आगमः कारणं तत्र न संभोग इति स्थितिः ॥"** (नारद ८४)

त्रिपुरुषभुक्तिवादिनस्तावदेवं पठन्ति (नारदीये १।९१)

"यद्विनागममत्यन्तं भुक्तं पूर्वैस्त्रिभिर्भवेत् । न तच्छक्यमपाहर्तुं क्रमात्त्रिपुरुषागतम् ॥" अस्यायमर्थः । आगमो दानादिः । असति तस्मिन्यद्भुक्तं पितृपितामहप्रपितामहैस्तच्चतुर्थस्य सिध्यति, न तु विंशत्या वर्षैः । तत्रान्यत्रोक्तम् । "आदौ तु कारणं दानं मध्ये भुक्तिस्तुसागमा । अन्ते तु भुक्तिरेवैका प्रमाणं स्थावरे भवेत् ॥" तृतीयस्य भोगात्सिद्धिर्न प्रथमद्वितीययोः पितृपितामहयोः । अस्यापि न विंशतिवर्षैर्भोगः प्रमाणम् । अन्ये त्वागमरहितस्य वार्षशतिकस्यापि भोगस्याप्रामाण्यमनुमन्यन्ते । तथा चाहुः

**"अनागमं तु यो भुङ्क्ते बहून्यब्दशतान्यपि ।**
**चौरदण्डेन तं पापं दण्डयेत्पृथिवीपतिः ।।"**

**"भोगं केवलतो यस्तु कीर्तयेन्नागमं क्वचित् ।**
**आगमः कारणं तत्र न संभोग इति स्थितिः ।।"** (नारद ८७, ८६, ८४)

या तु बहून्यब्दशतानीति तदाहर्तृविषयमात्मीयमेव भोगं चिरकालत्वे हेतुमाह। तस्य पितृपितामहभोगेन विना न सिद्ध्यतीत्यर्थः। "कथं पुनरेकस्यानेकाब्दशतो भोगः पुरुषस्य"। नैष दोषः। चिरकालप्रतिपादनपरा बहुत्ववचनाः शतं सहस्रमित्यादयः शब्दाः। यथा "शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यः शतेन्द्रिय" इति। एतदुक्तं भवति। विंशतिवार्षिकाद्भोगादधिकादपि न प्रथमभोक्तुर्भोगात्स्वत्वसिद्धिः। अर्थात् पुत्रस्यापि न सिद्ध्यतीति यथाश्रुतमेव। न हि बहुष्वब्दशतेष्वागमस्मरणं संभवति। ततश्च चिरन्तनदेवायतनब्राह्मणमठग्रामा राजभिरपह्रियेरन्। लेख्यशासनमपि राजाधिकृतलेखकलिखितमिति चिरन्तनेषु नैव प्रत्यभिज्ञायेत। कूटशासनमपि संभाव्येत। तस्माच्चिरन्तनो भोगः स्वत्वस्य दानाद्यागमसंभावनाया ज्ञापको हेतुर्न तु कारकः। अत एव भुक्तिः प्रमाणमध्ये पठिता ।। "लिखितं साक्षिणो भुक्तिः प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम्" इति (नारद ६९)। न तु स्वत्वकारणमध्ये "सप्तवित्तागमा इति" (मनु. १०।११५) "श्रुतशौर्यतपः कन्या" इत्यादौ च। अथवा यत्र बलादिभोगकारणं संभाव्यते तद्विषयमेतत् 'अनागममित्यादि' अत्रैव प्रकरणे पठितम् (नारद ८७)

**"अन्वाहितं हृतं न्यस्तं बलावष्टाब्ध्याचितम् ।**
**अप्रत्यक्षं च यद्भुक्तं षडेतान्यागमं विना ।।"** इति। (नारद ९२)

ननु च 'आधिः सीमा' इत्यनेनैवायमर्थः सिद्धः।"

"उक्तस्य कालस्य त्रिपुरुष यावद्भुङ्क्ते स एवार्थः।
अयं तु तत उत्तरकालमपि निवृत्त्यर्थमारभते। तथा च बहून्यब्दशतानीत्यत्र वचनम्। 'अन्वाहितं' यत्प्रकटमन्यथा प्रदर्श्यान्तर्हितमन्यदवस्थाप्यते। 'हृतं' रात्रौ सन्धिभेदच्छलादिना। 'बालावष्टब्धं' प्रसह्येति शेषः। शिष्टं प्रसिद्धम्। "यदि त्रिपुरुषा भुक्तिः प्रमाणं कस्तर्हि 'पश्यतोऽब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी' इत्यस्यार्थः ?" ।। १४८ ।।

**(७) मणिरामः।** जहुः बुद्धिरहितः पोगंडः षोडशवर्षात् किंचित् न्यूनः एतादृशोयो न भवति तस्य दर्शनविषये चेत्तद्धनमन्येन भुज्यते तदा व्यवहारेण स्वामिनस्तत् द्रव्यंभग्नंस्वाम्यरहितं जातं भोक्ता च तदुक्तं अर्हति प्राप्नोतीत्यर्थः ।। १४८ ।।

**(८) गोविन्दराजः। अजऽइति।** निधानस्वामी यदि बुद्धिविकलो न भवतिबालो वा, अस्य च तस्मिन्नेव देशे व्यपस्थितस्यान्येन तदीयं भुज्यते तद्धनं व्यवहारेण भग्नं स्वामिनस्तत्र विवादो न भवति। यतो भोक्तैव तद्धनमर्हति। व्यवहारेण भग्नमिति वचनाद्धर्मेण तत्स्वामिन एव सर्वदा स्वमेवं चायं पूर्वशेषश्लोकः ।। १४८ ।।

**"विद्यमानेऽपि लिखिते जीवत्स्वपि हि साक्षिषु।**
**विशेषतः स्थावरणां यत्र भुक्तं न तत्स्थिरम्॥"** इति। (नारद ७७)

विशेषग्रहणं गवाश्वादावभुज्यमानेऽपि नासिद्धिर्यतस्ते नावश्यंभोग्याः। तथाहि भवेद्-गौर्गर्भं न गृह्णादि कीदृशोऽस्या अतो भोगः। भूमिस्तु सर्वदा फलदेति भोगलाभमन्तरेण न बन्धत्वसिद्धिः।

तत्रापि कथंचिदुपेक्ष्यमाणस्य तु यच्छतः प्रथमभोगकाल एव यदि द्वितीयेनाऽधिग्राहकेण संनिकर्षादिना स्वीकृतः स्यादितरेण वाद्यप्रमाणवता देशविप्रकर्षात्कार्यव्यासङ्गाद्वा न स्वीकृतस्तदा विचार्यते नेयता तदसिद्धिः। यदा तु गृहीताधिरेव समनन्तरं राज्ञा प्रव्राजितो महान्तं व्याधिमा[illegible]न वाऽस्यान्योऽर्थरक्षाद्यधिकृतः कश्चिदस्ति स चिरेणाप्यागतः सिद्धावपि निरुपधिप्रमाणकाले लभत एव स्वीकृतमप्यन्येन।

अन्ये तु भ्रातृणां न्यूनाधिकविभक्तानां पुनर्विभागः समीकरणार्थं उक्तः। स विंशति-वर्षेभ्य ऊर्ध्वं नास्तीत्येवमर्थमिदमाहुः। एतावन्मात्रफलत्वे तत्रैवाभिधानमुचितम्। सामान्या-भिधानं तु प्रकरणोत्कर्षेणान्यविषयतामपि ज्ञापयति।

अपरे तु–"खिलीभूता भूमिर्येन क्षेत्रीकृता तत्र भूमिस्थानोपभोग उक्तः। स चेदेतावन्ति वर्षाणि निगृहीतस्तथा सूत्रक्षेत्रयन्त्रैश्च स्वामी भूमित्वेन स च विषय" इत्येवमाहुः।

इह भवन्तस्त्वाहुर्यौ समानदेशौ समानसामर्थ्यौ समानस्वभावौ समानधनौ तुल्यप्रयो-योजनावपरस्परसम्बन्धिनौ तयोरन्यतरस्येतरेण भुज्यमानमियन्तमवधिं समक्षमुपेक्षमाण-स्यास्य नैव स्थावरेषु स्वाम्यम्। किन्तु त्रिपुरुषभुक्तिविरोधात् सर्वेण सर्वम्। विरुद्धे ह्येते स्मृती। ते न किमपि कल्पनमर्हतः येनास्ति च स्वाम्यं नास्ति चेत् किंचिद्युज्यते तत एव व्यवस्था युक्ता।

यद्यपि स्वत्वागमकारणानि बहूनि सन्ति दानविक्रयबन्धकारणादीनि तथाऽप्यनुप-लभ्यमानकारणविशेषे विंशतिवार्षिकभोगेऽनन्तरादर्शितविषये बन्धरूपताऽभ्युपगन्तुं युक्ता। चञ्चलं भोग्यं च स्वत्वम्। वत्स्वपचये तत्प्रत्याहर्तुं लभ्यते। ततश्च त्रिपुरुषा भुक्तिः सर्वस्य स्वत्वमापादयति। दानविक्रयसंभावना च यावत्येव सा वार्षिकी भविष्यति। विंशति-वार्षिके भोगे न किंचिदनुपपन्नं।

यत्रोभावप्यागममन्तरेण भोगमात्रबलात्प्रवृत्तौ तत्र पूर्वो भोगश्चिरन्तनोऽपि विंशतिवर्ष-भोग्येन सांप्रतिकेन निरुपाधिना बाध्यते। दण्डपूर्विकयाऽऽगत इयत्कालो भोगः त्रिपुरुषा-गताया भुक्तेर्बाधक इत्युक्तं भवति।

**भग्नं तद्व्यवहारेणेति।** व्यवहारग्रहणं धर्मनिवृत्त्यर्थम्। तेन यदि कथंचिज्जानीते तदा जीयेत। तदापि त्वनेनोपनिधिभोगज्ञापने प्रमाणं नास्ति, तेन व्यवहरतो जीयन्ते तद्धर्मो नास्ति। तादृशेन भोगेनापि हृत इति तिष्ठत्वेतत्॥ १४८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्रैव विशेषमाह अजडइति। अजडोविकलेन्द्रियः। अपौगण्डोबालः। विषयेतस्य पुनः पुनर्ज्ञानविषये। भग्नं विनष्टं पूर्वस्वामिनः। अन्यथातु दशवर्षोर्ध्वमपिन नश्यतीत्यर्थः। व्यवहारेणेति वचनाद्धर्मतः पूर्वस्वामिन एवेति केचित् ॥ १४८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। जडो बुद्धिविकलः। न्यूनषोडशवर्षः पोगण्डः। तथा च नारदः बाल आषोडशाद्वर्षात्पोगण्डश्चापि शब्दितः ॥ स धनस्वामी यदि जडः पौगण्डश्च न भवति तदीयदर्शनविषये चतद्धनं भुज्यते तदा स्वामिनोव्यवहारेण नष्टं ततो भोक्तुरेव तद्धनं भवति ॥ १४८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। जडादेस्तदपि सस्यादिकं न नश्यतीत्याह अजडइति। जडोबुद्धिविकलस्तेन बालोपि गृहीतः सच बालआषोडशाद्वर्षात्पौगण्डश्चापि शब्दितइतिनारदोक्तलक्षणभिन्नोऽपौगण्डः। धनी प्रेक्षतइत्यन्वयः। अस्येदृशधनस्वामिनोविषये दर्शनविषये। भग्नं तद्व्यवहारेण धनस्वामिनो व्यवहारेण प्रनष्टम्। तथाह याज्ञवल्क्यः ॥ पश्यतोऽब्रुवतोभूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी ॥ परेण भुज्यमानायाधनस्य दशवार्षिकीति ॥ १४८ ॥

(५) **नन्दनः**। उक्तेर्थे विशेषमाह अजडश्चेदिति। आधातोपनीताऽजडः समर्थः। अपौगण्डोऽबालश्चेत्। अस्यायातुरुपनिधातुर्विषये निवारणयोग्ये देशे यद्भुज्यते तद्भुज्यमानं व्यवहारेण भग्नंपराजितं स्यात्। तस्माद्भोक्ता तद्धनमर्हति न तु स्वामी एतदुक्तंभवति। अजडादिना सन्निधौ भोगात्सत्त्वहानिर्भवति नतु जडादीनामिति ॥ १४८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अजडः स्पष्टवाक् बुद्धिविकलोनचेत् अपोगण्डः अपगतः पौगण्डोयस्यसः अपोगण्डः। पौगण्डः दशमावधि। अस्यपूर्वस्वामिनः विषयेसमीपे भुज्यते तद्वस्तु व्यवहारेण भग्नं नष्टं भोक्तातद्धनमर्हति ॥ १४८ ॥

(७) **मणिरामः**। जडः बुद्धिरहितः पौगंडः षोडशवर्षात् किंचित् न्यूनः एतादृशोयो न भवति तस्य दर्शनविषये चेत्तद्धनमन्येन भुज्यते तदा व्यवहारेण स्वामिनस्तत् द्रव्यंभग्नंस्वाम्यरहितं जातं भोक्ता च तदुक्तं अर्हति प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ १४८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अजड इति**। निधानस्वामी यदि बुद्धिविकलो न भवति बालो वा, अस्य च तस्मिन्नेव देशे व्यवस्थितस्यान्येन तदीयं भुज्यते तद्धनं व्यवहारेण भग्नं स्वामिनस्तत्र विवादो न भवति। यतो भोक्तैव तद्धनमर्हति। व्यवहारेण भग्नमिति वचनाद्धर्मेण तत्स्वामिन एव सर्वदा स्वमेवं चायं पूर्वशेषश्लोकः ॥ १४८ ॥

**आधिः सीमाबालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः ।**
**राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति ॥ १४९ ॥**

**यद्विनागममत्यन्तं भुक्तपूर्वैस्त्रिभिर्भवेत् ॥**
**न तच्छक्यमपाहर्तुं क्रमाधिपुरुषागतम् ॥ १ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। आधीयत **इत्याधिर्बन्धकद्रव्यंगोभूहिरण्याद्युच्यते**। यच्चोत्तमर्णाद्धनमादीयते। **उपनिधिः** शास्त्रान्तरेणान्तर्हितो न्यास उक्तः। यदप्रदर्शितरूपं सचिह्नवस्त्रादिना पिहितं निक्षिप्यते। प्रीतिभोग्यं तु युक्तमुपनिधिशब्दवाच्यम्। तस्य निक्षेपग्रहणेनैव गृहीतत्वात्।

**सीमा** मर्यादा ग्रामादीनाम्। बहुधा सारण्याद्वा तत्रापेक्षा संभवति। गृहादीनां तु प्राकारपरिखादिरूपा द्वित्रिहस्तपरिमाणरूपाः द्वयोःसाधारणो याऽन्यतरे कथंचिदुपजीर्यमाणस्वल्पत्वाद्भोगश्च कश्चित्कियन्त कालमुपेक्ष्येतापि। तत्रापि दानादिस्वत्वापगमहेतुं संभावयतः। अतस्तत्पुत्राः पौत्रा वा गूढचिह्नादिना प्रज्ञापितसीमत्वादाच्छिन्दन्ययेव।

**बालधनं** दृष्टान्तार्थं पोगण्डशब्दस्य दर्शितत्वादित्युक्तम्।

**स्त्रियो** दास्यः भार्या वा। नेतरस्याधनस्यापहार उक्तो 'धनस्य दशवार्षिकीं' इति। "ननु च नेह धनमस्ति, यत्किंचिदिति वस्तुमात्रनिर्देशोऽयम्"।

नैवम्। धनीति सम्बन्धेन धनविषतैव यत्किंचिदिति सामान्यशब्दस्य प्रतीयते। एवमाह स्त्रियो न धनमिति। इत्थं विनियोज्ये द्रव्ये धनशब्दो वर्तते। अथास्मादेव स्त्रीधनात्स्वत्वमात्रोपलक्षणम्। धनोपमानेन पुमांसोऽपि भोगेन दासाः स्वीक्रियन्त एव।

**राजस्वम्**। देशेश्वरा राजानस्तेषां धनम्। ते हि महाधनत्वादुच्चत्वान्वयं धना मनन्विच्छन्तो विरुतभेदादिभिर्निधनीक्रियन्ते।

तदूनापेक्षया **श्रोत्रियद्रव्यं** श्रोत्रियधनाभियुक्तिः ॥ १४९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सीमा चिन्हनिर्णीता। बालधनमिति पूर्वश्लोकव्यतिरेकः। स्त्रियोऽन्यपरिणीतादास्यश्च। आध्यादिकमबालधनमपि न नश्यतीत्येतदर्थंबालधनोक्तिः। प्रणश्यति भोक्तुः स्वं भवति ॥ १४९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। बन्धोग्रामादिमर्यादा बालधनंनिक्षेपः वासनस्थमनाख्याय समुद्रं यन्निधीयत इति नारदोक्तउपनिधिलक्षणः। दास्यादिस्त्रियोराजश्रोत्रियधनानि उक्तेन दशवर्षभोगेन न स्वामिनो नश्यन्ति न भोक्तुः स्वत्वं भजंते ॥ १४९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तार्थे प्रतिप्रसवमाह आधिरिति। आधिर्बन्धकत्वेन स्थापितः। आधिवन्निक्षेपादिर्ननश्यतित्यन्वयः। आधेरवहार्यस्योक्तत्वात्। सीमा चतुर्विधावक्ष्यमाणा। बालधनं राजरक्षितातिरिक्तम्। निक्षेपः प्रसिद्धः। उपनिधिरत्र समुद्रं यन्निधीयते तत्। स्त्रियोदास्यादयः। राजस्वं करशुल्कादि। श्रोत्रियस्वं धनभूम्यादिमात्रम्। एषूत्पन्नं वृद्धिसस्यापत्याद्यपि न नंक्ष्यतीतिभावः ॥ १४९ ॥

(५) **नन्दनः**। अस्यापवादमाह आधिस्सीमेति। सीमाक्षेत्रादिः। बालोऽसमर्थः। निक्षेपोऋणार्थं परत्र निहितोर्थः। स्त्रियोदास्योन भोगेन प्रणश्यति भोगेनभोक्तृत्वंनभवतीत्यर्थः। आध्युपनिद्धयोः स्वामिना प्राप्तव्यकालात्प्राचीनभोगविषयोऽयमपवादो-

ग्राह्यः। अन्यथा।। अधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हत।। इत्येन विरोधप्रसङ्गः स्यादिति ।। १४९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। स्त्रियः दास्यः ।। १४९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **आधिरिति**। बन्धः क्षेत्रग्रामादिमर्यादा बालधनं निक्षेपः। प्रीतिभोग्यं दास्यो राजश्रोत्रिय धनादि उक्तेन दशवर्षभोग्येन स्वामिनो नापहारयितुं चास्य दशवर्ष भोग्यद्रव्यापवादत्वाद् बन्धादीनां चाल्पकालभोग्यत्वेन नेहाननुप्रवेशाशङ्कास्थानं प्रीत्या भुज्यमानानीति पृथग्वचनम् ।। १४९ ।।

(९) **भारुचिः**। सीमा ग्राममर्यादा राजोपद्रवादौ कृतमुद्रानिधानं निक्षेपः। भोगार्थमर्पितधनं उपनिधिः। स्त्रियः दास्यादिः। न भोगेन उक्तदशवर्षभोगेन ।। १४९ ।।

**यः स्वामिनाऽननुज्ञातमाधिं भुङ्क्ते विचक्षणः।**
**तेनार्धवृद्धिर्भोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः ।। १५० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। न भोक्तव्यं बलादाधिं भुञ्जानो वृद्धिमत्सृजेदिति सर्वस्यहि ग्रहणमुच्यते। तत्र निषिद्धे भोगे बलादाधिं भुञ्जानो सर्वां हारयत्येव वृद्धिम्। अननुज्ञाते प्रतिषेधनम्। रहस्युपभुज्यमानभोगे न चाधिर्नश्यति तत्र रूप्यसुवर्णालङ्कारादावर्द्धवृद्धित्यागोऽनेन श्लोकेनोच्यते।

यत्तु नवं महार्घमलङ्करणवस्त्रादि परिधीयमानं नाशितं तत्र न केवलं वृद्धिहानिः, यावद्धनं नष्टं तत्परिपीडय मूलतः प्रविशतीति महत्तरैर्व्याख्यातम्। यज्वना तु व्याख्यातम्—यत्र स्वामी व्यवहरति अध्यधीनश्च, तत्राध्यधीनेन बन्धो दत्तः, स्वामिना च दृष्टः, तत्र धारणकेन कस्मिंश्चिदवसरेऽध्यधीनः पृष्टः 'प्रयोजनं ममानेन बन्धेनास्ति' तत्रोपनिधिन्यायेन तेनानुज्ञातः कालान्तरे भुञ्जानं यदि स्वामी पश्यंस्तदनुज्ञातं बन्धं क्षपितवान्—सतीदृशे विषयेऽर्द्धवृद्धित्यागः।

तदयुक्तम्। यतस्तुल्यो व्यवहारः परस्परापेक्षः स्वामिभृत्ययोः। तत्र तत्रान्यतरेणानुज्ञाते नायमननुज्ञातेः प्रयुज्यतेऽधर्मतः। स्वामिशब्दस्यार्थे स्वत्वमीदृशि विषये भवति। अन्यथा बन्धं यो ददाति सोऽवश्यं स्वाम्येन युक्तः।

"अध्यधीनस्तु न स्वामी।"

यद्येवं चौरस्तर्हि। तस्मात्स्वामित्वाध्यारोपः। उपयोगे वाऽध्यधीने स्वाम्यनुज्ञाव्यवहारालेब्रह्मदत्तवत्। अतः पूर्व एवार्थः।

**स्वामिग्रहणं** पादपूरणार्थम्।

**भुङ्क्तेऽविचक्षणं** इत्यकारः संहितया प्रश्लिष्टनिर्दिष्टो वेदितव्यः। यस्य ह्यस्ति बुद्धिः वृद्धिर्ममास्त्येवाधिको लाभो वस्तुभोग इति' सोऽ**विचक्षणः**। न हि लोकशास्त्रनियोजनीया 'स्थितिः यदुभौ लाभश्च भोगश्च वृद्धिः स्यात् तेन सा वृद्धिर्भोक्तव्या।

**निष्कृतिः** परशुद्धिर्विनिमय इति यावत्।

अन्ये तु द्विगुणीभूतेऽप्यमोक्ष्यमाणे प्रतिषेधमिममिच्छन्ति– तस्य हि स्वल्पोऽपराध इति वदन्तः।

प्रथमं तावदादावेव तैर्याज्ञवल्क्यवचनस्य विषयो देय 'आधिः प्रणश्येदिति' (व्या. ५८) ॥ १५० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अननुज्ञातं अनुज्ञांविना नतु बलात्। एतच्च वृद्धेरल्पत्वे बहुत्वे तद्भोगोचितमूल्यदानं प्रतिषिद्धाधिभोगे प्रागुक्तम् ॥ १५० ॥

(३) **कुल्लूकः**। योवृद्धचादत्तंबन्धस्वाम्यनुज्ञाव्यतिरेकेण मूर्खोनिह्नवेन भुङ्क्तेन तस्य भोगस्य संशुद्धचर्थमर्धवृद्धिर्मोक्तव्या बलभोगे नतु भोक्तव्ये बलादधिभुञ्जाने सति सर्ववद्धित्यागएवोक्ताः ॥ १५० ॥

(४) **राघवानन्दः**। अननुमत्याऽऽधिनिह्नवेन भुक्तवतोऽर्धवृद्धित्यागप्रायश्चित्तमाह यइति। तेनाविचक्षणेन नभोक्तव्योबलादाधिरत्यत्र निषेधमतिक्रम्य बलाद्भोजने सर्वावृद्धिस्त्याज्या अनिह्नवेअननुमत्याऽर्धमिति भेदः ॥ १५० ॥

(५) **नन्दनः**। अविचक्षणः वृद्धिहानिमजानन् ॥ १५० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अननुज्ञातः स्वाम्याज्ञां विना अविचक्षणः मूर्खः ॥ १५० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **य इति**। यो वृद्धिदत्तं धनं भोगेनाविनश्यरूपं स्वामिनाऽननुज्ञातो मूर्खो रहसि भुङ्क्ते बलभोगेन भोक्तव्यो बलावधिपरत्युक्तान्तेन तस्य शुद्धचर्थमर्धवृद्धिस्तक्तव्या ॥ १५० ॥

**कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहिता ॥**
**धान्ये सदे लवे वाह्ये नातिक्रामति पञ्चताम् ॥१५१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। लाभार्थो धनप्रयोगः **कुसीदम्**। तत्र **वृद्धिः**। अथवा प्रयुज्यमानं प्रयोक्तृसंबन्धिधनमेव **कुसीदम्**। यदीयं स्वल्पं दत्त्वाऽधिकं ग्रहीष्यामीति धनं दीयते **तत्कुसीदम्**। तत्र **वृद्धिः**। सा द्विगुणत्वं नातिक्रामति। तावदुत्तमर्णेन वृद्धयै धनं दत्तवताऽधमर्णाद् ग्रहीतव्यं यावन्मूलधनं द्विगुणं प्रविष्टम्।

"ननु वृद्धेर्द्वैगुण्यं श्रूयते। मूलेन सह त्रिगुणं प्राप्नोति"।

नैवम्। 'गुणो'ऽवयव उच्यते। स तावदवयविनमपेक्षते। प्रकृतं च धनम्। अतः प्रयोगविगयस्य धनस्यानेन प्रकारेण द्वैगुण्यमुक्तं भवति। तथा च स्मृत्यन्तरं 'चिरस्थाने द्वैगुण्यं प्रयोगस्य' (गौतम १२।३१)–"मोच्य आधिस्तदुत्पन्ने प्रविष्टे द्विगुणे धने" इति (याज्ञ. व्य. ६४)।

वृद्धिश्चानेकरूपा। कार्षापणेषु प्रयुक्तेषु कार्षापण एव वर्द्धते। क्वचित्सन्ततिः—

'स्त्रीपशूनां वेति' संततिः। क्वचिदाधिभोगः, गोभूम्यादेः।

तत्रेदं द्वैगुण्यं सरूपवृद्धिविषयं केचिदाहुः। तत्र हि मुख्यं वृद्धेर्द्वैगुण्यं प्रतीयते। संततौ न विज्ञायते किं सङ्ख्यायाऽस्या द्वैगुण्यमुत परिमाणेनोत मानतो वेयम् अतो वेत्याद्यनिश्चयः। पशूनां मूल्याद्धि महार्घत्वं हस्त्यश्वादिषु क्रयविक्रयादौ दृश्यत एव। महाप्रमाणा हि महार्घा भवन्ति।

"ननु च संततौ सारूप्यमस्त्येव। गोः संततिर्गौरेव। तत्र भेदोपन्यासो न युक्तो वृद्धिः सरूपा संततिश्चेति।"

उच्यते। नैकजातीयत्वमात्रेण सारूप्यं भवति, किन्तु वयःपरिमाणादिसाम्येन। अतो युक्तो भेदोपन्यासः। भोगलाभऽपि कुतो द्वैगुण्यप्रतीतिः। उपकारकाणि जनयितुं गावः प्रयुज्यन्ते। गोभूम्यादि पयोयवसादयो यथासंभवं भुज्यन्ते। तत्र कीदृशं द्वैगुण्यम्। समाचारश्च कचिद्दृश्यते। वर्षशतानि भूमिरामूलहिरण्यादानाद्भुज्यते। पठति च याज्ञवल्क्यः "आधिश्च भुज्यते तावद्यावत्तन्न प्रदीयते" (व्या. ९०) इति।

अत्रोच्यते। वृद्धिमात्रे श्रूयमाणे द्वैगुण्यं कथं विशेषेऽवस्थाप्यते। न हि श्रुत्या सामान्यप्रतिपत्तिर्भवन्ती विना प्रमाणेन विशेषेऽवस्थातुमर्हति। यत्तु संततावनुपपन्नं द्वैगुण्यमित्यवगमे यत्नः क्रियताम्। मूलर्धेण परिनिश्चितवता वृद्धिस्तत्सामान्या एव तज्जातानां भवति। भूमिभोगेऽपि यवसगोधूमादौ तत्पच्यमानस्यार्धेतः शक्यत एव समत्वं निश्चेतुम्। उपकारवचनोऽपि गुणशब्दोऽस्ति। "क एवं सति समगुणो भवति क उपकारको भवतीति कथं गम्यते।" अनेन यावन्यूल्यं गोधान्यविनिमयादुत्पद्यते तावदेव चेत्तत उत्पन्ना वृद्धिस्तदा भवति समगुणत्वम्—परिमाणादिसाम्याभावेऽपि। यस्तु क्वचित्समाचारः—भवतैव परिहृतः क्वचिद्ग्रहणं प्रयुञ्जानेन। समाचारभ्रंशसंभवे स्मृतयो नियामिका अर्थवत्यः।

"आधिस्तु भज्यते तावद्यावत्तन्न प्रदीयते" इत्यत्र यावद्दानात्तद्द्विगुणमप्रविष्टम् इत्यपि शक्यते नेतुम्। स्मृत्यन्तरैकवाक्यत्वाच्चैतदेव युक्तमध्यवसातुम्। उपपादितं चैतन्निपुणतोऽन्यत्र।

**सकृदाहिता।** सकृदित्यनेन व्यवस्थापितोऽङ्गीकृतः पुनःपुनःप्रयोग इति यावत्। 'आधानं' स्थापनमुच्यते। वचनव्यवस्थया च निरूपणं स्थापनमेव। पुनःप्रयोगश्च द्विगुणीभूते धने आदीयमाने भवति। यदा द्विगुणो हि वृद्धार्थं उत्तमर्णोऽधमर्णश्च तदीयेन धनेन महत्कार्यं करिष्यन् करणपरिवृत्तिं करोतीति या प्राक्तनी वृद्धिरियं वाऽद्यप्रभृति वर्धत इति तदा द्विगुणभूतमपि पुनर्वर्धत एव। पुरुषान्तरसंचारेण वा। यदि द्विगुणीभूतं धनिकस्योपयुज्यते तदाऽधमर्ण उच्यमानोऽन्यपुरुषं ददतमर्पयति 'एष त इयद्धिरण्योभिर्दास्यतीति' तत्र स्वहस्तं दीयमानं पुनर्वर्द्धते। न चायं दानं प्रति प्रतिभूः किन्तु निक्षेप्ता दातैव। एतत्तु ऋजुना पुरुषान्तरमसंक्रान्तमिति व्याख्यातम्।

अथवा प्रागपि द्वैगुण्याद्यदा बन्धमन्यस्मै प्रत्यर्पयति–दीनारेषु सलाभेषु द्वित्वे–तस्य बन्धस्य मोक्ष एव धर्म्यः। बन्धस्य प्राग्वृद्धौ स्थितायां तस्मादह्नः प्रभृति पुनर्द्वैगुण्यमाप्नोति। यदा तदीयं बन्धकं तदनुज्ञयोत्तमर्णेनान्यत्राधाय स्वधनं गृह्यते तदा वर्धत एष पुरुषान्तरसंचारः।

उभयत्र द्विगणीभूते प्रयोक्ताऽधमर्णकेन येनकेन प्रकारेणान्यस्माद्ग्रहणमनुज्ञाप्यते।

यदि वाऽस्मादन्यद्गृह्यते ग्रहीता देशान्तरं गमिष्यन् कार्यान्तरेण चान्यत्र संचारयति।

ऋजुस्तु तस्मादेवाधमर्णादनवीकृते प्रयोगे द्विगुणाधिकां वृद्धिं नेच्छति। अत आह 'पुरुषान्तरमसंक्रान्ते पुनःक्रियाप्रयोजनं च वक्ष्यामः'।

ये तु व्याचक्षते–"या वृद्धिरुपचिता सांवत्सरी युगपत्सर्वैवानीयते तत्रायं विधिः। या पुनः प्राप्तदानाऽपि सर्वा न दीयते तत्र द्विगुणादधिकग्रहणमपि" तेषां न 'न'शब्दो यथार्थो नापि 'आहित' इति। सांवत्सरी तावदुपचिता ग्राह्या द्वितीयसंवत्सरे पुनरानयनमस्त्येवेति न क्वचिद्द्वैगुण्यनियमः स्यात्।

अथ–"यो द्विगुणीभूतं सलाभं धनमानयति तत्राधिकनिषेधोऽस्तु। प्राग्द्वैगुण्याद् वृद्धिमात्रदानसमर्थो वृद्धिं ददाति। मूलं तस्यापरिमितग्रहणमिति"।

एतदपि न किंचित्। यः संवहति तस्यानुग्रहो न्याय्यो नाधिकग्रहणम्। यस्तु राज्ञा द्विगुणोभूतमपि कथंचिद्दाप्यते तस्याधिकमोक्ष इत्येतदन्याय्यम्। न चाहितेत्यस्य शब्दस्यायमर्थः।

अथ 'आहृतेति' पाठान्तरम्–तथापि सकृच्छब्दो न निश्चितार्थो न्यायस्तु परित्यक्तः स्वकृतश्च पाठः स्यान्न मानवी स्मृतिरित्युक्तैव व्यवस्था न्याय्या।

धान्यादिषु **पञ्चतां** पञ्चगुणतां नात्येति।

स्मृत्यन्तरे धान्ये चतुर्गुणोक्ता "हिरण्यवस्त्रधान्यानां वृद्धिर्द्वित्रिचतुर्गुणा" इति (नारद, याज्ञ. व्य. ३९)। तत्र व्यवस्था–यदि दरिद्रभूतः प्रयोक्ता ग्रहीता च महाधनसंपन्नस्तेन धान्येन महान्तमर्थं कृतवांस्तदा पञ्चगुणाऽन्यथा चतुर्गुणा।

**'सदं'** फलं वार्क्षम्, धान्यस्य पृथगुपादानात्।

**लव** उदीच्यूर्णाविषयः प्रसिद्धः।

**बाह्यो** गर्दभोष्ट्रबलीवर्दादिः॥ १५१॥

रिक्ता अकृतसंज्ञका सानसिद्धचति। बहुकृद्धित्वादित्यर्थः अकृतवृद्धावपि विशेषमाहा कुसीदपथमिति। कुत्सितात् शूद्रात् प्रसरतिअयंपंथा इति कुत्सितपथः। शूद्रविषयोक्तं पंचकशतं द्विजातेरकिप्रर्हति गृण्हाति तं कुसीदपथं मन्वादयः आहुः। इयं चा कृता वृद्धिर्या-

चनादूर्द्धं स्थापनविषया। यथाहकात्यायतः। प्रीतिदत्तं न वर्द्धेतयावन्नप्रतियाचितं। याच्यमानं न दत्तं चे द्वर्द्धते पंचकं शतमिति ।। १५१ ।।

तेन धान्येन महान्तमर्थंकृतवांस्तदा पञ्चगुणान्यथा चतुर्गुणा सा च फलंवार्ष धान्यस्य पृथगुपादानात्। मालवकउदीच्येषर्णाविषयः प्रसिद्धः। वाह्योगर्द्दभोष्ट्रबलीवर्दादिः।। १५१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कुसीदवृद्धिः कुसीदपदं वाणिज्यवृद्धिव्यवच्छेदार्थम्। सकृदाहिता मूल्यग्रहणकालग्राह्या वृद्धिः। यातु प्रत्यहप्रतिमासग्राह्या वृद्धिः सा वृद्धिर्ग्रणानन्तरंपुनःपुनराधीयतइति न सकृदाहिता। तथा यत्र सवृद्धिकमेव मूलधनं मूलतया स्थाप्यते सोध्येवमित्येतदुभयंद्वैगुण्यमित्येव। धान्यइति एषु पञ्चगुणपर्यन्तं याति ननु ततोधिकम्। सदे सस्ये नालिकेरादौ। लवः शराद्यस्त्रं ऊर्णेति केचित्। वाह्ये वाहनीये वृषादौ। एतत्त्वया भोक्तव्यं भोगनिमित्तंचैतावदेतावता कालेन वर्धतइति प्रयुक्ते। अशीतिभागवृद्धितोपि यदि सौहार्दादिना न्यूनापि वृद्धिः स्थापिता सा ।। १५१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। वृद्ध्याधनप्रयोगः कुसीदं तत्र या वृद्धिः सकृद्गृहीता सा द्वैगुण्यंनातिक्रमति मूलवृद्धिर्द्विगुणैव भवति प्रतिदिनप्रतिमासादिग्राह्येति तात्पर्यम्। धान्ये पुनर्वृद्ध्यादिः प्रयुक्ते। सदे वृक्षफलेलूयतइति लवः ऊर्णालोम तस्मिन्वाहनीयेचबलीवर्दादौप्रयुक्तेचिरेणापिकालेनमूलधान्यादिनासहपञ्चगुणतांनातिक्रामेदिति ।। १५१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। कौसिदींवृद्धिमित्युक्तं सा मूलेनसह द्वैगुण्यं नात्येतीत्याह कुसीदेतिद्वाभ्याम्। कुसीदवृद्धिः कुसीदंलक्ष्यमुच्यतइति। सकृदाहृता प्रतिमासमग्राह्या सती सकृदेकदा मूल्येनसह गृह्यमाणा द्वैगुण्यं नात्येतीत्यन्वयः। ततोधिकेसत्यपि मूलेन सह द्विगुणादूर्ध्वं न प्राप्यतइति। प्रतिमासग्रहणंतु वर्णक्रमेण द्विकादिकमेवेतिभावः। धान्यादिचतुर्षु विशेषमाह धान्य इति। सदे वृक्षफले। लवे छेदनयोग्ये ऊर्णादिलोम्नि वाह्ये वहनीये उक्षादौ बहुकालेपि मूल्यधान्यादिना सह पञ्चगुणतांनातिवर्तते ।। १५१ ।।

(५) **नन्दनः**। द्रव्यविशेषे वृद्धिनियममाह कुसीदवृद्धिरिति वृद्धिकालमहत्वेऽपि द्वैगुण्यंमूल्यद्वैगुण्यंनात्येतिकुसीदं द्वैगुण्यात्परंवृद्ध्या न वर्धते धान्येमाषमुद्गादौ सदेतदूर्ध्वतिरिक्ते कृषिफले इक्ष्वादौ यवव्रीहिशाल्यादौ तथाचोक्तं। व्रीहिशाल्यादिकंधान्यंश्रूयते च लवन्तुतदिति। लवंक्षुमादिकमितिकेचित्। वाह्ये बलीवर्दादौ। पञ्चतांपाञ्चगुण्यं पारिशेष्यादितरेषुद्वैगुण्यमवगन्तव्यम्। सकृदाहृतेति विशेषणाद्विरोधनद्वैगुण्यात्ययानुज्ञा गम्यते ।। १५१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। कुसीदवृद्धिः द्विगुणा न अत्येति नातिक्रामति। कुसीदंवृद्धिजीविका द्रव्यंतुद्विगुणंस्मृतमितिवाक्यात्। सकृत् आहृतामूलग्रहणकाले गृह्याधान्ये पञ्चतां नातितिक्रामति। शदोवृक्षमूलफलादि पञ्चतां पञ्चगुणतां नातिक्रामति नातिक्रामेत्। लवे चामरादौ पञ्चतां नातिक्रामति। वाह्ये वाहनीये बलीवर्दादौ पञ्चतां नातिक्रामति। योगी।। वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणाःस्मृताः ।। १५१ ।।

वृद्ध्याधनप्रयोगः कुसीद । तत्रया वृद्धिः सकृदाहृताएकदागृहीता सा द्वैगुण्यं नाभ्येति नातिक्रामति । तथा च प्रतिदिनं प्रतिमासादि यथांगीकृता तथैव ग्राह्या यदि कदाचित्प्रातिबंधादधमर्णनिकटे एवस्थिता तदासमूलाद्विगुणा भवति नाधिकेतितात्पर्यं । धान्यादौ पुनः पंचता पंचगुणता नातिक्रामति पंचगुणतोऽधिका वृद्धिर्न भवति । सदे वृक्षफले भवे भूयत इति भवः ऊर्णालोम तस्मिन् । वाह्ये वलीवर्द्दादौ ॥ १५१ ॥

वृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति कालमहत्त्वेऽपि सति सकृदाहिता, पुरुषान्तरसङ्क्रान्ता सङ्क्रमिते तु धने प्रयोक्तान्यत्र पुनर्वर्धत एव गृहीतदोषादप्रतिपादनेन पूर्वं प्रयोक्तुर्धनस्य हिरण्ये (तः ? ता) वदेवं धान्ये तु फलकालेशदकाले प्रतिवर्षं भागशोवर्धमानं, तत्प्रयुक्तं धान्यं नातिक्रमति पञ्चताम् । हिरण्यवद्द्वैगुण्ये प्राप्त इदं तत्प्रतिषेधार्थं पञ्चगुणत्वमारभ्यते एवं शदे पञ्चतां परिवर्तमानो नातिक्रामति एवं लवे प्रयुक्ते व्याध्यूर्गाजानां लवकाले भागशो वर्धते । तत्प्रयुक्तं वाह्ये तु बलीवर्दा दावे तु एष एव न्यायः ॥१५१ ॥

(८) **गोविन्दराजः । कुसीद वृद्धिरिति ।** या वृद्धयर्थंप्रयुक्त धनसबन्धिनी वृद्धिरतिभूयस्यकाले गते सकृद धमर्णादानीता शनैः शनैः मासं प्रत्यक्षं वाऽसौ द्वैगुण्यं नातिक्रामति मूलद्विगुणैव भवति न ततोऽधिका लभ्यते धान्ये पुनर्वृद्धिप्रयुक्ते सहे वा वृक्षफले लवे वा ऊर्णमये वाहनीये च बलीपर्दादौ प्रयुक्ते भूयस्यपि कालगते सकृदधमर्णादाहृता सती मूलधान्यादिना सह पञ्चगुणतां नातिक्रामति ॥ १५१ ॥

**कृतानुसारादधिका व्यतिरिक्ता न सिद्धयति ॥**
**कुसीदपथमाहुस्तं पञ्चकं शतमर्हति ॥ १५२ ॥**

(१) **मेधातिथिः ।** अनुसरन्त्यनुधावन्त्यनुवर्तन्ते सर्वं एवार्था एतमित्यनुसारः शास्त्रोदितः समाचारः । स च विविधोऽशीतिभागादिः पञ्चकशतपर्यन्तः । तस्मादधिका वृद्धिः कृता यावत्तथाऽधमर्णेनोत्तमर्णस्य न सिध्यति । कुतः? व्यतिरिक्ता–यतः शास्त्रबाह्येत्यर्थः ।

अर्थवादान्तरमाह । **कुसीदपथमाहुस्तमिति ।** कुपुरुषा यत्र सीदन्ति तत् कुसीदम् । धर्मेण तद्धर्माणो लक्ष्यन्ते । कुसीदीनामयं पन्था मार्गो व्यवहारो न साधूनामिति निन्दा । यस्याधर्मेण तद्धर्माणो लक्ष्यन्ते । कुसीदीनामयं पन्था मार्गो व्यवहारो न साधूनामिति निन्दा । यस्यावश्यमधिका कर्तव्या–महद्धि कार्यमयं मदीयेन धनेन साधयतीति बुद्धया–तदा वर्णविभागमनपेक्ष्य पञ्चकं शतं ग्रहीतुमर्हति लिप्सेत्–तदर्थमिदमुच्यते ।

पाठान्तरं 'कृता तु सारादधिकेति' । यस्याकिंचनस्य सतः स्वल्पा कृता तेनैव धनेनान्यथा वा महार्थतां प्राप्तस्तस्य यां पुरुषसारादधिका क्रियमाणा न सिध्यति । यः परं पञ्चकशतमर्हति ॥ १५२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** कृतादनुसारात् दननुसरात् अधिका शास्त्रीयत्वेपि न सिध्यति । एवमशीतिभागाधिकवृद्धिनियमेनऋणंगृह्यतेतदाशीतिभागादेः शास्त्रीया । आर्ततया

तदधिकं शताद्यत्पञ्चकग्रहणं शूद्रउक्तं तच्चतुर्षु वर्णेषु ग्राह्यम्। नतु ततोव्यतिरिक्ता विशेषेणातिरिक्ता कृतत्वमात्रेण सिध्यति। एतच्च कुसीदपथंवृद्धिजोविवर्महुरत्रैव वृद्धिकृतोदोषइत्यर्थः ॥ १५२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कृतानुसारादितिकृतायावृद्धिर्द्विकंत्रिकमिति शास्त्रेण वर्णक्रमेणोक्ता तस्याः शास्त्रानुसारादधिका व्यतिरिक्ता कृता अतोन्या वृद्धिरकृतेत्यर्थः। किंतु कृताऽपि वृद्धिः वर्णक्रमेण द्विकत्रिकशतादिरूपैर्या मासे ग्राह्या। तथा च विष्णुः वृद्धिदद्युरकृताऽपि वत्सरातिक्रमेयथाभिहिता वर्णक्रमेण द्विकत्रिकादिनेत्यर्थः। किंत्वकृतवृद्धावपि विशेषान्तरमाह कुत्सितात्प्रसरत्ययंपन्थाइति कुसीदपथः अयमधमर्णोयच्छूद्रविषयोक्तंपञ्चकंशतंद्विजातेरपि गृह्णातीत्येवंकुत्सितः पन्थाः पूर्वोक्ताद्धर्म्यवृद्धिकरादपकृष्टइत्येवंमन्वादयआहुः। इयंचाकृता दृद्धिरुद्धारविषये याचनादूर्ध्वंबोद्धव्या। तदाह कात्यायनः॥ प्रीतिदत्तं न वर्धेत या वन्न प्रतियाचितम्। याच्यमानं न दत्तं चेद्वर्धते पञ्चकं शतम् ॥ १५२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच वृध्येतमपि कृतानुसारादिति। अधिकाऽधिकत्वेन व्यतिरिक्ता या सा नसिध्यतीत्यन्वयः। मयैतद्देयमित्येवस्वीकृतंसिध्यतीत्यर्थः। अथवा अधिका बलात्कारेण द्विकादेकाधिकत्वेन कृतापि अतएव शास्त्रप्रतिपाद्यत्वेन व्यतिरिक्ता शास्त्रतोन सिध्यति। शूद्रे पञ्चगुणं यल्लभ्यमुक्तं तत्सर्वेषामधिकसंख्याव्यवच्छेदार्थमित्याह कुसीदपथमिति। कुत्सितात् शूद्रादधमर्णात् सीदति प्रसरत्ययं पन्था इति तम्। अतीवनिकृष्टोहितांवृद्धिं ददातीति। शतपणंप्रति पञ्चपणान् दद्यादित्यर्थः। अकृतापि वृद्धिरस्ति। तथाचविष्णुः। तृद्धिदद्युरकृतामपि। वर्णानुक्रमेणोद्धारविषयेयं याचनादूर्ध्वम्। तथाच कात्यायनः। प्रीतिदत्तं न वर्धेत यावन्नप्रतियाचितम्। याच्यमानं न दत्तंचेद्वर्धतेपञ्चकंशतमिति। प्रीतिदत्तं परितोषाद्यर्थं दत्तं न वर्धते लभ्यंनयावदपियाचितम्। नदत्तंचेच्छतंप्रति पञ्चकंवर्धतइति कात्यायनवचनार्थः ॥ १५२ ॥

(५) **नन्दनः**। लोकेन कृतानुसारात्। परिमाणादधिका शास्त्रोक्तादधिका च कुसीदवृद्धिरुभयानुमतेत्येतावता न सिध्यति तथाहि यत्पञ्चकः शतमर्हति तदेव कुसीदमर्हतीति तथाहुराचार्याः। अनधिकं अत्रापि पूर्ववत्कन्प्रत्ययः ॥ १५२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अनुसारात् कृतवृद्धचनुसारात् कृतावृद्धिः अधिका व्यतिरिक्ता पञ्चकोत्तरशतातिरिक्ता न सिध्यति ॥ १५२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **कृतानुसारादिति**। गृहीतृनृणतमर्थितविशेषमुत्तमर्णेन विज्ञाय उक्तवृद्धिरधिका वृद्धिः कृता सतीयतः शास्त्रबाह्या सा च नो सिद्धचति। प्रतिषिद्धवृद्धिमार्गैः किलैनं शिष्टाः प्राहुः। यदि परं शूद्रविषये यदुक्तं पञ्चकं शतं तदसावुत्तमर्णो द्विजातेरादातुमर्हति। शूद्रविट्क्षत्रियद्विजातेरप्यादातुमर्हति ॥ १५२ ॥

**नातिसांवत्सरीं वृद्धिं न चादृष्टां विनिर्हरेत् ॥**
**चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका च या ॥ १५३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। संवत्सरे भवा सांवत्सरी। ताम् अतिक्रान्ता **अतिसांवत्सरी**। भवप्रत्ययार्थः सामर्थ्यादन्तर्भूतः। अथवा संवत्सरमतिक्रान्ता अतिसंवत्सरेति प्राप्ते वृद्धीकारौ छन्दस्तुल्यत्वात्कर्तव्यौ।

येषां वृद्धिरनन्तप्रक्रान्तं पञ्चकं शतं सर्ववर्णविषया सा संवत्सरं यावद्ग्रहीतव्या, नातीते संवत्सरे। अथवा यावत्संवत्सरम् संवत्सरो वर्षः। तावदवृद्धिर्न ग्रहणीया। अधमर्णेनापि संवत्सरादूर्ध्वं न विलंबितव्यम्।

**निर्विर्हरेत्** विनिष्कृष्य स्वधनादारभ्योपनयेदित्यर्थः।

अर्वागपि संवत्सराद्या दीयते माऽप्यतिक्रान्तसंवत्सरैव। अथवा मासामारभ्य संवत्सरस्य यावद्वृद्धिः परिमाणतो निरूपितव्या—मासेन यद्वर्द्धते संवत्सरेण वेत्येवं प्रयोगः कर्तव्यः। न तु संवत्सरद्वयस्य लाभार्थी कदाचिच्चिरकालं ग्राहयति—किं मे कतिपयमासिकेन लाभेन यदि द्वे वर्षे ततोऽधिकं वा गृह्णासि तद्ग्रहणे एषा वेयता कालेन वृद्धिस्तत्रार्वाचीनमपि ददद्धमर्णे द्विसांवत्सरीं यथा कालकृतां तदा दाप्येत। "एकां वृद्धिमनादेयां न दद्यान्नापि दापयेत्" इति। यथा मासिकी वृद्धिः प्रथमे मासि द्वितीय एवाह्नि शोधयन्दाप्यते तथा यदैवमभ्युपैति संवत्सरेण यद्वर्धत इति तदा तथैव दाप्यते न तु तदधिककालकृता।

**न चादृष्टां विनिर्हरेत्**। शास्त्रे या न दृष्टा दशैकादशिकाद्या पञ्चकादधिका न तां गृह्णीयात्। 'व्यतिरिक्ता न सिध्यति' (१५२) इत्यस्यैवायमनुवाद इति केचित्। इदं तु युक्तम्—**अदृष्टामनुपचितामित्यर्थः**। यावद्बहुभिर्मासैर्न संहतीभूता तावन्न ग्राह्या दिवसद्विर्मासवृद्धिः।

"ननु च 'मासस्य वृद्धिं गृह्णीयात्' (१४२) इत्युक्तम्।"

परिमाणं मासिकम्। तद्वृद्धेर्न तु ग्रहणम्।

**चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिका कायिका च या** तामपि न **विनिर्हरेदित्यनुषङ्गः**—नैवादद्यादिति। यद्यप्यधमर्णस्य प्रतिषेधस्तथापि सामर्थ्यादुत्तमर्णस्यैव द्रष्टव्यः। अधमर्णो ह्यार्तः किं न करोति। अथवा 'विनिर्हारो' ग्रहणमेव। तेनोत्तमर्णस्यैव शाब्दः प्रतिषेधः।

"ननु च द्विकादिवृद्धिविधानाच्चक्रवृद्धयादीनां प्राप्तिरेव नास्ति—किं प्रतिषेधानुषङ्गेण?"

उच्यते। अप्राप्तः प्रतिषेधः पाक्षिकीं वृद्धिमनुमापयति। यथाऽऽधाने न ब्रह्मसामाभिगायेदित्यविहितं सामगानं प्रतिषेधेनास्तीति ज्ञापयति। तेनैता अपि प्रतिषेधद्वारेणाभ्यनुज्ञायन्ते। केषांचिदूनव्यवहारिणां चक्रवृद्धपादयोऽपि भवन्ति। तेन स्थलपथवारिपथिका वाणिजो यथोक्तम् (या. व्या. ३८)।

**"कान्तारगास्तु दशकं सामुद्रा विंशकं शतम्।**
**दद्युर्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु॥"** इति।

कान्तारगादीनामेव स्वकृता सर्वजातिविषया साधारणी वृद्धिर्न त्वन्येषाम्।

तत्र चक्रवृद्धिः स्मृत्यन्तरे पठिता–'वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः' (नारदीये १।१०४)। अन्ये तु चक्रवद्यानं गन्त्यादि–तद्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः। तेषां यस्मिन्नहनि चक्रं वर्तते तत्रैव वृद्धिः। यदा तु नदीसंतारे दुर्दिनादिना अप्रयाणं तदा नास्ति वृद्धिः। एवमन्येषामपि बलीवर्दादिवाह्यप्रयोक्तृणामीदृशी वृद्धिश्चक्रवृद्धिरुच्यते।

**कालवृद्धिः** "प्रतिमासं तु कालिका" (नारदीये १।१०३)। मासग्रहणमुपलक्षणार्थम्। याऽनुपचिता वृद्धिर्दिवसे दिवसे गृह्यते मासि मासि वा यस्याः कालो न प्रतीक्ष्यते अथ चैतस्मिन्काले यदि न ददासि तदा द्विगुणीभवति धनमित्येकरूपा कालवृद्धिः।

**कारिता।** इत्थंकृतां यावतीं वा परस्परोपकारापेक्षयोत्तमर्णाधमर्णौ कुरुतः। एषाऽपि दिग्भागवणिजामेव। अन्येषां तु "व्यतिरिक्ता न सिध्यति" इत्युक्तम्। "पञ्चकं शतमर्हतीति"।

अथवा हिरण्ये प्रयुक्ते वासांसि वृद्ध्या गृह्यन्ते, तत्राधिलक्षणं द्रव्यं, सा 'कारिता' यथा भोगलाभे न्यासरूपविषये च स्यात्।

**कायिका** कायकर्मणा संशोध्या। कायजीविका च–येषां क्रमेण काचैवाधिकादीनाम् (?) ॥ १५३ ॥

यदि वृद्धिमहत्त्वात् संवत्सर एवं तद्धनं द्विगुणीभव(न्ति?ति)। अन्यथा तु परस्तादपि संवत्सरस्य गृह्णीयात् यावत्तद्द्वैगुण्यम्। तथा च गौतमः–चिरस्थाने द्वैगुण्यं प्रयोगस्येति। अन्ये तु लब्धिमपि वृद्धिमशीति पञ्चाशद्भागलक्षणां नातिसंवत्सरीं मन्यन्ते धर्मा···तन्याः न चादृष्टाः शास्त्रैः। स्वयंकल्पितां द्विकादिवृद्धिभ्योऽन्यं हरेत्। अथवा अदृष्टाम् अनुपचितामित्यर्थः। प्रतिमासं न गृह्णीयात् प्रतिमासोऽवजातस्तु तावद् गृह्णीयात् यावद्द्वैगुण्यं·····परस्परोपकारापेक्षया स्वयंकृता वृद्धिकल्पा अभ्यनुज्ञायते चक्रवद्धयानसंयुक्ता वृद्धिश्चक्रवृद्धिः। अथवा चक्रवदावर्तते प्रतिमासं या कालवृद्धिः····तस्मात् कालाभ्यैतद्धनं वर्धते। न सम्प्रत्येव, एतच्च प्रीत्या कल्प्यते स्वयमनुग्राह्यतया परस्य अथवास्मिन्काले अप्रयच्छतस्तस्तथै··· कारिताऽतःस्वयमेव प्रयोक्त्रा कालदेशकालकार्यावस्थापेक्षया, इयं चाभिहितापवादकृतानुसारादधिकेति कायिका कायिकाकर्म संशोध्याः ॥ १५३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** अथ व्यवहारसिद्धा अप्यधर्महेतुतयाऽकर्तव्यावृद्धीराह नातिसंवत्सरीमिति। अतिसांवत्सरीं संवत्सरमात्रेणातिक्रान्तामतिशयितांद्विगुणतांगताम्। तथा नादृष्टां सांहत्येन दर्शनायोग्यां प्रत्यहग्राह्यां विनिर्हरेत् गृह्णीयात्। तथा चक्रवृद्धिः वृद्धेरपिवृद्धिस्तां न गृह्णीयात्। कालवृद्धिः प्रतिमासं प्रदेया। कारिता द्विगुणादूर्ध्वं वृद्धिरशास्त्रीयत्वेपि तदूर्ध्वमपि मूल्यंवर्धत इति ऋणिकेनार्थितया कृता। कायिका यावन्न मूलमर्घ्यते तावत्कायेन कलार्थे कार्यमिति। केचित्तु प्रथामान्तत्वादस्य पूर्वेणानन्वयात्कर्तव्यमित्यस्यार्धस्यार्थइत्याहुः। तत्तुच्छम्। यच्छब्देनयेति पूर्वप्रक्रान्तप्रक्रियानुकर्षार्थेनत्वपास्तम् ॥ १५३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ममैकस्मिन्मासि मासद्वये मासत्रये वागते तस्य वृद्धिविगणय्येकदा दातव्येत्येवंविधनियमपूर्वकवृद्धिग्रहणमुत्तमर्णः संवत्सरपर्यन्तं कुर्यात्। नातिक्रान्ते संवत्सरे नियमस्य वृद्धिं गृह्णीयात् नच शास्त्राददृष्टामुक्ताधर्म्यद्विकत्रिकशताद्यधिकांगृह्णीयात्। अधर्मत्वबोधनार्थोनिषेधः चक्रवृद्ध्यादिचतुष्टयींचाशास्त्रीयांन गृह्णीयात्। तासांस्वरूपमाह बृहस्पतिः।। कायिका कायसंयुक्ता मासग्राह्या च कालिका। वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः कारिता ऋणिना कृता। तत्र चक्रवृद्धिः स्वरूपेणैव गर्हिता कलावृद्धिस्तु द्विगुणाधिकग्रहणेन कायिकाचातिवाहदोहादिनाकारिता ऋणिकेन याऽनापत्कालएवोत्तमर्णपीडयाकृता। चतस्त्रोपिवृद्धीरशास्त्रीया न गृह्णीयात्। तथा च बृहस्पतिः।। भागो यद्विगुणादूर्ध्वं चक्रवृद्धिश्च गृह्यते। पूर्णे च सोदयंपश्चाद्वार्धुष्यंतद्विगर्हितम्। कात्यायनः। ऋणिकेन कृता वृद्धिरधिका संप्रकल्पिता। आपत्कालकृता नित्यंदातव्या कारिता तथा। अन्यथा कारिता वृद्धिर्न दातव्या कथंचन।। १५३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच त्वयैकस्मिन्मासि एवंदेयं द्वितीये तृतीये च तस्य वृद्धिं विगणय्य एकदा दातव्येत्येवविधनियमपूर्वकमुत्तमर्णः संवत्सरपर्यन्तं गृह्णीयात् अतीते संवत्सरे यां संगृह्णीयात्साऽतिसंवत्सरी ताम्। तथा अदृष्टां शास्त्रतः पञ्चकाद्यतिरिक्ताम् चक्रवृद्ध्यादिचतुष्टयमपि न ग्राह्यमित्याह नहरेत् नगृह्णीयात्। बृहस्पतिस्तांलक्षयतिस्म।। कायिका कायसंयुक्तामासग्राह्याचकालिका। वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः कारिता ऋणिनाकृतेति। चक्रवृद्धिः स्वरूपेवैव गर्हिता। कालवृद्धिस्तु द्विगुणाधिका संवत्सरान्ते द्विकादिकामित्युक्तेः नातिसंवत्सरीमितिग्रहणेनाऽशास्त्रीया। कायिकाच वाहदोहादिना। कारिकातु कालेउत्तमर्णेन पीडया कृता अशास्त्रीयाएताअपि न ग्राह्याइत्यध्याहारः। तथाच बृहस्पतिः।। भागोयद्विगुणादूर्ध्वंचक्रवृद्धिश्चगृह्यते। पूर्णेच सोदयंपश्चाद्वार्धुष्यंतद्विगार्हितमिति। पूर्णे ऋणतुल्ये सति सोदयं ततोधिकलभ्यंगृह्यतेयत्तद्विगार्हितमित्यन्वयः। कात्यायनोपि।। धनिकेनतु या वृद्धिरधिकामं प्रकल्पिता। आपत्काले कृता नित्यं दातव्या कारितातु सा।। अन्यथा कारिता वृद्धिर्न दातव्या कथंचन। अधिकामंस्वेच्छया। अन्यथा अनापत्काले।। १५३ ।।

(५) **नन्दनः**। संवत्सरादूर्ध्वंभवांवृद्धिं लोकशास्त्रयोर्दृष्टंचक्रवृद्ध्यादयोवृद्धयस्ताश्च न हरेन्न गृह्णीत। चक्रवृद्ध्यादयोबहस्पतिना व्याख्याताः।। कायिका कर्मसंशोद्धया मासग्राह्या च कालिका। वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः कारिका ऋणिना कृतेति।। १५३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अतिसांवत्सरीं वृद्धिन हरेत् न गृह्णीयात् च पुनः अभीष्टांवृद्धिं न हरेत् न गृह्णीयात् च पुनः या वृद्धेरपि वृद्धिः चक्रवृद्धिः प्रतिमासं देया। कारिता द्विगुणेन मूल्यमिति कारिता च पुनः कायिका कायमूल्यमिति योगीश्वरः।। वृद्धिवृद्धिश्चक्रवृद्धिः प्रतिमासंतु कालिका। इच्छाकृता कारितास्यात्कायिका कायकर्मणि इति।। १५३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **नातिसंवत्सरीमिति**। यदि द्वयोर्वा त्रयाणां वर्षाणां रूपकान् न गृह्णाति ततो ददाति। यातु संवत्सरमतिक्रान्ता वृद्धिस्तां न गृह्णीयात्। अदृष्टां चानुपचितामसंहतीमूलामेकद्विपञ्चाहादिजा तां न गृह्णीयात्। चक्रवत् गन्त्र्यादियानप्रयोगे

सति या वृद्धिः सा चक्रवृद्धिः । सा पूर्वोक्तवृद्धेरतिधकाऽपि स्यादित्येवं नानुज्ञाता सा चार्यस्याभिमता प्रथमानिर्देशान्न विनिहरेदित्येतत्संबन्धाभावाच्चक्रवृद्धिसमारूढ इति च वक्ष्यमाणत्वादत एव चेह वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिरित्येवमादिका चक्रवृद्धिशब्देनोच्यते । अपितु ग्रन्थाश्रिते वा कालिका प्रतिमासं तु कालिकेति स्मरणान्मासि ग्राह्या । कारितेच्छा कृता परस्परापेक्षया वणिक् प्रभृतीनां स्यादन्येषां पुनः कृतानुसारादधिकेत्युक्तम् । कायिका कायकर्मसंख्यावाच्या स्यात् ॥ १५३ ॥

**ऋणं दातुमशक्तो यः कर्तुमिच्छेत्पुनः क्रियाम् ॥**
**स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् ॥ १५४ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । वृद्धिद्विगुणीभूतमृणं धनपरिक्षयाद्दातुमशक्तो यः स पुनः क्रियां कारयितव्यः । करणं लेख्यसाक्ष्यादि परिवर्तयितव्यः । वृद्धिं तु दद्यात् निर्जितां—यावती गणनया भवतीत्यर्थः । द्विगुणादधिकं न ग्राह्यमिति यदुक्तं तस्यायमपवादः । जयो ह्ययं प्रयोग इति ।

"कुतः पुनः द्वैगुण्यापवादार्थता" ।

यावता नेह किंचिदीदृशं वचनमस्ति वृद्धिसहितं धनं वर्द्धते मूलधनं वा । केवलं पुनःक्रिया श्रूयते । सा च करणं परिवर्तयेदिति व्याख्यान्तरेण व्याख्याता ।

"यदि न वर्धते किमर्थं तर्हि करणपरिवर्तनम्?"

उच्यते । शान्तलाभे धनेऽदीयमाने आलस्यादिसंभावना साक्षिणश्च दार्घे गच्छति काले विस्मरेयुः । यथोक्तम्—

**"यत्र कार्ये भवेद्येन कृतोपेक्षा दशाब्दिकी ।**
**विवादस्तत्र नैव स्यात्साहसेषु विशेषतः ॥"**

तथा "दशवर्षोपेक्षितमृणमसाध्यमिति" । तथा च पूर्वे स्म व्याचक्षते ।

अयं च राज्ञ उपदेशः पीडितस्यानुग्रहः । यदि च द्विगुणस्य नवीकरणेन पुनः प्रयोगो वृद्धिसहितस्य पुनर्वृद्धिर्महानयं पीडितस्यानुग्रहः (?) । अर्थं सर्वं तदानीमवष्टभ्य न दाप्यत एषोऽनुग्रहो निर्धनस्य । ईदृशोऽनुग्रहो दैवेनैव कृतः । तथा च सर्वस्मृतिष्वस्यामवस्थायां विहितम्—

**"अथ शक्तिविहीनः स्यादृणी कालविपर्ययात् ।**
**प्रेक्ष्य शक्तिमृणं दाप्यः काले देशे यथोदयम्" ॥**

यद्यधमर्णो दैवदोषान्निर्धनीभूतस्तदा न दुर्गावरोधादिना राज्ञा पीडयितव्यः । किं तर्हि कर्तव्यम्? यदाऽस्य कथंचिद्धनं भवेत्तदा यथासंभवं शनैः शनैर्दापयितव्यः । 'प्रेक्ष्य शक्तिं' धनवत्तां ज्ञात्वेत्यर्थः । 'दाप्यः' उचितस्य । वक्ष्यति 'कर्मणाऽपि समं कुर्यात्' इति (१७७) ।

तस्मात् करणपरिवृत्तौ यदेवोक्तमस्माभिस्तदेव प्रयोजनम् ।। १५४ ।।

नातिसांवत्सरी मम एकस्मिन्मासि मासचयादौ चागते वृद्धिमेकीकृत्य एकदा दातव्यमिति नियमपूर्वकं ग्रहणं वर्षपर्यंतं कुर्यात् । संवत्सरेऽतीते नियमस्य वृद्धिं न गृह्णीयात् । अदृष्टां शास्त्रोक्त द्विकशतादधिकां न च गृह्णीयात् । चक्रादिवृद्धिं चतुष्टयीं च न गृह्णीयात् । चक्रादिस्वरूपमाह बृहस्पतिः । कायिका कायसंयुक्ता? मासग्राह्या च कालिका वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः कारिता ऋणिना कृतेति-न करण-पत्रं परिवर्त्तयेत् । पूर्वं दूरीकृत्य पुनः पत्रांतरं लिखेदित्यर्थः ।। १५४ ।।

मूलहिरण्यस्य पुनः क्रिया न वृद्धेः । कथं यो हि गृहीता मूलवृद्धिं च दातुमशक्तः कारणं साक्ष्यादि परिवर्तयितुमिच्छेत् स पूर्वजनितां वृद्धिं दत्वा मूलमात्रस्य कारणं परिवर्तयेत् । न तत्र वृद्धिमारोपयेत् । यच्च दद्यात्तद्वृद्धितः शोधयेत् । न तु मूलतः । अयं च राज्ञ उपदेशः । पीडितस्य वृद्धया राज्ञैवाकारयितव्यम् ।। १५४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । ऋणं समूलां वृद्धिम् । पुनःक्रियां कलां दत्वा मूलस्य पुनर्वृद्धिनियमम् । निर्जितां तावत्कालेन संचिताम् । करणं यत्र साक्ष्यादिव्यवस्थां परिवर्तयेत् पुनःकुर्यात् ।। १५४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । योऽधमर्णो धनदानासामर्थ्यात्पुनर्लेख्यादिक्रियां कर्तुमिच्छेत्स निर्ज्जितामुत्तमर्णः सत्यतया आत्मसात्कृतां वृद्धिं कृत्वा करणं लेख्यं पुनः कुर्यात् ।। १५४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । ऋणादृतेजीवितुमसमर्थः पूर्वोत्तमर्णादृणान्तरंलिप्सुरेवंकुर्यादित्याह ऋणमिति । पुनःक्रियां ऋणान्तरम् निर्जितां मासिमासि लभ्यत्वेनानीतामुत्तमर्णप्राप्यां तां संपूर्णां दत्वा करणं क्रियते लिख्यते ऋणमत्रेति पत्रान्तरं कुर्यादित्यर्थः ।। १५४ ।।

(५) **नन्दनः** । पुनःक्रियां ऋणस्य पुनः स्वीकरणक्रियां । निर्जितामुत्तमर्णेन निर्जितामधमर्णेनतदानींदातव्यमितियावत् । करणंमूल्यमात्रस्य ऋणस्यस्वीकरणं । परिवर्तयेत् अस्यां करणपरिवृत्तौ यावतीसंभवेद्वृद्धिस्तावतींदातुमर्हति ।। १५४ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । सः निर्जितां तत्कालसञ्चितां कृतांवृद्धिं दत्वा यदन्यत् करणं यत्रसाधनं परिवर्जयेत् । अन्यत्कारयेदित्यर्थः ।। १५४ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **ऋणमिति** । योऽधमर्णो धनदानाऽसामर्थ्यात् आनीतं स्यादिति क्रियां कर्तुमिच्छेत् आनीतां वृद्धिं दत्वा करणं लेख्यादि पुनःकुर्यात् ।। १५४ ।।

**अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत् ।**
**यावती संभवेद्वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति ।। १५५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **अदर्शयित्वा हिरण्यम्,** अदत्वा निर्धनत्वाद् वृद्धिहिरण्यं तत्रैव पुनःकरणं **परिवर्तयेत्** । साक्षिसमक्षमेवं ब्रूयात् 'एतावन्मूलमस्मै धारयामि एतावती च

वृद्धिरिति' तत्रैवारोपयेत् यावत्संवत्सरात् वृद्धिरिति तावद्व्याचक्षते। पुनः करणे वृद्धिसहितमूलीभूते लघीयसी वृद्धिः कर्तव्या। यावत्या वृद्धया नातिपीड्यते। या प्रागासीत्ततो यज्ञासहायनारदानां तु मते काकिणीमात्रमपि शक्तः करणपरिवृत्तिकाले दापयितव्यः। येन साक्षिणो न श्रवणमात्रे साक्षित्वं–ददाति तत्समक्षमधमर्णः। अर्थसंबन्धोऽपि प्रत्यक्षीभवति। यतः श्रवणाश्रवणे च कृता भविष्यन्ति, ततश्चित्तं तिष्ठति, धने दशवर्षोपेक्षितमित्यादि व्यनश्वरो भविष्यति (?) ॥ १५५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एतत्स्फोरयति अदर्शयित्वेति। मूलभूतं हिरण्यं धनिके अदर्शयित्वा अदत्वा क्रियां परिवर्तयेत् तदाच यावती संभवेत्तावता कालेन वृद्धिं तामेव दातुमर्हति नतु मूलस्य पुनःस्थापनार्थमधिकं तेन देयमित्यर्थः ॥ १५५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यदि दैवगत्या वृद्धिहिरण्यमपि समये दातुं न शक्नोति तदा तद्गृहीत्वैव तत्रैव पुनः क्रियमाणे लेख्यादौ वृद्धिहिरण्यादिशेषमारोपयेत्। यत्प्रमाणं चक्रवृद्धिधनं तदानीं संभवति तद्दातुमर्हति ॥ १५५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उत्तमर्णप्रत्युक्तलभ्यानासमर्थस्य लभ्यं पूर्वपत्रोपरि वर्धयेदित्याह अदर्शयित्वेति। अदर्शयित्वा आदौ लेख्यमदत्वाछेदनादिभयात्। तत्रैव लेख्ये हिरण्यं वृद्धिधनं दत्तावशिष्टं परिवर्तयेत्समारोपयेत्। अतएवाह यावतीत्यादि ॥ १५५ ॥

(५) **नन्दनः**। वृद्धेर्वृद्धिरितिनवक्तव्यमित्यर्थः ॥ १५५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तत्रैव हिरण्यमदर्शयित्वा अदत्वा परिवर्तयेत्। तत्क्रियामितिशेषः। यावती वृद्धिः संभवेत्तावतींवृद्धिं अधमर्णः दातुमर्हति ॥ १५५ ॥

(७) **मणिरामः**। क्रियां कलांतरमदत्त्वैव पुनः पत्रादिलेखनक्रियां निर्जितां वृद्धिं कृत्वा कलांतरमपि मूलधने वर्द्धयित्वा। यदि दैवगत्या वृद्धिहिरण्यमपि समये दातुं न शक्नोति तदा। तत्रैव पुनः हिरण्यं वृद्धिसहितं परिवर्तयेत् पत्रे लिखेत्। ततो दान समये यावती वृद्धिः संभवति तावतीं दातुमर्हति ॥ १५५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अदर्शयित्वेति**। दौर्गत्याद् वृद्धिहिरण्यमप्यदत्वा तत्रैव पुनः क्रियमाणे लेख्यादौ तदारोपयेत्। यत्परिमाणं किं वृद्धिधनं तदानीं संभवति तद्धातुमर्हति अवशिष्टं करणमारोपयेत् ॥ १५५ ॥

(९) **भारुचिः**। अशक्तस्य काकिणीमपि दातुं सहवृद्धया पुनःक्रिया ॥

**चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः।**
**अतिक्रामन् देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् ॥ १५६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'वाराणसीं यास्यामि तदीयं पुण्यं मे भाण्डं च हेतुः, एषा च ते वृद्धिरिति।' तत्र यदि कान्तारनदीसंतरणं राष्ट्रोपप्लवादिना तं देशं न गतस्ततोऽ ग्देशा

त्क्रियता लाभेन प्रवृत्त्यावृत्तस्तदा यथानिरूपिता वृद्धिर्न दाप्यते। यतस्तं देशं यावद्वहतां या वृद्धिरप्राप्तानां सा कथं स्यात्? दीर्घमध्वानं वहतां युग्यानां महान्क्लेशः स्वामिनश्च तावन्तं कालं कृतैव वृद्धिर्युग्योपकारः। शीघ्रं तु प्रतिनिवृत्तानां स्वामिनः पुनरन्यत्रोपकारणं संपद्यत एव। एष एवातिक्रमः।

एवं कालातिक्रमः—'मासं मे वहन्तु बलीवर्दा इयती तव वृद्धिरिति'। तत्र यदि पक्षात्प्रत्येति तत्र **चक्रवृद्धिमधमर्णः समारूढः** प्रतिपन्नोऽङ्गीकृतवानिति यावत्। तस्यां वृद्धौ **देशकालौ** व्यवस्थितौ। यत्तया पूर्वोक्तेन प्रकारेण देशविशेषं कालविशेषं वा न, निर्विशेषणमेव, कृतवान् स एवंविधोऽधमर्णस्तौ **देशकालौ अतिक्रामन् नाप्नुयात्तत्फलम्** वृद्धाख्यं नाप्नुयान्न भजेत न दद्यादित्यर्थः॥ १५६॥

किं तत्र नैवास्ति वृद्धिरथवा पञ्चकं शतम्? तेनेत्याह

**(२) सर्वज्ञनारायणः।** यदि चक्रवृद्धिः कार्या तदा मयात्र देशेऽत्रकाले शोधनीयेति यत्र व्यवस्था कृता स यदि ततोन्यत्रान्यदा च याचते तदा चक्रवृद्धिर्न लभ्यते अपितु अशीतिभागादिर्धर्म्यैवेत्यर्थः। तत्फलं चक्रवृद्धिलाभम्॥ १५६॥

**(३) कुल्लूकः।** चक्रवृद्धिशब्देनात्र चक्रवच्छकटादिभररूपा वृद्धिरभिमता। चक्रवृद्धिमाश्रितउत्तमर्णोदेशकालव्यस्थितः यदि वाराणसीपर्यन्तंलवणादिशकटेन वहामि तदा ममेदयद्धनं दातव्यमिति वेतनरूपदेशव्यवस्थितिः। यदि मासं यावद्वहामि तदा मासंयद्धनं दातव्यमितिकालव्यवस्थितिः। एवमभ्युपगतदेशकालनियमस्थौ देशकालौ दैवादपूरयन्शकटादिना वहँल्लाभरूपफलंसकलंनप्राप्नोत्यपि तु॥ १५६॥

**(४) राघवानन्दः।** वृद्धिप्रसंगेन देशकालमर्यादया नियमिता या श्रुतिः तदपूरणेन सर्वां नाप्नोतीत्याह चक्रवृद्धिमिति। चक्रवृद्धियुक्कटेन वहनीयत्वात्कायिकावृद्धिसदृशत्वाच्च चक्रपदं बलीवर्दादिरुपलक्षणम्। देशकालव्यवस्थित इति वाराणसीपर्यन्तंतवैतत्पूगादि शकटेन वहामि यदि तदा ममैतद्धनंश्रुतिरूपं देयमिति देशव्यवस्थितिः यदि मासं प्रापयामि तदा ममैतद्धनं दातव्यं इति। कालव्यवस्थितिरेवंसमयारूढो वाहको देशकालावतिक्रामन्नपूरयन् तत्फलं संपूर्णां श्रुतिं नाप्नोति किंतु तन्निपुणैर्व्यवस्थितामेव प्राप्नोतीति भावः॥ १५६॥

**(६) रामचन्द्रः।** देशकालव्यवस्थितः अस्मिन् देशे अस्मिन्कालेस्थितः सन् चक्रवृद्धिं समारूढः दातुमुद्यतः अधमर्णः देशकालौ अतिक्रमन् तंकालंतंदेशंअतिक्रामन् ग्रहीतुंनायाति मर्यादानन्तरं धनं धनिकः आप्नुयात्॥ १५६॥

**(७) मणिरामः।** चक्रवृद्धिं बृहस्पत्युक्ता वृद्धेर्वृद्धिरूपां। समारूढः आश्रितः। देशकालव्यवस्थितः यदि अमुक देशपर्यंतं अन्नादिकं शकटेन वहामि तदा ममेदं धनं दातव्यमिति वेतनरूपदेशव्यवस्थितिः। यदि मासपर्यंतं वहामि तदा मम एतावद्धनं दातव्यमिति कालव्यविस्थतिः। एवं उपगतदेशकालः नियमस्थोद्देशकालौ अतिक्रमन् दैवात् अपरिपूरयन्। तत्फलं शकटादि वहन् वेतनरूपं सकलंनाप्नुयात्॥ १५६॥

(८) **गोविन्दराजः।** **चक्रवृद्धिमिति।** भाटकपूर्वकं गन्त्यादिदानेन गन्त्यादिवृद्धिमाश्रित्य उत्तमर्णो देशकालव्यवस्थितस्य गतदेशकालविशेषस्तौ देशकालौ देयादेयपरिपूरयंस्तद्गन्त्री वहनलाभं न प्राप्नोति ।। १५६ ।।

(९) **भारुचिः।** उत्तमर्णोऽधमर्णाद् देशकालातिक्रमेण स्वदोषादेव ।।

**समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः ।।**
**स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं सा तत्राधिगमं प्रति ।। १५७ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** **समुद्रयान**ग्रहणं यात्रोपलक्षणार्थम्। स्थलपथिका वारिपथिकाश्च वणिजो **यां वृद्धिं स्थापयन्ति सा तत्राधिगमं प्रति** निश्चयं प्रति। सैव निश्चेतव्येत्यर्थः।

**देशकालार्थदर्शिनः**—अस्मिन्प्रदेश इयानर्थलाभोऽस्मिन्नियानिति ये पश्यन्ति जानते—न तु समद्रयान एव च ये कुशलाः कर्णधारादयः।

अन्ये पूर्वश्लोकमेवं व्याचक्षते यदृच्छाध्याहारेण—अधमर्णेन या देशं कालं चाश्रिता तां च प्राप्य तद्देशोदितं फलं लाभाख्यं तस्माद्देशाद्यदि नाप्नुयात्तदा कीदृशी तत्र वृद्धिरित्याकांक्षायामुत्तरश्लोकः। चक्रवृद्धिग्रहणं कारिताया अपि प्रदर्शनार्थम्।

लोभातिशयभाजां वणिजां क्षयव्ययादिसंविधिज्ञाः परस्परस्य यां वृद्धिं स्थापयेयुस्तां राजा प्रमाणीकुर्यात्।

**तत्राधिगमं प्रतीति।** **प्रतिः** कर्मप्रवचनीयोऽधिगमस्य लक्षणत्वाल्लक्षणेत्थंभूताख्याने तद्युक्ते च द्वितीया ।। १५७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** समुद्रेति। दुर्गोदेशः कालश्चाल्पोर्थस्तल्लक्ष्योबहुरिति जानन्तः समुद्रयानकुशलाःवर्त्मनोदुर्गत्वेन मूलनाशस्यापि संभवात् यामिति बहुलामपि वृद्धिकुर्वन्ति साधिगमंप्रति अधिगमंलाभंप्रति ऋणिकेन वाणिज्यफले प्राप्तएव देया नान्यथा। अत्रावधिकवृद्धिग्रहणं समुद्रादौ प्रायिकीं विपत्तिमनुसंधायेत्यतः समुद्रयायिनां दैवाल्लाभाभावे वृद्धेरप्यदानमित्यर्थः। समुद्रेतिचैवविधाकारादेरप्युपलक्षणम् ।। १५७ ।।

(३) **कुल्लूकः।** स्थलपथजलपथयाने निपुणाइयद्देशपर्यन्तमियत्कालपर्यन्तमूह्यमाने सत्यतावाँल्लाभोगृहीतुंयुक्त इत्येवंदेशलाभधनज्ञा वणिजादयो यांवृद्धिं तथा विषये चावस्थापयन्ति सैव तत्र व्यवस्था तत्राधिगमंधनप्राप्तिं प्रति प्रमाणम् ।। १५७ ।।

(४) **राघवानन्दः।** संप्रति वणिग्व्यवस्थितिमङ्गीकुर्वन्धर्मव्यवस्थितिमाह समुद्रेति। समुद्रयानकुशलाः स्थलपथजलपथगमननिपुणाः। एतावत्पर्यन्तमेतन्नयने एतावान् लाभोलब्धव्य इत्येवं वृद्धिं स्थापयन्ति सैव तत्र व्यवस्था प्रमाणं अधिगमं धनप्राप्तिप्रति ।। १५७ ।।

(५) **नन्दनः।** देशकालव्यवस्थितः अस्मिन्देशेऽस्मिन्काले ऋणंगृहीष्यामीति कृतव्यवस्थश्च वृद्धिसमारूढः समातत्र स्थितोत्तमर्णस्तद्देशकालावतिक्रमंतत्फलंताश्च

अभियुक्तपुरुषविशेषकल्पिता वृद्धिः क्वचिद्युक्तेत्याह समुद्रेति। स्थापयन्ति तत्र देशकाले। अधिगमंस्वीकारंप्रतिसावृद्धिस्यात्तैरेवोक्तांवृद्धिं गृह्णीयादित्यर्थः ।। १५७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। सावृत्धि तत्र अधिगमं लाभं ।। १५७ ।।

(७) **मणिरामः**। तर्हि किं प्राप्नोतीत्यत्राह समुद्र इति ।। १५७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **समुद्रयानकुशला इति**। वार्यध्वयानकुशला अस्मिन्देशे काले-ऽस्मिन्नर्थे हिरण्यादिक उह्यमाने अयं लाभ इत्येवमादि वेदिनो वणिक् प्रभृतयो यां वृद्धिं तथाविधविषये निरूपयन्ति सा तत्र निश्चयार्थविज्ञेया ।। १५७ ।।

(९) **भारुचिः**। इदानीं कारिकावृद्धिविषयोऽयमपर उच्यतेतत्रन्या वणिजो (यं?यां) वृद्धिं स्थापयेयुः सा प्रतीयेते ये हि तत्र क्षयव्ययाध्वलाभद्रव्यसा (रा?र)ज्ञाः ऋणसम्बन्धे-नायमपरः प्रति- भवो धर्मः शिष्यते ।। १५७ ।।

**यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह मानवः ।।**
**अदर्शयन्स तं तस्य यतेत स्वधनादृणम् ।। १५८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। ऋणप्रयोगे द्विविधो विश्रम्भः—प्रतिभूराधिर्वा। तत्र प्रतिभूपक्ष इदमुच्यते। त्रिविधश्च प्रतिभूः—दर्शने प्रत्यये दाने च। तत्र दर्शनप्रतिभुवमधिकृत्येदमाह। यस्य दर्शनाय प्रतिभूस्तिष्ठेदमुष्मिन्प्रदेशे मयैष तव दर्शनीयः—स तथाऽकुर्वन्स्वधनात्तस्य-ऋणं **यतेत** प्रयत्नं कुर्याद्दातुमिति शेषः। दद्यादिति यावत्। ऋणग्रहणं व्यवहारवस्तुमात्रो-पलक्षणार्थम्। तेन यावन्तोऽर्थविषया व्यवहारेऽनक्राम्यन्ते तत्तद्वस्तु दद्यात् दर्शनेनान्य-तरेणाभियुक्तः। वाक्पारुष्यसंग्रहणादौ पणपरिभाषा कर्तव्या यदि न दर्शितं चेत्तन्मया दात-व्यम्। अकृतायां तु परिभाषायां राजदण्डमेव दाप्यः। शरीरे तु निग्रहान्तं विक्रयणं सुवर्णम् ।। १५८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दर्शनायादीयमाने ऋणिकं दर्शयिष्यामीति। एतच्चोपलक्षणम्। अयमेतादृशोधनी पुत्री आप्तश्चेत्यादिष्वर्थेषु मद्वचसा प्रत्ययः क्रियतामित्येवंप्रत्ययप्रतिभूरपि प्रत्ययविपर्यये प्रयच्छेदित्यपि द्रष्टव्यम्। दर्शनप्रत्ययेच प्रतिभूत्वनिमित्तं यद्देयं तत्प्रतिभूरेव दद्यात् नतु तद्रिक्थग्राहिणोपि पुत्रादयः ।। १५८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। योमनुष्योयस्य दर्शनाय प्रतिभूस्तिष्ठेत् धनदानकाले ममायमध-मर्णोदर्शनीयइति सतंतस्मिन्कालउत्तमर्णस्यादर्शयन् तद्धनंदातुंयतेत ।। १५८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच लग्नकस्याधमर्णाद्यदर्शने स्वधनादृणादानमाह यइति। यः प्रतिभूर्लग्नकः यस्याधमर्णादेर्दर्शनायातिष्ठदिमंतुभ्यंदर्शयामीति सयदि तं नदर्शयेत्तदा स्वकीयधनात् ऋणादि दद्यादित्यर्थः ।। १५८ ।।

(५) **नन्दनः**। अथप्रतिभूकृत्यमृणप्रसंगादाह योयस्येति। योयस्याधमर्णस्य समान-वर्णस्तमधमर्णतस्योत्तमर्णस्य ।। १५८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। प्रतिभूस्वरूपमाह य इति। यो मानवः यस्य प्रतिभूर्दर्शनायतिष्ठति सःप्रतिभूः तंअधमर्णमदर्शयन्अप्रत्यक्षीकुर्वंस्तस्याधमर्णस्य ऋणं स्वधनात्प्रयच्छेत् ॥ १५८ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रतिभूः अस्मै धनंदेयमयंमयादर्शनीय इति नियमकर्ता दर्शन प्रतिभूः। तं अधमर्णं तस्य उत्तमर्णस्य सः प्रतिभूः ॥ १५८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **य इति** : अदर्शयन्मतं तस्य यतेत स्वधनादृणम्। प्रतिभूः दान-काले मया अयं दर्शनीय इत्येवं धनं प्रयोगकालेऽन्यदा च यो यस्याधमर्णस्योत्तमर्णप्रतिभूत्वेन तिष्ठेत्। स तमधमर्णं तस्मिन्काले उत्तमर्णस्यादर्शयन् स्वधनादृणदानं यतेत ॥ १५८ ॥

(९) **भारुचिः**। निगदव्याख्यात एवायं श्लोकः। इदानीमस्य दर्शनप्रतिभुवोऽ-धमर्णमुत्तमर्णस्यादर्शयन् स्वधनादृणदानप्राप्तौ सत्यामृतस्य रिक्थाभाज ऋणं प्रतिकुर्यात ॥ १५८ ॥

**प्रातिभाव्यं वृथा दानमाक्षिकं सौरिकं च यत् ॥**
**दण्डशुल्कावशेषं च न पुत्रो दातुमर्हति ॥ १५९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्रतिभुवः कर्म प्रातिभाव्यं प्रतिभुवा यत्कर्तव्यं परर्णसंशोधनादि तत्प्रातिभाव्यम्।

अर्हत्ता योग्यता। साऽनेन प्रतिषिध्यते। तस्यां च प्रतिषिद्धायामधिकारप्रतिषेधः। अनधिकृतश्च न ददातीत्येवं न दातव्यमित्युक्तं भवति। सर्वत्रार्हतां क्रियापदे व्याख्याते प्रष्टव्ये।

"कथं पुनः पुत्रस्य प्रातिभाव्यादिप्राप्तिस्तर्हि। तदृणस्य पित्राऽगृहीतत्वात्।"

नैष दोषः। यद्येन दातव्यतयाऽङ्गीकृतं तद्गृहीततुल्यफलत्वाद्गृहीतमेव। तन्नि-श्चितस्वरूपत्वमापन्ना अतः प्रतिषिध्यन्ते।

**वृथादानं** परिहासादिनिमित्तं प्रतिश्रवणम्–'कुरु कार्यमिदं परिनिष्पन्ने इदं दास्यामीति' निष्पादिते कार्ये पित्राऽदत्ते प्रतिश्रुते कथंचित्पुत्रो न दाप्यते। एवं पारितोषकादिबंदिपरि-हासादि विषयम्। यं चाहममुष्माद्धणिज एतस्ये द्दापय इति–तत्र तु मनुष्ये प्रेषिते कथंचिद्दा-तुमघटितेऽसंनिधानाद्धणिजोऽन्यतोऽपि कारणाद्दत्तान्तरे पितरि मृते पुत्रो न दाप्यते।

अक्षनिमित्त**माक्षिकम्**–सभिकाय यद्धार्यतेऽन्यतो वा यत्प्रयोजनं तद्गृहीतमिति शक्यते ज्ञातुम्। तस्य प्रतिषेधः। यः परित्यक्तबान्धवोऽक्षमालास्वेव शय्यासनविहारी प्रसिद्धः क्रीडनकस्तदृणमाक्षिकमिति शक्यते निश्चेतुम्।

सुरापाननिमित्तं **सौरिकम्**। सुराग्रहणं मद्योपलक्षणार्थम्। तेन यः पानशौण्डोऽत्य-न्तमद्यपस्तदृणप्रतिषेधः।

**दण्डशुल्कयोरवशेषः ।** यत्र पित्रा दण्डांशः शुल्कांशश्च कश्चिद्दत्तः परिपूर्णौ दण्डशुल्कौ न दत्तौ तादृशस्य प्रतिषेधः । यत्किंचित्पित्रा दत्तं स तद्दाप्यते । स्मृत्यन्तरेऽप्यविशेषणोक्तं "प्रातिभाव्यवणिक्शुल्कमद्यद्यूतदण्डा न पुत्रानध्याभवेयुः" इति (गौतम १२।४१) । तत्र विकल्पः । महत्यपराधे महति च धने पैत्रिकेऽवशेषस्य प्रतिषेधः । शुल्केऽप्येवम् । स्वल्पे तु सर्वस्य ।। १५९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** वृथादानं चारणादिषु । आक्षिकं द्यूतहारितम् । सौरिकं तत्पीतसुरामूल्यम् । दण्डावशिष्टं परिणीतकन्यादिनिमित्तदत्तशुल्कावशिष्टं च दण्डशुल्कावशिष्टम् । अवशेषमित्युपलक्षणम् । सर्वमप्यदत्तमदेयमेव ।। १५९ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** प्रतिभूत्वेन यद्देयंधनंतत्प्रतिभाव्यं वृथादानं परिहासनिमित्तं पण्डादिभ्यो देयत्वेन पित्रांगीकृतं द्यूतनिमित्तं सुरानिमित्तं च दण्डं यद्देयंदण्डं शुल्कंघट्टादिदेयंतदवशेषंच पितृसंबन्धिनं पितरि मृते पुत्रोदातुंनार्हति ।। १५९ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** पितृप्रतिश्रुतादि पुत्रैर्देयमिति सिद्धवत्कृत्य तददेयं संकलयति प्रातिभाव्यमिति । प्रतिभुवा लग्नकेन पित्रा यद्दर्शनादि प्रतिश्रुतंतत्प्रतिभाव्यं वृथादानं परिहासादिना मागधादिभ्यः प्रतिश्रुतं आक्षिकं द्यूतनिमित्तं सौरिकं सुरानिमित्तं दण्डशुल्कावशेषं राजदण्डपण्यस्त्रीघट्टादिस्वीकृतशेषं च नपुत्रोदातुमर्हतीत्यन्वयः । प्रतिभाव्यमिममधमर्णेदर्शयामीतिप्रतिश्रुतस्यदर्शनप्रतिभुवः पितुरदर्शनेन पुत्रस्तंनदर्शयेत् ।। १५९ ।।

(५) **नन्दनः ।** तदभावे पुत्रेण देयमिति प्राप्तस्यापवादमाह प्रतिभाव्यमिति । वृथादानंधर्मरहितंगायकादिभ्योदेयम् । आक्षिकंद्यूतनिमित्तम् । सौरिकंसुरासंबन्धि ।। १५९ ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** यत्प्रातिभाव्यं दर्शनप्रातिभाव्यंतत् । वृथादानं धूर्तबन्दिमल्लादिभ्योयत्प्रतिज्ञातंतत्वृथादानम् । च पुनः आक्षिकं अक्षसंबन्धकृतंद्यूतकृतं सौरिकं यत्सुरासंबन्धकृतंतत् । च पुनः दण्डशुल्कावशषं पुत्रोदातुंनार्हति । योगीश्वरः ।। सुराकामद्यूतकृतं दण्डशुल्कावशिष्टकम् । वृथादानंतथैवेह पुत्रोदद्यान्न पैतृकम् । पितृकृतमृणंपुत्रोनदद्यादित्यर्थः ।। १५९ ।।

(७) **मणिरामः ।** एतेषु पुत्रस्यासम्बन्धः शास्त्रसामर्थ्याद्विज्ञेयः । शुल्कावशेषमिति वचनात् । कृत्स्ने शुल्केऽस्ति पुत्रस्य सम्बन्धः । दण्डावशेषस्याप्येनं विधिमिच्छन्ति केचित् । प्रातिभाव्यसम्बन्धेन च समानिविधिद्व (त्वा?न्द्वा) द्वाथादानादिषु पित्र्येषु न पुत्राः सम्बद्धचन्ते ।। १५९ ।।

(८) **गोविन्दराजः । प्रातिभाव्यमिति ।** प्रतिभुवा यद्देयं वृथा दानं पारितोषिकादि यत्पित्रा देयत्वेनाङ्गीकृतं द्यूतसमाह्वयाभ्यां यज्जितं पित्रा सुरापानादि यद्वजिनः सुरामूल्यं दण्डशेषं शुल्कशेषं च यत्पितृसम्बन्धि पितरि मृते पुत्रो दातुं नार्हति ।। १५९ ।।

**दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधिः स्यात्पूर्वचोदितः ।**
**दानप्रतिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत् ॥ १६० ॥**

(१) **मेधातिथिः** । पूर्वश्लोके यो**विधिर्मया चोदितः** उक्तः—यथा पुत्राणां न भवति पैत्रिकं प्रातिभाव्यं—**तद्दर्शनप्रातिभाव्ये** ।

"यद्येवं प्रत्ययप्रतिभुवः पुत्रा दाप्यन्ताम्"—अत आह **दानप्रतिभुवि प्रेते दायादाः** पुत्रा दाप्यन्ते, नान्यस्मिन् ।

"यद्येवं प्रथमोऽर्द्धश्लोकोऽनर्थकः । दानप्रतिभुवः पुत्राणां साधन उक्ते सामर्थ्यादन्यस्य प्रतिभुवो नास्ति पुत्राणां संबन्ध इति गम्यते । अथ विस्पष्टार्थमुच्यते—प्रत्ययग्रहणमपि कर्तव्यम् । इतरथाप्रतिषेधे दर्शनग्रहणाद्विधौ च दानग्रहणादुभयपरिभ्रष्टस्य किंविधिरुत-प्रतिषेध इति संशयः स्यात्" ।

नास्ति संशयः । स्मृत्यन्तरे स्पष्टमुक्तत्वात् (या. व्य. ५४) ।

"दर्शनप्रतिभूर्यत्र मृतः प्रात्ययिकोऽपि वा । न तत्पुत्रा ऋणं दद्युर्दद्युर्दानाय ये स्थिताः ॥" इति । इहापि **दानप्रतिभुवी**त्यस्य विधित्वादन्यत्राप्राप्तिः । दर्शनग्रहणमुपलक्षणार्थम् । अनुवादे चोपलक्षणत्वमदोषः । किंप्रयोजनमिति चेद्विचित्रा श्लोकानां कृतिर्मानवी ॥ ॥ १६० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । दर्शनेति प्रत्ययस्याप्युपलक्षणम् । दानप्रतिभूरेतेनादत्ते दास्यामीति नियम्यभूतः । दायादानृक्थग्राहिणो नतु पुत्रानेव ॥ १६० ॥

(३) **कुल्लूकः** । सुरानिमित्तं च यद्देयंदण्डंप्रातिभाव्यंन पुत्रोदातुमर्हतीति योयंपूर्वोपदेशः सदर्शनप्रतिभुवः पितुर्दैयोज्ञेयः दानप्रतिभुवि तु पितरि मृते पुत्रमृणंदापयेत् ॥ १६० ॥

(४) **राघवानन्दः** । प्रातिभाव्यं पुत्रोन दातुमर्हत्युक्तो दानप्रतिभुवि तूत्तमर्णस्य देयमिति प्रतिश्रुत्य मृतेपितरिपुत्रोपिदद्यादित्याह दायादानिति दापयेद्राजेतिशेषः । तथाह याज्ञवल्क्यः ॥ दर्शनप्रतिभूर्यत्र मृतः प्रात्ययिकोपि वा । नतत्पुत्राऋणं दद्युर्दद्युर्दानाययः स्थितइति । प्रात्ययिको यथा प्रत्ययोविश्वासः अस्मत्प्रत्ययेनास्मै धनं प्रयच्छतु भवान् नायं त्वां वञ्चयिष्यति यतोऽमुकस्य पुत्रोयमिति प्रत्ययार्थ भवतीति दानप्रतिभूर्यथा यद्ययं न ददाति तदाहमेव दास्यामीति ॥ १६० ॥

(५) **नन्दनः** । पूर्वचोदितः पुत्रेण देयमिति पूर्वश्लोकउक्तः ॥ १६० ॥

(६) **रामचन्द्रः** । दर्शनप्रातिभाव्ये दर्शयितुंप्रतिभुवि अहंदर्शयिष्यामीत्युक्तौ पूर्व-नोदितोविधिःस्यात् । दानप्रतिभुवि मयाधनंदेयमित्युक्तेसतिप्रेतेमृते सति दयादान् पुत्रानपि दाययेत् पुत्रेभ्यः दापयेदित्यर्थः ॥ १६० ॥

(७) **मणिरामः** । प्रतिभूत्वेन यद्देयं धनं तत्प्रतिभाव्यं परिहासनिमित्तं पंडादिभ्यो

देयत्वेन पित्रांगीकृतं वृथादानं। आक्षिकं द्यूतनिमित्तं। सौरिकं सुरानिमित्तं। शुल्कं घटादि-देयं एतेषांशे अयंचेन्नददाति तदामयाधनं देयमितिदानप्रतिभूः। सचेन्मृतस्तदातत्पुत्रादि-भ्योधनं दापयेत्॥ १६०॥

(८) **गोविन्दराजः**। **दर्शनप्रातिभाव्य इति**। यो यं प्रतिभाव्यं न पुत्रो दातुमर्हतीति पूर्वोक्तविधिः स दर्शनप्रतिभूकर्मणि पितृकृते विज्ञेयो दानार्थं पुनः यः प्रतिभूः स्थितः तस्मिन्मृते रिक्थभाजोऽपि दापयेत् किमुत पुत्रान्॥ १६०॥

(९) **भारुचिः**। इदानीं द्विप्रकारस्य प्रतिभुवो न पुत्रो दातुमर्हतीत्येतस्मिन् प्राप्त इदमा वक्ष्यते। एवं च सति दानप्रतिभुवः पुत्रस्यास्ति सम्बन्धः॥ १६०॥

**अदातरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम्।**
**पश्चात् प्रतिभुवि प्रेते परीप्सेत्केन हेतुना॥ १६१॥**

(१) **मेधातिथिः**। अनेन श्लोकेन संदिहानः प्रश्नं कृत्वोत्तरेण निश्चाययति। संदेह-हेतुः पदद्वयेनादातरि **विज्ञातप्रकृताविति**। सप्तम्यन्तानि समानाधिकारणानि पदानि व्याख्यायन्ते। **अदातरि-प्रतिभुवि-विज्ञातप्रकृतौ**। ऋणमुत्तमर्ण **केन हेतुना परीप्सेत** लब्धुमिच्छेत्—किं केवलेनैवात्मव्यापारेण उत प्रतिभुवः पुत्रमपि व्यापारयति।

"कुतः संदेहः? उक्तम् 'प्रेते दानप्रतिभुवि' इति ततोऽन्यस्मिन् मृते कस्तत्पुत्राणां संबन्धः?"

यतस्तु खलु **विज्ञातप्रकृतिर्**विज्ञातकारणः प्रतिभूत्वेन धनं गृहीत्वा स्थित इत्येतन्निश्चित-मतो भवति बुद्धिरस्ति तत्पुत्राणां संबन्धो यतस्तेन ऋणसंशुद्धयर्थमस्य निसृष्टमिति।

**पुनः** शब्दः पूर्वस्माद्विशेषमाह। यदि दानप्रतिभुवः पुत्राः संबध्यन्ते यस्तर्ह्यदाता तस्मि-न्मृते। **दातोत्तमर्णः**। **पश्चात्तत** उत्तरकालमित्यर्थः।

शेषं व्याख्यातम्।

**परीप्सा** प्राप्तीच्छा॥ १६१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उक्तमुपपादयति अदातरीति। प्रतिभुव्यदातरि दानार्थमभूते विज्ञातप्रकृतौ प्रथममेव दर्शनादिनियमकरणेन निश्चितादात्तृस्वभावे प्रेते ऋणं दातोत्तमर्णः केन हेतुना तत्पुत्रादावर्थमीप्सेत यत एव दानार्थं नासौ प्रतिभूः कृतः पित्राच देयत्वेनाङ्गी-कृतमेव दायादेन देयमतोन्यथा न देयमित्यर्थः॥ १६१॥

(३) **कुल्लूकः**। अदातरि दानप्रतिभुवोन्यस्मिन्दर्शनप्रतिभुविप्रत्ययप्रतिभुवि वा विज्ञातप्रातिभाव्यकारणमूलशोधनोचितधनग्रहणं यस्य तस्मिन्मृते दातोत्तमर्णः पश्चात्केन-हेतुना धनं प्राप्तुमिच्छेत्॥ १६१॥

(४) **राघवानन्दः**। तर्हि दानप्रतिभूवद्दर्शनादि प्रतिभुवोपि पुत्रस्तद्दद्यादित्याशङ्क्याह

अदातरीति। दानप्रतिभुवोऽन्यस्मिन्दर्शनप्रतिभुवि प्रत्ययप्रतिभुवि वा पुनर्नष्टेमृते विज्ञातप्रकृतौ विज्ञाता प्रकृतिः प्रतिश्रुतप्रातिभाव्यकारणमपि दर्शयामीत्यादियस्य तस्मिन्मृते दातोत्तमर्णः परीप्सेत्केन हेतुना प्राप्तुमिच्छेत्। दर्शनादिप्रतिभुवो मृतत्वाददानप्रतिभूपुत्रे वचनाभावात्। विज्ञातप्रकृतेरिति क्वचित्पाठस्तदा दर्शयामीत्यादिप्रतिभूत्वेन विज्ञातः प्रकृतिः पिता येन तस्मात्तत्पुत्रात्केन हेतुनाप्राप्नुयादित्यन्वयः। समासःसएव ॥ १६१ ॥

(५) **नन्दनः**। पुनरिति वाक्योपन्यासे अधमर्णे ऋणदातरि सति विज्ञातप्रकृतौ दातोत्तमर्णः केन हेतुना धनंपरीप्सेत्कस्माद्धनंलभेतेति महर्षिप्रश्नसद्भावेनस्वयमुपन्यासोयं हे महर्षयः एवंपृच्छतिचेदित्यर्थः ॥ १६१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तत्र प्रश्नमाह अदातरीति। दाता उत्तमर्णः दर्शनप्रत्ययप्रतिभुवि दानपतिभूव्यतिरिक्तेप्रेतेसति पुनः अदातृत्वेनविज्ञातात् नियतत्वेन पश्चात्प्रकृतरूपात् अधमर्णात् ऋणंकेनहेतुना परीप्सेत् इच्छेत् ॥ १६१ ॥

(७) **मणिरामः**। अत्राऽर्थे प्रश्नमाह। अदातरीति अदातरि प्रतिभुवि दर्शन प्रतिभुवि प्रत्ययप्रतिभुवि च विज्ञात प्रकृतौ ऋणादिज्ञात्रे। प्रेते मृतेसति। दाता उत्तमर्णः। पश्चात्पुनः केनहेतुना ऋणं परीक्षेत प्राप्तुमिछेतेति प्रश्नार्थः ॥ १६१ ॥

(८) **गोविन्दराजः। अदातरीति**। तद्ग्रहणपूर्वकत्वेऽस्य प्रतिभूः स्थित इत्येवं विज्ञातप्रातिभाव्यकरणे पुनर्दर्शनत्वप्रत्ययप्रतिभुवि प्रेते सत्यनन्तरं धनप्रयोक्ता केन हेतुना प्रतिभूपुत्राद्धनं प्राप्तुमिच्छेत् किं तस्य प्राप्तिहेतुर्विद्यते उत नेति यतोऽसौ दानप्रतिभूपुत्रो न भवत्यत प्राप्त्याशङ्का विद्यते। यतस्तु धनग्रहणे पूर्वकं तत्पितादर्शनप्रतिभूर्वा स्थितोऽस्ति तत्पुत्रात्प्राप्त्याशङ्का ॥ १६१ ॥

(९) **भारुचिः**। समानविभक्तीनि पदान्यकथिततया व्याख्येयानि। अदातरि प्रतिभुवि प्रेते विज्ञातप्रकृतौ विज्ञातं कारणं लग्नकत्वे यस्य सोऽयं विज्ञातप्रकृतिः। किं पुनस्तत्सम्बन्धकार्पणम्। एवं च धनावष्टम्भेनायमस्याधमर्णस्य यस्मान्न किं भूतः तत इत्थं भूतेऽस्मिन् प्रतिभुवि प्रेते पश्चाद्दाता प्रयुक्तमृणं परीप्सेत्। केन हेतुना सन्दिह्य पृच्छति कथं च सन्दिह्यते यतस्कारणमुच्यते—येन तावद्दानप्रतिभुवः पुत्रस्यास्ति सम्बन्ध इत्युक्तम्। न दर्शनप्रतिभुवः। अतः सत्यपितरीत्थं सम्बन्धे शास्त्रसामर्थ्यान्न युक्तो दापयितुम्। यतश्च गृहीतधनो·····तमस्मिन् प्रेते दर्शनलग्नकपुत्रोऽपि सन्दापयितुमिति ॥ १६१ ॥

**निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलंधनः।**
**स्वधनादेव तद्दद्यान्निरादिष्ट इति स्थितिः ॥ १६२ ॥**

(१) **मेधातिथिः। निरादिष्टं** निसृष्टं स्वधनादर्पितं—भव लग्नक इदं ते धनं मत्तस्त्वया संशोधनीयं यद्यहं न दद्याम्।

**अलंधनः** पर्याप्तधनः। यावद्धनमुत्तमर्णाय दातव्यं तावत्परिपूर्णं प्रसृष्टम्। स्वल्पे तु निसृष्टे बहुनि संशोध्ये न दापयितव्यः।

पूर्वस्य प्रश्नस्योत्तरमिदम् ।

यद्यपि दानप्रतिभूरद्य निरादिष्टस्तत्पुत्रो दाप्यते स्वधनादेव । तद्द्यान्निरादिष्टपुत्र इति द्रष्टव्यं तस्यैव प्रकृतत्वात् । साक्षात्प्रतिभुवस्तु प्रतिभूत्वादेव प्राप्तिरिति ।

**इति स्थितिः** । एषा शास्त्रमर्यादा विचारादेव ।

अलंधन इति सिद्धे **यन्निरादिष्टोऽलंधन** इति चैवमभिधानं तत्पद्यग्रन्थानुरोधेन ॥ १६२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । तत्किमेवंसर्वत्रेत्याह निरादिष्टेति । [दर्शनप्रत्ययप्रातिभाव्य-कालएव संप्रत्ययार्थं यदि प्रतिभूर्द्धारिणिकेन निरादिष्टधनोदत्तधनःस्यात् । तच्च दत्तं तस्मै धनं धार्यमाणशोधनायालंपर्याप्तं यस्य सोऽलंधनः । तदा निरादिष्टोदत्तधनः स तस्मिन्द्रव्ये व्ययितेऽपि स्वधनादेवाकृष्यदद्यात् । तथाच तद्दायादेरपि तद्देयमेवेत्यर्थः । अलंधनमिति सर्वदानमपेक्ष्य अल्पेषु स्थापिते तावदेव शोधनीयं न सर्वधनंदेयम् ॥ १६२ ॥

(३) **कुल्लूकः** । प्रतिभुवोमृतत्वात्तत्पुत्रस्य नादानप्रतिभूत्वेनादातृत्वादित्याशङ्क्याह निरादिष्टेति । असौ दर्शनप्रतिभूः प्रत्ययप्रतिभूर्वा यदि निरादिष्टधनोधमर्णेन निसृष्टधनो यावता धनेनासौ प्रतिभूस्तच्छोधनपर्याप्तधनस्तदात्मधनादेव तद्धनं निरादिष्टोवनिरादिष्ट-धनपुत्रोलक्षणयोच्यते ऋणमुत्तमर्णाय दद्यादिति शास्त्रसंप्रदायः ॥ १६२ ॥

(४) **राघवानन्दः** । अधमर्णादवाप्तधनस्य पितुर्मरणेपि पुत्रः समर्थश्चेत्तदृणं दद्या-दित्याह निरादिष्टेति । अधमर्णेन निरादिष्टं समर्पितं मरणादिकाले किंचिद्धनंयस्मै स निरा-दिष्टधनः दर्शनप्रतिभूः प्रत्ययप्रतिभूर्वा अलंधनश्च पर्याप्तधनः यावति धने ऋणपरिशोधनं-स्यात्तावद्धनः स्वधनादृणंदद्यादिति । निरादिष्टधनइति प्रतिभूपुत्रोलक्षणया । इति स्थितिः शास्त्रमर्यादा नतु बलात्कारः । अलंधन इति विशेषणात्परीप्सेत्केनहेतुनेतिन्याया-भावस्योक्तत्वात् च विज्ञातप्रकृतित्वेन धनलाभस्य सूचितत्वाच्चप्रकरणाद्दायादानपि दापयेत् इत्यत्र दानप्रतिभूदायादस्यैववाग्रहणम् ॥ १६२ ॥

(५) **नन्दनः** । अवोत्तरत्वेनेदमाह निरादिष्टधन इति । निरादिष्टधनः पुत्रः परत्र वा संक्रामितधनः प्रतिभूर्मरणेन तिरोधानेन वाऽलक्षितो यदि स्यात्स निरादिष्टः । प्रति-भूर्धनग्राहो पुत्रावरोवा स्वधनादेव तदृणमुत्तमर्णाय दद्यात् ॥ १६२ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । तत्रोत्तरमाह निरादिष्टेति । प्रतिभूर्निरादिष्टधनः अधमर्णेनदत्त-धनश्चेत्तर्हि अलंधनः उत्तमर्णाय दातुं गृहीतसंपूर्णधनस्यसनस्यात्सप्रतिभूःस्वधनाद्देयंतदृणं-दद्यात् ॥ १६२ ॥

(७) **मणिरामः** । एतदुत्तरमाह **निरादिष्ट इति** । असौ प्रतिभूःदर्शनप्रतिभः प्रत्यय-प्रतिभूर्वा । चेत् यदि । निरादिष्टधनः अधमर्णेन प्राप्तधनः । धनंगृहीत्वा प्रतिभूर्जात इत्यर्थः । अलंधनः ऋणशोधन पर्याप्तधनः स्यात् । तदा स्वधनात् निरादिष्टः

प्रतिभूपुत्रः । ऋणं उत्तमर्णाय दद्यात् । यदि तु धनमगृहीत्वैव प्रतिभूर्जातस्तदा ऋणं न दद्यात् । इतिस्थितिः शास्त्रसंप्रदाय इत्यर्थः ।। १६२ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । एवं संदेहमुपन्यस्येदमाह **निरादिष्टधन इति** । असौ दर्शन-प्रतिभूः प्रत्ययप्रतिभूर्वा यदि निसृष्टधनो भवति । भवप्रतिभूरिदं ते विश्वासार्थं धनमित्येवं प्राप्तधनश्च यावत्यसौ प्रतिभूः स्थितः तावत्प्रमाणं तस्य हस्ते दत्तं तदा स्वधनादेव तद्धनं निरादिष्टपुत्रः प्रकृतं उत्तमर्णाय दद्यादिति शास्त्रमर्यादा ।। १६२ ।।

(९) **भारुचिः** । एवमुभयथादर्शनात् सन्देहे सतीदमाह–निरादिष्टधनोऽर्पितधनः न वाङ्मात्रेण अलंधनं च स्यात् पर्याप्तधनः यावता सम्बध्यते लग्नकत्वेन । अथवा निरादिष्टधनो वाङ्मात्रे ..... यदि पश्चादलंधनस्वयमर्पितधनः पर्याप्तधनश्च भवति, तन्नैतस्माद्धेतोः स्वधनादेव तद्दातुमर्हत्यधमर्णलग्नकपुत्र उत्तमर्णायेति । अयं च दानग्रहणविधिः यदि कारणेन ।। १६२ ।।

**मत्तोन्मत्तार्त्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा ।।**
**असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति ।। १६३ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । कार्यपर्यायो **व्यवहार**शब्दः । यत्किंचिद्दानाधानविक्रयादिकार्ये लेख्यादि च प्रमाणम् । एतैः कृतं **तन्न सिध्यति** कृतमप्यकृतं भवति ।

**मत्तोन्मत्तौ** विख्यातौ । **आर्त्तो** धनबन्धुनाशादिपीडितः प्रत्युपस्थितभयश्च । यौगिक-त्वान्मत्तादिशब्दानां यावन्मदादियक्तास्तावत्तप्रमाणाभाववोधकोऽयं प्रतिषेधः । प्रदर्शनार्थं चैतदप्रकृतिस्थत्वमात्रस्य । यथोक्तम्–'कुर्यादप्रकृतिं गतः । तदा प्रकृतमस्याहुरस्वतन्त्रं सहेतुता' इति । अप्रकृतिस्थश्चोच्यते अपप्लुतबुद्धिः स्वकार्यविवेचने असमर्थः । उक्तं च

**"कामक्रोधाभियुक्तार्तभयव्यसनपीडिताः ।**
**रागद्वेषपरीताश्च ज्ञेयास्त्वप्रकृतिं गताः ।।"**

इति । (नारद १/४१) । कामादीनां द्वन्द्वं कृत्वा पीडितशब्देन तैः पीडिता इति साधनं-कृतेति तृतीयासमासः । तेन पीडितस्य प्रतिषेधः । स चायं संप्रति मन्मथाधिष्ठितः स्त्री-परिरम्भणादिपरीप्समानो भवति । 'अभियुक्ता' द्यूतादिक्रियान्तरे दत्तावधानाः । एते हि तत्र संसृजन्तः स्वामिनोऽपि स्व इत्यस्य प्रातिभाव्यादिक्रियानिश्चयस्यानवधानान्न प्रमाणम् । यतः क्रियान्तरावहिततया परेण पृच्छ्यमाना इदमस्मै दीयतामङ्गीकृतं वा प्रातिभाव्यमियति वस्तुनीदृशेऽनेन च प्रकारेणोच्यत इत्येवमादि निपुणतो नावधारयन्ति–प्रकृतिक्रियाविघ्नो वा माभूदस्मिन्निहस्थ इत्यभिप्रायमभ्युपगच्छन्ति–गच्छ त्वं यद्ब्रवीषि तत्सर्वमनुष्ठीयत इति पारतन्त्र्यं वाऽङ्गीकुर्वन्ति । तदुक्तम्–'अस्वतन्त्रे सहेतुत' इति । येन हेतुनाऽस्वतन्त्रो-ऽप्रमाणं सोऽस्य स्वतन्त्रस्यापि हेतुर्विद्यते । यथाऽस्वतन्त्रः स्वमपि न विनियुङ्क्ते एवमयमपि कामादिवशीकृतोऽर्थविवेकं कार्याणां च गुणदोषौ क्रियमाणावनधिगच्छन्नस्वतन्त्रेण तुल्यो

भवति। 'आर्तो' व्याख्यातः। अभियुक्तार्तशब्दौ च धर्मिवचनौ लक्षणया धर्मपरौ विज्ञयौ –अभियोगोऽभियुक्त आतुर इति। व्यसनानि कामक्रोधसमुत्थितानि मृगयादीनि। अभियुक्तव्यसन्यपि काञ्चित्क्रियां तात्पेण कुर्वन्नुच्यते। अव्यसन्यप्रवृत्तोऽपि तद्ध्यानरतः। अथवा कामक्रोधशब्दौ कामिनि क्रोधवति वर्तेते। अत्र च पक्षे भयव्यसनशब्दौ कृतद्वन्द्वौ तृतीयान्तौ पीडितशब्देन संबध्येते। अन्ये तु स्वतन्त्रा एव। 'रागद्वेषाभ्यां परीता' व्याप्ताः। रागः क्वचिदात्मीयेष्वभिषङ्ग आत्मीयतया परिगृहीतस्य कस्यचित्संबन्धिनोऽपि ध्यायतो वाऽभिप्रेतसिद्धौ मनसः परितोषो रागः। तद्विपरीतो द्वेषविषयः। परिपन्थिन्यनात्मीयतया परिगृहीते तदस्वास्थ्यतद्विपर्ययात्परितुष्टिवृत्तिरित्येवमादिरूपौ रागद्वेषौ। सर्वथाऽस्य भावबुद्धिश्चलिता क्षणमपि विवक्षिते कार्ये नावतिष्ठते। अन्यद्वदन्नन्यदाचरति। एवं रूपोऽप्रकृतिस्थः। अन्यथा सर्व एव पुरुषाः कामादियुक्ताः जराजीर्णाक्षिशिरोरोगार्त्तिमन्तोऽप्रकृतिस्थाः स्युः। न चैवम्।

**अध्यधीनो** गर्भदासः पुत्रशिष्यौ भार्या च। यदापि रूढ्या गर्भदास एवाध्यधीनस्तथाऽप्यस्वतन्त्रोपलक्षणार्थत्वात्सर्व एव ते गृह्यन्ते। स्वधनदानादि स्वामिनमनुज्ञाप्य यत्कुर्वन्ति तत्सिध्यति। तथा च नारदः (१/३३)–

**"यद्बालः कुरुते कार्यमस्वतन्त्रकृतं च यत्। अकृतं तदिति प्राहुः"।**
**"अस्वतन्त्रः स्मृतः शिष्य आचार्ये तु स्वतन्त्रता।**
**अस्वतन्त्राः स्त्रियः पुत्रा दासाद्याश्च परिग्रहाः॥**
**"स्वतन्त्रस्तु गृही यस्य तस्य तत्स्यात्क्रमागतम्॥"**इति

"ननु यदि न स्वातन्त्र्यं स्त्रीणामुच्यते पुंसश्च स्वातन्त्र्यमेतदनुपपन्नम्। यतः साधारणं धनम्। कथमेकाकी मनुष्यो भार्ययाऽननुज्ञातो दानविक्रयादिभ्यः प्रभवेत्"।

अत्रोक्तम्– "स्त्रीकृतान्यप्रमाणानि कार्याण्याहुरनापदि" इति। तथा 'कुले ज्येष्ठ' इत्युपक्रम्य 'तत्कृतं तत्कार्यजातं नास्वतंत्रकृत'मिति च। धनाधारण्ये हि पुरुषोऽपि स्त्रीवदस्वतन्त्रः। यच्छब्दे स्वाम्यं पारतन्त्र्यं चेति तद्विरुद्धमिव स्वामित्वस्येत्येताश्च व्यवस्थेति योज्यं भवति। पारतन्त्र्यं परविधेयता तदिच्छानुवर्तित्वम्। यदि च परतन्त्रः परेच्छामन्तरेण विनियोक्तुं न लभते कीदृशमस्य स्वाम्यम्। अथ दानाधानविक्रये यत्र प्रकृतत्वादनीशाः। स्वशरीरे परिभोगादौ यावदिच्छं स्वधनं विनियोज्यते, परतन्त्रमहाधनानां शास्त्रनिगृहीतात्मनां द्विजानां नात्मोपभोगो भवेत्। बालस्य स्वाम्यपारतन्त्रे उपपन्ने। यदा प्राप्तव्यवहारस्तदा ईशिष्यते। एवं पुत्रादावपि। स्त्रियास्तु न कदाचिदपारतंत्र्यम्।

**"बालया वा युवत्या वा वृद्धया वाऽपि योषिता।**
**न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं कार्यं किंचिदिति स्थितिः॥"** ( मनु. ५/१४७)

स्वाम्यपारतंत्र्ये स्त्रीणामसमावेश उच्यते। न पारतंत्र्यवचनेन स्त्रीणां स्वधनविनियोगनिषेधः क्रियते। किंतर्ह्यस्थाने दानाधानविक्रयादि वार्यते। 'परतन्त्राः'–ताः स्थाने

निरूपणीयेन हिताहितं स्वयं विवेक्तुमलम्–एष पात्रमर्हति भूमिहिरण्यादिप्रतिग्रहम्, अनेन कन्यासंबन्धं कुर्यात्, इदं द्रव्यमस्मात् क्रेतुं विक्रेतुं वार्ऽर्हतीत्येवमादि तया ज्ञातव्यम्। अतो लेख्यादिकाले भर्त्राद्यनुमतिरुपयुज्यते। केवलया कृते कार्ये नाहं किंचिज्जानामि त्वया विप्रलब्धाऽस्मीति वचनस्यावसरत्वात्। भर्त्राद्यनुमतौ तु किं वक्ष्यति। ततुक्तम्—

**"एतान्यपि प्रमाणानि भर्ता यद्यनुमन्यते।**
**पुत्रः पत्युरभावे वा राजाऽधिपतिपुत्रयोः॥"**

अस्वातन्त्र्यमपि नियमितम्–**"अनुशिष्टा विसर्गे च विक्रये विस्वरा मता।"** अपि बुद्धिपूर्वं बालशिक्षिते स्वामिना पत्न्यादयो नियोज्या अनबन्धादिना-नतु स्वाम्यविसर्गेऽपि। **"सा सद्यः संनिरोद्धव्या त्यजेद्वा कुलसंनिधौ"** (मनु. ९/८३) इति स्त्रीणामेव न पुंसः पारतन्त्र्यम्। पतितस्याप्या प्रायश्चित्तसमाप्तेः प्रतीक्षणोपदेशः। अतो न विक्रयोऽपि दासादीनां गरीयस्यामापदि कुत्रचिदस्ति। तेषु स्वामिन इत्येतदपेक्ष्य भार्याशिष्यदासीनां यथास्त्रं पारतन्त्र्यम्। धनसाधारण्यात्तु न भर्तुरनुज्ञां विना भार्याया यागादौ क्वचिदधिकार इति स्थितम्। "यच्चेदम्–**"पुत्राणां भर्तरि प्रेते वशे तिष्ठेत्तु सा तथा।"**

"जीवतोरस्वतन्त्रः स्याज्जरयाऽपि समन्वितः।" "तयोरपि पिता श्रयानभावे जननी मता" इति। –अनेन पुत्राणां पारतंत्र्यम्। ननु चान्योन्यव्याहतमिति।" नास्ति व्याघातः। अनधिकारिणि पुत्रे बाले मातृपरतन्त्रता। मातुस्तु पुत्रे पारतन्त्र्यं मातृधनरक्षणं चोरादिदोषेभ्यः। पुत्रस्यापि यत्पितरि पारतन्त्र्यंतदपृथक्कृतस्य तद्गृहे निवसतः। यदा तु पितृविभक्तो धनं स्वयमर्जितवांस्तदा "ऊर्ध्वं तु षोडशाद्वर्षात्पुत्रं मित्रवदाचरेत्" इति स्वातन्त्र्यमेव। **बालोऽप्राप्तव्यवहारः** षोडशवर्षात्प्राक्। **स्थविरो** लुप्तस्मृतिः जराभिभूतोऽतीतव्यवहारः। यद्यप्ययं कस्यांचिद्वेलायां प्रकृतिस्थोऽपि भवति तथापि न प्रमाणमप्रत्ययात्। यस्य तु भर्तुः स्त्री जानाना कार्यप्रबन्धेन वर्तते तयाऽनुज्ञातमेतद्भवति। **असंबद्धकृतः।** परार्थमनियुक्तो यो व्यवहारयति– न भ्राता न पिता'देवदत्ताय शतं धारयती'त्येवमादि वक्तुं न लभ्यते। ये तु भ्रातरः समानकार्याः सर्वे च तुल्यव्यवहारिण स्तेषामन्यतरेणापि गोपश्वादिविक्रयो गृहादिबन्धनप्रयोगादि च क्रियमाणं सिध्यति। संबन्धित्वात्। **व्यवहारशब्दः** सर्वव्यवहारग्रहणार्थः। प्रकरणादृणव्यवहार एव स्यात्॥ १६३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** आर्त्तः शोकादिना। अधीनोश्रृत्यः। अधिपदमीश्वरेवर्तते। बालेन षोडशवर्षेण। स्थविरेण लुप्तस्मृत्यादिना। कृतइत्यनुषङ्गः। असंबद्धेन स्वाम्यप्रहितेन परेण। व्यवहारऋणादानादिः। नसिध्यति न लभ्योधनिकस्य॥ १६३॥

(३) **कुल्लूकः।** मद्यादिना मत्तः उन्मत्तोव्याध्यादिपीडितोपहतास्वतंत्रबालवृद्धैरस्वतन्त्रत्वेन पितृभ्रातृनियुक्तादिव्यतिरेकेण कृतऋणादानव्यवहारोन सिध्यति॥ १६३॥-

(४) **राघवानन्दः।** कृतोपि व्यवहारः क्वचिदसिद्ध इत्याह मत्त इति। मत्तो मद्यादिना उन्मत्तोऽवातादिना आर्त्तोऽरोगादिना आध्यधीनः कामादिपीडितः अध्यधीनः सेव-

को वा स्थविरोऽत्यन्तवृद्धस्तैःकृतः। असंबद्धकृतः असंबद्धेन पित्राऽद्यविनियुक्तेन कृतश्च व्यवहारः ऋणादिविषयकः। मत्तादिभिःसंबन्धिभिः कृतोन सिध्यतीतिवार्थः ॥ १६३ ॥

(५) **नन्दनः**। क्वचित्कृतस्य निवर्तनीयत्वंत्रिभिः श्लोकैराह मत्तेति। आर्त्तोऽप्रतिक्रियपीडायुक्तः। असंबद्धोगृहक्षेत्रादिरहितः। आगन्तुकस्तेनकृतसंबन्धः। ऋणदानक्रयविक्रयादिकंसंव्यवहारो व्यवहारः। आर्त्तादिभिः सहकृतोसंबन्धकृतश्च व्यवहारोन सिध्यतीति वर्तते ॥ १६३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अध्यधीनैः नित्यपराधीनैः। असंबद्धः स्वाम्यरहितः। एतैर्मत्तादिभिः कृतोव्यवहारोन सिध्यति ॥ १६३ ॥

(७) **मणिरामः**। अध्यधीनः पराधीनः ॥ १६३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। मत्तोन्मत्तार्तान्यधीनैरिति । क्षीवोन्मत्तव्याध्याद्युपहतचित्तगर्भदासबालाऽतिवृद्धैः असम्बद्धेन पितृभ्रातृनियुक्तादिव्यतिरेकेण यो व्यवहारः ऋणदानादि कृतः न सिद्धयति ॥ १६३ ॥

(९) **भारुचिः**। अन्यच्च सर्वव्यवहारा एव मत्तादिभिः कृता न सिद्धयन्ति न केवलं प्रकराणादृणव्यवहारः। अमत्तादिभिरपि प्रयुज्यमानाः सर्वव्यवहारेषु ॥ १६३ ॥

**सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता ॥**
**बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद् व्यावहारिकात् ॥ १६४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। कस्यचिदनुष्ठेयस्यार्थस्य प्रतिपादकः शब्दो **भाषा** सामान्येन भवति। योऽर्थस्तया प्रतिपाद्यते सोऽनुष्ठेयः। किं सर्वापि भाषा न सत्या? नेत्याह **बहिश्चेद्धर्मात्**–धर्मबाह्यं यदुच्यते शास्त्राचारविरुद्धम्–पञ्चकादधिका वृद्धिः, भार्यापत्यविक्रयादिः, अन्वयिनः सर्वस्वदानमित्यवमादि। पत्रलिखिता**यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता** प्रतिभुवां वा दत्ता तथापि न सिध्यति। **व्यावहारिको धर्म** आचारनिरूढः। **नियतो** नादिर्नेदानींतनः। पूर्वशेषं चैतत्। अस्वतन्त्राप्रकृतिस्थैः कृतं दानाद्यनिश्चितमिति न प्रमाणम् ॥ १६४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भाषा परिभाषा कलादिनियमस्य लेखादौ निरूढा नसत्याभवतिव्यर्थाभवति यद्यपि साक्ष्यादिमत्तया प्रतिष्ठिता दृढा स्यात्तथापि। यदि धर्माद्बहिर्भाष्यते तच्च। नियताद्व्यावहारिकात् देशादिव्यवहारसिद्धादाचारात् ॥ १६४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। इदंमयानुष्ठेयमित्यवमादिकाभाषालेख्यादिना स्थिरीकृतापि यदि शास्त्रीयधर्मात्पारम्पर्यात्सह्यवहाराच्च बहिर्भाष्यते सा सत्या न भवति तदर्थोनानष्ठेयः ॥ १६४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। भाषामात्रंनवस्तुसाधकमित्याह सत्यति। इदंमयानुष्ठेयमित्यवंस्थिरीकृतापिभाषा शास्त्रनियमात्पारंपर्यात्सत्यव्यवहाराद्वा बहिर्भूता स्वतन्त्रा तदाऽसिद्धै

वेतिपद्यस्यार्थः। तथाच ।। प्रत्यर्थिनोऽग्रतोलेख्यं यथा चोदितमर्थिना। समामासतदर्धाहो नामजात्यादिचिन्हितमिति ।। भाषारूपमेतद्बहिर्भूतोऽशास्त्रीय'। तत्र लेख्यप्रकारे याज्ञवल्क्यः ।। यःकश्चिदर्थोनिर्णीतः स्वरुच्या तु परस्परम्। लेख्यंतु साक्षिमत्कार्यं तस्मिन्धनिकपूर्वकम् ।। समामासतदर्धाहर्नामजातिस्वगोवकैः। सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिन्हितम्। समाप्तेऽर्थे ऋणी नाम स्वहस्तेन निवेशयत्। मतं मेऽमकपुत्रस्य यदत्रोपरिलेखितम् ।। साक्षिणश्चस्वहस्तेन पितृनामादिपूर्वकम्। अत्राहममुकः साक्षो लिखेयरिति ते समाः ।। ते सऋखचातोगणतश्च समाः कार्याइत्यर्थः ।। अलिपिज्ञऋणी यः स्यालेखयत्स्वमतं तुसः। साक्षीचेत्साक्षिणान्येन सर्वसाक्षिसमीपगः ।। साक्ष्यप्यलिपिज्ञश्चेत्सोपि सर्वसाक्षिसमीपगः सन्स्वनाम लेखयदित्यर्थः ।। उभयानुमतेनैतन्मयाह्यमकसूनुना। लिखितंह्यमुकेनति लेखकोन्ते ततोलिखेत् ।। विनापि साक्षिभिर्लेख्यं स्वहस्तलिखितं तु यत् ।। तत्प्रमाणं स्मृतं सर्वं बलोपधिकृताहते ।। ऋणं लेख्यगतं देयं पुरुषैस्त्रिभिरेवच ।। त्रिभिरित्यनेन प्रपौत्रादीनां न दानार्हत्वम् ।। आधिस्तु भुज्यते तावत्यावत्तन्नप्रदीयते ।। नप्रदीयतेबन्धकधनमित्यनेन बन्धकभूम्यादीनां प्रपौत्रोदेरपि ग्राह्यतेत्यर्थः ।। देशान्तरस्थं दुर्लेख्यनष्टेम्लिष्टेत्दृतेतथा। भिन्ने दग्धे तथा च्छिन्ने लेख्यमन्यत्त कारयेत् ।। दुर्लेख्य उक्तवैपरीत्येम्लिष्ठेऽक्षरशोलप्ते भिन्न द्वधीभूते छिन्नेऽवयवशइति भदः। किंच ।। संदिग्धे लेख्यशुद्धिः स्यात्स्वहस्तलिखितादिभिः। युक्तिप्राप्तिक्रियाचिन्हसंबन्धागमहेतुभिः। युक्तिरित्यादेरयमर्थः। धनवतोस्मादयं ग्रहीतुं योग्यः निर्धनत्वादिति युक्तिः। प्राप्तिरेतावत् त्वत्तःप्राप्तम् क्रिया मद्धनेन वाटीयंक्रीता मद्धनेन मठोयंदत्त इति। चिन्हं मद्धनन दुहितृविवाहः कारितः। आगमोमयास्मात् तद्धनं प्रगृहीतं दत्तंच। तुभ्यमित्यतैर्हेतुभिःलेख्यपशुद्धिःस्यादित्यन्वयः। किंच ।। लेख्यस्यपृष्टेऽभिलिखद्त्वादत्वर्णिकोधनं। धनी वोपगतंदद्यात् स्वहस्तपरिचिन्हितम् ।। दत्वर्णं पाटयल्लेख्यं शुद्ध्यै वान्यत्त कारयेत्। साक्षिमच्चभवेद्यद्वा तद्दातव्यंससाक्षिकमिति याज्ञवल्कीयवचनजातम् ।। १६४ ।।

(५) **नन्दनः**। परस्परकृतसमयो भाषा प्रतिष्ठिता साक्ष्यलेख्यादिरूपा यदिस्याद्धर्माद्धर्मशास्त्रभावात्। व्यावहारिकाल्लोकव्यवहारभवाच्च । नियमात्समयात् बहिर्भाष्यतेचेत्सत्यानुचिता कार्यनिष्पादनीसा न भवति। तस्य सत्यत्वनिवर्तनीयमित्यर्थः ।। १६४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। भाषा परिभाषा सत्या न भवति यद्यपि प्रतिष्ठितास्यात् यलेखानिश्चिता लेख्यसाक्ष्यादिनास्यात् नियताव्यवहारिकात् चेत् धर्मादपेतातद्बहिः भाष्यते।

(७) **मणिरामः**। प्रतिष्ठितापि लेख्यादिनास्थिरीकृतापि । चेत् नियतात् पारं पर्यागतात् व्यावहारिकात् सद्व्यवहारात्। धर्मात् शास्त्रात् वहिर्भाष्यते। तदा साभाषा सत्यान भवति ।। १६४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। । **भाषा न सत्या भवतीति**। मया इदं तवानुष्ठेयमित्यादिकापरिभाषा लेख्याद्युपनिबन्धनेयद्यपि स्थिरीकृता भवति तथापि यद्यनादिपारंपर्याऽऽयाता लोक-

शास्त्रव्यवहारवर्तिनो धर्माद् बहिर्भासते। तद्विरुद्धा निरूप्यते तदा सत्या न भवति न तदीयार्थाऽनुष्ठेयम् ॥ १६४ ॥

(९) **भारुचिः**। धर्मविरुद्धश्च व्यवहारोऽपत्यभार्याविक्रयादिः न सिद्धयति। तावा...सौ स्कन्धवारयति वृद्धिः सा प्रयोगकाले द्विगुणीभूतापि पुनर्वर्धत एव प्रतिमासम् एवं ग्रामपुञ्ज-ग्रहणादिवृद्धयोऽपि प्रतिषिद्धा बोद्धव्याः ॥ १६४ ॥

**योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ॥**
**यत्र वाऽप्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत् ॥ १६५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **योगः** छद्म। तेन यदा 'धमनं' बन्धकार्पणं कृतमिति। एतच्च ज्ञायते असत्यकार्येण कृतम्। **तद्राजा विनिवर्तयेत्**। कश्चिद्धनिकेनोपरुध्यमान आह 'न मे किंचिदस्तीति'—'ननु क्षेत्रं स्थण्डिलं वासोऽस्ति तदर्पये'त्यनया शङ्कया सुहृत्स्वजनाय कस्मै-चिदसावाधानीकरोति। तत आह—'तदन्यस्य मया बन्धकीकृतमिति'। एतच्च ज्ञायते। सत्यपि प्रकाशलेख्ये तस्य आधातृतायोगात् यदि हि परमार्थतथाऽऽधित्वेन कृतं कथमाधातैव भुङ्क्त इति। एवंविधं योगाधमनमप्रमाणीकृत्य धनिने क्षेत्रादि दापयितव्योऽधमर्णः। यस्य चान्येनागमेन स्वाम्यं धनदानकाल आगमान्तरेण करणं करोति तदपि 'योगाधमनम्'। तत्राधमर्णो यस्य वानेनागमेन स्वाम्यं कल्पितः सत्यमागमं कारयितव्यः।

एवं विक्रयादि। योऽल्पेन मूल्येन महार्धमर्थं विक्रीणीते यो वा नैव मूल्यं क्रेतुरादत्ते यच्चाह 'विक्रीतं मया तवेदमिति'—स उत्तरकालं 'न विक्रीतं ममेदमिति' न लभते वक्तुम्। न चायं विक्रयानुशयो दशाहात्परेणापि निवर्तयेदिति, योवाऽऽमेन क्राययति। पूर्वोक्ते निमित्ते सति निमित्तान्तरे वा सति विक्रीणीते न च रूपकादिभिः क्रयोपहर्तव्यवहारे न दृश्यते न च रूपकादिसंचयशील इत्यादिना योगविक्रयाधिगमः।

**योगदानप्रतिग्रहम्**। यद्यपि दानप्रतिग्रहक्रिययोरन्यतरोपादानेनैवेतराक्षेपः—अन्यथा-स्वरूपासिद्धेः—तथापि क्रियाद्वयोपादानं वृत्तपूरणार्थम्। अथवैकक्रियोपादाने तत्कारिण एव दण्डः स्यात् न द्वितीयस्य, सत्यपि तत्साधनत्वे शब्देनानुपादानात्। अतो दातुः प्रति-ग्रहीतुर्द्वयोर्दण्डार्थं भेदेनोपादानम्।

"तथा सति योगाधमनविक्रीतमित्यत्रापि क्रयादिद्वितीयक्रियोपादानं कर्तव्यम्।"

न कर्तव्यम्। स्मृत्यन्तराद्वा सामान्यशास्त्राद्वाऽनुपादाने दण्डः स्यात्। यदुभयस्वामि-कमन्यतरः प्रतिग्रहीत्रा सह संविदं कृत्वा दापयते एवमादि **योगदानप्रतिग्रहम्**। दानं च प्रतिग्रहश्चेति विगृह्य द्वन्द्वैकव्यवहारः।

**यत्र वाऽप्युपधिं पश्येदिति। उपधिः** छद्म। अनेनैव अन्यत्राप्येताभ्यः क्रियाभ्यः उपधि-निवर्त्यः। यथा कश्चिद्धनिनोक्तः—'यावदियद्भिरहोभिर्दातव्यमिति प्रतिभुवं न स्थापयसि तावत्त्वा न त्यक्ष्यामीति' तस्मिंस्तूष्णींभूते कश्चिदुत्तमर्णेन सह संविदं करोति 'मामस्य प्रति-भुवं गृहाण यावदेनमुपपीडयामि बह्वनेन ममापकृतं अहमस्य पीडार्थं एव प्रतिभूर्न मया

किंचिद्दातव्यमिति' तत्रोत्तमर्णः प्रकाशमाह 'यद्यन्यस्ते प्रतिभूर्नास्ति कर्मादिकं च न प्रार्थयसे, नूनं जिहीर्षितं ते धनम्—स पीडितः प्रत्याह 'नैतेन सह ममेदृशो व्यवहारः प्रवृत्तपूर्व इति'' प्रतिभूः पुनराह 'भवानि तवाहं प्रतिभूः' सोऽनिच्छन्पीडोपरोधादाह 'यथेच्छसि तथा कुरु —नास्य पूर्वक्रियास्वन्तर्भावः ।

एवं कृषिवाणिज्यशिल्पादिक्रियाः एतद्व्यतिरेकिण्यः प्रतिदर्शनीयाः । उदाहरणमात्रं दानाधमनविक्रयाः ।

तदेतद्योगकृतं कार्यं यावत्किंचन तत्सर्वं राजा **निवर्तयेत्**—राजा कृतमप्यकृतमादिशेत् —न प्रमाणीकुर्यात्—कर्तारं कारयितारं च दण्डयेत् ।। १६५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । योगः छद्म तेन कृतं आधमनमाधिस्थापनं तथा छद्मकृता-विक्रयदानप्रतिग्रहाः । अन्यत्र वा यत्रर्णग्रहणक्रयोपनिध्यादावप्युपधिं छलं पश्येत्तत्र कृतं लेख्यादिकमपि निवर्तयेत् ।। १६५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । योगशब्दश्छलवाची छलेन ये बन्धकविक्रयदानप्रतिग्रहाः क्रियन्ते न तत्त्वोऽन्यत्रापि निक्षेपादौ यत्र छद्म जानीयात् वस्तुतो निक्षेपादि न कृतं तत्सर्वंनिवर्तेत । ।। १६५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । छलादिविषयेऽप्यसिद्धिमाह योगेति । योगशब्दोयमत्र छल-पर्यायोऽधमनोवञ्चकंस्तेन वन्धकादिचतुष्टयंकृतंनिवर्तयत् । अत्रनिक्षेपादावुपधिं छद्म वा पश्येज्जानीयात्तदपि निवर्तयेत् । यद्वा साध्यव्यापकत्वेसति साधनाव्यापकत्वमुपाधिः यथा ममेदं हिरण्यं हिरण्यत्वात् मद्धस्तगतहिरण्यवदिति तत्रत्वक्रीतत्वाद्युपाधिरूपं पश्ये त्तदपि निवर्तयन्मिथ्येति कृत्वा ।। १६५ ।।

(५) **नन्दनः** । आधमनविक्रयादिप्रयोजनेभ्यो लोकसिद्धेभ्यः प्रयोजनान्तरसंबन्धो-ोगस्तदभिसबन्धिकृतमाधनंयोगाधमनंयथा ज्ञातिभीतस्य गृहक्षेत्रादिकाधमनं एवंयोग-विक्रयंयोगदानंयोगप्रतिग्रहंयत्र पश्येदुपहितंचविनिवर्तयेद्राजा ।। १६५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । यःपुरुषः गाधंपरछलकारणं पश्येत् अनविक्रीतं अधिस्थानं योग-दानप्रतिग्रहं योगः उपधिः दानं प्रतिग्रहः तं यत्रयोगेयत्रदानं यत्र प्रतिग्रहे उपधिपश्येत् यत्र कार्ये उपाधिकं परं पश्येत्तत्कार्यं विनिवर्तयत् ।। १६५ ।।

(७) **मणिरामः** । छलेन कृतं सर्वं निवर्तत इत्यर्थः ।। १६५ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **योगाधमनविक्रीतमिति** । उपाधिना ये बन्धविक्रयदानप्रति-गृह्याः क्रियन्ते न ग्रहणादि तान् राजा विनिवर्तयेत् कृतानकृतान्कुर्यात् । तथाऽन्यत्रापि निक्षेपादौ यत्र छद्मार्थं करणं जानीयान्न वस्तुतो निक्षेपादि कृतं तत्सर्वं विनिवर्तयेत् ।। १६५ ।।

(९) **भारुचिः** । ऋणसम्बन्धादिदमपरं तद्गतमेवोच्यते—योगाधमनं नाम लोकयात्रायं यन्न स्फुटमुच्यते । त्वं तावदनेन कार्यं कुरु अहं पुनरनेन कार्यं करिष्यामीति । विक्रियोऽप्ये-वंलक्षणयोगदानं च यद्यात्रोत्सवव्यपदेशेन सोपधं दीयतेऽधमर्णादिभिः उत्तमर्णप्रभृतीनाम-

मुमूषश्चानपत्यो ज्ञातिभ्यो बिभ्यन्नैराश्याद्दासि। एवमादिना योगेन दानं दानेन प्रतिग्रह-योर्विशेषः। दानं मैत्र्यादिप्रतिग्रहो धर्मेण चाप्युपधिं पश्येद्दानग्रहगतमन्यगतं वा तत्सर्वं विनिवर्तयेत्। राजा व्यवहारान् पश्यन् अन्यत्र वा ऋण सम्बन्धाच्चेदमन्यमपरं तद्गतमेवोच्यते ॥ १६५ ॥

**ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थे कृतो व्ययः ।**
**दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः ॥ १६६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तम्–येन गृहीतमृणं तेन प्रतिदातव्यम्–तदभावे पुत्रपौत्रैः –तदभावे तदृक्थहारिणा। न तद्व्यतिरेकेणान्यस्य दानं प्राप्तमिष्यते। अत्र क्वचिद्विषये तदर्थमिदमुच्यते। येन गृहीतं धनं स **चेन्नष्टो** मृतो देशान्तरं गतो वा–**कुटुम्बे च कृतो व्ययः–दातव्यं बान्धवैस्तद्** भ्रातृतत्पुत्रपितृव्यादिभिः–**प्रविभक्तैर्**विभक्तधनैरपि–**स्वतः** स्वधना-दित्यर्थः। यावद्भ्रातरः सह वसन्ति तेषां यदृणमुपजातं तद्गृहमध्यादेव दीयते। तच्छि-ष्टेऽस्य विभागः। यथोक्तम्–

**"पितृव्येणाविभक्तेन भ्रात्रा वा यदृणं कृतम्।**
**मात्रा वा यत्कुटुम्बार्थं दद्युस्तत्सर्वमृक्थतः॥"** इति।

अविभक्तानामन्यतमेन यत्कुटम्बार्थमृणं कृतं तद्भ्रातृपितृव्यतत्पुत्रादयः सर्वे दद्युर्न त्वकुटुम्बार्थमित्यर्थः। अविभक्तग्रहणात्तेषामेव तथाविधमृणं संभवेत् प्रायः। न हि प्रवि-भक्ताः परकीयकुटम्बभरणार्थमृणं गृह्णन्तो दृश्यन्ते–अतः **प्रविभक्तैरपीत्याह।**

अपिशब्दादविभक्तैश्च। यदि कश्चिद्भ्रातॄणां विभक्तानां स्वकुटुम्बभरणमकृत्वा प्रवसेदितरश्च महासत्त्वतया तदीयं कुटुंबं बिभृयात्–तत्र विभक्तेनापि भ्रात्रा पितृव्येण वा यदृणं कृतं तदितरो दद्यादेव देशान्तरागतः॥ १६६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विभक्तेनाविभक्तेन वा भ्रात्रादिना कुटुम्बार्थे यः कृतो व्ययः स तत्र मृते तिष्ठद्भिर्दायादैर्देयइत्यर्थः। स्वतो धनात् मृतसंबन्धिनः स्वीयाद्वा ॥ १६६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ऋणग्रहीता यदि मृतः स्यात्तेन पूर्वविभक्ताविभक्तसर्वभ्रातृ-कुटुम्बसंवर्द्धनार्थं तदृणव्ययः कृतस्तदा तदृणं विभक्तैरविभक्तैश्च स्वधनाद्दातव्यम्॥ १६६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। यदि ग्रहीता ऋणादेर्मृतस्तदा कागतिस्तत्राह ग्रहीतेति। ग्रहीता धमर्णो ज्येष्ठभ्रात्रादिः। कुटुम्बार्थेकृतोव्ययस्तदृणंव्ययितम्। तदा स्वतः स्वकीयाद्धस्तात्। नष्टपदं प्रव्रज्याद्यपलक्षणम्॥ "पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनादियुतेपि वा। पुत्रपौत्रैर्ऋणंदेयं-निन्हवे साक्षिभाषित"मितियाज्ञवल्क्ययोक्तेः। पितृपदं ज्येष्ठाद्यपलक्षणम्। बान्धवैः पुत्राद्यैः ॥ १६६ ॥

(५) **नन्दनः**। ऋणस्य ग्रहीता नष्टो मृतस्तिरोहितोयदि स्यात् कुटुम्बे च ऋणस्य तस्य व्ययस्तेन कृतोयदि स्यात् बान्धवैर्भ्रातृभिर्यैस्तदृणमविभक्तैर्भुक्तंपश्चात्प्रविभक्तैरपितैः स्वीकार्यादर्थात्तदृणमुत्तमर्णाय दातव्यं स्यात्॥ १६६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यदि ग्रहीता स्वामी नष्टःस्यात् च पुनः कुटुम्बार्थे कृतो व्ययः तत्-ऋणं बान्धवैःदातव्यम् विभक्तैः बान्धवैः स्वस्वधनान्न दातव्यम् ।। १६६ ।।

प्रति.... एव श्लोकः....

(७) **मणिरामः**। योगशब्दः छलवाची। अपिशब्दाद्विभक्तैरपि स्वतः स्वधनाद्दातव्यं ।। १६६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **ग्रहीतेति**। अविभक्तो विभक्तो वा भ्रात्रादिसाधारणकुटम्ब-व्ययार्थं विभक्तभ्रातृकुटम्बव्ययार्थं च ऋणं गृहीत्वा कुटम्बव्ययकृत् मृतो बाधितो वा तदा तदृणं अविभक्तैर्विभक्तैर्वा ऋक्थिभिः स्वधनाद्दातव्यम् ।। १६६ ।।

**कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपि व्यवहारं यमाचरेत् ।।**
**स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न विचालयेत् ।। १६७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। तिष्ठन्तु तावद्भ्रात्रादयः। **कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपि** गृहभृत्योऽपि **व्यवहारं** गोपश्वादिविक्रयं क्षेत्रस्थण्डिलादिप्रयोगं कर्षणाय ऋणं व्यवहारं वा **यमाचरेत्**—**स्वदेशे विदेशे वा** सन्निहितस्य प्रोषितस्य वा—**तं ज्यायान्** गृहस्वामी **न विचालयेत्** अविचार्यैव साधु कृतमित्यनुमन्येत।

अन्ये तु पूर्वशेषोऽयमर्थवादो न विधिरित्याहुः। तदयुक्तम्। न ह्यर्थवादतावीजं किंचिदस्ति विभज्यमानं साकांक्षं यत्तच्छब्दाभिसम्बद्धम्।

अथ—'मत्तोन्मत्तार्त्ताध्यधीनैः' (१६३) इत्यस्यातन्त्र्यादध्यधीनस्य न तत्कृतप्रमाण-मिति।

अकुटुम्बार्थे संनिहिते च स्वामिनि न युक्तं कल्पयितुम्। अन्यथा कुटुम्बावसादः स्यात्। अतस्तद्भरणात्मके व्यापारे प्रमाणीभवति दैवादध्यधीनः ।। १६७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अध्यधीनो भृत्यः। विदेशे स्वपरोक्षे। ज्यायानधिकृतः ।। १६७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। तद्देशस्थे देशान्तरस्थे वा स्वामिनि स्वामिसंबन्धिकुटुम्बव्ययनिमित्तं-दासोपि यदृणादानादि कुर्यात्स्वामी तत्तथाप्यनुमन्येत ।। १६७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। एवं कुटुम्बपोषणाय कनिष्ठादिगृहीतमपि ज्यायसा देयमित्याह कुटुम्बेति। अध्यधीनः कनिष्ठादिः नविचालयेत्। न ददामीति न ब्रूयात् ।। १६७ ।।

(५) **नन्दनः**। यस्य व्यवहारमाणादिप्रयोगो ज्यायान्स्वतंत्रो गृही न विचारयेत्। ।। १६७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अध्यधीनः गर्भदासः कुटुम्बार्थे यं व्यवहारं ऋणं आचरेत् करोति स्वदेशे वा तं ऋणं ज्यायान् ज्येष्ठः न विचारयेत् अन्यथा न कुर्यात् ।। १६७ ।।

(७) **मणिरामः**। कुटुंबार्थे स्वामि कुटुंबार्थे। अध्यधीनोपि दासोपिज्यायान् स्वामी ।। १६७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **कुटुम्बार्थ इति**। कुटुम्बार्थे धनिनोऽपि व्यवहारं समाचरन् स्वदेश विदेशे वा गतं सन्तं आगच्छन्तं प्रतीक्षयेत् ।। १६७ ।।

(९) **भारुचिः**। कुटुम्बस्थित्यैव स्वाम्यसन्निधाने, अध्यधीनस्वामी गृहस्थः न विचारयेत् मम परोक्षे- ऽप्येतत् अध्यधीनं त्वया कर्म कस्मात् कृतमिति न विचारयेत्। एवमविचार्य तद्धनं प्रतिकुर्यात्। अथवा पूर्वश्लोकशेषोऽयं वर्णनीयः। कथं कृत्वा कुटुम्बार्थेऽध्यधीनकृतो व्यवहारे न च सिद्धयतीत्युक्तम्। अथ त्वसम्बन्धकृतो व्यवहारो न सिद्धयतीत्येतस्माच्छक्यते कथञ्चिदध्यधीनस्य ज्यायसि परोक्षे गृहार्थे स्वातन्त्र्यं कल्पयितुम्। ततस्सार्थ एवायं श्लोको यथैनमवोचाम सामर्थ्य कुटुम्बार्थं पुनरध्यधीनस्य धनं प्रयोक्ता ॥ १६७ ॥

**बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम्।**
**सर्वान् बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् ॥ १६८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यथा न बालास्वतन्त्राप्रकृतिस्थोपधिकृतं प्रमाणं तद्वद्बलकृतमपि। **सर्वान्बलकृतानर्थान्निवर्त्यानित्येव विधिः**। **भुक्तं दत्तं लेखितमित्युदाहरणमात्रम्**।

तत्र **बलाद्दत्तं** यदनुपयुज्यमानं क्षेत्रारामादिवाहनाय दीयते—वृद्धिकामो वा यद्धनं बलादारोपयति—भारवाहनमनिच्छताम्—गृहेषु मूल्यार्पणं पण्यमश्नुते।

**लेखितं** पत्रकरणम्।

**सर्वानित्यन्यानप्येवंविधानर्थान्कार्याणीत्यर्थः**।

**योगाधमनमित्यत्र** निपुणं दर्शितमत्रापि श्लोके समस्य योगबलशक्ये प्रक्षेप्तुं पृथक् श्लोकद्वयकरणम्। विचित्रा श्लोकस्य कृतिर्मनोः। मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्बालवृद्धैर्वा बलात्कृतः असंबद्धेन योगाच्च कृतो व्यवहारो न सिध्यति—इति न सिद्ध्यत्येव, न मानवद्भवति ॥ १६८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। बलात् बन्धनताडनादिना तद्भयेन वा। सर्वान् क्रयादीन्। अकृतान्निवर्तनीयान् ॥ १६८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। बलाद्दत्तमप्रतिग्राह्यादि बलाद्भुक्तंभूम्यादि बलाल्लेखितंचक्रवृद्धिपत्रादि प्रदर्शनंचैतत्सर्वान्बलकृतान्व्यवहारान्निवर्तनीयान्मनुराह ॥ १६८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच बलादिति। बलादावश्यकर्तव्यतातिरेकात् दत्तं व्ययितं अप्रतिग्राह्यादि राजादिसहायाद्वा दत्तं दापितम्। भुक्तं निषिध्यमानं भूम्यादि। लेखितं चक्रवृद्ध्यादिपत्रम् सर्वान्। क्रयविक्रयादीन् अकृतान् मनुरब्रवीदित्यन्वयः। मत्ताद्यतिरिक्तविषयम् तदसिद्धयोक्तत्वात् ॥ १६८ ॥

(५) **नन्दनः**। प्रमाणादिकं कुर्य्यादेव बलकृतं सर्वं निवर्तनीयमित्याह बलाद्दत्तमिति। तदप्यकृतंमनुरब्रवीत्। सर्वानुक्तव्यतिरिक्तान्योऽर्थश्चात्रिमन्प्रकरणे साक्षिप्रतिभुवोः परार्थेक्लेशउक्तः। दण्डदशबन्धादिनाराज्ञोवृद्धिश्चोक्ता ॥ १६८ ॥

(७) **मणिरामः**। अकृतान् व्यर्थान् ॥ १६८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **बलादिति**। बलाद्दत्तं कुत्सितकन्यादि, बलाद्भुक्तं क्षेत्रादि बलाच्च लेखितं पत्रादीत्येवमादीन् सर्वान् बलकृतानर्थान्निवर्तनीयान्मनुराह ॥ १६८ ॥

(९) **भारुचिः**। बलात्तावद्दत्तं वृद्धिकामेन धनं क्षेत्राद्याधिभोगकामेन च तन्निवर्त्यं राज्ञाबलाच्च भुक्तमाधिद्रव्यं प्रतिबद्धेन सता तदाधिभोगान्वेषणेन निवर्त्यम्। अथवानाधिद्रव्यं विग्रहादिबलाद्भुक्तं दशवर्षभो (गो?गे) नैतदपहरिष्यामीत्यनया बुद्धया बलाद्यच्चापि लेखितं पत्रे सर्वांश्चैवंप्रकारानन्यानप्यर्थान् साक्षित्वप्रतिभूकुलग्रहणकालावधि द्वैगुण्यकरणान्निवर्त्यान् मनुराह ॥ १६८ ॥

**त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम् ।**
**चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आढ्यो वणिङ् नृपः ॥ १६९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। परेणार्थ्यमाने साक्ष्यं प्रातिभाव्यं व्यवहारेक्षणं च कर्तव्यं कुलादिभिर्न स्वयमुपेत्य हठात्। अतः स्वयं कुर्वन्तो न प्रमाणीभवन्ति। अथवा परस्यार्थं कुर्वन्तः क्लेशमाप्नुवन्ति, न ह्येषां स्वार्थगन्धोऽस्त्यतो बलान्न कारयितव्याः। परेण वाऽर्थ्यमाना विप्रादय **उपचीयन्ते**। अतो न हठादनिच्छन्विप्रः प्रतिग्राहयितव्यः। अथवा परसंबन्धिनोऽर्थायोपचयो विप्रस्य—अतः स्वार्था प्रवृत्तिर्न परार्थैव—तेन विप्रेण न बलात्तदनादाने प्रवर्तनीयम्। हृतबलसाध्यं दानमिति लोकप्रवादो न दापयन्तं निषेधति। तदिच्छन्तं दापयेत्। याच्ञया तु बलम्। 'एव**माढ्यः** कुसीदवृत्तिर्धनवानिव न प्रयोजनीयः किमिति कुसीदं व्यवहारेऽन्यस्मै ददाति न मह्यमिति'। अथवा तेन बलवताऽन्यस्मिन्नच्छति व्ययं कुर्वति धनमारोपयितव्यम्। यतः परेणार्थ्यमान उपचीयते न बलात्प्रयुञ्जानः—शास्त्रनिषेधात्। एवं **वणिक्कुसीदीव** धनवृद्धिकाम एव व्यवहारयति। **वणिक्** पण्यजीवी। **नृपो** राजाऽपि प्रयुक्तराजदण्डमाददान उपचीयते—न तु बलादिप्रोत्साहनेन व्यवहारयन्। तदुक्तं 'नोत्साहयेत्स्वयं' कार्यम्" इति। विप्रादीनां विधिरनुवादो राज्ञो दृष्टन्तार्थः। अथवा सर्वस्योदाहरणप्रपञ्चः। तथाऽग्रेतनोऽपि ॥ १६९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कुलमविभक्ता ज्ञातयो मृतस्य ज्ञातेरस्वस्याप्यृणं शोधयन्तः। अतः साक्षित्वप्रतिभूत्वानङ्गीकारेण कुलत्वंच विभागे निवर्तनीयमित्यर्थः। व्यवहारेण तद्दर्शनेन। चत्वारः उपचीयन्ते परधनंलभन्ते विप्रः प्राङ्विवाकः राज्ञःसकाशाद्धनप्राप्त्या। आढ्योधनिकोवृद्धया जीवनेन। वणिक् वाणिज्येन। नृपोराजा दण्डादिप्राप्त्या ॥ १६९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। साक्षिणः प्रतिभूः कुलंच धर्मार्थव्यवहारद्रष्टा त्रयएते परार्थंक्लेशमनुभवन्ति तस्मात्त्वनेन साक्ष्यं प्रातिभाव्यंव्यवहारईक्षणंच नाङ्गीकारयितव्याः चत्वारः पुनः ब्राह्मणोत्तमर्णवणिग्राजानः पदार्थंदानफलोपादानऋणद्रव्यार्पणविक्रयव्यवहारेक्षणरूपंकुर्वाणाधनोपचयंप्राप्नुवन्ति। तस्माद्विप्रोदातारमाढ्योऽधमर्णंवणिक्क्रेतारंराजा व्यवहर्तारंबलेन न प्रवर्तयेत्। पूर्वश्लोकाभिहितबलनिषेधस्यैवायंप्रपञ्चः ॥ १६९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। बान्धवानपि दापयेदिति प्रसंगेन सप्तानां परतः यथासंभवंक्लेशवृद्धीराह त्रयइति। तत्र साक्षिप्रतिभूकुलानि क्लेशभाञ्जि। तत्र साक्षिणां सत्योक्तौ न किंचित् अनृतोक्तौ कुलनाशाद्युक्तम्। प्रतिभुवः प्रातिभाव्यदर्शनादौ नकिंचित्

तददर्शनादौ स्वधनव्ययः* एवं कुलस्य कुपुत्रेण नाशः तस्मात् परतःक्लेशभाजस्तेन बलान्नप्रवर्तनीया इति भावः। प्रतिभूपदं निक्षेपधाद्युपलक्षकम् सोऽपि परार्थ एव क्लिश्यति निक्षेपधारणेन किंचित् तन्नाशे चाप्रतिष्ठा तद्दानमिति। परेभ्योविप्रादीनांत्रतुर्णां प्रतिग्रहाणां दानानर्धविक्रियकरादिग्रहैरुपचय इति। तस्मात् विप्रेण दाता आढ्येनाधमर्णः वणिजा क्रेता नृपेण कार्यार्थी च न बलात्प्रेरणीय इति भावः॥ १६९॥

---

* व्ययः=व्ययः उक्तः (राघ० २)

(५) **नन्दनः**। तत्र बलात्कारमाशङ्क्य परिहरति त्रय इति। कुलशब्देन कुलीनोभिप्रेतः तस्योपन्यासोदृष्टान्तार्थः। यथा कुलीनः परार्थे यतमानः क्लिश्यति एवं साक्षिप्रतिभुवाविति तस्मान्नात्र बलात्कारः कर्त्तव्य इत्यभिप्रायः। चत्वारः परार्थउपचीयन्ते वर्द्धन्ते। विप्रस्योपचयः परार्थएव न स्वार्थो देवपितृशेषत्वात्। आढ्योवार्द्धुषिकस्तस्योपचयः परार्थोनात्मार्थः। प्रजावृद्धचर्थत्वात्। यथा विप्रादयः प्रजार्थमुपचीयन्त एवं नृपोऽपि परार्थमुपचीयते तस्मादेतदर्थात्प्राप्तंनबलादित्यभिप्रायः॥ १६९॥

(६) **रामचन्द्रः**। कुलं अविभक्ताज्ञातयः। चत्वारः उपनीयन्ते जीवन्ति। विप्रः प्राड्विवाकः। श्लाघ्यः दानादिव्यवहारेण। नृपः राजा विवदमानामितियोगीश्वरः॥ १६९॥

(७) **मणिरामः**। यतः एतेः त्रयः क्लेशं प्राप्नुवंति अतः साक्ष्यं प्रातिभाव्यं व्यवहारदर्शनं च नांगीकर्तव्यं। चत्वारोविप्रादयः क्रमेणाप्रतिग्रह ऋणार्पणविक्रय व्यवहारदर्शनं कुर्वाणाः उपचीयंते। तस्मादेतत्सर्वं बलान्न प्रवर्तयेत् इति तात्पर्यं॥ १६९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **त्रय इति**। साक्षिणः प्रतिभुवो धर्मदृष्टारो त्रयः क्लिश्यन्ते क्लेशमतुभवन्त्येते। न हठादेते साक्ष्यादिकारयितव्याः। चत्वारः पुनः ब्राह्मणोत्तमर्ण वणिग्राजानः परार्थदानफलोत्पादनोद्यमे धनार्पण विक्रय व्यवहारेण उपकुर्वाणा धनोपचयं प्राप्नुवन्ति। तस्मान्नैव हठादनाग्रहण क्रयव्यवहारकरणेषु दात्रधमर्णके व्यवहारे प्रवर्तनीयाः॥ १६९॥

(९) **भारुचिः**। यस्मात् परस्यार्थं कुर्वन्ति दृष्टानि साक्षिप्रतिभूकुलानि अतो नानिच्छतस्तानि कारयेत्, साक्ष्यादीनि चत्वारस्तूपचीयन्ते, विप्रादयः परार्थमेव कुर्वन्तः। विप्रस्तावन्नादित्सन्तं दापयेत् दातारमाढ्यं विध्यर्थं जिघृक्षन्तं न ग्राहयेत्। वणिक् च नाचिकीर्षन्तं कारयेत् लाभार्थी, एवं नृपो विना व्यवजिहीर्षन्तं व्यवहारयेत्। एवं च सत्ययं श्लोकः अर्थस्यबलात्कृतस्य पदार्थस्य निवृत्तिप्रदर्शनार्थो न ज्ञेयः। यतच्चैतदेवम् अतो बलवानपि सन् राजा व्यवहारादन्यत्र च॥ १६९॥

**अनादेयं नाददीत परिक्षीणोऽपि पार्थिवः॥**
**न चादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत्॥ १७०॥**

(१) **मेधातिथिः**। करदण्डशुल्कादि शास्त्रविहितं वर्जयित्वाऽन्यात्पौरधनमनादेय

राज्ञः क्षीणकोशस्यापि। यत्तु शास्त्रन्यायागतं रक्षानिर्वेशधनं **तत्सूक्ष्मं** कार्षापणमात्रमपि न त्यजेत्। तदुक्तं "वल्मीकपथवद्राजा कोशवृद्धिं तु कारयेत्" इति ।। १७० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अतो यत्कर्तव्यंनृपेण तदाह अनादेयमिति। यतोधर्मतोपि परवित्तग्रहणे नोपचीयते नृपस्तस्मादनादेयमशास्त्रीयं नाददीत ।। १७० ।।

(३) **कुल्लूकः**। क्षीणधनोपि राजा नाग्राह्यमर्थंगृह्णीयात् समृद्धोपि स्वल्पमपि ग्राह्यंधनंन त्यजेत् ।। १७० ।।

(४) **राघवानन्दः**। प्रजास्नेहेन राजाकरादि नव्यापादयेदितिसार्थवादमाह अनादेयमितिचतुर्भिः। अनादेयमन्यायोपात्तं नाददीतैव। आदेयं न्यायोपात्तं सूक्ष्मं रजोमात्रं नोत्सृजेत् न त्यजेत्। परिक्षीणो धनादिभिः तैः समृद्धोवा ।। १७० ।।

(५) **नन्दनः**। एवंबलात्कृतंसर्वंराज्ञानिवर्तनीयमित्युक्तं अधना स्वयमपि राज्ञा बलात्कारोनकार्यइत्याह अनादेयमिति : परिक्षीणोप्यसमृद्धोपि अनादेयमदण्डचस्यार्थं-सूक्ष्ममपि बलान्नाददीत। समृद्धोपि दण्डचस्यार्थंसूक्ष्ममपि बलान्नोत्सृजेत् ।। १७० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। द्वाभ्यामाह अनादेयमिति। परिक्षीणोपि पार्थिवः अनादेयम ग्राह्यद्रव्यं नाददीत न गृह्णीयात्। च पुनः समृद्धोपि राजा सूक्ष्ममपिअर्थं अदेयम् अर्थं नोत्सृजत् ।। १७० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अनादेयमिति**। क्षीणकोशोऽपि राजा अग्राह्यं न गृहणीयात्। समृद्धोपि स्वल्पमपि ग्राह्यमर्थं न परित्यजत् ।। १७० ।।

**अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् ।।**
**दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति ।। १७१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अनादानार्ह**मनादेयम्**। अर्हे कृत्यस्तच्च दर्शितम्। **दौर्बल्यं ख्याप्यते** प्रकृतिभिः-'अस्मान्दण्डयति स्तेनाटविकसामन्तादीन्न शक्तो विजेतुमिति'। परे-स्वशक्तिं प्रथयन्ति राष्ट्रीयाः। अतस्मतैरभिषेण्यमानो विरक्तप्रकृतिरिह नश्यति। आदा-नात् **इह**-प्रेत्य च धर्मदण्डनात् ।। १७१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनादेयादानाद्दरिद्रोयमिति लोकेऽख्यातिरधर्मश्चदौर्बल्य-हेतुर्जायतेऽतःप्रेत्येहच नाशः। एवमादेयवर्जनादशक्तोयमित्यपकीर्तिःप्रजानामधर्मचरणे-नाऽधर्मश्च ।। १७१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यस्मात् अनादेयस्येति। अग्राह्यग्रहणाच्छास्त्रीयग्राह्यपरित्यागात्तु-राज्ञः पौरैरसामर्थ्यं ख्याप्यते ततश्च स प्रेत्याधर्मेण नरकादिभोगादिहाकीर्त्या विनश्यति ।। १७१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। ततःकिंतत्राह अनादेयस्येति। ज्ञानतोवर्जनात्स्वधनस्य दौर्बल्यं ख्याप्यते गृह्यते। अयमर्थः। नीतिशास्त्रानभिज्ञोयंयतोअनादेयमादत्तेऽपरिपूर्णधनोयमित्या

क्रमणीयः यतआदेयमपि नादत्ते आदातुमसमर्थोवेति । अनादेयस्यादानात्प्रेत्य नश्यति ।। १७१ ।।

(५) **नन्दनः** । उक्तार्थाननुष्ठाने च दोषमाह अनादेयस्यचेति ।। १७१ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । अनादेयस्य अग्राह्यस्य आदानात्स्वीकारात् आदेयस्य स्वकरणीयस्य चवर्जनात् परित्यागात् तस्य राज्ञोदौर्बल्यंख्याप्यते । सराजा प्रेत्यइहलोके नश्यति ।। १७१ ।।

(७) **मणिरामः** । अग्राह्यग्रहणात् शास्त्रीयग्राह्यपरित्यागाच्च राज्ञः पौरैरसामर्थ्यं ख्याप्यते परलोके नरकप्राप्तिश्चेत्यर्थः ।। १७१ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **अनादेयस्येति** । अग्राह्यग्रहणात् ग्राह्यपरित्यागाच्चाशक्तानसद्दण्डे योजयति । शक्तानां पुनः प्रकृतमप्युपेक्षते भीरुतयेत्येवं पौरैर्दौबल्यं राज्ञः प्रकाश्यते स चादेयादाने अस्वधर्मोत्पाद प्रकृतिकोपाभ्यामादेयवर्जनेन च क्षीणकोशतया राज्यविनाशादिहलोकपरलोकयोर्विनश्यति ।। १७१ ।।

(९) **भारुचिः** । अत्र चादेयापरिवर्जननियमः शास्त्रसामथ्यात् अतो वर्ज.... ।। १७१ ।।

**स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्त्वबलानां च रक्षणात् ।।**
**बलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्धते ।। १७२ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । स्वस्य न्यायप्राप्तस्यादानम् । शोभनं वाऽऽदानम् । भव्यमेव शोभनम् । वर्णयोरेव संसर्गः समानजातीयै**र्वर्णसंसर्गः** । द्विष्ठत्वात्संसर्गस्य च संबन्धिनोरश्रुतत्वाद्वर्णानां प्रस्तुतत्वात्तत्रैवापेक्षा युक्ता । यस्तु वर्णानामवान्तरप्रभवैः संसर्गो नासौ वर्णानामेव संबन्धितया व्यपदेष्टुं शक्यते ।

कश्चित्तु नकारं पठति–'वर्णासंसर्गादिति' । सर्वथा वर्णसंकरप्रतिषेधानुवादोऽयम् । दुर्बलानां बलवद्भिद्वेषिभिरभिभूयमानानां तेभ्यस्त्राणाद्धेतोः ।

**राज्ञो बलं संजायते** । सम्यग्व्यवहारदर्शनं कर्तव्यमधर्मदण्डनं च न कर्तव्यमित्येतद्विशेषाः पठिष्यन्ते श्लोकानामर्थवादाः ।। १७२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । आदानादुचितदण्दादिग्रहणाद्धनबलम् । वर्णानामसंकरेण संसर्गात् संसर्जनात् दुर्लभरक्षणाच्च धर्मबलम् ।। १७२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । न्याय्यधनग्रहणाद्वर्णानांसजातीयैः शास्त्रीयपरिणयनादिसंबन्धात् यद्वा वर्णसंसर्गाद्वर्णसंकरादित्य चापि रक्षणादिति योजनीयंप्रजानांदुर्बलानांबलवद्भयोपिरक्षणात्सामर्थ्यमुपजायते नृपस्य ततश्चासाविहलोकपरलोकयोच्च वर्धते ।। १७२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । किंचआदानादिति । आदानात्धर्मसंसर्गादिति हेतुमद्भावे पञ्चम्यौ । न्यायोपात्तधनादिना धर्मवृद्धिःप्रेत्य वृद्धिः । इहापि वृद्धिःकीर्तिधनाभ्यां वर्णसंसर्गादितिक्वचित्पाठस्तदाऽऽदानादिह वृद्धिर्वर्णसंसर्गाच्छास्त्रीयपरिपालनेन प्रेत्य वृद्धिः । रक्षणाद्बलं चतुरङ्गबलवान्हि रक्षितुंसमर्थोजायते ज्ञायतेवा ।। १७२ ।।

(५) **नन्दनः**। उक्तार्थानुष्ठाने फलमाह स्वादानादिति। स्वादानात्स्वस्य प्राप्तद्रव्यस्यादानाद्ग्रहणात्। वर्णसंश्लेषात्वर्णैः सह प्रीत्येति यावत्॥ १७२॥

(६) **रामचन्द्रः**। स्वंद्रव्यंतस्य आदानात् उपहितदण्डादिग्रहणात्। वर्णससंर्गात्सांकर्यराहित्यात्॥ १७२॥

(७) **मणिरामः**। आदानात् न्यायेनाऽर्थग्रहणात्॥ १७२॥

(८) **गोविन्दराजः**। **स्वादानादिति। बलवान्ह्याप्यते राजा स प्रेत्येह च वर्धते।** न्याय्यधनग्रहणाद्वर्णानां समानजातीयैर्वर्णैः स्त्रीषु च सम्बन्धाद्दुर्बलानाञ्च बलवद्भ्यो रक्षणाद्बलवानिति राजा लोके कथ्यते। अतश्चासाविह (पर) लोकयोर्वर्धते॥ १७२॥

(९) **भारुचिः**। यथाशास्त्रं पुनरस्य वर्तमानस्य व्यवहारेभ्योऽन्यतश्च पौरजानपदेभ्यः....स्तद्रव्यादानाद् दुर्बलानां च बलवद्भ्यो रक्षणात् वर्णानामसर्गः परस्परेणा सङ्करः प्रजासु भवति। ततश्च राजा प्रेत्येह वर्धते इति अधिकृतविधिस्तुतिमात्रमिदं यस्माच्चैतदेव॥ १७२॥

**तस्माद्यम इव स्वामी स्वं हित्वा प्रियाप्रिये॥**
**वर्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः॥ १७३॥**

(१) **मेधातिथिः**। तथा चैतदेव प्रपञ्चयति। अयं सेवक आत्मीयोऽतः **प्रियः**, अयं च केवलं राष्ट्रवासी यस्यैव राष्ट्रं तमेवोपतिष्ठतेऽतोऽप्रियः। तद् **हित्वा** तद्विदित्वा **यमवत्प्रजासु** तुल्यः परिपालने व्यवहारे च स्यात्। ईदृशी हि यमस्य वृत्तिर्दृष्टा। यस्येत्यणो बाधकं तत्रौपसंख्यानिकं यकारमिच्छन्ति। कः पुनर्यमतुल्यतां भजति। **जितक्रोधो जितेन्द्रियः**। रागद्वेषौ जयेत्–प्रत्यासङ्गाख्यानेन॥ १७३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रियाप्रिये मित्रत्वशत्रुत्वे। याम्यया वृत्त्या कर्मानुरूपसुखदुःखदाने। जितेन्द्रियो जितस्वेन्द्रियजकामलोभः॥ १७३॥

(३) **कुल्लूकः**। यतएवं तस्माद्यमेति। तस्माद्यम इव राजा वशीकृतक्रोधो जितेन्द्रियः स्वकीयेऽपि प्रियाप्रिये परित्यज्य यमस्य चेष्टया सर्वत्र साम्यरूपया वर्तेत॥ १७३॥

(४) **राघवानन्दः**। उपसंहरति तस्मादिति। स्वामी राजा यमो हि यथाऽदृष्टानुरूपेण दण्डानुग्रहौ करोति न प्रत्यवैत्येवं राजाऽपि स्वारसिकक्रोधादिविवर्जितो दृष्टापराधानुसारेण वर्तेतेत्यर्थः॥ १७३॥

(६) **रामचन्द्रः**। तस्मात्कारणात् स्वामी राजा प्रियाप्रिये स्वयं हित्वा याम्यया वृत्त्या सकललोकसमदृष्टचा मित्रामित्रेति हित्वा वर्तेत। यथा यमः वर्तते॥ १७३॥

(७) **मणिरामः**। याम्यया वृत्त्या सर्वत्र साम्यरूपया॥ १७३॥

(८) **गोविन्दराजः**। यतः **तस्मादिति**। तस्माद्यम इव राजा वशीकृतक्रोधेन्द्रिय आत्मनश्च प्रियाऽप्रिये परिहृत्य यमसमन्धिन्या चेष्टया रिपुमित्रसाम्यत्वेन वर्तते (वर्तेत)॥ १७३॥

(९) **भारुचिः**। समः प्रजासु स्यादित्यस्य राज्ञोऽयमुपदेशार्थः। तथा च वैषम्यहेतुवृत्त्याख्यानमाह जित- क्रोधो जितेन्द्रियः इति ।। १७३ ।।

**यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः ।।**
**अचिरात्तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः ।। १७४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अधर्मेण यः कार्याणि** कुरुते स मोहादेवेह व्यामूढो धर्मं जह्यात्। तस्येदमधर्मजं फलम्–विरक्तप्रकृतितया **वशे कुर्वन्ति शत्रवः**। विरक्ता हि प्रकृतयः क्रुद्धलुब्धभीतावमानिताः परैरुपजप्येरंस्ततश्च बहुकृत्वो वशे कुर्वन्ति दण्डयन्ति बन्धन्ति घ्नन्ति राष्ट्रमपहरन्ति चेत्येष वशीकारः ।। १७४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। मोहाद्धर्मोनास्तीति भ्रमात् ।। १७४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यः पुनर्नृपतिर्लोभादिव्यवहारादधर्मेण व्यवहारदर्शनादीनि **कार्याणि** कुरुते तं दुष्टचित्तं प्रकृतिपौरविरागात्क्षिप्रमेव शत्रवो निगृह्णन्ति ।। १७४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। उक्तार्थवैपरीत्ये दण्डमाह यस्त्विति। अधर्मेण अयथाशास्त्रेण तत्र हेतुर्मोहात्कार्याणि दण्डशुल्कादीनि। सामन्ताद्यैर्दत्तहस्ताः शत्रवस्तं वशे कुर्वन्तीति शत्रुभयादप्यकार्यान्निवर्तितव्यमितिभावः ।। १७४ ।।

(५) **नन्दनः**। अधर्मेणासमवृत्या ।। १७४ ।।

(६) **रामचन्द्र**। यो महीपतिः मोहात् धर्मोस्तीति भ्रमात् अधर्मेण कार्याणि कुर्यात् शत्रवः तं राजानं अचिराद्वशे कुर्वन्ति ।। १७४ ।।

(७) **मणिरामः**। वशे कुर्वन्ति। पौराणां वैराग्येण ।। १७४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **य इति**। यः पुनर्नृपो लोभादिव्यामूढतयाऽधर्मेण व्यवहारदर्शनादीनि कार्याणि कुरुते, तमधर्मप्रकृतित्वात् क्षिप्रमेव शत्रवश्चासादयन्ति ।। १७४ ।।

(९) **भारुचिः**। अपरक्तः प्रकृतिं बहुकृत्यवन्तं वृद्धपर्युपासनादिभिः पुनराहितविज्ञानी विनयी सन् राजा ।। १७४ ।।

**कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान्धर्मेण पश्यति ।।**
**प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ।। १७५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **सिंधवो** नद्यो यथा **समुद्रमा**श्रयन्त्याश्रिताश्चानुरागिण्यस्तन्मय्यो वसन्ति न ततो निवर्तन्ते एवं कामक्रोधजयाद्राजानं प्रजाः समयोगक्षेमास्तन्मय्यः संपद्यन्ते ।। १७५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अर्थमर्थसाधनं व्यवहारादि ।। १७५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यो राजा रागद्वेषौ विहाय धर्मेण कार्याणि निरूपयति तं राजानं-

प्रजाभजन्ते समुद्रमिव नद्यः नद्यो यथा समुद्रान्ननिवर्तन्ते तेनैवैकतांयांति प्रजा अपि तस्मान्नृपादनुवर्तिन्यस्तदेकताना भवन्तीति साम्यम् ।। १७४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । जितक्रोधइत्याद्युक्तं तत्र दृष्टान्तमाह कामेति । कामक्रोधौ रागद्वेषौ संयम्य विहाय अर्थान् प्रजापालनादीन् धर्मेण यथाशास्त्रं पश्यति यस्तम् । सिन्धवः-स्यन्दनात् नद्यःगाम्भीर्याचलमर्यादत्वबोधरत्नाकरत्वदुरवग्राह्यत्वादयो राज्ञः समुद्रमित्यनेन सूचिता इति ।। १७५ ।।

(५) **नन्दनः** । अनुवर्त्तन्ते न भिद्यन्ते ।। १७५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । यो राजा धर्मेण अर्थान् व्यवहारान्पश्यति ।। १७५ ।।

(७) **मणिरामः** । सिंधवः नद्यः ।। १७५ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **कामक्रोधाविति** । यश्च द्वेषपरित्यागेन राजा धर्मेण कार्याणि निवारयति तं नद्य इव समुद्रं प्रजाः संभजन्ते तन्मनसश्च भवन्ति ।। १७५ ।।

(९) **भारुचिः** । अजितकामक्रोधश्च पुनः पार्थिवः यथाह सिन्धवोऽगम्यं समुद्रं गत्वा न निवर्तन्ते किन्तर्हितन्मय्यो भवन्ति । एवमित्थंभूतस्य राज्ञो नापराध्यन्ते प्रकृतयोऽमात्यादयः । किन्तर्हि तन्मय्यो भवन्तीत्ययमुपमार्थः ।। १७५ ।।

**यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं नृपे ।।**
**स राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ।। १७६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **छन्द** इच्छा । तेन राजानमज्ञापयित्वा यदा प्रागुक्तैश्चतुर्भिरुपायैः स्वेच्छया धनमार्गेण प्रवृत्तं तथाभूतं वा राजपुरुषैराह्वानेनार्हतरप्रदेशेऽनुरुध्येदं हि धनमिति स च पृष्टो धारयामीति यत्प्रतिपद्यते स राज्ञा चतुर्थं भागं दण्डापयितव्यः । यावत्तस्मै धारयति तस्य । तत्र सर्वमृणं शतं चेद्धारयति पञ्चविंशतिर्दण्डनीयः शतं तस्य दाप्यः । न त्वियं भ्रान्तिः कर्त्तव्या–शतं राज्ञः पञ्चविंशतिः शिष्टं धनिकस्य । धनिको हि तथा दण्डितः स्यान्नर्णिकः ।। १७६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । साधयन्तं स्वच्छन्देन स्वेच्छयाऽप्रतिरोधादिना राज्ञि वेदयेत् ज्ञापयेत् । ऋणचतुर्थभागं दण्ड्यो धनिकाय धनं दाप्यः ।। १७६ ।।

(३) **कुल्लूकः** । योऽधमर्णो राजवल्लभोहमिति गर्वादुत्तमर्णं स्वेच्छया धनं साधयन्तं-नृपे निवेदयेत्सराज्ञा ऋणचतुर्थभागं दण्ड्यः तस्य तद्धनं दापनीयम् ।। १७६ ।।

(४) **राघवानन्दः** । प्रकृतमाह यइति । योऽधमर्णः छन्देन इच्छया तस्मात्स्वधनं साधयन्तं राजवल्लभोहमितिगर्वान्नृपे निवेदयेत् स राज्ञा चतुर्थांशं दण्ड्यः । धनिकस्यापि तद्धनं दापनीयम् प्रयुक्तंसाधयेदर्थमित्यत्रोक्तोभियोगाभावाद्दण्ड इह तुदण्डइति न पौनरुक्त्यम् ।। १७६ ।।

(५) **नन्दनः**। प्रासङ्गिकं बलात्कारवर्जनं परिसमाप्य प्रकृतमेव ऋणदापनमुपक्रम्याह यःसाधयन्तमिति। राजन्यनिवेद्य छन्देन स्वेच्छया। स्वमर्थं संरोधनादिना साधयन्तं धनिकमुत्तमर्णमधमर्णो नृपे निवेदयेत्। असावयमेवं मांबाधतइति सराज्ञा ऋणचतुर्भागं तस्मैदण्डनं-दाप्यः। तस्योत्तमर्णस्य तद्धनमृणं च दाप्यः॥ १७६॥

(६) **रामचन्द्रः**। यः अधमर्णः छन्देन स्वेच्छया साधयन्तं धनिकमत्तमर्णं नृपे वेदयेत् सः राज्ञा ऋणचतुर्भागं दण्डं तस्य उत्तमर्णस्य तद्धनं च दाप्यः॥ १७६॥

(७) **मणिरामः**। अधमर्णः राजवल्लभोहमिति गर्वात्। धनिकं उत्तमर्णं। छंदेन धनं साधयंतं नृपे निवेदयेत् सः अधमर्णः राज्ञा ऋणचतुर्थभागो दंडयः ऋणं चोत्तमर्णाय स्वेच्छया। दाप्यः॥ १७६॥

(८) **गोविन्दराजः**। **य इति**। स राज्ञऋर्णचतुर्भागं दण्डार्थं तस्य तद्धनम्। योऽधमर्णो राजवल्लभाभिमानी सामादिना साधयन्तमुत्तमर्णं नृपे निवेदयेत्, स राज्ञा ऋणचतुर्भागं दण्डार्थं तस्य तद्धनं दापनीयः॥ १७६॥

(९) **भारुचिः**। राजवाल्लभ्यादविभ्यद्यो राजपुरुषस्तस्मै धनिकमावेदयेत् तस्य यथोपदेशं दण्डनं धनदानं च राजा कुर्यात्। अपरः पाठः—

**योऽसाध्यं मन्यमानस्तु वेदयेद्धनिकं नरः।**
**स राजर्णचतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्धनम्॥**

अत्रापि स एवार्थः। ईषदन्यथा/भिन्नः अशक्तस्य धनदान एतद्धनदानायेदमुपायान्तरमभिधीयते धनाभावतो वैकल्पिकः॥ १७६॥

**कर्मणाऽपि समं कुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः॥**
**समोऽवकृष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः॥ १७७॥**

(१) **मेधातिथिः**। निर्धनोऽधमर्णो निर्धनत्वान्न मुच्यते किन्तर्हि कर्म कारयितव्यः, प्रेष्यत्वं व्रजेत्—यावता धनेन तत्कर्म कर्मकरः करोति तत्तस्य प्रविष्टं संसद्यपि कर्तव्यम्। कर्म कुर्वतश्च सलाभधने प्रविष्टं तत्स्यान्मोक्षः। **समं कुर्यात्**—उत्तमर्णेन। अथ शुद्धे धने नोत्तमाधमव्यवहार—एकोऽधमर्णोऽपर उत्तमर्ण इति। एतच्च कार्यते **समः**—समानजातीयः—**अवकृष्टजातिः**—हीनजातीयः। **श्रेयांस्तूत्तमजातीयो** गणाधिको वा—**शनैः** क्रमेण यथोत्पादं दद्यात्। नारदे पठ्यते—'ब्राह्मणस्तु परिक्षीणो शनैर्दद्याद्यथादशमिति'। अतो राज्ञा धनिकधनसंशुद्ध्यर्थं परिक्षीणो ब्राह्मणो न पीडयितव्यः, उत्तमर्णश्च रक्षणीयः॥ १७७॥

(३) **कुल्लूकः**। समानजातिरपकृष्टजातिश्चाधमर्णो धनाभावे सति स्वजात्यनुरूपकर्मकरणेनापि समं कुर्यात् निवृत्तोत्तमर्णाधमर्णव्यपदेशतया धनिकसममात्मानं कुर्यात्। समजातिरत्र ब्राह्मणेतरः कर्मणाक्षत्रविट्शूद्रान्समानजातीयान्हीनांस्तु दापयेदिति कात्यायनेन विशेषितत्वात्। श्रेयान्पुनरुत्कृष्टजातिर्न कर्म कारयितव्यः किन्तु शनैः यथासंभवं तद्धनं तद्यात्॥ १७७॥

(४) **राघवानन्दः**। यद्यधमर्णो दातुमसमर्थस्तत्र कागतिस्तदाह कर्मणा यः समः। उत्तमर्णतुल्यजातिः ततोऽपकृष्टजातिर्वाऽधमर्णिकः कर्मणास्वजात्यनुरूपेण वेतनकृत्यादिना सममृणशोधनं कुर्यात् श्रेयांस्तु विपश्चित् शनैर्दद्यात् एवं।। हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थंकर्म कारयेत्।। ब्राह्मणस्तु परिक्षीणः शनैर्दाप्यो यथोदयमिति याज्ञवल्क्योक्तेः।। शनैः शनैर्धनमेव दद्यात् नतु कर्मणा लौकिकेन समं कुर्यात् विप्रस्य लौकिककर्मकरणे दण्डस्य वक्ष्यमाणत्वात्। आर्त्विज्यादौ तु नदोषः हीनजातिमित्यनेन क्षत्रियोवैश्यस्य शनैर्दद्यात् नतुकर्मकुर्यात् इत्येवमुत्तरत्र ब्राह्मणपदं राजसेवकगुणवत्त्वाद्युपलक्षकं तेऽपि दद्युस्तेन न प्रकृतविरोधः।। १७७।।

(५) **नन्दनः**। ऋणप्रदानाशक्तस्याधमर्णस्य जातितारतम्यवशेन ऋणापाकरणमाह कर्मणापीति। समः समानजातिरपकृष्टजातिश्चाधमर्णिको धनिकायोत्तमर्णाय कर्मणापि समंकुर्यात् ऋणसमं भूतिकर्म कुर्यादित्यर्थः। श्रेयानुत्कृष्टजातिस्तदृणंशनैर्दद्यात्।। १७७।।

(६) **रामचन्द्रः**। अधमर्णः कर्मणापि धनिकाय समं अनृणं कुर्यात् समः अन्योन्यसमः अवकृष्टजातिः हीनजातिश्च श्रेयांस्तु श्रेष्ठः तद्धनं शनैर्दद्यात्।। १७७ ।।

(७) **मणिरामः**। समः एकजातिः। अवकृष्टजातिश्च अधमर्णः धनाभावे सति कर्मकरणेनापि ऋणं समंकुर्यात्। श्रेयान् उत्तमर्णादुत्कृजातिस्तु अधमर्णः राज्ञौ शनैः यथा संभवंदद्यात्। न तु कर्म कुर्यादित्यर्थः। इदं ब्राह्मणेतरविषयं। ब्राह्मणस्य कर्मकरणाभावात्।। १७७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **कर्मणेति**। समहीनजातिश्चाधमर्णो धनाऽभावे सति स्वजात्यनुरूपकर्म कारयितव्योऽपि तु शनैः तद्धनं यथासंभवं दद्यात्।। १७७ ।।

(९) **भारुचिः**। श्रेयसो मान्यत्वात् सोढव्यमेव। तस्याप्रदानात् अक्षान्त्या तु न कदाचिदप्यसौ समहीनवत् कर्म कारयितव्यः। ऋणापादानार्थः श्लोकः।। १७७ ।।

**अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम्।।**
**साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत्।। १७८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अनेनेति** पूर्वोक्तप्रकारप्रत्यवमर्शः। **विधिना** प्रकारेण। **साक्षिप्रत्ययसिद्धानि**। सिद्धशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते। साक्षिभिः सिद्धानि निर्णीतानि। 'प्रत्ययः' अनुमानं दैवी वा क्रिया। **कार्याणि**। न केवलमृणादानमन्यदपि। **समतां नयेत्**। अर्थि प्रत्यर्थिविप्रत्तिमपाकुर्यादैक्यमन्यत उत्पादयेत्।

उपसंहृतमृणादानम्। समाप्तो व्यवहारः। सर्वत्र जयपराजयप्रकारणामेवंरूपत्वात्। न हि साक्ष्यादिभ्य ऋते किंचिदुत्तरेषु विवादेषु प्रतिपत्तिनिरासनिमित्तम्। केवलं दंडविशेषस्तत्स्वरूपं च वक्तव्यमित्युत्तरः प्रपञ्चः। कीदृशोऽस्वामिविक्रयः कीदृशोऽनुशय इति स्वरूपं व्यवस्थाप्यते।। १७८।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। साक्षिभिः प्रत्ययैः शपथैश्च सिद्धानि। समतां अविवादम्।। १७८।।

(३) **कुल्लूकः**। अनेन प्रोक्तप्रकारेण परस्परं विवदमानामार्थिप्रत्यर्थिनां साक्ष्यादि-प्रमाणेन निर्णीतार्थानि कार्याणि विप्रतिपत्तिखण्डनेन राजा समीकुर्यात् ।। १७८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। एतद्विवादादावतिदिशति अनेनेति। साक्षिप्रत्यसिद्धानि साक्षी प्रत्ययश्च लेख्यपूर्वकप्रतिग्रहक्रयादिश्च ताभ्यां सिद्धानि निर्णीतानि समतामविवादं उक्त-प्रकारेण ऋणादिशोधनं वा ।। १७८ ।।

(५) **नन्दनः**। ऋणप्रदानोपसंहारमाह अनेनेति। अनेनोक्तेन प्रत्ययशपथहेतुभिर्वा कार्याणि व्यवहारान्समतान्नयेद्विप्रतिपत्तिरहिताम् ।। १७८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। साक्षिप्रत्ययः शपथः सिद्धानि कार्याणि समतां व्यवहारराहित्यं नयेत्, प्रापयेत् ।। १७८ ।।

(७) **मणिरामः**। समतां नयेत् विप्रतिपत्तिखंडनेन शुद्धं कुर्यात् ।। १७८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अनेनेति**। परस्परं विवदमानयोरर्थिप्रत्ययिनोरनेनोक्तप्रकारेण राजा साक्षिनिर्णीतानि अनुमानशपथादिप्रत्ययनिर्णीतानि कार्याण्यर्थि-प्रत्यर्थिविप्रतिपत्ति रोधेन समीकुर्यात् ।। १७८ ।।

(९) **भारुचिः**। अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम्। साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत्। प्रत्ययसिद्धानि हेतुसिद्धानीत्यर्थः ऋणव्यवहारोपसंहारार्थः श्लोकः ।। १७८ ।।

**कुलजे वृत्तसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ।।**
**महापक्षे धनिन्यायनिक्षेपं निक्षिपेद् बुधः ।। १७९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। प्रख्याताभिजनः **कुलजः**। यस्य पितृपितामहा विद्वांसो धार्मिका महापरिग्रहाः स्वकुलांशनिगृहीता (श्वभवेयुः) । स हि स्वल्पामपि गर्हणां सोढुमसमर्थः। नितरां च निन्दन्ति जनाः। वृत्तशीलमाचारो जनावादभीरुत्वं स्वाभाविकम्। **संपन्नः** तद्युक्तः। **धर्मज्ञस्तु** स्मृतिपुराणेतिहासाभ्यासंजाततदर्थावबोधः। **सत्यवादी** बहुकृत्वः कार्येषु संभाव्यमानो वृत्ताभिधानः। **महापक्षः** सुहृत्स्वजनराजामात्याद्यनुगृहीतमहिमत्त्वेन दुष्टराजाधिकारिणां गम्यो न भवति। **धनी** स्वधनरक्षार्थमदृष्टभयाच्च न परद्रव्यापहरणे वर्तते–'अस्ति मे पर्याप्तं धनं किं परकीयेन, कथंचिज्ज्ञाते दण्ड्यः स्यामिति'। **आर्यो** धर्मा-नुष्ठायी ऋजुप्रकृतिर्वा।

**निक्षेपम्**। निक्षिप्यमाणं सुवर्णादिद्रव्यं कर्मसाधनेन घञोच्यते। **निक्षिपेद्**रक्षार्थं स्थापयेद्**बुधः**। एवं निक्षिपन्प्राज्ञो भवति। अन्यथा मूर्खः संपद्यते।

सुहृद्भूत्वोपदिशति दृष्टम्। नायमदृष्टार्थोऽष्टकादिवदुपदेशः। ईदृशि पुरुषे निक्षि-प्तस्य न विप्रलयो भवति–एवंविधेन निक्षिप्तमनेनेति शङ्का न भवति। यस्तु नग्नकित-वपानशौण्डादिः स केनचिदाकृष्टोऽपि हस्ते मत्पिताऽस्य निक्षिप्तं मया चेति न शङ्कास्पदम्–सुवर्णादेर्महतो धनस्य निक्षेपधारक इति। काकणो मात्रिकेभियुज्यमाने भवत्येव ।। १७९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ऋणादानम् निक्षेपमुपक्रमते कुलजइति। वृत्तमाचारः। महापक्षे बहुबन्धौ। आर्ये उत्तमदेशः ॥ १७९ ॥

---

* (१७९) वृत्तसंपन्ने = वित्तसं ० (च) = वृत्ति ० (ख)

(३) **कुल्लूकः**। सत्कुलप्रसूते सदाचारवति धर्मवेदिनि सत्याभिधायिनि बहुपुत्रादिपरिजने ऋजुप्रकृतौ मनुष्ये व्यभिचाराभावान्निक्षेपं स्थापयेत् ॥ १७९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। निक्षेप इत्युक्तं तद्विषयकमाह अष्टादशभिः तत्रादौ तदुचितस्थलमाह कुलज इति वृत्तसंपन्ने वृत्तं स्वाध्यायाचारादि तद्युक्ते महापक्षे पुत्रपौत्राद्युपेते आर्ये स्वच्छप्रकृतौ धनिनि स्थाप्यधनादधिकधनवति ॥ १७९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। कुलजे महापक्षे मातृपितृभ्यां शुद्धपक्षे एतादृशे निक्षेपं बुधोनिक्षिपेत् स्थापयेत् ॥ १७९ ॥

(७) **मणिरामः**। महापक्षे बहुपुत्रादिपरिजनो। आर्ये ऋजुगतौ एतादृशे मनुष्ये निक्षेपं स्थापयेत् ॥ १७९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **कुलज इति।** महाजने आचारवर्तिनि धर्मज्ञे सत्यवादिनि बहुसुहृत्सुजनके धनवति ऋजुप्रकृतौ मनुष्ये व्यभिचाराऽभावान्निक्षेपं छादयेत् (–स्थापयेत्) इति सुहृदुपदेशोयं दृष्टार्थः ॥ १७९ ॥

(९) **भारुचिः**। निक्षेपविध्यर्थमिदमधुनोच्यते निक्षेपलक्षणविध्यर्थः श्लोकः। कुलजे प्रकृष्टाभिजने वृत्तसम्पन्ने आचारवति प्रकरणादर्थव्यवहारे इतरत्र वा। एवं चार्थव्यवहारे शुचिर्भवति यदि धर्मज्ञतया सत्यवादी भवति तथा च सति वृत्तविशेषणमिदं विज्ञेयम् ॥ १७९ ॥

एवंवृत्तो यदि भवति ततोऽयं निक्षेपयोग्यः सम्पद्यते। महापक्षश्चागम्यश्चादविकादीनां भवति। स्वपक्षरागभयाच्च न विकारं याति। एवं च धनित्वोपदेशो व्याख्येयः। आर्यश्चैवंवृत्तश्शूद्रोऽपि विज्ञेयः। अविक्रियात्मकत्वादिति अन्ये तु द्विजातिमाचक्षते तस्य चादृष्टार्थं ग्रहणमाहुरिति ॥ १७९ ॥

**यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः ॥**
**स तथैव ग्रहीतव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥ १८० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **यथेति**–यादृशेन प्रकारेण समुद्रममुद्रं ससाक्षिकमसाक्षिकमित्येवमादि–**स तथैवेति**। **सोऽर्थो** निक्षिप्तस्तथैव **ग्रहीतव्यः**। **यथा दायो** दीयते निक्षिप्यते तथा गृह्यते। यत्रैतन्निश्चितं भवति सर्वकालमेवास्य हस्ते सोऽमुद्रयित्वा स्थापयति–तत्र विप्रतिपत्तावमुद्रिते लब्धे धारणको यदि ब्रवीति 'नैष मुद्रयति निक्षिप्य मे बलाद् गच्छति' तत्रैवं शङ्कास्पदं जायते। प्रमाणान्तरात्प्रायशो मुद्रणम्। अन्यदा तु मुद्रानाशे कियदपहारितमिति परिमाणविशेषज्ञानाय प्रमाणान्तरं व्यापारणीयम् राज्ञा। अपह्नवादेव सामान्यदण्डेन दण्डनीयः। निक्षेपदण्डस्तु द्रव्यपरिमाणे निश्चिते द्वितीयः।

"ननु च सर्वापह्नव एव विभावितो जित एव युक्तः ॥"

सत्यम् । यत्राविनाभावसिद्धम् । यथा मुषिते ग्रामे देवदत्तोऽभियुज्यते 'त्वयाऽन्यैश्चोरैः सहामुष्मिन्नहनि स ग्रामो हृत' इति–स आह 'नैव तस्मिन्नहनि तं ग्राममहमगमम्'–तत्र साक्षिभिरुक्तं 'दृष्टं तस्मिन्नहनि तत्र यन्मुष्टं तत्तु न दृष्टम्'–तत्र देवदत्तेन मोषोऽप्यपह्नुतस्तदहर्ग्रामसन्निधानसिद्धेः । स्फुटे च कारणान्तरे सन्निधावनुपलभ्यमाने सन्निधानादेशदेशाच्चौरत्वमपि युक्तमनुमातुम् । इह तु प्रमादनष्टानां नराणां मुद्रितनिक्षिप्तमुद्रितमेव नीयते ।

**यथा दायस्तथा ग्रहः ।** को मेऽभियोगावसर इत्यनया बुद्ध्या संभवत्यपह्नवः । न हि शक्नोत्यनुमातुम् । यदापि कथंचिदनुमापयेत्परिमाणं तु न विना प्रमाणान्तरं निक्षिप्तवचनादेव सिध्यतीति युक्तो दिव्यादिना निश्चयः । सर्वथा य एकदेशान्तरेण न संभवति तत्रैवैकदेशपराजित इति निश्चयः ।। १८० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** यथानिक्षिपेत् मुद्रितममुद्रितं ससाक्षिकमसाक्षिकमित्यादि । यथादाय इति पुनरस्यार्थस्य । कथनं लोकसिद्धिहे तुतया ।। १८० ।।

(३) **कुल्लूकः ।** यो मनुष्यो येन प्रकारेण मुद्रारहितं समुद्रंवा ससाक्षिकमसाक्षिकं वायमर्थंसुवर्णादि यस्य हस्ते निक्षिपेत्सोऽर्थस्तेन निक्षेप्ता तथैव ग्राह्योयस्मात् येन प्रकारेण समर्पणंतेनैव प्रकारेण ग्रहणंन्याय्यं समुद्रस्थापितसुवर्णादिनिक्षेप्ता स्वयमेव मुद्रां भित्वा यदा वदति ममेदं तुलयित्वा समर्पयेत्यभिधानं दण्डाद्यर्थम् ।। १८० ।।

(४) **राघवानन्दः ।** तद्ग्रहणोपायमाह यइति । यो निक्षेप्ता यथायेन प्रकारेण मुद्रयः संख्ययावायमर्थेसुवर्णादिस्वरूपं यस्यहस्ते तत्र हेतुः यथादायः यथासमर्पणं तथाग्रहस्तथैव ग्रहणम् ।। १८० ।।

(५) **नन्दनः ।** यथारूपोयोऽर्थः सतथारूपस्य हस्तात्तेन ग्राह्यः तथा हि यथा दाया स्थितस्तथा ग्राह्यः यथा दानं तथा ग्रहणं निक्षिप्तं द्रव्यं अविकृतं दद्यादित्यर्थः ।। १८० ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** यथा दायः अंशः तथा ग्रहः गृहीतुं योग्यो ग्रहः निक्षेपः ।। १८० ।।

यथा निक्षिपेत् येन प्रकारेण मुद्रारहितं समुद्रं वा । यमर्थं सुवर्णा दि ससाक्षिकं ।। १८० ।।

**य इति ।** यो मनुष्यो येन प्रकारेण समुद्रं वा ससाक्षिकमसाक्षिकं वा यदर्थं सुवर्णादिकं यस्य हस्ते निक्षिपेत् सोऽर्थस्तेन निक्षेप्ता तेनैव प्रकारेण गृहीतव्यः यस्माद्येनैव प्रकारेण समर्पणं तेनैव ग्रहणं न्याय्यम् एवं अन्यथाकरणे दण्डयः ।। १८० ।।

यस्मादुभयथा निक्षेपो दृष्टः समुद्रो विमुद्रश्च । असाक्षि (ष्ट ? त) स्सुसाक्षितश्च । सं (ख्य ? ख्या) तोऽसंख्यातश्च तस्मादिदमुच्यते–यथा दायस्तथा ग्रहः (म ? मा) नवग्रहाणाच्चेह विज्ञायते । पूर्वश्लोके आर्यग्रहणं सर्ववर्णार्थम् । न तु द्विजातिविषयः । एवं च सति दानप्रतिदानयोस्तुल्यक्रिययोर्निक्षेपधारकस्याभियोगेन जायते ।। १८० ।।

**यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति ।।**
**स याच्यः प्राड्विवाकेन तन्निक्षेप्तुरसन्निधौ ।। १८१ ।।**

**साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितैः ।।**
**अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्त्वतः ।। १८२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। व्यत्यस्तक्रमोऽयं श्लोकः समाम्नाये पठ्यते। प्रथममस्यार्ध-श्लोकं पठित्वा **साक्ष्यभाव** इति पठितव्यं, ततः **स याच्य** इति। एवं पाठो युक्तः। तथा ह्यर्थसङ्गतिर्भवति।

साक्ष्यभावाद्दिव्येषु प्राप्तेषु वचनमिदम्। यथा चर्णादानादिषु साक्ष्यभावसमनन्तरमेव दिव्यानि दीयन्ते न तद्वदत्र।किं तर्हि चरैरस्य वृत्तमनुचारयेत्। तत्र यदि निपुणतश्चार्य-माणो न क्वचिद्वृत्ते स्खलति तदा न शपथैरर्दनीयः। अथाप्यत्र प्रमाद्यति तदा निक्षेपहरण-संभावनाऽपि युक्तैव। तदाऽयं दिव्यैः परिशोधनीयः। न पुनरेकनिक्षेपहरणेनापरनिक्षेप-हरणं सिध्यति। कदाचिद्गरीयसा प्रयोजनेनैकमपहृत्य कृतप्रयोजन उत्पन्नानुशयो वाऽन्यस्य समर्पयति। अतोयं श्लोकसंघातो झटिति निक्षेपधारणकस्य शपथनिवृत्त्यर्थं न पुनः प्रमा-णोपन्यासः। न च प्राड्विवाकनिक्षेपहरणे राजदण्डवदनिश्चितापरनिक्षेपहरणेऽपि प्रथमा-भियोक्तुर्दापयितुं युक्तः। अनिश्चिते हि हरणे दाप्येत यदि शास्त्रेण तदा निर्णयार्थं व्यवहार-शास्त्रं स्यात्। ततश्च हेतुभिर्निर्णयः कर्तव्य इति विकल्पितः। तस्मान्न शास्त्रीयोऽयमर्थो न च लौकिकी व्यवस्थेति। **साक्ष्यभाव** इत्याद्युक्तेन प्रकारेणान्यपरतया नेया।

पदार्थयोजनामिदानीमनुसरामः। **स याच्यः प्राड्विवाकेन तन्निक्षेप्तुरसंनिधौ**। येन निक्षेप्त्रा रहसि स्थापितम्। साक्षिष्वसत्सु तस्य याचमानस्य धारणको यद्यपह्नुते 'न त्वया किंचिन्निक्षिप्तमिति' ततो निक्षेप्त्रा राजा ज्ञापितो न निक्षेपधारिण आकारं दर्शयेत्। किं तर्हि कुर्यात्। **प्रणिधिभिश्चारैर्हिरण्यमात्मीयं सुवर्णं रूप्यं वाऽन्यस्य संन्यस्य** निक्षिप्य याचित-व्योऽर्थनीयः द्वितीयं निक्षेपं प्राड्विवाकेन। प्राड्विवाकग्रहणं निर्णयाधिकृतपुरुषोपलक्ष-णार्थम्।

किं साक्षादेव याचितव्यो नेत्याह–प्रणिधीनां मुखेन। यैरेव न्यस्तं **वयोरूपसमन्वितैः**। वयसा समन्विता येन बाला न भवन्ति–तेषां हि परैः प्रेरितानां मद्वञ्चनार्थो न्यास इति संभाव्यते। परिणतवयोभ्यस्तु नाशङ्का भवति। एवं रूपसमन्वयो व्याख्येयः। रूपमेव कस्यचित्तादृशं भवति यस्य दर्शनादेव चापलं प्रतिभाति। तथा च रूपमेतद् व्याचष्टे "भगव-न्वीतरागताम्" इति। तेनैतदुक्तं भवति–तादृशाः प्रणिधयः कर्तव्या येषां मद्वञ्चनार्थो-ऽयमुपक्रम इति नाशङ्कते धारणकः।

**अपदेशैः** सव्याजैर्निक्षेपकारणैः राज्ञोपद्रवग्रामगमनादिभिः–'अनेन हेतुना त्वयि संप्रति निक्षिपामी'त्यनृतसंभवात्कारणकथन**मपदेशः**।

एतच्च सर्वं प्राङ् निक्षेप्तुरसंनिधौ कर्तव्यम् ॥ १८१–१८२ ॥

प्राड्विवाकेन ममेदं निक्षेपं न ददातीति निक्षेपज्ञापितेन ॥ १८१ ॥

साक्ष्यभाव इत्युपरिष्टाद्वक्ष्यति तेनास्य सामर्थ्यसम्बन्धो द्रष्टव्यः। साक्ष्यभावे यो निक्षेपं याच्यमानो न प्रयच्छति ततो निक्षेप्ता प्राड्विवाकविज्ञापित...मं कुर्यात्। पूर्वं निक्षिप्तस्य परिमाणवयोरूपसादृश्येन कैश्चिदपदेशैः केनचिद्धिरण्यादि तस्मिन्नेव निक्षेपः पूर्व-निक्षेपधारणं निक्षिपेत्, ततः कस्मिंश्चित् काले गते पूर्वनिक्षेप...रसन्निधौ प्राड्विवाके-नाद्वितीयेन निक्षेप्ता निक्षेपं याचयेत् ॥ १८१–१८२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। न प्रयच्छति प्रथमं लोभात्। निक्षेप्तुरसन्निधौ याच्यः ॥ १८१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यः पुरुषो देहि मे निक्षिप्तं हिरण्यादि द्रव्यमित्येवं निक्षेप्त्रा प्रार्थ्य-मानस्तस्य यदा न सपर्पयति तदा निक्षेप्त्रा ज्ञापितेन प्राड्विवाकेन तस्य निक्षेप्तुरसन्निधौ याचनीयः ॥ १८१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तस्योद्धरणप्रकारमाह यो निक्षेपमिति। स निक्षेपधारी प्राड्विवा-केन राजस्थापितेन पुंसा याच्योऽस्मै तद्देहीति। असंनिधौ स्थलान्तरे ॥ १८१ ॥

(५) **नन्दनः**। असाक्षिकेषु निक्षेपेषु निक्षेपहारित्वेन शङ्कितेन प्रयोक्तव्यविधि-श्लोकद्वयेनाह यो निक्षेपमिति। प्रश्नं विविच्य ब्रुवतीति प्राड्विवाकः प्रधानसभ्यः ॥ १८१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। स प्राड्विवाकेन निक्षेप्तुरसंनिधौ तंनिक्षेपं वाच्यः कथनीयः ॥ १८१ ॥

(८) **गोविन्दराजः। यो निक्षेपमिति**। स इति। तेषातिति। साक्ष्यभाव इति। देहि मे निक्षिप्तं हिरण्यादि इत्येवं यः प्रार्थ्यमानः साक्ष्यभावान्निक्षेप्तुर्न ददाति तस्य निक्षे-प्त्रर्थित्वेन प्राड्विवाकेन तस्मिन्निक्षेप्तर्यसंनिहिते कश्चिच्चारपुरुषैः रुचिरप्रायैः सौम्याकृति-भिर्नृपोपद्रवव्याजाऽभिधायिभिः हिरण्यं तत्त्वेन यथा तस्य शङ्का नोत्पद्यते तथा निक्षेप-यित्वा, ततोऽसौ कालान्तरे प्राड्विवाकेन पूर्वनिक्षेप्तुरसंनिधौ तेन तत्त्वारनिक्षेप्तृ हिरण्यं तैरेव पुरुषैर्देह्यस्मा निक्षेपहिरण्यमित्येवं याचितव्यः। स च निक्षेपधारी यथान्यस्तं समुद्र-ममुद्रं वा यथाकृतञ्च कटसूत्राद्याकारेण यदि तथैव प्रतिपाद्यते समस्तैर्गृहीतं तदिति तदा यत्परैर्निक्षेप्तृभिः प्राड्विवाकवेदिभिः अस्य हस्ते अस्माकं विद्यत इत्याक्षिप्यते तत्तत्र किञ्चि-द्विज्ञेयम्। यदि पुनस्तेषां चारपुरुषाणां तत्क्षिप्तं हिरण्यं यथान्यस्तं न दद्यात्तदा द्वावपि निक्षेपौ ज्ञापकचारसम्बन्धिनावबष्टभ्य दापनीयः स्यादित्येवंरूपो धर्मनिश्चयः। इत्येवमेतद् श्लोकचतुष्टयम् ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। निक्षेपविषयवद् दृष्टप्रमाणाभावात्कृत्स्नस्य निक्षेपानभ्युपगमादाह साक्ष्यभावइति। प्रणिधिभिश्चरैः स्वीयैः वयसा वृद्धत्वादिना रूपेण च पालित्यादिना प्रामाणिकत्वोचितेनान्वितैः। प्राड्विवाकस्तस्य निक्षेपानभ्युपगमेतु निक्षेपान्तरं निदध्यात्। अपदेशैर्नास्य धनस्य रक्षकोस्माकं विद्यत इत्यादि व्याजोक्तिभिः। तत्त्वतो यथा निक्षेपः संपद्यते तथेत्यर्थः॥ १८२॥

(३) **कुल्लूकः**। किंकृत्वा कियाचनीय इत्याह साक्ष्येति। प्रथमनिक्षेपे साक्ष्यभावे स्वकीयसभ्यैश्चारपुरुषैरतिक्रान्तबल्यैः सौम्यादिभिर्नृपोपद्रवादिव्याजाभिधायिभिर्हिरण्यानि तत्त्वेन तत्र निक्षेपयत्वा तैरेव चारपुरुषैः सनिक्षेपधारी प्राडिववाकेन चारपुरुषनिक्षिप्तसुवर्णं याच्यः॥ १८२॥

(४) **राघवानन्दः**। प्राड्विवाकस्यापि प्रार्थनयाऽलब्धेऽप्युपायान्तरमाह साक्ष्यभाव इति द्वाभ्याम्। प्रणिधिभिश्चरैःवयोरूपसमन्वितैः अतिक्रान्तशैशवसौम्याकृतिनिक्षेपधारिसमानवयःप्रभृतिभिः तेषु हि सत्यादिवशादतिगोप्यमपि प्रकाश्यत इति। अपदेशैः राजा मां हनिष्यति दण्डयिष्यतीत्यादिराजोपद्रवव्याजाभिधायिभिः। तत्त्वतो वस्तुतो हिरण्यं सन्यस्य निक्षेपयित्वा॥ १८२॥

(५) **नन्दनः**। वयोरूपसमन्वितैः पूर्वनिक्षेप्तुर्वयोरूपसदृशैः प्रणिधिभिः करणैस्तत्कालोचितसंबन्धो वयोरूपसादृश्योपहेत्वन्तरेण निक्षेपप्रतिपादनशङ्कापरिहारार्थः। अपदेशोनिक्षेपनिधानार्थानुज्ञानार्थः। हिरण्यग्रहणं पूर्वानिक्षिप्तसजातीयद्रव्योपलक्षणार्थम्॥ १८२॥

(६) **रामचन्द्रः**। साक्ष्यभावे प्रणिधिभिः चारैः अपदेशैः व्याजैः संन्यस्य निक्षिप्य तत्त्वतः॥ १८२॥

(७) **मणिरामः**। किं कृत्वा किं याचनीय इत्याह साक्ष्येति॥ प्रणिधिभिः चारैः वयोरूप समन्वितैः अति क्रांतवाल्यैः शुभदर्शनैःअपदेशैः नृपोपद्रवादिव्याजैः। प्रर्थमनिक्षेपे साक्ष्यभावे सति चारादिभिरसाक्षिकमन्यद्धिरण्यं राजोपद्रवादिमिषेण तत्वतः स्थापयित्वा याच्यः॥ १८२॥

(९) **भारुचिः**। पूर्वोणास्य सम्बन्धः। तथा चोक्तं–'यो निक्षेपं याच्यमान' इत्येवमादिः॥ १८२॥

**स यदि प्रतिपद्येत यथान्यस्तं यथाकृतम्॥**
**न तत्र विद्यते किंचिद्यत्परैरभियुज्यते॥ १८३॥**

(१) **मेधातिथिः**। **स यदि**। निक्षेपधारी यदि **प्रतिपद्येत**–वाढमस्ति गृहाणेत्यंगीकृत्य दद्यात्। **यथान्यस्तं** तथा कृतं समुद्रं अमुद्रं–**यथाकृतं** वस्त्रादि संवर्तितममुद्रितमन्यद्वा अलंकाराद्यनुपभुक्तं परिमलशून्यं गृहमुद्रया स्वचिह्नेन स्थापितम्–तादृशमेव चेद्दद्यान्न **तत्र विद्यते** किंचिदसत्यं **यत्परैः** पूर्ववेदिकैरभियुज्येत–एतेनास्माकीनः साक्ष्यभावान्निक्षेपोऽपह्नूयत इति। **यथान्यस्तं यथाकृतमिति** गूढागूढचिह्नकृतेन भेदः। अथवा ग्रहीतृनिक्षेप्तृव्यापारभेदेन भेदः। **यथाकृतं** यथागृहीतम्–निर्विकल्पमविलम्बं च गृहीतं तथैव प्रतिदातव्यं प्रतिदाने यत्र कालग्रहणं न क्रियत इत्यर्थः॥ १८३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यदि त्वया ततोपहृतं तद्गतमेव धनं त्वयास्माभिश्च ग्राह्यमित्युक्तः सयदि प्रतिपद्येत संमतःस्यात्। यथा मुद्रादिना न्यस्तं तथाकृतं कण्टकादि। निक्षेप्त्रोक्तं न तत्र विद्यत इति यदि तस्मिन्प्रत्यर्पितेपि परो ममैतन्यूनमित्यभियुङ्क्ते तदभियोगादिकं तत्र न विद्यते तावतैवतच्छोधनमुक्तं मुद्रादेर्भावात्। नतु दण्डो नास्ति सापराधत्वात्। ॥ १८३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। स निक्षेपधारी यथान्यस्तं समुद्रं वा यथाकृतं कटकमुकुटाद्याकारेण रचितं यदि तथैव प्रतिपद्येत सत्यमस्ति गृह्यतामिति तदा परेण पूर्वनिक्षेप्त्रा प्राड्विवाकवेदिना यन्निक्षिप्तमित्यभियुज्यते तत्र न किंचिदस्तीति ज्ञातव्यम्॥ १८३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पश्चात्स याच्यमानः निक्षेपधारी यथान्यस्तं समुद्रमसमुद्रं वा यथाकृतं यथाकारं कटकादिरूपं तद्भिन्नंवा प्रतिपद्यते दातुं मन्यते यदि तदा परैः पूर्वनिक्षेप्तृभिः तदभियुज्यते तत्र भवतीतिज्ञातव्यम्॥ १८३ ॥

(५) **नन्दनः**। सनिक्षेपहारित्वेन शङ्कितः। परैः पूर्वनिक्षेप्तृभिः॥ १८३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। सपुरषः यत्र स्थापितः यदि प्रतिपद्येत अङ्गीकुर्यात् यथान्यस्तं तथा कृतंतत्रकिंचिन्नविद्यतेयत् अन्यैर्निक्षिपेत् परैरभियुज्यते आरोप्यते॥ १८३ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रतिपद्येत सत्यंमन्निकटे वर्तते। गृह्यतामिति दद्यात्। तदापरैः न अभियुज्यतेपरेण पूर्वनिक्षेप्ता न विवादयोग्यो भवति तत्र न किंचिदस्तीति ज्ञातव्यं ॥ १८३ ॥

(९) **भारुचिः**। यदि तं द्वितीयं निक्षेपं यथा ... किञ्चिदस्ति (यः ? यत्) परैरभियुज्यते॥ उभौनिगृह्य दाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा। अथ प्राड्विवाकविज्ञातं पश्चान्नियो...त्तं दद्यात्। तत उभयं निगृह्य पूर्वं द्वितीयं च दाप्यः॥ १८३ ॥

**तेषां न दद्याद्यदि तु तद्धिरण्यं यथाविधि ॥**
**स निगृह्योभयं दाप्य इति धर्मस्य धारणा ॥ १८४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। तेषां प्राड्विवाकप्रयुक्तनिक्षेप्तृणां यदि द्रव्यं निक्षिप्तं **न दद्यात्**। यथाविधीति **यथाकृत**पदेन व्याख्यातम्। स धारणकोऽवष्टभ्य राजपुरुषैरुभयमर्थिनो राजनिक्षेपं च दाप्यः। **इति धर्मस्य धारणा** व्यवस्था। तात्पर्यमत्र व्याख्यातम्॥ १८४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तेषां प्रणिधीनां अर्थनानन्तरं यदि न दद्यात्तद्धिरण्यं तदोभयंनिक्षेपद्वयं संनिगृह्य गृहीत्वा दाप्यो दण्डमित्यर्थः। यदितु प्रणिधिदत्तं प्रत्यर्पयेत्तदा निश्चयानुत्पत्तेर्दिव्या क्रियेत्यर्थात्सिद्धम्॥ १८४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तेषां चारपुरुषाणां यन्निक्षिप्तं हरिण्यं यथान्यस्तं यदि तन्नदद्यात्तदा द्वावपि निक्षेपौ ज्ञापकचारसंबधिनौसंपीडय दापनीयः स्यादित्येवंरूपो धर्मस्य धारणा निश्चयः। योनिक्षेपमित्यादिश्लोकचतुष्टयस्य चेदृशएव पाठक्रमोमेधातिथिभोजदेवादिभिर्निश्चितः

गोविन्दराजेन तु साक्ष्यभावे प्रणिधिभिरिति श्लोकोऽन्तएव पठितः तदा च नार्थसङ्गतिः न वा वृद्धाम्नायादरः ।। १८४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अपदेशैःस्थापितस्यापह्नवे दण्डमाह तेषामिति। तेषां प्रणिधीनां यथाविधि यथास्वरूपं यथास्थापितं चनदद्यात्तदोभौनिक्षेपौ निक्षेपधारी दाप्यः ।। १८४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। तेषां निक्षेप्तृणां यद्धिरण्यं तद्यथाविधि न दद्यात्तदा उभौ निक्षेप्तृनिक्षेप्तारौ निगह्य दाप्य इति धर्मस्य धारणा मर्यादा ।। १८४ ।।

(७) **मणिरामः**। तेषां चारपुरुषाणां निक्षिप्तं यदि न ददाति तदा उभौ निक्षेपौ निगृह्य पीडयित्वा दाप्यः ।। १८४ ।।

**निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे ।।**
**नश्यतो विनिपाते तावनिपाते त्वनाशिनौ ।। १८५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। उत्पत्यनन्तर उच्यते निक्षेप्तुःपुत्रो भ्राता भार्या वा यस्य निक्षेप्तुर्द्रव्ये स्वाम्यमस्ति–भार्यायास्तावत्स्वाम्यं युक्तमेव–पुत्रस्यापि पैतामहे भ्रातुशुल्कैकधनस्य। तत्र तेषां कश्चिद्याचते क्षेप्तर्यसंनिहिते 'देहि नोऽस्माकीनमेतदिति'। तत्र कश्चिदनया बुद्धया दद्यात् 'साधारणमेतदेकेन निक्षिप्तमपरेण नीतिमिति को दोष इति'। अत उच्यते **न देयौ निक्षेपोपनिधी प्रत्यनन्तरे।**

अत्रैवार्थवादं हेतुसरूपमाह। **नश्यतो विनिपाते तौ। विनिपातोऽन्यथात्वं**–प्रत्यनन्तरस्य देशान्तरे गमनादि–तस्मिन् सति तौ हीयेते। यदि तेन नीत्वा निक्षेप्तुर्न दत्तं तदा तेन पर्यनुयुक्तस्य धारणकस्य किमुत्तरम्? 'त्वदीयेन भ्रात्रैतद्धनं साधारणस्वामिना नीतमिति' नैतदुत्तरम्। "यथा दायस्तथा ग्रह" इत्युक्तम्–येनैव निक्षिप्तं स्वामिनाऽस्वामिना वा तस्मा एव देयम्–तस्यैवायं प्रपञ्चः।

यदि तु प्रत्यनन्तरो विक्रियां न गच्छेत्तदा तद्दानेऽपि न दोषः। तदाह **अनिपाते त्वनाशिनौ।** तत्र ह्यस्तुत्तरं माऽनशत्तस्मादर्पयामि।

प्रत्यनन्तरेण नीते विनिपाते च तस्य निक्षेप्त्रे याचमानाय स्वधनं दातव्यमिति श्लोकार्थः ।। १८५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उपनिधिर्भाण्डादिस्थःसमुद्रः। निक्षिप्तो निक्षेपस्त्वमुद्रः। उपनिधिपदं चायाचिताद्युपलक्षणम्। प्रत्यनन्तरे देशान्तरादिगते निक्षेप्तरि तत्पुत्रादौ। नश्यतः पुनर्देयौ भवतः। विनिपाते तस्य पुत्रादेर्मरणादिना निक्षेप्तुर्निक्षिप्तधनाप्राप्तौ। अनिपाते तत्प्राप्तौ अनाशिनौ प्रत्यर्पणीयौकेवलंत्वत्पुत्रे दत्तमिति विभाव्यमेव ।। १८५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। निक्षिप्यत इति निक्षेपः मुद्राङ्कितमगणितंवा यन्निधीयते स उपनिधिः ब्राह्मणपरिव्राजकवदुपदेशभेदः तौ निक्षेपोपनिधी निक्षेप्तर्युपनिधातरि जीवति प्रत्यनन्तरे तदीयपुत्रादौ तदनन्तरे तद्धनाधिकारिणि कदाचिन्न निक्षेपधारिणा देयौ यतस्तस्य पुत्रादेरपि

यदि न निवर्तेत–'महाधनोऽसावभूवन्न चान्येन समं प्रयुज्यते'–प्रमाणान्तरं निश्चयाय विचारणीयम्, विषाग्न्यादिभिः शपथैर्नार्दनीयः। घटकोशसत्यतण्डुलास्तु न विरुध्यन्ते। न हि ते अति क्लेशकराः। साक्ष्यभाव इत्यत्र द्वितीयो न्यासः। यश्च तयोर्न्यासः स इहापि द्रष्टव्यः ॥ १८६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। मृते तु दातर्याह स्वयमिति। असाक्षिकं निक्षेपं पुत्रादिभिरज्ञातं यःस्वयं पुत्रादौ दद्यान्नासौ राज्ञा पुत्रादिना वा न्यूनत्वादिशङ्क्याऽभियोज्यः। न्यूनत्वादिनिश्चये त्वभियोज्य एव ॥ १८६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। निक्षेप्तुर्मृतस्य निक्षेपधारी तद्धनाधिकारिणि पुत्रादौ तदनभ्यर्थितः स्वयमेव यः समर्पयति स राज्ञा निक्षेप्तुः पुत्रादिभिर्वान्यदपि त्वयि निक्षिप्तमस्तीति नाक्षेप्तव्यः ॥ १८६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अतएवाह स्वयमिति। स्वयमेव दद्याच्चेत्ततोऽन्यदस्तीति नाभियोक्तव्यः बन्धुभिश्च ॥ १८६ ॥

(५) **नन्दनः**। नाभियोक्तव्यः निक्षिप्तद्रव्यपरिमाणं न प्रष्टव्यम् ॥ १८६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। राज्ञा स न नियोक्तव्यः अधिकं नारोपणीयः। निक्षेप्तुः स्वबन्धुभिः नाभियोक्तव्यः ॥ १८६ ॥

(७) **मणिरामः**। मृतस्य निक्षेप्तु ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **स्वयमिति**। निक्षेप्तुः मृतस्य योऽज्ञातं निक्षिप्तं स्वयमेव तद्धनार्हे पुत्रादौ दद्यात्, न राज्ञा निक्षेप्तुः पुत्रादिभिर्बंधुभिः (न) नियोक्तव्यः ॥ १८६ ॥

(९) **भारुचिः**। अविदितनिक्षेपे स्वयं प्रयच्छतो नास्याभियोगः। अथ तूद्भावकः कश्चिदलार्थं दर्शयेदधिकं ततः।

**अच्छलेनैव चान्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम् ॥**
**विचार्य तस्य वा वृत्तं साम्नैव परिसाधयेत् ॥ १८७ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यदाच निक्षेपस्तत्र संभावितो नच स्वयं तेन दत्तस्तदाह अच्छलेनेति। तदीयप्रतिपन्नद्रव्यादेश्छद्मादिना ग्रहणेन तदुद्धारार्थं न यतितव्यम्। प्रीतिपूर्वकं मल्यादिकरणपूर्वकं अन्विच्छेदनुसंदध्यात्। तथा तस्य वृत्तं चेष्टितं निक्षेपहरणानुरूपं-अतिव्ययाद्यपि तद्ग्रणनियतं विचार्य तमेव साम्ना याचेत। दण्डादिना तु साधने कथंचिन्मिथ्याभियोगे दण्डापातः ॥ १८७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यदि कथंचिद्भ्रान्तिः स्यात्तदा अच्छलेनैवेति। तत्रस्थे घनान्तर सद्भावलक्षणे वा छलादिपरिहारेणैव प्रीतिपूर्वकंनिश्चिनुयात् न तु झटिति दिव्यादिदानेन तस्यनिक्षेपधारिणः शीलमवेक्ष्य धार्मिकोयमिति ज्ञात्वा सामप्रयोगेण निश्चिनुयात् ॥ १८७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। निक्षेप्तुर्निक्षेपग्रहणे नियममाह अच्छलेनेति। अच्छलेन ऋजुमार्गेण तमर्थं स्थापितमर्थम् साम्ना स्वयमेव राजतः परिसाधने ग्रहणे अन्यथाधारिणःस्वतो लाभाद्यभावात्कोपि निक्षेपधारी न स्यादिति भावः ।। १८७ ।।

(५) **नन्दनः**। निक्षेपप्रत्यादानविधिमाह अच्छलेनेति तमर्थनिक्षेपं प्रीतिपूर्वकंसौमनस्यपूर्वकम्। तस्य निक्षेपहर्तुः वृत्तं शुभमशुभंवेति विचार्य साम्ना प्रियभाषणेन ।। १८७ ।।

(६) **रामचन्द्रः** तमर्थं प्रीतिपूर्वकमच्छलेनान्विच्छेत्। तस्य वृत्तं अतिव्ययादिकं विचार्य साम्नैव ।। १८७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। अथस्य् तस्योपरि किञ्चिद्भ्रान्तिःस्यात्तदा **अच्छलेनेति**। विचार्य तस्य वा देयं साम्नैव परितोषयन्। तद्वस्तु धनान्तरसद्भावलक्षणवाक्छलादिपरिहारेणैव प्रीतिपूर्वेण वक्रगतिदिव्यादिदानेन निश्चिनुयात् तस्य वा निक्षेपधारिणः शीलमवेक्ष्य धार्मिकोऽयमिति ज्ञात्वा सामादिप्रयोगेणैव प्रतिनिश्चिनुयात् तद्दण्डादिना दिव्यैर्वा ।। १८७ ।।

(९) **भारुचिः**। अविदितं स्वयं प्रयच्छतो यदि तद्गतः कश्चित् कर्णेजपासंशयः स्यात् ततः अच्छलेनैव तस्य वृत्तिं विचार्य तदधिगमो विज्ञेयः निक्षेपधारिणा परिज्ञायते तदीयं रूपतः परिव्यंद्र माणतश्च समुद्र एव निक्षेपो धारयितव्यः। न च समुद्रो निक्षेपः प्रत्यर्पित इत्येतावता निक्षेपधा(दि ? रिण) मुच्यते यदि तस्मान्न किञ्चित् संहरति प्रमुद्राकरणेना स्रावणादिना वान्योपायेन अपरे(वा ? ऽपि) वर्णयन्ति। समुद्रयानारूढानां निक्षेपधा(रि ? री)यान व्यापत्तौ सति यदि किञ्चिदात्मीयं न संहरत्यर्थं ततो नाभियोज्यो भवति निक्षेप्तुः। एतदुक्तं भवति–परित्यज्यात्मीयं निक्षेपरक्षणे यत्नःकराणीय (मि ? इ)ति ।। १८७ ।।

**निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परिसाधनें ।।**
**समुद्रे नाप्नुयात्किंचिद्यदि तस्मान्न संहरेत् ।। १८८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **निक्षेपेषूपचयमानेष्वनन्तरोक्तो विधिः** 'साक्ष्यभाव' इत्यादिः परिसाधनार्थो विज्ञेयः। **समुद्रे** निक्षेपेऽन्यदप्यस्मिन्भांडे द्रव्यमभून्नाशितं कृमिभिरित्यादिकं पर्यनुयोगं नाप्नुयान्निक्षेपधारी तत्र धारणकस्य। एवं मूषकादिनाशे द्रव्टव्यम्। यदि दारुमये भाण्डे वस्त्रादि स्थापितं तीक्ष्णदशनैर्मूषकैर्दारु भित्वा भक्ष्येत न निक्षेपधारिणो दोषः। तत्रापि वासनपरिवेष्टितः स्थूलपोट्टलको मुद्रितो यदि निक्षिप्येत यत्तदीये दारुभाण्डे नैव माति तदा बहिर्मूषकादिभक्षितेऽपि हि न दोषः। यदि चैतन्निक्षेप्तुर्ज्ञानं भवति धारकेण परिभाषितं न मम भाण्डमन्यदस्ति, चरित्रज्ञो वाऽस्य निक्षेप्ता कदाचित्प्रत्यासन्नो भवति ।। १८८ ।।

(२) **सर्वज्ञानारायणः**। निक्षेपेषु निक्षिप्तेषु याचितान्वाहितनिक्षेपादिषु। समुद्रे मुद्रासहिते प्रत्यर्पिते नाप्नुयात् किंचिदपहरणशङ्कादि। तथा अमुद्रेपि यदि तस्मार्त्किंचित्

नसंहरेत् नसंगृह्णीयात् ग्रहणव्यभिचारिभाण्डफलत्वादि न कुर्यात् ।। १८८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। सर्वेषु निक्षेपेष्वपक्रियमाणेष्वेषसाक्ष्यभावेत्यादि पूर्वोक्तविधिनिर्णयसिद्धौ स्यात्। मुद्रितादौ पुनस्तस्य निक्षेपधारी यदि प्रतिमुद्रादिना न किमप्यपहरेत्तदा तस्मिन्नपि तेन किंदूषणं प्राप्नुयात् ।। १८८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। उपसंहारव्याजेनावशिष्टं ज्ञापयति निक्षेपेति। विधिः सामान्यव्याजरूपः। समुद्रेप्रतिमुद्रादिधारी ततः स्थापितधनात्किंचिन्नाहरेत्तदा नदोषमवाप्नुयादितिभावः ।। १८८ ।।

(५) **नन्दनः**। सर्वेषु नीचादिविषयेष्वपि एषः पूर्वोक्तः ।। १८८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। एषु सर्वेषु निक्षेपेषु समुद्रे मुद्रासहिते किंचिन् अपहारणशङ्कादि नाप्नुयात् ।। १८८ ।।

(७) **मणिरामः**। समुद्रे निक्षेपे। यदि मुद्रा न नश्यति तदा संदेहेपि निक्षेप्ता नान्यत्किंचित्प्राप्नुयात्। मुद्रानाशेतुयद्वदति तद्दापनीयमित्यर्थः ।। १८८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **निक्षेपेष्विति**। सर्वेषु निक्षेपेषु प्रत्यायने साक्ष्यभाव इत्यादिविधिः स्यात् मुद्रिते पुनः प्रत्यर्थिते निक्षेपधारी न किञ्चिद्दोषजातं प्राप्नुयाद्यदि तस्मादधः श्रवणप्रतिमुद्रादिना न किञ्चिदपहरेत् ।। १८८ ।।

**चौरैर्हृतं जलेनोढमग्निना दग्धमेव वा ।।**
**न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरति किंचन ।।१८९।।**

(१) **मेधातिथिः**। **चौरास्तु** वेदिता अवेदिता वा सुरङ्गभिदादिना यदि मुष्णीयुः कृतरक्षासंविधाने धारणिके स्वामिन एव नाशः। **जलेनोढमुदकेन** देशान्तरं नीतम् ।। १८९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। चोरैरित्यादिराजदैवोपघातोपलक्षणम्। किंचन अल्पमपियद्यसौ नसंहरति नगृह्णाति। एतेनाल्पस्यापिहरणे निक्षेपो दैवादिनृष्टोपि देयइत्युक्तम्। अत्रच यथाशक्तिरक्षणे क्रियमाणे दोषाभावउक्तो नत्वक्रियमाणेपीत्यर्थसिद्धत्वान्नोक्तम् ।। १८९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। चौरैर्मुषितं उदकेनदेशान्तरंप्रापितं अग्निना वा दग्धं निक्षेपंनिक्षेपधारी न दद्यात्। यदि स्वयं तस्मान्नकिंचिदप्यपहरति ।। १८९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। एवं चौरैरिति जलेनोढम् जलौघादिना स्थानान्तरंप्रापितम्। सनिक्षेपधारी नदद्यादेव ।। १८९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। चोरैः हृतं जलेन ऊढं प्रवाहितं देशान्तरं प्रापितं अग्निना दग्धं नदद्यात् यदि तस्माद् द्रव्यात् किंचिन्न संहरति न गृह्णाति। गृह्णाति चेत्तर्हि दद्यात् ।। १८९ ।।

(७) **मणिरामः**। जलेनोढं उदकेन देशांतरं प्रापितं ।। १८९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **चौरैरिति**। चौरैर्मुषितं उदकेन देशान्तरं प्रापितं अग्निना च दग्धं निक्षेपधारी न दद्यात्। यदि तत्त्वतो निक्षेपात्किञ्चिन्नापहरति ॥ १८९ ॥

(९) **भारुचिः**। चोरादिभ्योऽपि नाशेऽयमेव समुद्र(या ? यान) विधिर्वर्णयितव्यः। एवं च सति चोरादिविधिदैवसमुदयानविधिर्व्याख्यात इति। यतः पूर्व एव श्लोकार्थो ज्यायान् ॥ १८९ ॥

**निक्षेपस्यापहर्त्तारमनिक्षेप्तारमेव च ॥**
**सर्वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः ॥ १९० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। हरति यो निक्षिप्तमसाक्षिकं योऽप्यपनीय नीत्वा वा याचते **तमन्विच्छेत्**। 'अन्वेषणा' तत्त्वपरिज्ञाने यत्नः सर्वप्रमाणव्यापारेण। **उपायाः** प्रमाणानि सामादयो वा। तेन चलितवृत्तस्याप्रतिपाद्यमानस्य ताडनबन्धनाद्यपि महति धने चौरवत्तत्त्वप्रतिपत्त्यर्थे प्रयोज्यम्। न तत्त्वानिश्चये निग्रहः। **वैदिक**ग्रहणं स्तुत्यर्थम् ॥ १९० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनिक्षेप्तारमनिक्षिप्य याचमानम्। उपायैश्चरादिभिः। अन्विच्छेत् जिज्ञासेत्। वैदिकैः वेदोक्तैरग्न्यादिभिः। श्रुतौहि सोनृतेनात्मानमबुद्ध्वा यस्तप्तं परशुं गृह्णाति स दह्यतइत्यादावग्नीनां तत्वप्राप्त्युपायता गम्यते ॥ १९० ॥

(३) **कुल्लूकः**। निक्षेपस्यापह्नोतारमनिक्षिप्य याचितारं सर्वैः सामादिभिःउपायैर्वैदिकैश्च शपथैरग्निहरणादिभिर्नृपो निरूपयेत् ॥ १९० ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच असाक्षिके निक्षेपे तयोरपि शपथपर्यन्तं व्यापारमाह निक्षेपस्येति। अनिक्षेप्तारमनिक्षिप्यैव निक्षेप्तास्मितियोब्रूयात्तम्। सर्वैः सामभेददानदण्डैः। तत्र साम तस्मिन् तत्स्त्रीपुत्रादिषुवा धर्मोपदेशपुरःसरं स्तुत्युक्तिः। भेदः त्वय्येवास्य निक्षेपो निक्षिप्तोस्तीति अन्यैरपि ज्ञायते कथं न दीयते दानं तदर्धं दातव्यमित्यादि। स्यादिति यद्यप्येवंसंभाषणीयं। दण्डः एतद्धनं चेन्नदीयते तदातवच्छेदं विधास्यामि। शपथैरुक्तरूपैश्चान्विच्छेदित्यन्वयः ॥ १९० ॥

(५) **नन्दनः**। अनिक्षेप्तारं अनिक्षिप्तयाचितारम्। सर्वैरुक्तादन्यैः ॥ १९० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। उपायैः सर्वैः अन्विच्छेत् परीप्सेत् ॥ १९० ॥

(७) **मणिरामः**। अनिक्षेप्तारं अनिक्षिप्य याचितारं ॥ १९० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **निक्षेपस्येति**। निक्षेपस्यापहर्तारं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः सर्वैरुपायैः सामादिभिर्वैदिकैश्च शपथैरग्निहरणादिभिः राजा निश्चिनुयात्। अनिक्षेप्तारमिति ब्रुवन् नियोक्तुरपि इति ज्ञापयति ॥ १९० ॥

(९) **भारुचिः**। यस्त्वपदेशाद्विना निक्षिप्तं याच्यमानो निक्षेप्त्रे न दद्यात्। असाक्षिके निक्षेप एतदुच्यते। निक्षेप्ता वा गृहीत्वा पुनर्याचिते अदत्वा वा स राज्ञा प्राड्विवाकेन वा

सामादिभिः सर्वोपायैरन्वेष्यः। तदसम्भवे तु शपथैश्चैव वैदिकैः अग्निहराणादिभिः। च शब्दाल्लौकिका अपि कोशपानादयोऽत्रानुरुध्यन्ते। कार्यासामान्याच्च निक्षेपविधेरन्यत्राप्येषामप्रतिषेधः ॥ १९० ॥

**यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते ॥**
**तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम् ॥ १९१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। निक्षिप्तमपह्नुवानस्य अनिक्षिप्तं याचमानस्य च दण्डोऽयम्। यावति धने मिथ्या प्रवर्तते तावद्दण्डचते ॥ १९१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। चौरवच्छास्यौ साङ्गच्छेदादिना रत्नाद्यपहारे अल्पे तु दाप्यौ चेति ॥ १९१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। निक्षिप्तधनं यो न समर्पयति यश्चानिक्षिप्तं प्रार्थयति तौ द्वौ सुवर्णमुक्तादौ महति विषये चौरवद्दण्डचौ। स्वल्पविषये ताम्रादौ तत्समं दण्डनीयौ ॥ १९१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। मिथ्यात्वेनिर्णीते तयोदर्ण्डमाह इति। विप्रादन्यौ] चेच्चोरवत्कायेन दण्डोपि, विप्रौ चेद्दाप्यावेव तत्समं यावति निक्षेपधने विवादस्तत्तुल्यम् ॥ १९१ ॥

(५) **नन्दनः**। दाप्यौ दण्डचौ ॥ १९१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यो निक्षेपं न अर्पयति न ददाति यश्चानिक्षिप्य याचते तौ चौरवच्छास्यौ तत्समं दाप्यौ दण्डनीयौ ॥ १९१ ॥

(७) **मणिरामः**। दमं दण्डं ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **निक्षेपमिति**। यो निक्षेपं न त्यजति यश्चानिक्षिप्यैवार्थयते तौ द्वौ महत्यपराधे कृतापराधे चौरवदुत्तमसाहसादिकं दण्डचौ। स्वल्पे वा तस्य निक्षेपस्य समं दण्डचौ ॥ १९१ ॥

**निक्षेपस्यापहर्त्तारं तत्समं दापयेद्दमम् ॥**
**तथोपनिधिहर्त्तारमविशेषेण पार्थिवः ॥ १९२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। चोरवच्छिष्टिः पूर्वेणोक्ता। तया च शरीरनिग्रहस्तत्समधनं वैकल्पिके। जातिभेदेन ब्राह्मणादन्यत्र प्रदेश उक्तः। अनेन निवर्त्यते पुनर्विधानेन चोरवच्छिष्टिः। वाग्दण्डधिग्दण्डादिरूपैव समुच्चीयते धनदण्डेन नाङ्गच्छेदादिरूपा। न च ब्राह्मणस्यापि वैकल्पिके पूर्वेण शरीरदण्डे प्राप्ते तन्निवृत्त्यर्थं पुनर्वचनं युक्तम्, सामान्येन ब्राह्मणस्य शरीरदण्डप्रतिषेधात् "न जातु ब्राह्मणं हन्यात्" इति (३८१)।

**उपनिधिः**। प्रीत्या यद्भुज्यते। **अविशेषेण**—द्रव्यं जातिं च नापेक्षेत।

अन्यैस्तूपनिधिः परिभाषितः। स तत्रैव नेह। परिभाषाया अकरणाल्लौकिकार्थ एव

ग्रहीतुं न्याय्यः। वक्ष्यति च "प्रीत्योपनिहितस्य च" इति (१९६) ॥ १९२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्रच वर्णविशेषेण दण्डविशेषशङ्कां निवारयति निक्षेपस्येति। उपनिधिपदं पूर्ववदुपलक्षणम्। अविशेषेण वर्णविशेषेण ॥ १९२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। निक्षेपापहारिणंनिक्षिप्तसमधनंदण्डयेत्। समशिष्टत्वादनिक्षिप्य याचितारमपि। नच पुनरुक्तिः महत्यपराधे ब्राह्मणेतरस्य चौरवदिति पूर्वश्लोकेन शारीरदण्डस्यापि प्राप्तौ तन्निवृत्त्यर्थमिदम्। दापयेदिति धनदण्डनियमात्। नचानेन पूर्वश्लोकवैयर्थ्यम्। अस्य प्रथमापराधविषयत्वापूर्वोक्तं चाभ्यासे चौरोक्तमहासाहसादिधनदण्डावरोधकत्वात्। उपनिधिर्मुद्रादिचिन्हितनिहितधनम्। तस्यापहर्त्तारं कथितविशेषणं राजा दण्डयेत् ॥ १९२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। निक्षेपहर्तुर्दण्डं दृष्टान्तीकृत्योपनिधिहर्तुस्तमाह निक्षेपस्येति। तत्समं निक्षेपधनसमम् ॥ १९२ ॥

(५) **नन्दनः**। अविशेषेण वर्णविभागेन ॥ १९२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तथा उपनिधिहर्तारं उपनिधिपदेन अन्वाहितयाचिते विवक्षिते ॥ १९२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **निक्षेपस्येति**। निक्षेपापहारिणं तत्समं दण्डयेदिति पूर्वसिद्धस्य पुनर्वचनं प्रथमाऽपराधे महत्यपि पुनश्चौरवदित्येवमर्थम्। ये तु ब्राह्मणस्याङ्गविच्छेदादि चौरदण्डनिवृत्त्यर्थं इदं पुनर्वचनमित्यादि तदसत्। न जातु ब्राह्मणं हन्यादित्यादेर्वक्ष्यमाणत्वात्तथा प्रीतिभोग्यद्रव्यापहारिणमविशेषेण जातिमात्रविशेषेण तत्सर्वमेव दापयेत् ॥ १९२ ॥

(९) **भारुचिः**। धनदापनस्य– तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः। औपरिष्टश्लोकार्थस्योपनिध्यर्थ आरम्भः। चेरवच्छिष्टिरधिकारादुपनिधावपि स्यात्। ब्राह्मणवर्जम्। यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते। तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम्। पूर्वव्यतिक्रमकारिणो दण्डचार्थोऽयमारम्भः विकल्पेन तथा ब्राह्मणं तु ॥ १९२ ॥

**उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः।**
**ससहायः स हन्तव्यः प्रकाशं विविधैर्वधैः ॥ १९३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **उपधा** व्याजः छद्मेत्यनर्थान्तरम्। ताश्चानेकविधाः। द्रव्यपरिवर्तः–कुङ्कुमं दर्शयित्वा कुंसुंभादिदानं–तुलादिमानापचय इत्याद्याः। तत्र चान्यं विधिं वक्ष्यति "नान्यदन्येन संसृष्टम्" इत्यादि (२०३)। इह तु विन्नासनं राजत उपकारदर्शनं कन्यानुरागकथनमित्येवमाद्या गृह्यन्ते। चौरास्त्वां मुष्णन्ति यद्यहं त्वां न रक्षामि–राजा तवात्यन्तं कुपितो मया तु बहु समाहितं–राजतस्ते नगराधिकारं दापयामि मुख्यं वोपकारं करोमि–पुष्पमित्रदुहिता त्वय्यत्यन्तमनुरागिणी मद्धस्त इदमुपायनं प्रेषितवती–इत्येवमाद्यनृतमुक्त्वाऽऽत्मीयमुपायनमासज्य बहु प्रतिनयन्ति–तत्समक्षं च राजनि तत्समं वा कार्यान्तर-

मुपांशु निवेद्य कथयन्ति–त्वदीयं कार्यमुपक्रान्तम्–इत्येवमाद्याभिरुपधाभिः परद्रव्यं च भुञ्जते। तेषामयं राजमार्गे प्रकाशं विविधः कुठारशूलरोपणहस्तिपादमर्दनायनेत्रोपायसाध्यो वध उच्यते।

अन्ये तु प्रकरणान्निक्षेपविषयमेवेदमाहुः। तव हि प्रतिपद्यन्ते मया निहितं न च न सन्निहितः श्वःपरश्व आगच्छतीत्यसमर्पयन्हरतीति ॥ १९३ ॥

(२) सर्वज्ञनारायणः। अतिप्रसिद्धनिक्षेपाच्छलेनापहारमाह उपधाभिरिति। न निक्षिप्तत्वादिछलोक्तया निक्षेपादिपरद्रव्ययंहरेत्। प्रकाशं लोकसाक्षिकं विविधैरङ्गच्छेदादिभिःसर्वैरेव। एतच्च भूयःकरणे ॥ १९३ ॥

(३) कुल्लूकः। राजा त्वयि रुष्टस्तस्मात्त्वां रक्षामि मम धनं देहि। धनधान्यादिलोभोपकरणं वाङ्मृतमभिधाय छद्मभिर्यः परद्रव्यंगृह्णाति स छद्मधनग्रहणाभिधानोक्तजनसमक्षं करचरणशिरश्छेदादिभिर्नानाप्रकारैर्वधोपायैः राजा हन्तव्यः ॥ १९३ ॥

(४) राघवानन्दः। प्रासंगिकं परद्रव्याभिलाषिण्या मिथ्याभिलाषिण्या दण्डमाह उपधाभिरिति। उपधाहि राजा त्वयि रुष्टस्तस्मात् त्वा रक्षिष्यामि मद्धनमर्पयेति धनधान्यादिलाभार्थमभिधानमुपधातैःयःपरद्रव्यं हरेत्सः सप्तायः सत्यं अयं वक्तीति मिथ्याभिधानेन साहाय्यंगतेन सह प्रकाशं बहुजनसमक्षंविविधैः शिरश्छेदादिनानाप्रकारैः ॥ १९३ ॥

(५) नन्दनः। उपधाभिः पञ्चविधाभिः ॥ १९३ ॥

(६) रामचन्द्रः। यःकश्चिन्नरः परद्रव्यं उपधाभिः उपायैर्व्याजैर्हरेत् ॥ १९३ ॥

(७) मणिरामः। राजा त्वयि क्रुद्धः तस्मात्त्वा रक्षामि मद्धन [illegible] उपधाभिः ॥ १९३ ॥

(८) गोविन्दराजः। उपाधिभिस्तु यत्किञ्चिदिति। यो नरः परद्रव्यं हरेत्समहायः हरचरणच्छेदादिभिः नानाप्रकारैः वधोपायैः शकलं कृत्वा राजमार्गादौ राजा हन्तव्यः ॥ १९३ ॥

(९) भारुचिः। पविवासनेनाशादानेन स्वकलत्रं . . . न्यासनागामिकालंकारप्रदर्शनेनेत्येवमादिभिरुपाधिभिः परद्रव्यापहारी समहायो विविधैर्वधैः प्रकाशमनशासनीयः येन कष्टतर . . . धरपूर्वं द्रव्यापहारेणेति ॥ १९३ ॥

**निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलसन्निधौ ॥**
**तावानेव स विज्ञेयो विब्रुवन्दण्डमर्हति ॥ १९४ ॥**

(१) मेधातिथिः। य इति निक्षिप्यमाणद्रव्यजातिनिर्देशः। यावानिति परिमाणस्य। य आह–सुवर्णमेतस्य हस्ते मया निक्षिप्तं काम्यं ददाति–शतं च स्थापितमं ददाति–स पृच्छ्यते–किं रहस्युत कस्यचित्समक्षमिति। स चेदाह कुलसन्निधौ। कुलं साक्षिणः। तान् ते पृष्टा यदाहुस्तदेव सत्यम्। विब्रुवन्विरुद्धं ब्रुवाणो दण्डयते। तानपि यदि ब्रूयात्साक्षिसमक्षं कथं तैर्विनाऽन्यत्स्थापितमिति–अस्त्यत्र प्रमाणान्तरव्यापारणावसरः।

अयमपि श्लोको नाधिकविध्यर्थः ॥ १९४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सकृत्करणे तूक्तम्। निक्षेपो निक्षेपादिः। कृतस्य ज्ञात्यादेः। यः सुवर्णादिः। विब्रुवन् मद्यमत्र रक्षणभारो देय इति वदन् ॥ १९४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यः सुवर्णादिर्यावत्तत्परिमितो येन साक्षिसमक्षंनिक्षेपः कृतस्तत्र परिमाणादिविप्रतिपन्नौ साक्षिवचनानावानेव विज्ञातव्यः। विप्रतिपत्तिं कुर्वन्प्येतदुक्तानसारेण दण्डं दाप्यः ॥ १९४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रकृतमनुवर्तयन् तत्र विशेषमाह निक्षेप इति। य इति स्वरूपतः यावानिति सङ्ख्यातःकृतसंनिधौ स्थापनकाले यावन्तःसाध्यादयस्तावतां सन्निधौविज्ञेय इति शेषः। तथाकृतेपि साक्षिभिः स्वयंसङ्ख्याया विब्रुवन् विप्रतिपद्यमानोनिक्षेप्ता दण्डमर्हतीत्यन्वयः ॥ १९४ ॥

(५) **नन्दनः**। कृतः निक्षिप्तः। यावान् यत्परिमाण। कृतसंनिधौ कृतीनाभिज्ञाने ब्रुवन् अयथावदन् ॥ १९४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। विब्रुवन् अन्यथाब्रुवन् स दण्डं अर्हति ॥ १९४ ॥

(७) **मणिरामः**। कृतसंनिधौ साक्षिसंनिधौ। यावानेव साक्षिकथितमेव विब्रुवन् विप्रतिपत्तिं कुर्वन् ॥ १९४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **निक्षेप इति**: यज्जातीयं द्रव्यं द्रव्यपरिमाणञ्चाथसाक्षिसमक्षं निक्षिप्तं द्रव्यं तत्परिमाणमेव साक्षि प्रत्ययेन बोद्धव्यं न प्रमाणान्तरेण तत्र परीक्षा कार्या। तत्र न निक्षेप्तारंविरुध्य ब्रुवन् विगुणं दण्डमर्हति ॥ १९४ ॥

(९) **भारुचिः**। समधिके सति निक्षेपे साक्षिण.....प्रमाण स्यादर्थसंख्यापरिमाणे ॥ १९४ ॥

**मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथ एव वा ॥**
**मिथ एव प्रदातव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥१९५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। या यथा निक्षेपादित्यनेन (१८०) निक्षिप्तविधिरयमुक्तः। अन्येन कार्यवशेन प्रतिपादित। ऋणादानोपनिधिविक्रयार्थापि येन यादृशेन प्रकारेण कृतं तादृशेनैव प्रत्यर्पणीयम्। रहसि कृतस्य राजकुलप्रमाणादिना प्रकाशनं न कर्तव्यम्। तेन स्वहस्तलेखेन ऋणं गृहीतं न राजकुलेऽग्रे दाप्यते। उत्तमर्णधनं क्षपणीयम्।

अनेनैव निक्षेपोपि सिद्धे तत्र पुनर्वचनं नित्यार्थम्। तेन निक्षेपादन्यत्र रहसि कृतस्यापि विप्रतिपन्नाप्रमाणद्वारा प्रकाश प्रतिदानं कदाचिदस्ति। अयंतूभयप्रकाशकृतस्य प्रकाशीकरणं निषिध्यते। तत्र त्वन्योन्यार्थं समुद्राःसमुद्र इत्यादि नेनायोनरूक्त्यम्।

**मिथःशब्दो** रहसि विज्ञेयः। अथवा परस्परं **मिथः**। सर्वं कार्यं द्वाभ्यां साध्यं दानादि परस्परमेव क्रियत इति। पुनर्वचनं तृतीयप्रतिषेधार्थम्।

**दाय**शब्दः सामान्यशब्दो निक्षेपादन्यानपि विक्रयादीनाह ।। १९५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कुलासंनिधावसाक्षिकमाह मिथइति। मिथ एकान्ते। दायो निक्षेपदानम्। मिथोगृहीतो गृहीत्वापि न ज्ञापितोग्रहीत्रा मिथएव न साक्ष्यादिसंनिधौ। एतेन ग्रहणे साक्ष्यभावे प्रत्यर्पणेपि साक्षिणो नानुसंधेया इत्युक्तम्। यथादायस्तथेतितु ससाक्षिके ससाक्षिकएवेति ।। १९५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। रहसि येन निक्षेपोर्पितोनिक्षेपधारिणा च रहस्येवगृहीतः सनिक्षेपो रहस्येव प्रत्यर्पणीयः न प्रत्यर्पणे साक्ष्यपेक्षा यस्माद्येनैव प्रकारेण दानं तेनैव प्रकारेण प्रत्यर्पणंदातव्यमिति श्रवणान्निक्षेपधारिणोयं नियमविधिः। योयथा निक्षिपेद्धस्त इति तु निक्षेप्तुर्नियमार्थं ग्रहीतव्य इति श्रवणात् अतो न पौनरुक्त्यम् ।। १९५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। निक्षेपधारिणोनियममाह मिथइति। मिथःअन्योन्यंनिक्षेपधारिणा रहसि निक्षेपः कृतश्चेद्रहस्येव याचितव्योवायथा दायः स्थापनं तथाग्रहस्तेनैव प्रकारेणादानम् न तत्र साक्ष्यपेक्षेतिभावः ।। १९५ ।।

(५) **नन्दनः**। दायसमर्पणंमिथः रहसि असाक्षिकमितियावत् ।। १९५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। तथा ग्रहः गृह्णातीतिग्रहः मिथएव ग्रहः ग्रहीतव्यः येन पुंसा मिथः एकांते दायः निक्षेपदानंकृतः यथा दायः तथा ग्रहः ग्रहणीयः ।। १९५ ।।

(७) **मणिरामः**। मिथः परस्परं रहिसिकृतः दायः निक्षेपादिःमिथएव रहस्येव ।। १९५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **मिथ इति**। परस्परं रहसि येन निक्षेपोकृतो निक्षेपितः निक्षेपधारिणाऽपि रहस्येव गृहीतः स निक्षेपो रहस्येव प्रत्यर्पणीयः। न प्रत्यर्थेन साक्ष्याद्यपेक्षं(क्ष्यं) यस्माद्येन प्रकारेण दानं तेनैव प्रत्यर्पणमितीव निक्षेपधारिनियमार्थं प्रदातव्य इति यो यथा निक्षिपेद्धस्तु इतीदं निक्षेप्तृनियमार्थं गृहीतव्यश्रवणाधिक्ये सति यदस्य श्लोकप्रतिविधिविषयत्वं व्याख्यातं, सामान्यविषयं तावत् व्याख्यानं वा केषाञ्चित्तच्छिष्टैः परीक्ष्यम्। ।। १९५ ।।

(९) **भारुचिः**।...यन्तु पूर्वश्लोके निक्षेपप्रकरणोक्तत्तादर्थ एव। अयं पुनरुपनिध्यर्थत्वात् पुनरुक्तस्तेनैव विज्ञेयः। सामान्यविशेषप्रकारेण वानयोः श्लोकयोरपुनरुक्तता वर्णयित(व्यः? व्या) ।। १९५ ।।

**निक्षिप्तस्य धनस्यैवं प्रीत्योपनिहितस्य च ।।**
**राजा विनिर्णयं कुर्यादक्षिण्वन्न्यासधारिणम् ।। १९६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। प्रकरणोपसंहारोऽनेन क्रियते। **प्रीत्योपनिहितस्य**। स्नेहेन किंचित्कालं भोगार्थं दत्तस्य **न्यासो** निक्षेपः। तस्य धारणको यथा न पीड्यते तथा निर्णयः कर्तव्य इति। **अक्षिण्वन्नपीडयन्**।

**द्वित्राः** श्लोका निक्षेपप्रकरणे विध्यर्थाः। सर्वमन्यदन्यतः सिद्धं सौहार्देनोक्तम् ॥ १९६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। निक्षिप्तस्येति याचिताद्युपलक्षणम्। प्रीत्योपनिहितस्य यावदस्मदागमनं तावत्त्वया क्षीराद्यस्या गृह्यतामिति गवादेर्बन्धुत्वेन रक्षणार्थं स्थापितस्य। अक्षिण्वन् प्रथमत एव दण्डेनाहिंसन् निक्षेपः ॥ १९६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। राज्ञा निक्षिप्तस्य धनस्यामुद्रस्य मुद्रादियुतस्य वोपनिधिरूपस्य तथा प्रीत्या कतिचित्कालं भोगार्थमर्पितस्यानेनोक्तप्रकारेण न्यस्तधनधारिणमपीडयन्निर्णयं-कुर्यात् ॥ १९६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। नृपतेर्नियममाह निक्षिप्तस्येति। प्रीत्योपनिहतस्य प्रीत्यर्थं कंचित्कालं दत्तस्य अक्षिण्वन्नपीडयन् न्यासधारिणं साक्षी नैवंविध इति भावः। इति निक्षेप-प्रकरणम् ॥ १९६ ॥

(५) **नन्दनः**। उपसंहरति निक्षिप्तस्येति। विनिर्णयंप्रतिदानम् विवादपदंसमाप्तम् ॥ १९६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। प्रीत्या निक्षिप्तस्य च पुनः उपनिहितस्य राजा विनिर्णयं कुर्या न्यासधारिणं अक्षिण्वन् अपीडयन् ॥ १९६ ॥

(७) **मणिरामः**। अक्षिण्वन् अपीडयन् ॥ १९६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **निक्षिप्तस्येति**। निक्षेपधार(रि)णमपीडयन् निक्षिप्तस्य द्रव्यस्य प्रीत्या च साम्प्रतिकोपभोगार्थं अर्पितस्यानेन प्रकारेण निर्णयं कुर्यात् ॥ १९६ ॥

(९) **भारुचिः**। समुद्रो विमुद्रो वा निक्षेपः विमुद्र एव तु प्रीतिविमुक्तभोग उपनिधिः। तयोरन्वेषणविधिरयं विज्ञेयः ॥ १९६ ॥

**विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसम्मतः ॥**
**न तं नयेत साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम् ॥ १९७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अस्वामिविक्रयाख्यविवादपदमिदमनुक्रान्तम्।

**परस्य** यद्द्रव्यादि **स्वं** तच्चेदस्वामी तत्पुत्रादिरन्यो वा **विक्रीणीते** स्वामिनाऽननुज्ञातस्तं **स्तेनं** चौरं विद्यात्। यद्यपि यस्तस्मात् क्रीणाति स तमस्तेनं मन्यते।

**न तं नयेत साक्ष्यं तु**। तं पुरुषं न नयेत न प्रापयेत् साक्ष्यं न कारयेत्साक्षिकरणे न नियो-क्तव्य इत्यर्थः। यथा चौरस्तादृश एवासौ। स्तेनत्वाच्च न साक्षित्वम्। न साक्षित्व एव प्रतिषेधः। किं तर्हि ? सर्वासु साधुजनसाध्यासु क्रियासु। परस्वमननुज्ञातेन विक्रीतं क्रेतुर्न स्वं भवतीति सिद्धे साक्षिकर्मनिषेधद्वारेण प्रतिषेधो वैचित्र्यार्थः ॥ १९७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अस्वामिविक्रयमाह विक्रीणीत इति। न तं साक्ष्यन्तं नयेत् साक्षिसमीपं नयेत् तद्वचनाद्विनैव निर्धारणासंभवे। एतेन महापराधत्वमस्य कथयति। ॥ १९७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अस्वामी यः स्वामिना चाननुगतः परकीयं द्रव्यं विक्रीणीते वस्तुतश्चौरमचौरमात्मानं मन्यमानं तं साक्षित्वं न कारयेन्नकुत्रचिदपि प्रमाणीकुर्यादित्यर्थः। ॥ १९७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। दण्डार्थमनुवदति विक्रीणीत इति। अस्वामी स्वाम्यसंमतश्च वस्तुतःस्तेनं तं साक्ष्यं साक्ष्युक्तिविषयं ननयेत्। तदर्थे साक्ष्यनादर इति भावः ॥ १९७ ॥

(५) **नन्दनः**। अस्वामिविक्रयमाह विक्रीणीते परस्येति। स्वाम्यसंमतः स्वामिनाऽननुज्ञातः। तंसाक्ष्यंन नयेत् ससाक्षित्वयोग्यो न भवेत्। एवं निन्द्योऽसावस्वामिविक्रयी तस्मादस्वामिविक्रयं न कुर्यादिति ॥ १९७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यःअस्वामी परस्य स्वं द्रव्यं स्वाम्यसंमतः तं साक्ष्यं न नयेत्। अस्तेनमानिनं स्तेनं ज्ञेयम् ॥ १९७ ॥

(७) **मणिरामः**। तं अस्वाभिविक्रयिणं साक्ष्यं न कारयेत् कुत्रचिदपि तत्र प्रमाणीकुर्यादित्यर्थः ॥ १९७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **विक्रीणीतेति**। योऽस्वामी स्वामिनाऽननुज्ञातः परकीयं द्रव्यं विक्रीणीते तमचौरमात्मानं श्रुतचौरं प्राङ्विवाकः साक्षिकं न कारयेदिति साक्षिकर्मनिषेधद्वारेण तस्यापकारित्वप्रतिपादनं क्रियाऽन्तरेष्वप्ययोग्यत्वप्रतिपादनार्थम् ॥ १९७ ॥

(९) **भारुचिः**। अनादिविक्रय इदानीमुच्यते, न तन्नयेत साक्ष्यमित्यस्य प्रदर्शनार्थत्वात् सर्वाप्रामाण्यादेव तन्निवर्तयति ॥ १९७ ॥

**अवहार्यो भवेच्चैव सान्वयः षट्शतं दमम्।**
**निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥ १९८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वेण साधुजनकर्तृकासु क्रियासु साक्ष्यादिष्वपि अस्वामिविक्रयकारिणामनर्हतोक्ता। अनेन षट्शतो दण्ड उच्यते। षट्कार्षापणशतानि **अवहार्यो** दापयितव्यो दण्डच इति यावत्। **सान्वयः**। **अन्वयो**ऽनुगमनसंबन्धः—स यस्यास्ति पुत्रभ्रात्रादिः स्वामिनोऽनुगतः **सान्वयः**। स ह्यननुज्ञातोऽपि विक्रीणानो न स्फुटचोरो यतस्तस्येयं बुद्धिर्मदीयमेवैतद्यत्पितुरिति—तं प्रतीयमपि संभावना भवति तस्यैव विक्रीय मूल्यं ददाति। यस्त्वत्यन्तासंबन्धः स **निरन्वयः**। **चौरकिल्बिषं** निग्रहं निःसंशयं प्राप्तः। **अनपसरः**। यदि तद्गृहं तस्य नापसृतं भवति तदाऽनपसरश्चौरवद् दण्डचः। यदि तु तद्गृहादेव केनचिद्दत्तं विक्रीतं वा तस्य तेन वाऽज्ञत्वात् तत्प्रतिगृहीतं प्रकाशक्रयेण वा विक्रीतं तदा न चौरवद्दण्डचः। **षट्शतमेव** दाप्यः।

अथवा अन्वयो विक्रीणाति तस्य विक्रेयद्रव्यस्यान्यतः क्रयः **अपसरः** क्रयादन्यः प्रतिग्रहादिरागमः। एतदुक्तं भवति। यदि तेन तन्न कुतश्चन क्रीतं नापि प्रतिग्रहादिना लब्धं तदा चौरः ॥ १९८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अवहार्यो दण्ड्यः। सान्वयस्तद्द्रव्ययोग्यसंबन्धाभासवान् तथा तस्मिन्न जीवति विभक्ततद्भ्रात्रादिः। निरन्वयोत्यन्तोदासीनः संबन्धाभासेनापिरहितः। तथा सान्वयोप्यनवसरोऽकालेऽदेशेच विक्रयंकुर्वन् चौरकिल्बिषं चौरापराधं प्राप्तः स्यात् ॥ १९८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एष परस्वविक्रयी यदि स्वामिनो भ्रात्रादिरूपत्वेन सान्वयः संबन्धी भवति तदा षट्पणशतान्यवहार्योदण्डनीयः यदि पुनः स्वामिनः संबन्धी न भवतिअनपसरश्च स्यात्। अपसरत्यनेनास्मात्सकाशाद्धनमित्यपसरः प्रतिग्रहक्रयादिः स यस्य स्वामिसंबधिपुत्रादेः सकाशान्नास्ति तदा चौरसंबन्धिपापं प्राप्नोति तद्वद्दण्डनीय इत्यर्थः ॥ १९८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। न केवलमेवदण्डमप्याह अवेति। एष परस्वापहारी अवहार्यो-दण्डनीयः। सान्वयः स्वामिनोभ्रात्रादिरूपेणसंबन्धी तदा षट्शतम्। निरन्वयश्चेच्चोरकिल्बिषं सहस्रं दण्ड्य इत्यन्वयः। अनपसर इति विशेषणम् अपसरत्यनेन स्वामिनो धनमित्यपसर ; प्रतिग्रहक्रयपिण्डादिः स यस्य संबन्धी नास्ति सोऽनपसरः ॥ १९८ ॥

(५) **नन्दनः**। अस्वामिविक्रयी सान्वयः ससहायः पणानां षट्शतमपहार्यः। किल्बिषंदण्डम्। नावसरः अनुग्रहावसररहितः। निर्दयमेव चोरवद् दण्ड्य इति यावत् ॥ १९८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एषः सान्वयः विभक्तभ्रात्रादिसंबन्धवान् अवहार्यः दण्ड्यःनिरन्वयः अविभक्तभ्रात्रादिसंबन्धवान् अनवसरः चौरकिल्बिषं प्राप्तः स्यात् ॥ १९८ ॥

(७) **मणिरामः**। एषः परिस्वविक्रयी सान्वयः स्वामिसंबंधी भवति तदा षट्शतं षट्पणशतानि अवहार्यः दंडनीयः। यदि पुनः निरन्वयः संबंधी नभवति अपसरश्च नस्यात् अपसरति अस्मात्सकाशाद्धनमित्यपसरः प्रतिग्रहक्रयादिः स यस्य स्वामिसंबंधिपुत्रादेः सकाशान्नास्ति। तदाचौरकिल्विषं प्राप्तोतीत्यर्थः ॥ १९८ ॥

(९) **भारुचिः**। अवहार्यो दण्ड्यः सान्वयः सनिस्सरः षट्छतं दमं निरन्वयस्तदनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिल्विषम् इत्यनेन अपराधमहत्त्वाद्दण्डमहत्त्वं दर्शयति पूर्वस्मात् अन्यस्त्वाह– अपसरः क्रयादन्यो धनागमः ॥ १९८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अपहार्य इति**। एष च परस्वविक्रयी यदि स्वामिना पुत्रादि-रुपत्वेनाऽनुगतो भवति षट्पणशतानि दण्डार्थमानयितव्यः। यदि पुनः स्वामिनो नानुमतो भवति अविद्यमानापसरश्च यदि स्वामिसम्बन्धपुत्रादेः सकाशात्कार्यादिना तद्द्रव्यं तस्य न संश्रितं भवति तदा चौरसम्बन्धिपापं प्राप्नोति। पापसहचरापदेशे-ऽपिदण्डातिदेशः ॥ १९८ ॥

**अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा ॥**
**अकृतः स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः ॥ १९९ ॥**

[ अनेन विधिना शास्ता कुर्वन्नस्वामिविक्रयम् ।
अज्ञानाज्ज्ञानपूर्वन्तु चौरवद्दण्डमर्हति ॥ १ ॥ ]‡

(१) **मेधातिथिः** । न केवलमस्वामिसकाशाद्यत्क्रीतं तन्न सिध्यति, किं तर्हि, प्रतिगृहीतमपि । प्रतिग्रहेण प्रीत्या वा दानं **दायः** सोऽपि न सिध्यति । "विक्रीणीते परस्य" इत्यनेन (१९७) विक्रेतुः प्रतिग्रहीतुश्चास्वाम्यमुच्यते । "स्वामी रिक्थक्रये"त्यादिना (गौतम १०/३९) स्वाम्याशङ्कायां प्राप्तोऽयं प्रतिषेधः । **व्यवहार** एषा स्थितिर्नातिक्रमणीया ॥ १९९ ॥

---

(१९९) दायोविक्रयएववा = क्रयोविक्रयएव । (ज, झ. ञ, ढ)

‡(क, ख, ग, च, ण, ज, झ. ञ, ट, ठ, ड, र, ल)

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । क्रयोपि स्वाम्यसंमत्या स्वाम्यर्थं कृतो निवर्त्यः । एवं विक्रयोप्यकृतो न स्वत्वनाशकः । यथाव्यवहारे स्थितिः सेयमुक्तेति शेषः ॥ १९९ ॥

[ **सर्वज्ञनारायणः** । एषच सर्वोऽज्ञानकृतविषयोऽज्ञाने त्वन्यथेत्याह अनेन विधिनेति ॥ १ ॥ ]

(३) **कुल्लूकः** । अस्वामिना यत्कृतं यद्दत्तं विक्रीतं वा तदकृतमेव बोद्धव्यम् । व्यवहारे यथामर्यादा तथाकृतं न भवतीत्यर्थः ॥ १९९ ॥

(४) **राघवानन्दः** । क्रयाद्यसिद्धिमप्याह अस्वामिनेति । स्वत्वरहितेन द्रव्येण अन्यायोपात्तेन परद्रव्येणवा यः क्रयःकृतः सोप्यस्वामिना कृतः स्यादेव । तथावस्तुतोअस्वाम्यास्पदीभूतस्य विक्रय इत्यप्यविरोधः । व्यवहारे यथा मर्यादा तथाकृतं न भवतीत्यर्थः ॥ १९९ ॥

(५) **नन्दनः** । क्रयविक्रयग्रहणंदानादिनामप्युपलक्षणार्थम् ॥ १९९ ॥

[ **नन्दनः** । एतदेवविशदयति अनेनविधिनेति । अनेवविधिना षट्शतेन दण्डेन ॥ १ ॥ ]

(६) **रामचन्द्रः** । सः अकृतः विज्ञेयः व्यवहारे यथास्थितिः ॥ १९९ ॥

(७) **मणिरामः** । अनेनेति । अनेन विधिनाऽस्वामिविक्रयं कुर्वन्नाज्ञानेन विज्ञानपूर्वकं वा शास्ता चौरवद्वधमर्हति ॥ १ ॥ ]

(८) **गोविन्दराजः** । **अस्वामिनेति** । अस्वामिना अदत्तं विक्रीतं वा तदकृतमेव बोद्धव्यमित्येवंविधा व्यवहारमर्यादा ॥ १९९ ॥

(९) **भारुचिः** । एवं च सति क्रयविक्रयावस्वामिकृतौ निपत्यावेव । तथा च स्वाम्येन धनभाक् स्यात् । न तु क्रेता विक्रेता वा धने स्वामी परितोषणीयः ॥ १९९ ॥

**संभोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित् ॥**
**आगमः कारणं तत्र न संभोग इति स्थितिः ॥ २०० ॥**

(१) **मेधातिथिः** । यस्मिन्वस्तुनि गोवस्तुहिरण्यक्षेत्रादावन्यस्य **भोगो** दृश्यते अन्यस्य

च रिक्थप्रतिग्रहादिरागमः स्वाम्यापादकस्तत्रागमो बलवान्न भोगः। भोग एव संभोगः। कारणं स्वाम्ये। तत्रेति स्थितिः। एवमनादिव्यवस्था न भोगमात्रेण स्वत्वम्। यादृशेन च स्वत्वं तत्पुरस्ताद्व्याख्यातम् "यत्किंचिद्दशवर्षाणि" (१४७) इति वानेन विरोधस्तत्रैव परिहृतः ॥ २०० ॥

(२) सर्वज्ञनारायणः। एकस्य भोगो दृश्यते आगमश्च लेख्यादिर्न दृश्यते, इतरस्यच आगमो दृश्यते। तत्र यस्यागमस्तस्यैव न भोगिन इत्याह संभोग इति ॥ २०० ॥

(३) कुल्लूकः। यस्मिन्वस्तुनि संभोगो विद्यते क्रयादिरूपस्त्वागमो नास्ति तत्र प्रथम-पुरुषगोचर आगम एव प्रमाणं न संभोग इति शास्त्रमर्यादा ॥ २०० ॥

(४) राघवानन्दः। आधिःसीमेत्यादिना पूर्वोक्ताध्यादिनामष्टानां भोगेन न स्वत्व-मित्युक्तं तर्हि केन स्यादित्याशङ्क्यायमाह संभोग इति। आगमः प्रतिग्रहक्रयादिः कारण-तदृते दशवर्षोत्तरंभोगमात्रात्स्वत्वासिद्धेः भुक्त्यसत्वे आगमोन प्रमाणं किंतूभयम्। तथा-हयाज्ञवल्क्यः "आगमोभ्यधिकोभुक्तेर्विना पूर्वक्रमागतात्। आगमो बलवान्नैव भुक्तिस्तो-कापि यत्र नो ॥ "इतिपूर्वक्रमात् पित्रादित्रयभोगात्। अतएव नारदः" ॥ आगमेन विशुद्धेन भोगो याति प्रमाणताम्। अविशुद्धागमोभोगः प्रामाण्यं नाधिगच्छती"ति आगमेन प्रतिग्रहादि-नास्तोकेऽपीति रहसि प्रतिग्रहे कृते साक्षिरहिते। प्रतिग्रहीतरि मृते त्वमृतेवा स्तोकभोग-रहितं न पुत्रादयः प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ २०० ॥

(५) नन्दनः। नास्तिकविप्रतिपत्तौ बलाबलमाह संभोगोयत्रेति। यत्र अस्वामिना विक्रीतेर्थे एकस्य संभोगोदृश्यते तत्रागमः कारणंप्रमाणं न संभोगः अस्वामिविक्रयसाधर्म्यात् ॥ २०० ॥

(६) रामचन्द्रः। यत्र संभोगोदृश्यते आगमः साक्ष्यलेख्यप्राप्तिर्नदृश्येत ॥ २०० ॥

(७) मणिरामः। यत्र यस्मिन् वस्तुनि संभोगो दृश्यते आगमः कथमनेन प्राप्तमित्या-गमनकारणं न दृश्यते। तत्र आगमः कारणं प्रमाणं न भोग इत्यर्थः ॥ २०० ॥

(८) गोविन्दराजः। संभोग इति। यस्मिन्वस्तुनि भोगो दृश्यते आगमः पुनः क्रियादिः न क्वचिदस्ति तत्रागमः कारणं न संभोगोऽतश्च शुद्धागमस्य दशवर्षभोगेनाऽपि कार्यसिद्धिः ॥ २०० ॥

(९) भारुचिः। एवं चागमात् अशुद्धद्रव्यस्य दशवर्षभोगेनापि स्वामिनः स्वत्वं ॥ २०० ॥

**विक्रयाद्यो धनं किंचिद् गृह्णीयात्कुलसन्निधौ ॥**
**क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम् ॥ २०१ ॥**

(१) मेधातिथिः। यादृशेन क्रयेण स्वाम्यं भवति तं दर्शयति। विक्रीणतेऽस्मि-न्व्यवहारिण इति 'विक्रयः' आपणभूमिस्ततो यो गृह्णीयाद्धनं गवादि क्रीयमाणं द्रव्यं मूल्यं

वा स **लभते न्यायतः क्रयेण**। **कुलसंनिधौ** विशुद्धम्। **न्यायतः क्रय** उचितेन मूल्येन। असंभाव्यपापपुरुषाकुलस्यान्यव्यवहर्तृमेलककारपुरुषसमूहस्य समक्षं गृहीतं **लभते** नापहारयति। अन्यथा अस्वामिना विक्रये तु द्रव्यं प्रतिनीयते किन्तु मूल्यं लभते। तस्माद्यस्तस्य विक्रयी सोऽन्यायतः क्रये दण्डचते मूल्यं च हारयति। एतदुक्तं (या. व्य. १७०)

**"विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः स्वामी द्रव्यं नृपो दमम्।**
**क्रेता मूल्यमवाप्नोति तस्माद्यस्तस्य विक्रयी॥"**

एष एवार्थोऽनेन श्लोकेन प्रतिपाद्यते॥ २०१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कुलं संघः सच स्वर्णकारादिमध्यस्थः। क्रयेण विशुद्धं विक्रेतरि संभाव्य तावद्वस्तुसद्भावं तथा अमूल्यत्वादेशकालत्वादिक्रयाविशुद्धिरहितम्। अन्यथा स्वाम्यदर्शनेपि राज्ञएव तदित्यर्थः॥ २०१॥

(३) **कुल्लूकः**। विक्रीयतेऽस्मिन्निति विक्रयदेशोविक्रयः ततोयत्क्रेयधनंकिंचिद्व्यवहर्तृसमूहसमक्षं क्रीयतेऽनेनेति क्रयोमूल्यं तेन यस्माद्गृह्णीयात् अतोन्यायत एवास्वामिविक्रेतृसकाशात्क्रयणाद्विशुद्धं धनं लभते॥ २०१॥

(४) **राघवानन्दः**। क्रयादिस्वत्वापादकमिति सनियममाह विक्रयादिति। विक्रयाद्विक्रेतुःधनं क्रेयम् क्रयेण द्रव्येण क्रीणात्यनेनेति। कुलसंनिधौ हट्टादिस्थितबहुजनसन्निधौ यो गृह्णीयात्तन्न्यायतोविशुद्धं धनं क्रेयद्रव्यं लभतेविप्रतिपत्तावपि मूल्यंविक्रेतृसकाशाल्लभतइति भावः॥ २०१॥

(५) **नन्दनः**। अस्वामिविक्रयमजानतः क्रेतुः दोषोनास्तीत्याह विक्रयाय इति। यः क्रेताधनंक्षेत्रादिकंक्रयेण हेतुना विक्रेतुः सकाशाद्धनंमूल्यंलभते॥ २०१॥

(६) **रामचन्द्रः**। कुलसंनिधौ यः किंचिद्यदि गृह्णीयात्तमः क्रयेण विशुद्धं देशकालोचितमूल्यं न्यायतोधनं लभेत॥ २०१॥

(७) **मणिरामः**। कुलसन्निधौ समुदायसमक्षं। विक्रयात् विक्रयदेशात्। धनं अस्वामिकं क्रेयधनं। क्रयेण मूल्येन गृह्यते तत् न्यायतः शुद्धमाप्यते। चौरवद्दंड्योनभवतीत्यर्थः॥ २०१॥

(८) **गोविन्दराजः**। विक्रेयादिति। आपणभूमौ (यत्) प्रयत्नेन तद्व्यवहर्तृपुरुषसमक्षं वोद्धव्यम्। किञ्चिन्मौल्येन गृह्णीयात्स यस्मात्प्रकाशोचितः मूल्यकुलसंख्यापणव्यानानुष्ठितेन न्यायक्रमेण विशुद्धं तदीयं धनं मूल्यमानाऽधिकः हन्नाप्त्र लभते॥ २०१॥

(९) **भारुचिः**। यतश्चैतदेवमतः न्यायतस्तु क्रयः कुलसन्निधावुचितेन मूल्येन संभाव्य चान्यात् पुरुषात्। एतच्च तस्यानभियोगो धनलाभश्च युक्तः। एवं बाह्मणेव्यवहारयेत्ता (यं? य)न्यायकारिणः॥ २०१॥

**अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः॥**
**अदण्ड्यो मुच्यते राज्ञा नाष्टिको लभते धनम्॥ २०२॥**

(१) **मेधातिथिः**। असंभाव्यपातात् पुरुषादित्यादि न्यायतः क्रय उक्तः। स चेद्विक्रेता शक्य आहर्तुं तदा पूर्वोक्तो विधिः—"स्वामी द्रव्यम्" इत्यादि। अथ स विक्रयी गतः, येन क्रीतं स्वामिना चिह्नीकृतं तेन च मूलं विक्रेता पुरुष आहर्तुं न शक्यते। **प्रकाशं** जनसमक्षं प्रसिद्धाया विक्रयभवः क्रीतमत्र ऐदंयुगेन क्रयेण शोधितद्रव्ये 'शुद्धः' क्रेताऽदण्ड्यो **मुच्यते**। **धनं** तु **नाष्टिकः** स्वामी ज्ञापितस्वं वा लभते। नष्टमन्वेषते **नाष्टिकः**। नष्ट-मस्यास्तीत्येवंर्थे कुत्रे प्रजादित्वात्स्वार्थिकोऽण् कर्तव्यः। नष्टं प्रयोजनमस्येति वा। तेनायं संक्षेपः—प्रकाशक्रये तु दण्डो न स्याद्धननाशस्तु स्थित एव ॥ २०१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अस्वामिविक्रये तद्धनस्य मूलं विक्रेता यत्राहार्यस्तदा तमाहूय क्रेता शुध्यति। तदाहरणासंभवे तु प्रकाशक्रयेणोक्तदंडकालसमाधिकक्रयेण राज्ञा न दण्ड्यः। धनंतु मूल्यमदत्त्वैव नाष्टिको नष्टमद्रव्यं लभेत। क्रयप्रकाशाभावे दण्ड्योपि ॥ २०२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अथ मूलस्वामी विक्रेता मरणादैशांतरादिगमनादिनावानाहर्तुं शक्यते प्रकाशक्रयेण चागो निष्क्रीतस्तदा दण्डार्हएव क्रेता राज्ञामत्यते नष्टधनस्वामी च यदस्वामि-नाविक्रीतंद्रव्यंतत्क्रेतुरित्यादिनोक्तम्। अथ न विक्रयोर्धमूल्यं क्रेतुर्दत्वा स्वधनंस्वामिना ग्राह्यम्। तदाह बृहस्पतिः ॥ वणिग्वीथीपरिगतंविज्ञातंराजपुरुषैः। अविज्ञाताश्रयात्क्रीतंविक्रेता यत्र वा मृतः ॥ स्वामी दत्त्वार्धमूल्यन्तु प्रगृह्णीयात्स्वकंधनम्। अर्धद्रव्यारुहंतस्य स्यादव्यव-हारतः ॥ २०३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। कुलस्त्रीश्वो क्रीतस्यापि नष्टधनस्वामिनोविप्रतिपत्तौ विशेषमाह अथेति। मूल विक्रेतृरूपं अनाहार्यं देशांतरगमनान्मरणाद्वा साक्षात्कर्तुमशक्यंयदि तदा नाष्टिकः नास्ति नष्टं धनं यस्य सनाष्टिकः स्वीयंधनं गृह्णीयात् क्रेता त्वदण्ड्यो यतः प्रकाशक्रयशोधितः प्रकाशे बहुजनसमक्षे क्रीतत्वेन चोरत्वाशंकानवतरतीति भावः। तथाच याज्ञवल्क्यः ॥ स्वयंक्रेतान्यविक्रीतंक्रेतुर्दोषोऽप्रकाशिते। हीनाद्ग्रहोहीनमूल्ये विक्रीणे च तस्करः ॥ हीनादस्वामिनः। अप्रकाशक्रयबहुमूल्यं निष्क्राद्राजपुरुषैः क्रेता तस्करः उद्दण्डश्च इति याज्ञ-वल्क्यार्थः। एवंक्रेतारं बृहस्पत्युक्तोऽर्धमूल्यं प्राप्नोति। तथाच "वणिग्वीथीपरिगतं विज्ञातंराजपुरुषैः। अविज्ञाताश्रयात्क्रीतंविक्रेता यत्र वा मृतः ॥ स्वामी दत्त्वार्धमूल्यं तु-प्रगृह्णीयात्स्वकंधनम्। अर्धद्रव्यारुहंतस्य स्याद्व्यवहारतश्च ॥ द्वयोः क्रेतृस्वामिनोः हृतं नष्टमित्यर्थः। मूलमाहार्यंचेनाह याज्ञवल्क्यः "विक्रेतृदर्शनाच्छुद्धिः स्वामी द्रव्यं नृपो दमम्। क्रेता मूल्यमवाप्नोति तस्माद्यस्तस्य विक्रयी" तस्य परधनस्येत्यर्थः। यत्र भूम्यादौ प्रतिग्रहीतुः पीडार्थं तत्र पूर्वस्य प्राप्नोति पूर्वो लुब्धकवत्तरीति याज्ञवल्क्योक्तेः। पूर्वो प्रतिग्रहीतेत्यर्थः ॥ २०३ ॥

(५) **नन्दनः**। अथान्यशब्दोयदर्थः। मूलमनाहार्यंविक्रेतुः प्रकाशाद्रष्टंलभते ॥ २०२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। नाष्टिकः नष्टमुद्रव्यः धनं लभते ॥ २०२ ॥

(७) **मणिरामः**। अथ मूलं नष्टद्रव्यं। अनाहार्यं अस्वामि विक्रेतुमरणात्। देशांतरग-मनाद्वा आहर्तुमशक्यं अथ तस्य हस्तदृष्टं सच प्रकाशक्रयशोधितः। अयं क्रयकर्तानुचौर

इति ज्ञातः। तदा स क्रयकर्ताऽदंड्योराज्ञामुच्यते। नाष्टिकः नष्टधनस्तुअर्द्धमूल्यंक्रेतुर्दत्वा स्वधनं तस्माल्लभत इत्यर्थः। तदाह बृहस्पतिः। वणिग्वीथी परिगतं विज्ञातं राजपुरुषैः। अविज्ञाताश्रयात्क्रीतं विक्रेता वा यत्रमृतः। स्वामी दत्त्वार्द्धमूल्यं तु प्रगृह्लीयात्स्वकं धनमिति ॥ २०२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। अभियोगकाले च तस्य यदि मूलमाहर्तुं शक्यं स्यात् विक्रेतुरभावात्। अतस्तस्य प्रकाशक्रयेण शुद्धस्यादण्डत्वं युक्तम्। अपि च देशान्तरादागतैः पापकारिभिः निश्शङ्कं राजसन्निधावप्रविकाशं वि(क्रि ? क्री)यते द्रव्यं तत्र च यदि मूल्यस्यानाहार्यत्वात् प्रकाशक्रयशुद्धे विक्रये क्रेतुर्दोषः स्यात्। एवं च सति राज्ञः सर्वदिक्को व्यवहारः साधूनामपि विच्छिद्येत। न चैतदिष्टम्। अतः क्रेतुरत्र नास्ति दोषः। नाष्टिकस्तु कारणतः स्वमर्थं प्रज्ञापयन् कथमिव न लभुत स्वधनम्। अतस्तस्य धनलाभो युक्तः। इतरस्य चादोषत्वाददण्ड्यत्वं युक्तम् ॥। २०२ ॥

(९) **भारुचिः**। **अथ मूलमनाहार्थं प्रकाशक्रयशोधितमिति**। यदि तेन किञ्चिद्देशान्तरं गत्वा क्रीतद्रव्यमूल्यमाहर्तुमशक्यं तदा पूर्वश्लोकन्यायेन प्रकाशक्रयशोधितं कृत्वा क्रेता दण्डत एव राज्ञा द्रष्टव्यः। स्वामी च तद्द्रव्यं यदस्वामिना विक्रीतं तत्क्रेतृहस्ताल्लभते ॥ २०२ ॥

**नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रयमर्हति ॥**
**न सावद्यं न च न्यूनं न दूरे न तिरोहितम् ॥ २०३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अस्वामिविक्रयप्रसङ्गेनान्योऽपि धर्म उच्यते।

**नान्यत्** कुंकुमादिद्रव्यं कुद्रव्येण तदाभासेन कुसुंभादिना **संसृष्टं** विक्रेयम्। यच्च **सावद्यं** चिरकालं भांडेऽवस्थितत्वात् प्राप्तविभावं जीर्णमजीर्णाभासं वस्त्रादि। **न च न्यूनं** तुलामानादिना। **दूरे**–दूरस्थितं–ग्रामे मम विद्यन्ते वासांसि गुडादि वा द्रव्यम्। **तिरोहितं** स्थगितं वस्त्रादिनाऽन्तर्हितं–यस्य वा स्वरूपं केनचिद्द्रव्यरागेणान्तर्द्धीयते पुराणं नववत्प्रतिभाति **तत्तिरोहितं** न विक्रेतव्यम्। इदं द्रव्यमीदृशं च प्रदर्श्य विक्रयः कर्त्तव्यः। अन्यथाकृतस्तु न कृतो दशाहादूर्ध्वमपि प्रत्यर्पणे न दोषः।

अन्यस्य दण्डस्येहानाम्नातत्वात् 'उपधाभिरि'त्येष एव दण्डः। प्रकरणभेदेन पठितत्वादस्वामिविक्रयदण्ड इत्यन्ये ॥ २०३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विक्रयप्रसंगागतमन्यदपि प्रदर्शयति नान्यदिति। नान्यदन्येन विजातीयेन संसृष्टंरूपं नाणकं विक्रयमर्हति विक्रीतमपि निवर्त्यमित्यर्थः। रूपपदं विक्रीतमात्रोपलक्षणम्। सावद्यं दुष्टमदुष्टमितिविक्रीतं। न्यूनं धरणछद्मना समतां नीतम्। न दूरे दर्शनायोपस्थाने स्थितम्। न तत्रैवस्थितमपि वस्त्रादितिरोहितम् ॥ २०३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कुंकुमादिद्रव्यंकुसुंभादिना मिश्रीकृत्य न विक्रेतव्यं नचासारंसारमित्यभिधाय नच तुलादिना न्यूनंन परोक्षावस्थितंनरागादिना स्थगितरूपं अत्रास्वामिविक्रय-

सादृश्यादस्वामिविक्रये दण्डएव स्यात् ।। २०३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। विक्रयप्रसंगेन द्रव्यान्तरमिश्रितं विक्रयमपि प्राप्तं तन्निषेधति नान्यदिति। रूपं कुंङ्कुमादि अन्येन कुसुम्भादिना संसृष्टं मिश्रीकृतम् सावद्यं सारमित्युक्ताऽसारम् न्यूनं परिमाणेनतत्। दूरे गृहंगत्वा ददामीति परोक्षावस्थितम्। तिरोहितं रागादिना। अत्राप्यर्धमूल्यं दण्डः। अविज्ञाताश्रयादिति पदेन सूचितत्वात् आश्रयपदस्य नानार्थत्वात् ।। २०३ ।।

(५) **नन्दनः**। अन्येनसंसृष्टमन्यद्रव्यंवस्तु कुंकुमादि न विक्रयमर्हति। सावद्यं-जरादिदोषदुष्टंवस्त्रादिकं न्यूनं परिभाषितेन परिमाणेन हीनम्। दूरेदुर्गमे देशान्तरे स्थिताः क्षेत्रादिकम्, तिरोहितं निखननापरोक्षं वर्णादीनि विक्रयमर्हति ।। २०३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अन्यद्रव्यंअन्येन विजातीयद्रव्येण संस्पृष्टंमिलितरूपं न विक्रयमर्हति। न सावद्यं नचन्यूनं दूरे वर्तमानंन। तिरोहितंविक्रयंनार्हति ।। २०३ ।।

(७) **मणिरामः**। अन्यत् कुंकुभादिअन्येन कुसुंभादिना संस्पृष्टरूपं मिश्रीकृत्य कपटेनविक्रयं नार्हति। न सारत्वं असारं सारमित्यभिधाय। न न्यूनं कपट तुलया न दूरेण परोक्षाऽव स्थितं न तिरोहितं रोगादिनास्थगितरूपं विक्रेतव्यमित्यर्थः। अत्राप्येतादृशविक्रये-अस्वामिविक्रयदंडोज्ञेयः ।। २०३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। अस्वामिविक्रयव्यवहारसाधर्म्यात् तत्विक्रयकरण एवायम् उच्यते–अन्यत् कुंकुमादिद्रव्यमन्येन कुसुम्भादिना द्रव्येण संसृष्टं विक्रयं नार्हति। एवं च प्रतिषेधादस्यैवमकार्यं मानुमीयते। एवं सावद्यमसंसृष्टमपि यद् भाण्डं पूतिकं चिरन्तनं जीणवस्त्रादि। न च न्यूनं यत्तुल्यान्तरेण पश्चाद्धीयते न दूरे अप्रत्यक्षत्वात्। एतेन तिरोहितं व्याख्यातम्। अदृश्यं वा द्रव्यभासं यत् क्रियते भाण्डरागादिना कर्मणा तत् तिरोहितम्। एवं च सति ईदृशमेवं विक्रीणानस्य दोषत्वादस्य दण्डार्हता न केवलमशुद्धता विक्रेतुः। तथा च यदि क्रेता ऊर्ध्वमपि दशाहादेतद्विक्रेतुः प्रत्यर्पणीयमेव येनास्यै(तं? तत्) प्रतिषेधशास्त्रं असद्विक्रयेणापोदितम्। "परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेदि"ति। विक्रयसम्बन्धेनैवायमपरः कन्याव्यवहारः शुल्काश्रयः स्तूयते–

**अन्यां चेद्दर्शयित्वान्या वोढुः कन्या प्रदीयते।**
**उभे ते एकशुल्केन वहेदित्यब्रवीन्मनुः ।।**

निरवद्यां कन्यां दर्शयित्वा यसा. . .ददाति तस्योभे अप्येते एकशुल्केनैव वहनीये ।।

(९) **भारुचिः**। **नेति**। न सावद्यमिति। कुंकुमादिद्रव्यं कुसुंभादिना व्याजबुद्धया मिश्रीकृतं विक्रेतव्यम्। न चाप्तकरान्तःक्लेशादिदोषोपेतं यत्तुलादिनाऽपि व्यवस्थितं न च रागादिना स्थगितरूपं एवं चात्रास्वामिविक्रयदण्डवत्स्यात् ।। २०३ ।।

**अन्यां चेद्दर्शयित्वाऽन्या वोढुः कन्या प्रदीयते ।।**
**उभे ते एकशुल्केन वहेदित्यब्रवीन्मनुः ।। २०४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। विक्रयप्रकारत्वाच्छुल्कादिना कन्यादानस्य अस्मिन् प्रकरणे ध उच्यते। शुल्ककाले रूपवतीं दर्शयित्वा गृहीतशुल्को यस्य रूपहीनां ददाति वयोहीनां गुणहीन वा तस्योभे अपि शुल्कदेनैकेन **शुल्केन** हर्तव्ये। कन्यानामेवायं धर्मः। गवाश्वादिद्रव्याण त्वस्मिन्व्यतिक्रमेऽन्यो विधिर्वक्ष्यते ।। २०४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रदीयते शुल्केनानेनेति उन्मत्तादिदोषवत्यपि। प्रथमं दोष कथने दण्डोनास्ति नापि निवृत्तिः। एतच्च द्रव्यान्तरेपि द्रष्टव्यं न्यायसाम्यात् कन्यापद स्योपलक्षणत्वात् ।। २०४ ।।

(३) **कुल्लूकः**।। शुल्कदेयां शुल्कव्यवस्थाकाले निरवद्यां दर्शयित्वा यदि सावद्य वराय दीयते तदा द्वेऽपि कन्ये तेनैवैकेन शुल्केनासौ वरः परिणयेदिति मनुराह। शुल्कग्रहण पूर्वककन्यादानस्य विक्रयरूपत्वादर्थक्रयविक्रयसाधर्म्येणास्यात्राभिधानम् ।। २०४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। आर्षेयादिविवाहेषु कन्यायाः शुल्कं प्राप्तमनूद्य तत्र विशेषमा अन्यां चेति। वोढुः विवाहोद्यतस्य। उभेते कन्ये। एकशुल्केन एकस्या यच्छुल्कं मूल्यं तेन मनुरब्रवीत् शास्त्रमर्यादेति ।। २०४ ।।

(५) **नन्दनः**। अभिरूपांकन्यां शुल्कक्लृप्तिकाले दर्शयित्वाऽन्या कन्या तत्पित्रादिन वोढुः परिणेतुः प्रदीयते चेदेकशुल्केनाभिरूपाविषयपरिणितेन शुल्केन ते द्वेऽपिकन्ये सहोढ हेदुपयच्छेत् ।। २०४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अथ कन्यानिमित्तंकिंचिदुच्यते अन्यांचेति। वोढुः परिणेतुः अन्या दर्शयित्वा अन्या वाकन्या प्रदीयतें ते कन्ये एकशुल्केन उद्वहेत् परिणयेत् इतिमनुरब्रवीत् ।। २०४ ।।

(७) **मणिरामः**। वोढुः वराय ते उभे शुल्कलोभाद्दर्शिताऽदर्शिते कन्ये। एकशुल्के अंगीकृतेनै तेनैवैकशुल्केन एक एव वरः वहेत् परिणयेत् ।। २०४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। अन्यामिति। शुल्कदेयां कन्यां शुल्कवृद्धयेच्छाकाले निरवद्य दर्शयित्वा यदि सावद्या वरस्य दीयते तदा द्वे अपि कन्ये तेन एकेनैव शुल्कदानेन हरेत्। इति विक्रयसाधर्म्येणास्येतभिधानम् ।। २०४ ।।

**नोन्मत्तायां न कुष्ठिन्यां न च या स्पृष्टमैथुना ।।**
**पूर्वं दोषानभिख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ।। २०५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। उन्मत्तादिदोषान्कथयित्वा ददतो दण्डो नास्तीति प्रतिषेधद्वारेण कथयतो दण्डमाह। न केवलं शुल्के देया—या अन्यस्या अपि ब्राह्मादिविवाहेन विवाहयिष्य माणायाः—दत्ताऽप्यदत्ता भवति, दण्डश्च प्राप्नुयाच्चौरकिल्बिषमिति जानानस्य। अजानत षट्शतम् प्रकृतत्वात्।

**उन्मत्तायां कुष्ठिन्यां** ये कुष्ठोन्मादादयः। **या च स्पृष्टमैथुना** तस्याश्च यो दोषो मैथुन

स्पर्शः । तान्दोषान्पूर्वं वाक्प्रदानेनाख्याप्य प्रकाश्यैतद्दोषा कन्येत्येवमुक्त्वा ददतो नास्ति दण्ड इति पदयोजना ।। २०५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । या स्पृष्टमैथुना लब्धपुंयोगा तस्या दाता । अभिख्याप्य प्रकाश्य । अस्वामिविक्रयः ।। २०५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । उन्मत्तायास्तथा कुष्ठवत्यायाश्चानुभूतमैथुना तस्या ब्राह्मणादिविवाहात्पूर्वमुन्मादादीन्दोषान्वरस्य कथयित्वा दण्डार्होनभवति तेनाकथने दण्डइति गम्यते । यस्तु दोषवतींकन्यामितिवक्ष्यति ।। २०५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । कन्याप्रसंगेन ज्ञाततद्दोषाकथने दण्डइत्याह नेति । या स्पृष्टमैथुना स्पृष्टमनुभूतं मैथुनसुखं यया स्यादिति शेषः । तासां पूर्वदोषान् अनभिख्याप्य* अकथयित्वा तथा दाता चेद्दण्डंवक्ष्यमाणषण्णवतिपणानर्हतीत्यन्वयः ।। २०५ ।।

---

* अनभिख्याप्य अकथयित्वा = अनभिख्याप्यनदानं (राघ० २)

(५) **नन्दनः** । दोषवत्याः कन्यायादोषंप्रकाश्य प्रदातुनं दण्डइत्याह नोन्मत्तायाइति । कुष्ठिन्याश्च या स्पृष्टमैथुना तस्याश्च दोषानभिख्याप्य पूर्वप्रदानात्प्राक् । प्रदाता दण्डंनार्हति । अनभिख्याप्य प्रदानाद्दण्डमर्हतीत्यर्थः । सिद्धिमुन्मत्तादिग्रहणंसर्वदोषाणां सर्वासामप्युपलक्षणार्थम् । अस्वामिविक्रयःसमाप्तः ।। २०५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । उन्मत्ता या कुष्ठिन्या या स्पृष्टमैथुनापूर्वदोषान् अविख्याप्य अकथयित्वा एवंयःकन्यादाता सःदण्डमर्हति ।। २०५ ।।

(७) **मणिरामः** । उन्मत्ततादिदोषं वरायपूर्वं कथयित्वा चेत्कन्यां प्रयच्छति तदा प्रदाता न दंड्यः अकथयित्वादंड्य इत्यर्थः ।। २०५ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **नेति** । उन्मत्तायाः कन्यायास्तथा कुष्ठवत्या या चानुभूतमैथुना तस्याः ब्राह्मया (क्षा) दि विवाहादावपि दानात्पूर्वमुन्मत्तादीन् दोषान्वराय कन्यां दत्वाऽख्यापयन् दण्डमर्हति । दण्डश्च दोषवतीमिति वक्ष्यते ।। २०५ ।।

(९) **भारुचिः** । एवं च सति दोषवत्यास्तद्दोषाकथने विपर्यास···वेदने ऊढायाश्च दोषवत्या अपिपरित्यागो नास्ति ।। २०५ ।।

**ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म परिहापयेत् ।।**
**तस्य कर्मानुरूपेण देयोंऽशः सहकर्तृभिः ।। २०६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । संभूयसमुत्थानस्य प्रक्रमोऽयम् । तत्र वैदिकं तावत्संभूयकार्यमुदाहरति । **यज्ञो** ज्योतिष्टोमादिः । तत्र यागरूपानेकांगकर्मनिर्वर्तनार्थमृत्विग्वृतः—'त्वया ममेदं हौत्रं कर्तव्यमाध्वर्यवमौद्गात्रं वेति' श्रौतेन विधिनाऽनुष्ठेयमित्युपगमश्च प्रवर्तितः । कथंचिदपाटवादिना सामिकृतं **यत्परिहापयेत्**त्यजेत्तदानीं तस्य **देयो** दक्षिणांशः कर्मानुरूपेण । यावती तस्मिन् क्रतौ दक्षिणा तां निरूप्य चतुर्थे भागे कर्मणः कृते चतुर्थ इत्येनदानु-

रूप्यम्। **सहकर्तृभिः**। कर्त्तारः पुरुषाः प्रधानर्त्विजो होतृद्गात्रादीनां प्रस्तोतृमैत्रावरुण-प्रभृतयः ॥ २०६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। संभूयसमुत्थानमाह ऋत्विगिति। परिहापयेत् व्याध्यादिना न समापयेत्। सहकर्तृभिरन्यैस्तत्स्थानपूरणाय स्थितैः ॥ २०६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अथसंभूयसमुत्थानमाह ऋत्विगिति। यज्ञे कृतवरणऋत्विग्यदि किंचित्कर्मकृत्वा व्याध्यादिना कर्मत्यजति तदा तस्येतरऋत्विग्भिः पर्यालोच्य कृतानुसारेण दक्षिणांशो देयः ॥ २०६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। संभूय च समुत्थानमातिदेशिकंभविष्यतीतिकृत्वा दत्तस्यानपकर्मह ऋत्विगितिद्वादशभिः। तत्रादौ दक्षिणाया दृष्टार्थतया श्रुतिरूपत्वं प्रकटयन्नाह ऋत्विगिति। स्वकर्माध्वर्यवादिकं हापयेत् त्यजेत् वृतः वरणं मानतः व्याध्यादिना कर्तृभिःसह संमन्त्र्य तैस्तदीयकर्मसमापयद्भिःकर्मानुरूपोंशोदेयः ॥ २०६ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ संभूय समुत्थानं प्रस्तौति ऋत्विग्यदीति। कर्मानुरूपेणांशो देयः कर्मचतुर्थैऽशे कृते दक्षिणायाश्चतुर्थांशोदेयइत्यादि। सहकर्तृभिः सहकारिभिः ऋत्विग्भिः ॥ २०६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यदि ऋत्विग्यज्ञे वृतः स्वकर्म व्याध्यादिना परिहापयेत् त्यजेत तस्यअन्यकर्तृभिःसहअन्यर्त्विग्भिःसह। तस्य कर्मानुरूपेण अंशोदेयः ॥ २०६ ॥

(७) **मणिरामः**। कर्मकर्तृभिः सह ॥ २०६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। संभूय च समुत्थानमाह **ऋत्विगिति**। प्रधानऋत्विक् होमादिश्रौतकरणेन कृतकरणो ज्योतिष्टोमादौ यदि व्याधिना स्वं कर्म परित्यजेत् तदा तस्य तदनुयाचितमित्रावरुणादिभिः तस्य कृतकर्मानुसारेण दक्षिणा दातव्या ॥ २०६ ॥

(९) **भारुचिः**। क्रमप्राप्तं सम्भूयसमुत्थानमधुनोच्यते यतस्तदर्थं श्रौतमुदाहरणं दर्शयति। प्रधानर्त्विक्प्रक्रान्तक(र्मा ऽ र्म) यदि परिहापयेत् स्वकर्मदेशान्तरगमनपटलादिभिरर्थलक्षणैः तस्य कर्मानुरूप्येण दक्षिणांशः स्यात्। कथं कर्मणः···या अपि चतुर्भागः एवं त्रिभागादिष्वपि याज्यं स्वकर्तृभिरिति प्रस्थातृप्रभृतिंस्तत्पुरुषानाह ॥ २०६ ॥

**दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन् ॥**
**कृत्स्नमेव लभेतांशमन्येनैव च कारयेत् ॥ २०७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। माध्यन्दिने सवने दक्षिणा दीयन्त इति। तत उपरिष्टात्कर्म त्यजतामप्रत्याहरणीयां **लभेत**–दक्षिणामितिशेषः–न प्रतीपं त्याजयेदित्यर्थः। अन्यां भृतिं दत्त्वा **अन्येन** पुरुषेण यजमानस्तत्कर्म समापयेत्।

'ऋत्विग्भिः कर्म कर्त्तव्यं वरणाच्च ऋत्विजो भवन्ति–तच्च नियतकाले प्राक्कर्मण आरंभात्–अंतःक्रतु क्रियमाणं विगुणं भवति–समाप्तिश्चापि कर्तव्येति–विगुणं चेत्समापनीय-

मंगान्येव तदन्यकर्तृकाणि करिष्यामीति'–बुद्धिनिवृत्त्यर्थमुक्तमन्येनैवेति। तावदेव विगुणं यदशक्यं–शक्यं तु सर्वं कर्तव्यम्।

केचित्कारयेदिति ऋत्विजोऽपि संबन्धमाहुः। गृहीत्वा दक्षिणां वाऽधिकां दद्यात्स्वयमशक्नुवन्। प्राग्दक्षिणाभ्यः शेषकर्मसमापने यजमान एवाऽधिक्रियते ।। २०७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अन्येनैव कारयेदृत्विकः स्वकार्यशेषम् ।। २०७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। माध्यंदिनसवनादौ दक्षिणाकाले दक्षिणासु दत्तासु व्याध्यादिना कर्म परित्यजन्नतु शाठ्यात् कृत्स्नमेव दक्षिणाभागंलभेत कर्मशेषंप्रकृतमन्येन कारयेत् ।। २०७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तस्यैवाप्तदक्षिणस्य विशेषमाह दक्षिणास्विति। स्वयं परित्यज्यान्येन कारयेच्चेत्कृत्स्नं लभेतान्यथा न संपूर्णं लभेतेतिभावः ।। २०७ ।।

(५) **नन्दनः**। अस्यापवादमाह दक्षिणास्विति परिहापयन् त्यजन्न प्रतिदद्यात्। अन्येन स्ववर्ज्यपुरुषेण स्वकर्मकारयेत् ।। २०७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। कृत्स्नमेव अंशं लभेत। च पुनः अन्येन कर्म कारयेत् ।। २०७ ।।

(७) **मणिरामः**। दक्षिणासुदत्तासु पंचमदिने माध्यंदिने सवने दक्षिणादानसमये चेत्कर्मत्यजतितदेत्यर्थः ।। २०७ ।।

(८) **गोविन्दराजः। दक्षिणास्विति**। दक्षिणासु च माध्यन्दिने सवने दक्षिणानयन्तीत्येवमादिदक्षिणाकाले दत्तासु दैवात्स्वसाध्यं कर्म परित्यजन् कृत्स्नमेव दक्षिणाकर्मशेषं चान्येनासौ प्रकृत ऋत्विक् कारयेत् ।। २०७ ।।

(९) **भारुचिः**। अस्यापवादः–दक्षिणादानादूर्ध्वं तेषां स्वकर्माकुर्वतां कारणान्तरतो न प्रत्याहरणीया दक्षिणास्तेभ्यः अकुर्वा···व्यौ परिशिष्टानि कर्माणि अन्येनैव च कारयेत्। तानि तत्पुरुषेण वान्येन वा परिशिष्टकर्मानुरूपं यत्किञ्चिद्दत्वा इतरथा ह्यपरिसमाप्तं दक्षिणया तत्कर्म यजमानार्थं न स्यात्। इदमेव शास्त्रं परिशिष्टकर्मानुष्ठातुर्दक्षिणादाने विज्ञेयम् ।। २०७ ।।

**यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युरुक्ताः प्रत्यङ्गदक्षिणाः ।।**
**स एव ता आददीत भजेरन्सर्व एव वा ।। २०८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। इदमपरं प्रकृतोपयोगि वैदिकं कथ्यते। वैदिके कर्मणि सामस्त्येन दक्षिणा आम्नायंते न प्रतिपुरुषं विभागेन–'तस्य द्वादशशतं दक्षिणेति'। तच्चातिदेशेन ऋत्वन्तराणि तद्विकाराण्यनुगच्छन्ति राजसूयादीनि। तत्र च केषुचिदङ्गकर्मसु प्रतिपदमन्या दक्षिणाऽऽम्नाता पुरुषविशेषसंयोगेन–'हिरण्मये प्रकाशवदध्वर्यवे' इत्यादि। ताः **प्रत्यङ्गदक्षिणाः** संपद्यन्ते। किमध्वर्योश्चातुर्विद्यावादिकवद्दातिसंबन्धः–सर्वेषामृत्विजां दक्षिणा –अध्वर्युस्तु द्वारमात्रम्–उत तस्यैव सा–अन्येषां प्रकृतांशः इति संशयोपन्यासार्थः श्लोकः।

प्रतिपदं पुरुषविशेषाश्रया अङ्गेषु दक्षिणाः **प्रत्यङ्गदक्षिणाः**। अथवा वीप्सायां प्रत्यङ्ग-शब्दः। अङ्गमङ्गमाश्रिताः **प्रत्यङ्गाः**। **स एव ता आददीत**। मुख्य एव पुरुषस्य ददातिना संयोग उत कर्तृत्वाविशेषादन्येऽपि भजेरँल्लभेरन्—प्रधानदक्षिणा इव इति कथयित्वा प्रश्नः। पुरुषविशेषमुक्तास्तदर्था एवेति निर्णयः। एवं ददातिर्मुख्यार्थो भवति। पुरुष-संयोगश्च नादृष्टार्थः॥ २०८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रत्यङ्गदक्षिणाः प्रतिस्वकर्मणां दक्षिणाः। स एव वाददीत यमृत्विजं प्रति यथोद्यते। सर्वेभजेरन् ऋत्वग्विशेषानित्युक्तिः॥ २०८॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्मिन्कर्मण्याधानादावङ्गमङ्गंप्रति या दक्षिणा यत्संबन्धेन श्रुताः स्युः स एव ता आददीत न तत्तद्भागमात्रं सर्वे विभज्य गृह्णीरन्निति संशयः॥ २०८॥

(४) **राघवानन्दः**। दक्षिणाप्रसंगेन तद्विभागमाह यस्मिन्निति द्वाभ्याम्। आधानादौ प्रत्यङ्गदक्षिणाः अङ्गमङ्गंप्रति या भिन्नभिन्नकारिकादक्षिणा यत्संबन्धेन श्रुताहौत्रमित्यादिना समाख्याताः सएवर्त्विक् ताःसर्वाः प्राप्नुयादुत सर्वे वेतिसंशये। सएवेति तु पूर्वपक्षे॥ २०८॥

(५) **नन्दनः**। सएव तस्य कर्मणः॥ २०८॥

(६) **रामचन्द्रः**। यस्मिन्कर्मणि याःप्रत्यङ्गकर्मदक्षिणाउक्ताःस्युस्तादक्षिणाःसएव पुरुषआददीत। सर्वएव वाभजेरन्वा॥ २०८॥

(७) **मणिरामः**। प्रत्यंगदक्षिणाः उक्ताः यस्मिन्कर्मणि आधानादौ। अंगमंगंप्रति या दक्षिणा यत्संबन्धेनश्रुताः स्युः सएव ता आददीत सर्वेवा ऋत्विजो विभज्य गृह्णीरन्नितिसंशयः॥ २०८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यस्मिन्निति**। यस्मिन्कर्मणि आधानाग्नौ अङ्गमङ्गं प्रति याः दक्षिणाश्च उदिता स्युः यथारब्धमध्वर्युमित्यादौ प्रधानदक्षिणाश्च गावो देयाः आदिना कियत् उद्देशेन श्रूयन्ते स एव श्रुत त्वात्स्वीकुर्यात्। अथ पर्षद्वारिकावत् प्रतिग्रहमात्राव्या-पारात्सर्व एव उदितः इति सन्देहे उपन्यासः॥ २०८॥

(९) **भारुचिः**। अनेन च प्रसङ्गेनेदमपरं तद्गतमेवोच्यते प्रत्यङ्गदक्षिणा सर्वदा संशय्यन्ते किममीषामृत्विजां प्रतिग्रहनियमः। चातुर्विध्य (पि ? वि) नियुक्तपारिक-ब्राह्मणवत् उत पदार्थस्वरूपस्वाभाव्यात् तदर्थेनेति न्यायविकल्पोऽनूद्यते॥ २०८॥

**रथं हरेत चाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम्॥**
**होता वाऽपि हरेदश्वमुद्गाता चाप्यनःक्रये॥ २०९॥**

(१) **मेधातिथिः**। **रथमध्वर्युराधाने हरेत्। ब्रह्मा च वाजिनं** वेगवन्तमश्वम्। **होता वा अश्वं** वृषमन्यं वा। कासुचिच्छाखास्वाधान एता दक्षिणाः। अतः सोम**क्रये** यच्छकटं तदुद्गातुः। तत्र शकटेऽन्यतरोऽनड्वान्युक्तः स्यात् अन्यतरो वियुक्त इत्यपि पठ्यते। तेन च सोमः क्रीत उपाह्रियते।

अन्ये त्वपूर्वमन आहुर्न सोमोपाहरणार्थम्, न हि क्रयेण शक्यते विशेषयितुम् ।। २०९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आद्यमुदाहरति रथमिति। आधाने अग्न्याधाने। अश्वं-होता ज्योतिष्टोमे। क्रये सोमक्रये ।। २०९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अत्र सिद्धांतमाह रथमिति। केषाचिच्छाखिनामाधानेऽध्वर्यवे रथोदेयत्वेनाम्नायते। ब्रह्मणे वेगवानश्वः होत्रे चाश्वः। उद्गात्रे सोमक्रयवहनशकटमतो-व्यवस्थाम्नानसामर्थ्याद्या दक्षिणा यत्संबन्धत्वेन श्रूयते स एव तामाददीत ।। २०९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। व्यवस्थामाह रथमिति। आधाने कर्मणि। अनः शकटम् क्रये सोमक्रयार्थं यदनः वाजीभूत्वादेवानवहदितिश्रुतेरश्वविशेषं वाजिनम् ।। २०९ ।।

(५) **नन्दनः**। तत्रैवास्यविकल्पस्यापवादमाह। रथंहरेदिति ।। २०९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अध्वर्युः रथं हरेत गृह्णीयात्। आधाने अग्न्याधाने ब्रह्मा वाजिनं हरेत्। होता ज्योतिष्टोमे अश्वंहरेत्। च पुनः उद्गाता क्रये सोमक्रये अनः हरेत्। अनः शकटे मातरिश्वेत्यमरः ।। २०९ ।।

(७) **मणिरामः**। अत्रसिद्धांतमाह। रथमिति। आधाने केषांचित् शाखिनां क्रये सोमक्रयवहनशकटं। तथा च व्यवस्था न सामर्थ्याद्यत्संबंधेन या दक्षिणा श्रूयते स एव तामाददीतेति सिद्धांतः ।। २०९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। अत्र श्रुतत्वात्तादर्थ्यपक्षमाश्रित्य निर्णयमाह रथमिति। अध्वर्योरथी देयत्वेन श्रुतोवसतामेव स्वीकुर्यात्तथाधाने ब्रह्मा अश्वो देय इति तस्य श्रुतेः आददीत होताऽप्यश्वमात्मसात्कुर्यात् उद्धातापि सोमक्रये यच्छकटं तद्गृह्णीयात् ।। २०९ ।।

(९) **भारुचिः**। तादर्थपक्षं चाश्रित्यतदधुनोच्यते। क्रतौ नानाशाखावस्थितानां अङ्गदक्षिणानां बह्वीनां प्रदर्शनार्थः श्लोकः। एवं तावदाधाने प्रधानर्त्विग्दक्षिणा-न्नासोमिकेष्वति ।। ।। २०९ ।।

**सर्वेषामर्धिनो मुख्यास्तदर्धेनार्धिनोऽपरे ।।**
**तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पादिनः ।।२१० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **सर्वेषामृत्विजां ये मुख्यास्तेऽर्धिनः**। यावती तस्मिन्क्रतौ साम-स्त्येन दक्षिणाऽऽम्नाता तस्यास्तेऽर्द्धिनोऽर्द्धहराः। सोमयागेषु हि षोडशर्त्विजस्तत्र चत्वारो मुख्या होताऽध्वर्युर्ब्रह्मोद्गातेति, तेषामर्धम्। 'तस्य द्वादशशतं दक्षिणेति' ततोर्धं षट्पञ्चा-शत्। **तदर्धेन** अष्टाविंशत्यार्धिनस्तद्वन्तः—**अपरे** येषां ततोऽनन्तरं वरणमाम्नातं मैत्रावरुणा-प्रतिप्रस्थातृब्राह्मणाच्छंसिप्रस्तोतारः। **तृतीयिनः तृतीयांशाः**। अंशशब्दोऽर्धशब्देन समा-नार्थोऽर्धशब्दश्च नावश्यं समप्रविभाग एव—किंचिन्न्यूनेऽधिकेऽपि सामीप्येन वर्तते। तेन तृतीयो भागः षट्पञ्चाशतः षोडश गृह्णन्ते। एकैकस्य चतस्रो भवन्ति। समस्ततृतीयं भागं प्रयच्छन्ति षट्पञ्चाशतस्तृतीयं च। होतुरच्छावाकोध्वर्योर्नेष्टा ब्रह्मणोग्निदुद्गातुः

प्रतिहर्ता । ये च **पादिन**स्ते चतुर्थं भागं कर्मणः कुर्वन्तीति 'पादिनः' । चतुर्थे च स्थाने मैत्रावरुणस्थानान्ते । **चतुर्थांशाः** । द्वादशसमुदाये पूर्ववत् । एवं "तं शतेन दीक्षयन्ती"त्यत्रापि क्लृप्तिः कर्तव्या–'अर्धिनो दीक्षयति' 'पादिनो दीक्षयती'त्येवमादिभिः शब्दैः । तत्र द्वादशक्रमविधिरेव । अन्यत्र श्रुतो व्यवहार इहापि तयैव रीत्या कृत इति ।। २१० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । द्वितीयमुदाहरतिसर्वेषामिति । शतंगावोग्निष्टोमे दक्षिणा तत्र यदर्धं तद्भागिनः सर्वेषांमुख्याः होत्रध्वर्युब्रह्मोद्गातारः । अर्धमिति किंचिन्न्यूनंग्राह्यं अष्टाचत्वारिंशद्धि वस्तुतो भवन्ति । अपरेचत्वारोमैत्रावरुणाद्यास्तद्भागार्धेऽनार्धिनोऽर्धभागाः । तृतीयिनस्तृतीयास्तृतीयस्थानाअच्छावाकादयस्तृतीयिनोमुख्यदक्षिणास्तृतीयांशिनः । चतुर्थांशाश्चतुर्थस्थानभागिनोग्रावस्तुदादयः पादिनः पादभागाः ।। २१० ।।

(३) **कुल्लूकः** । संप्रतिपत्तिविधाने दक्षिणाविभागमाह सर्वेषामिति । तं शतेनदीक्षयतीति श्रूयते तत्र सर्वेषांषोडशानामृत्विजांमध्ये ये मुख्याऋत्विजोहोत्रध्वर्युब्रह्मोद्गातारः समग्रदक्षिणायास्तेऽर्धहाराः । अष्टचत्वारिंशद्गोभाजोभवन्ति अतएव कात्यायनेन यद्वादशाद्येभ्य इति प्रत्येकद्वादशगोदानंविहितम् । यद्यपिशतस्यार्धपञ्चाशद्भवति तथापीह न्यूनार्धग्रहणेनापि मेऽर्धिनउच्यन्ते सामीप्यात् । अपरे मैत्रावरुणयोः प्रतिप्रस्थातृब्राह्मणच्छंसिप्रस्तोतारस्ते मुख्यर्त्विग्गृहीतदक्षिणार्धग्रहणेनार्धिनउच्यन्ते तृतीयिनोऽच्छावाकाग्नीध्रप्रतिहर्तारस्तेमुख्यर्त्विग्गृहीतस्य तृतीयमंशंलभन्ते पादिनस्तुग्रावस्तुदुन्नेतृपोतृसुब्रह्मण्याएते मुख्यार्त्विक्गृहीतस्य चतुर्थमंशंलभन्ते एतच्च षट्पट्द्वितीयेभ्यश्चतस्रः चतस्रश्चतृतीयेभ्यस्तिस्रस्तिस्रश्चतुर्थेभ्य इति सूत्रयता कात्यायनेन स्फुटीकृतम् ।। २१० ।।

(४) **राघवानन्दः** । तं शतेन दीक्षयन्तीत्यादिसंख्याश्रवणे विभागविशेषमाह सर्वेषामिति । सर्वेतिगवामितिशेषः सर्वेषां षोडशानामृत्विजां ये मुख्याऋत्विजोहोत्रध्वर्युब्रह्मोद्गातारः ते अर्धिनोऽष्टचत्वारिंशद्भागभागिनः अपरेमैत्रावरुणप्रस्थातृब्राह्मणाच्छंसिप्रस्तोतारः तदर्धिनः मुख्यर्त्विग्गृहीताष्टचत्वारिंशदर्धं । ततएवार्धिनश्चतुर्विंशतिभागभागिनः । तृतीयिनोच्छावाकनेष्टा अग्नीध्रप्रतिहर्तारस्तु मुख्यर्त्विग्गृहीततृतीयांशभागिनः । अतएव षोडशभागभाजः पादिनः ग्रावस्तुनेतृपोतृसुरापास्ते मुख्यर्त्विक्चतुर्थांशाः । अतएव द्वादशभागभाजः । इतिप्रत्येकं द्वादश मुख्येभ्यः षट् द्वितीयेभ्यश्चतस्रस्तृतीयेभ्यस्तिस्र इतरेभ्यइति कात्यायनसूत्रेणैव तत्स्पष्टीकृतम् । दक्षिणायाश्रुतिरूपत्वं दीक्षितमदीक्षिता दक्षिणाभिः परिक्रीताऋत्विजोयाजयेयुरिति श्रुतिसिद्धम् गावोऽत्र स्त्रियः गावोवै देवमातर इति श्रुतेः । एवंसहस्रदक्षिणेन यजेतेत्यादावपि विभागउन्नेयः ।। २१० ।।

(५) **नन्दनः** । सर्वेषां षोडशानामृत्विजांमध्येहोताध्वर्युरुद्गातात्रह्मेत्येते मुखसंज्ञाश्चत्वारः समस्तायाः ऋतुदक्षिणायार्द्धिनोर्द्धभाजः स्युः । मैत्रावरुणः प्रतिप्रस्थाता प्रस्तोता ब्राह्मणाच्छंसीत्यपरेऽर्धिसंज्ञाश्चत्वारस्तदर्द्धेन मुख्यर्त्विग्भागार्द्धेन भागिनःस्युः । अच्छावाकोनेष्टाप्रतिहर्त्ताग्नीध्रइत्येते तृतीयसंज्ञाश्चत्वारस्तृतीयांशामुख्यभागतृतीयभागभाजः स्युः । ग्रावस्तुदुन्नेता सुब्रह्मण्यः पोतेत्येते पादिनःसंज्ञाश्चत्वारश्चतुर्थांशभाजः स्युः । तद्यथा

दक्षिणांपञ्चविँशतिधा विभज्य प्रथमस्य चतुष्टयस्य द्वादशभागाःस्युः। द्वितीयस्य षट्। तृतीयस्य चत्वारः। चतुर्थस्य तृतीय इति प्रथमस्य सार्द्धद्वादशभागप्राप्तौ तस्यामपि यद्वादशभागाःस्युः। द्वितीयस्य षट्। तृतीयस्य चत्वारः। चतुर्थस्य तृतीयइति प्रथमस्य सार्द्धद्वादशभागप्राप्तौ तस्यामपि यद्वादशभागकल्पना चतुष्टयानामन्येषांभागकल्पना या दुःशकतामाभूदिति सर्वेषामर्द्धिनोमुख्याइत्यत्रार्द्धिशब्दः। किंचिन्न्यूनार्थवाचोमन्तव्य इति ।। २१० ।।

(७) **मणिरामः**। संप्रतिपत्ति विधाने दक्षिणविभागमाह। **सर्वेषामिति**। तं शतेन दीक्षयतीति श्रूयसे तत्र सर्वेषां षोऽशर्त्विजांमध्ये मुख्याः ब्रह्मोद्गातृहोत्रध्वर्यणः। अर्द्धिनः समग्रदक्षिणायअर्द्धहराःअष्टाचत्वरिंशद्गोभाजोभवंति। यद्यप्यर्द्ध वंशाशद्भवति तथापि न्यूनाद्ग्रहणेनाप्यर्द्धिन उच्यंते। अपरे मैत्रावरुण प्रतिप्रस्थातृब्राह्मणाछंसि प्रस्तोतारः। अर्द्धेन अर्द्धिनः चतुर्विंशतिगोभाज इत्यर्थः। तृतीयिनः अछावाकनेष्टाग्नीध्रप्रतिहर्तारः। यांशाः मुख्यर्त्विगृहीतस्य तृतीयमंशं लभते षोडशगोभाजो भवंतीत्यर्थः। वादिनःत्वष्टृपोतृग्रावस्तुत्सुब्रह्मण्यः। एतेचतुर्थांशाः मुख्यर्त्विगृहीतस्य चतुर्थांशाः। द्वादशगोभाजो भवंतीत्यर्थः।। २१० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। अधुना प्रधानदक्षिणाविधिमाह **सर्वेषामिति**। तं शतेन दीक्षयतीति श्रूयते। तत्र सर्वेषां ऋत्विजां मध्यांशे मुख्या ऋत्विजो होत्रध्वर्युर्ब्रह्मोद्गातारक्ते अर्धहरा अष्टाचत्वारिंशगोभाजो एवं तदर्धादि संख्याभिधानं वक्ष्यमाणं समञ्जसं भवति। कात्यायनश्च द्वादश द्वादशाद्येभ्यः इत्याह। तस्या अष्टा चत्वारिंशतोऽर्धेन चतुर्विंशत्याश्च परे द्वितीयस्थाना प्रति प्रस्थातृमैत्रावरुण ब्रह्माछंसि प्रस्तोतारोऽर्धवन्तः कात्यायनश्च षट् षट् द्वितीयेभ्य इत्याह। तृतीय स्थानिनीच्छावाकान शब्द अग्नीन् प्रतिहर्तारोऽष्टाचत्वारिंशत्तृतीयांशषोडशगोभाजः। कात्यायनश्चतस्रचतस्रस्तृतीयेभ्य इति आह, पादिनश्चतुर्थव्यवस्थाः पादसुब्रह्मण्याग्रावष्टुनोतारे अष्टा चत्वारिंशश्चतुर्थांश द्वादशगोभाजः। कात्यायनश्च तिसृतिसृ इतरेभ्य इत्यत आह।। २१० ।।

(९) **भारुचिः**। ताञ्छतेन दीक्षयन्तीवचनं तावदाधाने। प्रधानर्त्विग्दक्षिणानां सौमिकेष्वपि सर्वेषामर्धिनो मुख्यास्तदर्धार्धिनः परे तृतीयांशाः। चतुर्थांशास्तु पादिनः। ताञ्छतेन दक्षयन्तीवचनदशाष्टचत्वारिंशद् भवन्तीति। एवं तदर्धादिव संख्यानिर्देश उत्तरत्र समर्थो भवति। तेनार्धिनोर्धिनोऽध्वर्युब्रह्महोतृन् होतारो मुखा ऋत्विजो भवन्ति। तदर्धेन चतुर्विंशत्या अर्धिनोऽपरे उक्तेभ्यो द्वितीयस्थानं प्रतिप्रस्थातुमैत्रावरुणब्राह्मणाच्छंसिप्रस्तोतारः। एवं च कात्यायनष्षट् षड्द्वितीयेभ्यो वक्ति। तृतीयिनः तृतीयं स्थानं येषां त इमे तृतीयिनस्तृतीयांशाःसंक्षेपे(न ? ण) शोडशपशुभाजः कात्यायनोऽपि चैवमेव वक्ति। चतस्रस्तृतीयेभ्य इति प्रत्येकं चतुर्थ अंशो येषां त इमे चतुर्थांशाः। समुदायतो द्वादशपशुभाजः पादिनो भवन्ति। कात्यायनोऽपि तिस्रस्तिस्त्र इतरेभ्यः। आद्यसंख्यापेक्षया पाद एषामस्तीति पादिनःचतुर्थस्थाना उच्यन्ते स्थाने। स्थानिनां व्यपदेशोऽयम्। चतुर्थ अंश एषां त इमे चतुर्थांशाः। समुदायतो द्वादशपशुभाजः पादिनो भवन्ति। चतुर्थांशशब्दस्तु भागकल्पकः समासपदेन।

तथा चोक्तं विपर्ययेण वैतद्व्याख्येयम्। उभयनिर्देशश्चात्रपादपूरणार्थो विज्ञेयः। यद्यप्यन्यतरस्मादुभयार्थप्रतीतिः। अयं च सर्वो विधिर्न्यायश्रुतिसिद्धो दृष्टान्तत्वेनेहोपादीयते। यथा –सम्भूयैकं कर्म सहकुर्वता गुरुलघुता(न ? म) वेक्ष्यानवेक्ष्य वा। वचनसामर्थ्याद्विषमांशप्रक्लृप्तिः एवम्॥ २१०॥

**संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः॥**
**अनेन विधियोगेन कर्तव्यांऽशप्रकल्पना॥ २११॥**

(१) **मेधातिथिः**। यथा यज्ञे यो बहूनि कर्माणि कायक्लेशकरणे विद्वत्तातिशयसाध्ये च नियुक्तो भूयसीं दक्षिणां लभते न्यूनकर्मकारी तु न्यूनां तद्वल्लौकिकेषु गृहचैत्यादिकारिषु **संभूय** संहत्य वर्धकिस्थपतिसूत्रधारादिषु स्वसमयप्रसिद्धो यावानंशः सूत्रधारस्य यावान्स्थपतेस्तत्रानेन **विधियोगेन**। 'विधि'र्वैदिकोऽर्थः तत्प्रसिद्धा व्यवस्था' विधियोगेन'वैदिक्या यज्ञगतया व्यवस्थयेत्यर्थः।

एवं नाटकादिप्रेक्षायां नर्तनगायनवादकेषु भागप्रक्लृप्तिः। यद्यपि सर्वे विद्वांसः सर्वकर्मानुष्ठानशक्ताश्च तथापि कर्मानुरूप्येण भागो न पुरुषानुरूप्येणेति संभूयसमुत्थानम्॥ २११॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स्वानि कर्माणि वाणिज्यादीनि। अनेन क्रमयोगेन विधिप्रकारसंबन्धेन श्रमानुरूपधनविभागेन मूलसाम्येपि तल्लाभविभागस्तदार्जनश्रमानुरूपएवेति। संभूयोत्थानम्॥ २११॥

(३) **कुल्लूकः**। मिलित्वा गृहनिर्माणादीनि स्वकर्माणि लोके स्थपतिसूत्रधार्यादिभिश्च मनुष्यैः कुर्वद्भिरनेन यज्ञदक्षिणाविधिनाश्रयणेन विज्ञानव्यापाराद्यपेक्षया भागकल्पना कार्या॥ २११॥

(४) **राघवानन्दः**। संभूयच समुत्थानमित्युक्तं तत्रातिदिशति समिति। इह लौकिके स्मार्ते च कर्मणि। एतद्दक्षिणाविभागः स्थपतिसूत्रधारादिभिः। अनेन मुख्यामुख्यानुरूपविभागेनेत्यन्वयः॥ २११॥

(५) **नन्दनः**। एवमुक्तां वैदिकीं विषमांशकल्पनां लोकेऽप्यतिदिशति संभूय स्वामिकर्माणीति। वाणिज्यादिषु भागवैषम्यकल्पनं मूल्यप्रयत्नगुरुलाघवापेक्षया कल्पनीयमिति। इति संभूय समुत्थानं समाप्तम्॥ २११॥

(६) **रामचन्द्रः**। स्वानि कर्माणि वाणिज्यादीनि कुर्वद्भिः मानवैःसंभूय मिलित्वा॥ २११॥

(७) **मणिरामः**। संभूय एकीभूय स्वानिकर्माणि गृहोत्थापनादीनि अनेन विधियोगेन यज्ञदक्षिणाप्रकारेण॥ २११॥

(८) **गोविन्दराजः**। **संभूयेति**। एकीभूय गृहनिर्वर्तनादीनि स्वकार्याणि स्थपतिवर्धकिसूत्रधारादिभिः मनुष्यैः सम्पादयद्भिरनेक मुक्त विधानाश्रयेण विज्ञान व्यापाराद्यपेक्षया भागकल्पना कार्या॥ २११॥

(९) **भारुचिः**। एकस्मिन् गृहकरणादौ सूत्रकारवर्धकिस्थपत्यादीनां गुरुलघुतामवेक्ष्यानवेक्ष्य वा यथास्मरणं कर्तव्यांशप्रकल्पना ॥ २११ ॥

**धर्मार्थं येन दत्तं स्यात् कस्मैचिद्याचते धनम् ।**
**पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत् ॥ २१२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यः कश्चिदाह 'सान्तानिकोऽहं यियक्षुर्वा देहिमे किंचिदिति तस्मै यदिदत्तं–भवेत्–स च न यजेत न विवाहकर्मणि प्रवर्तेत–तद्धनं द्यूतेन वेश्याभिर्वा क्षपयेदन्यत्र वा विनियुञ्जीत वृद्धिलाभकृष्यादौ–**न देयं तस्य** तद्दत्तस्य। दानप्रतिषेधो नोपपद्यते–अतः प्रत्याहरणीयमिति वाक्यार्थः।

अथवा दत्तान्तो गौणो व्याख्येयः–**दत्तं** प्रतिश्रुतं न **देयम्**। तथा च गौतमः (५/२१) "प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात्"।

किंपुनरत्र युक्तम्।

उभयमित्याह। दत्तस्य प्रत्याहरणं प्रतिश्रुतस्य वाऽदानम्। तथा च स्मृत्यन्तर उभयं पठितम्। आह हि नारदः (८/१०–११) "कर्त्ताहमेतत्कर्मेति" उपक्रम्य "यद्दत्तं स्यादविज्ञानाददत्तं तदपि स्मृतम्" इति। प्रयोजनविशेषोद्देशेन यद्दत्तं तस्मिन्ननिर्वर्त्यमाने व्यवस्थितमपि प्रतिग्रहीतुर्गृहादाहर्त्तव्यम्। दानस्योपक्रममात्रं तदानीं समर्पणं समाप्तिस्तु निर्वृत्तप्रयोजनेति नारदस्य मतम् ॥ २१२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दत्तानपाकर्माह धर्मार्थमिति। धर्मार्थं स्वधर्मसिद्ध्यर्थम्। न तथा धर्मार्थं भवति दानानर्हत्वादिना प्रतिग्रहीतुः। केचित्तु यागादिधर्मार्थे याचमानाय दत्तं तथा न भवति यदि तेन यागादि न करोतीति व्याचक्षते ॥ २१२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। इदानींदत्तानपकर्माह धर्मार्थमिति। येन यागादिकर्मार्थं कस्मैचिद्याचमानाय धनंदत्तंप्रतिश्रुतंवा पश्चाच्च तद्धनमसौ यागार्थे न विनियुञ्जीत तदा तद्दत्तमपि धनंग्राह्यं प्रतिश्रुतंच न देयं। यदाह गौतमः प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात्। ॥ २१२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच तवेदं यज्ञादिकर्म करिष्यामीतिकृत्वा याचते यद्दत्तं प्रतिश्रुतंवा सचेत्तत्कर्मनकरोति पुनस्तद्ग्राह्यमित्याह धर्मार्थमिति। नतथातत्स्यादत्तंनस्यात् अपितुदानस्यौपाधिकत्वात् उपाध्यभावेन स्वत्वापादनादित्यर्थः ॥ २१२ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ दत्तानपकर्मात्मकं विवादपदं श्लोकद्वयेनाह धर्मार्थं येनेति। कस्मैचिद्याचते धर्मार्थं येन धनंदत्तंस्यात्पश्चाच्चेन्न तथा तद्धर्मार्थेन मया दत्तमिति प्रदातानुशयादभियुक्तंचेदित्यर्थः। तस्मै प्रदात्रे तेन प्रतिग्रहीत्रा तद्धनं नदेयं प्रदात्रा नापहार्यमित्यर्थः ॥ २१२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। कस्मैचित्भिक्षुकाय धनं याचते धर्मार्थं दत्तं स्यात् पश्चाद्दत्तानन्तरं तद्धनं **न तथा** तत्स्यात् तस्य स्वामिनः न देयं पूर्वस्वामिना तस्यग्रहीतुःतद्भवेत्विवादपरम्॥ २१२ ॥

(७) **मणिरामः**। इदानीं दत्तानपकर्माह। धर्मार्थमिति। न तथा तत्स्यात् यज्ञाद्यर्थ-गृहीतद्रव्येण यज्ञादिकं नकृतं चेत्स्यात्तदा तन्न देयं परावृत्य ग्राह्यमित्यर्थः ।। २१२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **धर्मार्थमिति**। येन यागाद्यर्थं भिक्षमाणाय कस्मैचिद्धनं दत्तं प्रतिज्ञातच्च स्यात्पश्चात्तद्धनमसौ यागार्थं यदि न युञ्जीत तदाऽस्य प्रतिश्रुतं न देयं, दत्तं वा प्रत्याहरणीयम् ।। २१२ ।।

(९) **भारुचिः**। न ह्यशिल्पेषु व्यवहारेषु वा मनुष्याणां तुल्यता शक्या ग्रहीतुमदत्ता-नवकर्मप्रदर्शनार्थमिदमाह स्वनिगदोपवर्णितः श्लोकः ।। २१२ ।।

**यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः ।।**
**राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः ।। २१३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **संसाधनं** राजनिवेदनादिना ऋणवत्प्रतिश्रुतस्य मार्गणं—स्वीकृतस्य प्रतियाच्यमानस्य राजनिवेदनं—अयं मह्यं दत्त्वा प्रतिजिहीर्षतीति सिद्धस्य दृढीकरणं—संसा-धनमेतदेतत्।

**दर्पाल्लोभेनेति** कारणानुवादः।

एवं कुर्वतो दण्डः **सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिरिति**। चौरदण्डमाशङ्कमानः सुवर्णं विधत्ते। अचौरशङ्कया च दत्तं किल तेन तस्मै न स्वयं हृतं कथमयं चौरः स्यादिति शङ्का निवर्तयितुं स्तेयशब्दः प्रयुक्तः। सत्यपि चौरत्वे वाचनिकः सुवर्णदण्डोऽन्यासु क्रियासु चौरवद्व्यवहर्तव्यः ।। २१३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सुवर्णदाप्यः शतम् ।। २१३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यदि तद्दत्तमसौ गृहीत्वा लोभादहंकाराद्वा न त्यजति प्रतिश्रुतं वा-धनबलेन गृह्णाति तदा तस्य चौर्यपापस्य संशुध्यर्थंराज्ञा स्वर्णदण्डंदापनीयोभवति ।। २१३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। याचयितुस्तदादाने दण्डमाह यदीति। संसाधयेत् प्रतिश्रुतं-गृह्णीयात्। दत्तं नदद्याद्वा। अदाने हेतुः। दर्पेपि। दर्पोराजपुत्रादिबलम् स्तेयस्येत्यनेन तस्य स्वामिनो धनं दापनीयम्। राज्ञा ससुवर्णो दण्डत्वेन ग्राह्यइत्यर्थः ।। २१३ ।।

(५) **नन्दनः**। संसाधयेदनुतिष्ठेत्। तत्प्रतिग्रहणकाले प्रदात्रे निवेदितं धर्मं विवाहय-ज्ञादिकंमानवः प्रतिग्रहीता स्वर्णप्रतिभाषितं पञ्चकृष्णलिको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडशेति तद्दाप्यो दण्डरूपेण। अपह्नतार्थे प्रतिपादनमर्थप्राप्तमेव। इतिदत्तानपाकर्म समाप्तम्। ।। २१३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। दर्पाल्लोभेनवा पुनर्यदि तत्संधारयेत्तस्य स्तेयस्य निष्कृतीराज्ञा-सुवर्णदाप्यःस्यात् दापनीयः स्यात् ।। २१३ ।।

(७) **मणिरामः**। यदितत् धर्मार्थंगृहीतं ग्रहणार्थं वाअंगीकृतं वाद्रव्यं। लोभेन धर्ममकृत्वा संसाधयेन्। परावृत्यन दद्यात्। दर्पेण वा धर्मार्थं प्रतिश्रुतं नांगीकरोति। तदा तस्य चौर्यपापस्य निष्कृतिः शुद्धचर्थं राज्ञा स्वर्णं दाप्यः दापनीयः स्यात् ।। २१३ ।। २१४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यदिति**। यदि तत्प्रतिश्रुतं धनमसौ प्रतिगृहीताऽहङ्कारात्लोभाद्वा मार्गे स्वकृतं वा दातुं न त्यजेत् तदा तस्य चौर्यपापस्य संशुद्धयर्थं राज्ञा दण्डनीयो भवेत्। हठादपि दण्डितस्य दण्डेन पापनिर्हरणं भवतीत्यस्मान्निष्कृतिवचनादवसीयते ॥ २१३ ॥

(९) **भारुचिः**। येन धर्मार्थं किञ्चित् प्रतिश्रुतं न तु दत्तं, तं चेद्धर्ममकुर्वन् प्रतिश्रुतमिति कृत्वा शोधयेद्दातारं ततो राज्ञा सुवर्णं स दाप्यः। सोपधर्मत्वात्. . .दद्धृतदण्डास्त्विति ॥ २१३ ॥

**दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदनपक्रिया ॥**
**अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् ॥ २१४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वेणार्धेन पूर्वविवादोपसंहारः। उत्तरेण वक्ष्यमाणोपक्रमः। **दत्तस्यैषाऽनपक्रियोदिता**। 'अपक्रिया' क्रियापायः। तस्य नञा प्रतिषेधः। दानमेवं न चलितं भवति—एषैव दाने स्थितिरिति यावत्। धर्मादनपेता **धर्म्या**।

कथं प्रतिश्रुत्या दीयमाने धर्मो न नश्यतीति नैषा शङ्का कर्तव्या। एष एवात्र धर्मो यन्न दीयते दत्तं च प्रत्यादीयते। **उदिता** उक्ता। **यथावच्छब्द**समुदाय एव याथातथ्ये वर्त्तते। सम्यङ्निरूपितेत्यर्थः। अथवा यथाशब्दो योग्यतायां वर्तते—तामर्हतीति वतिः कर्तव्यः।

**वेतनं** भृतिः—तस्या**नपक्रिया**। वेतनेन स्वकर्म कुर्वतां यो धर्मः स इदानीमुच्यत इति प्रतिज्ञा ॥ २१४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। धर्म्या न्याय्या। दत्ताप्रदानम् ॥ २१४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एतद्दत्तस्याप्रतिपादनं धर्मादपेतं तदुक्तं अतोऽनन्तरंश्रुतेरसमर्पणादिकं वक्ष्यामि ॥ २१४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। दक्षिणामुपसंहरन् लौकिकश्रुतेरनपक्रियां प्रतिजानीते दत्तस्येति। अपगच्छति धनमन्यं प्रत्येनेनेति अपक्रिया दानं तदभावोऽनपक्रिया पुनरादानम् ॥ २१४ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ वेतनप्रदानमाह दत्तस्यैषइति। अनपाक्रिया अनपाकरणं प्रदानमितियावत् ॥ २१४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। दत्तस्ययथावद्दत्तस्य दानं तस्यक्रियाउदिता ॥ २१४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **दत्तस्येति**। एतदस्य प्रतिपादनं धर्मादनपेतं तत्त्वं तदुक्तमतोनन्तरं अन्यतरदपि प्रतिपादनं कथयिष्यामि ॥ २१४ ॥

(९) **भारुचिः**। उपसंहारोपन्यासार्थः श्लोकः ॥ २१४ ॥

**भृतोऽनार्त्तो न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम् ॥**
**स दण्ड्यः कृष्णालान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् ॥ २१५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। उद्दिष्टेन मूल्येनोद्दिष्टं कर्म करोति स इह **भृतो**ऽभिप्रेतः, भृत्य-

कर्मविशेषेण स्वीकृतो भृत्यः—देहि मे पञ्चरूपकाणीदं ते कर्म कर्ताऽस्मीयता कालेनेत्याभाष्य प्रविष्टः। स चेत्कर्म न समापयति—**कृष्णलानि** सौवर्णानि ताम्ररजतयोर्वा कर्मस्वरूपमनुबन्धादि च ज्ञात्वा दण्डयते। तानि च रूपकाणि वेतनार्थं कल्पितानि न लभेत। **यद्यनार्तो दर्पान्न** करोति यथोदितं कर्म। व्याध्यादिनाऽपीडितस्य दर्पादकुर्वतो भृतिहानिर्दण्डनं च। अतः स एवं वक्तुं न लभते—यावन्मया कर्मांशः कृतस्तदानुरूप्येण देहीति।

ऋत्विजामप्येव दण्डं केचिदिच्छन्ति स्वेच्छया त्यजताम्। तदयुक्तम्। अत्र हि महाननर्थो यजमानस्य सामिकृत्ये यजमानेऽतो दण्डो महानत्र युक्तः—यजमानस्य च यन्नष्टं तद्दापनीयम्—दीक्षोपसद्व्रतैः शरीरापचये समुत्थातव्यम्।

अन्यो यः शिल्पी कंचन कर्मणि प्रवर्तयति तडागखनने देवस्य गृहकरणे 'अहं ते समापयिता प्रवर्तस्वेति'—पश्चाच्चापसरेत्तेन स्वामिनः क्षयव्ययायासाः सर्वे संवोढव्या भाण्डवाहवणिग्न्यायेन। एष हि न्यायः कात्यायनेन सर्वत्रातिदिष्टः। भाण्डवाहकदोषेण वणिजो यदि द्रव्यं नश्येत्तद्भांडवाहको वहेत्। "यो वाऽन्यः कस्यचित्कर्मणि धनमावध्यार्धतो निवर्तेतेति" कात्यायनीये सूत्रे धनमाबध्याऽऽसज्य धनव्ययं कारयित्वा यद्यर्द्धकृते निवर्तेत सोऽपि तद्वदिहेत्यनुषङ्गः। एवं योऽपि षाण्मास्यः सांवत्सरो वा यथोपपादककर्मकारी भक्तदासस्तस्याप्येष एव न्यायः। आह च नारदः (६/५)—

**"कर्माकुर्वन्प्रतिश्रुत्य कार्यो दत्वा भृतिं बलात्।**
**भृतिं गृहीत्वाऽकुर्वाणो द्विगुणं भृतिमावहेत्॥**
**कालेऽपूर्णे त्यजन्कर्म भृतिनाशनमर्हति"॥ २१५॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अथ वेतनानपकर्म। भृतइति। भृतःसन्ननार्त्तः पीडारहितोपि। वेतनं न देयं कृतस्याप्येकदेशस्य यच्च दत्तं तदप्यादेयमित्यर्थः॥ २१५॥

(३) **कुल्लूकः**। यो भृतिपरिक्रीतोव्याध्यपीडितोयथानिरूपितंकर्माहिंकारान्न कुर्यात्स कर्मानुरूपेण सुवर्णादिकृष्णलान्यष्टौ दण्डनीयः वेतनंचास्य न देयम्॥ २१५॥

(४) **राघवानन्दः**। तमेवाह भृतइति। भृतिर्वेतनं तया क्रीतो भृतः अनार्त्तोपि यदि नकुर्यात्। अष्टौकृष्णलानि सभृत्योराज्ञादण्ड्यः। न तद्देयं तदापनीयं वेतनमिति च॥ २१५॥

(५) **नन्दनः**। भृतो वेतनग्राही। अनार्त्तो व्याधिरहितः॥ २१५॥

(६) **रामचन्द्रः**। अनार्तःभृतःसन्दर्पाद्यथोदितंकर्म योनकुर्याद्यथोदितम्॥ २१५॥

(७) **मणिरामः**। इदानींवेतनानपकर्माह॥ भृत इति। भृतः वेतनेन कार्यकरः। यद्वेतनं कृतं तदस्य न देयं रक्ति काष्टक परिमितं स्वर्णं राज्ञा दंडयश्च॥ २१५॥

(८) **गोविन्दराजः**। **भृत इति**। यो भृतः परक्रीतो व्याध्याद्यपीडितो यथानिरूपितं कर्म अहङ्कारान्न कुर्यात् स कुर्वाण क्रियोक्तस्वरूपे सुवर्णादिकृष्णलानष्टौ दण्ड्यो भृतिश्चास्य कर्मभागादपि न देया॥ २१५॥

(९) **भारुचिः**। भृतो नार्तो न कुर्याद्यो दर्पात् कर्म यथोदितम्। सदण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम्। उत्पन्ने वेतनं किञ्चित् कृतकर्मापि दण्डयितव्यः। वेतनं च लभेत। येन दत्वा कर्मणः प्रक्रान्तस्याऽकृत्स्नकारी ॥ २१५ ॥

**अनार्त्तस्य दण्ड उक्तो भृतिहरणं च। आर्त्तस्येदानीमुच्यते–**

**आर्त्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन् यथाभाषितमादितः ॥**
**स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम् ॥ २१६ ।**

(१) **मेधातिथिः**। आर्त्तो भृतोऽर्द्धकृतं कर्म यदि हित्वा गच्छेत्स **स्वस्थः** सन्पुनरागत्य यथोक्तमादौ तत्कुर्यात्। बहुनाऽपि कालेन पीडया मुक्तः प्रत्यागतः कृतकर्मशेषे **लभेतैव वेतनम्** ॥ २१६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आर्त्तोयदि मध्ये तदा स्वस्थःस तत्कर्म कुर्यात्। सुदीर्घस्यापि कालस्य दीर्घेणापिकालेन कुर्यादित्यन्वयः ॥ २१६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यदा व्याध्यादिपीडया कर्म न करोति स्वस्थः सन्यादृग्भाषितंतादृक्कर्म कुर्यात् वेतनंच चिरकालादपि लभेतैव ॥ २१६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। आर्त्तश्चेतस्य कालविलम्बेन करणेन दोषइत्याह आर्त्तस्त्विति। तेन यथा भाषितं तादृक्कुर्यात्। आदितः आदौ। तद्भृतिधनम् ॥ २१६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। पूर्वंआर्तः पश्चात्स्वस्थः सन्दीर्घस्य कालस्य आदितोयथा भाषितंकुर्यात् तद्वेतनंलभेत् ॥ २१६ ॥

(७) **मणिरामः**। आर्त्तश्चेत् भृत्यः तदा सुस्थोयदा भवति तदा कार्यं करोति वेतनं तु सर्वमेव लभते ॥ २१६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। आर्त इति। यदा पुनः पीडादिना वा कर्म न करोति तदा स्वस्थः सन् पूर्वं यादृक् निरूपितं तादृक् कुर्यात् तां च वृत्तिं सकलादपि कालाल्लभेतैव ॥ २१६ ॥

(९) **भारुचिः**। प्रतीर्थश्लोकः ॥ २१६ ॥

**यथोक्तमार्तः सुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत् ॥**
**न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्मणः ॥२१७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अथवा स्वामी न वारयति, येन च तत्कर्म कारितं स्वात्स्वां भृतिं दत्वा तदा तत्सममसौ स्वस्थः कारयितव्यः। अथापि स्वामी ब्रूयान्न मे किंचित्कर्तव्यमस्तीति –तत्रापि कृतानुरूपेण लभेतैव यथोक्तमात्राम् ॥ २१७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यथोक्तमार्त्ते स्वस्थे वा यः प्रकार उक्तः। वेतनादानम्। ॥ २१७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यत्कर्म यथाभाषितं पीडितोऽन्येन कारयेत् सुस्थो वा न कुर्यान्नापि कारयेत् तस्य किंचिच्छेषस्यापि कृतस्य कर्मणोवेतनंन देयम् ।। २१७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । स्वीकृतासंपूरणेपि यथोक्तं वेतनंनदेयमित्याह यथेति। अल्पोनस्याल्पन्यूनस्यापि कर्मणः । स्वस्थोपि न वा कुर्यान्न संपूरयेन्न वा कारयेदन्येन ।। २१७ ।।

(५) **नन्दनः**। कर्मणःवेतनंतस्य न देयमित्यन्वयः। इति वेतनानपक्रियोक्ता। ।। २१७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। आर्तःस्वस्थो वा यः यथोक्तं कर्म न कारयेत् अल्पोनस्य अल्पन्यूनस्य कर्मणः तस्य पुंसः वेतनं न देयं ।। २१७ ।।

(७) **मणिरामः**। यथोक्तं सुस्थः स्वयं कुर्यात् अशक्तः अन्येन कारयेदिति नियमितं। स चेत्तथा न करोति। तदा तस्य अल्पोनस्यापि किंचित्कृतस्यापि कर्मणः वेतनं न देयमित्यर्थः ।। २१७ ।। २१८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यथोक्तमिति**। ।। २१७ ।।

(९) **भारुचिः**। आर्तः स्वस्थो वा यथोदितं कर्म न कुर्वन्न कारयन्वाल्पोनस्यापि वेतनं न लभेत ।। २१७ ।।

**एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादानकर्मणः ।।**
**अत अर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम् ।। २१८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **वेतनादानकर्मण इति** विवादपरस्यास्य नामधेयमेवमेतत्। तेन न चोद्यमेतत्–कथं वेतनस्यादानकर्मोक्तं यावता दानकर्माप्युक्तं "न लभेतैव वेतनम्" इति। नाम्नो हि येन केनचिदन्वितेन संबन्धिना नामता न विरुद्धा। न हि यावन्तः सूत्रार्थास्ते सर्वे प्रवर्तन्ते। तथा चाग्निहोत्रे यद्यप्यग्निप्रजापत्योर्होमस्तथाप्यग्निहोत्रमिति नाम प्रवर्तत एव। तदुक्तं तत्रैवं स्थूणादर्शे या च समा नीचा स्यादिति।

**समयः** संवित् सङ्केतः–इदं मया भवतामनुमते निश्चितं कर्तव्यमित्यभ्युपगमः। तं भिन्दन्ति व्यतिक्रामन्ति ते **समयभेदिनः**। "संविदश्च व्यतिक्रमः" (८/५) इति यदुद्दिष्टं तदिदानीमुच्यते।

पूर्वेणार्द्धेन पूर्वप्रकरणोपसंहारोऽपरेण यथोद्दिष्टप्रकरणांतरसूचनम् ।। २१८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। समयभेदनमतवारयति एषइति। समयभेदिनां धर्मं नियतं दण्डम् ।। २१८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। एषा व्यवस्था वेतनादानाख्यकर्मणोनिःशेषेणोक्ता अतोऽनन्तरं संविदव्यतिक्रमकारिणं दण्डादिव्यवस्थां वदिष्यामि ।। २१८ ।।

ब्राह्मणस्य न दण्डः केवलं ग्रामत्यागइति ।। २१९ ।।

(५) **नन्दनः** । योग्रामदेशसंघानामिति त्रयंस्पष्टम् । संविद्व्यतिक्रमउक्तः ।। २१९–२२१ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । यःपुरुषः ग्रामदेशसङ्घानां ग्रामाणां देशानां सङ्घानां समूहानां सत्येन शपथेन संविदं समयं । मर्यादां कृत्वा नरःलोभाद्विसंवदेदन्यथावदेत्तंराष्ट्राद्विप्रवासयेत् ।। २१९ ।।

(७) **मणिरामः** । इदानीं समयवेदिनां धर्ममाह । यो ग्रामेति । ग्रामदेशशब्दाभ्यां तद्वासिनोज्ञेयाः । संघो वणिगादिसमूहः । इदमस्माभिः कर्तव्यमितिशपथादिना संविदं कृत्वाग्रामदेशवासिवणिक्संघानां मध्ये पश्चात् लोभादिना विसंवदेत् अतिक्रामेत् तंराजाराष्ट्रात् विप्रवासयेत् निष्काशयेदित्यर्थः ।। २१९ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **य इति** । ग्राम्याणां देशवासिनां वणिगादीनां मध्याद्यो नर इदमस्माभिः कर्तव्यं परिहार्यं चेत्येवं संकेतं विरुद्धेन रूपेण कृत्वा विचलेत्तं राष्ट्रात्-राजा निर्वासयेत् ।। २१९ ।।

(९) **भारुचिः** । धर्मार्थयुक्तेषु प्रयोजनेषु राजकार्यविरोधिषु गोप्रचारोदकरक्षण-देवतायतनप्रतिसंस्करणादिषु ग्रामादिनां या संविदुत्पद्यते तत्र व्यभिचारिणं तस्माद्देशाद् राजा निर्वासयेत् ।। २१९ ।।

**निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम् ।।**
**चतुःसुवर्णान् षण्णिष्कांश्छतमानं च राजतम् ।। २२० ।।**

(१) **मेधातिथिः** । निगृह्यावष्टभ्य पीडयित्वा काललाभमकारयित्वा दण्डचः । चत्वारि सुवर्णानि येषां निष्काणां परिमाणं ते **चतुःसुवर्णा निष्काः** । यद्यपि चतुःसुवर्णिको निष्क इत्यत्रोक्तं (१३७) तथापि शास्त्रान्तरात् "साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्महाधियः" इत्येवमादिपरिमाणान्तरं पश्यन् विशिनष्टि । "संज्ञाकारणसामर्थ्यादेव लभ्यत" इति चेत् पद्यग्रन्थत्वान्न दोषः ।

अन्ये तु सहार्थे बहुव्रीहिं कृत्वा त्रीन् दण्डानाहुः । चतुर्भिः सुवर्णैः सह षण्णिष्कान् दण्डनीय । दश निष्काः प्रतिपादिता भवन्ति ।

बहुव्रीहिसिद्धचर्थं सहार्थे कथंचिन्मत्वर्थो योजितव्यः । न हि चित्राभिर्गोभिः सहित-श्चित्रगुर्देवदत्त इति भवति । एते च त्रयो दण्डा यदि च त्रिभिरेक इति कार्यापेक्षया योजनम् । निर्वासनदण्डेन विकल्प्यते दण्डोऽयम् ।। २२० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । चतुर्भिःसौवर्णैर्निष्कस्तान् षट्पलानीत्यर्थः । एतच्च दीना-रादिनिष्कव्यवच्छेदार्थं विशेषणम् । शतमानमेकम् ।। २२० ।।

(३) **कुल्लूकः** । अथ चैनं संविद्व्यतिक्रमकारिणं निबोध्य चतुरः सुवर्णान् षण्निष्कान्

प्रत्येकं चतुःसुवर्णपरिमितान् राजतंच शतमानंविंशत्यधिकरक्तिकाशतत्रयपरिमाणंत्रय-मेतद्विषयलाघवगौरवापेक्षया समन्वितंव्यस्तंवाराजदण्डंदापयेत् ।। २२० ।।

(४) **राघवानन्दः** । दण्डसंख्यामाह नीति । निगृह्य कारागारंप्रापयित्वा चतुः-सौवर्णिकोनिष्कइत्युक्तेः चतुःसुवर्णानिति तु निष्कपदस्याभरणाद्यर्थव्यावृत्यर्थं तेनपशुमाल-भेतेत्याद्येकत्वस्येव षडित्युपादेयविशेषणमतः प्रत्येकं षण्णिष्कानांदण्ड इति । शतमानं विंशत्यधिकरक्तिकाशतत्रयं समस्तं व्यस्तंवा कार्यगौरवलाघवापेक्षया ।। २२० ।।

(६) **रामचन्द्रः** । एवं समयव्यभिचारिणं समयभेत्तारं निगृह्य दण्डंदापयेत् । दण्डमाह चतुःसुवर्णान्वा दण्डयेत् । षण्णिष्कान् निष्कंसुवर्णश्चित्वारः इति षट्पलानि अथवा राजतः रूप्यस्य शतमानः । द्वात्रिंशत्कृष्णलं धरणं भवेत् धरणानि दश ज्ञेयःशतमान एवं कृष्णला भवन्ति अष्टगुंजात्मकोमाषः तेषांचत्वारिंशत्–माषप्रमाणं भवति ।। २२० ।।

(७) **मणिरामः** । एनं समये व्यभिचारिणं संविद्व्यतिक्रमकारिणं षट्निष्कान् चतुर्विंशति सुवर्णान् । राजतं शतमानं विंशत्यधिकशतत्रयरक्तिकापरिमाणं विषयलाघव-गौरवं विचार्य एतत् त्रयं समस्तं व्यस्तंवा दंडंनिगृह्य राज्ञादापयेत् ।। २२० ।। २२१ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **निगृह्येति** । य एवं संविद्व्यतिक्रमेत् चतुःसुवर्णकार्षिका-निष्कानुक्तरूपान्नतु सार्धशतं सुवर्णानां निष्कानाहुरिति शास्त्रान्तरोक्ताराजतञ्च शतमान-मुक्तम् ।। २२० ।।

(९) **भारुचिः** । चतुस्सुवर्णान् षण्निष्काञ्छतमानं च राजतम् । चतुस्सुवर्णादि च दण्डं च दाप्यः । ततो निर्वास्यः । 'निगृह्य दापयेद्वैनं' इत्यपरो दण्डविकल्पपाठः । एवं च सति निर्वासनं दण्डो वा ।। २२० ।।

**एतद्दण्डविधिं कुर्याद्धार्मिकः पृथिवीपतिः ।।**
**ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणम् ।। २२१ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **जातिसमूहेषु** च नानाजातीयानां समानजातीयानां वा संघेषु तद्विषयो व्यभिचारो येषामित्यर्थः ।

प्रकरणोपसंहारः ।। २२१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** दण्डविधिं दण्डप्रकारम् । जातिर्ब्राह्मणादिः ।। २२१ ।।

(३) **कुल्लूकः** : ग्रामेषु ब्राह्मणजातिसमूहेषु संविद्यतिक्रमकारिणामेतद्दण्डविधिं धर्मप्रधानो राजानुतिष्ठेत् ।। २२१ ।।

(४) **राघवानन्दः** । उक्तंदण्डविधिमन्यत्रातिदिशति एतमिति । ग्रामजातिसमूहेषु ग्रामस्य ब्राह्मणादिषु जातिसमूहेषु वणिगादिषु च ।। २२१ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । एवं धार्मिकः पृथिवीपतिः दण्डविधिं कुर्यात् ।। २२१ ।।

(७) **मणिरामः**। व्यतिक्रमिणं एतद्दण्डविधानमनुतिष्ठेत् ।। २२१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। एवं **दण्डविधिमिति**। धर्मप्रधानो राजा ग्रामेषु ब्राह्मणादिषु

(९) **भारुचिः**। उपसंहारार्थः श्लोकः ।। २२१ ।।

**क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत् ।।**
**सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत वा ।। २२२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। यद्द्रव्यं प्रचुरक्रयविक्रयं व्यवहारकाले न गच्छति न नश्यति मूल्यतश्च नापचीयते त्रपुताम्रभाण्डादि स्थिरार्घं तादृशस्यानुपभुक्तस्य दशाहमध्ये आदान-प्रत्यर्पणे। यत्तु विरलक्रयविक्रयं देवयात्रोत्सवादौ विक्रीयते अनियतार्थं च तस्य तदहरपरे-द्युर्वा। फलकुसुमादौ तु तत्क्षण एवानुशयः। पश्चादपि–'क्रीत्वा यस्यानुशयो न ममैतदुप-युज्यते' स दशाहमध्ये दद्यात्। विक्रेता प्रतिगृह्णीयात्। विक्रेतुरनुशये–'न मया साधु कृतं यद्विक्रीतमिति'–क्रेता तस्मै प्रतिपादयितव्यः।

एवं हि नारदः पठति (९/२-३)

इति

**एकस्थानवासिनां चैष कालः। देशान्तरवासिनां तात्कालिकी प्रतिनिवृत्तिः।**
**केचिद्गोभूम्यादिविषयं विधिमिममिच्छन्ति, न वस्त्रादौ।**
**स्मृत्यन्तरे हि वणिक्पण्येऽन्यो विधिराम्नायते। एवं हि नारदः पठति (९।२–३)**
**"क्रीत्वा मूल्येन यः पण्यं दुष्क्रीतमिति मन्यते।**
**विक्रेतुः प्रतिदेयं तत्तस्मिन्नेवाहन्यविक्षतम्"।**
**"द्वितीयेऽह्नि ददत्क्रेता मूल्यात्त्र्यंशांशमावहेत्।**
**द्विगुणं तत्तृतीयेऽह्नि परतः क्रेतुरेव तत् ।।" इति**

विक्रयार्थं यद्द्रव्यं तत्'पण्यं' यद्विक्रीय तदुत्पन्नेन द्रव्यान्तरक्रयादिना पुरुषो व्यवहरति जीविकाधनमर्जयितुं–तथा पणभूमौ प्रसारितमप्रसारितं च भवति वणिजाम्। तत्रेह पण्य-ग्रहणात्कश्चिद्विशेषो विवक्षितः। इतरथा क्रीत्वा मूल्येन इत्येतावदपेक्ष्यम्। कः पुनरसौ विशेषः? उच्यते। यत्क्रीतमपि पण्यत्वमजहद्वणिग्भिर्विक्रीयते तर्हि विक्रयार्थमेव क्रीणन्ति। तेषां वणिजामितरेतरं क्रीणतांविक्रिणतां च नारदीयो विधिः, अन्येषां मानव इति केचित्। किं पुनरत्र युक्तम्। पण्यधर्मादेर्व्यवस्था वाऽनुसरणीया। तथा चाश्वानां बलसञ्चारो हस्तिनामङ्कु-शारोहणं विक्रयविभावकमित्यादिना व्यवहारस्तेषु पण्येषु सिद्धो भवति। 'अविक्षत'मवि-नष्टमुपनिध्यादौ वस्त्रादेर्यावन्नात्र नाशस्तावतो मूल्यमुपनिधात्रे दीयते, द्रव्यं तु गृह्णाति। इह त्वीषन्नाशेऽपि सर्वं मूल्यं देयं क्रेतुः ।। २२२ ।।

अनुशयः पश्चात्तापः ।। २२२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। क्रयविक्रयानुशयमाह क्रीत्वेति। अनुशयः पश्चात्तापः ।।। २२२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। क्रीत्वा विक्रीयवा किंचिद्रव्यम् विनश्वररूपंस्थिरार्घंभूमिताम्रपट्टादि यस्य लोके पश्चात्तापोजायते न साधु मया क्रीतमिति स क्रीतं दशाहमध्ये प्रत्यर्पयेत् विक्रीतंवा गृह्णीयात्॥ २२२॥

(४) **राघवानन्दः**। क्रयविक्रयानुशयइत्युक्तं तत्र क्रेतृविक्रेत्रोः पश्चात्तापाद्युत्पत्तौ दशाहाभ्यन्तरे निवर्त्ययोग्यतास्तीत्याह क्रीत्वेति। साधु मया नकृतमित्यनुतापोनुशयः। क्रीतं दद्याद्विक्रीतंच गृह्णीयादित्यर्थः॥ २२२॥

(५) **नन्दनः**। अथक्रयविक्रयानुशयमाह क्रीत्वाविक्रीयवेति। तद्व्ययंयन्मूल्यत्वेन क्रेत्रादत्तम्॥ २२२॥

(६) **रामचन्द्रः**। किंचिद्वस्तु क्रीत्वा विक्रीय वा इह यस्य अनुशयः पश्चात्तापः भवेत्सः अन्तर्दशाहात्तदद्रव्यंदद्यात् आददीत स्वीकुर्यात् वा॥ २२२॥

(७) **मणिरामः**। अनुशयः पश्चात्तापः।

(८) **गोविन्दराजः**। **क्रीत्वेति**। विक्रीय किञ्चिद्द्रव्यमचिरस्वभावं स्थिरार्थं विक्रीय वा यस्य लाभात्पश्चात्तापो भवति न साधुमया कृतमिति दशाहमध्ये प्रत्यर्थं यद्विक्रीतं तद् गृह्णीयात्॥ २२२॥

(९) **भारुचिः**। अन्तर्दशाहमादानप्रत्यर्पणे साम्नेत्ययमपाठः। येनोर्ध्वमपि दशाहात् कश्शक्तस्साम्नादानादाने प्रतिषेद्धुं लब्धिमेष्वपि द्रव्येषु साम्नाशक्यं प्रतिषेद्धुम्। किं पुनः कृत्रिमेषु। यत्तन (क? कुत) कश्चिद्धर्मगन्धोऽति धर्म्येषु तु प्रतिग्रहेषु तदनन्तरनिवृत्तत्वाद्धर्मस्य साम्नाप्यशक्यं कृतमकृतं कर्तुं तत्र च प्रत्यर्पणे पुनर्दानं वा कृतं भवेत्। परित्यागो वा यतश्चैतदेवम्। अत एवं पठितव्य उत्तरश्लोकार्धः। सोऽयं दशाहात् तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत चेति। अत्रैव चार्थं उत्तरश्लोकार्धपाठोऽन्यो भवति। 'दानादाने दशाहं तु स्यातामपि निपातिनी' इति। अथवा सामग्रहणं दशाहे दण्डनिवृत्त्यर्थम्। अन्तर्दशाहानुशये कथञ्चिद्विवदतां राजाधिगमे दण्डनीतिर्यथा स्याद्राजतस्तयोः तथा च दशाहस्योत्तरत्र तद्विवादे दण्डः श्रूयते॥ २२२॥

**परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत्॥**
**आददानो ददच्चैव राज्ञा दण्ड्यो शतानि षट्॥ २२३॥**

**[स्याच्चतुर्विंशतिपणो दण्डस्तस्य व्यतिक्रमे।**
**पणस्य दशमो भागो दाप्यः स्यादति पातिनि॥ १॥]‡**

**[क्रीत्वाविक्रीयवा पण्यमगृह्णन्न ददतस्तथा।**
**पणाद्वादशदाप्यश्च मनुष्याणांच वत्सरान्॥ २॥]**

**[पणाद्वादशदाप्यः स्यात्प्रतिबोधे न चेद्ब्रूवेत्।**
**पशूनामप्यनाख्याने त्रिपदादर्पणं भवेत्॥ ३॥]**

(१) **मेधातिथिः**। दशाहात्परतो न क्रीतानुशयः। जातानुशयश्चापि क्रेता विक्रेता वा यदि राजनि विवदतां तौ ततः **षट् शतानि दण्ड्यौ**।

**न दद्यादिति** नायमदृष्टार्थः प्रतिषेधः। किं तर्हि ज्ञायते। स्थितिरीदृशी। अनिच्छन्क्रेता दशाहादूर्ध्वं न त्याजनीयो नापि विक्रेता ग्राहयितव्यः। अतश्च यदि साम्नोभयेच्छायां दानादाने स्यातां तत्र न कश्चिद्दोषः ॥ २२३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दशाहस्यपरेणेति बीजविषयम्। वस्त्रवाह्यरत्नदोह्यपुरुषस्त्रीषु एकपञ्चसप्तदशमासार्धमासानामवधीनां स्मृत्यन्तरे उक्तत्वात्। नाददीत विक्रीतं वस्त्वादातुं न यतेत। शतानि पणानाम् ॥ २२३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। दशाहादूर्ध्वंक्रीतंन त्यजेत् नापि विक्रीतंविक्रयिकोबलेन दापयेत्। विक्रीतंबलेन गृह्णन्परित्यजन् राज्ञा षट्शतानि पणान्दण्ड्यः ।॥ २२३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। दशाहादाधिक्ये तदुभयमनुचितमित्याह परेणति शतानीति ताम्रिकपणानामितिशेषः। एवं सर्वत्र ॥ २२३ ॥

(५) **नन्दनः**। आददानो बलाद्गृण्हन्न ददच्च षट्शतानि कार्षापणानां दण्ड्यः ॥ २२३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अन्यथाराज्ञा षट्शतानि पणानि दण्ड्यः ॥ २२३ ॥

(७) **मणिरामः**। दशाहस्यपरेण ऊर्ध्वं। शतानिषट् पणाः ॥ २२३ ॥ ॥ २२४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **प्रेरणेति**। दशाहोत्तरकालं क्रीतञ्च न दापयेत् ॥ २२३ ॥

(९) **भारुचिः**। नायं श्लोको दशाहादूर्ध्वं सामप्रतिषेधार्थ आरभ्यते। साम्नाप्यूर्ध्वं दशाहान्न दद्यान्नापि दापयेदिति। नहिसाम प्रतिषेद्धुं शक्यमित्युक्तम्। यत्र तु सा(मना ? म्ना)पि प्रत्यर्पणं नास्ति तत्र नियमयत्येव यथा–सकृदंशो निपततीति। अत्रापि त्वंशपातने साम्नैव प्रतिषेद्धुं शक्यं नियमाभावात् व्यवस्थार्थत्वाच्च। कन्यादाने तु निष्के च विसर्गाभ्यामिति विशेषनियमात् साम न विद्यते ॥ २२३ ॥

**यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ॥**
**तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ॥ २२४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। या कन्या दोषैर्युक्ता सा च दात्रा वराय नाख्यायते न प्रकाश्यत एव दीयते तत्र दातुर्दण्डो विदिते राज्ञा कार्यः। स्वयंग्रहणमादरार्थम्। कन्यादोषाश्च प्रजासामर्थ्यविघातहेतवः क्षयो व्याधिर्मैथुनसंबन्धश्च।

नोन्मत्ताया इत्येतत्प्रकरणोक्तो दण्डोऽयं वा ॥ २२४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यस्त्विति पूर्वोक्तकन्याविक्रयविषयदण्डसामान्यस्य विशेषोक्तिरियमत्र तस्य संगतिसंभवात्। कुर्यात् दण्डम्। अर्थात्कन्यामपि प्रतिपादयेत् पूर्वकृतशुल्कं वरो न दद्यात् ॥ २२४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। नोन्मत्तायाइति सामान्येनोक्तं दण्डविशेषाभिधानार्थमिदं उन्मादादिदोषानकथयित्वा दोषवतींकन्यांवराय यः प्रयच्छति तस्य राजा स्वयमादरेण षण्णवतिपणान्दण्डंकुर्यात्। अनुशयप्रसङ्गेनैतत्कन्यागतमुच्यते ॥ २२४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। नोन्मत्तायाइत्यत्रोक्तदण्डस्य संख्यामाह यस्त्विति। दोषवतीमुक्तोन्मत्तादिदोषत्रययुक्ताम् ॥ २२४ ॥

(५) **नन्दनः**। अनुपक्रान्तमपि क्रयविक्रयसाधर्म्यात्कन्याप्रदानविषयंविवादमाह यस्तुदोषवतीमिति स्वयंकन्यां भर्त्रादिभिरनिवेदितोऽपि ॥ २२४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। षण्णवतिपणान्नृपःस्वयंदण्डंकुर्यात् ॥ २२४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यस्त्विति** ॥ २२४ ॥

(९) **भारुचिः**। अनुशयप्रसङ्गादिदमन्यदत्रोच्यते। धर्मप्रजानिरोधिना रोगेण ग्रहीता (स्प्रष्टु ? स्पृष्ट) मैथुना वा दोषवती। तामनाख्याय दोषवतीं प्रयच्छतो दण्डः। नोन्मत्ताया इति। पूर्वोक्तश्लोकेनैव गतार्थो यतः वयं तत्र नाधीयामहे। अथवानुवादपक्षः केनचित कारणेन तस्यास्य चाशक्यते दर्शयितुं यतो युक्तमध्ययनम् अन्य..... ॥ २२४ ॥

**अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद् द्वेषेण मानवः ॥**
**स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ॥ २२५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **अकन्या** वृत्तमैथुनसंबन्धेति यो वदेत्तं च दोषं न भावयेत्तदा **शतं** कार्षापणं दण्डयः।

अन्ये मन्यन्तेऽल्पत्वाद्दण्डस्य महत्त्वाच्चाक्रोशस्येतिकरणस्य च पदार्थविपर्ययाशक्तत्वेन दर्शनादकन्येति शब्दस्वरूपं विवक्षितम्। अकन्येयमित्येतेनैव शब्देनाक्रोशे तस्य शतं दण्डः। कः पुनरत्र विशेषः ? उच्यते। स इदंवादी पृच्छ्यते—कथमियमकन्येति। स चेद्ब्रूयान्निर्लज्जा नृशंसाऽश्लीलवादिनी—नैष कन्यानां धर्मः। एतच्च न साधयेत्तदाऽयं दण्डः कन्यागुणनिषेध उक्ते सति। अथवा कन्याशब्दं प्रथमवयोवचनमाश्रित्य परोक्षे प्रार्थयमानस्य ब्रूयात्कि तावन्नासौ कन्या अतिस्वल्पा वृद्धा वा—तत्र कन्यादाता यदि राजानं ज्ञापयेदभिरूपतमा कन्या मदीया प्रार्थ्यमानाऽनेन तस्यामभिलाषः एवमुक्त्वाऽथ पराजितः, तत्र प्राप्तकालायां यद्येवमुक्तं तदा पराजितस्यायं दण्डः ॥ २२५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अकन्याचेयं स्त्री किंतु क्लीबमिति ॥ २२५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। नेयंकन्या क्षतयोनिरियमिति योमनुष्योद्वेषेण ब्रूयात्तस्याउक्तदोषविभावयन्पणशतंराजा दण्डंप्रकल्पयेत् ॥ २२५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। वाचादूषितकन्यस्य दण्डमाह। अकन्येयं कन्या केनापि क्षतयोनित्वादिति योब्रूयात्। दोषं क्षतयोनित्वादिकमदर्शयन्पणशतंदण्डमाप्नुयादित्यन्वयः। ॥ २२५ ॥

(५) **नन्दनः**। अकन्या क्षतयोनिः। शतंपणानाम् ॥ २२५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यः द्वेषेण कन्यां अकन्याइति ब्रूयात्सः पणशतंदण्डंप्राप्नुयात्। किंकुर्वाणः तस्याःदोषं अदर्शयन् ॥ २२५ ॥

(७) **मणिरामः**। अकन्यां सक्षतां। तस्याः कन्यायाः। दोषं सक्षतारूपं ॥ २२५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अकन्येति**। नेयं कन्या क्षतयोनिरियं इत्येवं यो मनुष्यो द्वेषेण कन्यायाः कुर्यात् स तस्याः तं दोषमविभावयन् पणशतं दण्डं प्राप्नुयात्। उक्तस्याप्यतिक्रमकारित्वाद्दण्डः ॥ २२५ ॥

(९) **भारुचिः**। स्वशब्दव्याख्यातश्लोकः। कस्य पुनर्हेतोरयं दण्डो महान् विधीयते ॥ २२५ ॥

**पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः ॥**
**नाकन्यासु कचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ॥ २२६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'पाणिग्रहणं' विवाहो दारकर्म, मन्त्राणां तत्र विद्यमानत्वात्। तत्र विद्यमानत्वात्स चाग्निमयक्षतेत्येताभ्यां संबन्धेनासां विवाहे कर्तृत्वं दर्शयति। परमार्थतस्तु विवाहविधौ कन्यामुपयच्छेदिति विहितं,—तादृशमेवार्थं मन्त्रा अभिवदन्ति। न पुनर्मन्त्रेषु कन्याशब्दश्रवणात्कन्यानां विवाहः, मन्त्राणामविधायकत्वात्। एष एवार्थस्तद्विपरीतप्रतिषेधमुखेन दृढीक्रियते। **न कन्यासु क्वचिन्नृणाम्**। न कस्यांचिद्वेदशाखायां मनुष्याणामकन्याविषयो विवाहः श्रुतः। **लुप्तक्रियाः**—यासां धर्मेऽग्निहोत्रादावपत्योत्पादनविधौ चाधिकारो नास्त्यतस्ता न विवाह्याः।

अतः कन्यामकन्येति वदन्महता दण्डेन योजनीय इति पूर्वश्लोकादनन्तरमुच्यते। अप्राप्तमैथुना स्त्री **कन्योच्यते** ॥ २२६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अकन्यातु यदि या वस्तुतः स्यात्तदा त्याज्यैवेत्युपपादयति पाणिग्रहणिका इति। कन्यास्वेव कन्याविषयाः। एवं नाकन्यासु क्लीबेषु ॥ २२६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। युक्तश्चास्याकन्येति वादिनोदण्डोयस्मात् पाणिग्रहेति अर्यमणं देवंकन्याऽग्निमयक्षतेत्येवमादयोवैवाहिकामनुष्याणांमन्त्राः। कन्याशब्दश्रवणात्कन्यास्वेव व्यवस्थितानां कन्याविषये क्वचिच्छास्त्रे धर्मविवाहसिद्धये व्यवस्थिता असमवेतार्थत्वात् अतएवाह ताःक्षतयोनयोवैवाहिकमन्त्रैः संस्क्रियमाणा अपि यस्मादपगतधर्मविवाहादिशालिन्योभवन्ति नासौ धर्म्योविवाहइत्यर्थः नतु क्षतयोनेर्वैवाहिकमन्त्रहोमादिनिषेधकमिदम् या गर्भिणीसंस्क्रियते तथा वोढुः कन्या समुद्भवमिति क्षतयोनेरपि मनुनैव विवाहसंस्कारस्य वक्ष्यमाणत्वात्। देवलेन तु ॥ गान्धर्वेषु विवाहेषु पुनर्वैवाहिकोविधिः ॥ कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिक इति ॥ गान्धर्वेषु विवाहेषु होममन्त्रादिविधिरुक्तः। गान्धर्वश्चोपगमनपूर्वकोऽपि भवतितस्य क्षत्रियविषये सुधर्मत्वंमनुनोक्तं। अतः सामान्यविशेषन्यायादितरविषयोयंक्षतयोनिविवाहस्याधर्मत्वोपदेशः ॥ २२६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ननु कन्यात्वक्षतौ किं स्यात्तत्राह पाणीति। अर्यमणं नुदेवं कन्या-अग्निमयक्षतेति मन्त्रलिङ्गमाश्रित्यावधारणमाह कन्यास्वेवेति। लुप्तधर्मक्रियाः अपगत-विवाहादि*क्रिया इति निन्दामात्रम्। अष्टवर्षा भवेत्कन्येति तत्कालावच्छिन्नकन्यादान-तात्पर्यमन्यथा या गर्भिणी संस्क्रियते तथा वोढुःसुतमिति क्षतयोन्यधिकृता न स्यात्। अपिच गान्धर्वासुरपैशाचानां क्षतयोनेरावश्यकत्वात्॥ गान्धर्वेषु विवाहेषु पुनर्वैवाहिकोविधिः। कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिकइति होममन्त्रविधेर्देवलोक्तत्वात्। अत एव गोत्र-त्वप्राप्तिः। तदुक्तम्। एकत्वमागता यस्माच्चरुमन्त्राहुतित्रतैरिति॥ २२६॥

---

* क्रिया = इति धर्म्या (राघ० २)

(५) **नन्दनः**। पाणिग्रहणं विवाहस्तत्र भवाः पाणिग्रहणिकाः विवाहसाधनभूता इति यावत्॥ २२६॥

(६) **रामचन्द्रः**। अकन्यासु क्वचित् लुप्तधर्मक्रिया नृणां हिता न॥ २२६॥

(७) **मणिरामः**। कन्यास्वेव अक्षतास्वेव न अकन्यासु सक्षतासु। ताः सक्षताः। तेन गंधर्वादिविवाहे मंत्रा भवंतीत्यर्थः॥ २२६॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यस्मात्पाणिग्रहणिका इति**। अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमय-क्षतेत्येवमादयो वैवाहिका मनुष्याणां मन्त्राः॥ २२६॥

(९) **भारुचिः**। तथा वैवाहिको मन्त्रः—'अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत। स नो अर्यमा देवः। प्रेतो मुञ्चातनामुन्त स्वाहे'त्येवमादिना। कन्यास्वित्यत्र कारणं···· नाधिकृता विवाहादिभिरित्यर्थः। एवं च सति पूर्वं पाणिग्रहणात् प्रतिगृही(ता ? त्रा)पि स्पृष्टमैथुना परित्यक्तव्येति। यश्च॥ २२६॥

**पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम्॥**
**तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे॥ २२७॥**

(१) **मेधातिथिः**। दारा भार्या, तस्या **लक्षणं** निमित्तं विवाहमन्त्राः तैस्तत्र प्रयुक्तै-र्वाहाख्यः संस्कारो निर्वर्तते। द्विजातीनां पुनर्मन्त्राः। न च शूद्रस्य दारप्रसङ्गः न हि तस्य मन्त्राः सन्ति—मन्त्रवर्जं सर्वान्येतिकर्तव्यतास्ति। अतो विवाहाख्यसंस्कारोपलक्षणं मन्त्राः। **तेषां** मन्त्राणां **निष्ठा** समाप्तिः **सप्तमे पदे विज्ञेया**। लाजाहोममभिनिर्वर्त्य त्रिःप्रदक्षिणमग्निमावर्त्य सप्तपदानि स्त्री प्रक्रम्यते "एष एकपदी भव" इत्यादि यावत् "सखा सप्तपदी भवेति"। तस्मिन्प्रक्रान्ते कन्यायाः पदे कन्यापितुर्वोढुर्वानुशयो नास्ति। उन्माद-वत्यपि भार्यैव। न त्याज्या।

मैथुनवत्यास्तु नैवासौ विवाहः। सत्यपि लाजाहोमादाविति कर्तव्यतास्वरूपे न भार्या सा। अतस्तत्र द्रव्यान्तरवदनुशयः। यथा च शूद्रकर्तृकेणाधानेनाहवनीयो न भवति—

सपिण्डायाश्च कृतेऽप्यग्निसंस्कारे न विवाहस्वरूपत्वम् । तत्र तु प्रसिद्धम्–"संस्कारकरणादेकः प्रायश्चित्तीयते पुमान्" । कन्या चान्यस्याप्यविवाह्या वसिष्ठवचनात् ।

**"यदि प्रजनविघातरोगगृहीतामूढ्वा न त्यजति का तर्हि गतिः ।"**

'सत्यधिकारे अन्यामुद्वाहयिष्यति । 'सद्यस्त्वप्रियवादिनीति'वत् (९/८१) । कृते तु जातपुत्रायामाधाने यदि क्षयो व्याधिः स्यात्तथापि नैनामधिविन्देदधिवेदननिमित्तानां परिगणनात् (९/७७-८५) । तत्रापि यदि "कामतस्तु प्रवृत्तानाम्" इत्येतत्प्रयोजकमिष्यते न निवारयामः ।

तेनैव संक्षेपतः कन्यायां धर्मः । यथाऽन्येषां द्रव्याणां दशाहादूर्ध्वमपि साम्ना प्रत्यर्पणं, नैवं कन्यानां कृतविवाहानाम् शुल्कदेयानामपि प्राग्विवाहाद्द्रव्यान्तरधर्मः । या तु धर्माय दीयते तस्या नैवानुशय इति वचनात् । तत्रापि "दत्तामपि हरेत्कन्यां ज्यायांश्चेद्वर आव्रजेत्" (याज्ञ. १/६५) इत्यस्त्येवापहार आ सप्तमपदात् ।

सप्तमे तु पदे दानानिवृत्तेर्गवादिद्रव्यदानवन्नास्त्यपहारः । अथैव केनचित्कस्मैचिद्गवि दत्तायां न तयोरन्योन्येच्छयाऽनुशयो दानादाने–दानस्य तदानीमेव निर्वृत्तत्वात् । प्रतिगृहीतं चेद्दात्रे पुनः प्रयच्छेत्तद्दानान्तरमेव तत्स्यात्, न पूर्वदाननिवृत्तिः । एवं सगुणयोः कन्यावरयोर्नान्योन्येच्छया त्यागोऽस्ति, प्रागपि विवाहात् । विवाहे तु कृते दोषवत्या अपि नास्ति त्यागः कन्यायाः । स्पृष्टमैथुना, या कन्यैव न भवति, अतोऽसौ त्यज्यते–कन्याया यतो विवाहो विहितः । विवाहश्चोपभोगस्थानीयः । यथा परिभुक्तं वस्त्रमन्तर्दशाहमपि नैव विक्रेतेऽर्थ्यते तथैव कन्या कृतविवाहा ।

पुनश्चायमर्थो निर्णेष्यते "सकृत्कन्या प्रदीयत" इत्यत्रान्तरे (९/४७) ।। २२७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । किंच सप्तपदीगमनात्प्राग्दोषदर्शने कन्याया अशुल्काया अपि त्याग इत्युपपादयति पाणिग्रहणिका इति । दारलक्षणं दारहेतुः । निष्ठा अनिवर्तमानोचिता समाप्तिः ।। २२७ ।।

(३) **कुल्लूकः** । वैवाहिकामन्त्रानियतंनिश्चितंभार्यात्वे निमित्तंमन्त्रैर्यथाशास्त्रप्रयुक्तैर्भार्यात्वेन निष्पत्तेः तेषांतु मन्त्राणां सखा सप्तपदी भवेति मन्त्रेण कल्पनया सप्तमे दत्ते पदे भार्यात्वनिष्पत्तेः । शास्त्रज्ञैः निष्पत्तिर्विज्ञेया एवंच सप्तपदी दानात्प्राग्भार्यात्वानिष्पत्तेः सत्यनुशये जह्यान्नोर्ध्वम् ।। २२७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । पाणिग्रहस्य दृष्टतया तन्मन्त्राणां क्वोपयोगस्तत्राह पाणिग्रहेति । तेषां मन्त्राणां निष्ठा समाप्तिः सप्तमेपदे सप्तमपदगमनेन कन्यायाः । अन्यथा विधितोदारत्वासिद्धेः सर्वधर्मलोपापत्तिरिति । एतेन सखासप्तपदीभवेति मन्त्रेण कन्यायाःसप्तमपदगमनेन भार्यात्वस्यावधिकथनात्तदभ्यन्तरेऽनुशये सति त्याज्यत्वं सूचितम् ।। २२७ ।।

(५) **नन्दनः** । कन्याया दारत्वे नियामकः पाणिग्रहणमन्त्रैःसंस्कारस्तेषांनिष्ठा तैर्मन्त्रैः

संस्कारसंपत्तिः सप्तमे पदे न प्रागिति। पाणिग्रहणमन्त्रसंस्कारोऽक्षतयोनीनामेव नान्य सामिति पाणिग्रहणिकाइत्युक्तंविशेषणम् ।। २२७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। तेषां मन्त्राणां निष्ठा अवस्था वर्तनोचिता समाप्तिः सप्तमे प विद्वद्भिर्विज्ञेया ।। २२७ ।।

(७) **मणिरामः**। दारलक्षणं भार्यात्वेनिमित्तं। तेषां मंत्राणां निष्ठा भार्यात्वोत्पाद त्वम्। तथा च सप्तपदीदानात् प्राक् भार्यात्वानिष्पत्तेः पश्चात्तापे जाते सा त्याज नोर्ध्वमित्यर्थः ।। २२७ ।।

(८) **गोविन्दराजः। पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतमिति**। वैवाहिकाः मन्त्राः नि श्चितं भार्यात्वे निमित्तं, तैः प्रयुक्तैः भार्या भवति, तेषां पुनर्मन्त्राणां सखा सप्तपदी भवे मन्त्रेण कन्याया सप्तमे पदे दत्ते सति शास्त्रज्ञैः समाप्तिर्बोद्धव्यैव च सप्तमात्पदादर्वागकन्य त्वपरिज्ञानेऽनुशये सति त्यजेन्नोर्ध्वं कानीनसहोढगूढोत्पन्नानां शास्त्रे बोढुः पुत्रदर्शनात् ।। २२७

(९) **भारुचिः**। संस्कारे...विवाहलक्षणे भवाः पाणिग्रहणिकाः तत्कर्मसाध भूतामन्त्राः नियतं दारलक्षणं दारोपसंग्रहलक्षणं कन्यानामेव गृह्यशास्त्रतो नाकन्यानाम् तथा च दर्शयति–विवाह उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात्। वि त्रिषूत्तरादि(सु ? पु)स्वातौ मृगशिरसि रोहिण्यामिति पुनश्चैवमेवार्थं दर्शयति–कुमार्या भ्रा शमीपलाशमित्रा लाजानञ्जलिनाञ्जलावापपतितां जुहोति संहतेन तिष्ठन्तीति। य श्चैतदेव अतस्तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे। तेषां मन्त्राणां पाणिग्रहणप्रयो नानां सप्तमे पदे निष्ठा परिसमाप्तिः प्रेत्य तस्याकार्यतः प्राप्तव्यस्य सप्तलोकसंस्थस्य लोक इयत्परिमाणत्वात्। सप्त हि लोकाः भूरादयः सत्यान्ताः तानसौ पादसंख्यासम्मितः त सह श्रौतस्मार्तैः कर्मभिः यातुमिच्छति सखा सप्तपदी भवेति। एवं च सति आसप्तभ्यः पदेभ स्पृष्टमैथुनत्वेन विज्ञा(ता ? त्वा)हेया भवति। ऊर्ध्वं तु सप्तमात् पदात् स्पृष्टमैथुना सती न परित्याज्या। तस्मान्न निष्ठा वचनलिङ्गाद्भवति। तथा च सति सहोढकानीनय शास्त्रोपदेशः समर्थो भवति। या तु रेगिणी सती धर्मप्रजननयोर (त्य ? न्व) समर्था भव तां प्रतिगृह्य नोत्सृजेत्। नहि तस्या धर्मविरोधे प्रजाविरोधे वा सति पुंसा कर्तव्यतान्यास्ति अथाप्यस्यादृष्टार्थः सम्प्रयोगः। तथाप्यसौ प्रागस्याधेयादन्यामुद्वाहयिष्यति। यातूभयोर धर्मप्रजननयोस्समर्था सा विद्यमानयातुल्येति परित्याज्यैव। अयं च कन्याव्यवहारः क्र विक्रयानुशयसादृश्यादेतस्मिन् नवधाप्युच्यत इति ।। २२७ ।।

**यस्मिन्यस्मिन् कृते यस्येहानुशयो भवेत् ।**
**तमनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत् ।। २२८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। न केवलं वाणिजां पण्यधर्मोऽयं दशाहिकोऽनुशयः, किं तर्हि, वेत संविद्वृद्धिप्रयोगादिषु **यस्मिन्यस्मिन्निति** वीप्सयाऽशेषकार्यपरिग्रहः अनेन **विधानेन** दाशाहिके विधिना। धर्मादनपेतो **धर्म्यः**। **पन्था** मार्गः। **निवेशयेत्**स्थापयेद्राजा। अतिदेशोऽयम्

**कृते कार्यं** इति प्रक्रान्ते पुनः सर्वेण सर्वनिवृत्तेस्तत्रानुशयाभावः। वाचा निरूपिते स्थापिते वाऽन्तरेऽनुशयय्य दशाहप्रतीक्षणम्। यत्र पुनर्वृत्यर्थे धनं नीतमृत्विक् च वृतो वेतनं च दत्तं–कृतसमये विरोध आरब्धस्तत्र नायं धर्म इति केचित्। न हि कृतमकृतं भवति। एतच्च न कृतं 'कृतं' निर्वृत्तमुच्यते, न प्रक्रान्तम्। न ह्ययं "आदिकर्मणि क्तः"। न हि मुख्यार्थत्यागे कारणमस्ति। यत्तु कृतं नाकृतं भवतीति कृतमपि तत्साध्यकार्यप्रतिषेधादकृतमेव। यथा भुक्तं वांतमिति। लौकिकेष्वपि पदार्थेषु शास्त्रावसेयव्यवस्था–केषु शास्त्रत एव निवृत्त्य-निवृत्ति विज्ञेये। अथापि वृत्ताः पदार्थास्तथापि प्रत्याहरणं विधीयते। निष्पन्नेऽपि धन-प्रयोगे स्वस्थाननीतेष्वपि रूपकेषु प्रत्यानयनं कर्तव्यमन्यतरानुशयात्। क्षयव्ययाः शास्त्र-धर्मेण नीतेषु वोढव्याः। तथा च गृहीतमात्रेषु मासिकीं वृद्धिमिच्छन्ति। यत्रैवं बन्ध एष भोक्तव्य इयन्तं कालमित्येवमाद्यन्तर्दशाहमनुशये निवर्त्यते। ऋत्विजां तु वरणं विवाह इव कन्यानाम्। संविदे दशाहादूर्ध्वे प्रवर्तितव्यमन्यस्मिन् शास्त्रे सति ॥ २२८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एवमन्येष्वपि द्रव्येषु दोषदर्शनान्निवर्तनमूह्यमित्यतिदिशति यस्मिन्निति। धर्मेपथि निवेशयेत् क्रयप्रत्यावर्तनेन राजा ॥ २२८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। न केवलंक्रयएव अन्यत्रापि यस्मिन् यस्मिन्संबन्धित्वेनादौ कार्ये यस्य पश्चात्तापोजायते तमनेन दशाहविधिना धर्मादनपेते मार्गे नृपः स्थापयेत् ॥ २२८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। क्रीत्वेत्यत्रोक्तंगृहीतस्य त्यागमन्यत्राप्यतिदिशन्नाह यस्मिन्निति। धर्म्ये दशाहाभ्यन्तरे सप्तमपदाभ्यन्तरे कन्यामपि निवेशयेत् पूर्वस्वामिन्यर्पयेदिति भावः ॥ २२८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यस्य पुंसः इहकार्ये अनुशयः पश्चात्तापः भवेत् ॥ २२८ ॥

(७) **मणिरामः**। अनेनविधानेन दशाहविधिना ॥ २२८ ॥ २२९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। यस्मिन्निति। न केवलं क्रयविक्रयः एवं यावद्यस्मिन्त्सं-विद्वेदनादावपि कार्ये कृते यस्य लोके पश्चात्तापः स्यात् तं पुत्रदानादिकविधिना धर्मादनपेते मार्गे नृपः स्थापयेत् ॥ २२८ ॥

(९) **भारुचिः**। आधिवेतनसमयाद्यनुशयेषु दशाह एव निष्ठा स्यात् ॥ २२८ ॥

**पशुषु स्वामिनां चैव पालानां च व्यतिक्रमे ॥**
**विवादं संप्रवक्ष्यामि यथावद्धर्मतत्त्वतः ॥ २२९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। गवादिपशुविषये **व्यतिक्रमे स्वामिनां पालानां च** गोपालादीनां यो **विवादः**–'गौस्त्वया मे नाशिता तां मे देहीति'–पालोऽपि विप्रतिपद्यते–'मदीयो दोषो नाभवत्–इत्यत्र वादपदे **यद्धर्मतत्त्वं** यादृशी व्यवस्था तां **यथावन्निपुणतो वक्ष्यामी**त्यवधानार्थः पिण्डीकृतप्रकरणोपन्यासः ॥ २२९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स्वामिपालविवादं प्रक्रमते पशुष्विति। पशुषु विषयेषु। ॥ २२९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। गवादिपशुविषये स्वामिनां पालानां व्यतिक्रमे जाते विवादं सम्यग्धर्म्यं यथा तथा व्यवस्थया वक्ष्यामि ॥ २२९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। स्वामिपालयोरित्युक्तं तमनुसरति पशुष्विति। यथावद्धर्मतत्त्वतः यथातथाव्यवस्थितयोः ॥ २२९ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ स्वामिपालयोर्विवादमाह पशुषु स्वामिनां चैवेति ॥ २२९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। पशूनां स्वामिनां च पुनः पालानां गोपानां व्यतिक्रमे अपराधे यथावद्वक्ष्यामि ॥ २२९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। पशुष्विति। पशुविवाददोषैरुत्पन्नैः स्वामिनां तत्पालानाञ्च विवादमशेषं कृत्वा तात्त्विकव्यवस्थां वक्ष्यति ॥ २२९ ॥

(९) **भारुचिः**। उपन्यासार्थं श्लोकः ॥ २२९ ॥

**दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे ॥**
**योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वक्तव्यतामियात् ॥ २३० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **दिवा** पशूनां **योगक्षेमे** दोष उत्पन्ने 'नष्टं विनष्टम्' इत्यादिके वक्ष्यमाणे—**पाले वक्तव्यता** कुत्सनीयता। तेन स दोषो निवोढव्यः। **रात्रौ स्वामिनो** दोष उद्बन्धनादिमृतानाम्। **तद्गृहे** स्वामिगृहे यदि पालेन प्रवेशिता भवन्ति। **अन्यथा चेत्तु**—यदि रात्रावपि पालेन न प्रवेशिता अरण्य एव वर्तन्ते तदा पालो दोषभाक् स्यात्। एतदुक्तं भवति। पालहस्तगता गावो यदा क्षेत्रे कस्यचित्सस्यं भक्षयन्ति केनचिद्वा हन्यन्ते तदा पालस्य, अथ पालेन समर्पितास्तदा स्वामिनः। अयोगक्षेमे **योगक्षेम**शब्दः प्रयुक्तो लक्षणया—यथाऽन्धे चक्षुष्मानिति ॥ २३० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वक्तव्यता पशूनामक्षेमे तत्कृतापचयवत्ता। तद्गृहे तद्गृहावस्थाने पशूनाम्। योगक्षेमे पशूनामप्राप्तानां प्रापणं प्राप्तरक्षणं च यदि त्वन्यथा दिवारात्रौ च पाल एवार्पितं तदा पालदोषः ॥ २३० ॥

(३) **कुल्लूकः**। दिवा पशूनां पालहस्तन्यस्तानां योगक्षेमविषये पालस्य गर्हणीयता। रात्रौ पुनः पालप्रत्यर्पितानां स्वामिगृहस्थितानांस्वामिनो दोषोऽन्यथातु यदि रात्रावपि पालहस्तगता भवन्ति तत्र दोषउत्पन्ने पाल एव गर्हणीयतां प्राप्नोति ॥ २३० ॥

(४) **राघवानन्दः**। तमेवाह दिवेति। वक्तव्यता गर्हणीयता योगक्षेमविषये योगोऽप्राप्तस्य प्रापणं क्षेमः प्राप्तस्य परिपालनं तस्य न सति तद्गृहपालेन समर्पितत्वे, अन्यथा पालेनासमर्पितत्वे पाल एव वक्तव्यः प्रायश्चित्ताद्यन्वितत्वेन इत्यन्वयः ॥ २३० ॥

(५) **नन्दनः**। वक्तव्यताऽपराधः। योगो यवसपानीयादिदानरूपः क्षेमोऽनिष्टसनिवारणरूपः ॥ २३० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अन्यथाचेत्पाले समर्पिता सर्वदा पालःवक्तव्यतां दोषभावितां इयात् ।। २३० ।।

(७) **मणिरामः**। इदानीं स्वामिपालधर्ममाह। दिवेति। रात्रौ तद्गृहे स्वामिगृहे पशुषुस्थितेषु स्वामिनि वक्तव्यतादोषः। अन्यथा। रात्रावपिचेत्पशुपालहस्ते पशुः स्तदा पाले एवेत्यर्थः ।। २३० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। दिवेति। पालकन्यस्तानां पशूनां दिवा दोष उत्पन्ने पालस्य गर्हणीयता रात्रौ पुनः पालप्रत्यर्थिनां स्वामिनो दोषो यदि पुना रात्रावपि पालहस्तगता भवन्ति तत्र दोष उच्यते। तदा पाल एव गर्हतां प्राप्नुयादयोगक्षेमे योगक्षेमशब्दप्रकाशवत् ।। २३० ।।

(९) **भारुचिः**। प्रतीर्थः श्लोकः ।। २३० ।।

कोऽसौ योगक्षेमः। अतः प्रपञ्चयति—

**गोपः क्षीरभृतो यस्तु स दुह्याद्दशतोवराम् ।।**
**गोस्वाम्यानुमते भृत्यः सा स्यात्पालेऽभृते भृतिः ।। २३१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। गाः पाति **गोपः** गोपालकः। स कदाचिद्भक्तादिना म्रियते कदाचित्क्षीरेण। तत्र **क्षीरभृतो** दशभ्यो **वराम्** श्रेष्ठाम्, अवरां वा—संहितायामकारप्रश्लेषात्। रक्षायामनुरूपकता। **यस्य** नान्यदन्नं स एकस्या गोःक्षीरमादद्यात् दशतः। अनया कल्पनया न्यूनाधिकरक्षणे भृतिः कल्पयितव्या। एवं दोह्यादोह्यधेनुवत्सतरीदम्यवत्सकादिवारणे क्वचित्तृभागः क्षीरस्य क्वचिच्चतुर्भागः स्वामिभिः कल्पयितव्यः।

दिङ्मात्रप्रदर्शनार्थश्लोकोऽयम्। देशव्यवस्था त्वाश्रयणीया। भृतिं निरूपयिष्यामीति ग्रामगोपालेन यदि गावस्त्यक्ता भवन्ति न तेन स्वामिनमननुज्ञाप्य दशमी गौर्दोह्येति।

भक्तभृतोऽपि 'क्षीरेण विनिमयेयमिति' बुद्ध्या दुहीत—तन्निवृत्त्यर्थमुक्तं **गोस्वाम्यनुमत इति**। स्वामिनोऽनुमतिमन्तरेण प्रवर्त्तमानो दण्ड्यः।

**सा**—अनन्तरोक्ता। **अभृते** भक्तादिना—**भृतिर्भवेत्**। क्षीरभृतो वा एषा वृत्तिः। 'भृत्यो' भरणार्थं न धर्माय प्रवृत्तो गोरक्षायाम्।

अथवा स्वेच्छया दशम्या गोः क्षीरमाददानश्चोरः स्यात्। अस्मिंस्त्वनुज्ञाते भृतिस्तस्येयमिति न दोषः।

अत्रापि स्वामिनोऽननुमत्या दोष एवेति चेत्सत्यम्—कल्प्या काचिद्दंडमात्रा न चौरो भवति। अस्मिंस्तु चौरो निक्षेपहारी वा स्यात्।

अयं श्लोक आदौ वक्तव्यः। अतोऽनंतरः क्वचित्पठ्यते ।। २३१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। क्षीरभृतः क्षीरमात्रवेतनो यो गोपालः स दुह्यादात्मार्थम्।

दशतोदशसु गोषु रक्षितासु तन्मध्यतोवरामुत्तमाम्। गोस्वाम्यनुमत इति तदनुमत्या। भृत्यवष्टम्भेन दोहे दण्डच इत्यर्थः। क्षीरं दुह्यादितिच तत्तत्पशुविकारोपयोगोपलक्षणम्। तेन मेषादावूर्णादिग्रहणेपि तत्पालकस्यायं भागक्रम इत्याह सा स्यादिति ॥ २३१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यो गोपालाख्यो भृत्यः क्षीरेण न भक्तादिना स्वस्वाम्यनुज्ञया धर्षितो-गोभ्यः श्रेष्ठामेकांगां भृत्यर्थंदुह्यात्साभक्तादिरहिते गोपाले भृतिः स्यात्। एवं चैकगवीक्षीर-दानेन दशगाः पालयेदित्युक्तम् ॥ २३१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। गवां पालस्य भृतिमाह गोप इति। गवां क्षीरमेव भृतं भृतिर्यस्य दशतोवरां दशभ्यःश्रेष्ठां गां दुह्यात् स्वभृतितया। अभृते भक्तादिभिः सा गोभृतिः स्या-त्स्वार्थं दुह्यमानाया दुग्धभृतिरितिभावः ॥ २३१ ॥

(५) **नन्दनः**। क्षीररूपभृतिग्राही क्षीरभृतः। दशतोवरंदशभ्योगोभ्यः पाल्यमानाभ्यो दोह्यहेतुभूताभ्यः अवरामेकांगां गोस्वामिनानुज्ञातोदुह्यात्। जातस्य दशगोरक्षकस्य मृतिः ॥ २३१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। क्षीरभृतः क्षीरवेतनः गोपः दशतः अवरां ऊनां गोस्वामिनि मृते सःभृत्यः दद्यात् दशगवां मध्ये वरां श्रेष्ठां अमृते। अकृतवेतने पाले साभृतिः स्यात् ॥ २३१ ॥

(७) **मणिरामः**। यस्तुक्षीरभृतः क्षीरेणैवभृत्यः न तु भक्तादिना। सः वरां श्रेष्ठां एकां स्वाम्यनुज्ञायादुह्यात्। सा–अमृते पालेभृतिः स्यात्। एवं च एकगवीक्षीरदानेन दशगाः पालयेत् ॥ २३१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **गोप इति**। यो गोपालाख्यो भृत्यः क्षीरभृतो न भक्तादिभृतः स स्वाम्यनुज्ञया दशभ्यो गोभ्य एकां श्रेष्ठां आत्मभृत्यर्थं दुहीत। सा भक्तादिना भृते पाले भृत्या स्यादेव चैकक्षीरादनेन दश गाः पालयेत् ॥ २३१ ॥

(९) **भारुचिः**। क्षीरभृतो भक्ताच्छादनभृतो द्विविधः यस्माद् गोपः अत इदं विशे-ष्यते क्षीरभृतो यस्तु गोपः स दुहेद्दशतः दशभ्यो धेनुभ्य एकां वरां श्रेष्ठां इत्यर्थः। तामपि गोस्वाम्यनुमतः। न स्वेच्छया सा स्यात् (बाले ? पाले) भृत्यन्तरेणाभृते भृतिः। एवं च सति पञ्चावस्थासु गोषु बह्ववस्थासु वा गोस्वामिभिर्गोपैश्च त्रिभागः क्षीरस्य कल्पितः। परिकल्प्यभोग्याभोग्यरूपाण्यनेनैव शास्त्रेण येन एतस्मादेव च दर्शनात्। क्षीरभृतिः पशूनां संरक्षणे न दोषाय प्रतिषेधात्तस्या इति ॥ २३१ ॥

**नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतं ॥**
**हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ॥ २३२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **नष्टं** दृष्टिपथादपेतं न ज्ञायते क्व गतम्। **विनष्टं कृमिभिः**। आरोहकनामानः कृमयो गवां प्रजनवर्त्मनाऽनुप्रविश्य नाशयन्ति। **श्वभिर्हृतम्**। प्रदर्शनार्थ-मेतत्। तेन गोमायुव्याघ्रादिहृतानामेषैव स्थिति। **विषमे** श्वभ्रदरीशिलादिसंकटादौ

(६) **रामचन्द्रः**। अन्यथाचेत्पाले समर्पिता सर्वदा पालःवक्तव्यतां दोषभावितां इयात् ॥ २३० ॥

(७) **मणिरामः**। इदानीं स्वामिपालधर्ममाह। दिवेति। रात्रौ तद्गृहे स्वामिगृहे पशुषुस्थितेषु स्वामिनि वक्तव्यतादोषः। अन्यथा। रात्रावपिचेत्पशुपालहस्ते पशुः स्तदा पाले एवेत्यर्थः ॥ २३० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। दिवेति। पालकन्यस्तानां पशूनां दिवा दोष उत्पन्ने पालस्य गर्हणीयता रात्रौ पुनः पालप्रत्यर्थिनां स्वामिनो दोषो यदि पुना रात्रावपि पालहस्तगता भवन्ति तत्र दोष उच्यते। तदा पाल एव गर्हतां प्राप्नुयादयोगक्षेमे योगक्षेमशब्दप्रकाशवत् ॥ २३० ॥

(९) **भारुचिः**। प्रतीर्थः श्लोकः ॥ २३० ॥

कोऽसौ योगक्षेमः। अतः प्रपञ्चयति—

**गोपः क्षीरभृतो यस्तु स दुह्याद्दशतोवराम् ॥**
**गोस्वाम्यानुमते भृत्यः सा स्यात्पालेऽभृते भृतिः ॥ २३१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। गाः पाति **गोपः** गोपालकः। स कदाचिद्भक्तादिना म्रियते कदाचित्क्षीरेण। तत्र **क्षीरभृतो** दशभ्यो **वराम्** श्रेष्ठाम्, अवरां वा—संहितायामकारप्रश्लेषात्। रक्षायामनुरूपकता। **यस्य** नान्यदन्नं स एकस्या गोःक्षीरमाददात् दशतः। अनया कल्पनया न्यूनाधिकरक्षणे भृतिः कल्पयितव्या। एवं दोह्यादोह्यधेनुवत्सतरीदम्यवत्सकादिवारणे क्वचित्त्रिभागः क्षीरस्य क्वचिच्चतुर्भागः स्वामिभिः कल्पयितव्यः।

दिङ्मात्रप्रदर्शनार्थश्लोकोऽयम्। देशव्यवस्था त्वाश्रयणीया। भृतिं निरूपयिष्यामीति ग्रामगोपालेन यदि गावस्त्यक्ता भवन्ति न तेन स्वामिनमननुज्ञाप्य दशमी गौर्दोह्येति।

भक्तभृतोऽपि 'क्षीरेण विनिमयेयमिति' बुद्ध्या दुहीत—तन्निवृत्त्यर्थमुक्तं **गोस्वाम्यनुमत इति**। स्वामिनोऽनुमतिमन्तरेण प्रवर्त्तमानो दण्ड्यः।

**सा**—अनन्तरोक्ता। **अभृते** भक्तादिना—**भृतिर्भवेत्**। क्षीरभृतो वा एषा वृत्तिः। 'भृत्यो' भरणार्थं न धर्माय प्रवृत्तो गोरक्षायाम्।

अथवा स्वेच्छया दशम्या गोः क्षीरमाददानश्चोरः स्यात्। अस्मिंस्त्वनुज्ञाते भृतिस्तस्येयमिति न दोषः।

अत्रापि स्वामिनोऽननुमत्या दोष एवेति चेत्सत्यम्—कल्प्या काचिद्दंडमात्रा न चौरो भवति। अस्मिंस्तु चौरो निक्षेपहारी वा स्यात्।

अयं श्लोक आदौ वक्तव्यः। अतोऽनंतरः क्वचित्पठ्यते ॥ २३१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। क्षीरभृतः क्षीरमात्रवेतनो यो गोपालः स दुह्यादात्मार्थम्।

दशतोदशसु गोषु रक्षितासु तन्मध्यतोवरामुत्तमाम्। गोस्वाम्यनुमत इति तदनुमत्या। भृत्यवष्टम्भेन दोहे दण्डच इत्यर्थः। क्षीरं दुह्यादितिच तत्तत्पशुविकारोपयोगोपलक्षणम्। तेन मेषादावूर्णादिग्रहणेपि तत्पालकस्यायं भागक्रम इत्याह सा स्यादिति ॥ २३१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यो गोपालाख्यो भृत्यः क्षीरेण न भक्तादिना स्वस्वाम्यनुज्ञया धर्षितो-गोभ्यः श्रेष्ठामेकांगां भृत्यर्थंदुह्यात्साभक्तादिरहिते गोपाले भृतिः स्यात्। एवं चैकगवीक्षीर-दानेन दशगाः पालयेदित्युक्तम् ॥ २३१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। गवां पालस्य भृतिमाह गोप इति। गवां क्षीरमेव भृतं भृतिर्यस्य दशतोवरां दशभ्यःश्रेष्ठां गां दुह्यात् स्वभृतितया। अभृते भक्तादिभिः सा गोभृतिः स्या-त्स्वार्थं दुह्यमानाया दुग्धभृतिरितिभावः ॥ २३१ ॥

(५) **नन्दनः**। क्षीररूपभृतिग्राही क्षीरभृतः। दशतोवरंदशभ्योगोभ्यः पाल्यमानाभ्यो दोह्यहेतुभूताभ्यः अवरामेकांगां गोस्वामिनानुज्ञातोदुह्यात्। जातस्य दशगोरक्षकस्य मृतिः ॥ २३१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। क्षीरभृतः क्षीरवेतनः गोपः दशतः अवरां ऊनां गोस्वामिनि मृते सःभृत्यः दद्यात् दशगवां मध्ये वरां श्रेष्ठां अमृते। अकृतवेतने पाले साभृतिः स्यात् ॥ २३१ ॥

(७) **मणिरामः**। यस्तुक्षीरभृतः क्षीरेणैवभृत्यः न तु भक्तादिना। सः वरां श्रेष्ठां एकां स्वाम्यनुज्ञायादुह्यात्। सा–अमृते पालेभृतिः स्यात्। एवं च एकगवीक्षीरदानेन दशगाः पालयेत् ॥ २३१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **गोप इति**। यो गोपालाख्यो भृत्यः क्षीरभृतो न भक्तादिभृतः स स्वाम्यनुज्ञया दशभ्यो गोभ्य एकां श्रेष्ठां आत्मभृत्यर्थं दुहीत। सा भक्तादिना भृते पाले भृत्या स्यादेव चैकक्षीरादनेन दश गाः पालयेत् ॥ २३१ ॥

(९) **भारुचिः**। क्षीरभृतो भक्ताच्छादनभृतो द्विविधः यस्माद् गोपः अत इदं विशे-ष्यते क्षीरभृतो यस्तु गोपः स दुहेद्दशतः दशभ्यो धेनुभ्य एकां वरां श्रेष्ठां इत्यर्थः। तामपि गोस्वाम्यनुमतः। न स्वेच्छया सा स्यात् (बाले ? पाले) भृत्यन्तरेणाभृते भृतिः। एवं च सति पञ्चावस्थासु गोषु बह्ववस्थासु वा गोस्वामिभिर्गोपैश्च त्रिभागः क्षीरस्य कल्पितः। परिकल्प्यभोग्याभोग्यरूपाण्यनेनैव शास्त्रेण येन एतस्मादेव च दर्शनात्। क्षीरभृतिः पशूनां संरक्षणे न दोषाय प्रतिषेधात्तस्या इति ॥ २३१ ॥

**नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतं ॥**
**हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ॥ २३२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **नष्टं** दृष्टिपथादपेतं न ज्ञायते क्व गतम्। **विनष्टं कृमिभिः**। आरोहकनामानः कृमयो गवां प्रजनवर्त्मनाऽनुप्रविश्य नाशयन्ति। **श्वभिर्हतम्**। प्रदर्शनार्थ-मेतत्। तेन गोमायुव्याघ्रादिहतानामेषैव स्थिति। **विषमे** श्वभ्रदरीशिलादिसंकटादौ

मृतम्। **प्रदद्यात्पाल एव** । **हीनं पुरुषकारेण** 'पुरुषकारः' पुरुषव्यापारः। पालस्य तत्र संनिधानात् वृकनिवारणं च (गोपकर्तव्या) प्रवृत्तिः। तेनापेतम्। यदि व्याप्रियमाणो व्याघ्रादेर्निवारणे नैव समर्थः—सहसैव वोत्पत्य कश्चित् पशुर्वेगेन श्वभ्रं गच्छेदनुगच्छताऽपि न शक्यः प्रत्यावर्तयितुं—न पाले दोषः ॥ २३२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नष्टमदर्शनंगतं कृमिभिर्विनष्टंविनाशितं विषमे मृतं निम्न-पातादिना यत्तु पुरुषकारसंभवे तदकरणं तत्पुरुषकारहीनं तं पालो दद्यात् ॥ २३२ ॥

(३) **कुल्लूकः** । नष्टंदृष्टिपथातीतंकृमिभिर्नाशितंश्वभिःखादितंहतंविवरादिपातमृतं-प्रदर्शनंचैतत्पालसंबन्धिरक्षकाख्यपुरुषव्यापाररहितंमृतंपलायितंगवादि पशुपालएव तु स्वामिने दद्यात् ॥ २३२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। भृतिभुजः पालस्य दण्डमाह नष्टमिति। नष्टं दृष्टिपथातीतं कृमिभिः सर्पादिभिर्विनष्टं मृतं पुरुषकारेण हीनं चोरादिना ह्रियमाणं न रक्षितं तादृशं पशुं दद्यात् ॥ २३२ ॥

(५) **नन्दनः**। नष्टमदृष्टं पशुमितिशेषः ॥ २३२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। पुरुषकारेण हीनं नष्टं पुरुषकारे सति यदि तं न करोति तं हि पाल एव प्रदद्यात् ॥ २३२ ॥

(७) **मणिरामः**। नष्टं दृष्टिपथातीतं। कृमिर्मिर्विनष्टं नाशितं। पुरुषकारेणहीनं पालसंवविरक्षकाख्यपुरुषव्यापारेण रहितं सत् नष्टादिकं भवति तदा पाल एव दद्यात्। ॥ २३२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। नष्टमिति। पालसम्बन्धिरक्षणाद्यः साक्षात्पुरुषव्यापारेण शून्यं सन्तं नष्टं द्रष्टिगोचराऽतीतं कृमिभिः भक्षितं श्वभ्रादिमृतं पाल एव स्वामिनो दद्यात् ॥ २३२ ॥

(९) **भारुचिः**। एवं च सति गोपप्रमादेन। अस्यापवादः ॥ २३२ ॥

**विघुष्य तु हृतं चौरैर्न पालो दातुमर्हति ॥**
**यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥ २३३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **विघुष्याऽऽघुष्य** पटहान् **चौरैर्हृतं** पशुं **पालो** न दाप्यते। विघोषणं च पालस्याशक्त्युपलक्षणार्थम्। यदि बहवश्चोराः प्रसह्य च मुष्णन्ति तदा पालो मुच्यते। सोऽपि यदि प्राप्तकालं तस्यामेव वेलायां स्वामिनः कथयति। **देशे** यत्र स्वामी संनिहितः।

"कथं विज्ञातस्तत्र अथवा निवासदेशे स्वामिनः।" तत्र यद्यसावसंनिहितोऽपि भवति तथापि तत्स्थानीयो भवति—यो राजानमधिकारिणं वा ज्ञापयित्वा चौरानभिद्रवति।

**स्वस्येति** राजनिवृत्त्यर्थम्। स्वोहि स्वामी स्वद्रव्यमोक्षणे यत्नं कुरुते न तथा पाल-ज्ञापितो राजा। दुष्करा च राजज्ञापना पालस्य। अथ मुषित्वा गतेषु ज्ञापयेदेव। ॥ २३३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विधुष्य प्रकाश्य बलादिति यावत्। देशे समीपदेशे काले दिवसादौ वा शंसति दूरदेशविषमकालादौ त्वकथनेऽप्यदोष इत्यर्थः ॥ २३३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। चौरैः पुनः पटहादिविधुष्य हृतं पालोदातुं नार्हति। विधुष्येति चौराणांबहुत्वंप्रबलत्वंकथनपरम्। सन्निहिते देशे हरणकालान्तरमेवात्मीयस्वामिनः कथयति ॥ २३३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एवंकर्मा पालेन दद्यादित्याह विधुष्येति। तेषां प्राबल्ये सतीत्यर्थः। यदीति देशकालनिश्चयार्थम्। देशे नदीतीरादौ काले प्रातरादौ हरणकालानन्तरमेव स्वस्य गवादेर्वृत्तं स्वामिनःप्रति शंसति कथयति स्वस्य युद्धादिकमिति वा ॥ २३३ ॥

(५) **नन्दनः**। विधुष्य ह्रियमाणं विख्याप्य हृतं बलाद्धृतमितियावत् ॥ २३३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यदि देशे यस्मिन्देशे चौरैर्द्धृतं अस्मिन्काले स्वामिनः स्वस्य द्रव्यस्य गवादेः हरणे सति सः न दातुं अर्हति ॥ २३३ ॥

(७) **मणिरामः**। शंसति मरणादिकालं देशं च कथयति ॥ २३३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **विधुष्येति**। चौरैःपुनः पटहाद्याघुष्य हृतं पालो दातुं नार्हति। यदि तस्मिन्नेव देशे हरणं कालानन्तरं एवात्मीयस्य स्वामिनः कथय (थ्य) ते ॥ २३३ ॥

(९) **भारुचिः**। हरणदेशे हरणकाले च विधुष्य अनन्तरं स्वामिन आख्याते पालो न दद्यात्। स्वयं मृत्युनापि च मृतेषु प्रयत्नवतो गोपस्य स इदं कुर्यात् ॥ २३३ ॥

**कर्णौ चर्म च बालांश्च बस्तिं स्नायुं च रोचनाम् ॥**
**पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्गांश्च दर्शयेत् ॥ २३४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। आयुषः क्षयान्मृतेषु पशुषु स्वामिनः **कर्णाद्यर्पणीयम्**। गोरोचनां गवां शृङ्गेषु चूर्णं भवति। **बस्तिरङ्गविशेषः**। **अङ्गाः** कर्णादयः, स्वामिविशेषज्ञानार्थं चिह्नानि। तानपि दर्शयेत्। एवं पालस्य शुद्धिः। अङ्गदर्शनेन हि प्रत्यभिज्ञा भवत्ययं स पशुरिति ॥ २३४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स्वयं मृतेत्वाह कर्णाविति। बस्तिं मूत्रपुटं। एतेषामन्यतमं दद्यात्। शृङ्गाणिच दर्शयेदिति विकल्पः। मृतेष्वङ्गानीति पाठे अङ्गान्यङ्गरूपाणि अङ्गान्तराणीत्यर्थः ॥ २३४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। स्वयं मृतेषु पशुषु कर्णचर्मलाङ्गूलप्रवालान्नाभेरधोभागस्नायुरोचनाः स्वामिनां दद्यात् अन्यानि च चिन्हानि शृङ्गखुरादीनि दर्शयेत् ॥ २३४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। स्वयंमृतेषु पशुस्वामिने तदीयानेतान्प्रदर्शयन्न दण्डभागित्याह कर्णाविति। बस्तिमधोदेशम्। अंगान्युपतातिरिक्तानि शृङ्गखुरादीनि ॥ २३४ ॥

(५) **नन्दनः**। गवां मरणे गोपालेन कर्त्तव्यमाह कर्णौ चर्मेति। मृतेषु पशुष्वङ्गा न्युक्तान्येव दर्शयेत्स्वामिने ॥ २३४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। पशौ मृते पशोःअंगानि कर्णादीनि दर्शयेत् गोरोचनं तिलकादि ॥ २३४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **मृतेषु** स्वयं मृतेषु एतान् दर्शयेत्। वस्ति पुच्छं स्नायुं अधोभागं। रोचनां गोरोचनेति प्रसिद्धां ॥ २३४ ॥

(९) **भारुचिः**। कर्णौ चर्म च लोमाश्चेति। पशुस्वामिषु दद्यात्तु मृतेस्वङ्गाश्च दर्शयेत्। स्वयं मृतेषु पशुषु कर्णचर्मरोमवस्त्याख्यमूत्राधाराङ्गविशेषस्नायुगोरोचना उपकारकत्वात्स्वामिने दद्यात्। चिन्हानि वदता कर्णत्वगादीनि प्रत्यभिज्ञानं दर्शयेत् ॥ २३४ ॥

....चाविशेषः ॥ २३४ ॥

**अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पाले त्वनायति ॥**
**यां प्रसह्य वृको हन्यात्पाले तत्किल्बिषं भवेत् ॥ २३५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अजा चाविका **चाजाविके**। अविरेवाविकैडका। एते **वृकैः** श्वृगालप्रभृतिभिः **संरुद्धे** अवष्टब्धे, न प्रथमपात एव हते। अस्मिंश्चान्तरे सत्यामोक्षणेऽहतत्वात्। न च पाल आयाति मोक्षयितुम्। **अनायत्यनागच्छति पाले**। **यत्** तत्र **प्रसह्य** बलेनाभिभूय **वृको हन्यात्पा**लस्य स दोषः। स्वामिनो दापयितव्यः। प्रायश्चित्तं चरेत्। गोर्महत्त्वाद्गोमायुना न शक्यते संरोद्धुमित्यजाविके इत्युच्यते, न पुनस्तद्रूपम्। अतश्च बालानां गोवत्सानामेष एव न्यायः ॥ २३५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अजाविकइति वृकघातयोग्यतया गवागवादेस्तुव्याघ्रादेरेव भयं तत्रच पालस्य रक्षणाशक्तेर्न दोषः। वृकैःसंरुद्धे तदाच पालेऽन्यव्यासक्तया तत्रागत्य क्षेममकुर्वति। किल्बिषमपराधः ॥ २३५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अजाश्चाविकाश्चाजाविकं गवाश्वप्रभृतीनिचेति द्वन्द्वैकवद्भावः तस्मिन्नजाविके वृकैः परिवृते सति पाले नागच्छति यामजामेडकांवा वने वृकोहन्यात्सपालस्य दोषः स्यात् ॥ २३५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। गोविषयकमुक्ताऽजादिविषयकमाह अजेतिद्वाभ्याम्। वृकैर्व्याघ्रैर्हन्तुं रुद्धे अनायति अनागच्छति सति दण्डो बहिःप्रायश्चित्तार्थम्। किल्बिषमिति तद्वधपापं पालस्येत्यर्थः ॥ २३५ ॥

(५) **नन्दनः**। वृकग्रहणंव्याघ्रादीनामप्युपक्षणार्थं अनायत्यनागच्छति। यामजामविंवा। अजाविकेति पुसां पूर्वलक्षणमेतत्। तत्किल्बिषं तस्य वधोपराधः ॥ २३५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अजःछागःआविकःअनायतिसति अनागच्छतिसति वृकःयान्प्रसह्य

हन्यात् तत्किलिबषं पाले भवेत् ।। २३५ ।।

(७) **मणिरामः**। अनायति अनागच्छति सति ।। २३५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अजाष्वि(वि)केषु इति।** अजैडके शृगालादिभिः आक्रान्ते भवति तदा पालेऽनागच्छति यानभिभूय वृको हन्यात् स पालस्य दोषः स्यात्। बहुत्वाद्-वृकाक्षेपासंभवे सत्यजादिग्रहणम् ।। २३५ ।।

(९) **भारुचिः**। पशुरक्षकस्य सतस्तत्पदसन्निधाने ···· पालो दद्यात्। यस्माद-वरुद्धानां सन्निहितो न भवति। वृकग्रहणं चान्येषामपि प्रदर्शनार्थम् ।। २३५ ।।

**तासां चेदवरुद्धानां चरंतीनां मिथो वने ।।**
**यामुत्प्लुत्य वृको इन्यान्न पालस्तत्र किल्बिषी ।। २३६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। 'अजाविके' पूर्वश्लोके जात्यपेक्षं द्विवचनम्। पशुशकुनिद्वन्द्व-त्वाद्विभाषितैकवद्भावः। इह तु **तासामिति** व्यक्त्यपेक्षो बहुवचने परामर्शः।

**अवरुद्धानां मिथ** एकत्र प्रदेशे स्थापितानां संहतीभूतानां दिग्भ्यो विदिग्भ्यश्च निरुद्ध-गमनानां **वने चरन्तीनां** दृष्टिगोचराणां—यदि कुतश्चन कुञ्जात्संचरणोत्पतनानुक्रमेण निष्क्रम्य वृको हन्यान्न पालो दोषभाक्। अशक्यं ह्यनेकवृक्षक्षुपशरवल्लीगहनं वनं निर्विवरीकर्तुम्,

**मिथो**ग्रहणाच्चातिदूरविप्रकृष्टासु वधे दोष एव। पालहस्तगताः पशवस्तदुपेक्षायां यदि दोषमाप्नुयुः स पालेनैव समाधेय इति सिद्धे एष प्रपञ्चः सुखावबोधार्थः ।। २३६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अवरुद्धानामेकस्थानीकृत्य पालेन रक्ष्यमाणानाम् ।। २३६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। तासामजाविकानां पालेन नियमितानां सधीभूय वनेचरन्तीनाम् यत्नाद्यदि कश्चित्कुतश्चिदुत्प्लुत्यालक्षितो यां कांचिद्धन्यान्न पालस्तत्र दोषभाक् ।। २३६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अवरुद्धानांपालेनप्राकारादिना रक्षार्थमागते तुनदोष इत्याह तासामिति। यामिति लिङ्गमविवक्षितम्। तत्र तादृशे हते नकिल्बिषी दण्डं प्रायश्चित्तंवा नार्हति ।। २३६ ।।

(५) **नन्दनः**। अजावीनां मद्धचे मिथोवने वनगहने ।। २३६ ।।

(७) **मणिरामः**। तासांअजाविकानां। अवरुद्धानां पालेनरक्षितानां ।। २३६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। तासामिति। यदि तासामजाविकानां पालेनैव श्वानुगतश्चा-वरुद्धगमनानां संहतीभूय वने चरन्तीनां मध्यात्कांश्चित्कुतश्चित् वनादेरुत्पत्य शृगालादि हन्यात् न तत्र पालो दोषभाक् ।। २३६ ।।

(९) **भारुचिः**। तासां चेदवरुद्धानां चरन्तीनां मिथोवने। यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किल्बिषी। अशक्यत्वादटव्यां बहुवृक्षक्षुपगर्तायां तत्संरक्षणस्य मिथश्चरन्तीनां न पालापराधः। एतेन गोमहिष्यादि व्याख्यातम्। उक्तो गोसंरक्षण विधिः ।। २३६ ।।

**धनुःशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ॥**
**शम्यापातास्त्रयो वाऽपि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥ २३७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। चतुर्हस्तं धनुस्तेषां **शतम्**। चत्वारि हस्तशतानि। **समंतत** श्चतसृ दिक्षु। **ग्रामस्य परीहारः** कर्तव्यः। अनुप्तसस्या भूमिः पशूनां सुखप्रचारार्था कर्तव्या

**शम्या** दण्डयष्टिः। शम्या बाहुवेगेन प्रेरिता यत्र पतति ततः प्रदेशादुद्धृत्य पुनः पातः तव्या—यावत्त्रिस्तस्य परिमाणो वा **शम्यापातः** परीहारः।

**त्रिगुणो नगरस्य**। ग्रामनगरे प्रसिद्धे।

शम्यायाः पाताः प्रेरितायाः वेगसंस्कारक्षयो भूमौ स्थानादि ॥ २३७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। धनुर्हस्तचतुष्कं तच्चतुःशतं महाग्रामस्य परीणाहो वेष्टनं त्याज्या भूमिः। परीहारइति क्वचित्पाठः। शम्यापाताः क्षिप्ताः शम्या यावति ते त्रयस्त्रिगुणोदेशः क्षुद्रग्रामस्य। एतयोर्द्वयोस्त्रैगुण्यं नगरस्य बृहत्त्वक्षुद्रत्वापेक्षया विकल्पेन ॥ २३७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। चतुर्हस्तोधनुः शम्या यष्टिः तस्याः पातः प्रक्षेपो ग्रामसमीपे सर्वा दिक्षु चत्वारिहस्तशतानि त्रीन्वा यष्टिप्रक्षेपान्यावत्पशुप्रचारार्थं सस्यवपनादिसंरोधपरिहा कार्यः। नगरसमीपे पुनरयंत्रिगुणः कर्त्तव्यः ॥ २३७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ग्रामनगरयोर्निकटवर्तिनि सस्ये पशुभिर्भुक्तेपि पालो नदण्डभा नवरुद्धत्वात्सस्यस्येत्याह धनुरितिद्वाभ्याम्। चतुर्हस्तो धनुः। शम्यापातः शमी यष्टिस्तस्य आपातः प्रक्षेपः तेन धनुःशतेन शम्यापातैस्त्रिभिर्वा यावान्व्याप्योदेशस्तावतः परिहारः त्या सस्यशून्यतया कर्तव्यः। नगरस्यतु त्रिगुणः परिहारः कार्य इत्यन्वयः ॥ २३७ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ गोप्रचारभूमिपरिमाणमाह धनुःशतमिति। धनुःशतेन परिमाण नपरिवार्यत इति धनुःशतपरिवार्यकोदेशः। शम्यास्मिन्पात्यत इति शम्यापातोदेशः त्रिगु धनुःशतत्रयपरिमाणानि। शम्या पातनकपरिमाणा वा। क्षुद्रत्वमहत्त्वापेक्षया विकल्प ॥ २३७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। ग्रामस्य समन्ततो धनुःशतं धनुः चतुर्हस्तं परिणाहः अनुप्तसस्य भूमिःस्यात् यष्टिः यादण्डयष्टिः पातास्त्रयः दण्डः प्रक्षेपेण यत्र पतति तावत्त्रयंवा परिणा तु पुनः नगरस्य त्रिगुणः परीणाहनः सस्यं विद्यते यस्यां सा असस्या भूमिः ॥ २३७ ॥

(७) **मणिरामः**। चतुर्हस्तोधनुः। शम्पायष्टिः परीहारः परार्थं च दशतः गोभ वपनादित्यागः। त्रिगुणः द्वादशहस्तशतानि नवयष्टिक्षेपान् वा ॥ २३७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। धनुःशतमिति। चतुर्हस्तं धनुः शम्या यष्टिः तस्याः पा शम्याप्रक्षेपः ग्रामसमीपे सर्वासु दिक्षु चत्वारि हस्तशतानि त्रीन्वा यष्टिप्रक्षेपान्यावत्सस्य-वपनपरिहारः पशुप्रचारार्थं कार्यो नगरसमीपे पुनरयं त्रिगुणः कार्यः ॥ २३७ ॥

(९) **भारुचिः**। पशुविहारार्थमिदमुच्यते यद् देशे ग्रामनगरयोः समन्ततो गवां सुखप्रचारस्थानासनार्थमनुप्तसस्यः कार्यः ॥ २३७ ॥

**तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि ॥**
**न तत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥ २३८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। तत्र परिहारस्थाने क्षेत्रं न कर्तव्यम्। अथ कृतं कस्माद्वृतिर्न कृता। अतः क्षेत्रिण एवापराध्यन्ति, न पशुपालाः। न हि पाल एकैकं पशुं हस्तबन्धेन नेतुं शक्नोति। न च पशूनामन्यो निर्गमोऽस्ति ॥ २३८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तत्र परिणाहे। धान्यमिति पशुभक्ष्योपलक्षणम् विहिंस्युर्भक्षयेयुः ॥ २३८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तस्मिन्परिहारस्थाने यदि केनचिददत्तावृतिकं धान्यमुप्यते तच्चेत्पशवो भक्षेयुस्तत्र पशुपालानां नृपो दण्डं न कुर्यात् ॥ २३८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अपावृतेषु न दण्डइत्याह तत्रेति। विहिंस्युर्भक्षयेयुर्विमर्दयेयुर्वा ॥ २३८ ॥

(५) **नन्दनः**। तत्र गोप्रचारदेशे अपरिवृतं वृतिरहितम्। तत्र वान्यहिंसाविषये ॥ २३८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तत्र परिणाहे अपरिवृतं अवेष्टितं धान्यं पशवो यदि विहिंस्युस्तत्रापराधे नृपतिः पशुरक्षिणां दण्डं न प्रणयेत् ॥ २३८ ॥

(७) **मणिरामः**। तत्र परिहारस्थाने। अपरिवृतं अरक्षितं ॥ २३८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **तत्रेति**। तस्मिन्व्यवहारस्थाने यदि केनचिद्धान्यमुप्येत अदत्तवृत्तिके चेद्यदि पशवो भक्षयेयुः तदा तत्र पशुपालानां राजा दण्डं न कुर्यात् ॥ २३८ ॥

(९) **भारुचिः**। यदि तु तत्र भूलोपात् समुप्यते येन केनचित् परिवृतं च भवेत् ततस्तद्भक्षणे गोभिर्नदोषः स्यात् पशुरक्षिणाम् ॥ २३८ ॥

**वृतिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत् ॥**
**छिद्रं च वारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ॥ २३९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। कंटकशाखादीनां प्राकारविन्यासः पशुप्रवेशवारणार्थः क्षेत्रारामादीनां **वृतिरुच्यते**। या क्वचित्पर्णिकेति प्रसिद्धा—वारणाद् 'वृतिः'। तस्या उन्नतिरियती कर्तव्या ययोष्ट्रो नावलोकयति।

"किमियं द्वितीया तृतीयार्थे **यामुष्ट्र इति**"।

नेति ब्रूमः।

कथं तर्हि वृतिमुष्ट्रो न पश्यति"।

महोत्सेधाया द्वितीयपार्श्वस्यादर्शनाददृष्टैव वृतिः। **छिद्रं च** विवरं **वारयेत्सर्वम्**। **श्वसूकरमुखेन** यदनुगम्यते–तन्मुखपरिमाणम्। तथा कुर्याद्यथा श्वमुखं न याति। तन्मुखादप्यल्पच्छिद्रमित्यर्थः ॥ २३९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रकुर्वीत धान्यस्वामी यामुष्ट्र इत्युच्चतोक्ता। श्वशूकरमुखं यत्रानुगच्छति तादृक्छिद्रं वारयेत् ॥ २३९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तत्र परिहारस्थाने क्षेत्रे वृतिं कण्टकादिमयीं तथाविधामुच्छ्रितां कुर्यात् यामपरपार्श्वे उष्ट्रो न विलोकयेत्तस्यां च यत्किंचिच्छिद्रं श्वसूकरमुखप्रवेशयोग्यं तत्सर्वमावृणुयात् ॥ २३९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अपरिवृतमित्युक्तं तत्र किरूपा वृतिर्देयेत्यपेक्षायामाह वृतिमिति। उष्ट्रावलोकपर्यन्तामुच्छ्रितां वृतिं कुर्यादिति। श्वादेर्मुखं यावत्प्रविशति तावदपि छिद्रं निरुन्ध्यादिति। अनेन खेटखर्वट्वाटीनामप्यावृतत्वं सचितम् ॥ २३९ ॥

(५) **नन्दनः**। श्वसूकरमुखानुगं श्वसूकरमुख्यैरनुगम्यंसुप्रवेशम् ॥ २३९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तत्र परिणाहे वृतिं कण्टवेष्टनं। यां वृतिमुष्ट्रोनविलोकयेत् न पश्येत्। वा पातान्तरंश्वशूकरमुखानुगं छिद्रं सर्वं वारयेत् यत्रछिद्रे शुनः शूकरस्य तयोःमुखप्रवेशयोग्यं छिद्रस्यमुद्रणंकुर्यात् ॥ २३९ ॥

(७) **मणिरामः**। वृतिं कंटकादिमयीं ॥ २३९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **वृतिमिति** तस्मिन्परिहारस्थाने क्षेत्रे वृतिं कण्टकादिमयीं प्राकाराकृतिं तथाविधामूर्जितां कुर्यान् वामपरपार्श्वतः यथा उष्ट्रो नाऽवलोकयेत्। तस्याञ्च यावत्किञ्चिच्छिद्रं श्वशूकरमुखप्रवेशक्षममपि तत्सर्वं स्थगयेयुः ॥ २३९ ॥

(९) **भारुचिः**। पशुवारणसमर्थायां तु वृतौन कृतायां सस्योपघाते पालस्य न दोषःस्यात् ॥ २३९ ॥

तथा कृतायां वृतौ––

**पथि क्षेत्रेऽपरिवृते ग्रामान्तीयेऽथ वा पुनः ॥**
**सपालः शतदण्डार्हो विपालान् वारयेत्पशून् ॥ २४० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **परिवृते पथि क्षेत्रे** ग्रामसमीपवर्तिनि च परिहारमध्यगते। **अन्तशब्दः** समीपवचनः। यदि भक्षयेत्पशुः। **सपालश्च** स्यात्। सन्निहितः **पालः शतदण्डार्हः** पशोर्दण्डासंभवात्। पालेऽसन्निहितेऽपि गृहे यदा––नाप्यसौ पालः प्रसिद्धो न पुनस्तत्प्रेषितो वारिको रूपकमात्रवेतनः।

**विपालाः पशवो धारयितव्या** दण्डादिना–न तु दण्डनीयाः। **विपालाश्चोत्सृष्टवृषादयः**। अन्येषां तु विपालानां स्वामिनो दण्डः।

अथवा **अपरिवृत** इति प्रश्लेषः। क्षेत्रसंबंधाच्च गम्यमानः क्षेत्रस्वामी 'सपाल' इत्यन्यपदार्थतयाऽभिसंबध्यते–'सह पालेनेति'।

क्षेत्रे को दण्ड्यः। उभौ दण्ड्यौ। पालः क्षेत्रिकश्च। क्षेत्रिकस्तावत्किल किमिति पथि क्षेत्रे वृतिं न कृतवान्। पालेनापि वृतौ चासत्यां किं क्षेत्रं खादयितव्यम्। विपालं प्रमादाद्यूथच्युतं वारयेत्। तथा च गौतमः (१२/२१) "पथि क्षेत्रेऽनावृते पालक्षेत्रिकयोः" इति ।। २४० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पथि परिवृते तथा क्षेत्रे तथाग्रामान्तीये प्रागुक्तग्रामान्तरपरिणाहेच परिवृत्ते। ग्रामपदं नगरस्याप्युपलक्षणम्। सपालःपशुः शतं पणान् दण्ड्यः। पशोर्दण्डः पालस्यैवार्थात्। विपालान् देवादिपशून् स्वयमेव क्षेत्रस्वामी चारयेत्।। २४० ।।

(३) **कुल्लूकः**। वर्त्मसमीपग्रामसमीपवर्तिनि वा परिहारस्थे क्षेत्रे दत्तवृत्तौ सपालः पशुः पालानिवारितो द्वारादिना कथंचित्प्रविष्टो यदा भक्षयति तदा पणशतं दण्ड्यः। पशोश्च दण्डासंभवात्पाल एव दण्ड्यः। विपालान्पुनर्भक्षणप्रवृत्तान्क्षेत्ररक्षको निवारयेत्।। २४० ।।

(४) **राघवानन्दः**। परिवृतसस्यभोजिनां पालस्य भावाभावावाश्रित्याह पथीति। सपालः पशुः पालेन रक्षितः तत्रापि पालस्यैव दण्डो न पशोः। वारयेत् भक्ष्ये प्रवृत्तान् विपालानिति शेषः ।। २४० ।।

(५) **नन्दनः**। परिवृते वृतियुक्ते धान्यंविहिंस्युःपशवोयदीत्यनुषङ्गः। शतंपणशतं। विपालंगोपरहितं पशुंक्षेत्रस्वामी वारयेत्। न तत्र दोषः ।। २४० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। पथि क्षेत्रे मार्गसमीपक्षेत्रे कंटकैः परिवृते विपालान्चारयेत् तर्हि सपालः शतदण्डार्हः। वा पुनः ग्रामान्तीये ग्रामसमीपे पशून्चारयेत् स दण्डार्हः।। २४० ।।

(७) **मणिरामः**। सपालः पालसहितश्चेत् पशुःद्वारं कृत्वान्नं भक्षयति तदा पशुपालः पणशतं दंड्यः। विपालान् पशुपालरहितान् पशून् वारयेत् धान्यस्वाम्येव निवारयेत् ।। २४० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। पथीति। यदि पुनर्मार्गसमीपवर्तिनि ग्रामसमीपे गतेऽकृतवृतौ सपालः पशुपालप्रक्षिप्तो न रक्षति तदा पणशतं दण्ड्यः पशोर्दण्डासंभवात्पाल एव दण्ड्यो विपालं पुनर्भक्षणे प्रवृत्तं क्षेत्रस्वामी वारयेत्।। २४० ।।

(९) **भारुचिः**। दृष्टिपातेन खातयन् पालः शतदण्डार्हः स्यात्। विपालं च पशुं वारयेत्। अदण्डश्च स्यात् पशुपालस्तदसन्निधानात्। अन्यस्त्वत्रार्थः। सह पालेन सपालः क्षेत्रिकः। न पशुरत्रोच्यते, पूर्ववच्छतदण्डार्हः स्यात्। उभयापराधात् क्षेत्रिकेण तावत ...क्षिपचिक्षेत्रः स्वन्नावृतमिति पालो नापि किं पथि क्षेत्रेणावृतमिति मत्वा खादयितव्यम्। तस्मादुभयापराधादुभयोर्दण्डः। गौतमीयेऽपि चोक्तम्–'पथिक्षेत्रेऽनावृते पालक्षेत्रिकयोरिति ।। २४० ।।

**क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पणमर्हति ।**
**सर्वत्र तु सदोदेयः क्षेत्रिकस्येति धारणा ।। २४१ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । पथिक्षेत्रग्रामान्तीयेभ्योऽन्यानि क्षेत्राणि–तद्भक्षणो **सपादपणो** दण्डः । "ननु चात्र स्वल्पेन दण्डेन भवितव्यं दूरक्षेत्रात्सन्निहिते क्षेत्रे । यत्तु पन्थानमतिक्रम्य क्षेत्रं बहिर्ग्रामं वा, तत्र महान् दण्डो युक्तः । किमिति गवां पालो गन्तुं तत्र ददाति" ।

**नैष** दोषः । यद्यत्र महादण्डो नोच्येत तदा प्रत्यहं प्रवेशनिर्गमैर्गवां भक्षयन्तीनां ग्रामान्तरक्षेत्राण्युत्सीदेयुः । दण्डात्तु महतो बिभ्यतो यत्नेन रक्षन्ति । अन्यत्र गास्तृणविशेषार्थं कथंचिन्नयतः स्वल्पो दण्डः ।

अत्रापि विपालानां वारणमेव ।

सर्वत्र क्षेत्रस्वामिनः सदफले देये, कुशलैः च ते परिमाणेन कल्पिते ।

**क्षेत्रिकस्य** । क्षेत्रमस्यास्तीति । व्रीह्यादित्वाट्ठक् ।

**इति धारणैष** निश्चय इत्यर्थः ।

**सर्वत्रग्रहणाच्च** विपालेऽपि पशौ क्षेत्रिकस्य सदलाभः ।

यद्यपि पशुशब्दः सामान्यशब्दो महिष्यजाव्युष्ट्रगर्दभादिषु वर्तते तथापि स्मृत्यन्तरदर्शनाद् गोष्वयं दण्ड इति मन्यते । तथा च गौतमः (१२/२४-२५) "अश्वमहिष्योर्दशअजाविषु द्वावित्यादि" अन्यत्र कल्पना ।। २४१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । क्षेत्रेष्यन्येष्वनावृतेषु ग्रामदूरस्थक्षेत्रेषु अयं च राजदण्डः । नष्टस्तु सदः सस्य क्षेत्रिकस्य सर्वत्र पशुकृतापराधे देयः ।। २४१ ।।

(३) **कुल्लूकः** । वर्त्मग्रामान्तव्यतिरिक्तेषु पशुर्भक्षयन्सपादं पणं दण्डमर्हति अत्रापि पालएव दण्ड्यः । सर्वत्र क्षेत्रे पशुभक्षितं फलं स्वामिने पालेन स्वामिना वा यथापराधं दातव्यमिति निश्चयः ।। २४१ ।।

(४) **राघवानन्दः** । वर्त्मग्रामान्तव्यतिरिक्तक्षेत्रेषु दण्डन्यूनतामाह क्षेत्रेष्विति । एवंविधे पशुः पशुपालः पणं मूल्यं पणस्यपादंवासपादं माषचतुष्काधिकताम्रतोलकद्वयं सर्वत्र सपालैर्विपालैर्वा भक्षितसस्याय । क्षेत्रिणे सदः मूल्यं स्वामिना पालेन वोक्तानुसारेण देयम् इति धारणा नियमः । नियमविशेषोयाज्ञवल्कयात् ज्ञेयः । तथाहि । माषानष्टौतु महिषी सस्यघातस्य कारिणी । दण्डनीया तदर्धेतु गौस्तदर्धमजाविकम् । भक्षयित्वोपविष्टानांयथोक्ताद्विगुणो दमः । सममेषां विवीतेऽपि खरोष्ट्रं महिषीसमम् । यावत्सस्यं विनश्येत तावत्क्षेत्री फलंलभेत् । गोपस्ताड्यस्तु गोमीतु पूर्वोक्तं दण्डमर्हतीति । विवीते वननिकटे । सपालेपि । धारणा नियमः ।। २४१ ।।

(५) **नन्दनः** । अन्येषु क्षेत्रेषु वृतिरहितेषु गोप्रचारदेशव्यतिरिक्तेषु । पशुर्हिस्यादित्यनुषज्यते वचनविपरिणामे न । सर्वत्र ग्रामान्तादौ । सदःकृषिफलं क्षेत्रिकाय क्षेत्रस्वामिने ।। २४१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अन्येषु क्षेत्रेषु सपादं पणं दण्डं अर्हति। तु पुनः सर्वत्र सदः अन्नं क्षेत्रिकस्य देयः इति धारणा मर्यादा ॥ २४१ ॥

(७) **मणिरामः**। अन्येषु ग्रामनगरमार्गादूरवर्तिषु। सपादं पणं ॥ २४१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। क्षेत्रेष्विति। सर्वत्र त्वसितं ज्ञेयमिति। पथिग्रामान्तव्यतिरिक्तेषु क्षेत्रेषु पशुर्भक्षयन् सपादं पणदण्डं अर्हति, अर्थात्पाल एव सर्वस्मिंश्च क्षेत्रे स्वामिनः पशुभक्षितं फलं पालेन पशुस्वामिना वा यथाऽपराधं दातव्यमिति निश्चयः ॥ २४१ ॥

(९) **भारुचिः**। अन्यक्षेत्राणि पूर्वोक्तादवध्येयानि बहिस्तान्युच्यन्ते। गोश्च सपादस्य पणस्योपदेशादुपघातानुरूपेण महिष्यादीनां स्यात्। राजभाव्यो दण्डः सदः क्षेत्रिकस्य सर्वत्र शब्दाच्च विपा(दो ? दे)ऽपि सदो देयः इति ॥ २४१ ॥

**अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवपशूंस्तथा ॥**
**सपालान्वा विपालान्वा न दण्डयान्मनुरब्रवीत् ॥ २४२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। गोग्रहणान्महिष्यादिषु दोषः। **वृषाः** उक्षाणः। **देवपशवो** देवयागार्थे यजमानेन कल्पिताः प्रत्यासन्नयागाः। अथवेष्टकादिकूटस्थापिताः। हरिहरादीनां प्रतिकृतयो 'देवा' उच्यन्ते—तेषां 'पशवः'—तानुद्दिश्य केनचिदुत्सृष्टाः। तदा ह्यस्य देवानां पशूनां च स्वस्वामिसंबंधस्य संभवात्। देवायतनमण्डनानां चैष धर्मः। न तु तत्पालकैर्वाहदोहाद्यर्थे ये देवगृहेषु धार्यन्ते। यतः पालका एव तेषां देवानामर्थे विनियुज्यन्ते। अतस्तत्र पालका एव स्वामिनः। अतो युक्तः स्वामिवतामन्येषां यो धर्मः स तत्र। आयतनमण्डनास्त्वपरिगृहीता अव्यवधानेन देवपशुबुद्धिमुत्पादयन्ति।

वृषोत्सर्गादिविधानोत्सृष्टा 'वृषाः' कैश्चित्परिगृह्यन्ते।

ततः **सपाला** अथवा परिगृहीतास्ततो **विपालाः**—उभयेषामदण्डः ॥ २४२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनिर्दशाहां सूतां तस्याश्चारयितव्यत्वादुन्मत्ततया रक्षणाशक्तेश्च सपालत्वेपि न दोषः। वृषानुत्सृष्टान् देवपशून् देवसंबन्धिनश्छागादीन् विपालानप्येतान्नदण्डयेत् देवस्वग्रहणपर्यवसानात् ॥ २४२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। प्रसूतां गामनिर्गतदशाहां तथा च चक्रशूलांकितोत्सृष्टवृषान् हरिहरादिप्रतिमासंबन्धिपशून् पालसहितान् पालरहितान्वा सस्यभक्षणप्रवृत्तान्मनुरदण्ड्यानाह उत्सृष्टवृषाणामपि गर्भार्थं गोकुले पालैर्द्धारणात्सपालत्वसंभवः ॥ २४२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। सपालेपि प्राप्तदण्डाभावमाह अनिर्दशेति। वृषान् बह्वीषु गोषु रेतःसेकसमर्थम्। देवपशून् देवोद्देशेनोत्सृष्टान्। अत्र सदोपि न वाक्यभेदात् ॥ २४२ ॥

(५) **नन्दनः**। अनिर्दशाहामनतीतदशाहां न दण्ड्यानदण्ड्यान् ॥ २४२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। दण्डस्यापवादमाह। गां अनिर्दशाहां सूतां प्रसूतां वृषान् वृषाउत्सृष्टपशवः तथा देवतोद्देशेन त्यक्तान् सपालान्वा अपालान्वा न दण्ड्यान्मनुरब्रवीत् ॥ २४२ ॥

(७) **मणिरामः**। वृषान् चक्रशूलांकितोत्सृष्टान्। देवपशून् हरिहरादिप्रतिमासंबंधिपशून्। उत्सृष्ट वृषाणांमपि गो गर्भार्थं गोकुले पालैर्द्धारणात् सपालत्वसंभवः ॥ २४२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। अनिर्दशाहामिति। गां प्रसूतां अनिर्दशाहां तथा ग्रहणदत्तछागवृषभादि प्रतिमासं वन्ध्यिपशून्यवान् रक्षायुक्तान् शून्यान्वा सस्यभक्षणेऽदण्डार्हान्मनुराह। न पालस्य दण्डो स्वामिन इत्यर्थः। परिपालकोपेक्षानां देवप्रकृतीनां परिपालाय पशसम्बन्धि शङ्काते अतो विपालदेवपशुस्सस्यभक्षकस्य दण्ड इति न चोदनीयः ॥ २४२ ॥

**क्षेत्रिकस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् ॥**
**ततोऽर्धदण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रिकस्य तु ॥ २४३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। क्षेत्रस्वामिनः स्वक्षेत्रेऽत्ययोऽतिक्रमोऽपराधो यदि भवेत्स्वकृते –अकाले वापनं, निदानमयोग्यबीजवापः, स्वपशुभिर्भक्षणं गिरणं वा, विदितफलके प्राश इत्यादि–तदा राज्ञो यावान्भाग आगच्छति तं दशगुणं दण्डनीयः ॥ २४३ ॥

अथ तस्याज्ञातमेतत् तत्प्रयुक्तैर्भृत्यैः क्षेत्रजागर्यानियुक्तैर्वा अपराद्धं तदाऽर्धदण्डः। भृत्यानामत्यये क्षेत्रिकस्य दण्ड इति संबन्धः।

क्षेत्रप्रसङ्गादत्रेदमुक्तम् ॥ २४३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। क्षेत्राधिकृतस्यैव पशुभिः सस्यात्यये कृते राज्ञो ग्राह्यस्वभागाद्दशगुणोऽन्योपि भागोदण्डत्वेन ग्राह्यः। क्षेत्रिकाज्ञाने पालमात्रदोषात्तन्नाशे ग्राह्यस्वभागात्पञ्चगुणोभागो भृत्यानांदण्डः। भृत्येनच क्षेत्रि–काय सदोदेयस्तुल्यन्यायत्वात् ॥ २४३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। क्षेत्रकर्षकस्यात्मपशुसस्यभक्षणेऽयथाकालं वपनादौ वाऽपराधे सति यावतो राजभागस्य तेन हानिः कृता ततो दशगुणदण्डः स्यात्। क्षेत्रिकाविदिते भृत्यानामक्तापराधे क्षेत्रिकस्यैव दशगुणार्धदण्डः। क्षेत्रसस्यप्रसङ्गाच्चेदमुक्तम् ॥ २४३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। क्षेत्रदण्डप्रसंगेन कालापराधादौ दण्डमाह क्षेत्रिकस्येति। अत्यये कृषियोग्यकालात्यये राजकीयभागस्य दशगुणः क्षेत्रिकस्य कृषिकस्य दण्डस्ततोर्धदण्डः पञ्चगुणः। क्षेत्रिकस्य क्षेत्रकर्मणः कृष्यादेः अज्ञानात् भृत्यानाम् ॥ २४३ ॥

(५) **नन्दनः**। क्षेत्रिकस्याक्रमे दण्डमाह क्षेत्रिकस्येति। अत्ययेऽतिक्रमे क्षेत्रिकनिमित्ते सस्यघात इति यावत्। तस्य विनष्टाद्भागाद्दशगुणो दण्डो भवेत्। क्षेत्रस्याज्ञानादनुमत्या भृत्यानांसंबन्धिनामत्यये दशगुणादर्द्धदण्डः पञ्चगुणडण्डोभवेत् ॥ २४३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। क्षेत्रिकस्य अत्यये क्षेत्राधिपतेरेव पशुभिः क्षेत्रनाशे कृते भागात् राजग्राह्यात् दशगुणःदण्डः भवेत् राज्ञा ग्रहीतव्यः। क्षेत्रिकस्यतुअज्ञानात्। भृत्यानां पालानां ततो र्धदशभागार्धदण्डः ॥ २४३ ॥

(७) **मणिरामः**। क्षेत्रियस्य क्षेत्रत्यागिनः। अत्यये वीजवपनकाले वीज़वपनाऽकरणेधर्ममाह। सीमामिति ॥ तस्मिन्समये तृणादिनाशाभावात् यावतोराजभागस्यहानिः

कृतातावद्भागात् दशगुणोदंडः। क्षेत्रिकस्य अज्ञानात् यदि भृत्यानामपराधः तदासावधानता-भावात्स्वामिन एव दशगुणाऽर्द्धदंडः ॥ २४३ ॥ ॥ २४४ ॥

(८) **गोविन्दराजः। क्षेत्रिकस्येति।** क्षेत्रस्वामिनः आत्मपशुसस्यभक्षणकालवपनस-स्यापहारादौ अपराधे यावतो राजभागस्य तेन हानिः कृता ततो दशगुणो दण्डः स्यात्। भृत्यानां पुनः क्षेत्रस्वाम्यविदित एवं कुर्वतां दशगुणादर्धदण्डः स्यात्। तदनुज्ञानात्तु तस्यैव दशगुणो दण्ड इति क्षेत्राऽपराधेऽपीदमुक्तम् ॥ २४३ ॥

(९) **भारुचिः।** साऽस्मात् सः स्यात् क्षेत्रिको यदपहरेत् तस्य भागकल्पनया दशगुणो दण्डः प्रकल्प्यः। अर्धदण्डाः भृत्याः स्युः। अज्ञानात् क्षेत्रिकस्य तु प्रयोगादेव भृत्यानाम-सावेव दण्डः स्यात्। सस्यसम्बन्धप्रसङ्गच्चायं क्षेत्रिकस्य व्यतिक्रम उच्यते अ(स्त्रे ? स्ते) याभिमतत्त्वाच्च ॥ २४३ ॥

**एतद्विधानमातिष्ठेद्धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥**
**स्वामिनां च पशूनां च पालानां च व्यतिक्रमे ॥ २४४ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** सुबोध्योयंश्लोकः ॥ २४४ ॥
दण्डप्रकारविशेषम् ॥ २४४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** पशूनां पशुभिर्व्यतिक्रमे तत्स्वामिनां तत्पालानां च विधानं दण्डप्रकारविशेषम् ॥ २४४ ॥

(३) **कुल्लूकः।** स्वामिनां पालानां चारक्षणादपराधे पशूनांच सस्यभक्षणरूपे व्यति-क्रमे धर्मप्रधानो भूपतिरेतत्पूर्वोक्तं कर्त्तव्यमनुतिष्ठेत् ॥ २४४ ॥

(४) **राघवानन्दः।** उपसंहरति एतदिति। व्यतिक्रमे सस्यभक्षणादौ ॥ २४४ ॥

(५) **नन्दनः।** एतदुक्तं विधानम् ॥ २४४ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** धार्मिकःपृथिवीपतिः एतद्विधानं आतिष्ठेत् कुर्यात् ॥ २४४ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** एतदिति। पशुभिः सस्यभक्षणेन स्वामिनां पालानाञ्चापराधे देवपश्वादिसस्यभक्षणे धर्मप्रधानो राजा एतत्पूर्वोक्तं कर्तव्यमनुतिष्ठेत् ॥ २४४ ॥

(९) **भारुचिः।** उपसंहारार्थः श्लोकः ॥ २४४ ॥

**सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः ॥**
**ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु ॥ २४५ ॥**

(१) **मेधातिथिः। सीमां प्रति विवादे**–सीमानिमित्ते। लक्षणेत्थंभूतेति प्रतेः कर्म-प्रवचनीयत्वाद् द्वितीयानिमित्तमपि लक्षणमिति शक्यते वक्तुम्। 'सीमा' मर्यादा–ग्रामादीनां विभागः परिमाणमियत्ता परिच्छेदनमिति यावत्। **ज्येष्ठे मासि नयेन्निर्णयः** कर्तव्यः। मासविशेषनिर्णये हेतुमाह–**सुप्रकाशेषु सेतुषु।** सेतवः सीमालिङ्गानि वक्ष्यमाणानि, लोष्ठ-

पाषाणादिविशिष्टजातीयसीमाग्राह्यतृणगुंजादीनि । प्रागस्मात्कालादनुत्थितेषु तृणेषु लोष्टपाषाणयोरन्यस्याश्च भूमेर्न विशेषो लक्ष्यते । पाषाणलक्षितायां यदा तत्र तृणानि न ज्ञायन्ते तदा सा सीमेति निश्चीयते । एवं वल्लीस्थानादिष्वपि । प्राग्वसंताद्वासंतिके दाहे विशेषो न लक्ष्यते । हेत्वभिधानाच्च यस्मिन्देशे यदा व्यज्यंते ततो मासात्कालहरणं कर्तुं नादेयम् । अन्यदा तु लिङ्गज्ञानार्थे कालापेक्षाऽपि भवतीत्येतावत्फलं ज्येष्ठग्रहणे ॥ २४५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अथसीमा ॥ सीमांप्रतीति । नयेदुन्नयेत । संप्रकाशेषु प्रकटेषु ॥ २४५ ॥

(३) **कुल्लूकः** । द्वयोर्ग्रामयोर्मर्यादांप्रतिवि प्रतिपत्तावुत्पन्नायां ज्येष्ठे मासि ग्रीष्मरवितापसंशुष्कतृणत्वात्प्रकटीभूतेषु सीमालिङ्गेषु राजा सीमांनिश्चिनुयात् ॥ २४५ ॥

(४) **राघवानन्दः** । सीमाविवादधर्मस्येत्युक्तंतन्निर्णयमाह सीमेत्यादिभिर्द्वाविंशत्या । तत्र सीमा चतुर्धा देशग्रामक्षेत्रगृहभेदेन तत्र तदुचितकालमाह सीमामिति । सेतुषु भेदकेषु सुप्रकाशेषूक्तस्थले तणादीनां शोषदाहाभ्याम् ॥ २४५ ॥

(५) **नन्दनः** । सीमाविवादमाह सीमामिति नयेत्प्रापयेत् । ज्येष्ठमासे सीमानयनविधेः कारणं तस्मिन्काले सीमाविवादनिर्णयहेतवः सेतवः सुप्रकाशा भवन्तीति ॥ २४५ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । ज्येष्ठे मासि सप्रकाशेषुसेतषु सीमां ग्रामयोःसीमां नयेत्प्रापयेत् ॥ २४५ ॥

(७) **मणिरामः** । इदानींसीमाविवादधर्ममाह । सीममिति ॥ तस्मिन्समये तृणादिनाशात्सीमानिर्णयः सम्यग्भवतीत्यर्थः ॥ २४५ ॥ ॥ २४६ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **सीमामिति** । द्वयोर्ग्राममर्यादाविषयायां विप्रतिपत्तौ उत्पन्नायां ज्येष्ठे मासि ग्रीष्मे तापसंशुष्कतृणत्वात्प्रकटीभूतेषु सीमालिङ्गेषु राजा सीमां निश्चिनुयात् । सीमापरिज्ञाने सर्वदा लोके जनानां भ्रान्ति दृष्ट्वोक्तानि गुह्यानि वक्ष्यमाणानि सीमा चिह्नानि कारयेत् ॥ २४५ ॥

(९) **भारुचिः** । उपन्यासश्चित्तप्रणिधानार्थः । ज्येष्ठमासेऽभिसेतवः सुविज्ञाता भवन्ति ॥ २४५ ॥

**सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान् ॥**
**शाल्मलीन्सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान् ॥ २४६ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । **पादपा** वृक्षाः । **क्षीरिणोऽर्कोदुंबरप्रभृतयः** । एते च चिरस्थायित्वात्सीमादेश एव रोपयितव्या न ग्राममध्ये । सीमादेशादन्यत्र क्रियमाणा न निश्चायकाः स्युः ॥ २४६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । यैरूहेत्तदभिधानाय सीमाचिन्हकरणप्रकारमाह सीमावृक्षानिति । सीमावृक्षान् सीमालिङ्गवृक्षान् ॥ २४६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। न्यग्रोधादीन्वृक्षान् क्षीरिण उदुम्बरादीन् चिरङ्गभूतान्कुर्वीत ।। २४६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। सीमाज्ञप्त्यै तदुचितवृक्षानाह सीमेति द्वाभ्याम् किंशुकः पलाशः। क्षीरिणः उदुम्बरादीन् ।। २४६ ।।

(५) **नन्दनः**। किंशुकान्पलाशान् ।। २४६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। किंशुकान्पलाशान् च पुनः क्षीरिणः पादपान्कुर्वीत ।। २४६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **सीमावृक्षानिति**। सीमालिङ्गभूतान्न्यग्रोधादीन्वृक्षविशेषान् क्षीरिणश्च वृक्षान् उदुम्बरादीन् चिरस्थान् कारयेत् ।। २४६ ।।

**गुल्मान्वेणूंश्च विविधान् शमीवल्लीस्थलानि च ।।**
**शरान्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति ।। २४७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। संहतप्रकाण्डा वीरुधो **गुल्मानि**। **वेणव** आरग्वधादयः। बहुत्वाच्च **विविधग्रहणम्**। वल्लयो व्रततयः दीर्घाङ्कुरास्तृणजातयः। **स्थलानि** कृत्रिमा शाद्वलादिपिण्डिकाः। **कुब्जकस्य** गुल्मत्वात्पृथगुपदेश आदरार्थः।

**करीषं** शुष्कं गोमयम्। **अङ्गारा** अग्निदग्धाः काष्ठावयवाः। पाषाणकठिना मृदः **शर्कराः**। **कपालिका** कलशैकदेशः ।। २४७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। गुल्मान् बीजपूराद्यान्। शमीं वृक्षविशेषम्। वल्लीं चिरस्थायिनीं करञ्जादिलताम्। स्थलंच मृदादिना। कुब्जकगुल्मान् कुब्जकषण्डान् ।। २४७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। गुल्मान्प्रकाण्डरहितान्वेणूंश्च प्रचुरकण्टकत्वाल्पकण्टकत्वादिभेदेन नानाप्रकारान्सीमावृक्षान्वल्लीर्लताः स्थानानि कृत्रिमोन्नतभूभागान् शरान्कुब्जकगुल्मांश्च प्रचुराऽल्पभोगत्वेनादरार्थं पृथग्निर्दिष्टान्सीमालिङ्गभूतान्कुर्यात्। एवंकृते सीमा न नश्यति ।। २४७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। गुल्मान् बहुमूललताकारान् शतमूल्यादीन्। वल्ली लता। स्थलानि कृत्रिमोच्छ्रितभूमयः अत्यादरार्थे पुनर्गुल्मांश्चेति ।। २४७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। गुल्मान् बीजपूरादीन् वल्ली करञ्जादिलता। स्थलानि सत्कूटादीनि ।। २४७ ।।

(७) **मणिरामः**। स्थलानि कृत्रिमोन्नतभूमिभागान्। कुञ्जकगुल्मान् ।। २४७ ।। ।। २४८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **गुल्मानिति**। अप्रकाण्डाः स्मृता इति काण्डाभिधानात् गुल्मान् वृक्षान् विविधान् वेणूंश्च वेणुकीचकवेण्वादीन्नानाप्रकारान् शम्याख्यान् मल्लिकादिविचित्रानुप्तान्भूभागान् शरान् कुब्जकसम्बन्धिनो गुल्मानचिरोपभोगत्वेन पृथक् निविष्टत्वात् ।। २४७ ।।

**अश्मनोऽस्थीनि गोवालांस्तुषान्भस्मकपालिकाः ॥**
**करीषमिष्टकांगारांश्छर्करा वालुकास्तथा ॥ २४८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। महांभांसि तडागानि वाप्यः पुष्करिण्यउदपानानि कूपप्रभृतीनि प्रस्त्रवणान्युदकस्यन्दा ईषत्स्रवदुदका भूप्रदेशाः। देवतायतनानि यक्षगृहकादीन्येतानि प्रकाशकानि नह्येतानि स्वल्पेनायासेन नाशयितुं शक्यन्ते नाश्यमानेषु च महान्प्रत्यवायो भवति। सर्वस्य चोदकार्थिनो देवतादर्शनार्थिनश्च तत्र संनिधानात्सुज्ञातश्च साक्षिणां सीमासन्धिर्भवति ॥ २४८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तडागानि पुष्करिण्यः। उदपानानि कूपाः। वाप्यः क्षुद्रपुष्करिण्यः। प्रस्त्रवणानि बृहत्खातानि ॥ २४८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तडागकूपदीर्घिकाजलनिर्गममार्गदेवगृहाणि सीमारूपेषु ग्रामद्वयसंधिस्थानेषु कर्त्तव्यानि। एतेषु सीमानिर्णयाय विख्याप्य कृतेषूदकार्थिजनाअपि श्रुतिपरंपरया चिरकालेऽपि साक्षिणो भवन्ति ॥ २४८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तस्यांतु महत्यां तडागाद्यपि कार्यमित्यादि तडागानीति। उदपानानि कूपाः। देवतायतनानि मण्डपादीनि। बहुजनप्रसिद्धता फलम्। तत्र देशसीम्नि तडागः कार्यः। ग्रामसीम्नि वापी। क्षेत्रसीम्नि कूपः। गृहसीमायां प्रस्त्रवणम्। जलसंचरणार्थमर्थतो व्यवस्था। तत्र ॥ "पञ्चाशद्भिर्भवेत्कूपः शतहस्ता तु वापिका। पुष्करिण्यस्तदर्धेतु यावद्धनुःशतद्वयम्। तडागोष्टशतः प्रोक्तः सरस्तु चतुरस्रकम्" इत्यधिकसंख्यावच्छेदार्थम् ॥ २४८ ॥

(५) **नन्दनः**। कुल्यगुल्मान् (इरण्डानात्तु) वाप्यः दीर्घिकाः। प्रस्त्रवणानि (केणीकल) देवतायतनानि दुर्गाविनायकादिस्थानानि ॥ २४८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। प्रस्त्रवणानि बहुस्वामितानि ॥ २४८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। तडागानिति। तडागकूपपुष्करिण्युदक प्रणीत देव गृहाणि सीमायां ग्रामद्वयसन्धिस्थानेषूदकाभ्यर्थित्वेन जनसंसर्गे सति साक्षिसंभावनार्थे कर्तव्यानि ॥ २४८ ॥

**उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिङ्गानि कारयेत् ॥**
**सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम् ॥ २४९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अन्यानि **उपच्छन्नानि कारयेद्**राजा नवग्रामसन्निवेशे कृते निर्णयम्। एवं सीमा न कदाचिन्नश्यति। अन्यथा तं प्रदेशं **वीक्ष्य नित्यं लोके** कश्चित्कर्षणेन नाशयेत् ॥ २४९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उपच्छन्नानि मृन्मध्यनिहितानि ॥ २४९ ॥

---

* [illegible]

(३) **कुल्लूकः**। सीमानिर्णये सर्वदाऽस्मिल्लोके मनुष्याणां विभ्रममज्ञानं दृष्ट्वाऽभिहितव्यतिरिक्तानि गूढानि वक्ष्यमाणानि सीमाचिन्हानि कारयेत् ।। २४९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच प्रयत्नतोप्युद्धरणासमर्थानि स्थायीनि गूढान्यपि कुर्युरित्याह उपेति। उपच्छन्नानि गूढान्यपि कुर्युरिति ।। २४९ ।।

(५) **नन्दनः**। लिङ्गानि चिन्हकरणे प्रयोजनमुत्तरार्द्धेनोच्यते विपर्ययविसंवादं वीक्ष्य विगणय्य तत्परिहारार्थे कारयेदिति ।। २४९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। उपच्छन्नानि मृत्कूटवेष्टितानि लोके नित्यं विपर्ययं अन्यत्वं वीक्ष्य सीमालिङ्गानि कारयेत् ।। २४९ ।।

(७) **मणिरामः** उपच्छन्नानि गुप्तानि। अन्यानि वक्ष्यमाणानि विपर्ययं भ्रमं सीमासंदेहं वीक्ष्य सीमालिंगानि कारयेत् ।। २४९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। उपच्छन्नानीति। सीमापरिज्ञाने सर्वदा लोके जनानां भ्रान्तिं दृष्ट्वा अदृष्टानि गुह्यानि वक्ष्यमाणानि सीमाचिन्हानि कारयेत् ।। २४९ ।।

**तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च ।।**
**सीमासन्धिषु कार्याणि देवतायतनानि च ।। २५० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। महांभांसि **तडागानि : वाप्यः** पुष्करिण्यः। **उदपानानि** कूपप्रभृतीनि। **प्रस्रवणान्युदकस्यन्दा** ईषत्स्रववदुदका भूप्रदेशाः। **देवतायतनानि** यक्षगृहादीनि। एतानि प्रकाशानि। न ह्येतानि स्वल्पेनायासेन नाशयितुं शक्यन्ते। नाश्यमानेषु च महान्प्रत्यवायो भवति। सर्वस्य चोदकार्थिनो देवतादर्शनार्थिनश्च तत्र संनिधानात्सुज्ञातश्च साक्षिणां सीमासन्धिर्भवति ।। २५० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कपालिकाघटादिकर्परान्। शर्करागङ्गेष्टकाः ।। २५० ।।

(३) **कुल्लूकः**। प्रस्तरास्थिगोवालतुषभस्मकर्पटिकाशुष्कगोमयपक्वेष्टकाऽङ्गारपाषाणकर्परसिकता अन्यान्यप्येवंप्रकाराणि कालाञ्जनकार्पासाऽस्थिप्रभृतीनि यानि चिरकालेनापि भूमिरात्मसात्न करोति तानि ग्रामयोः संधिषु सीमायां प्रक्षिप्य कुम्भेष्वेतानि सीमान्तेषु निधापयेदिति बृहस्पतिवचनात्। स्थूलपाषाणव्यतिरिक्तानि कुम्भेषु कृत्वा प्रच्छन्नानि भूमौनिखाय धारयेत् ।। २५० ।। २५१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। उपच्छन्नानीत्यस्य विवरणं अश्मनइतिद्वाभ्याम्। करीषं शुष्कगोमयम्। शर्कराः पाषाणकणिकाः ।। २५० ।।

(५) **नन्दनः**। तान्येवच्छिन्नानि चिन्हान्याह अश्मानोस्थीनीति ।। २५० ।।

(७) **मणिरामः**। अन्यान्येवोक्तानि सीमालिंगान्याह अश्मन इति ।। २५० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। अश्मन इति। यानीति। पाषाणास्थिगोवालतुषभस्मखर्परिका शुष्कगोमयपक्वेष्टकाङ्गार–दृषत्कणिका सिकता अन्यान्यप्येवंविधानि खदिरसारिका कालाञ्जनादीन् तानि ग्रामसंधिषु प्रच्छन्नानि स्थापयेत् ।। २५० ।। २५१ ।।

**यानि चैवंप्रकाराणि कालाद्भूमिर्न भक्षयेत् ॥**
**तानि संधिषु सीमाया अप्रकाशानि कारयेत् ॥ २५१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। गुल्मादीनामुपदेशः प्रदर्शनार्थो न परिसंख्यार्थः खदिरसारकालाञ्जनाद्यानि शर्करा हि गुल्मादिकैवंप्रकारता अत आह कालाद्भूमिर्न भक्षयेत् भूमेर्भक्षणमुपमया स्वरूपोपादानं यथा भक्षितंभेदेन नोपलभ्यते तद्वद्भूमिसादादपत्रमिव तादृशं कुर्यात् ॥ २५१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। सर्वत्रहेतुः कालादित्यादिः ॥ २५१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एवं यानि प्रकाराणि भूमिर्नकालान्तरे भक्षयेत् तानि सीमायासन्धिषु अप्रकाशानि कारयेत् ॥ २५१ ॥

(७) **मणिरामः**। न भक्षयेत् आत्मसान्न कुर्यात् ॥ २५१ ॥

(९) **भारुचिः**। षट् श्लोकाः सीमासेतुप्रकारदर्शनार्थाः ॥ २५१ ॥

**एतैर्लिङ्गैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः ॥**
**पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च ॥ २५२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। उभयोर्ग्रामयोः शून्यत्वे **लिङ्गैर्निर्णयः**। वसतोः **पूर्वभुक्त्या** सततमविच्छिन्नयाऽस्मर्यमाणावधिकया—न हि स्त्रिपुरुषभोगेन। स ह्यत्र प्रतिषिद्धप्रामाण्य "आधिः सीमा" इत्यत्र (८/४९)। संभवति हि तत्रोपेक्षा बहुसाधारण्यात्सीमायाः। ये तु तत्र सीमशब्दं न पठन्ति तेषां भुक्तेः सिद्धमेव प्रामाण्यम्। लिङ्गानां प्रामाण्यस्योक्तत्वात्प्रमाणान्तरनिवृत्तिराशङ्क्येतेति पुनरुच्यते।

"कोऽयमुदकागमः प्रामाण्येनोच्यते"।

यथाऽन्यानि लिङ्गानि नवसंनिवेशे क्रियन्ते तद्वदेवोदकप्रवाहोऽपि कर्तव्यः। अथवा ययोर्ग्रामयोः प्रदेशान्तरे स एवोदकागमो विभागहेतुः प्रदेशान्तरे च विप्रतिपत्तिस्तत्र स एव प्रमाणम्। अथवा महाग्रामविषयमेतत्। नद्या अपर एको वा वार एकग्रामस्तत्र न पारवारिणो वक्तव्यं 'अस्मदीया भूमिरत्रापि विद्यत' इति। यदि वा कुतश्चिद् ग्रामात्तादृशेन प्रवाहेणावच्छिन्नापि काचिद् भूस्तथापि स एव विभागहेतुः—स्वल्पेऽपहारे ॥ २५२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उदकस्यागमेन यत्र ग्रामद्वयोदकमूर्छति तेनेत्यर्थः ॥ २५२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। विवदमानयोर्ग्रामयोः प्रागुक्तैरेतैरुक्तचिन्है राजा सीमामुन्नयेत् वदतोः पुनरविच्छिन्नया भुक्त्या सीमानिर्णयोनतु स्त्रिपुरुषादिकतया तस्याधिः सीमेति पर्युदस्तत्वात्। ग्रामद्वयसंधिस्थनद्यादिप्रवाहेण च पारावारग्रामयोः सीमां निश्चिनुयात् ॥ २५२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। सीमानिर्णयः प्रायशोराजकृत्यइत्याह एतैरिति। पूर्वभुक्तयाऽनवच्छिन्नभुक्तया। उदकस्यागमने न ग्रामद्वयसंधिस्थनद्यादिप्रवाहेण ॥ २५२ ॥

(५) **नन्दनः** । एतैरुक्तैर्लिङ्गाभावे पूर्वभुक्त्योदकस्यागमेनोदकस्यागमनमार्गेण ।। २५२ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । एतैर्लिङ्गैः राजा सीमां नयेत् निर्द्धारयेत् च पुनः उदकस्यागमेन निम्नजलप्रवाहमार्गेण सीमा नेया ।। २५२ ।।

(७) **मणिरामः** । पूर्वभुक्त्या च अविछिन्नया भुक्त्या सीमा निर्णयः न तु त्रिपुरुषाधिकतयादिकतया । तस्याधिः सीमेति पूर्वं पर्युदस्तत्वात् ।। २५२ ।।२५३ ।।

(८) **गोन्दिराजः** । **एतैरिति** । विवदमानयोर्ग्रामयोः शून्ययोरशून्ययोर्वा एतैरुक्तैश्चिन्हैर्नृपः सीमां निश्चिनुयात् । अशून्यत्वे पुनरपि पूर्वभुक्त्या च शून्यत्वे आधिः सीमेत्युक्तत्वादुदकप्रवाहे चानन्यकारणकेन ग्रामयोर्यत्संनिवेशकालवृत्तेन शून्यता वसतेः ।। २५२ ।।

(९) **भारुचिः** । यत्र निबद्धानि लिङ्गान्युप ..... न चान्यतरस्य शून्यता स्मर्यते तत्र पूर्वभुक्तिः प्रमाणम् । अन्यतरशून्यत्वे तु 'न भोगेन प्रणश्यती'ति पूर्वभुक्तिर्नाश्रीयते । विद्यते हि भोगस्य निमित्तम् । ..... द्वयोः शून्ययोः स्रो ..... स्रवाच्छेदः क्रियते । किमत्र लिङ्गकरणेन स्रोत एव हि नित्यमभिप्रवृत्तं सीमास्थापकं भविष्यति । नहि पूर्वभुक्तौ सत्याम् उदकागमो निर्हेतुको विकल्पेन वा बाधकत्वेन वा अशक्य आश्रयितुम् । तस्माच्छून्यविषय एव सुखप्रतिपत्त्यर्थ आयत्युपेतयै(त्य ? त)देकागमः कल्प्यते । अथवा महास्रोतोविषय एव द्रष्टव्यः । स्रोतांसि हि महान्ति कदाचित् किञ्चित्कूलमतिक्रम्य प्रवर्तन्ते । तत्र पूर्वभुक्तिमतीत्यापि स्रोत एव निर्णयाय स्यादिति ।। २५२ ।।

**यदि संशय एव स्याल्लिङ्गानामपि दर्शने ।।**
**साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिश्चयः ।।२५३ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । "कथं पुनर्लिङ्गेषु सत्सु संशयः" ।

यानि तावत्प्रच्छन्नानि तानि यदि केनचित्कथंचिदागम्य प्रच्छन्नमन्यत्र नीयेरन्नैव निश्चयः स्यात् । येऽपि प्रकाशा न्यग्रोधादयस्तेऽपि न सीमायामेव रोहन्त्यन्यत्रापि जायन्ते ततः संदेह आभासत्वात् । यत्र पुनरियं संभावना नास्ति तत्र प्रमाणमेव लिङ्गानि ।

**साक्षिप्रत्ययः** साक्षितुहेकः । साक्षिणः प्रत्ययो यत्रेति । **विनिश्चयः** तत्त्वाधिगमः । संशयितलिङ्गे अलिङ्गे वा सीमाविवादे साक्षिहेतुको निर्णय इति तात्पर्यम् ।। २५३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । लिङ्गानां लिङ्गतयोक्तानां वृक्षादीनां संशयएव वृक्षाद्यन्तरदर्शनादिना । सक्षिप्रत्ययः साक्षिकारणकः ।। २५३ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यदि प्रच्छन्नप्रकाशलिङ्गदर्शनेऽपि प्रच्छन्नांगारतुषादिकुम्भा अमी स्थानान्तरं नीत्वा निखातानायं सीमा तरुर्न्यग्रोधः स नष्ट इत्यादि समस्त एव यदि संदेहः स्यात्तदा साक्षिप्रमाण एव सीमाविवादनिश्चयोभवेत् ।। २५३ ।।

(४) **राघवानन्दः** । एवंकृतेपि संशये सति विधानान्तरमाह यदीति । लिङ्गानां वृक्षादीनां आधुनिका एते स्थानभ्रष्टाश्चेतिसंशये साक्षिप्रत्ययः साक्षिप्रमाणकः सीमावाद निर्णयः सीम्नि योवादो विप्रतिपत्तिः तस्य निर्णयो यस्मात् ।। २५३ ।।

(५) **नन्दनः**। लिङ्गानांवृक्षाद्युदकागमान्तानांसाक्षिप्रत्ययः साक्षिहेतुकः ॥ २५३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। यदीति। लिङ्गदर्शनेऽपि ईषदुभयत्र सीमां प्रति संशय एव भवेत् तदा साक्षिप्रत्ययः सीमाविवादनिर्णयः स्यात् ॥ २५३ ॥

(९) **भारुचिः**। यतश्चिल्लिङ्गोत्पत्तावुभयथा लिङ्गानुस्मृतौ च साक्षिप्रत्ययः ॥ २५३ ॥

**ग्रामेयककुलानां च समक्षं सीम्नि साक्षिणः ॥**
**प्रष्टव्याः सीमलिङ्गानि तयोश्चैव विवादिनोः ॥ २५४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यद्यप्यसंख्यातपुरुषको ग्रामस्तथापि द्वौ विवादिनौ द्वयोर्ग्रामयोर्भवतस्तयोः समक्षमन्येषां च **ग्रामेयककुलानां च** ग्रामीणपुरुषसमूहानां **समक्षं सीम्नि साक्षिणः प्रष्टव्याः**। साक्षिप्रश्नकाले सर्वैर्ग्रामीणैर्दत्तव्यवहारकैरपि संनिहितैर्भवितव्यम्—नार्थिप्रत्यर्थिनोरन्यतरो वक्तुं लभते—'आवयोर्विशिष्टार्थविवादे किमेते संनिधीयन्ते।' अथवा येऽन्ये सामन्तेभ्यो ग्रामेभ्यः केचिद्बुद्धतमाः साक्ष्ये समुद्दिष्टास्तद्ग्रामीणैरन्यैः संनिहितैर्भवितव्यम्। यतस्तैर्वृद्धेभ्यः श्रुतं भवति तत्समक्षं पृच्छ्यमाना न विपर्यन्ति वृद्धाः।

**सीमालिङ्गानि**। यत्र लिङ्गान्युभयथा तत्र वृद्धेभ्यो निश्चयः। असत्सु लिङ्गेषु सीम्न्येव साक्ष्यं पृच्छ्यते—काऽत्र सीमेति ॥ २५४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ग्रामेयककुलानां ग्रामीणसमूहानां। विरुद्धानेकसीमलिङ्गदर्शनेन सीमलिङ्गानि प्रष्टव्याः कान्यत्र सीमालिङ्गानीति। विवादिनोः समक्षमित्यन्वयः ॥ २५४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ग्रामिकजनसमूहानां ग्रामद्वयस्थनियुक्तयोर्वादिप्रतिवादिनोश्च समक्षं सीमाविषये सीमालिङ्गसंदेहे लिङ्गानि साक्षिणः प्रष्टव्याः ॥ २५४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। साक्षिप्रश्नोचितदेशमाह ग्रामेति। ग्रामेयककुलानां ग्रामीणजनसमूहानां कुलानां विप्राणां चेति वा तयोः सीमद्वयसंबन्धिनोः समक्षं प्रष्टव्या इत्यन्वयः ॥ २५४ ॥

(५) **नन्दनः**। ग्रामीयकुलानां ग्रामवासिनांकुलानां तयोर्विवादिनोस्समक्षम्। ॥ २५४ ॥

(७) **मणिरामः**। ग्रामीयककुलानां ग्रामवासिजनसमूहानां ॥ २५४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। ग्रामेयककुलानामिति। ग्रामजनसमूहानां ग्रामेण नियुक्तयोश्च विवादिनोः प्रत्यक्षसीमाचिन्हानि साक्षिणः प्रष्टव्याः ॥ २५४ ॥

(९) **भारुचिः**। प्रश्नविधिः ॥ २५४ ॥

**ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चयम् ॥**
**निबध्नीयात्तथा सीमां सर्वांस्तांश्चैव नामतः ॥ २५५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। ते साक्षिणो **यथा** यादृशं **निश्चयं ब्रुयुः**। **समस्ताः** सर्व एव। न पुनर्वाक्यभेदोक्तौ न्यायः "द्वैधे च बहूनामिति"। **निबन्धीयात्** पत्रके लिखेत्—साक्षिणश्च नाम—विभागेन ॥ २५५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। समस्ता नतु व्यस्ताः। तांश्च निबन्धीयादेतत्साक्षिकैषा सीमेति ॥ २५५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ते पृष्टाः साक्षिणः समस्ता न द्वैधेन सीमाविषयेण येन प्रकारेण निश्चयंब्रुयूस्तेन प्रकारेणाविस्मरणार्थं पत्रे सीमां लिखेत् तांश्च सर्वानेव साक्षिणो नाम-विभागतो लिखेत् ॥ २५५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। साक्षिप्रश्नानन्तु पुनः सीमाः कार्या इत्याह त इति। समस्ता मिलिताः सर्वैकमत्येनेति यावत्। तथैव सीमा ताम्रपट्टेषु लेख्येत्याह। निबन्धीयात् नामतः साक्षिणांनामभिःसह ॥ २५५ ॥

(५) **नन्दनः**। निबन्धीयाच्छिलादिषु लिखेदमुनैवमुक्तममुनैवमुक्तमिति। सर्वां-स्तांश्च नामतोनिबन्धीयात् ॥ २५५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। नामतः नामग्रहणात्। समन्ताद्भवाः सामन्ताः ॥ २५५ ॥

(७) **मणिरामः**। निवन्धीयात्—विस्मरणं मामूदिति सीमां साक्षिणोपि नामतः। एतेषां समक्षमेतत्पर्यंतमियं सीमाकृतेति रूपेण पत्रे लिखेत् ॥ २५५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चितमिति। ते साक्षिणः पृष्टाः सन्तो येन प्रकारेण समस्तानद्वैधं सीमाविषयं निश्चितं ब्रूयुः तेन प्रकारेण स्मरणार्थं पत्रके सीमां लेख्य तांश्च सर्वानेव साक्षिणो नामविभागतो लिखेत् ॥ २५५ ॥

(९) **भारुचिः**। निवन्धनं लेख्यमपि स्मरणार्थं तल्लिखेत् ॥ २५५ ॥

**शिरोभिस्ते गृहीत्वा वा स्रग्विणा रक्तवाससः ॥**
**सुकृतैः शापिताः स्वैः स्वैर्नयेयुस्ते समंजसम् ॥ २५६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **मूर्ध्नोर्वीं** पृथ्वीं मृल्लोष्टकान्गृहीत्वा साक्षिणः **स्रग्विणो** यथा-संभवं माल्यधरा रक्तवर्णकुसुमधरा **रक्तवाससो** लोहिताच्छादनाः। यद्यपि शुक्लस्य वर्णान्तरापादनेऽपि रञ्जिर्वर्तते भूयांस्तु लोहिते प्रयोगो रक्तो गौर्लोहित इति। भयसञ्जन-नार्थं चैतत्। लोहितवाससश्च शुद्धा भवन्ति। 'यदस्माकं सुकृतं किंचिदर्जितमस्ति तन्निष्फल-मस्त्विति' वाच्यंते। **स्वैः स्वैरिति** वीप्सया विशेषनामभिः सुकृतं कथयेयुः—कस्यादानं

तीर्थस्नानं चेत्यादि। **समंजसं** क्रियाविशेषणम्। सत्यादनपेतऋजुधर्म्मिको यो मार्गस्तेन नयेयुः। समंजसमृजु स्पष्टमित्येकोऽर्थः। सत्यव्यवहारश्च स्पष्ट इत्युक्तं **समंजसमिति** ॥ २५६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उर्वीं मृत्तिकाखण्डम्। स्रग्विणो रक्तस्रजः। एतच्च वास्तुपुरुषरूपमिति तद्रूपधारिभिः सीमानयनमुक्तम्। समंजसं यथार्थम् ॥ २५६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ते साक्षिणइति सामान्यश्रवणेऽपि रक्तस्रग्वाससः सीमांनयेयुरिति याज्ञवल्क्यवचनाद्रक्तपुष्पमाला धारिणो लोहितवाससो मस्तके मृल्लोष्ठानि गृहीत्वा यदस्माकं सुकृतं तन्निष्फलं स्यादित्येवमात्मीयैः सुकृतैः शापिताः सन्तः तां सीमां यथाशक्ति निर्णयेषुः ॥ २५६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। साक्ष्यदानप्रकारमाह शिरोभिरिति। शिरोभिर्भूलोष्टादिति गृहीत्वा स्रग्विणः रक्तपुष्पस्रग्विणः रक्तवसनाः सीमां नयेयुः क्षितिधारिण इतियाज्ञवल्क्योक्तेः। सुकृतैः यदस्माकं सुकृतं तन्निष्फलं स्यादित्येवंप्रकारैरिति केचित्। वस्तुतस्तु। सत्येन शापयेद्विजं क्षत्रियं वाहनायुधैः। गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकै रित्यत्रोक्तंः अन्यथा स्वैस्वैरित्यनुपपत्तिः। समञ्जसं सत्यम् ॥ २५६ ॥

(५) **नन्दनः**। उर्वीं मृदम् ॥ २५६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। स्वैः स्वैः शपथैः। सत्येन शापयेत् विप्रंक्षत्रियं वाहनायुधैः। गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः। ते शिरोभिः ऊर्वां गृहीत्वा मूर्धारोपितक्षितिखण्डाः स्रग्विणस्ते समंजसं यथार्थं नयेयुः सीमां प्रापयेयुः ॥ २५६ ॥

(७) **मणिरामः**। उर्वीं भूल्लोष्टं। स्वैसुकृतैः यदस्माकं सुकृतं तन्निष्फलं स्यादिति रूपैः शापिताः शपथं कारिताः संतः समंजसं यथाशक्ति नयेयुः निर्णयेयुः ॥ २५६ ॥ २५७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। शिरोभिरिति। ते साक्षिणः कृतमाल्यरक्तवाससो मूर्धनि मृल्लोष्ठं गृहीत्वा यदस्माकं सुकृतं तन्निष्फलं स्यादित्येवमादिभिः सुकृतैः शापिताः समस्तां सीमां सत्यादनपेतां कृत्वा निश्चिनुयुः ॥ २५६ ॥

(९) **भारुचिः**। नयनविधिः ॥ २५६ ॥

**यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः ॥**
**विपरीतं नयन्तस्तु दाप्याः स्युर्द्विशतं दमम् ॥ २५७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्रमाणान्तरलिङ्गेभ्योऽन्यथासंभवद्भ्यः प्रत्ययितरपुरुषेभ्यो मिथ्यात्वेऽवधारिते—प्रत्येकं द्विशतो दण्डः। एकैकस्य साक्षित्वात्साक्षिणां च दण्डचत्वात्। न हि व्यासज्य वदन्ति साक्ष्यम्। सत्यप्रधानाः साक्षिणः **सत्यसाक्षिणः**। **पूयन्ते** अनृताभिधानेन पापेन न संबध्यन्त इति। **यथोक्तेन** याथातथ्येन। न हि शब्दात्मकस्य वचनस्यान्यावसरः। प्रमाणान्तरसंवादमात्रमनेन लक्ष्यते। अथवा यथाशास्त्रमुक्तेन सत्येनेति यावत्। शास्त्रे हि सत्यं वक्तव्यमित्येवमुक्तमतो यथोक्तेन सत्येनेत्युक्तं भवति ॥ २५७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । विपरीतं नयन्तः पञ्चाल्लिङ्गान्तरेण सप्ताहान्तर्बन्धुमरणादिना च तद्विपर्ययनिश्चये द्विशतं पणान् प्रत्येकम् ।। २५७ ।।

(३) **कुल्लूकः** । ते सत्यप्रधानाः साक्षिणः शास्त्रोक्तेन विधानेन निर्णयस्था निष्पापा भवन्ति, अतथ्येन तु निश्चिन्वन्तः प्रत्येकंपणशतद्वयंदण्डंदाप्याभवेयुः ।। २५७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तत्रैवार्थवादं प्रदर्शयन्विपरीते दण्डमाह यथेति । ताम्रिकं पणशतद्वयं प्रत्येकमितिशेषः ।। २५७ ।।

(५) **नन्दनः** । यथोक्तेन मार्गेण । सेतुंसीमांनयन्तः स्थापयन्तस्त्रिपक्षादर्वाग्रोगाद्यभावे पूयन्ते । विपरीतंनयन्तस्त्रिपक्षादर्वाग्रोगादिदर्शनात् ।। २५७ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । विपरीतं नयन्तः अनयेन प्रापयन्तः द्विशतं दमं दण्डं दाप्याःस्युः ।। २५७ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । यथोक्तेनेति । ते सत्यप्रधानाः साक्षिणः शास्त्रोक्तेन रूपेण निश्चयन्तः सत्याभिधाननियमाः सर्वे पवित्रा भवन्ति । असत्यं पुर्ननिश्चयन्तः प्रत्येकं पणशतद्वयं दण्डं दाप्याः स्युः ।। २५७ ।।

(९) **भारुचिः** । स्तुतिः प्ररोचनार्था दण्डश्च यथोक्तः । विपरीतनयनं त्वन्येन व्यवहारान्तरेण ज्ञातव्यम् ।। २५७ ।।

**साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामसीमान्तवासिनः ।।**
**सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ ।। २५८ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । ग्रामसामन्ताः **सीमान्तवासिनः** प्रष्टव्याः । तेषां वचने निश्चयं कुर्यात् । **प्रयताः**—साक्षिधर्मेण शास्त्रान्तरेण । **राजसंनिधाविति** श्लोकपूरणम् । न तु सामन्ताः स्वेच्छया राजवन्निश्चिन्वन्ति ।। २५८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । सीमान्तवासिनो मध्य भूत विवाद विषय ग्रामयोः पर्यन्तेषु निरन्तरवासिनः । प्रयाता नियमिताः । साक्ष्युक्त प्रकारेणैव ।। २५८ ।।

(३) **कुल्लूकः** । ग्रामद्वयं संबन्धिसीमाविवादसाक्ष्यभावे चतुर्दिशं सीमान्तभवाः सामन्तास्तद्वासिनश्चत्वारोग्रामवासिनः साक्षिधर्मेण राजसमक्षं सीमानिर्णयं कुर्युः ।। २५८ ।।

(४) **राघवानन्दः** । साक्ष्यभावे प्रकारान्तरमाह साक्ष्यभावइति ग्रामाः ग्रामस्थाः सामन्तवासिनः समन्त एव सामन्तः तत्र वासिनश्चतुर्दिशंवर्तमानाः ।। २५८ ।।

(५) **नन्दनः** । समन्ताद्भवोदेवः सामन्तः ।। २५८ ।।

(७) **मणिरामः** । सामंतवासिनः चतुर्दिशं समंततो भवाः । ग्राम्याः ग्रामवासिनः ।। २५८ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्राम्याः सीमान्तवासिन इति । तद्ग्रामद्वयस्य विवादीभूतस्य साक्षिणोऽभावे चतसृषु दिक्षु सीमान्तवासिनः चत्वारो ग्राम्याः साक्षिधर्मेण राजसमक्षं सीमानिर्णयं कुर्युः ।। २५८ ।।

(९) **भारुचिः**। पूर्वेऽनुभाविनः। इमे तु सामन्ताः कर्णपरम्परया श्रुतवन्तः ॥ २५८ ॥

**सामन्तानामभावे तु मौलानां सीम्नि साक्षिणाम् ॥**
**इमानप्यनुयुञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान् ॥ २५९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सामन्तानां मौलानामिति** विशेषणविशेष्यभावः स्तुत्यर्थः। ग्रामप्रतिष्ठानकाले भवा उत्पत्तिसहभुवो **मौला** उच्यन्ते। ते च सामन्ता नित्याः, नित्यसंनिहितत्वात्। तेषामप्यभावः कथंचिदुच्छन्नत्वात्। तदा का गतिः। तदे**मानपि** वक्ष्यमाणान् पृच्छेत्।

अथवा **मौला** अनुभाविनः—**सामन्ता** व्याख्याताः—व्यवहर्तव्याः। मौलानां पूर्वोक्तानां अभावे सामन्ताः प्रमाणम्। तदभावे **वनगोचरान्विनियुञ्जीत** निपुणतः पृच्छेत् ॥ २५९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सामान्तानामभावे तथा मौलानां मूलभूतानां साक्षिणामभावे। इमान् वक्ष्यमाणान्। एतच्च वनसमीपग्रामविषयम् ॥ २५९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। साक्षिधर्मेण राजसमक्षमनुभवेन निर्णयमकुर्वतां ग्रामवासिनां ग्रामनिर्माणकालादारभ्य मौलानां पुरुषक्रमेण तद्ग्रामस्थानां सीमासाक्षिणामभाव इमान्वक्ष्यमाणान्सन्निहितवनचारिणः पृच्छेत् ॥ २५९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पूर्वोक्तानामभावे साक्ष्यन्तरमाह सामन्तानामिति। मौलानां ग्रामारम्भप्रभृतिपुत्रपौत्रतया तत्रैव कृतवसतीनां सामन्तानां मौलेत्यादिविशेषणद्वयम्। इमान्वक्ष्यमाणाम्। जलारण्यवासिनः ॥ २५९ ॥

(५) **नन्दनः**। मौलानां प्रोक्तानां तदानीन्तनानां वा च्छेदरहितानामिमान्वक्ष्यमाणाननुयुञ्जीत पृच्छेत् ॥ २५९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। सामन्तानां अभावे तु मौलाःमूले भवा मौलाः तेषां सीम्नि साक्षिणांअभावे इमान् वनगोचरान् अपि साक्ष्येनियुञ्जीत पृच्छेत् ॥ २५९ ॥

(७) **मणिरामः**। मौलानां ग्रामनिर्माणकालादारभ्य पुरुषक्रमेण तद्ग्रामस्थानां इमान् वक्ष्यमाणान् ॥ २५९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। सामन्तानामभावे तु मौलानां सीमसाक्षिणां। इतरानपि युञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान्। ग्रामसंनिवेशकालादारभ्य तद् ग्रामाभिजनानां सीमान्तवासिनां सीमासाक्षिणामभावे इतरानपि वक्ष्यमाणान् वनमध्यवहारिणः पुरुषान् पृच्छेत् ॥ २५९ ॥

(९) **भारुचिः**। तदभावे तु वनगोचराः प्रमाणं स्युः ॥ २५९ ॥

**व्याधांश्छाकुनिकान्गोपान्कैवर्तान्मूलखानकान् ॥**
**व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्च वनचारिणः ॥ २६० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। एते वनानि भ्राम्यन्ति। ग्राममध्येन गच्छन्तः कदाचित्तद्वृत्ते

विद्युः । ते हि तेन पथा गच्छन्तो विवादास्पदं प्रदेशं पूर्वं कांश्चित्पुरुषान्कृषतो दृष्ट्वा पृच्छेयुः 'कोऽयं ग्रामो यो भवद्भिः कृष्यत' इति । एवमादिना संभवति पूर्वानुभवः ।

**व्याधा** मृगयाजीविनः । तेषामपि वनाद्भ्रष्टमृगमनुधावतां भवति ग्रामसंबन्धः । एवं **शाकुनिकाः** शकुनिबन्धजीविनः । तदन्वेषणे ये सर्वान्ग्रामानागोचरयन्ति । **गोपा** गवां तृणविशेषज्ञानाय तत्र तत्र परिभ्राम्यन्ति । **कैवर्ता** दाशास्तडागखननादिजीविनस्तत्र तत्र गच्छन्ति क्वास्माकीनं कर्मोपयुज्यते । **मूलखनका** मूलं वृक्षादेः खनयन्ति स्थूलकाशादेः । **व्यालग्रहाः** सर्पग्राहिणः—जीविकार्थं तेऽपि सर्पांस्तं तं प्रदेशमन्विच्छन्ति । अतः तेषामपि पारिग्रामिकैर्बहुभिः संबन्धः । **उञ्छवृत्तयोऽपि** दरिद्रा अनेकग्रामपर्यटनेन पात्रमात्रं निर्वर्तयन्ति । **अन्यांश्च** फलकुसुमेन्धनार्थिनः ॥ २६० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । व्याधान् मृगवेधिनः । शाकुनिकाः शकुनघातजीविनः । गोपान् गोपालान् प्रायो ये वनगता एव । मूलखानकान् मूलमुत्पाट्य विक्रीय जीवतः । उञ्छवृत्तीन् शिलोञ्छवृत्त्या वर्तमानान्द्विजान् तेषांप्रायः क्षेत्रवनगोचरत्वात् । अन्यांश्च शबरादीन् ॥ २६० ॥

(३) **कुल्लूक** । लुब्धकान्पक्षिवधजीविनः गोपालान्मत्स्यजीविनोमूलोत्पाटनजीविनः सर्पग्राहिणः शिलोञ्छवृत्तीनन्यांश्च फलपुष्पेन्धनाद्यर्थे वनव्यवहारिणः पृच्छेत् । एतेहि स्वप्रयोजनार्थं तेन ग्रामेण सर्वदा वनंगच्छेयुस्तद्ग्राम सीमाभिज्ञाः संभवन्ति ॥ २६० ॥

(४) **राघवानन्दः** । तानवाहे व्याधानिति । व्याधान् लुब्धकान् । मूलखानकानं सूरणादिमूलोत्पाटनेन जीविनः । व्यालग्राहान् सर्पान्वेषिणः । एतेहि मूलमृणालाद्यर्थं ग्रामाद्ग्रामं संचरन्तस्तद्ग्रामस्थैर्निवारिताः सीमां जानन्तीति भावः । अन्यान्वनचारिणः फलाद्यर्थमिति केचित् । वस्तुतस्तु वनमत्र जलं सीमावधितडागादि जलचारिणः शम्बूकजलपुष्पाद्यर्थम् ॥ २६० ॥

(६) **रामचन्द्रः** । शाकुनिकान् पक्षिवधजीविनः । उच्छवृत्तीन् अन्यांश्च शबरादीन् ॥ २६० ॥

(७) **मणिरामः** । कैवर्तान् मत्स्यजीवितः । मूलखानकात् मूलोत्पाटनजीवान् । व्यालग्राह्यान् सर्पग्राहिणः ॥ २६० ॥ २६१ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । व्याधानिति । लुब्धकान् पक्षिवधजीविनो गोपालान् तडागादिखननवृत्तीन् वृक्षादिमूलोत्पादकान् सर्पग्राहिणो शिलोंछजीविनोऽन्यांश्च फलपुष्पेन्धनाद्यर्थं वमव्यवहारिणः पृच्छेदेतर्हि कार्यार्थं ग्राममध्यं ते सकृद्वनं प्रजन्ति ॥ २६० ॥

**ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः सीमासन्धिषु लक्षणम् ॥**
**तत्तथा स्थापयेद्राजा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः ॥ २६१ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । ते **धर्मेण पृष्टा इति** योजना । सीमाश्च ताः सन्धयश्च **सीमासन्धयः** । ग्रामद्वयसंयोगः 'सन्धिः' । स च सीमैव । **लक्षणं** ज्ञापकम् ॥ २६१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। इदमेव लक्षणं युक्तं नेदमिति यथा ब्रूयुः ॥ २६१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ते व्याधादयः पृष्टाः सीमारूपेषु ग्रामसंधिषु येन प्रकारेण चिह्नं-ब्रुयुस्तत्तेनैव प्रकारेण राजा द्वयोर्ग्रामयोः सीमां व्यवस्थापयेत् ॥ २६१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तार्थवादोयं त इति ॥ २६१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यद्वयोःमध्ये स्थापयेत् ॥ २६१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **त इति**। ते व्याधादयः पृष्टाः सन्तः सीमायाः संधिर्यथादेशं येन प्रकारेण ज्ञापकं ब्रूयुः तत्तेन रूपेण पक्षपातपरिहारेण राजा द्वयोर्ग्रामयोः मर्यादां स्थापयेत ॥ २६१ ॥

(९) **भारुचिः**। उपसंहारार्थः श्लोकः ॥ २६१ ॥

**क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च ॥**
**सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥ २६२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **आराम** उद्यानभूमिः शाकवाटश्च। सामन्तप्रमाणकस्तत्र निश्चयः। व्याधादिनिवृत्त्यर्थमिदमुच्यते। **सीमासेतुः** सीमावन्धः। सीमाविभावनार्थे य आबध्यते स्थाप्यते ॥ २६२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कूपस्य सीमाकूपस्य परितस्त्याज्यो यो देशस्तस्य सीमा। एवंतडागादौ। सामन्तप्रत्ययः सामन्ताः समन्तवासिनः तद्धेतुकः सीमानिर्णय इति शेषः। तथा सीमासु ये सेतवस्तेषामपि सीमानिर्णये कर्तव्ये ॥ २६२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एकग्रामेऽपि क्षेत्रकपतडागोद्यानगृहाणां सीमासेतुविवादे समस्त-देशवासिसाक्षिप्रमाणकएव। मर्यादा चिन्हनिश्चयो विज्ञेयो न व्याधादिप्रमाणकः ॥ २६२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ग्रामसीमायामुक्तनिर्णयप्रकारमन्यत्रातिदिशति क्षेत्रेति। तडागा-द्युक्तलक्षणम्। आरामः उपवनम्। सामन्तप्रत्ययः समन्ततोवर्त्मप्रद(र्श)नेनाह-रन् पञ्चशतान् प्रतिदण्ड्यः स इत्यन्वय एवं मानानां ज्ञानपुरःसरं वाक्यमेव प्रमाणनित्यर्थः। न तु व्याधादीनां तत्र युक्तयन्तरापेक्षणात् ॥ २६२ ॥

(५) **नन्दनः**। एवंग्रामयोः सीमाविनिर्णयमुक्त्वा क्षेत्रादीनामाह क्षेत्रकूपतटाना-मिति। सामन्ताः समन्ताद्वासिनः ॥ २६२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। क्षेत्रादि सीमासेत्विति विनिश्चयः। सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सामन्तादि-भिर्यदुक्तं तत्प्रायोज्ञेयः ॥ २६२ ॥

(७) **मणिरामः**। क्षेत्रकपादौ सीमासेतुविनिर्णयः मर्यादाचिह्ननिर्णयः। सामंत-प्रत्ययः समंतदेशबासि साक्षिप्रमाणक एव ज्ञेयः न तु व्याधादिप्रमाणक इत्यर्थः ॥ २६२ ॥
॥ २६३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **क्षेत्रकूपतडागानामिति**। सामन्ता इति। सीमानिमित्तं विवदमानानां मनुष्याणां यदि सीमान्तेवासिनः मिथ्या ब्रूयुः तदा राज्ञा ते सर्वे प्रत्येकं मध्यमसाहसं दण्डचाः। एवञ्च सामन्तरूपाणां द्वे शते दमः पूर्वोक्तो विज्ञेयः॥ २६२॥ २६३॥

(९) **भारुचिः**। सीम्नि गुरुत्वादर्थस्य कदाचिद्दशवर्षाणि नाभियोगं कुर्युः। अतस्तत्र 'न भोगेन प्रणश्यती'त्युक्तम्। क्षेत्रादिषु त्यत्वदर्थस्य यत्किञ्चिद्दशवर्षाणि त्ययमेव पक्ष आश्रीयते। अत एषां सामन्तप्रत्ययो निर्णय उच्यते। यथैवान्येषां द्रव्याणां साक्षिप्रत्ययो निर्णयः एवममीषामपीति॥ २६२॥

**सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम्॥**
**सर्वे पृथक् पृथग् दण्डचा राज्ञा मध्यमसाहसम्॥ २६३॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वेभ्यः **सामन्तानाम**धिको दण्डः। **पृथक्पृथगित्य**नुवादः। उक्तत्वान्न्यायस्य। क्षेत्रादिप्रातिवेश्या अवश्यं ज्ञातारो भवन्ति। प्रत्यासन्नतरतः एषां दण्डमहत्त्वम्। सामन्तानां तु परकीयसीमावेदनं नावश्यमिति द्विशतो दमोऽनुवर्त्यः। तेन ग्रामसीमायां द्रष्टृणां सामन्तानां च द्विशतः।

ये तु सामन्तशब्दमाश्रित्य ग्रामक्षेत्रादिसीमयोः सामन्तत्वात्तुल्यदण्डत्वमाहुस्ते न्यायविरोधादुपेक्षणीयाः॥ २६३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सेतावित्युपलक्षणं क्षेत्रादावपि॥ २६३॥

(३) **कुल्लूकः**। सीमाचिन्हनिमित्तं विवदमानानां मनुष्याणां यदि सामन्तादेशवासिनोमिथ्याब्रूयुस्तदा ते सर्वे प्रत्येकंराज्ञा मध्यमसाहसं दण्डनीयाः एवं चासामन्तरूपाणां पूर्वोक्तद्विशतोदमोज्ञेयः॥ २६३॥

(४) **राघवानन्दः**। तेषांमिथ्याभाषित्वे दण्डमाह सामन्ताइति। मध्यमसाहसं पणानां पञ्चशतानि। सेतावित्युपलक्षणं कूपादिचतुर्णाम्। सेतुर्मर्यादा सीमेतिपर्यायाः॥ २६३॥

(५) **नन्दनः**। सेतौ सीमाविषये॥ २६३॥

(६) **रामचन्द्रः**। अन्यथा ब्रूयुःते सर्वे राज्ञा मध्यमसाहसं दण्डचाः॥ २६३॥

(९) **भारुचिः**। सीमासाक्षिणामयं विशेषदण्डः॥ २६३॥

**गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन्॥**
**शतानि पञ्च दण्डचः स्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः॥ २६४॥**

(१) **मेधातिथिः**। क्षेत्रादिप्रसङ्गादिदमुच्यते। भीग्रहणं निमित्तोपलक्षणार्थम्। अस्यैवैतन्निश्चितमित्येवं जानतो हरतः पञ्चशतो दण्डः। मध्यमसाहसे प्रकृते पञ्चशतग्रहणं निमित्तभेदे न्यूनाधिकदण्डार्थम्। पूर्वत्र वा संख्यानमविवक्षितं मन्यन्ते। व्यवहारं

लेखयामि' 'राज्ञा दण्डयामि' 'चौरैर्दोषयामीति' भयप्रदर्शनेन हरति। तस्यां दण्डो निमित्तान्तरानुकल्पः ॥ २६४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भीषया भयोपदर्शनेन हरन् तत्सीमां लङ्घयन्। भीषयेति ज्ञानपूर्वकत्वोपलक्षणम् ॥ २६४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। गृहतडागोद्यानक्षेत्राणामन्यतमं मारणं बन्धनादिभयकथनपूर्वमाक्रम्य हरणे पञ्चपणशतानि दण्डनीयः स्यात्स्वत्वभ्रान्त्या हरणाद् द्विशतो दमः ॥ २६४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। गृहादीनां निर्णयप्रसंगेन तेषां हरणेपि दण्डमाह गृहमिति। भीषया भयप्रदर्शनेन। सचेद्विप्रःस्याद्दण्डार्हो न वधार्हः एतदर्थम्। उपधाभिस्तु यः कश्चित्परद्रव्यंहरेन्नर इत्यत्र वध उक्तोत्र दण्डविशेष इतिभेदः ॥ २६४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। गृहादिषु अन्यथा वदन् पञ्चशतानि दण्ड्यः ॥ २६४ ॥

(७) **मणिरामः**। भीषया मारणंबंधनादि भयकथनपूर्वमाक्रम्य हरन्। पंच पणशतानि दंडनीयः। अज्ञानात् हरणे द्विशतो दमः ॥ २६४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। गृहमिति। गृहतडागोद्यानानामन्यतममारणबन्धनभयकथनपूर्वकं हरन् पञ्चशतपणानि दण्डनीयः स्यादत्र भ्रान्त्या तु हरतो द्विशतोदण्ड्यः ॥ २६४ ॥

(९) **भारुचिः**। ज्ञानाज्ञानहरणेऽयं दण्डः ॥ २६४ ॥

**सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित् ॥**
**प्रदिशेद्भूमिमेतेषामुपकारादिति स्थितिः ॥ २६५ ॥**

[ध्वजिनी मत्सिनी चैव निधानी भयवर्जिता।
राजशासननीता च सीमा पञ्चविधा स्मृताः ॥ १ ॥]‡

(१) **मेधातिथिः**। **अविषह्या** निश्चेतुमशक्या—लिङ्गसाक्ष्यभावात्। **राजैव** स्वेच्छया **भूमिं दिशेद्द्यात्**-'इयं' वो भूमिरियं व' इति। **धर्मवित्**-पक्षपातो नैव कस्यचित्कर्तव्य इति। एतदाह **उपकारात्** हेतोः। यया सीमया द्वावपि ग्रामौ समोपकारौ भवतः। तेन यदि न्यूनाऽपि कस्यचिद्भूमिः स्यात्क्षेत्रं चेत्सुगुणं बहूत्पत्तिकं तदपेक्षः प्रदेशः ल्यब्लोपे पञ्चमी—उपकारमपेक्ष्य।

अथ**वैकेषां प्रदिशेत्**-परेषामनिश्चितामपहरेत्। यदि विवादिग्रामस्तां सीमां यावद्वक्तुं न शक्नुयादितरे च शक्तास्तदान्येभ्यः प्रदिशेत्। एवमात्मनो बहूनां च ग्रामीणानामुपकृतं भवति ॥ २६५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अविषह्यायां सर्वथा निर्णेतुमशक्यायाम्। प्रदिशेत् भूमिं उपकारात् तया यस्योपकारातिशयस्तस्मै ग्रामाय दद्यादित्यर्थः ॥ सीमानिर्णयः ॥ २६५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। लिङ्गसाक्ष्याद्यभावे सीमायां परिच्छेत्तुमशक्यायां राजैव धर्मज्ञः पक्षपातरहितोग्रामद्वयमध्यवर्तिनीं विवादविषयां भूमिं येषामेव ग्रामवासिनामुपकारातिशयोभवति तद्व्यतिरेकेण च महाननिर्वाहस्तेषामेव दद्यादिति शास्त्रव्यवस्था ।। २६५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। उक्तोपायैर्यदा सीमाया अपरिच्छेद्यकर्तुमन्यथाकर्तुमसर्थेन राज्ञैव तत्कर्तव्यं तस्य भूमित्वादित्याह सीमायामिति। अविषह्यायां विचारंसोढुमशक्यायाम्। तं धर्मं न विचालयेदित्युक्तेः। ननु स्वतन्त्रोराजा कथं प्रवर्तते तत्राह प्रदिशेदिति। विवादसमाप्तेस्तेषांमहानुपकारःस्यात्। स्थितिः पुण्यं परोपकारेणेतिशास्त्रमर्यादा ।। २६५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। सीमायामविषह्यायां सर्वोपायैर्निश्चेतुमशक्यायां एतेषां स्वयं राजैव प्रदिशेत् निर्णीय प्रदद्यात् योगीश्वरः। राजा सीम्नःप्रवर्तिता ।। २६५ ।।

(७) **मणिरामः**। अविशक्यायां लिंगसाक्ष्यभावे परिछेत्तुमशक्यायां। उपकारात्–विवाद निवारणरूपात्। अन्यथा महाविवादेन परस्परमरणं स्यात् ।। २६५ ।। २६६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। सीमायामिति। सीमायां लिङ्गसाक्ष्याद्यभावात्परिच्छेत्तुमशक्यायां राजा धर्मज्ञोऽपक्षपातेन ग्रामद्वयस्य मध्यवर्तिनीं भूमिं येषामेव ग्रामीणानां तया भूम्या उपकारो भवति तेषामेवेति मर्यादा ।। २६५ ।।

(९) **भारुचिः**। दूरत्वादशक्योपभोगायां राजा दृष्टोपकारग(न्ध ? न्धे)नैकत्र प्रयच्छेद् भूमिम्। न च राज्ञो ग्रहणे तत्र दोषः। एवमर्थश्चायमुपदेशः। अतोऽप्रदानेऽपि न दोषः ।। २६५ ।।

**एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमाविनिर्णये ।।**
**अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ।। २६६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वोपसंहारोऽपरसंक्षेपोपन्यासः श्लोकार्थः। 'दण्डवाचिक' इत्युक्त्वा (६) क्रमभेदो लाघवाद्वाक्पारुष्यं स्यात्ततो दण्डव्यापारः। द्वन्द्वे चेतरेतरयोगाद्व्यस्तक्रमसमासार्थप्रतिपत्तेरेकैकस्योभयार्थप्रतिपादनाद्दण्डशब्देन वागर्थोऽप्युपात्त इति कः क्रमभेदः। तथा च यथासंख्यसूत्रारंभो (पा. १/३/१०) महाभाष्यकारेण समर्थितः—एतदेव दर्शनमाश्रित्य संज्ञासमासनिर्देशादिति ।। २६६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एष इति वाक्पारुष्यं पश्चादुक्तमपि लघुत्वादेवाभिधातुमत-ऊर्ध्वमिति ।। २६६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। एष सीमानिश्चयो धर्मो निःशेषेणोक्तः अत ऊर्ध्वं वाक्पारुष्यं वक्ष्यामि दण्डपारुष्याद्वाक्पारुष्यप्रवृत्तेः पूर्वमभिधानं अनुक्रमश्रुत्यान्तु पारुष्ये दण्डवाचिक इतिदण्डशब्दस्याल्पस्वरत्वात्पूर्वनिर्देशः ।। २६६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। सीमानिर्णयमुपसंहरन्पारुष्ये दण्डवाचिकइत्युक्तं तत्र वाक्पारुष्यनिर्णयं प्रतिजानीते एष इति ।। २६६ ।।

(५) **नन्दनः**। अथवाक्पारुष्यनिर्णयं प्रस्तौति एषोऽखिलेनेति। नचात्रोद्देशक्रमत्यागः शङ्क्यः दण्डवाचिके इत्यदण्डशब्दप्राथम्यस्यात्पाच्तरत्वप्रयुक्तपूर्वनिबन्धित्वेनार्थमस्याविवक्षितत्वादिति ॥ २६६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एषसीमाविनिर्णयः धर्मः अखिलेन उपायेन अभिहितः उक्तः ॥ २६६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। एष इति। एषोऽनन्तरोक्तो धर्मादनपेतः सीमाविनिर्णयो निःशेषेणोक्तः। अनन्तरं परुषभाषण विषय निर्णयं प्रकर्षेण वक्ष्यामि दण्डपारुष्यतो वाक्पारुष्यस्य प्राथेणासहत्वम्। प्रथमं वाक्पारुष्यविचारोऽनुक्रमण्यां पुनः पारुष्ये दण्डः वाचिक इति वृत्तानुरोधाद्दण्डशब्दस्य पूर्वाभिधानम् ॥ २६६ ॥

(९) **भारुचिः**। उपसंहारोपन्यासार्थः श्लोकः। ननु चैवं क्रमभेदः। पारुष्ये दण्डवाचिके' इत्यभिधानात् व्यवहारास्पदानुक्रमण्यां छन्दोऽनुविधानान्न पूर्वं दण्डपारुष्यग्रहणम्। अयं त्वर्थः क्रममाश्रित्यात्र वाक्पारुष्यस्य पूर्वमुपन्यासः स च शब्दक्रमाद् गरीयान्। यतो नास्ति क्रमभेदः अल्पाच्यरत्वादत्र पूर्वं ग्रहणं द्वे द्वे॥ २६६ ॥

**शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ॥**
**वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति ॥ २६७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। परुषवचनमाक्रोशः। स च बहुधा नृशंसाश्लीलभाषणान्मर्मणि तोदः अभिशापः 'अकरणहन्ता वृषलो भूयाः'। असत उपन्यसनं "कन्या ते गर्भिणीति"। पातकोपपातकैर्योजनमिति। तत्र द्वयोर्ब्राह्मणक्रोशे क्षत्रियवैश्ययोरयं दण्डः। अन्यत्र "पतनीये कृते क्षेपे दण्डो मध्यमसाहसः" इत्यादि (याज्ञ. व्य २१०) स्मृत्यन्तरोक्तः। शूद्रस्य **वधः** ताडनजिह्वाच्छेदनमारणादिरूप आक्रोशभेदाद् वेदितव्यः ॥ २६७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आक्रुश्य त्वं पापिष्ठोसीत्यादिना। अध्यर्धशतं सार्धशतमल्पाक्षेपे। द्वेवेत्यतिशयिते। एते सर्वे पणाः। वधस्ताडनम् ॥ २६७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। द्विजस्य चौरेत्याक्षेपरूपं परुषमुक्त्वा क्षत्रियः पणशतं दण्डमर्हति। एवं सार्द्धशतंद्वे वा शते लाघवगौरवापेक्षया वैश्यः। शूद्रोप्येवं ब्राह्मणक्रोशे ताडनादिरूपं**वधमर्हति** ॥ २६७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। वाक्पारुष्यमते त्वनुवदंस्तदुचितदण्डमाह शतमिति द्वादशभिः। अध्यर्धशतं अधि अधिकमर्धं शतं यत्र तेन सार्धशतम्। द्वेवेतिगुणवद्ब्राह्मणापेक्षया। वधं ताड़नादिरूपं हुंकाराद्यल्पाक्रोशे उत्तरत्र जिव्हाछेदस्य वक्ष्यमाणत्वात् ॥ २६७ ॥

(५) **नन्दनः**। द्वे शते वा गुणदोषापेक्षा विकल्पः ॥ २६७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। द्विजमाक्रुश्यवैश्यो अप्यर्धशतं द्वेवा। शूद्रस्तु वधं ताडनं अर्हति ॥ २६७ ॥

(७) **मणिरामः**। इदानीं वाक्पाठ्य निर्णयमाह शतमिति। ब्राह्मणं आक्रुश्य। त्वं चौर इत्यादि कठोरवचनमुक्त्वा क्षत्रियः पणशतं वैश्यः सार्द्धशतं द्विशतं च लाघव गौरवापेक्षया दंडमर्हति। शूद्रस्तु वधं ताडनरूपं अर्हति।। २६७।।

(८) **गोविन्दराजः**। **शतमिति**। वादेष्विति वक्ष्यमाणत्वान्मातृभगिन्याद्यश्लील पतनीयवर्जं पुरुषं ब्राह्मणमाक्रुश्य पणशतं क्षत्रियो वैश्योऽध्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति। पुनराक्रोशविशेषापेक्षया ताडनजिह्वाकर्तनाद्यमर्हति।। २६७।।

(९) **भारुचिः**। अवचनीयादाक्रोशादृते अन्यस्मिन्नाक्रोशे एते यथार्हं दण्डवि.....र्याः। यस्मा...ब्राह्मणम...क्रुश्य वैश्यस्य दण्डयुक्तः। ततोऽर्धं क्षत्रियमाक्रुश्य। वैश्यस्यान्यायादाप्नोति दण्डः। शूद्रस्य त्वेकजातिदण्डः। एकजातिद्विजातिरिति द्विजातिमात्रे .....।। २६७।।

**पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिमर्शने।।**
**वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः।। २६८।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अभिशंसनं** सर्वप्रकार आक्रोशः, पतनीयादन्यः—तत्र दण्डान्तरविधानात्। निमित्तसप्तमी चैषा। **वैश्य इति** विषयसप्तमी। ब्राह्मणस्याक्रोष्टुराक्रुश्यमानस्य च दण्ड उक्तः। क्षत्रियादीनां त्वितरेतरं स्मृत्यन्तरमन्वेषणीयम्। तथा च गौतमः (१२/११) "ब्राह्मणराजन्यवत् क्षत्रियवैश्यौ"। परस्पराक्रोशे क्षत्रियश्चेद्वैश्यमाक्रोशेत्पञ्चाशतं दण्ड्यः, वैश्यः क्षत्रियं शतम्। एवं क्षत्रियः शूद्रमाक्रोशेत्पञ्चविंशतिर्दण्ड्यः। वैश्यः पञ्चाशतम्। शूद्रस्य तु तदाक्रोशे गुणापेक्षिको दण्डो वक्ष्यते।। २६८।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अभिशंसने आक्रोशे। वैश्ये आक्रुश्यमाने विप्रेण। एवं शूद्र इत्यत्रापि।। २६८।।

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणः क्षत्रियस्योक्तरूपाक्षेपे कृते पञ्चाशत्पणान्दण्ड्यः वैश्ये शूद्रे च यथोक्ताक्रोशे कृते पञ्चविंशतिर्द्वादशपणाः क्रमेण ब्राह्मणस्य दण्डः स्यात्।। २६८।।

(४) **राघवानन्दः**। प्रतिलोमतयोक्ताऽनुलोमतयाह पञ्चाशदिति। अभिशंसने स वैश्ये आक्रुष्टे। एवं शूद्रे।। २६८।।

(५) **नन्दनः**। अर्द्धपञ्चाशत् पञ्चविंशतिः।। २६८।।

(७) **मणिरामः**। क्षत्रियस्य अभिशंसने कठोरवचसे। ब्राह्मणः पंचाशतं पणान् दंड्यः। वैश्ये शूद्रेच यथोक्ताक्रोशे कृते यथाक्रमेण पंचविंशतिर्द्वादशपणाः ब्राह्मणस्य दंडःस्यात्।। २६८।।

(८) **गोविन्दराजः**। **पञ्चाशदिति**। ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणाम् उक्ताद्यपेक्षा पञ्चाशत्पञ्चविंशतिः विंशतिः चार्धद्वादशपणान् यथाक्रमं ब्राह्मणो दण्ड्यः।। २६८।।

(९) **भारुचिः**। निगदव्याख्यातः श्लोकः अत्रापि न्यायप्रा(का?क्त)प्त्या क्षत्रियो वैश्यमाक्रोशन् ब्राह्म·····क्षत्रियः स्यात्। वैश्यस्य शूद्रमाक्रुश्य ब्राह्मणदण्डात् त्रिगुणं दद्यात् ॥ २६८ ॥

**समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ॥**
**वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥ २६९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **द्विजातिग्रहणमतन्त्रम्**। **समवर्णे व्यतिक्रमे** परस्पराक्रोशे **द्वादश दण्डः**। समत्वं च जातिवित्तबन्धुवयःकर्मविद्याभिः, विशेषानुपदेशात्। तत्र समानजातीय वित्ताधिके द्विगुणं–तस्मिन्नेव बन्धुत्वाधिके त्रिगुणं–यावत्सर्वगुणे निर्गुणस्य षड्गुणम्। **वादा** आक्रोशा **अवचनीया** अत्यन्तनृशंसा मातृभगिनीभार्यादिगताः। **तदेव द्विगुणं** दण्डपरिमाणम्। नपुंसकलिङ्गात्सर्वशेषोऽयं न समवर्णविषय एव। अथवा **तदेव** शतमिति योजना। लिङ्ग-सामर्थ्याच्छतस्य च प्रथमश्लोके श्रुतत्वात्। अतोऽवचनीयेषु समवर्णेष्वपि द्विशतो दमः। लिङ्गोपपत्त्यर्थे परिमाणपदमश्रुतमध्याहर्तव्यम्। शते तु व्यवहितकल्पना ज्यायसी। ॥ २६९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। समुत्कर्ष इति। क्षत्रादिनामपि स्ववरवर्णेष्वाक्रोशे विप्रस्येव दण्डकृप्तिरित्यर्थः। द्विजातीनां त्रयाणां व्यतिक्रमे आक्रोशे। अवचनीयेष्वश्लीलेषु त्वं स्वसृगामीत्यादिष्वाक्रोशमात्रतात्पर्येणोक्तेषु समवर्णेषु ॥ २६९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। द्विजातीनां समानजातिविषये यथोक्तोक्रोशे कृते द्वादशपणो दण्डः। अवचनीयेषु पुनराक्रोशवादेषु मातृभगिन्याद्यश्लीलरूपेषु तदेवेति नपुंसकनिर्देशात् शतं-ब्राह्मणमाक्रुश्येत्यादियदुक्तं तदेव द्विगुणं दण्डरूपं भवेत् ॥ २६९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच समिति। समवर्णे तुल्यजातीये व्यतिक्रमे यदि विप्रो विप्र-माक्षिपति। एवमुत्तरत्र। वादेषु तु विशेषमाह वादेष्विति। अवचनीयेषु मातृभगिन्याद्य-श्लीलेषु क्रोधावेशपुरःसरेषु ॥ २६९ ॥

(५) **नन्दनः**। व्यतिक्रमेऽल्पवाक्पारुष्ये। यदिदंद्वादशेत्युक्तंतदेव द्विगुणंभवेत् ॥ २६९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। द्विजातीनां व्यतिक्रमे द्विजस्य द्विजः क्षत्रियस्य क्षत्रियः वैश्यस्य वैश्यः शूद्रस्य शूद्रः व्यतिक्रमे द्वादशैव पणान्दण्ड्यः। व्यतिक्रमेद्विगुणं चतुर्विंशतिःपणाः ॥ २६९ ॥

**विप्रक्षत्रियवत्कार्यो दण्डो राजन्यवैश्ययोः।**
**वैश्यक्षत्रिययोः शूद्रे विप्रे यः क्षत्रशूद्रयोः ॥ १ ॥**

**समुत्कर्षापकर्षास्तु विप्रदण्डस्य कल्पना।**
**राजन्यवैश्यशूद्राणां धनवर्जमिति स्थितिः ॥ २ ॥**

(७) **मणिरामः**। द्विजातीनां समवर्णे व्यतिक्रमे वाक्यारुष्ये। द्वादशैव पणाः दंडः। अवचनीयेषु वादिषु मातृभगिन्यादिशालिप्रदानरूपवाक्पारुष्येषु। तदेवशतमेव द्विगुणं दंडरूपं भवेत्॥ २६९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **समवर्ण इति**। द्विजातीनां समजातिविषये उक्तरूपे आक्रोशे कृते व्यतिक्रमे सति द्वादशैव पणान् दण्डयः अवचनीयेषु वादेषु मातृभगिन्याद्यश्लीलरूपेषु शतं ब्राह्मणमाकुश्येत्यादि यदुक्तं तदेव दण्डं द्विगुणं दण्डाद्भवति॥ २६९॥

(९) **भारुचिः**।...तो ब्राह्मण एवमितरयोरपि शूद्रेऽपि कार्यसामान्यादेतदेव स्यात्-एवं च द्विजातिजातिग्रहणस्याविवक्षितत्वादेकजातिप्रदर्शनार्थमप्येतदत्र स्यात्। अवचनीयेषु तु वादेषु 'शतं ब्राह्मणमाकुश्ये' त्येवमादिषु यद्यदुक्तं तत्तद्विगुणं तत्र स्यात्॥ २६९॥

**एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपन्॥**
**जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः॥ २७०॥**

(१) **मेधातिथि**। **एकजातिः** शूद्रः। स त्रैवर्णिकान्क्षिपन्नाक्रोशन् **दारुणया** पातकादियोगिन्या **वाचा** नृशंसादिरूपया जिह्वाच्छेदं लभते। **जघन्यप्रभव** इति पादाभ्यां ब्राह्मण उत्पन्न इति हेत्वभिधानं प्रतिलोमानामपि ग्रहणार्थम्। तेऽपि जघन्यप्रभवा एव—"नास्ति पञ्चम" इति वर्णान्तरनिषेधात्॥ २७०॥

(२) **सर्वज्ञनारायण**। एकजातिः शूद्रः। दारुणया अवचनीयया। जघन्यप्रभवो। न्त्यजन्मा॥ २७०॥

(३) **कुल्लूक**। शूद्रो द्विजातीन्पातकाभियोगिन्या वाचाक्रुश्य जिह्वाच्छेदं लभेत। यस्मादसौ पादाद्यान्निकृष्टाज्जाज्जातः॥ २७०॥

(४) **राघवानन्दः**। शूद्रकर्तृकत्रैवर्णिकाक्रोशे विशेषमाह एकेतिचतुर्भिः। एकजातिः शूद्रः एकैव जातिर्जन्मरूपा यस्येतिव्युत्पत्तेः। वाचा दारुणयेति कस्त्वं रे यज्ञदत्तेत्यादिरूपया। जिह्वाछेदेहेतुः जघन्यप्रभवः पद्भ्यां शूद्रो अजायतेतिपादजः॥ २७०॥

(५) **नन्दनः**। एकजातिरुपनयनानर्हः शूद्रइतियावत्॥ २७०॥

(६) **रामचन्द्रः**। एकजातिः शूद्रः द्विजातिब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां दारुणयावाचाक्षिपन् जिव्हायाः छेदं प्राप्नुयात्। सः द्विजातिः जघन्यस्य शूद्रस्य प्रभवः॥ २७०॥

(७) **मणिरामः**। एकजातिः शूद्रः दारुणयावाचा त्वं पातकीतिवाचा॥ २७०॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एकजातिरिति**। शूद्रो द्विजातीन् घातकाद्यभियोगिन्या वाचा आक्रुश्य जिह्वाच्छेदं प्राप्नुयात् यदसौ पादाद्यनिकृष्ट इति॥ २७०॥

(९) **भारुचिः**। ब्राह्मणक्रोशे वध उक्तश्शूद्रस्य। यतोऽयं क्षत्रियवैश्याक्रोशे तस्य दण्डो विज्ञेयः। यतः जिह्वाच्छेदश्चाप्राणोपरोधी सामर्थ्यादस्य विज्ञायते॥ २७०॥

**नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ।।**
**निक्षेप्योऽयोमयः शंकुर्ज्वलन्नास्ये दशांगुलः ।। २७१ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** **अभिद्रोह** आक्रोशः । कुत्साबुद्धिः—'ब्राह्मणक त्वं मा मया स्पर्धिष्टाः' । एवन्नाम्न्यपि योज्यम् । ग्रहणं **ग्रहः** निरुपपदं नाम गृह्णाति कुत्साप्रत्ययप्रयोगेन वा 'देवदत्तकेति' । **अभिद्रोहेण** क्रोधेन । अभिद्रोहः क्रोधः—न प्रणयेन । **निःक्षेप्यः** प्रक्षेप्यः । **शङ्कुः** कीलकः । **ज्वलन्नग्निना** दीप्यमानोऽ**योमयो** लोहमयः ।। २७१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** नामग्रहंमैत्र इति । जातिग्रहं ब्राह्मण इति । अभिद्रोहेणाक्रोशाभिमानेन कुर्वतः शूद्रस्य ज्वलन्नतितप्तः ।। २७१ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** अभिद्रोह आक्रोशः ब्राह्मणादीनां रे त्वं यज्ञदत्त ब्राह्मणापसद इत्याक्रोशेन नामजात्यादिग्रहणं कुर्वतो लोहकीलोऽग्निना प्रदीप्तो दशाङ्गुलो मुखेषु क्षेप्तव्यः ।। २७१ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** ब्राह्मणापसदइत्याद्याक्रोशेदण्डान्तरमाह नामेति । शङ्कुर्लोहकीलकंज्वलन्नग्निदीप्तः निक्षेप्यःप्रवेशनीयः ।। २७१ ।।

(५) **नन्दनः ।** नामजात्योर्ग्रहणं हे यज्ञशर्मन्ब्राह्मणेत्यादिकं एषां द्विजातीनां कुर्वतएकजातेः ।। २७१ ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** अमुकनामासित्वं अमुकजातिस्त्वं । अभिद्रोहेण आक्रोशाभिमानेन ग्रहं कलहं कुर्वतः यस्तस्य आस्ये मुखे अयोमयःशङ्कुःदशाङ्गुलः ज्वलन्स्थाप्यः ।। २७१ ।।

(७) **मणिरामः ।** एषां द्विजातीनां । नामजातिग्रहं कुर्वतः यज्ञदत्त ब्राह्मणाऽपसद इति रूपेण ।। २७१ ।।

(८) **गोविन्दराजः ।** **नामजातिग्रहमिति ।** एषां द्विजातीनामाक्रोशबुद्धया नामोच्चार्य जात्युच्चारणञ्च शूद्रस्य कृतवतः आयसकीलोऽग्निना दीप्यमानो दशाङ्गुलप्रमाण आस्ये प्रक्षेप्तव्यः ।। २७१ ।।

(९) **भारुचिः ।** अवचनीयैरभिद्रोहेणाक्रोशतः शूद्रस्यानेन प्रकारेण वध उपदिश्यते ।। २७१ ।।

**धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ।।**
**तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ।। २७२ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** 'अयं ते स्वधर्म' इयं वाऽत्रेतिकर्तव्यता' 'मैवं कार्षीः छांदसोऽसीति'—एवमादिव्याकरणलेशज्ञानतया दुन्दुकत्वेन दर्पवन्तः शूद्रा उपदिशन्ति । तेषामेष दण्डः । यस्तु प्रणयात् ब्राह्मणापाश्रयादेव व्युत्पन्नो विस्मृतं कथंचिद्देशकालविभागं स्मारयेत् —'पूर्वाह्णकालं नातिक्रामयेति', 'क्रियतां दैवं कर्म, देवांस्तर्पयोपवीती भव, मा प्राचीनावीतं कार्षीरिति' तस्य न दोषः । **तप्तमग्निसंबन्धात्पीडाकरम् । आसेचयेत्क्षारयेत् ।**

"युक्तं वक्त्रे, मुखेनोपदेशकत्वात् । श्रोत्रस्य कोऽपराधः ।'

प्रागसत्तर्कादि श्रवणम् ।। २७२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । धर्मोपदेशं प्रायश्चित्ताद्युपदेशम् । अस्य शूद्रस्य ।। २७२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । कथंचिद्धर्मलेशमवगम्यायं ते धर्मोनुष्ठेय इति ब्राह्मणस्याहङ्कारादुपदिशतोऽस्यशूद्रस्य मुखे कर्णयोश्च ज्वलत्तैलं राजा प्रक्षेपयेत् ।। २७२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तस्यैव धर्मवक्तृत्वे दण्डान्तरमाह धर्मं इति । दर्पेण धनविद्यादिजेन विप्राणां धर्मोपदेशं कुर्वतोऽस्य शूद्रस्य । तं धर्मं स्वयं श्रुत्वाऽनुष्ठास्यतीति कृत्वा श्रोत्रे ।। २७२ ।।

(५) **नन्दनः** । अस्यैकजातेरित्येव ।। २७२ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । विप्राणां धर्मोपदेशं दर्पेण कुर्वतः अस्य शूद्रस्य वक्त्रे तप्तं तैलं च पुनः श्रोत्रे आसेचयेत्पार्थिवः ।। २७२ ।।

(७) **मणिरामः** । अस्य शूद्रस्य ।। २७२ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **धर्मोपदेशमिति** । छद्मना कुतश्चिद्धर्मलेशं बुद्ध्वा अयं ते स्वधर्मं इत्येवमहङ्कारेण ब्राह्मणानां शूद्रस्योपदिशतः आस्ये कर्णयोश्च ज्वलत्तैलं राजा प्रक्षेपयेत् ।। २७२ ।।

(९) **भारुचिः** । धर्मोपदेशसामर्थ्यं चैतच्छूद्रस्यार्थाद्विज्ञेयम् । एवं च सति नेदं लिङ्गं शूद्रस्य शास्त्रप्राप्तेर्भवति ।। २७२ ।।

**श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ।।**
**वितथेन ब्रुवन् दर्पाद्वाप्यः स्याद् द्विशतं दमम् ।। २७३ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । सत्ये च श्रुते 'नैतदनेन सम्यक् श्रुतं' इत्याह—**श्रुत**मेव वाक्षिपति —'नैतत्सम्यक् यदनेन श्रुतमिति' । ब्रह्मावर्तीयमभिजनाभिमानिनं 'बाह्यकोऽय'मित्याह । एवं **जात्या** ब्राह्मणं 'क्षत्रियोऽयमि'त्याह—क्षत्रियं वा हेलया 'ब्राह्मण' इति । **कर्म**—ब्रह्मचारिणं 'स्नातक' इति । शरीरावयवः **शरीरे**—अव्यङ्गं 'दुश्चर्मेति' । **वितथेन** वितथमानृतम् । 'प्रकृत्यादिभ्य' इति तृतीया । अथवाऽधर्मो 'वैतथ्यं'—तस्य वाच्यं प्रति कारणतायुक्तैव । स्वगुणमदात्परावज्ञानं **दर्पः** । अज्ञानात्परिहासतो वा न दोषः ।

"कस्य पुनरयं दण्डः ।"

सर्वेषामिति ब्रूमः । शूद्राधिकाराच्छूद्रस्यैवेति परे । द्विजातिविषये वैतथ्ये ।। २७३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । शारीरं कर्म भारवाहनादि वितथेति ब्रुवन्नत्वश्रुतादि । दर्पादभिमानात् । अश्रुताद्यभिमानेन ब्रुवन्द्विज एव दण्डचो नतु शूद्रस्तस्य तु वध एव ।। २७३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। समानजातिविषयमिदं दण्डलाघवन्नतु शूद्रस्य द्विजात्याक्षेपविषयम्। न त्वयैतच्छ्रुतं न भवान् तद्देशजातो न तवेयंजातिर्न तव शरीरसंस्कारमुपनयनादि कर्मकृतमित्यहङ्कारेण मिथ्याब्रुवन्द्विशतंदण्डंदाप्यः स्यात्। वितथेनेति तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसङ्ख्यानमिति तृतीया ॥ २७३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। समवर्णेआह श्रुतमिति। न त्वंद्विजातिर्न तवायमुचितोदेश इत्येवं बितथेन वितथं ब्रुवन् शूद्रःशूद्रस्यैव ब्रुवन्। प्रकृत्यादिभ्यः उपसंख्यानमितितृतीया। अथवा स्वख्यात्यर्थंदर्पात् मिथ्यावदंच्छूद्रोदण्डनीयइत्याह श्रुतमिति। मयैतत्पुराणादिकं श्रुतं मम मध्यदेशे वसतिरतीव कुलीनोऽहमतीव सत्कर्मास्मि ममातीव चूडादिसंस्कारो वृत्त इति। अन्यथा वितथेनेत्यनुपपत्तेरिति ॥ २७३ ॥

(५) **नन्दनः**। सर्ववर्णानामविशेषेण दण्डमाह श्रुतदेशं चेति। देशं जन्मभूम्यादिकं। कर्मयज्ञादिकं। शारीरमुपनयनादिकं। वितथेनवैतथ्येन ॥ २७३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तवश्रुतं तवदेश तवजातिं तवशारीरंकर्म भारवाहनादिकर्म-वितथेन विथतत्वेन दर्पात् ब्रुवन् द्विशतं दमं दाप्यःस्यात् ॥ २७३ ॥

(७) **मणिरामः**। न त्वयैतछ्रुतं न भवान् तद्देशजातः न तवायंजातिः न तव शरीर-संस्कारमुपनयनादि कर्मकृतमित्यादि दर्पात् वितथेन ब्रुवन् मिथ्याब्रुवन् द्विशतं पणाः दंडं दाप्यः ॥ २७३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **श्रुतिमिति**। न त्वयैतच्छ्रुतं न भवानेतद्देशाभिजातो न तवेयं जोतिः न तवोपनयनादि शरीरसंस्कारकं कर्म कृतं इत्येवमनृतमेवामर्षात्समानजातिं ब्रुवनं द्विशतं दण्डं दाप्यः स्यान्न शूद्रः प्रकृतो द्विजातीनां ब्रुवन्दण्डलाघवात् ॥ २७३ ॥

(९) **भारुचिः**। सत्यपि शूद्रप्रकरणे सर्वेषां ब्राह्मणादीनामयं विधिर्ज्ञेयः सामर्थ्यात् ॥ २७३ ॥

**काणं वाऽप्यथ वा खञ्जमन्यं वाऽपि तथाविधम् ॥**
**तथ्येनापि ब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ॥ २७४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। एकेनाक्षणा विकलः **काणः**। **खञ्जः** पादविकलः। **तथाविध**कुणि चिपिटनासं—**तथ्येन** 'असत्येन' अपिशब्दाद्वितथेन—अकाणं काण इत्युक्ते। **कार्षापणावरो** दण्डः। अत्यन्ताल्पो यदि दण्डः कथंचिदनुग्राह्यतया, तदा कार्षापणो दण्डः। अन्यथा द्वौ त्रयः पञ्च वा। पुरुषविशेषापेक्षयाऽपि दण्डयः शूद्रः। सर्वे वा पूर्ववत् ॥ २७४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ब्रुवन्काणस्त्वमिज्यादिकमभिमानात् कार्षापणोत्यन्तावरोयत्र दण्डे तम्। अधिकसंभवेतु ततोपि किंचिदधिकंदाप्यइत्यर्थः ॥ २७४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एकाक्षिविकलंपादविकलमन्यमपि वा तथाविधं हस्ताद्यङ्गविकलं-सत्येनापि काणादि शब्देन ब्रुवन्नत्यल्पं तदा कार्षापणं दण्डं दाप्यः ॥ २७४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंचान्यत् वस्तुतोऽङ्गहीनमस्य तथावदने दण्डमाह काणमिति। तथाविधं विरूपम्। तथ्येनापीत्यत्रापेरवधारणार्थत्वात्परिहासवारणाय। कार्षापणावरं पणादपि न्यूनं पुनः प्रसंगवारणाय ।। २८४ ।।

(५) **नन्दनः**। तथाविधं विकलाङ्गं शक्त्यपेक्षया परिणामनीयम् ।। २७४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। काणादिकं तथ्येन ब्रुवन् कार्षापणां अवरंदण्डं दाप्यःकर्ष पणंकार्षापणं अवरतुच्छं ।। २७४ ।।

(७) **मणिरामः**। अन्यं नापि तथाविधं हस्ताद्यंगविकलं। तथ्येनापिब्रुवन् हे काण हे खंजेतिवदन्। अवरं अत्यंतालपं कार्षापणं दंडं दाप्यः ।। २७४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। काणमिति।** काणं पादविकलं वा अन्यमपि वा तथारूपं अङ्गविकलमन्धादिकं काणादिशब्देन सत्येनापि ब्रुवन्यादि सर्वनिकृष्टं कार्षापणं दण्डं दाप्यः ।। २७४ ।।

(९) **भारुचिः**। कार्षाप(णवा : णाव) रत्वं चापराधं परिज्ञाय स्थाप्यम्। तथा च विहितः दण्डापवादः शास्त्रोक्त एवानुबन्धं प... (ज्ञे ? ज्ञा)येत्येवमादिः ।। २७४ ।।

**मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ।।**
**आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद् गुरोः ।। २७५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **आक्षारणं** भेदनं द्वेषजननमनृतेन। 'एषा ते माता न स्नेहवती द्वितीये पुत्रेऽत्यन्ततृष्णावती कनकमयमङ्गुलीयकं रहसि तस्मै दत्तवती' इत्येवमाद्युक्त्वा भेदयति। एवं पितापुत्रौ जायापती भ्रातृन् गुरुशिष्यौ। **तनय**ग्रहणं द्वितीयसंबन्धिप्रदर्शनार्थम्। अन्यथा मातरमित्युक्ते मातरं पुत्राद्भिन्दतो दण्डः स्यान्न पुत्रं मातुः। यद्यपि भेदनमुभयाधिष्ठानं तथापि यन्मुखेन क्रियते स एव भेदयितव्य इति व्यवहारः। तत्रासति तनयग्रहणे प्रदर्शनार्थं यदैव मातरमाह—'न एष ते पुत्रो भक्तो दुःशीलश्च' इत्येवमादिना मातरमाक्षारयति तदैव स्यान्न तु पुत्रं यथा दर्शितम्।

अन्ये तु चित्तकदर्थनोत्पादनम् 'आक्षारण'माहुः। प्रवक्ष्यामि धनं श्रुतं वाऽर्जयितुं तीर्थाद्युपसेवितुं तत्प्रवासशङ्कया च मनसि तृष्णया पीडा भवतीति तथा न कर्तव्यम्।

यावद्गुरवस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेन्न तैरननुज्ञात इति च। यत्तु विद्वेषणादिना चित्ते खेदोत्पादनं तत्र शता न मुच्यते, 'प्रतिरोद्धा गुरोरिति' महत्वाद्दोषस्य।

जायाया अनुकूलायाः पुत्रवत्याः 'करोत्यन्यं विवाहम्' इत्येत**दाक्षारणम्**। एवं गुणवतः पुत्रस्याकारणेऽन्यकरणम् ।।

गुरोः सर्वप्रकारं पन्थानमत्यजतः शतं दण्डः ।। २७५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अक्षारयन्नगम्यमैथुनेनाभिशंसन्। जायासंनिधेर्जायायाएव मातरं पितरं चेति ग्राह्यम्। तेनात्र जायां प्रति तव माता स्वैरिणीत्यादिरभिशापो द्रष्टव्यः ।। २७५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। आक्षारितः क्षारितोऽभिशप्तइत्याभिधानिकाः मात्रादीन्पातकादिनाऽभिशपन्गुरोश्च पन्थानमत्यजन् दण्ड्यः। भार्यादीनांगुरुलघुपापाभिशापेन दण्डसाम्यं समाधेयम्। मेधातिथिस्तु आक्षारणं भेदनमित्युक्त्वा मातृपुत्रपित्रादीनां परस्परभेदनकर्तुर्दण्डविधिरितिव्याख्यातवान् ॥ २७५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। मात्राद्यभिशप्तस्तुदण्डमाह मातरमिति। आक्षारयन् पातकादिना अभिशप्तं कुर्वन् शतं दाप्यः। तथा गुरोराचार्यस्य पन्थानमददज्जनो दण्ड्यः। क्षारणमेतेषामन्योन्यंवैमत्यं तत्कर्तुर्दण्डइतिमेधातिथिः ॥ २७५ ॥

(५) **नन्दनः**। आक्षारयन्वाक्पारुष्येण क्रोधयन्मातापितृगुरुज्येष्ठभ्रातृणामाक्षारणे सकृत्कृतेऽन्येषामसकृत्कृते दण्डः अतुल्यकक्षित्वात् ॥ २७५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। मातरंवा पितरंवा जायांवा जायाशब्दसन्निधानात्तस्या एव पितरौ ग्राह्यौ भ्रातरं तनयं गुरुं वाऽऽक्षारयन् अगम्यागमनेन निन्दन् सः शतंदाप्यः च पुनः गुरोःपन्थानं अददत् शतंदाप्यः ॥ २७५ ॥

(७) **मणिरामः**। अक्षारितं पातकादिनाऽभिशपन्। दाप्यः दंड्यः आक्षारिकोभिशप्त इत्याभिधानिकाः ॥ २७५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **मातरमिति**। क्षारिताक्षारितौ सद्भिरभिशस्तावुदाहृताविति त्रिकाण्डदर्शनात् मातृपितृभार्याभ्रातृपुत्रगुरूणां महापातकाभिशापमुत्पादयन् गुरोश्च पन्थानमददच्छतं दण्ड्यः। अभ्यासाऽनभ्यासाक्षारणेन वात्र मातृभार्यादीनां दण्डस्य विषमसीमाकरणं परिहरणीयम् ॥ २७५ ॥

(९) **भारुचिः**। अत्रश्लोके जायातनयग्रहणमर्थवादार्थम्। कथं कृत्वा भार्यापुत्रयोरेव ताव(द ? दा)क्षारणेऽयमस्य दण्डो भवितुमर्हति। प्रागेव मात्रादीनां यस्मान्मात्रादिभि ••• नत्वं भार्यापुत्रयोः। एतस्मात्सामर्थ्यादिदमेवं व्याकरणीयम्। भ्राता च यदि कनीयान् तत्र एषैवात्र व्याख्या। अथ तु ज्येष्ठस्य ग्रहणं ततो गुरुत्वादस्य विध्यर्थतैव न्याय्या। एवं च सति गुरुग्रहणं विद्यांगुरुप्रभृतीनामवरोधार्थम्। गुरुग्रहणादेव च मात्रादिग्रहणे सिद्धे पृथगुपदेशस्तेषामादरार्थो विज्ञेयः। इदं चान्यदर्थान्तरविषयं वाक्यान्तरम्। समानदण्डत्वादस्मिन्नेवावधावुच्यते—पन्थानं चाददद्गुरोः सर्वप्रकारस्य अनाक्षारयन्नप्ययमेव दण्ड एकः कार्यः स्यात्। एतस्मादेव च गुरुग्रहणात् पूर्वत्र भार्यापुत्रग्रहणमर्थवादार्थं सुतरां विज्ञायते (येन ? यौ)समानदण्ड एव व्यभिचारान्तरौ श्रूयेते। आक्षारणं च प्रतरद्वाक्पारुष्यविशेष आक्रोशादिः। अन्यस्त्वाह—अनृतेन भेदनमाक्षारणम्। अनृताभिशंसनं त्वपरः। तत्त्वे तदुभयं प्रकरणविरोधाद्विचारणीयं युक्तायुक्तत्वेन ॥ २७५ ॥

**ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता ॥**
**ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः ॥ २७६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां** परस्पराक्रोशे कृते तयोरयं **दण्ड** इत्येवमध्या-

हारेण योजना। तादर्थ्ये चतुर्थी वा। तद्विनयाय दण्डः कर्तव्यः। पातकस्याक्रोशे कृतेऽयं दण्डो दुःखोत्पादनरूपे ॥ २७६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यामन्योन्यमाक्षारणे ॥ २७६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां परस्परं पतनीयाक्रोशे कृते दण्डशास्त्रज्ञेन राज्ञा दण्डः कार्यः दण्डमेव विशेषेणाह ब्राह्मण क्षत्रियाक्रोशिनि प्रथमसाहसः कार्यो ब्राह्मणाक्रोशिनि पुनः क्षत्रिये मध्यम साहसः ॥ २७६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यामन्योन्यं पतनीयाक्रोशे कृते दण्डमाह ब्राह्मणेति। विजानता दण्डशास्त्रज्ञेन राज्ञा दण्डःकार्यः। तयोर्व्यवस्थानमाह। ब्राह्मणे क्षत्रियाक्रोशिनि पूर्वः सार्धशतत्रयम्। विप्राक्रोशिनिराजनि मध्यमः पञ्चशतानि ॥ २७६ ॥

(५) **नन्दनः**। वर्णानां स्वजातिविषये वाक्पारुष्यातिशये दण्डं श्लोकद्वयेनाह ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यान्त्विति। विजानता राज्ञा। ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यांवाक्पारुष्यातिशये कृते तयोर्दण्डौ कार्यावित्यर्थः। तावुत्तरार्द्धेनोक्तौ ॥ २७६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां अन्योन्याक्षारणे पतनीये कृतः विजानता पुंसा दण्डःकार्यःपूर्वसाहसःप्रथमसाहसः ॥ २७६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यामिति**। ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यामितरेतरं पतनीयाक्रोशे कृते सति तयोः शास्त्राभिजनदेशजात्यादिनाऽयं दण्डः कर्तव्यः। क्षत्रियाक्रोशे सति ब्राह्मणे प्रथमसाहसः कर्तव्यः। ब्राह्मणाक्रोशे निपुणः क्षत्रिये मध्यमसाहसः ॥ २७६ ॥

**विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः ॥**
**छेदवर्जं प्रणयनं दण्डस्येति विनिश्चयः ॥ २७७ ॥**

[ **पतितं पतितेत्युक्त्वा चौरं चौरेति वा पुनः।**
**वचनात्तुल्यदोषः स्यान्मिथ्याद्विर्दोषतां व्रजेत् ॥ १ ॥** ]‡

(१) **मेधातिथिः**। **एवमेव** प्रथममध्यमौ साहसावित्यतिदिश्यते। तेनैव क्रमे वैश्यस्य शूद्राक्रोशे प्रथमः शूद्रस्य वैश्याक्रोशे मध्यमः।

**छेदवर्जं दण्डस्य प्रणयनमिति**। 'एकजातिर्द्विजातिम्' (२७०) इत्यनेन जिह्वाछेदे प्राप्तं निवर्तयति।

**स्वजातिं प्रतीति**। नैवं मन्तव्यं समानजातीयं प्रतीति—किं तर्हि याऽत्र जातिरूपात्ता वैश्यशूद्राविति स्वग्रहणम्। श्लोकाभिप्रायः—परस्पराक्रोशे यावत् स्वजातिमिति पूर्वत्रापि संबन्धनीयम्।

**प्रणयनं** प्रवर्तनम्।

क्षत्रियस्य वैश्यशूद्राक्षारणे प्रथमार्द्धसाहसः। एवं ब्राह्मणस्य वैश्यशूद्रयोः ॥ २७७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विट्शूद्रयोरेवमेवान्योन्याक्षारणे प्रथमोवैश्यस्य शूद्रस्य मध्यमः। तयोस्तुस्वस्वजात्याक्षारणे छेदवर्जं तत्तज्जात्युचितदण्डमात्र प्रणयनम्। तेनार्थाद् ब्राह्मणक्षत्रियाक्षरणे छेद एवेत्यर्थः ॥ २७७ ॥

[ **सर्वज्ञनारायणः**। पतितमिति। पतितं पातकिनम्। उक्त्वाआक्रोशबुद्धचा तुल्यदोषोऽतस्तुल्यो दण्डः। एवंद्विर्दोषतां द्विगुणदोषतामित्यादि ॥ वाक्पारुष्यम् ॥ १ ॥ ]

(३) **कुल्लूकः**। वैश्यशूद्रयोरन्योन्यजातिं प्रति पतनीयाक्रोशे ब्राह्मणक्षत्रियवद्वैश्ये शूद्राक्रोशिनि प्रथमसाहसः शूद्रे वैश्याक्रोशिनि मध्यम साहस इत्येवं रूपं दण्डस्य प्रणयनं जिह्वाच्छेदरहितं यथावत्कर्तव्यमिति शास्त्रनिश्चयः एवं चेकजातिर्द्विजातींस्त्विति प्रागुक्तजिह्वाच्छेदो वैश्ये निवारितो ब्राह्मणक्षत्रियाक्रोशविषय एवावतिष्ठते ॥ २७७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तदण्डमन्यत्रातिदिशति विडिति। शूद्राक्रोशिनि वैश्ये प्रथमः। वैश्याक्रोशिनि शूद्रे मध्यमः। स्वजातिप्रति संनिधेःस्वस्य जातिर्यदनन्तरं तत्स्वजातिस्तेन वैश्यः क्षत्रियमाक्रुश्य प्रथमसाहसं दद्यात्। वैश्यमाक्रुश्य शूद्रो मध्यम साहसं दद्यात्। अन्यथा समवर्णे द्विजातीनामिति वैश्यस्य द्वादशस्योक्तत्वात्तत्त्वतः परिहासं विना छेदवर्जं जिव्हाछेदंविना। अतो ब्राह्मण क्षत्रियाक्रोशिनि शूद्रे जिव्हाछेदः प्रथमोक्तः पर्याप्तः ॥ २७७ ॥

(५) **नन्दनः**। एवमेवेति मध्यमसाहसातिदेशः स्वजातिं प्रतिवाक्पारुष्य इति शेषः। अपराद्धेऽपि स्वजातिप्रतीत्यनुषङ्गः। शूद्रस्येति च विपरिणामः तेनायमर्थः शूद्रस्य जिह्वाछेदवर्जनं दण्डप्रणयनं स्वजातिविषये न द्विजातिविषय इति ॥ २७७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। वैश्यशूद्रजातिं प्रति तत्त्वतःक्ष्वेडं वर्जयेत्। प्रणयनपरिहासवर्जं प्रणयनं दण्डस्य इति विनिश्चयः दण्डः कार्यः ॥ २७७ ॥

[ **रामचन्द्रः**। पतितमिति। पतितंप्रति त्वंपतित इत्युक्त्वा चौरं प्रति त्वंचोर इत्युक्त्वा वा वचनात्तत्तुल्यदोषः स्यात् ॥ १ ॥ ]

(७) **मणिरामः**। ब्राह्मणे क्षत्रियाक्रोशिनि पूर्वः साहसः प्रथमसाहसः सार्द्ध द्विशतपणात्मकः। क्षत्रिये ब्राह्मणाक्रोशिनि मध्यमः मध्यमसाहसः। एवंरूपं दंडस्य प्रणयनं जह्वाछेदरहितं तत्वतः यथावत्कर्तव्यमिति शास्त्रस्यनिश्चयः। एवं चानेन पूर्वं वैश्याक्रोशे शूद्रस्य प्राप्तं जिह्वाछेदनं निवर्त्यते ॥ २७७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **विटशूद्रयोरिति**। वैश्यशूद्रयोः परस्परजातिं प्रति पतनीयाक्रोशे ब्राह्मणक्षत्रियवत्। प्रथम मध्यम साहसात्मकं जिह्वाच्छेदवर्जं यथावद्दण्डस्य करणम्। एकञ्च ब्राह्मणक्षत्रियाक्रोशे। एवं शूद्रस्य जिह्वाछेदनमवतिष्ठते ॥ २७७ ॥

(९) **भारुचिः**। अयमपर उपदेशसामर्थ्याद्विकल्पार्थो विधिरुच्यते। यदा ब्राह्मणः क्षत्रियमाक्रोशति तदा तस्य पूर्वसाहसः। यदा च क्षत्रियो ब्राह्मणं तदा तत्र मध्यमः साहसः। एवं क्षत्रिय वैश्ययोस्तथा वैश्य शूद्रयोः। एवं च जातिं प्रत्यन्योत्यं दण्डनियमः कर्तव्यः। एवं च सति शूद्रस्य जिह्वाच्छेदनवर्जं दण्डनिपातनमुक्तं भवति ॥ २७७ ॥

**एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः ।।**
**अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ।। २७८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **दण्डपारुष्यं** दण्डेन दुःखोत्पादनम्। यथा कण्टकादेः पुरुषस्य स्पर्शः पीडाकर एवं पीडाकरत्वसामान्यात्पारुष्यशब्दप्रयोगः। तत्र **निर्णयो** दण्डविशेषनिर्णयः। पूर्वकरणोपसंहारोपन्यासार्थः श्लोकः ।। २७८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तत्त्वतोधर्मतः ।। २७८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। एषोऽनन्तरोक्तो वाक्पारुष्यस्य यथावद्दण्डविधिरुक्तोऽनन्तरं ताडनादेर्दण्डपारुष्यस्य निर्णयं वक्ष्यति ।। २७८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। वाक्पारुष्य दण्डमुपसंहरन्कायकृताहिंसने तं प्रतिजानीते एष इति ।। २७८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **एष इति**। एषोऽनन्तरो वाक्सम्बन्धिनः पारुष्यस्य दण्डप्रकारो यः प्रागुक्तोऽस्मादनन्तर हस्तकाष्ठ शस्त्रादि सम्बन्धिनः पारुष्यस्य दुःखोत्पादनहेतोस्ताडनहिंसनादेर्दण्डनिर्णयं वक्ष्यामि ।। २७८ ।।

(९) **भारुचिः**। अयमुक्तस्य विशेषप्रपञ्चस्य सामान्यनिर्देशः। श्रेष्ठं द्विजातिमन्त्य ··· निदर्शनाच्च पूर्ववर्णस्य हिंसायामुत्तरेणाप्येतद्विज्ञेयम्। न केवलं शूद्रस्य। पूर्वापराधे अस्य सामान्यश्लोकस्य चत्वारो वक्ष्यमाणाः श्लोकाः प्रपञ्चाः ।। २७८ ।।

**येनकेनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः ।।**
**छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ।। २७९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अन्त्यजः** शूद्रश्चण्डालपर्यन्तः। **श्रेष्ठः** त्रैवर्णिकः। **तं चेद्धिंस्यादङ्गेन केनचित्** साक्षाद् दण्डखड्गादिप्रहरणव्यवधानेन वा—**तदङ्गमस्य** छेत्तव्यम्। 'हिंसा' च क्रोधेन प्रहरणं ताडनेच्छया हस्ताद्युद्यम्य वेगेन निपातनम्, न मारणमेव। **तत्तदिति** वीप्सा। अङ्गमिति छेत्तव्यमिति चैकत्वविवक्षा मा विज्ञायि। तेनानेकेनाङ्गेन प्रहरणेऽनेकस्यैव छेदः। **अनुशासनमुपदेशः**। मनुकृतैषा मर्यादा। **अनुशासनग्रहणं** कारुणिकस्य राज्ञः प्रवृत्त्यर्थः ।। २७८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। हिंस्यात् पीडयेत्। अन्त्यजः शूद्रः ।। २७९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अन्त्यजः शूद्रो योन केनचित्करचरणादिनाङ्गेन साक्षाद्दण्डादिनाऽव्यवहितेन द्विजाति प्रहरेत्तदेवाङ्गमस्यछेत्तव्यमित्ययं मनोरुपदेशः मनुग्रहणमादरार्थम् ।। २७९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तमेवाह येनेति द्वाविंशत्या। केनचित् पाण्याद्यन्यतमेन। **अन्त्यजः शूद्रः** ।। २७९ ।।

(५) **नन्दनः**। अथ दण्डवाक्पारुष्यमाह येनकेनचिदिति । श्रेयांसं स्वस्यपूर्ववर्णं अन्त्यजस्तस्मादपरवर्णः ।। २७९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अन्त्यजः शूद्रः श्रेष्ठं विप्रं येनकेनचित् अंगेन हिंस्यात् करेण पादेन वा तत्तदेव अंगं अस्य शूद्रस्य छेत्तव्यं तन्मनोःअनुशासनम् ।। २७९ ।।

(७) **मणिरामः**। अंत्यजः शद्रः ।। २७९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **येनेति**। अन्त्यजः शूद्रो येन केनचिद्धस्तपादादिना वा न साक्षा-द्दण्डादिव्यवहितेन वा द्विजमेव प्रहरेत्तत्तदङ्गमेवाऽस्य छेदनीयमित्येवं मनुसम्बन्धी उपदेशो मनुग्रहणमादरार्थमस्यैवोत्तरञ्च ।। २७९ ।।

**पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति ।।**
**पादेन प्रहरन् कोपात्पादच्छेदनमर्हति ।। २८० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **उद्यम्योत्क्षिप्यैव** कोपात्ताडनेच्छोस्तदङ्गमनिपातयतोऽस्य पाणिः छेत्तव्यः। दण्डग्रहणं समानपीडाकरस्य हिंसासाधनस्योपलक्षणार्थम्। तेन मृदुशफादावन्यो दण्डः। **पादेन प्रहरन्निति**। अत्राप्युद्यम्येत्यपेक्षितव्यम्। अवगुरतोऽप्येष एव ।। २८० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उद्यममात्रेत्वाह पाणिमिति। प्रहरन् प्रहारार्थमुद्यमं कुर्वन् प्रहरंश्च ।। २८० ।।

(३) **कुल्लूकः**। अस्यैवोत्तरप्रपञ्चः पाणिमिति प्रहर्तुं पाणिं दण्डं वोद्यम्य पाणिच्छेदं लभते पादेन कोपात्प्रहरणे पादच्छेदं प्राप्नोति ।। २८० ।।

(४) **राघवानन्दः**। येनेत्यस्य विवरणं पाणिमिति पञ्चभिः। दण्डः लगुडादिः। अस्थिभेदनपर्यन्तं कोपादित्यनुवर्तते तदभावे वाग्दण्डादिः ।। २८० ।।

(५) **नन्दनः**। उक्तमर्थं चतुर्भिः श्लोकैः प्रपञ्चयति। पाणिमुद्यम्येति पादेन प्रहरन्पादप्रहारहेतोः पादमुद्यम्येत्यर्थः ।। २८० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। पाणिं हस्तं वा उद्यम्य हिंस्यात्तर्हि पाणिछेदनं अर्हति ।। २८० ।।

(७) **मणिरामः**। तदेवस्पष्टयति। पाणिमिति। दंडं वा पाणिना मारणार्थं मुद्यम्य ।। २८० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **पाणिमुद्यम्येति**। हस्तं दण्डं वावगूर्य हस्तच्छेदनयोग्यो भवति। पादेन क्रोधेन प्रहरन् पादच्छेदनार्हो भवति ।। २८० ।।

(९) **भारुचिः**। एवं च सति न मारणमेव हिंसा। किं तर्हि अनेकोपायसाध्यं च परदु···सेति। अयन्त्व··· द्विजातीनामेवान्योन्यव्यतिक्रमे धनदण्ड उच्यते पूर्ववद्-दण्डस्य वैकल्पिकः। एतेषामपत्यल्यापराधोऽपेक्षया ।। २८० ।।

**सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ।।**
**कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वाऽस्यावकर्तयेत् ।। २८१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **उत्कृष्टो** ब्राह्मणो जातितो दौःशील्यादवकृष्टोऽपि। इतरे वर्णा औत्तराधर्येण परस्परापेक्षयोत्कृष्टाश्चावकृष्टाश्च। तत्र **अवकृष्टज** इति जनिना जन्मावकर्ष उपात्तः। तत्संनिधानादुत्कर्षोऽपि जन्मनैव। जन्मना च निरपेक्षोत्कर्षो ब्राह्मणस्य नापकर्षः। तेन शूद्रस्यायं ब्राह्मणेन सहैकमासनमारूढवतो दण्डः। **कटिः** श्रेणी। तत्र कृतचिह्नः। अङ्कविधौ च न सुधाकुंकुमादिना चिह्नकरणमात्रमपि तु दण्डख्यापनार्थम्—अतिक्रमाद्विभियुरिति। तेन देशान्तरे यदनपायि तच्चिह्नमायसो लेखनादुपदिश्यते। तथा च वक्ष्यति "उद्वेजनकरैर्दण्डैश्चिह्नयित्वेति" (३५२)। राष्ट्राच्च निष्कास्यः **स्फिक्** श्रोण्येकदेशः। सव्यो दक्षिणश्च। तं **चावकर्तयेत्**। चिह्नेन विकल्पविधानात्तावन्मात्रश्छेदो न सर्वस्य स्फिजः। **अभिप्रेप्सुरिति**। च नेच्छामात्रेण किंतर्हि प्राप्तवत एव। इच्छाया शक्यापह्नवत्वाद्दण्डस्य च महत्त्वात् ।। २८१ ।।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उत्कृष्टस्योत्तमजातेः। अपकृष्टः क्षत्रियादिः। कट्यामिति क्षत्रविशोः शूद्रस्य च तदुभयस्य हास्येच्छायाम्। स्फिचमिति शूद्रस्य ब्राह्मणहास्येच्छायाम् ।। २८१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणेन सहासनोपविष्टः शूद्रः कट्यां तप्तलोहकृतचिन्होपदेशो निर्वासनीयः स्फिचंवास्य यथा न म्रियते तथा छेदयेत् ।। २८१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। सहासनं सहोपवेशनम्। उत्कृष्टस्य द्विजातेः। कृताङ्कः कृतचिह्नः। निर्वास्योदेशादेव। स्फिचं कटिं यथा न म्रियते तथा छेदयेत् ।। २८१ ।।

(५) **नन्दनः**। गुणोदोषवशाद्विकल्पः ।। २८१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अवकृष्टजः शूद्रः उत्कृष्टस्य महासनं अभिप्रेप्सुः ईप्सुः इच्छेत्सः शूद्रः कट्यां कटिप्रदेशे कृताङ्कः कृतलाञ्छनः निर्वास्यः निष्कासनीयः। च पुनः अस्य स्फिचं अवकर्तयेत् ।। २८१ ।।

(७) **मणिरामः**। अपकृष्टजं कटिप्रोथं ।। २८१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **सहासनमिति**। ब्राह्मणेन सहैकस्मिन्नासने निकृष्टजन्मा शूद्र उपविशन् कट्यां कृततप्तायःस्थिरचिन्हो देशान्निर्वासनीयः। **स्फिजाख्यं वा श्रोण्यवयवोकर्तनं कुर्यात्** ।। २८१ ।।

**अवनिष्ठीवतो दर्पाद् द्वावाष्ठौ छेदयेन्नृपः ।।**
**अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ।। २८२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। मूत्रेणावसिंचतोऽभिमुखं वा तदवमानार्थं क्षिपतोऽसत्यपि सम्पर्शे-**ऽवमानयते मूत्रेणेति निष्कर्तव्यः**। **समानफलत्वाद्वेतस्यपि दण्डोऽयम्**। **'निष्ठीवनं' नासिका-**

स्यस्रावः। तस्य घ्राणेन क्षेपे नासापुटच्छेदः-"येनाङ्गेने"त्युक्तत्वात्। 'शर्धनं' कुत्सितो गुदशब्दः। दर्पान्न प्रमादात्॥ २८२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अवनिष्ठीवतः उत्तमस्योपरिनिष्ठीवतः। एवमत्र उपरिमूत्रणम्। अवशर्धनं कुत्सितगुदशब्दकरणं तदुपरि॥ २८२॥

(३) **कुल्लूकः**। दर्पेण श्लेश्मणा ब्राह्मणमवमानयतः शूद्रस्य राजा द्वावोष्ठौ छेदयेत् मूत्रप्रक्षेपेणापमानयतो मेढ्रं शर्धनं कुत्सितो गुदशब्दः तेनावमानयतोदर्पान्न प्रमादाद्गुदंछेदयेत्॥ २८२॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच। अवनिष्ठिवतो द्विजादौ कफादीन्यस्यतः ओष्ठौ छेदयेदेव। मेढ्रं लिंगम्। अवशर्धनं कुत्सितो गुदशब्दस्तत्कुर्वतः॥ २८२॥

(६) **रामचन्द्रः**। दर्पात् अवनिष्ठीवतः द्विजोपरि निष्ठीवनं कुर्वतः द्वावोष्ठौछेदयेत्॥ २८२॥

(७) **मणिरामः**। अवनिष्ठीवतः ब्राह्मणो परीति सर्वत्रज्ञेयं॥ २८२॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अवनिष्ठीवनादिति**। निष्ठीवनेन श्लेष्मणां **मर्षेण श्लेष्माणं** वमयन् शूद्रस्य द्वावप्योष्ठौ छेदयेदेवं मूत्रेणाऽवमानयतो लिङ्गमधमाङ्गध्वनिनाऽवमानयतः पायुं छेदयेत्॥ २८२॥

**केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन्॥**
**पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च॥ २८३॥**

(१) **मेधातिथिः**। दर्पादित्यनुवर्तते। परिभवबुद्धया केशेषु ब्राह्मणं **गृह्णतः** शूद्रस्य **हस्तौ छेदयेत्**। द्विवचनमेकेनापि द्वाभ्यां तुल्यपीडाकर उभयच्छेदो नैकस्यैव। **दाढिका** श्मश्रु। अन्यदपि यदङ्गं गृह्यमाणं ग्रीवादितुल्यपीडाकरं तत्र सर्वथाप्ययमेव दण्डः। **अविचारयन्**। पीडा कियत्यस्य गृहीतस्य संजाता महती स्वल्पा वेत्येतदनुबन्धश्लोकप्राप्तं विचारणं निवार्यते। ग्रहणमात्रे दण्डः॥ २८३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दाढिकायां श्मश्रुणि। एतत्सर्वमुत्तमेऽधमेन क्रियमाणम्॥ २८३॥

(३) **कुल्लूकः**। दर्पादित्यनुवर्ततेऽहंकारेण केशेषु ब्राह्मणं गृह्णतः शूद्रस्य पीडाऽस्य जाता न जातावेत्यविचारयन्हस्तौ छेदयेत् पादयोः श्मश्रुणि च ग्रीवायां वृषणे चहिंसार्थं गृह्णतो हस्तद्वयच्छेदमेव कुर्यात्॥ २८३॥

---

(२८३) णेषुच=णेषुवा (क)

(४) **राघवानन्दः**। किंच केशेष्विति। दाढिकायां श्मश्रुणि। हिंसार्थं पादादिचतुष्टये नरं गृह्णतो हस्तौ छेदयेदित्यन्वयः। वृषणं फलकद्वयम्॥ २८३॥

(५) **नन्दनः**। पादयोरित्यादिषु गृह्णत इत्येव॥ २८३॥

(७) **मणिरामः**। दर्पादित्यनुवर्तते। ब्राह्मणस्यकेशादौ गृह्णतः शूद्रस्य हस्तौ छेदयेत्। घंटिकायां गलाग्रे ॥ २८३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **केशेष्विति**। केशपादश्मश्रुग्रीवावृषणानां चान्यतमस्माद्-ब्राह्मणं शूद्रस्य हस्ताभ्यामाकर्षयतो हस्तावलम्बमानो राजा छेदयेत् ॥ २८३ ॥

**त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः ॥**
**मांसभेत्ता तु षण्णिष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥ २८४ ॥**

**द्विजातीनामयं परस्परापराधे। शूद्रस्य तु शूद्रापराधे उच्यते।**

(१) **मेधातिथिः**। यः केवलामेव त्वचं भिन्द्याद्विदारयेन्न लोहितं दर्शयेत्तस्य **शतं दण्डः**। तावदेव लोहितदर्शने। यद्यपि त्वग्भेदमन्तरेण न लोहितं दृश्यते तथाप्यधिकापराधादधिकदण्डे प्राप्ते शतवचनं नियमार्थम्। अन्ये तु कर्णनासिकादेरपि स्रवति शोणितं बहिस्त्वग्भेदेऽपि तदर्थमुच्यत इत्याहुः। तदयुक्तम्। अन्तर्भेदे हि महत्त्वान्महादण्डो युक्तः। तस्माद्यत्रैवत्स्रवति शोणितं तत्र शतम्। शिरोभेदे तु मांसवत्।

**निष्कशब्दः** सुवर्णपरिमाणवाचीत्युक्तम्।

**प्रवास्योऽस्थनां भेदकः** तत्प्रयोजक इति। घञन्तेन समासं कृत्वा तं करोतीति पठितव्यः —अस्थिभेदकृदिति।

'प्रवासन'मर्थशास्त्रप्रवृत्त्या मारणम्, निर्वासनं वा। दण्डविधौ ह्यर्थशास्त्रश्रवणं दृश्यते। तथाहि 'दशबन्धमिति' बार्हस्पत्य औशनस्ये च प्रयोगः। निर्वासनं ब्राह्मणस्य नान्येषाम् ॥ २८४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। त्वग्भेदक इत्यादिसमावकृष्टविषयापराधकरणे। शतं पणान्। षट् निष्कान् दीनारान्। प्रवास्यो देशान्निर्वास्यो गृहीतसर्वस्वः। अस्थिभेदकोऽस्थिभङ्ग-प्रहारकृत् ॥ २८४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। चर्ममात्रभेदकृत्समानजातिर्न शूद्रो ब्राह्मणस्य दण्डलाघवं पणशतं दण्डनीयः तथा रक्तोत्पादकोपि पणशतमेव दण्ड्यः मांसभेदी षण्णिष्कान् दाप्यः अस्थि-भेदकस्तु देशान्निर्वास्यः ॥ २८४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। त्वग्भेदक इत्ययं श्लोकः शूद्रस्य समानजातिविषयो दण्डस्य लाघवादिति ॥ २९४ ॥

(५) **नन्दनः**। एवं तावदसमजातिविषये दण्डमाह त्वग्भेदक इति। शतं पणानाम् ॥ २८४ ॥

---

(६) **रामचन्द्रः**। त्वग्भेदको द्विजः शतं दण्डयः। च पुनः शोणितस्य च दर्शकः **दण्ड्यः**। **एषां संभेत्ता दंड्यः** अस्तिभेदको गृहीतसर्वस्वः प्रवास्यः ॥ २८४ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** त्वग्भेदक इति। चर्ममात्रभेदकृत्समानजातिः न तु शूद्रो ब्राह्मणस्य दण्डलाघवात्पणशतं दण्डनीयः। तथा रुधिरोत्पादी शतमेव दण्ड्यो मांसभेदकृत् षड् निष्कान् दण्ड्योऽस्थिभेदी देशान्निर्वास्यः ॥ २८४ ॥

**वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगो यथा यथा ॥**
**तथा तथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ॥ २८५ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** वनस्पतिग्रहणं सर्वस्थावरप्रदर्शनार्थम्। फलपुष्पपत्रच्छायादिना महोपभोग्यस्य वृक्षस्य हिंसायां दण्ड उत्तमसाहसः, मध्यमस्य मध्यमो निकृष्टस्य प्रथमः। तथा स्थानविशेषो द्रष्टव्यः—पत्रच्छेदः फलच्छेदः शाखाछेद इति। फलानामपि विशेषो महार्घता दुष्प्रापता। तथा स्थानविशेषोऽपि द्रष्टव्यः—सीम्नि चतुष्पथे तपोवन इति ॥ २८५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** उपभोगो यथाधिकः कस्यचिच्छायामात्रेणान्यस्य पुष्पैरन्यस्याम्रादेः फलैरित्यादि ॥ २८५ ॥

(३) **कुल्लूकः।** वृक्षाद्युद्भिदां सर्वेषां येन येन प्रकारेणोपभोगः फलपुष्पपत्रादिनोत्तममध्यमाधमरूपो भवति तथा तथा हिंसायामप्युत्तमसाहस्रादिर्दण्डो विधेय इति निश्चयः। तथा च विष्णुः फलोपभोगद्रुमच्छेदि तूत्तमं साहसं पुष्पोपभोगद्रुमच्छेदी मध्यमं वल्लीगुल्मलताछेदी कार्षापणशतं तृणच्छेद्येकं कार्षापणं च पण एवमनुनाप्युक्तो वेदितव्यः ॥ २८५ ॥

(४) **राघवानन्दः।** नृकायदण्डप्रसंगेन स्थावरस्यापि। 'योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः। स्थाणुमन्येऽनुसंयन्तीति श्रुतेः। तस्मात्पश्यन्ति पादपा इति स्मृतेस्तेषां कायाभिमानित्वेन हिंस्यत्वात्तत्कर्तुः प्रथमसाहसादिदण्डो ज्ञेय इत्याह वनस्पतीनामिति। तथा च विष्णुः॥ फलोपभोगद्रुमच्छेत्ता तूत्तमसाहस पुष्पोपभोगच्छेदी कार्षापणशतं तृणच्छेद्येकपणमिति। छेद्यत्रहिंसकः। धारणा शास्त्रमर्यादा॥ २८५॥

(५) **नन्दनः।** वनस्पतीनां स्थावराणां हिंसायामुपभोगगुरुलाघवापेक्षया दण्डः कल्प्यः ॥ २८५ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** हिंसायां छेदनेन इति सर्वत्र धारणा मर्यादा ॥ २८५ ॥

(७) **मणिरामः।** यथा यथा उपभोगः फलपुष्पपत्रादीनां उत्तममध्याधमरूपः तथा तथा हिंसायामपि छेदनेपि दंडः उत्तम साहसादिकार्यः। इदं स्पष्टं विष्णुस्मृतौ। फलोपभोगद्रुमच्छेदीत्तूत्तमं साहसं पुष्पोपभोगी मध्यमं वल्लीगुल्मलताछेदी कार्षापणशतं तृणछेककार्षापणमिति॥ २८५॥

(८) **गोविन्दराजः।** **वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगो यथा यथेति।** छायादानात्मकेन निकृष्ट उपभोगः वनस्पतिवृक्षाणां सर्वेषां येन येन प्रकारेण उपभोगः कुसुम(मा) दानरूपेण मध्यमः फल(ला) दानमात्रोत्कृष्टः तदपेक्षया छेदने दण्डः कार्यः। **छायामात्रोपभोगिनि** तदादौ स्वल्पो दण्डः **पुष्पोपभोगिनि मल्लिकादौ मध्यमः फलोपभोगिनि आम्रादावुत्कृष्टः ॥ २८५ ॥**

**मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति ॥**
**यथा यथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथा तथा ॥ २८६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यदुक्तं त्वग्भेदक इति तस्य विशेषोऽयम्। असति मनुष्यग्रहणे प्राणिमात्रहिंसाविषयत्वेऽस्य श्लोकस्य महापशूनां क्षुद्राणां च पशुपक्षिमृगाणां तुल्यदण्डता मा भूदिति तदर्थमिदम्।

**यथा यथा महद्दुःखमिति**। स्वल्पे भेदने शोणिते च प्राणिनां महत्त्वादल्पत्वे प्रहारस्य। शतादूनोऽपि दण्डः। महति शतादभ्यधिकोऽपि।

अन्ये तु महद्ग्रहणान्महति दुःखे दण्डवृद्ध्यर्थे नाल्पेऽपचयार्थम्। यथाश्रुतमेव तत्र **दुःखाय प्रहृते** दुःखोत्पत्त्यर्थं प्रहारे। प्रमादतस्तु न वृद्धिः। "अनुबन्धं परिज्ञाय" इत्यस्यैव श्लोकद्वयमुदाहरणभङ्ग्या व्याख्येयम् ॥ २८६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दुःखाय न मरणाय ॥ २८६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। मनुष्याणां पशूनां पीडोत्पादनार्थं प्रहारे कृते सति यथा यथा पीडाधिक्यं तथा तथा दण्डमप्यधिकं कुर्यात्। एवं च मर्मस्थानादौ त्वग्भेदनादिषु कृतेषु त्वग्भेदकः शतं दण्ड्य इत्युक्तादप्यधिको दण्डो दुःखविशेषापेक्षया कर्त्तव्यः ॥ २८६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। मनुष्यादीनामपि दुःखतारतम्याद्दण्डतारतम्यमाह मनुष्याणामिति। प्रहृते प्रहारे कृते ॥ २८६ ॥

(५) **नन्दनः**। मनुष्याणां पशूनां च मध्ये कस्मिंश्चिद्दुःखाय प्रहृते सति दुःखतारतम्येन दण्डं कुर्यात् ॥ २८६ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रहृते प्रहारे कृते सति ॥ २८६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **मनुष्याणामिति**। मनुष्याणां पशूनाञ्च पीडोत्पादनार्थं प्रहारे दत्ते सति यथा यथा महती पीडा त्वग्भेदादावपि मर्मभेदनादिना भवति तथा तथा त्वग्भेदकरीं शतं दण्ड्य इत्येवमादितोऽधिकमपि दण्डं कुर्यात् ॥ २८६ ॥

**अङ्गावपीडनायां च प्राणशोणितयोस्तथा ॥**
**समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा ॥ २८७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **अङ्गानामवपीडना** दृढरज्ज्वादिग्रहणसन्धिविश्लेषणादिना। तत्र यावता धनेन पथ्यभिषगौषधादिमूल्येन प्रत्यापत्तिमायाति तावत् पीडितस्य दाप्यः। एवं **प्राणशोणितयोरवपीडनानामिति** समस्तमपि योज्यम्। अथवा **प्राणशोणितयोः** समुत्थानव्ययं दाप्य इति संबन्धः सामर्थ्यादपचितयोरिपि लभ्यते। **समुत्थानं** प्रकृत्यापत्तिः। **प्राणो** बलम्। प्रहारेणास्वस्थस्य भोजनादृते कार्श्याद्युपपत्तौ बलमपचीयते। तत्राङ्गेऽनष्टे प्रत्यागते च यावद्बललाभस्तावत्तदुपयोगि यत्किंचिद् घृततैलादि दापनीयः। एवं शोणिताद्युत्पत्तौ तद्दुर्बलीभूतस्य व्याध्यन्तरं वा प्राप्तस्याप्रकृतशरीरावस्थाप्राप्तेः समुत्थानव्ययं दाप्यः।

न चेत्तद्गृह्णाति तदा तच्च दण्डं च परिपिण्ड्य सर्वं राज्ञे दद्यात् ।। २८७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अङ्गावपीडनमङ्गभङ्गः । व्रणो मांसभेदः । शोणितं त्वग्भेदेन रक्तोत्पादः । समुत्थानं संरोहणं । तद्यावता भवति भग्नादीनां तावत् भग्नाङ्गादिभ्यो दापनीयः । प्राणपदं व्रणपदस्थाने क्वचित्पठ्यते तत्र प्राणो बलं तस्य समुत्थानं प्रागवस्था प्राप्तिः । तथा सर्वं दण्डं प्रागुक्तं यथायोग्यं दण्ड्यः । वेति समुच्चये ।। २८७ ।।

(३) **कुल्लूकः** । अङ्गानां करचरणादीनां व्रणशोणितयोश्च पीडनायां सत्यां समुत्थानव्ययं यावता कालेन पूर्वावस्था प्राप्तिः समुत्थानं संबन्धो भवति तावत्कालेन पथ्यौषधादिना यावान्व्ययो भवति तमसौ दापनीयः अथ तंव्ययं पीडोत्पादकोन दातुमिच्छति तदा यः समुत्थानव्ययो यश्च दण्डस्तमेनं दण्डत्वेन राज्ञा दाप्यः ।। २८७ ।।

(२८७) व्रण [illegible]तयोस्तथा⇒प्राणशोणितयोः (ट, ठ, ड, त, थ)

(४) **राधवानन्दः** । तेषामेव पीडाविशेषनिमित्तं दण्डविशेषमाह अङ्गेति अङ्गानां करचरणादीनाम् । प्राणे निश्वासावरोधने कृते । समुत्थानव्ययं येन व्ययेनौषधादिना समुत्थातुमर्हति तं दातुं नेच्छति तावदेवासौ दाप्यः त्वग्भेदकः शतमित्यनेनोक्तं सर्वं तावदभावे सर्वस्वं देयमित्याह सर्वेति । एतत्तु वधमुद्दिश्य पीडामात्र इति पूर्वस्माद्भेदः ।। २८७ ।।

(५) **नन्दनः** । अङ्गावपीडनायां कृतायां व्रणशोणितयोश्च कृतयोः समुत्थाननामावृत्यावर्त्तितं तदर्थं व्ययं समुत्थानव्ययमपीडिताय राज्ञा विचिकित्सादिहेतोर्दाप्यः अपि च सर्वं दण्डम् । अथवैतस्मिन्निमित्ते यावद्राज्ञः प्रदेयं दण्डात्मकं द्रव्यं तावत्पीडितायापि पीडकाे दाप्यः ।। २८७ ।।

(७) **मणिरामः** । समुत्थानव्ययं दाप्यः यावता कालेन पूर्वावस्थाप्राप्तिसमुत्थानसंबंधो भवति तावत्कालेन पथ्यौषधादिना यावान्व्ययो भवति तावद्द्रव्यमसौ दापनीय इत्यर्थः ।। अथ तं व्ययं दातुं चेन्नेच्छति तदा राज्ञा सर्वं तं व्ययं दंडत्वेन दाप्यः ।। २८७ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । अङ्गावपीडनाच्च घ्राणे शोणितयोस्तथा । समुत्थानव्ययं दाप्यः शतदण्डमथापि वा । अङ्गेनोदरबाहवादीनां येन वस्त्रादिबन्धनादिना पीडनानि कृतानि तथा प्राणस्य वायोर्येन निरोधादिना पीडनानि कृतानि रुधिरस्यापि येन दृढमुष्टिरज्ज्वाद्याकर्षणेन बहिःस्रवणवर्जितमपि पीडनं कृतं सशरीरस्य प्राग्रूपापत्त्युत्पादकमौषधादिव्ययं तस्य राज्ञा दापनीयः । आत्मीयश्च दण्डमसौ समुत्थानव्ययं न गृह्णाति तदा तद्व्ययं दण्डं चोभयमपि दण्डार्थं राज्ञा दापनीयः ।। २८७ ।।

**द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।।**
**स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञे दद्याच्च तत्समम् ।। २८८ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । द्रव्याणि गृहोपकरणाद्यन्यानि वाऽनुक्तदण्डविशेषाणि शूर्पोलूखलघटस्थालीपिठरादीनि । तेषां 'हिंसा' प्राग्रूपनाशः सत्यपि कार्यक्षमत्वे । ज्ञानतोऽज्ञानत इति प्रमादकृते बुद्धिपूर्वे चाविशेषेण हिंसनात् तस्य द्रव्यस्वामिनो जनयेत्परितोषं

तद्रूपान्यदानेन मूल्येन प्रणयेन वा। **राज्ञे** तु द्रव्यमूल्यं द्रव्यं वा **दद्यात्**। अस्य क्वचिदपवादः ॥ २८८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। हिंस्यात् विनाशभङ्गादिना। तुष्टिमुत्पादयेत् वाचापि। तत्समं तन्मूल्येन तुल्यं दण्डम्। ज्ञानतोऽज्ञानतस्त्वर्धमित्यर्थसिद्धत्वान्नोक्तम्। तुष्टयुत्पादने तु न विशेष इति तदपेक्षया ज्ञानतोऽज्ञानत इत्युक्तम् ॥ २८८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। द्रव्याण्यनुक्तविशेषदण्डानि कटकानि ताम्रघटादीनि यो यस्य ज्ञानादज्ञानाद्वा नाशयेत्स तस्य द्रव्यान्तरादिना तुष्टिमुत्पादयेत् राज्ञश्च विनाशितद्रव्यसमं दण्डं दद्यात् ॥ २८८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। द्रव्यनाशेपि हिंसाविशेषोऽतस्तत्रापि स्वामिनो मूल्यद्रव्यादिना तुष्टिं विदधदपि राजकीय दण्डमर्हतीत्याह द्रव्याणीति। तुष्टिं प्रणिपातेन धनेन वा। राज्ञस्तु तत्समं नाशितद्रव्यमूल्यसमं दद्यात् ॥ २८८ ॥

(५) **नन्दनः**। द्रव्याणि वस्त्रादीनि तुष्टिमुत्पादयेत्तदा द्रव्यदानादिना। तत्सम हिंसितद्रव्यसम अज्ञानतो हिंसायां तुष्टिर्ज्ञानतो हिंसायां तुष्टिश्च राज्ञे तत्सम द्रव्यदान च॥ २८८॥

(६) **रामचन्द्रः**। द्रव्याणि वस्तूनि यो यस्य हिंस्यात् ज्ञानतः पूर्णदण्डः कार्यः। अज्ञानतः अज्ञानपूर्वके नाशे अर्धदण्डः ॥ २८८ ॥

(७) **मणिरामः**। द्रव्याणि अनुक्तविशेषदंडानि ताम्रघटादीनि। हिंस्यात् नाशयेत् ॥ २८८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **द्रव्याणीति**। चर्मचार्मिकादि वक्ष्यमाणमतिरक्तानि कटकाऽङ्कदादीनि द्रव्याणि यस्य सम्बन्धीनि यो हठात्प्रमादाद्वा नाशयेत्स तस्य प्रतिसंस्कारादिना तुष्टिमुत्पादयेद्राज्ञे विनाशितद्रव्यसमानं दण्डं दद्यात् ॥ २८८ ॥

**चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्ठमयेषु च ॥**
**मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥ २८९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। चर्मचार्मिकयोर्द्वन्द्वं कृत्वा भाण्डपदेन विशेष्येण समासः। अथवा चार्मिकभाण्डयोर्विशेषणसमासं कृत्वा चर्मशब्देन द्वन्द्वः। चर्मविकाराच्चार्मिकाणि भाण्डानि कटिसूत्रवस्त्रादीनि। **चर्माण्यविकृतानि** गवादीनाम्। अथवा **चर्मभाण्डानि** केवल चर्ममयानि, चर्मावनद्धानि **चार्मिकाणि**। **काष्ठमयभाण्डान्युलूखलमुसलफलकादीनि**। **लोष्ठो** मृद्विकारः पाषाणाकृतिः पिण्डीभूता मृत्। तन्मयानि स्वल्पपाकाधानादीनि। तन्नाशने **मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः**। तुष्टयुत्पत्तिश्च स्वामिनः स्थितैव ॥ २८९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पूर्वोक्तापवादस्थानमाह चर्मेति। चर्म स्वरूपतः। चार्मिकं चर्मनिर्मितं भाण्डम्। काष्ठभाण्डेषु लोष्टेन मृदा कृतेषु च भाण्डेषु नाशितेषु द्रव्यवते मूल्यं दाप्यः। तथा मूल्यात्पञ्चगुणो नृपाय ॥ २८९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। चर्मणि चर्मघटितवस्त्रादौ चर्मकाष्ठमृत्तिकानिर्मितेषु च भाण्डेषु पुष्पमूलफलेषु परस्य नाशितेषु मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डो राज्ञो देयः स्वामिनश्च तुष्टिरुत्पादनीयैव ॥ २८९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। द्रव्यविशेषे तद्भेदमाह चर्मेति। चर्मणि तन्निर्मितेषु लोष्टोत्र मृत् तन्निर्मितेषु घटादिषु एतेषु नाशितेषु। स्वामिनस्तुष्टयुत्पादोनुवर्तते ॥ २८९ ॥

(५) **नन्दनः**। चार्मिकभाण्डादिषु हिंसितेष्विति विपरिणामः। लोष्टं मृत्पिण्डः चर्मादिभ्योन्यत्र पूर्वोक्तस्तत्समो दण्डः ॥ २८९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। चर्मादिभाण्डेषु नष्टेषु चर्मोस्यायंचार्मिकः मूल्यात्पञ्चगुणोदण्डः द्रव्यस्वामिने मूल्यं पञ्चगुणंदेयम् ॥ २८९ ॥

(७) **मणिरामः**। चर्मचार्मिकभांडेषु चर्मणि चर्मघटितभांडेषु। काष्ठलोष्टमयेषु च भांडेषु ॥ २८९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **चर्मचार्मिकभाण्डेष्विति**। चर्मसु चर्मकाष्ठमृण्मयेषु भाण्डेषु पुष्पमूलफलेषु च परकीयेषु च नास्ति तेषु तन्मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डो राज्ञाऽऽदेयः तुष्टयुत्पत्तिश्च स्वामिनः कार्या ॥ २८९ ॥

**यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च ॥**
**दशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥ २९० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। सत्यामपि हिंसायां क्वचिद्दोषो नास्तीत्येतदनेन प्रकरणेन प्रदर्श्यते। **यानं** गन्त्र्यादि यदारुह्य यान्ति पन्थानम्। तच्च गन्त्र्यादि बलीवर्दगर्दभमहिषादिवाह्यम्। त एव वा गर्दभादयः पृष्ठारोह्या **यानानि**। **यातृ** तदारूढः सारथ्यादिः। **यानस्वामी** यस्य तत्स्वयानम्। तत्रैषां चक्रवेगादिभी रथ्याकर्षणयुक्तैर्वाऽश्वादिभिः कस्यचिद्द्रव्यस्य नाशो वा मरणम्। तत्र पशुस्वामिपालव्यतिक्रमन्याये प्राप्ते कदाचिद्यातुर्दोषः कदाचित्स्वामिनः कदाचिदुभयोः कदाचिन्न कस्यचिदपीति यो विशेषस्तत्र नोक्त इहैवेष्यते—स उच्यते। **अतिवर्तनानि**—अतिक्रम्य हिंसादण्डं वर्तते, नात्र दण्डोऽस्ति, दण्डनिमित्तानि न भवन्तीति यावत्। **शेषे दण्ड** उक्तेभ्यो निमित्तेभ्योऽन्यत्र। तान्यपि वक्ष्यति ॥ २९० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यानस्य यद्यपि पश्वदेर्न दण्डस्तथापि शिबिकावाहकमनुष्यादिरूपस्यास्तीति यानग्रहणम्। यातुर्यपियितुर्नेतुःसारथ्यादेः। यानस्वामिनोऽधिकृतस्य। वक्ष्यमाणान्यतिवर्तनानि दण्डातिवृत्तेर्दण्डातिभावस्थानानि। **अभिवर्तनानीति क्वचित्पाठः**। तत्र दण्डार्थं निवर्तनं विरोधनं नास्तीत्यर्थः ॥ २९० ॥

(३) **कुल्लूकः**। यानस्य रथादेर्यातुः सारथ्यादेर्यानस्वामिनश्च यस्य तद्यानं तेषां छिन्ननास्यादीनि दशनिमित्तानि दण्डमतिक्रम्य वर्तन्ते एषु निमित्तेषु सत्सु प्राणिमारणे द्रव्यनाशे च प्रकृते यानस्वामिनां दण्डो न भवतीति मन्वादय आहुः। एतद्व्यतिरिक्तनिमित्ते च पुनर्दण्डोऽनुष्ठीयते ॥ २९० ॥

(४) **राघवानन्दः**। अत्रैव प्रतिप्रसवमाह यानस्येति। यानस्य रथशकटादेः। छिन्ननास्यादिदशानिमित्तिकान्दण्डानतिक्रामन्तीत्यतिवर्तनानि। नैतेषु निमित्तेषु दण्डः यातुः सारथेः तदारूढस्य यानस्वामिनश्च न स्यात्। तथा च वक्ष्यमाणानि दशनिमित्तानि वर्जयित्वा शेषे दण्ड इत्यन्वयः ॥ २९० ॥

(५) **नन्दनः**। यानस्य शकटादेः यातुः सारथेः यानस्वामिनो यानारूढस्य च दशातिवर्त्तनान्याहुः दण्डविधानरहितानि दशातिक्रमणान्याहुरित्यर्थः। शेष इति वर्त्तने दण्डो विधीयते न तेषु दशस्विति ॥ २९० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यानादिकानां भग्ने सति दशातिवर्तनान्याहुः शेषस्थाने दण्डो विधीयते ॥ २९० ॥

(७) **मणिरामः**। यातुः सारथ्यादेः। दशातिवर्तनानि वक्ष्यमाणानि छिन्ननास्यादीनि। दश निमित्तानि दंडं अतिक्रम्य वर्त्तते। एषु निमित्तेषु सत्सु प्राणिमारणे द्रव्यनाशे च जाते दंडो न भवति इति मन्वादयः आहुः। शेषे एतद् द्वयतिरिक्त निमित्ते दंडो विधीयते ॥ २९० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यानस्येति**। यानस्य गन्त्र्यादेर्यातुश्च सारथ्यादेर्यानस्वामिनः यत्सम्बन्धि यानं तेषां छिन्ननासारश्यत्वादीनि वक्ष्यमाणानि निमित्तादिनि अतिवर्तनानि दण्डञ्चातिक्रम्य वर्तन्ते। तेषु सत्सु यानेन प्राणिहिंसाद्रव्यविनाशयोरपि कृतयोर्यानस्वाम्यादीनां सारथ्ये इत्येवं सारथ्यादि सम्बन्धिवाग्दाने सति यानेन प्राणिहिंसाद्रव्य विनाशयोः सारथ्यादेः दण्डो न भवतीति मन्वादय आहुस्तन्न, निमित्तव्यतिरेकेषु पुनर्दण्डः क्रियते ॥ २९० ॥

यत्र नास्ति दोषस्तानि तावदाह—

**छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ॥**
**अक्षभङ्गे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च ॥ २९१ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तान्याह छिन्ननास्य इति। वाहकाक्षादिरज्जुच्छेदे भङ्गे युगकाष्ठस्य दैवादभिघातादिना तिर्यग्गते याने तथा प्रतिमुखागते प्रत्यावृत्यागते ॥ २९१ ॥ तिर्यग्गते याने तथा प्रतिमुखागते प्रत्यावृत्यागते ॥ २८१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। नासायां भवंनास्यं शरीरावयवत्वाद्यत्। सा चेहबलीवर्दनासासंबंधिनीरज्जुः छिन्ननास्यरज्जौ बलीवर्दादिके भग्नयुगाख्ये काष्ठे रथादौ भूमिवैषम्यादिना तिरश्चीनं वा गते तथा चक्रान्तःप्रविष्टाक्षकाष्ठभङ्गयन्त्राणां चर्म बंधनानां छेदने योक्तस्य पशुग्रीवारज्जौ रश्मेः प्रहरणस्य छेदनेऽपसरापसरेत्युच्चैः शब्दे सारथ्यादिना कृते च यानेन प्राणिहिंसाद्रव्यविनाशयोःकृतयोः सारथ्यादेर्दण्डो नास्तीति मनुराह ॥ २९१ ॥ २९२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तान्येवाह छिन्नेति द्वाभ्याम्। छिन्ननास्ये नासायैतत्संबन्धिरज्जुद्रव्यं तस्मिन्बलीवर्दादिना छिन्नं। भग्नयुगे युगाख्ये रथकाष्ठे भग्ने। तिर्यक्प्रतिमुखागते भूमिवैषम्यात्प्रतीचीन आगते। अक्षभङ्गे चक्रान्तःकाष्ठमक्षम् ॥ २९१ ॥

(५) **नन्दनः**। तान्येवातिवर्त्तनानि श्लोकद्वयेनाह छिन्ननास्य इति। छिन्ननास्ये-छिन्ननासिकारज्जौ याने सति यन्तारमतिक्रम्य तिर्यगागते प्रतिमुखमागते च ॥ २९१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। द्वाभ्यामाह छिन्ननास्य इति ॥ २९१ ॥

(७) **मणिरामः**। तानि निमित्तान्याह। छिन्नेति। नासायां भवं नास्यं। बलीवर्दनासा संबंधिनीरज्जुस्तस्मिन् रज्जौ छिन्ने त्रुटिते। तत्समये चेद्बलीवर्दो मनुष्यादीन् मारयति द्रव्यंवानाशयति तदातत्स्वामी न दंडनीयः। एवं भग्नयुगसमये। तिर्यक् प्रतिमुखागते भूमिवैषम्यादिना तिरश्चीनंगते। अक्षभंगे चक्रमध्यप्रविष्टकाष्ठभंगे। चक्रभंगे च ॥ २९१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **छिन्ननास्य इति। छेदन इति।** छिन्ननासिकारज्जौ बलीवर्दे भग्ने युग्माख्यकाष्ठे गन्त्र्यादौ भूमिविषमादिना तिरश्चीनं वा गतं प्रतीचीनं वा तथा यानस्य गन्त्र्यादेष्वक्षमप्रविश्य कीलकादि तस्य भङ्गे यन्त्राणाञ्च चर्मबन्धानां छेदने योक्त्राख्य-पशुग्रीवाकाष्ठरज्जुछेदनेऽपसरापसरेत्येवं सारथ्यादिसम्बन्धिनि चाह्वाने सति यानेन प्राणि-हिंसाद्रव्यविनाशयोः सारथ्यादेर्दण्डो न भवति इति मनुराह ॥ २९१ ॥ २९२ ॥

**छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च ।**
**आक्रन्दने चाप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ॥ २९२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। नासायां भवं **नास्यम्**। शरीरावयवाद्यत्। नासिकापुटसंयोगिनी बलीवर्दानां रज्जुरश्वानां खलीनं हस्तिनामङ्कुशः। तस्मिन् **छिन्ने** त्रुटिते। **युगे च भग्ने**। रथाङ्गकाष्ठं युगम्। छिन्नं नास्यमस्येति बहुव्रीहिणा रथ उच्यते पशुर्वा—उभयोरपि साक्षा-त्पारंपर्येण संबन्धात्। **तिर्यकप्रतिमुखागते याने**। तिरश्चीनं वा प्रतीचीनं वा कथंचिद्भू-वैषम्यात्पशुत्रासाद्वा यानं गच्छत् कंचिदपराध्येन्न दुष्येत्। प्राजको हि संमुखीनाञ्छक्तो रक्षितुं तिर्यक् प्रत्यगवस्थितो त्वदृश्यमानस्य कथं रक्षतु। 'प्रतिमुखागतं' प्रत्यगावृत्तिः।

अन्ये तु तिर्यगागते हिंस्यमाने ऋजुगामिन्येव याने न दोषमाहुः—प्रतिमुखं चाभिमुखं मन्यन्ते। अभिमुखागतः किमिति चक्रिणं दृष्ट्वा पन्थानं न ददाति।

**अक्षचक्रे** रथाङ्गे प्रसिद्धे। **यन्त्राणि** चर्मबन्धनानि शकटकाष्ठानाम्। **योक्त्रं** पशु-ग्रीवाकाष्ठम्। **रश्मिः** प्रग्रहो हस्तव्रधृतो युग्यानां संचरणनियमनार्थः। **आक्रन्द** उच्चैः शब्दोऽपैहीत्यपसरेत्यर्थः। इतिकरणो भाषाप्रसिद्धतदर्थशब्दोच्चारणार्थो, न त्वयमेव शब्दः प्रयोक्तव्यः। अविदेयेषु युग्येष्वपसरापसरेति क्रोशतः प्राजकस्य पथो नातिक्रामन्यदि हिंस्यान्न दोषः ॥ २६२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यन्त्राणां काष्ठसन्धिघटनानाम्। योक्त्रं युगादिबन्धनरज्जुः। रश्मिः अश्वापकर्षणरज्जुः ॥ आक्रन्दे सारथिनान्येनवाकृष्टे ॥ अशक्यनिवर्तनत्वे सतीदम् ॥ २९२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। यन्त्राणां चर्मबद्धानाम्। योक्त्ररश्म्योः योक्त्रस्य पशुग्रीवा-स्थरज्जोः रश्मेः प्रग्रहस्यच छेदने। आक्रन्दे सारथ्यादिना अपेहीत्युक्ते। एतैर्हि प्राणि-हिंसाद्रव्यनाशयोःसत्वेपि सारथ्यादेर्न दण्ड इति मनुरब्रवीदित्यन्वयः॥ २९२॥

(५) **नन्दनः**। योत्कस्य छेदने च यन्तुर्यानस्वामिनोर्यानारूढानां वा दण्डं मनुरब्रवीत् ॥ २९२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। चक्ररश्म्योः युगबन्धनरज्जुः आक्रंदेत् पृष्ठे इति अपेहि ॥ २९२ ॥

(७) **मणिरामः**। यंत्राणां चर्म बंधनानां। योत्कुः पशुग्रीवारज्जोः। रश्मेः वलीवर्दादि प्रग्रहरज्जोः। छेदनसमये। आक्रंदे सावधानो भव इति उच्चैः सारथ्यादिना शब्दे कृते अपैहि याहीति शब्दे कृते च न दंडयः ॥ २९२ ॥

**यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु।**
**तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम् ॥ २९३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्राजको यानसारथिस्तस्य **वैगुण्य**मशिक्षितत्वं न तु प्रमादः। प्रमादे हि शिक्षितस्य स्वामिनो न दोषः। तस्माद्धेतोर्यदि **युग्यं** यानं सहसाऽपवर्तते स्पष्टं मार्गे हित्वा तिर्यक् पश्चाद्वा गच्छेत् किंचिन्नाशयेत्तत्र **स्वामी दण्ड्यः**। अशिक्षितः प्राजकः किमित्यारोपितः। "मनुष्यमारणे क्षिप्रम्" (२९६) इत्यादिना वक्ष्यमाणेन प्राणिभेदेन द्रव्यभेदेन च दण्डान्तरविधानाद्द्विशतमित्यविक्षितम्। दण्डनिमित्तमेतदित्येतावतैव वाक्यस्यार्थवत्वादुत्तरत्र न कश्चिदन्योऽर्थः श्रूयते येन वाक्यं तत्र संख्याविधायकमित्युच्येत ॥ २९३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अपवर्तते व्यावर्तते युग्यं रथादि। वैगुण्यादज्ञानात्। स्वामीदण्ड्यः तादृक्सारथिकरणात्। अङ्गभङ्गादिरूपायां हिंसायां भूतायां द्विशतं पणान्दण्ड्यो नान्यथा ॥ २९३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यत्र सारथेरकौशलाद्यानमन्यथा व्रजति तत्र हिंसायामशिक्षितसारथ्यनियोगस्वामी द्विशतं दण्डं दाप्यः स्यात् ॥ २९३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एतदन्यत्र दण्डमाह यत्रेति। प्राजकस्य सारथेर्वैगुण्यादकौशलात्। युग्यं रथशकटादि। तन्निमित्तहिंसायां स्वामी द्विशतं दण्ड्य इत्यन्वयः ॥ २९३ ॥

(५) **नन्दनः**। यत्र निमित्ते युग्यं यानं रथादिकं प्राजकस्य वैगुण्यात्सारथेरसामर्थ्यादपवर्तते विषमं प्रवर्तते तत्र निमित्ते मनुष्यपश्वादिहिंसायां द्विशतंदमंस्वामी दण्ड्योभवेदनाप्तप्राजकनियोगात् प्राजकस्य मनुष्यमारणे क्षिप्रसंचोरवदित्यादि श्लोकद्वये वक्ष्यमाणसर्वजनसामान्येति एवं दण्ड इत्यवगन्तव्यम् ॥ २९३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अथ यत्र स्थानात् युग्यंरथं॥ युग्यंपत्रंच धोरण इत्यमरः॥ प्राजकस्य सारथेः वैगुण्यात् अपवर्तते तत्स्वामी दण्ड्यः भवेत् ॥ २९३ ॥

(७) **मणिरामः**। दंडनिमित्तान्याह ॥ यत्रेति। प्राजकस्य सारथेः वैगुण्यात् अकौशलात् युग्यं रथादि यानं अपवर्तते अन्यथा व्रजति तत्रहिंसायां स्वामीद्विशतं दमं दंड्यः। अशिक्षित सारथ्यनियोगात्स्वामिनो दंडः ॥ २९३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यत्रापवर्तते युग्यमिति**। यत्र पुनः सारथेरकौशल्यात् यानमन्यथा प्रजति तत्र हिंसायामकुशलसारथिकरणाद्यानस्वामी द्विशतं दण्डं दाप्यः। सारथेश्च

मनुष्यमारणे सत्यपि अविलम्बत्वं क्षिप्रमित्येव सारथिर्वक्ष्यमाणो भवति। एवञ्च द्विशतग्रहस्योत्तरश्लोके च शतग्रहणस्य विवक्षितत्वमातस्तदसदप्रमादाभिधायित्वादृषेः॥ २९३॥

**प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति॥**
**युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतं शतम्॥ २९४॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आप्तो विज्ञःप्राजको दण्ड्यः स्वाम्यपराधाभावात्। तत्रानाप्ते अज्ञे युग्यस्थानरथस्थाः सारथिपक्षपूरकतया विज्ञाता- स्वामिना नियुक्तास्ते दण्ड्याः। अनःस्वामी तेचसर्वे शतं प्रत्येकं दण्ड्याः॥ २९४॥

(३) **कुल्लूकः**। यदि सारथिः कुशलः स्यात्तदा सारथिरेवोक्तद्विशतं मंवक्ष्यमाणं च मनुष्यमारण इत्यादिकं दण्डमर्हति न स्वामी अकुशले तु तस्मिन्सारथिस्वाभिव्यतिरिक्ता अन्येपि यानारूढा अकुशलसारथिकयानारोहणात्सर्वे प्रत्येकं शतं शतं दण्ड्याः॥ २९४॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैव विधानान्तरमाह प्राजकश्चेति। आप्तो निपुणो नैपुण्ये तु प्राजकस्य। सर्वे स्वामिसारथियुग्यस्था अपि दण्डभाजः। युग्यं शकटादि। अकुशलसारथ्येनोढत्वात् शतंशतंप्रत्येकम्॥ २९४॥

(५) **नन्दनः**। प्राजक आप्तश्चेन्मनुष्यपश्वादिहिंसायां प्राजक एव दण्डमर्हति न स्वामी प्राजके त्वनाप्ते केवलं स्वाम्येव दण्ड्यः किन्तु युग्यस्था रथादिस्थाः सर्वेपि शतं शतं दण्ड्याः॥ २९४॥

(६) **रामचन्द्रः**। प्राजकः सारथिश्चेत् आप्तः निपुणः। युग्यस्थाः सारथिपक्षपूरकाः प्राजके अनाप्ते सति अनिपुणे सति ते सर्वे शत दण्ड्याः॥ २९४॥

(७) **मणिरामः**। आप्तः कुशलः। अनाप्ते अकुशले। युग्यस्थाः सर्वेः यानारूढाः स्वामिनः अस्वामिनश्च॥ २९४॥

(८) **गोविन्दराजः**। **प्राजक इति**। यदि पुनः सारथिः कुशलस्तदा सारथिरेव मनुष्यमारणे इत्यादि वक्ष्यमाणं अर्हति दण्डं न स्वामी द्विशतं अकुशले सारथौ स्वाम्यतिरिक्ता अन्येऽपि यानारूढाः अकुशलसारथियानारोहणात्सर्वे शतं शतं दण्ड्याः। सारथिस्तु मनुष्यमारण इत्यादिस्थित एव॥ २९४॥

**स चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा॥**
**प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः॥ २९५॥**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तो हिंसायां दमः। तत्र विशेषं वक्तुमिदमाह। **स प्राजकः पथि संरुद्धोऽग्रेघनावसर्पिणा संरुद्धो** निरुद्धगतिः पश्चात्स्थितेनासुशिक्षितत्वात्प्रमादाद्वा **वेगेन धुर्याश्चोदिताः** पुनः स्थिरयतश्चेन्निकटो रथस्तेन च तस्य वेगनिरोधे कृते **यदि पुरोरथस्थावेगपातात्पशुभिः** रथयुक्तैरश्वादिभिः। **रथेन** रथावयवैर्वा। **प्राणिनो** मनुष्यादीन्**मारयेत्**। **ततो दण्डस्य विचारो नास्ति। स्थित एव दण्डः।**

अथवा जवोत्पतिता अश्वाः पथि संरोधकसंमुखीनरथदर्शनेन बलाद्विधार्यमाणास्तिर्यग्गत्या गच्छेयुः पार्श्वकीयान् प्रत्यगवस्थितत्वात्तथा हन्युस्तत्र दण्डो विचारितो नास्ति-प्राजके दोषाभावात् ।

अथवा पथि स्थितो वर्तमानः संरुद्धो न विक्रियमाणः ।

अथवा **विचारितो** विशेषेण विहितो विशेषित इति यावत् ॥ २९५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अशक्यविषयेषु हिंसायामाह सचेदिति । सयुग्यादिः । पशुभिर्हस्त्यादिभिः । उपलक्षणंचैतत् । प्रपातगमनोच्चारोहणतिर्यग्गमनादिनापीत्यशक्यप्रतीकारागन्तुनिमित्तवशादित्यर्थः । दण्डोऽविचारित ननिर्णीतो मुनिभिः नास्त्येवेत्यर्थः ॥ २९५ ॥ ।

(३) **कुल्लूकः** । सचेत्प्राजकःसंमुखागतैः प्रचुरगवादिभीरथान्तरेण वा संरुद्धः स्वरथगमनानवधानात्प्रत्यक्समर्पणाक्षमः संकटेपि स्वरथतुरगान्प्रेरयन्तुरगैरथेन वा रथावयवैर्वा प्राणिनो व्यापादयति तत्राविचारितो दण्डः कर्तव्य एव ॥ २९५ ॥

(४) **राघवानन्दः** । प्रकारान्तरेण दण्डमाह सचेदिति । पशुभिः गजादिभिः स्वरथसबन्धव्यतिरिक्तैः रथेन रथान्तरेणवा बद्धोगन्तुमशक्तः सन्परावृत्तत्वात् उक्तातिरिक्तपाश्चात्यात् । प्रमापयेत् हिंस्यात् । अकुशलो भूत्वा लोभायत्तो यतःप्रवृत्तः अतो दण्डार्हः । अविचारितः पूर्वं विचारो न कृतः केवल किंतु दण्डोऽस्तीति ॥ २९५ ॥

(५) **नन्दनः** । योयंस्वामिप्राजकरथस्यानां दण्डउक्तस्तत्र प्राजकं प्रति नियममाह स चेत्त्वति । सआप्तोनाप्तो वा प्राजकः पथि पथिकैः संरुद्धः पशुभिः स्वरथवाहिभिर्बलीवर्दादिभीरथेन वा प्राणभृतः प्रमापयतिचेत्तत्र प्रमापणे दण्डः अविचारितोऽसंदिग्धः पुनस्तद्भयात्पथोपक्रमण निमित्तरूपपतनादिहेतुके प्रमापन्न इति ॥ २९५ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । पशुभिः सःयुग्यादिना रथंपशुभिः पथि संरुद्धः प्राणिभृतः प्रमापयेत् हन्यात् तत्र दण्डः अविचारितः मुनिभिः ॥ २९५ ॥

(७) **मणिरामः** । सः प्राजकः । संरुद्धः स्वरथगमनाऽनवधानात् प्रत्यक् समर्पणाक्षमः संकटेपिस्वरथतुरगात् अन्यरथतुरगैः रथेन वा रथावयवैर्वा प्राणिनः प्रमापयेत् मारयेत्-तदा त्वविचारतस्तत्र दंडः कर्तव्य इत्यर्थः ॥ २९५ ॥

(८) **गोविन्दराजः । स इति** । स प्राजकः सम्मुखागतयानान्तराध्वरुद्धैर्बलीवर्दादेभिः संरुद्धयानो रथान्तरेण वा भूमिवैषम्यात्प्रत्यगपसर्पिणा अकुशलत्वात्प्राणिनो रथ मापयेत्तत्र दण्डो मन्वादिभिर्विचारितः ॥ २९५ ॥

**मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषं भवेत् ॥**
**प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥ २९६ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । तादृशे प्राजके रथपशुभिर्मनुष्यश्चेन्म्रियते तदा **चौरवत्तस्य किल्बिष** दण्डः । यद्यपि चौरस्य वधः सर्वस्वहरणादयो दण्डास्तथापीह धनदण्ड एव गृह्यते

न वधः। **महत्स्वर्धमिति** तत्रैवार्धसंभवात्। स चोत्तमसाहसः कैश्चिदभ्युपगतः। यतश्च क्षते क्षुद्रकपशूनां तृतीयस्थानप्राप्तानां द्विशतो दमोऽतः प्रथमस्थानां मुख्यानामुत्तमो युक्त इति। **प्राणभृतः** प्राणवन्तो मनुष्यतिर्यक्पक्ष्यादयः। **महत्सु** महत्त्वं गवां प्रभावतो हस्त्यादीना प्रमाणतः। आदिग्रहणाद्गर्दभाश्वतरव्याघ्रादयश्च कथंचित्परिगृह्यन्ते।

वयं तु ब्रूमः– 'सहस्रम्' इत्येवमवक्ष्यत् यद्यन्ते चौरवद्दण्डा नाभिप्रेता अभविष्यन्। तस्मादर्धग्रहणाद्वधो मा भूद्धनदण्डास्तु सर्वस्वहरणादयः सर्वे चौरोक्ताः पुरुषापेक्षयातिदिश्यन्ते।

ननु च मनुष्यमारणेऽन्यस्य चौरदण्डस्यातिदेशोऽयुक्तः। स प्रतिपदं मनुष्यहनने विहितः स च 'पुरुषाणां कुलीनानामिति' (३३२) वध एव। तत्र किमिति वाक्यान्तरगतार्धशब्दानुरोधेनैवं व्याख्यायते। वरमर्धस्यैव गुणतः काचिद्वृत्तिराश्रीयताम्।"

सत्यं–यदि धर्मशब्दो मारणेन संबध्यमानोऽन्यथोपपद्येत। न च चौरवदित्यस्यानुषङ्गागतस्यार्थान्तरवृत्तिः सर्वापरवाक्ययोः शक्या ॥ २९६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अथ लगुडादिना बुद्धिपूर्वं मारणे दण्डमाह मनुष्यमारण इति। प्राणभृत्सु महत्सु गवादिषु अर्धं यस्य चौर्ये यावान्दण्डोधनकृतस्तदर्धम्। ॥ २९६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सकृदपराधे कीदृश इत्याह मनुष्येति। तत्र मनुष्यमारणे प्राजकस्यानवधानाद्यानेन कृतं शीघ्रमेव चौरदण्डोत्तमसाहसं भवेन्नतु मारणरूपः प्राणभृत्सु महत्स्वर्द्धमिति श्रवणात्। गोगजादिषु महत्सु प्राणिषु मारितेषूत्तमसाहसस्यार्द्धपञ्चशतपणो दण्डोभवेत्॥ २९६॥

(४) **राघवानन्दः**। तां दण्डव्यवस्थामाह मनुष्येति त्रिभिः। चौरवत् चोरश्चोत्तमसाहसं इत्युक्तेः। गवित्यादि चतुष्टयं विशेषणं प्राणभृतादेरर्धं पञ्चशतानि ॥ २९६ ॥

(५) **नन्दनः**। एवं यानेन प्रमापणे दण्ड उक्तः। अथ पारुष्येण मनुष्यपश्वादिमारणे दण्डं श्लोकत्रयेणाह मनुष्यमारण इति। किल्बिषं दण्डः स चार्थविषय एव अर्थविषयसामर्थ्यात् चोरकिल्बिषमुत्तमसाहसः गवादीनां प्रभावतो महत्त्वम् ॥ २९६ ॥

(७) **मणिरामः**। कीदृशापराधे कीदृशोदंड इति प्रश्नेप्राह। मनुष्येति। चौरवत् सारथेरनवधानाद्यानेन कृते उत्तमसाहसं भवेत् न तु मारणरूपः। महत्सु प्राणभृत्सु गजोष्ट्रहयादिषु मारितेषु अर्द्धं उत्तम साहसस्यार्द्धं पंचशतं पणाः दंडो भवेत् ॥ २९६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **मनुष्यमारण इति**। प्राजकस्याकौशलेन मनुष्यमारणे सत्यपि विलम्बत्वमेव चोरवत्तस्य उत्तमसाहसो न तु वधादिचोरदण्डः। प्राणभृत्सु महत्स्वर्वदर्शनान्महत्सु च प्राणिषु प्रभावतो गवादिषु प्रमाणतः स्यात्। (मारितेषु अहिमहिषेषु) उत्तमस्य साहसपञ्चशतानि दण्डो भवेत्॥ २९६॥

**क्षुद्रकाणां पशूनान्तु हिंसायां द्विशतो दमः ॥**
**पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ॥ २९७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अपचितपरिमाणाः **क्षुद्रकाः**। ते च केचिद्वयस्तः, वत्सकिशोर-

ककलभादयः । केचिज्जातिस्वभावतः, अजैडकादयः । तन्नाजाविकानां पञ्च माषान्वक्ष्यति । परिशेषाणां गवादीनामेवायं दण्डोऽल्पपरिमाणानाम् । * शुभा मृगाः पृषतादयः—आकारतो लक्षणतश्च । पक्षिणो हंसशुकसारिकादयः । अशुभाः * काकोलूकश्वृगालादयः । पशुशब्दश्चतुष्पाज्जातिवचनः ।

हिंसामात्रेण दण्डमिमंमिच्छन्ति । न प्रकृतयानविधिहेतुं ब्रुवते । 'तत्र दण्डो विचारित' (२९५) इत्यनेनैव यानप्रकरणं व्यवच्छिन्नम् । विचारितः समाप्तविचार इत्यर्थः । इदानीमेतत्प्रकरणनिरपेक्षमुच्यत इति । एवं तु "प्राणभृत्सु महत्स्वर्धमिति" हस्तादिच्छेदनं 'मारण' मित्यर्धशब्दो नेयः स्मृत्यन्तरात् ॥ २९७ ॥

(२) सर्वज्ञनारायणः । क्षुद्रपशूनां मृगपक्ष्यादीनां द्विशत इत्युत्तमदण्डोपदर्शनमेतत् । तत्तत्त्वतु क्षुद्रत्वे ह्रासःक्रमेणोह्यः । एतच्च परिगृहीतविषये । अपरिगृहीतेष्याह पञ्चाशत्त्विति । शुभेषु चित्रमृगशुकादिषु ॥ २९७ ॥

(३) कुल्लूकः । क्षुद्रकाणां पशूनां जातितो विशेषापदिष्टेतरेषां वनचरादीनां वयसा च किशोरादीनां मारणे द्विशतोदण्डः स्यात् । शुभेषु मृगेषु रुरुपृषतादिषु पक्षिषु च शुकहंससारसादिषु पक्षिषु हतेषु पञ्चाशद्दण्डो भवेत् ॥ २९७ ॥

(४) राघवानन्दः । क्षुद्रकाणामित्यल्पार्थो कः रुरुपृषतादीनाम् । शुभेषु हंसपारावतसारसादिषु कृष्णसारादिषु द्विशतोदमोऽन्यथा व्याधादीनामवृत्तिः स्यात् ॥ २९७ ॥

(५) नन्दनः । क्षुद्राणां मार्जारादीनां मृगपक्षिहिंसितेषु ॥ २९७ ॥

(७) मणिराजः । पृषतमृगेषु रुरुपृषतादिषु । शुभेषु पक्षिषु शुकहंससारसादिषु ॥ २९७ ॥

(८) गोविन्दराजः । क्षुद्रकाणामिति । अजाविकानां वक्ष्यमाणत्वादपचितप्रमाणानां वत्सकिशोरादीनां पशूनां हिंसायां द्विशतो दण्डः कार्यः । पुनर्मृगपक्षिषु वराहादिषु हिंसायां पञ्चाशत्पणो दण्डो भवेत् ॥ २९७ ॥

**गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पाञ्चमाषिकः ॥**
**माषिकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ॥ २९८ ॥**

(१) मेधातिथिः । पञ्च माषाः परिमाणमस्येति पाञ्चमाषिकः । माषस्य च द्रव्यजातेरनुपपादनान्मध्यमकल्पनायाश्च न्याय्यत्वाद्रौप्यस्य निर्देशोऽयमित्याहुः । हिरण्यं तु युक्तं । एवं तत्समामिति न बाधितं भवति । अनुबन्धाद्यपेक्षया तु द्रव्यजातिः कल्प्येति सिद्धान्तः ॥ २९८ ॥

(२) सर्वज्ञनारायणः । पञ्चमाषिकः सुवर्णमाषाः पञ्च तन्निष्पाद्यो माषकः सुवर्णः तन्निष्पाद्यः । सुकरो ग्राम्यः । वराहे त्वधिकम् ॥ २९८ ॥

---

* सकृदपराधे = रथसंकटापराधे (ब)

* अशुभाः = शुभामृगात्तपृष्ठादयः आकारतोलक्षणतश्च पक्षिणो हंसशुकसारिकादयः । अशुभाः ।

(३) **कुल्लूकः**। गर्दभच्छागेडकादीनां पुनर्मारणे पञ्चरूप्यमाषकपरिमाणो दण्डः स्यात्। नचात्र हैरण्यमाषग्रहणमुत्तरोत्तरलघुदण्डाभिधानात्। श्वसूकरमारणेषु पुनारौप्यमाषपरिमाणोदण्डः स्यात्॥ २९८॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच गर्दभेति। अविर्मेषः। पञ्चमाषिकः पञ्च रुप्यमाषपरिमाण यस्य सस्तथा॥ २९८॥

(५) **नन्दनः**। गर्द्दभाजाविकानां निपातने॥ २९८॥

(६) **रामचेन्द्रः**। अच्छागः अविकः रूप्यदण्डः॥ २९८॥

(७) **मणिरामः**। शुभे। पंचमाषिकरूप्य पंचमाषिकः। उत्तरोत्तरलघुदंडाभिधानात् स्वर्णमाष इति ज्ञेयं॥ २९८॥ २९९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **गर्दभाजाविकानामिति**। स्वरच्छागाविविषयवधे रूप्यमाषकपरिमाणो दण्डः स्यादुत्तरोत्तरमपचितं दण्डाभिधानदर्शनादहैरण्यं माषग्रहणं पूर्वदण्डानूनत्वान्नापि ताम्रिकस्य करणमत्यन्तलघुत्वोदयं श्वशूकरमारणेऽपि रूप्यमाषकपरिमाणो दण्डः स्यात्॥ २९८॥

**भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः॥**
**प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा॥ २९९॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्राप्ता अपराधं **प्राप्तापराधाः**। 'अपराधो' व्यतिक्रमः नीतिभ्रंशः। स यदा तैः कृतो भवति तदा ताडयितव्याः। ताडनमपि हिंसेत्युक्तम्। सा च "न हिंस्याद्भूतानीति" प्रतिषिद्धाऽपराधे निमित्ते भार्यादीनां प्रतिप्रसूयते। संबन्धिशब्दाश्चैते। य यस्य भार्या यश्च यस्य दासः स तेनानुशासनीयः। मार्गस्थापनोपायविधिपरश्चायम्, न ताडनविधिरेव। तेन वाग्दण्डाद्यपि कर्त्तव्यम्। अपराधानुरूपेण कदाचित्ताडनम्। **सोदर**स्थाने कनीयान्पठितव्यः—**भ्राता तथानुजः**। स हि ज्येष्ठस्य पुत्रवत्ताडनार्हः। वैमात्रेयोऽपि चेदपितृको गुणवज्ज्येष्ठतन्त्रश्च। सोऽप्युन्मार्गगामी ताडनादिपर्यन्तैरुपायैर्निवारणीयः। **वेणुदलं** वंशत्वक्। एतदप्युपलक्षणं—तथाविधानां मृदुपीडासाधनानां शिफादीनाम्॥ २९९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भ्राता कनीयान्॥ २९९॥

(३) **कुल्लूकः**। भार्यापुत्रादयः कृतापराधा रज्ज्वा वातिलघुवेणुशलाकया ताड्या भवेयुः शिक्षार्थं ताडनविधानादन्यदण्डापवादः॥ २९९॥

(४) **राघवानन्दः**। ननु पितरमित्यभिशस्ति निषेधता भार्यादीनामपराधे ताडनमपि निरस्तमतस्तेषां स्वातन्त्र्ये प्राप्ते ताडनसाधनं तदुचितस्थलान्याचेदयन्ताडयत्वमाह भार्येति सार्धेन। तत्रत्यं तनयपदं भार्याद्युपलक्षणं तुल्यन्यायत्वात्। वेणुदलेन वेणोरेकांशेन॥ २९९॥

(५) **नन्दनः**। अथ भार्यापुत्रादीनामनुशासनप्रकारमन्ययानुशंसने दण्डविधानार्थमाह **भार्यापुत्रश्चेति**॥ २९९॥

(६) **रामचन्द्रः**। भार्यादयः प्राप्तापराधाः रज्ज्वा वेणुदलेनवा ताड्याः ताडनीयाः। सोदरः भ्राता च अन्यमातृजो न ॥ २९९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। भार्याशिष्यश्च दासश्च पुत्रो भ्राता च सोदर इति। भार्यादयः कृतापराधा रज्वा वेणुत्वचा वा दण्डनीयाः स्युरिति हिंसादण्डोपरार्धार्थः। साधने दण्डचाः स्युः ॥ २९९ ॥

**पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथंचन ॥**
**अतोऽन्यथा तु प्रहरन् प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥ ३०० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। उक्ततादनदेशसाधनाभ्यामन्येन प्रकारेण घ्नन्नक्ष्यादिषु लगुडादिभिर्वा चौरदण्डं प्राप्नोति। निन्दैषा। न त्वयमेव दण्डः। योऽन्यत्र हिंसायां दण्डः सोऽत्र भवतीत्युक्तं भवति ॥ ३०० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। चोरकिल्बिषं ताडितस्यामरणे स्तेयदण्डो मरणेतु भूयस्त्वमूह्यमित्यर्थः ॥ ३०० ॥

(३) **कुल्लूकः**। रज्ज्वादिभिरपि देहस्य पृष्ठदेशे ताडनीयाः नतु शिरसि। उक्तव्यतिरेकेण प्रहरणे वाग्दण्डधनदण्डरूपञ्चौरदण्डं प्राप्नुयात् ॥ ३०० ॥

---

(२९९) वा=च (क) (२९९) प्रेष्यो=शिष्यो (ज, झ, ञ, ढ)

(३००) कथंचन=न वक्षसि (ट, ड)

(४) **राघवानन्दः**। उक्तातिक्रमे दोषमाह अतइति। अतोन्यथापृष्ठादन्यत्र ॥ ३०० ॥

(५) **नन्दनः**। ताडनस्थानमाह पृष्ठतस्त्विति। अन्यथाऽनुशासने दण्ड उत्तरार्द्धेनोच्यत इति दण्डपारुष्यनिर्णयः ॥ ३०० ॥

(७) **मणिरामः**। कुत्र रज्वादिना ताडनं कर्तव्यमित्यतआह। पृष्ठत इति ॥ ३०० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पृष्ठत इति**। ते पुनः शरीरस्य पृष्ठदेशे ताडनीयाः न तु कदाचिदुत्तमाङ्गे न वक्षसि उक्तप्रकारव्यतिरेकेण ताडयित्वा दण्डरूपेण वाग्दण्डरूप चौरदण्डं प्राप्नुयात् ॥ ३०० ॥

**एषोऽखिलेनाभिहतो दण्डपारुष्यनिर्णयः ॥**
**स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥ ३०१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **एष** निःशेषेणोक्तो **दण्डपारुष्यनिर्णयो** दण्डव्यवस्था। दण्डशब्दोहि साधनोपलक्षकतया विवादपदेऽन्वितार्थः। नामधेये पूर्वपदम्। **स्तेनस्य** चौरस्य दण्डभेदानन्तःपरं **वक्ष्यामी**त्युपसंहारोपन्यासार्थः श्लोकः ॥ ३०१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एष इति। स्तेनस्य स्तेनदोषे ॥ ३०१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एष दण्डपारुष्यनिर्णयो निःशेषेणोक्तः अत ऊर्ध्वं चौरदण्डविनिर्णये विधानं वक्ष्यामि ।। ३०१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। कायदण्डमुपसंहरंस्तेनदण्डंप्रतिजानीते एष इति। दण्डविनिर्णये दण्डार्थम् ।। ३०१ ।।

(५) **नन्दनः**। अथ स्तेयनिर्णयं प्रस्तौति एषोऽखिलोनेति अतः परं स्तेयसाहसयोरर्थ-हिंसात्मकत्वेनापृथग्भावमाशङ्क्य भेदोपन्यासेन परिहरति तस्मात्साहसन्त्वनवयवप्रसभं कर्म यत्कृतं। निरन्वयं भवेत्स्तेयं कृत्वापव्ययते च यत्। अन्वयोनुसारोनुमतिरिति यावत् तद्युक्तमन्वयवत् यत्कर्म कृतं तेन योपहारः कृतस्तत्साहसंस्यात् येन केन चिदुपायेन स्वामिनो-ऽनुमतिमासाद्य परद्रव्यापहरणं साहसं स्यादित्यर्थः प्रसभं प्रसह्य यत्कृतं तच्च साहसं स्यात् अनुमतमपि यत्कर्म कृत्वापव्ययतेऽपह्नुते पूरुषस्तच्च स्तेयं भवेदिति ।। ३०१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **एष इति**। अनन्तरोक्तो वाग्दण्डः पारुष्यस्य निर्णयो निः-शेषेणोक्तः। अत ऊर्ध्वं चौरदण्डस्य व्यवस्थाया विधानं वक्ष्यामि ।। ३०१ ।।

**परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः ।।**
**स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते ।। ३०२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। कश्चित्करुणावान् क्रूरं हिंसाकर्मेति मन्यमानो न प्रवर्तते। अत-स्तत्प्रवृत्त्यर्थं स्तेननिग्रहस्तुत्यर्थवादः प्रक्रम्यते। नात्र हिंसादोषोऽस्ति। प्रत्युत दृष्टोपकार-हेतुत्वात्स्तेनहिंसैव श्रेयस्करी। वेदतुल्यतां च ख्यापयितुमर्थवादा भूयांसः। तत्र हि प्रायेण सार्थवादका विध्युद्देशा इति। तत्प्रतीत्यनुसरणेन वैदिकोऽयमर्थ इति प्रसिद्धिः। भवन्ति चात्र केचित्प्रतिपत्तारो ये स्तुतिभिरतितरां प्रवर्तन्ते।

**परमं यत्नं** प्रकृष्टमतिशयवत्तात्पर्यमाश्रयेत्। चरैश्चारयेत् साक्षात्प्रकाशं चातियत्नतः। **स्तेनाश्चौराः**। **निग्रहो** नियमनवधबन्धनादि। एवं कृते **यशः** ख्यातिर्भवति। निरुपद्रवो-ऽस्य राज्ञो देशः स्तेना नाभिभवन्ति निशा दिवा तुल्या तत्रेति सर्वत्र स्थितं भवति। **राष्ट्रं वर्धते**। राष्ट्रं जनपदस्तस्मिन्निवासिनश्च पुरुषाश्चौरैरनुपद्रूयमाणा वर्धन्ते। श्रीभिः प्रमोदमाना बहु पर्यन्ते देशान्तरस्था अपि निरुपद्रवं राष्ट्रमाश्रयन्ते। ततो वर्धते ।। ३०२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। निग्रहे दण्डने ।। ३०२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। चौराणां नियमने राजा परममुत्कृष्टं यत्नं कुर्यात् यस्मात् चौरनिग्रहा-द्राज्ञः ख्यातिर्निरुपद्रवतया राष्ट्रं च वृद्धिमेति ।। ३०२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्र दृष्टादृष्टदोषाननुसंधायिनो राज्ञः ततो निवृत्तिमाशंक्य दृष्टफलैः प्रलोभयंन् तत्र यत्नाधिक्यं नोपरमितिपञ्चभिः। तत्र सततं नृप इत्यन्तं दृष्ट-फलमतः परमदृष्टफलम् अस्य राज्ञः ।। ३०२ ।।

(५) **नन्दनः**। राज्ञा स्तेननिग्रहोवश्यः कार्य इत्यष्टभिः श्लोकैराह परमं यत्नमिति। अस्य राज्ञः ।। ३०२ ।।

(७) **मणिरामः**। इदानीं स्तेयनिर्णयमाह। परममिति ।। ३०२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **परममिति**। चौरनियमे प्रकष्टमभियोगं राजा कुर्यात् यस्मात्तन्निग्रहात् राज्ञः प्रजाः निरुपद्रवतया च देशो जनधनबाहुल्येन वृद्धिमेति ।। ३०२ ।।

**अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ।।**
**सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम् ।। ३०३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अभयं चौरादिभ्योऽधिकृतेभ्यश्चासदृण्डनिवारणेन यो ददाति स सर्वदैव **पूज्यो** भवति। स्वैरकथास्वपि राज्याच्च्युतो वनस्थोऽपि। **सत्रं** क्रतुविशेषो गवामयनादि। तदस्य **वर्धते** निष्पद्यते। सर्वाङ्गसमुत्पन्नमेवंगुणमित्येतद्वर्धत इत्यनेनाहरहः सत्रफलं प्राप्नोतीत्यर्थः। **अभयं** यत्र दक्षिणा। अन्येषु सत्रेषु दक्षिणा नास्ति। इदं तु सर्वेभ्योऽपि विशिष्टं यद्दक्षिणावत्। सा च गवाश्वादि–दक्षिणा विलक्षणेत्यर्थवान्सत्रव्यतिरेकः ।। ३०३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स एव पूज्यो न त्वन्यादृशः। सत्रं प्रजारक्षणरूपो यज्ञः। वर्धतेऽधिकफलतया ।। ३०३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। हिरवधारणे चौराणांनियमनेन योनृपतिः साधूनामभयंददाति स एव पूज्यः पूर्वेषां श्लाघ्यो भवति। सत्रं गवायनादिक्रतुविशेषः यद्यस्मात्सत्रमिव सत्रं तदभयदानाच्चौरनिग्रहरूपाऽभयदक्षिणं सर्वदैवतस्य वृद्धिमेति अन्यद्धि नियतकालीनं नियतदक्षिणं च एतत्सर्वकालीनमभयदक्षिणं चेति वाक्यं व्यतिरेकालङ्कारः ।। ३०३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अभयदक्षिणं साधूनामभयं दक्षिणात्वेन निरूपितं यत्र तादृशं सत्रम्। अर्थाद्स्युवधःपशुसोमादिः ।। ३०३ ।।

(५) **नन्दनः**। अभयस्य स्तेननिग्रहरूपस्य ।। ३०३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। यः नृपः अभयस्य दाता स सततं पूज्यः। सदैव तस्य अभयदक्षिणं सत्रं प्रजारक्षणरूपो यज्ञःप्रवर्तते ।। ३०३ ।।

(७) **मणिरामः**। अभयस्य चौरनिग्रहेण लोकानामभयस्य न तु चौरस्य। सत्रं गवानयनादि क्रतुविशेषं तत्फलं प्राप्नोतीत्यर्थः ।। ३०३ ।। ३०४ ।। ३०५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अभयस्येति**। चौरपापस्य निग्रहेण साधूनामभयं ददाति स सदा सर्वस्य पूज्यो भवति। यस्मात्सत्रं क्रतुविशेषवत् स्तेननिग्रहः सम्पद्यते। स्तेननिग्रहाख्यं तस्यान्यसत्रविलक्षणमतिशयेन सम्पद्यते। अन्यत्किल सत्रं नियतकालं भवति इदं सदैव भवति चादक्षिणञ्चान्यत्सत्रं। इदं पुनरभयं दक्षिणा यस्य तदभयदक्षिणम् ।। ३०३ ।।

**सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः ।।**
**अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ।। ३०४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **सर्वतः** प्रकाशाद्यज्ञादेः तथा ग्रामवासिभिः वनवासिभिश्च कृता-

द्धर्मषड्भागं राजा ंभते। एवमधर्मादपि चौरैः प्रच्छन्नकृताद्राज्ञः षड्भागो भवति। न केवलं स्तेनैर्ये मुष्यन्ते तदरक्षातो राज्ञामधर्मो यावद्ये हरन्ति तेषामपि चौर्यभावेनाधर्मोदयस्तदंशेनापि राजानः संबध्यन्ते तानिगृह्णन्तः। अदृष्टदोषसंबन्धनिवारणमपि रक्ष्याणां रक्षैव। तत्राधिकृतस्य राज्ञस्तदकरणाद्युक्तः प्रत्यवायः। "ननु च भृतिपरिक्रीतत्वाद्धर्मषड्भागमयुक्तम्।" उक्तं दीनानाथप्रव्रजिता यः सन्त्यकरप्रदाः। परिपूर्णस्वधर्मपालने कानुपपत्तिः॥ ३०४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। धर्मषड्भागः प्रजाभिः क्रियमाणस्य धर्मस्य यावान् षष्ठोभागस्तावान्धर्म इत्यर्थः॥ ३०४॥

(३) **कुल्लूकः**। प्रजा रक्षतो राज्ञः सर्वस्य भृतिदातुर्वणिगादेर्भृत्यदातुश्च श्रोत्रियादेः सकाशाद्धर्मषड्भागो भवति अरक्षतश्चाधर्मादपि लोकेन कृतात् षडंभागः स्यात् तस्माद्यत्नतः स्तेननिग्रहेण राजा रक्षणं कुर्यात्। नच भृतिक्रीतत्वाद्राज्ञो धर्मषड्भागो न युक्त इति वाच्यम् भृत्याधर्मषड्भागेन च परिक्रीतस्य शास्त्रीयत्वात्॥ ३०४॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच सर्वत इति। रक्षतो रक्षां कुर्वाणस्य प्रजाभिरनुष्ठिताद्धर्मात् षड्भागः षष्ठांशो राज्ञः स्यादेव। अरक्षतोऽधर्मांशः॥ ३०४॥

(८) **गोविन्दराजः। सर्वत इति**। सर्वतो भृतिप्रदानव्यतिरिक्ताच्च श्रोत्रियादीनां साधूनां सकाशाद्धर्मषड्भागे राज्ञः प्रजारक्षणाद्भवति। अरक्षतश्चाधर्मादपि लोके चौर्यभाग त् षड्भागोऽस्य भवति तस्माद्यत्नतः स्तेननिग्रहेण प्रजासंरक्षणं कुर्यात्। न च वृत्तिपरिक्रीतत्वाद्राज्ञो धर्मप्राप्तिरयुक्ता वृत्तिपरिक्रयवद्धर्मभागपरिक्रयस्यापि शास्त्रीयत्वात्॥ ३०४॥

**यदधीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति॥**
**तस्य षड्भागभाग्राजा सम्यग्भवति रक्षणात्॥ ३०५॥**

(१) **मेधातिथिः**। यदुक्तं 'सर्वत' इति तस्य प्रपंचोऽयम्। अध्ययनादयो धर्मार्थतयाऽन्यत्र ज्ञापिताः प्रसिद्धरूपाश्च। 'अर्चनं' देवगुरूणां पूजनम्। **तस्येति** कर्मणोऽध्ययनादेः पदार्थस्येति योजनीयम्। क्रियायाः स्त्रीलिङ्गत्वात्। **षड्भाग इति**। न च कर्तुः पञ्चकर्मफलांशात् षष्ठो नृपतेः, समग्रकर्मफलभोक्तृत्वस्याधिकारतः कर्तुरवगतत्वात्। अपि तु **सम्यग्रक्षणात्स्वकर्मानुष्ठानात्तावन्मात्रं** राज्ञः फलमुत्पद्यत इति। नान्यकृतस्य शुभस्याशुभस्य वा अन्यत्र गमनम्। नाकर्तुः फलमस्तीति स्थितम्॥ ३०५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ३धीते **लोकः। यदर्वा ंपुष्पादिना देवादीन्** ॥ ३०५॥

(३) **कुल्लूकः**। यः कश्चिज्जपयागदानदेवतार्चादीनि करोति तस्य राजा पालनेन षड्भागं प्राप्नोति॥ ३०५॥

(४) **राघवानन्दः**। धर्मेत्युक्तं तमेवाह यदिति। यदधीते वेदादि यद्यजते यज्ञादि वेदादि यद्यजते यज्ञादि करोति यद्ददाति यदर्चति पूजयति तस्याध्ययनादिचतुष्टयस्य फलभाग्रक्षणाद्भवति राजेत्यन्वयः॥ ३०५॥

(५) **नन्दनः**। उक्तमर्थं प्रपञ्चयति यदधीत इति।

(८) **गोविन्दराजः**। **यदधीत इति**। यः कश्चिदध्ययनयजनयाजनदेवतार्चनादि यत्फलं तस्य फलस्य राज्ञा सम्यक्प्रजापालनात् षड्भागः प्राप्यते ॥ ३०५ ॥

**रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् ॥**
**यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥ ३०६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **भूतानि** स्थावरजङ्गमानि चौरेभ्यो **रक्षन्**। **वध्यांश्च** शास्त्रतो वधार्हाः—तांश्च **घातयन्**। **सहस्रशतदक्षिणानां** पौण्डरीकादीनां क्रतूनां फलमन्वहं राजा प्राप्नोतीति स्तुतिः ॥ ३०६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यजेत बहुदक्षिणे यागफललाभात् ॥ ३०६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। भूतानि सर्वाणि स्थावरजङ्गमादीनि यथा शास्त्रं दण्डप्रणयनरूपेण धर्मेण रक्षन् वध्यांश्च स्तेनादीन्ताडयन्प्रत्यहं लक्षगोदक्षिणैर्यजते तज्जन्यं पुण्यं प्राप्नोतीति भावः ॥ ३०६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच रक्षन्निति। वध्यान्वधार्हांश्चोरादीन्। यज्ञैर्यज्ञवद्दृष्टादृष्टफलसाधनत्वाद्रक्षायाः ॥ ३०६ ॥

(५) **नन्दनः**। भूतानि न्यायवर्त्तीनि ॥ ३०६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एवं रक्षादि कुर्वन् राजा अहरहः यज्ञैर्यजते वा कीदृशैः? सहस्रशतदक्षिणैः ॥ ३०६ ॥

(७) **मणिरामः**। एवं कुर्वतो राज्ञः अहरहर्यज्ञफलं भवतीत्यर्थः ॥ ३०६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **रक्षन्धर्मेणेति**। भूतानि स्थावरजङ्गमानि शास्त्रव्यवस्थया राजा रक्षन् वध्यान्स्तेनादीन् यथाशास्त्रं घातयन् लक्षदक्षिणानां यज्ञानां सम्बन्धिफलं प्रत्यहमर्जयति। तत्र महाप्रयासकर्मसम्बन्धिफलं कथमल्पप्रयासात्कर्मणः प्राप्यते तथा सति को नाम प्रयासेषु वर्तेतेति चोदनीयम्। फलोपभोगकालाल्पभूयस्त्वे च विशेषसंभवात्। एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम् ॥ ३०६ ॥

**योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ॥**
**प्रतिभागं च दण्डं च स सद्यो नरकं व्रजेत् ॥ ३०७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। बलिप्रभृतीनि राजग्राह्यकरनामानि देशभेदे सूपमाणवकवत्प्रसिद्धानि। तत्र **बलिर्धान्यादेः** षष्ठो भागः। **करो** द्रव्यादानम्। **शुल्कं** वणिक्प्राप्यभागः। **प्रतिभागं** फलभरणिकाद्युपायनम्। राजैतद्गृह्णाति चौरेभ्यश्च न रक्षति **स सद्य** आयुःक्षयान्नरकं गच्छेत्। गृहीत्वा राजभागं रक्षा कर्तव्या नरकायुःक्षयभयादिति श्लोकतात्पर्यम् ॥ ३०७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। बलिं धान्यादिभागम् । करं तद्वद्भूमिनियतं देयं हिरण्यम्। शुल्कं तरादिदेयम्। प्रतिभोगं फलाद्युपायनमुपढौकितम्। प्रीतिभोगमिति क्वचित्पाठः। तत्र प्रीत्योपढौकितं फलादीत्यर्थः। दण्डमपराधनिमित्तग्राह्यम् ॥ ३०७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यो राजा रक्षामकुर्वन्बलिं धान्यादेः षड्भागं ग्रामवासिभ्यः प्रतिमासं वा भाद्रपौषनियमेन ग्राह्यं शुल्कं स्थलजलपथादिना वाणिज्याकारिभ्यो नियतस्थानेषु द्रव्यानुसारेण ग्राह्यं दानमिति प्रसिद्धं प्रतिभागं फलकुसुमशाकतृणाद्युपायनं प्रतिदिनग्राह्यं दण्डं व्यवहारादौ गृह्णाति स मृतः सन्सद्य एव नरकं याति ॥ ३०७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तस्यैव स्वधर्मस्याकरणे दोषमाह य इतित्रिभिः। बलिं धान्यादेः षड्भागम् । करं ग्रामवासिभ्यः प्रतिमासिकशुल्कंवणिगादेर्हट्टघट्टादिनियतस्थानेषु द्रव्यानुसारेण यत् ग्राह्यं तत्। प्रीतिभोगं पुष्पशाकाद्युपायनं प्रतिदिनं ग्राह्यम्। दण्डं व्यवहारादौ यतः ॥ ३०७ ॥

(५) **नन्दनः**। अरक्षन्निति पदं रत्नहारित्वेन यद्राष्ट्रात्पशुधान्यादिकं विशिष्टमाच्छाद्य राज्ञा भुज्यते वस्तु तद्बलिरित्युच्यते शुल्कं पथिकैर्वणिगादिभिर्देयं प्रीतिभोगमुपायनादिकम्। ॥ ३०७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यः राजा अरक्षन् बलिं धान्यादिषड्भागं आदत्ते यः करं गुल्मं दायादिकं आदत्ते यः शुल्कं तुरादिकं आदत्ते यः प्रीतिभोगं आदत्ते यः दण्डं फलहरणाद्युपायनं शिष्टचर्थे न्यायदण्डग्रहणं। अरक्षन् एवं आदत्ते सः सद्यः नरकं व्रजेत् ॥ ३०७ ॥

---

(३०७) प्रतिभागं=प्रतिभोगं (क, च, घ, ण)

(७) **मणिरामः**। अरक्षणे दोषमाह य इति। बलिं धान्यादिषड्भागं। करं ग्रामवासिभ्यः प्रतिमासिकं। शुल्कं स्थलजलपथादिषु वणिगादिभ्यो ग्राह्यं। प्रतिभोगं फलकुसुमाद्युपायनं प्रतिदिनं ग्राह्यं। दंडं व्यवहारादौ ग्राह्यं ॥ ३०७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यो यक्षन्निति**। भूतिभोगञ्चेति। यो राजा प्रजासंरक्षणमकुर्वन् धान्यादेः षड्भागादिकं करं गुल्मदास्यादिकं स्थलपथादिजीविभ्यो गतागतिभ्यो भूतेभ्योगं फलं फलकुसुमाद्युपायेन शुल्कं दण्डं व्यबहारादौ गृह्णाति। स आयुःक्षयेण सत्यमेव नरकं याति ॥ ३०७ ॥

**अरक्षितारमत्तारं बलिषड्भागहारिणम् ॥**
**तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥ ३०८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वस्य शेषोऽयं निन्दार्थवादः। न रक्षति **अत्ता**। उपजीविता प्रजानां राजभागग्रहणेन। एतदेव स्पष्टयति। **बलिषड्भागहारिणं** तं तादृशं राजानमाहुः शिष्टाः **सर्वलोकस्य** सर्वस्याः प्रजायाः **समग्रं मलं** पापं तस्य **हारकं** स्वीकर्तारम्। सर्वेण प्रजापापेन दूष्यत इत्यर्थः ॥ ३०८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्तारमतिशयितकरग्रहेण खादकमिव। राजानमिति क्वचित्पाठः। सोऽनाकरः। बलिरूपोयोधान्यादेः षड्भागः षष्ठो भागस्तद्धारिणम्। मलं पापं पूर्वमरक्षणात्पापषष्ठभागित्वमुक्तम्। अत्र त्वत्तृत्वेनाधिकेन सर्वपापग्रहणमिति। सर्वत्र चात्र तावत्पापान्तरकर्मान्तिरोत्पत्तौ तात्पर्यं नतु तत्पापधर्मयोरेव प्रतिसंक्रम इत्यर्थो-ग्राह्यः ॥ ३०८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यो राजा न रक्षति अथ च धान्यादिषड्भागं बलिरूपं गृह्णाति तं सर्व-लोकानां सकलपापहारिणं मन्वादय आहुः ॥ ३०८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तबल्यादिगृहीत्वाप्यरक्षितारं समग्रमलहारकं मन्वादयस्त-माहुरित्यन्वयः। अग्रं फलं तेन सह वर्तते समग्रं फलदानोन्मुखस्य मलस्य हर्तारं सर्वेषां पाप-हर्तारं तथावानलंसेन रक्षितव्यं आत्मनो हितं कुर्वतेत्यन्वयः ॥ ३०८ ॥

(५) **नन्दनः**। अत्रबलिशब्दः करवचनः ॥ ३०८ ॥

(७) **मणिरामः**। समग्रमलहारकं समग्रपापहारकं ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अरक्षितारमिति**। यो राजा न रक्षति अन्यच्च धान्यादि-षड्भागं बलिरूपं गृह्णाति तं सकललोकसम्बन्धिसर्वपापस्वीकारिणं मन्वाद्या आहुः ॥ ३०८ ॥

**अनवेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुंपकम् ॥**
**अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम् ॥ ३०९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **मर्यादा** शास्त्रशिष्टसमाचारनिरूढा धर्मव्यवस्था—साऽनवेक्षि-ताऽतिक्रान्ता येन। 'नास्ति परलोको नास्ति दत्तं नास्ति हुतमिति' **नास्तिकः**। प्रथमो रागादिना त्यक्तधर्मः, नास्ति वस्त्विति विपरीताभिनिवेशः। विलुम्पति हरति धनान्य-सद्दण्डैः प्रजानाम्। तत्तुल्योऽ**रक्षिता**। **तमधोगतिं विद्यान्नरकपतितमधोगतं विद्यान्नरक** पतितमेवाचिरात्। पाठांतरम्—'असत्यं च नृपं त्यजेत्'। अन्यदुक्त्वाऽन्यत्करोति यस्त त्यजेत्तद्विषये नासीत ॥ ३०९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। मर्यादा धर्माधर्मव्यवस्था। नास्तिकं परलोकनास्तिकता-ज्ञानवन्तं। विप्रलुम्पकं विप्राणां लोपकंमपचयहेतुम् ॥ ३०९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। लङ्घितशास्त्रमर्यादं परलोकाभावशालिनमनुचितदण्डादिना धन-ग्राहिणंरक्षणरहितं करबल्यादेर्भक्षितारं राजानं नरकगामिनं जानीयात् ॥ ३०९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच। अनपेक्षितमर्यादं उल्लङ्घितशास्त्रमर्यादं विप्रलुम्पकं विप्रा-दपि धनहारिणं लुण्ठाकं अत्तारं केवलं अधोगतिं नरकस्थमेव तं विद्यादित्यन्वयः ॥ ॥ ३०९ ॥

(५) **नन्दनः**। प्रलुम्पकं ब्राह्मणपरित्यागिनम् ॥ ३०९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अनवेक्षिता मर्यादा येन तं अनवेक्षितमर्यादं पुनःकीदृशं नृपं विप्र-लुम्पकं असद्वादादिना धनानां लुम्पकं पुनः कीदृशं अत्तारं करादेर्भक्षितारं एतादृशं नृपमधो-

गतिं विद्यात्। अधः नरके गतिर्यस्य सः अधोगतिः ॥ ३०९ ॥

(३०९) नृपं विद्यादधोगतिं=असत्यं च नृपं त्यजेत् (मेधा)
‡ धान्यानि=धनानि (आआ)।

(८) **गोविन्दराजः**। **अनपेक्षितमर्यादमिति**। अतिक्रान्तशास्त्राचारमर्यादं परलोकाभावबुद्धिमसद्दण्डादिधनच्छेदनं करबल्यादेर्भक्षितारं च राजानं नरकगामिनं जानीयात् ॥ ३०९ ॥

**अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः ॥**
**निरोधनेन बन्धेन विविधेन वधेन च ॥ ३१० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अर्थवादैर्दृढीकृत्य निग्रहविधिमिदानीं प्रस्तौति। **अधार्मिकः** प्रकरणाच्चौरः। तं **त्रिभिर्नियमनप्रकारैर्निगृह्णीयान्नियच्छेत्**। **न्यायो** नियामकः। **निरोधनं** राजदुर्गे **बन्धनागारे** धरणम्। बन्धस्तत्रैव रज्जुनिगडादिभिरस्वातन्त्र्योत्पादनम्। **विविधो वधस्ताडनादारभ्य** शरीरनाशनात् प्राणत्यागपर्यन्तः। निर्देशादेव त्रित्वे लब्धे **त्रिभिरिति** वचनमन्येषामपि नियमनप्रकाराणां परिग्रहणार्थम्। तेन तप्ततैलसेकादयोऽपि परिगृहीता भवन्ति ॥ ३१० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। न्यायैः नियमैः। निरोधनेन कारागारे ॥ ३१० ॥

(३) **कुल्लूकः**। अधार्मिकं चौरादिकमपराधापेक्षया त्रिभिरुपायैः प्रयत्नेन नियमयेत्तानाह कारागारप्रवेशनेन निगडादिबन्धनेन करचरणच्छेदनादिनानाप्रकारहिंसनेन ॥ ३१० ॥

(४) **राघवानन्दः**। अत्यौत्सुक्येन निग्रहोपायं प्रदर्शयन् राजानं स्तौति अधार्मिकमिति द्वाभ्याम्। तत्र निरोधः कारागारप्रवेशः। बन्धनं निगडः ॥ ३१० ॥

(५) **नन्दनः**। एवं स्तेननिग्रहस्यावश्यकर्तव्यतां प्रतिपाद्य तन्निग्रहप्रकारमाह अधार्मिकमिति। विविधेन तत्तत्स्तेयानुरूपेण ॥ ३१० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अधार्मिकं पुरुषं त्रिभिर्न्यायैः नियमैः सामदानादिभेदैः च पुनः केन उपायेन निरोधनेन नितरां रोधनेन ॥ ३१० ॥

(७) **मणिरामः**। अधार्मिकं चौरादिकं। अपराधापेक्षया निरोधनादि त्रिभिर्न्यायैः उपायैः। निगृह्णीयात् नियमयेत् ॥ ३१० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अधार्मिकमिति**। अधार्मिकं चौरमपराधापेक्षया त्रिभिर्नियमनप्रकारैः प्रयत्नेन नियच्छेत्। बन्धनागारस्थापननिगडादिबन्धनकरचरणकर्तनादि नानाप्रकारहिंसनैरिति ॥ ३१० ॥

**निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च ॥**
**द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः ॥ ३११ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पापयुक्ताः पुरुषाः **पापाः**। तेषां **निग्रहः** पूर्वोक्तः। यथाशास्त्र-

वर्तिनः **साधवः**। तेषां **संग्रहोऽनुग्रहो** यथाशक्त्युपकारः। तेन **पूयंते** विपाप्मानो भवन्ति प्रायश्चित्तेन वेत्यर्थवादः। अथवा पापानुत्पत्तिरेव पूतत्वम्। ब्राह्मणा इव सततमिज्याभिः नित्यैर्महायज्ञादिभिः ॥ ३११ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। द्विजातयो विप्राः ॥ ३११ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पापशालिनां निग्रहेण साधूनां संग्रहेण द्विजातय इव महायज्ञादिभिः सर्वकालंनृपतयः पवित्रीभवन्ति तस्मादधार्मिकान्निगृह्णीयात् साधूंश्चानुगृह्णीयात् ॥ ३११ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ततः किंतत्राह। पापानां पापिनां निग्रहेण साधूनां परिपालनेन। द्विजातयः विप्रोत्तमाः सर्वदा यज्वानो वा नृपस्योभयसंभवेन दार्ष्टान्तिकत्वासिद्धिः ॥ ३११ ॥

(५) **नन्दनः**। स्तेनहिंसा राज्ञ एव धर्मो नान्यस्येत्याह निग्रहेणचेति ॥ ३११ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एवं निग्रहादिना नृपाः सततं पूयन्ते इज्यादिभिःद्विजा इव ॥ ३११ ॥

(७) **मणिरामः**। द्विजातय इवेज्याभिः यथा द्विजातयो यज्ञेन पवित्रा भवंति तथा राजानः अपि दुष्ट निग्रहेण च **पवित्रा भवंतीत्यर्थः** साधुसंग्रहेणच पवित्रा भवंतीत्यर्थः ॥ ३११ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **निग्रहेणेति**। यस्मात्पापकर्मणो निग्रहेण साध्वाचाराणां चानुग्रहेण राजानो द्विजातय इव महायज्ञादिभिः सर्वकालं पवित्रीभवन्ति तस्मादधार्मिकं निगृहणीयात् ॥ ३११ ॥

**क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्यिणां नृणाम् ॥**
**बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥ ३१२ ॥**

(३१०) वधेन च=बलेनव (१) आ आ

(१) **मेधातिथिः**। **कार्यिणोऽर्थिप्रत्यर्थिज्ञातिसुहृदः**। कस्मिंश्चिद्व्यमाने यदि तत्पिता तन्माता वा राजानं क्षिपेत्कुत्सयेत् अभिशपेद्वा तदा क्षमा कार्या। बालादीनां **कार्यिणामपि**। एव**मात्मने हितं** कृतं भवति। क्षंतव्यमित्येतद्विधेः फलमेवात्महितम् ॥ ३१२ ॥ ॥ ३१२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रभुणा शक्तेनापि। कार्यिणां कार्यासिद्धेः क्षिपतामप्रियं वदतां बालादीनामकार्यिणामपि ॥ ३१२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कार्यवतामर्थिप्रत्यर्थिनां दुःखेनाक्षेपोक्तिं रचयतां तथा बालवृद्ध-व्याधितानामाक्षिपतां वक्ष्यमाणमात्मीयमुपकारमिच्छता प्रभुणा क्षमणीयम् ॥ ३१२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। राज्ञः स्वतन्त्रस्यापि कार्यविशेषे अस्वातन्त्र्यं सार्थवादमाह क्षन्तव्यमिति द्वाभ्याम्। प्रभुणा प्रतीकारसमर्थेनापि राज्ञा क्षिपतामाक्षेपं कुर्वतां कार्यिणा-मर्थिप्रत्यर्थिनां तथा बालादीनां च क्षन्तव्यमात्मनो हितं कुर्वतेत्यन्वयः। तेषामाक्षेपसहनमेव हितमिति भावः ॥ ३१२ ॥

(५) **नन्दनः**। स्तेनापहृतद्रव्यैस्तद्द्रव्यप्रत्यानयनकालात्ययादिव दुर्जनैर्यत्पारुष्यमुच्यते

तद्राज्ञा क्षन्तव्यमित्यभिप्रायेणाह क्षन्तव्यं प्रभुणेति। प्रभुणा क्षिपतां तेषां निग्रहाय प्रभुणापि ॥ ३१२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। कार्यिणां कार्योर्थिनां नृणां क्षिपतां अप्रियं वदतां प्रभुणा क्षन्तव्यं बालादीनां हितं आत्मनःहितंकुर्वता ॥ ३१२ ॥

(७) **मणिरामः**। कार्यिणां अर्थिप्रत्यर्थिनां। क्षिपतां दुःखेनाक्षेपोक्ति रचयतां ॥ ३१२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **क्षन्तव्यमिति**। बालवृद्धातुराणां च कुर्वतां हितमात्मने। कार्यवतां क्षिपतां स्तेनहृतबान्धवादीनां सन्तापेनाक्रोशतां बालवृद्धव्याधितानां चाक्रोशतां आत्मने वक्ष्यमाणमुपकारमिच्छतां पार्थिवेन सर्वदा क्षमणीयम् ॥ ३१२ ॥

**यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्त्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ॥**
**यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति ॥ ३१३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **आर्तैर्दण्ड्यमाननत्सबन्धिभिरधि क्षिप्त** आक्रुष्टो यन्मर्षयति न क्रुध्यति **तेन** क्षमणेन **स्वर्गे महीयते**। कण्ड्वादित्वाद् यः। महत्त्वं प्राप्नोति **स्वर्गे**। अकोपेन तर्हि क्षमा कर्तव्या। अकामिनो यथाकामी अत आह। यत्तु प्रभुरहमित्यभिमानेन न सहते **तेन नरकं** प्राप्नोति। **आर्त्तग्रहणं** बालवृद्धयोरपि प्रदर्शनार्थं पूर्वशेषत्वादस्य ॥ ३१३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आर्त्तैः कार्यालाभाद्दुःखितैः ॥ ३१३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। दुःखितैराक्षिप्तः सहते यःसतेन स्वर्गलोके पूजां लभते **प्रभुत्वदर्पान्न** सहते यः स तेन नरकं गच्छति ॥ ३१३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। हितं व्यनक्ति य इति। आर्त्तैःदुःखादिभिःपीडितैः आक्षिप्तोपि मर्षयति क्षमते तेन तितिक्षारूपेण स्वर्गे महीयतेऽक्षमायां नरकं गच्छतीत्यन्वयः ॥ ३१३ ॥

(५) **नन्दनः**। तेन क्षेपणेन क्षान्तेन ॥ ३१३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। आर्त्तैः कार्यालाभाद्दुःखितैः क्षिप्तः तिरस्कृतः सन् मर्षयति क्षमापयति ॥ ३१३ ॥

(७) **मणिरामः**। आर्त्तैः दुःखितैः। क्षिप्तः कटुभाषितः। मर्षति सहते ॥ ३१३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यत्क्षिप्तो मर्षयतीति**। संतप्तैराक्रुष्टो यत्तेषां क्षमते तेन स्वर्गलोके महीयते महिमानं भजते यत्पुनः प्रभुत्वदर्पान्न सहते तेन नरकं व्रजति ॥ ३१३ ॥

**राजा स्तेनेन गंतव्यो मुक्तकेशेन धीमता ॥**
**आचक्षाणेन तत्स्तेयमेवंकर्माऽस्मि शाधि माम् ॥ ३१४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अविशेषोपादाने सुवर्णहारी **स्तेनो** द्रष्टव्यः। तस्यैव शास्त्रान्तरे गमनविधानात्। न चेदमागमनपरं विधिशास्त्रम् दण्डविधित्वात्। उक्तं हि "स्तेनस्यातः

प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णय" इति (३०१)। अतोऽनुवादो गमनस्यात्र। राजसकाशं सुवर्णचौरेण गन्तव्यम्। **मुक्तकेशेन धीमता** धैर्यवता। 'धावतेति' पाठान्तरम्। **आचक्षाणेन** कथयता पथि तत्पात**कमेवंकर्माऽस्मि**–'ब्राह्मणस्य मयेयत्सुवर्णं हृतमिति कुरु निग्रहं मे'॥ ३१४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। राजास्तेनेनेत्यादिप्रायश्चित्तप्रकरणवाच्यार्थाभिधानम्। वधावश्यकर्तव्यतारूपराजधर्मकथनार्थम्। स्तेनेन ब्राह्मणस्वर्णहारकेण। मुक्तकेशेनेति च नियतंमरणरूपप्रायश्चित्ताङ्गम्। एवमुत्तराण्यपि। शीघ्रगत्या गच्छता धावता॥ ३१४॥

---

(३१४) धावता = धीमता (मेधा.)

(३) **कुल्लूकः**। यद्यपि सुवर्णस्तेयकृद्विप्र इत्यादिना प्रायश्चित्तप्रकरणे वक्ष्यति तथापि सुवर्णस्तेनं प्रति राजदण्डरूपतामस्य दंडप्रकरणे दर्शयितुं पाठः ब्राह्मणसुवर्णस्य चौरेण मुक्तकेशेन वेगाद्गच्छता मया ब्राह्मणसुवर्णमेतद्हृतमितिख्यापयतामुसलाख्यमायुधं खादिरमयंवादण्डमुभयतस्तीक्ष्णां शक्तिलोहमयं वा दण्डं स्कन्धे गृहीत्वा राजसमीपं गच्छेत्ततोब्राह्मणसुवर्णहार्य्यहमतोऽनेन मुसलादिना मां व्यापदयेत्येवं राज्ञे वक्तव्यम्॥ ३१४॥ ३१५॥

(४) **राघवानन्दः**। एवं स्तुतिनिन्दाभ्यां राजानमभिमुखीकृत्य स्तेनस्य कृत्यमाह राजेति त्रिभिः। आशु शुद्धिमिच्छता स्तेनेनाचक्षाणेन स्तेयकर्मेतिशेषः॥ ३१४॥

(५) **नन्दनः**। स्तेनं प्रत्याह राजा स्तेनेनेति। शाधि मामित्यत्रेतिकरणं द्रष्टव्यं इत्याचक्षाणेनेति तस्यान्वयः ब्राह्मणसुवर्णापहरणविषयमेतत्॥ ३१४॥

(६) **रामचन्द्रः**। स्तेनेन सुवर्णस्तेनेन चौरेण राज्ञःसमीपे गन्तव्यं। कीदृशेन स्तेनेन तत्स्तेयं राज्ञः आचक्षाणेन कथकेन एवं कर्मा मां शाधि॥ ३१४॥

(७) **मणिरामः**। यद्यपि प्रायश्चित्तमग्रे वक्ष्यति तथापि राजदंडप्रदर्शनार्थमत्राह स्तेनेनेति। मुक्तकेशेन धावता एवं कर्मास्मि, ब्राह्मणस्वर्णचौरोहमस्मीति आचक्षाणेन स्तेनेन चौरेण स्वस्कंधे खादिरं मुसलादिकञ्चादाय राजसमीपं गतव्यः गच्छेत् ततोऽनेन मुसलादिना मां शाधि मारयेति वक्तव्यं॥ ३१४॥ ३१५॥

(८) **गोविन्दराजः। राजेति। स्कन्धेनेति।** सुवर्णस्तेयकृद्विप्र इत्यादिना प्रायश्चित्तप्रकरणे वक्ष्यमाणस्तेन कर्तव्यःअनेन श्लोकद्वयेन अस्मिन्दण्डप्रकरणेऽनूद्यते सुवर्णस्तेनं प्रति दण्डाख्यराजकर्तव्यस्योपदेशार्थः। ब्राह्मणसुवर्णचौरेण मुक्तकेशेनादराद्वेगगतिना ब्राह्मणसुवर्णामदम्मयाऽपहृतं इत्येवं तत्स्तेयं ख्यापयता मुशलाख्येनायुधं खदिरमयं वा लगुडं शक्त्याख्यं चायुधं तीक्ष्णोभयप्रान्तमयोमयं वा दण्डं स्कन्धेन गृहीत्वा राजसमीपं गन्तव्यम्। गत्वा च ब्राह्मणसुवर्णाऽपहारी चाहं अनेन मुशलादिना मां जहीत्येवं राज्ञो वक्तव्यम्॥ ३१४॥ ३१५॥

**स्कन्धेनादाय मुशलं लगुडं वाऽपि खादिरम् ।।**
**शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा ।। ३१५ ।।**

[ **गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् ।**
**वधेन शुध्यते स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव वा ।। १ ।।** ] ‡

(१) **मेधातिथिः** । वर्णानामनुक्रमेण मुशलादीनामुपदेशं मन्यन्ते । तदयुक्तम् । **वा**शब्दो न समर्थितः स्यात् । न च ब्राह्मणस्येदं प्रायश्चित्तमिच्छन्ति । तत्प्रायश्चित्तेषु निरूपयिष्यामः । **खदिर**जातिर्लगुड एव—न मुशलेनानुषक्तव्यः ।। ३१५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । स्वप्रहारोचितं दण्डाद्यादायैव गन्तव्यमित्याह स्कन्धेनेति । शक्तिं सदण्डां छुरिकाकारां तीक्ष्णां क्षुरधारोपमाम् ।। ३१५ ।।

(५) **नन्दनः** । उभयतस्तीक्ष्णां उभयाग्रकृतधारामादाय गन्तव्य इति सर्वेण संबन्धः ।। ३१५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । स्कन्धेनेति द्वाभ्यामाह । मुसलादिकं गृहीत्वा आत्मानं घातयेत् ।। ३१५ ।।

**शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ।।**
**अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ।। ३१६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **शासना**न्मुशलादिभिः प्रहरणात्क्षत्रियादिः पापान्मुच्यते । **विमोक्षा**दुत्सर्गात् । गच्छ क्षान्तमिति । "ब्राह्मणस्तपसैवेति" वधतपसी विहिते (मनु ११/१००) । तत्र वधस्तावद्ब्राह्मणस्य नास्ति । तपस्तु प्रायश्चित्तम् । न च तप इच्छातो राजाभिगमनमस्ति । तस्मात्क्षत्रियादीनामेष विमोक्षः । स च धनदण्डं गृहीत्वा । यत आह **अशासित्वेत्यादि** । न च विमोक्षणशुद्धौ सत्यां राज्ञस्तदशासनाद्दोषोपपत्तिः । न च "शासनमपि विहितं मोक्षोऽपि विहितः—तत्र यस्मिन्पक्षे शासनं तदपेक्षं दोषवचनम् ।" पाक्षिकं हि तथा कल्पनम् । न च नित्यवच्छ्रुतस्य पाक्षिकत्वं युक्तं कल्पयितुम् । तथा च सामान्येन वसिष्ठादय आहुः—अधर्मेण स्वीयेन ऋच्छति राजानमुत्सृजन्तं सकिल्बिषन्तं चेद् घातयेद् राजा घ्नन्धर्मेण न दुष्यति' । नायं विकल्पो युक्तः । क्वचिदियं हिंसा प्रतिषिद्धा "न हिंस्याद्भूतानीति" रागादिना पुरुषार्थतया प्राप्ता । क्वचिद्विहिता—क्रत्वर्थत्वेन 'यो दीक्षितो यदग्नीषोमीयमिति' । इदं तु शासनविमोक्षणवचनं न नाम प्रतिषिद्धं सति विधौ । कथं न प्रतिषेधः । "न हिंस्याद् भूतानीति" सामान्यतः प्रतिषेधो विधिविशेषमन्तरेण न शक्यो बाधितुम् । अथोच्यते—नैवायं प्रतिषेधस्य विषयः, कर्मार्थत्वात् । कथं पुनरन्तरेण विधिं कर्मार्थता शक्याऽवगन्तुम् । लोकत इति चेल्लौकिकी प्रवृत्तिः । कथं तर्हि प्रतिषेधस्तावतरेत् । ननु प्रधाने प्रवृत्तिर्निरूप्यताम् । यदि तावद्वैदिकी प्रवृत्तिस्ततस्तदङ्गे हिंसायामपि तत एव । एका हि प्रवृत्तिरङ्गप्रधानयोः । अथ लिप्सातोऽङ्गेऽपि तत्र प्रवृत्तिः, सुतरां तर्हि हिंसेयं लौकिकी । जीविकार्थिनो हि प्रजापालनाधिकारनियमो न वैधः । तेनेयमङ्गस्थापि हिंसा श्येनतुल्यत्वात्प्रति-

षेधविषयः। न च लौकिकमस्या नियतमङ्गत्वम्। नो हिंसामन्तरेण प्रजापालनमशक्यम्, निरोधादिनाऽपि शक्यत्वात्। नैष नियमः। एकरूपाऽङ्गप्रधानयोः प्रवृत्तिरिति स्यान्नाग्नीषोमीययोरनेन विशेषः स्यात्। अतो लिप्सालक्षणेऽपि प्रधानेऽङ्गे विविधलक्षणमभ्युपेतव्यम्। न चैष हिंसाविधिलक्षणा शक्याऽभ्युपगन्तुं स्वरूपस्य कार्यस्य च लौकिकत्वात्पालनस्य हिंसायाश्च। अथ विधिलक्षणा षोडशिग्रहणवद्विकल्पितुमर्हति शासनवचनेन प्रतिषिद्धा।

अन्ये तु मन्यन्ते। द्वे एते वाक्ये। शासनादिति स्तेनस्य शुद्धिरुच्यते, परेणार्धेन राज्ञस्तदशासने दोषः। तत्र यदि राजाऽशासनदोषमात्मन्यङ्गीकृत्य मुंचेन्मुच्येतैवैनसः। एवं ब्राह्मणस्यापि स्वयमागतस्य वधः शुद्धिहेतुः—'लक्ष्यं शस्त्रभृतामिति' वचनात् (मनु० ११/७३)। "न शारीरो ब्राह्मणदण्डः" इति (गौतम सू. १२/४६) राजा यदि प्रतिषेधातिक्रमेण हन्याद् ब्राह्मणः शुध्येदेव।

**अशासित्वा** मुशलादिभिरहत्वा। **स्तेनस्य** यत्पापं तेन युज्यते ॥ ३१६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शासनात् तदन्यतरेणाभिघातात्। विमोक्षान्न शासिष्यामीतिमनसा राज्ञा त्यागात्। एतच्च क्षत्रियादीनामेव ब्राह्मणस्य तु प्रकारन्तरेणात्महननम् ॥ ३१६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सकृन्मुसलादिप्रहारेण प्राणपरित्याजनान्मृतककल्पस्य जीवतोपि परित्यागाद्वा स चौरस्तस्मात्पापात्प्रमुच्यते। अत एव याज्ञवल्क्यः ॥ मृतकल्पः प्रहारार्त्तोजीवन्नपि विशुध्यतीति। तंपुनःस्तेनं करुणादिभिरहत्वा स्तेनस्य यत् पापं तद्राजा प्राप्नोति ॥ ३१६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ततः किं एवं शासनान्मृतो जीवन्वा उभयथा शुद्धःइत्याह शासनाद्वेति। स्तेयात् स्तेयजपापात् अशासित्वा तैर्दण्डादिभिरहत्वा किल्बिषं पापं सहस्रदंडं वा ॥ ३१६ ॥

(५) **नन्दनः**। शासनात्तेनानीतमुसलादिना ताडनरूपात् विमोक्षान्न त्वां हन्मि गच्छेत्यनुज्ञारूपात् स्तेयाद्दोषात्तस्य शासनाद्राजास्तेनस्याप्नोति किल्बिषं तस्मात्सः शासितव्यइति ॥ ३१६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। शासनाद्वा तमाशिष्यामीति मनसा राज्ञा त्यागाद्विमोक्षाद्वा स्तेनश्चौरः स्तेयात् कृतपापात् विमुच्यते। एतत् क्षत्रियाणामेव ॥ ३१६ ॥

(७) **मणिरामः**। ततः किं भवतीत्यक्त आह। शासनादिति। एकप्रहारं कृत्वा मृतक कल्पस्य मोक्षाद्वा। तथा च याज्ञवल्क्यः। मृतकल्पप्रहारार्त्तो जीवन्नपि विशुद्धचतीति। अशासित्वा चौरकरुणया एक प्रहारमप्यकृत्वा ॥ ३१६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **शासनादिति**। प्रशाधि त्वेति। राजसम्बन्धिहननेन परित्यागेन वा स चौरस्तस्मात्पापात् विमुच्यते। तं पुनः स्तेनं न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितमिति वक्ष्यमाणत्वात् ब्राह्मणतर्जनहन्ता राजा तस्य सम्बन्धि यत्पापं प्राप्नोति तस्मादसौ राज्ञा हन्तव्यः। इत्येवंपरमेतत्सर्वमिहाभिधानम् ॥ ३१६ ॥

**अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्याऽपचारिणी ।।**
**गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ।। ३१७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अन्नमत्तीत्यन्नादः। **भ्रूणहा** ब्रह्महा। तदीयमन्नं यो भुङ्क्ते तस्मिंस्तद्ब्रह्महत्यापापं **मार्ष्टि** निरस्यति श्लेषयति। यथा मलिनं वस्त्रमुदके मृज्यते तन्मलं तत्र संक्रामत्येवम्। अर्थवादश्चायम्। तस्य तत्पापमुत्पद्यते। ब्रह्मणो श्लेषः। **पत्यौ** भर्त्तरि **भार्यापचारिणी** जारिणी–स चेत्क्षमते। अत्रापि भर्तुरुत्पद्यते पापं, तस्या अपैति। **गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च** 'शिष्यः' सूर्याभ्युदिताभिरपराध्य गुरौ क्षममाणे तत्पापं प्रक्षिपति। एवं याज्यो याजके। सोऽपि गुरुरेवेत्यतो याजकग्रहणं न कृतम्। एवं चौरो **राजनि**–न चेद्राज्ञा निगृह्यते। याज्योऽपि कर्मणि प्रवृत्ते विधिमपक्रामति चेद्याजकवचने नावतिष्ठते तदा त्याज्यः, न पुनस्तस्य ताडनादि शिष्यवत्कर्तव्यम्। अन्नादादिषु सर्वेष्वन्यत्र विधिरस्तीति न बुद्धिः। अतोऽर्थवादोऽयम् ।। ३१७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अन्नादे तदीयान्नभोक्तरि भ्रूणहा ब्रह्महा मार्ष्टि शोधयति। भ्रूणघ्नस्तेनपापस्य क्षयात्पापोत्पादाच्च। एवं पत्यौ भार्या व्यभिचारिणी संगृह्यमाणा-गुरावध्यापकर्त्विजोः शिष्ययाज्यौ पापिष्ठौ। स्तेनो राजनीति तु प्रकृतम् ।। ३१७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। ब्रह्महा यस्तत्संबन्धियोन्नमत्ति तस्मिन्नसौ स्वपापं संक्रामयति भ्रूणहान्नभोक्तुः पापं भवतीति एतदत्र विविक्षितं नतु ब्रह्मघ्नः पापं नश्यति तथा भार्या व्यभिचारिणी जारपतिं क्षममाणे भर्त्तरि पापं संश्लेषयति शिष्यश्च संध्याग्निकार्याद्यकरणजन्यं पापं-गुरौ सहमाने न्यस्यति याज्यश्च विधिमतिक्रामन्याजके क्षममाणे पापं निःक्षिपति स्तेनश्च राजन्युपेक्षमाणे पापं समर्पयति तस्माद्राज्ञा स्तेनो निगृहीतव्यः ।। ३१७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। स्तेनस्य परस्य पापेन राजा तज्जातीयपापवान्भवतीति स्तेनदृष्टान्तेनाऽन्येषामपि परपापवत्त्वमाह अन्नादइति। अन्नादेतदन्नभोक्ता भ्रूणहा स्वकिल्बिषं मार्ष्टि संक्रामयतीत्यन्वयः। पतिपदमुपलक्षणं येन येन संगता तं तमपि। अतएवोक्तं निःश्वासाद्गात्रसंस्पर्शादित्यादिः। याज्यश्च याजकेतिशेषः। एतेनान्य-पापेनान्यस्यापि तज्जातीयपापजन्म विवक्षितम् नतु पापिनः पापनाशइति केचित्। तत्र दानेनाकार्यकारिणे नेतिवचनात् शुध्यन्त्येव ते सर्वदा अन्यथा बहुवित्तव्ययायासप्राय-श्चित्तादौ तादृशे कोपि नप्रवर्तेत अत एव यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषमिति-संगतम्। अत्र भ्रूणहेत्यादित्रयं सिद्धवत्कृत्य राजनि पापसंक्रान्तिरुक्ता अतश्चतुर्णां परस्पर-दृष्टान्तता तेन पापिनोऽन्नं न भोक्तव्यम् भार्यादिकं च शासनीयमितिभावः ।। ३१७ ।।

(५) **नन्दनः**। उक्तमेवार्थं दृष्टान्तेन द्रढयति। अन्नादे भ्रूणहेति यो भ्रूणघ्नोन्नमत्ति तस्मिन्भ्रूणहा स्वकिल्बिषं शोधयति अपचारिणी व्यभिचारिणी एवं शासितरि राजनि किल्बिषं स्तेनोमार्ष्टि यत एवं तस्माद्राज्ञा स्तेनः शासितव्य इति ।। ३१७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अन्नादे अन्नभोक्तरि भ्रूणहापापंमार्ष्टि। मृजूशुद्धौइत्यस्य धातोरूपम्। अपचारिणी मर्यादाव्यभिचारिणी भार्या पत्यौ उपपतिं क्षममाणे पापंमार्ष्टि। याज्योशिष्यः

गुरौ पापंमार्ष्टि। अशास्तरि राजनि चौरःकिल्बिषम् राजनि ।। ३१७ ।।

(७) **मणिरामः**। भ्रूणहा ब्रह्महा अन्नादे ब्रह्मघ्नसंबंध्यन्नभक्षके किल्विषं स्वपापं मार्ष्टि संक्रामयति। तथा च ब्रह्मघ्नस्यान्नं न भोक्तव्यमित्यभिप्रायः। एनमग्रेपि। अपचारिणी भार्या पत्यौ। पापं संक्रामयति यदि भर्त्ता जारं क्षमते तदा नान्यथेत्यर्थः। शिष्यः याज्यश्च गुरौ यथोक्ताऽकरणस्योपेक्षके। तथा गुरुणा उपेक्षा न कार्येत्यर्थः। स्तेनः राजानं अदंण्डकर्तारं ।। ३१७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यस्मादन्नाद इति**। यो ब्राह्मण स तत्सम्बन्धि अन्नमत्ति तद्विषयमात्मीयं पापं शोधयति पापं तस्य भवतीत्येवं एतदेवात्र विवक्षितम्। न तु भ्रूणपापप्रायश्चित्तधिया[1]। तथैवं भार्या व्यभिचारिणी उपपतिं क्षममाणे भर्तरि पापं तं संश्लेषयति। शिष्यश्च यमनियमाननुष्ठानजन्यं पापं गुरौ सहमाने अर्पयति। याज्यश्च यागेऽन्यथा प्रचरन् याजके क्षममाणे प्रक्षिपति। स्तेनश्च राजनि सहमाने सत्यसति तस्माद्राज्ञा वक्तव्यः ।। ३१७ ।।

---

१. पाप ··· धिया=पापमेति अन्नदानस्य प्रायश्चित्तत्वेनाश्रवणात् (गो. ५)।

**राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।।**
**निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ।। ३१८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। यदुक्तं पापकारिणो निग्रहेण कर्मकृतो रक्ष्यन्त इति तत्स्फुटयति। **धृतो** विनिपातितो **दण्डो** येषां **राजभिस्ते कृत्वा पापानि** कृतपापा राजनिग्रहेण **निर्मला** निरस्तपापा भवन्ति। अपगते च पापे यदेषां स्वर्गारोहकं कर्म तेन स्वर्गे प्राप्नुवन्ति। महद्धि पापं शुद्धस्य कर्मणः फलस्य प्रतिबन्धकम्। **सुकृतिनो** नित्यं सुकृतकर्मकारिणः। **यथा सन्तः** धार्मिकास्तद्वत्। सतामधर्मो नैवोत्पाद्यत एषामुत्पन्नो निग्रहणेन विनाशित इति प्राक्प्रध्वंसाभावयोर्विशेषः।

**मानवग्रहणान्न प्रकरणाच्चौराणामेव।**

दण्डशब्दस्तु शरीरनिग्रहविषयो न हि प्रकरणमतिक्रामति। धनदण्डो हि राजार्थः। वृत्तिर्हि सा राज्ञः। शारीरे तु दण्डे दण्ड्यमानार्थता न शक्यते निह्नोतुम्। त्वक्संस्कारो हि सा। अथेयं बुद्धिः–'पालनमेव हिंसामन्तरेण न निष्पाद्यते–तच्च राजार्थमिति कुतो मार्यमाणार्थता मारणस्य'–अथ किं पालनं न पाल्यमानार्थं दृष्टमेवापह्नूयते। न हि तद्दृष्टमुपादेयं राज्ञैव स्वरक्षार्थं करशुल्कादिभृत्या उपादीयन्ते। अतः सुतरां रक्षोपयोगित्वे हिंसायां न हिंस्यमानार्थतासिद्धिः। कथं वा हिंसाया विना न रक्षानिर्वृत्तिर्यदि तावदेवमर्थे निगृह्यन्ते पुनरकार्यमावर्तयिष्यते तन्निरोधनादिनापि शक्यते नियन्तुम्। अथ तान्निगृहीतान्दृष्ट्वा भयादन्ये न प्रवर्तयिष्यन्त इति धनदण्डेनापि शक्यते दुःखयितुम्। हन्यमानेष्वपि सहस्रशः प्रवर्तन्ते। तस्मादियं हिंसा रक्षा सती हिंस्यमानसंस्कार इति मन्तव्यम्। अतश्च करणादिछेदने नियमः। हस्त्यादिविधिश्च दंडचेष्वेवादृष्टमाधास्यति, न राजार्थो भविष्यति।

तस्माच्छरीरदण्डे पापान्मुक्तिर्न धनदण्ड इति स्थितम् ।

तथा च महापातिकिनां हृतसर्वस्वानामप्सु प्रवेशितदण्डानां संव्यवहारपरिहारार्थमङ्कनं वक्ष्यति । यदि च धनदण्डेन शुध्येयुः पुनरङ्कनमनर्थकं स्यात् ।

अत्र च स्वयमागतस्य नानीतस्य विशेषो यः स्तेन एवं विशेषो भवतु । इदं तु सर्वं शारीरदण्डविषयम् ॥ ३१८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । कृत्वा पापानि धृतदण्डा इत्यन्वयः । स्वर्गमायान्ति पापक्षये पूर्वोपात्तधर्मेण ॥ ३१८ ॥

(३) **कुल्लूकः** । सुवर्णस्तेयादीनि पापानि कृत्वा पश्चाद्राजभिर्विहितदण्डा मनुष्याः संतः प्रतिबन्धकदुरितभावात्पूर्वार्जितपुण्यवशेन साधवः सुकृतकारिण इव स्वर्गंगच्छन्ति । एवं प्रायश्चित्तवद्दण्डस्यापि पापक्षयहेतुत्वमुक्तम् ॥ ३१८ ॥

(४) **राघवानन्दः** । दण्डेन न केवलं पापान्मुक्तिरपितु स्वर्गाद्यपीत्याह राजभिरिति । पापनिर्मुक्तिमात्रमत्र विवक्षितं स्वर्गावाप्तिस्तु पूर्वकृतसुकृतकर्मणः दुरदृष्टप्रतिबन्धरहितात् । नच पापिनः कुतः सुकृतमितिवाच्यम् । कदाचित्सुकृतं कर्म कूटस्थमिव तिष्ठतीतिस्मृतेरनारब्धफलकर्मणःसत्वप्रतीतेः ॥ ३१८ ॥

(५) **नन्दनः** । पापकृतामपि श्रेयस्करो राजदण्डः तेनाप्यवश्यं ते दण्डचा इत्याह राजभिर्धृतदण्डास्त्विति न केवलं निर्मलंनिर्मलत्वमेव किन्तुस्वर्गमायान्तिच ॥ ३१८ ॥

(७) **मणिरामः** । प्रायश्चित्तवद्दंडस्यापि पापक्षयकारित्वमाह । राजभिरिति ॥ ३१८ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **राजभिरिति** । ते समुद्धृताः पापानि कृत्वा पूर्वार्जनं तथा क्रतुवरान् कृत्वा स्वर्गमपापाः सन्तः शिष्टा इव शुभकारिणो व्रजन्ति । ये तत्पापनिमित्तं राजनि कृतदण्डा भवन्ति इहा पापानीति बहुवचनात् हिरण्यस्तेनविषय एव दण्डयः न कार्यनिष्कृतिः अपि तु सकलैनः स्वविषये व्यवसीयते न च स्वयमागतविषयैव दण्डेन पापनिष्कृतिः न हठदण्डितविषये मन्तव्यम् । हठदण्डितस्यापि यदि संसाधयेत्वयित्यादिनिष्कृतेर्दर्शित्तत्वाद्याम्ययातनाभिर्वा कथं परवशस्य निष्कृतिः स्यात् ॥ ३१८ ॥

**यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिन्द्याच्च यः प्रपाम् ॥**
**स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत् ॥ ३१९ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । पिबन्त्यस्यामिति **प्रपा** । जलाधारस्थानं उद्धृतजलनिधानं वा । माषस्य जातिर्न निर्दिष्टा । सा मरुजाङ्गलानूपभेदाद् द्रष्टव्या । **तच्च** रज्ज्वादि **समाहरेद्दद्या**त्तस्मिन् स्थाने, न राजनि ॥ ३१९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । प्रपां जलशालां भिन्द्यात् तत्काष्ठादि हरेत् । माषं सुवर्णस्य । तस्मिन् कूपादौ तद्रज्ज्वादि ॥ ३१९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कूपसमीपे रज्जुघटयोर्जलोद्धारणाय धृतयो रज्जुं घटं वा हरेत् यो वा पानीयदानगृहं विदारयेत्स सौवर्णमाषं दण्डंप्राप्नुयात्। अनिर्दिष्टन्तुसौवर्णमाषंतत्र प्रकल्पयेदिति कात्यायनवचनात्। तच्च रज्वादि तस्मिन्कूपे समर्पयेत् ॥ ३१९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रकृतं पुनर्दण्डमाह यस्त्विति। केनापि पुण्यवता कूपसमीपे स्थापितौ रज्जुघटौ कृतप्रपां वा हरेद्वानाशयेत् स सौवर्णमाषं दण्डं प्राप्नुयादित्यर्थः। तच्च रज्वादिकं समाहरेत्। संपाद्य दद्यादिति ॥ ३१९ ॥

(५) **नन्दनः**। द्रव्यान्तराणां चोरयितारं प्रत्याह यस्तुरज्जुं घटमिति। रज्जुश्चघटश्चरज्जुघटं हरेन्मुष्णीयात्ततश्च तस्मिन्कूपे कूपसमीपे समाहरेत्पुनरास्थापयेत्तस्मिन्स्थाने प्रतिसमादध्यादिति ॥ ३१९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। माषं सुवर्णस्य। तच्च रज्जुघटादि तस्मिन् कूपादिस्थाने समाहरेत् ॥ ३१९ ॥

(७) **मणिरामः**। माषं सौवर्णं। यन्निर्दिष्टं तु सौवर्णं माषं तत्र प्रकल्पयेदिति कात्यायनवचनात्। तच्च रज्वादि। तस्मिन् कूपे। समाहरेत् समर्पयेत् ॥ ३१९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **य इति**। यः कूपाद्रज्जुघटमपहरेत् यो वा उदकदानगृहं विनाशयेत् सरुप्यं सुवर्णं वा माषं स राज्ञा गलकेशाद्यपेक्षया दण्डं प्राप्नुयात्। तत्र च रज्ज्वादि तस्मिन्कूपे प्रत्यानयेत् ॥ ३१९ ॥

**धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः ॥**
**शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ ३२० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **कुंभ**शब्दः परिमाणविशेषे वर्तते न घटमात्रे। क्वचिद्विंशतिप्रस्थान्क्वचिद्द्वाविंशतिरिति देशभेदाद्व्यवस्था। **दशभ्योऽधिकं हरतो** वधविधिरुक्तार्थोऽनुबंधादिना नियम्यते। शेषेषु दशसु प्राकृत एकादशगुणो दण्डः। **तस्य च तद्धनमिति** सर्वत्र स्तेये योज्यम्। **धान्यं** व्रीहियवादिसप्तदशानीति स्मर्यते ॥ ३२० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कुम्भः पलशतद्वयम्। वधस्ताडनादि। ब्राह्मणादिद्रव्येत्वङ्नच्छेदादिः। शेषे ततःप्राक् तस्य तद्धनं दाप्य इत्युभयत्र ॥ ३२० ॥

(३) **कुल्लूकः**। द्विपलशतं द्रोणो विंशतिद्रोणश्च कुम्भोदशसख्येभ्यः कुंभेभ्योऽधिक धान्यं हरतोवधः सच हर्तस्वामिगुणवत्तापेक्षया ताडनागच्छेदमारणात्मकोज्ञेयः। शेषे पुनरेकस्मादारभ्य दशकुम्भपर्यन्तहरणे निह्नुवते एकादशगुण दण्ड दाप्यः स्वामिनश्चापहृत दाप्यः। ॥३२०॥

(४) **राघवानन्दः**। धान्यहरणे दण्डमाह धान्यमिति। कुम्भेभ्यः द्विपलशतं द्रोणो विंशतिद्रोणश्च कुम्भः तेभ्योधिकं हरतो वधः हर्तुर्गुणवत्त्वाद्यपेक्षया ताडनाङ्गछेदनमारणात्मकः हिंसामात्रवाचित्वाद्वधस्य। शेषे दशकुम्भाभ्यन्तरे एकादशगुणं हृतद्रव्यापेक्षया। तस्य धान्यस्वामिनं तद्धनं तावद्धान्यम् ॥ ३२० ॥

(५) **नन्दनः**। कुसूलात्किञ्चिन्न्यूनं धान्यभाजनं कुम्भः दशभ्यः कुम्भेभ्य इत्येकपुरुषस्य संवत्सरभोजनपर्य्यन्तधान्यग्रहणं ततोभ्यधिके हरणे दण्डःस्यात्। दशभ्यःकुंभेभ्योन्यूनेहरणे हृतादेकादशगुणंधान्यंहर्त्रा दण्डत्वेन दाप्यः। धान्यस्वामिने तद्धृतं धान्यं च दाप्यं। ब्राह्मणधान्यहरणे क्षत्रियादीनामयमेव दण्डोऽवगन्तव्यः॥ ३२०॥

(६) **रामचन्द्रः**। अभ्यधिकं हरतःवधः ताडनादि। एतद्विप्रविषयम् क्षत्रियादावंगच्छेदइत्यर्थः। शेषेपि ततोन्यूने राज्ञे एकादशगुणं दण्डं तस्य स्वामिनः तद्धनम्॥ ३२०॥

(७) **मणिरामः**। दशभ्यः कुंभेभ्यः अभ्यधिकं धान्यं हरतः। वधः कार्यः द्विपलशतं द्रोणः विंशतिद्रोणश्च कुंभः। शेषे पलादारभ्य दशकुंभपर्यंतहरणे। एकादशगुणं यावच्चौरितं तदेवैकादशगुणं दाप्यः दंडत्वेन। स्वामिनश्च हृतपरिमाणं दाप्यः॥ ३२०॥

(८) **गोविन्दराजः**। **धान्यमिति**। द्विपलं शतं द्रोणं विंशतिद्रोणा एककुंभः। दशकुंभेभ्योऽधिकं धान्यं हरतो हर्तृक्रियमाणगुणापेक्षया सुभिक्षदुर्भिक्षाद्यपेक्षया च ताडनाऽङ्गच्छेदनाद्यात्मको वधदण्डः कर्तव्यो राज्ञा, दशकुंभं पुनर्याविदपहृतं एकादशगुणं दण्डं दाप्यः। तस्य च तद्धनं दाप्यः। वक्ष्यमाणञ्च सर्वत्र स्वामिनो दाप्यः॥ ३२०॥

**तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः॥**
**सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम्॥३२१॥**

(१) **मेधातिथिः**। धरणं धरिम तुला तेन मीयन्ते तानि धरिममेयानि घृतादीनां द्रवाणां प्रस्थादिमेयताऽस्तीति कठिनानां परिमेयता भवतीति तदर्थनात्— **सुवर्णरजतादीनाम्**। आदिग्रहणादेव रजते लब्धे पुनरुपादानात्तुल्यग्रहणार्थात्प्रवालादीनि गृह्यन्ते, न तु ताम्रलोहादीनि। तेषां शतादूर्ध्वं हरणे वधः।

किं पुनरेतच्छतं पलानामुत कर्षाणामेव कार्षापणानां वा।

केचिदाहुः पलानामिति। न त्वत्र विशेषे हेतुरस्ति। तस्माद्यस्मिन्देशे धरिममानकाले यया संख्यया व्यवहारः—'शतमिदं सुवर्णस्य' क्वचित्तोलके क्वचित्पलेषु—यथादेशं व्यवस्था।

**उत्तमानां च वाससां** कौशेयपट्टादीनामिति। **शतादभ्यधिके वधः** इत्यनुषङ्गः। अत्रापि शाटकयुर्गमेकमिति संख्यायते। पुष्पपटाद्युपबर्हणं त्वेकमेवेति।

"ननु च सुवर्णरजतादीनामित्येव सिद्धे परिमेयग्रहणमनर्थकम्॥"

नानर्थकं कर्पूरागुरुकस्तूरिकादीनां महार्घाणां ग्रहणार्थम्।

**आदिग्रहणाद्धि** तैजसानि गृह्यन्ते, निष्कादिपरिमाणव्यपदेश्यानि वा। न हि कर्पूरादीनां कर्षादिव्यपदेशोऽस्ति। यद्यपि सुवर्णवद्रजतेऽपि शतसंख्या तथापि प्रायश्चित्तभेदवद्दण्डभेदोऽपि युक्तो विषमसमीकरणस्यान्याय्यत्वात्। अतो यावत्सुवर्णगतस्य मूल्यं तावति रूप्ये गृहीते वधः। कर्पूरादीनां तु पलानामेव शतसंख्या॥ ३२१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। धरिमं तुला तन्मेयानां सुवर्णरजतव्यतिरिक्तानां ताम्रादीनां शतात् निष्कशतात्। एतच्च षोडशमाषकरूपसुवर्णचतुष्टयरूपनिष्कव्यवस्थया ग्राह्यम्। अत्रापि वधो मारणं ब्राह्मणद्रव्यत्वे अन्यत्र त्वङ्गच्छेदादि। सुवर्णेति। सुवर्णरजतोत्तमवाससामल्पानामपि हरणे वध एवेत्यर्थः ॥ ३२१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यथा धान्येन वध उक्तस्तथा तुलापरिच्छेद्यानां सुवर्णरजतादीनामुत्कृष्टानां च वाससां पट्टादीनां पञ्चशताधिकेऽपहृतेवधः कर्त्तव्य एव विषयसमीकरणं चात्र देशकालापहर्तृद्रव्यस्वामिजातिगुणापेक्षया परिहरणीयं एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम् ॥ ३२१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तदण्डमन्यत्रातिदिशति तथेति द्वाभ्याम्। धरिमेति धरिमं तुला तेन परिच्छेद्यानां कार्पासादिद्रव्याणां पलशतादधिके अपहृते वधः। तत्रापि देशकालहर्तृद्रव्यस्वामिजातिगुणापेक्षया ताडनाङ्गच्छेदनमारणादि ज्ञेयम् ॥ ३२१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। धरधटताम्रादीनां तुलामेयानां शतात् निष्कात् अभ्यधिकं हरतः वधः ताडनादि। सुवर्णादि हरतः अल्पानां हरणे वधः ॥ ३२१ ॥

(७) **मणिराजः**। यथा धान्यहरणे वध उक्तः धटिममेयानां धटिमया तुलया मेयानां तुलितानां। सुवर्णरजतादीनां। उत्कृष्टवाससांच शतादभ्यधिके सुवर्णादीनां पलशतात् वस्त्रस्य संख्याशतात् हरणे वधः कार्यः ॥ ३२१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। तथेति। सुवर्णरजतादीनां महार्घाणाञ्च वाससाम्। न केवलं धान्ये यथा पूर्वोक्तो यावत्तुलाछेद्यानामपि सुवर्णरजतप्रवालादीनामुत्कृष्टानाञ्च वाससां चान्तःपट्टादीनां एतच्छतादभ्यधिकेऽपहृते वधः कर्तव्यः। विषमसमीकरणञ्चात्र देशकालाऽपहृतद्रव्यं स्वामिजातिगुणाद्यपेक्षया परिहरणीयम्। अन्यथा महार्घाल्पार्घ्ययोः तुल्यदण्डता स्यादेवं द्रष्टव्यम् ॥ ३२१ ॥

**पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते॥**
**शेषे त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ३२२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। सुबोधोऽयम्। **मूल्यादिति**। नापहृतमेव द्रव्यं देयम्। क्वचित्तज्जातीयं नैव प्राप्यते। अतो रूपकैर्धान्यादिना वा विनिमेयम् ॥ ३२२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पञ्चाशत इति ताम्रादिविषयम्। शेषे पञ्चशत ऊने ॥ ३२२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पूर्वोक्तानां पञ्चशदूर्ध्वं शतं यावदपहारे कृते हस्तच्छेदनं मन्वादिभिरभिहितं शेषेष्वेकपलादारभ्य पञ्चाशत्पलपर्यन्तापहारेऽपहृतधनादेकादशगुणं दण्डं दाप्यः ॥ ३२२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एवमुक्तानां सुवर्णादीनां तोलकानां पञ्चाशत्पर्यन्तमपहृतस्य मूल्यादेकादशगुणो दण्डः पञ्चाशतोऽधिके हस्तच्छेदः ॥ ३२२ ॥

(५) **नन्दनः**। स्वर्णानां पञ्चशतोभ्यधिके हरणे शेषे पञ्चाशतोन्यूने ॥ ३२२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। पञ्चाशतस्तु अधिके ताड्रादि पञ्चाशतन्यूनेन ॥ ३२२ ॥

(७) **मणिरामः**। पूर्वोक्तानां सुवर्णरजतादीनां पंचाशत्त्वमधिके हृते हस्तच्छेदः कार्यः। शेषे एकादिपलादूर्ध्वं पंचाशत्पलपर्यंतं हरणे॥ ३२२॥३२३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पञ्चाशत इति**। एषां पूर्वनिर्दिष्टानां पञ्चाशत ऊर्ध्वं शतस्य यावदपहृते चैतत् हस्तच्छेदनं मन्वादिभिरुच्यते। पञ्चाशतः पञ्चाशतः यावदपहृते तन्मूल्यादेकादशगुणं राजा दण्डं कुर्यात् ॥ ३२२ ॥

**पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ॥**
**मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥ ३२३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। सत्कुले जाता विद्यादिगुणयोगिनः **कुलीनाः**। **नारीणां च विशेषतः** गुणरूपसौभाग्यसंपन्नानामित्यर्थः। चशब्दात्कुलीनानामित्येव परस्परापेक्षाणि नारीणां विशेषणानि। **मुख्यानि** उत्तमानि रत्नानि वज्रवैडूर्यमरकतप्रभृतीनि।

अत्रापि सुवर्णशततुल्यानीत्यपेक्ष्यम्। अन्यथोत्तमत्वमापेक्षिकमिति दण्डो न व्यवतिष्ठेत।

**वधमर्हति**। अनुबन्धाद्यपेक्षया सर्वत्र वध्यर्थो योजनीयः।

अकुलीनानामवशिष्टानाममुख्यानां च 'शेषे त्वेकादशगुण' इत्येव ॥ ३२३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वधः उत्कृष्टापकृष्टापेक्षया मारणाङ्गच्छेदादिः ॥ ३२३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। महाकुलजातानां मनुष्याणां विशेषेण स्त्रीणां महाकुलप्रसूतानां श्रेष्ठानां च रत्नानां वज्रवैडूर्यादीनामपहारे वधमर्हति ॥ ३२३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। मनुष्यरत्नविशेषयोरपहृते* अवश्यं वध इत्याह पुरुषाणामिति। नारीणां विशेषतः कुलजानाम्। कपिंजलानितिवत्त्रित्व विवक्षितम्। मुख्याना वज्रवैडूर्यादीनां रत्नानाम् ॥ ३२३ ॥

(५) **नन्दनः**। ह्रियमाणहरणयोर्जातिगुणाद्यपेक्षया वधशब्दार्थः कल्पनीयः छेदनरूपो मारणरूपो वा ॥ ३२३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पुरुषाणामिति**। महाकुलानां मनुष्याणां विशेषेण च स्त्रीणां महाकुलोत्पन्नानां प्रधानानां मणीनां वज्रवैडुर्यादीनां हरणे देशकालहर्तृस्वामिजात्याद्यपेक्षया ताडनाङ्गच्छेदनात्मकं वधमर्हति ॥ ३२३ ॥

**महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥**
**कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ॥ ३२४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **महापशवो** हस्त्यश्वादयः। **तेषां हरणे** कालकार्यापेक्षा दण्ड प्रक्लृप्तिः।

---

* अपहृते=अपह्नवे (राघ २)

"ननु च सर्वत्रैव कालाद्यपेक्षोक्ता। तथा च कालदेशवयःशक्तीश्चिन्तयेद्दण्डकर्मणीति"।

सत्यम्। विज्ञाते दण्डस्वरूपे न्यूनाधिकभावोऽनुबन्धाद्यपेक्षाः। यथा वधविधौ ताडनमारणादिकल्पनाऽपेक्ष्या। इहात्यन्तविलक्षणो दण्डः। तथा हि विंशतिपगोऽपि खड्गः शस्त्रोद्यतशस्त्रस्य सन्निधौ यदि ह्रियते तेन कार्यातिशयेन तेन च कालेन मारणं दण्डः। अन्यदा द्विगुण एकादशगुणो वा। तथौषधमलभ्यत्वेन महाप्रयोजनं तदुपयोगवेलायां ह्रियते लभ्यानामपि क्वाथाद्यपेक्षं कालातिक्रमणेन महदातुरस्य दुःखं जनयतीति—तत्र महान्दण्डः। अन्यदा तु स्वल्प इति। न तत्रान्तरामन्तरेणेदृशं वैषम्यं लभ्यते। अन्यथा स एवैकः श्लोको दण्डविधौ पठितव्यः स्यात्। तस्माद्वक्तव्यमिदम्। विग्रहकालेऽश्वादीनां राज्यापेक्षो दण्डः। शस्त्राणां राजोपयोगिनां कदाचित्क्षमा कदाचिन्महान्दण्डः। गोमहिष्यादीनां तु प्रजासंबन्धिनां न राज्ञा क्षन्तव्यम्। कार्ये च यदश्वादिभिः कर्तव्य तदप्यपेक्ष्यम्। विग्रहोऽपि यदि पर्वतादौ भवति यत्र नातीवाश्वैः प्रयोजनं भवत्येव दण्डह्रासः।

**कालमासाद्य** ज्ञात्वा निरूप्य **दण्डं कल्पयेत्**। स एवात्र भवति नान्यः शास्त्रम् ॥ ३२४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। महापशूनामश्वादीनां हरणे वधः। शस्त्राणामौषधस्य च हरणे तदेकादशगुणमित्यादिः कार्यबहुत्वाल्पत्वमपेक्ष्य दण्डः। तथा शस्त्रादीनां युद्धकालादौ हरणे ततो द्विगुणमित्याद्युन्नेयमित्यर्थः ॥ ३२४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। महतां पशूनां हस्त्यश्वादिगोमहिष्यादीनांतथा खड्गादीनां शस्त्राणां कल्याणघृतादेश्चौषधस्य च दुर्भिक्षादिरूपं कालं कार्यं प्रयोजनं च सदसद्विनियोगरूपं निरूप्य राजा ताडनाङ्गच्छेदवधरूपं दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ३२४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पश्वादीनामपहारेऽङ्गच्छेदनादिदण्डमात्रमित्याह **महेति**। महापशूनां हस्त्यश्वानाम्। शस्त्राणां खड्गादीनाम्। औषधस्य कल्याणघृतादेः। कालं सुभिक्षदुर्भिक्षरूपम्। कार्यमासन्नं युद्धरोगादि। आसाद्य विचार्य ॥ ३२४ ॥

(५) **नन्दनः**। महापशूनां हस्त्यश्वानां कालं दुर्भिक्षसुभिक्षादिकं कार्यमाह पशुभिरिदंकार्यं शस्त्रैरिदंकार्यमित्यादिकं आसाद्य निरूप्य दण्डं वधमेकादशगुणं वा राजा कल्पयेत् ॥ ३२४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। महापशूनां अश्वादीनां हरणे कालं युद्धादिसमयं आसाद्य कार्यं युद्धादिरूपं प्रकल्पयेत् च पुनःराजा दण्डं वा प्रकल्पयेत् ॥ ३२४ ॥

(७) **मणिरामः**। महापशूनां हस्त्यश्वागोमहिष्यादीनां। महास्त्राणां खड्गादीनां। महदौषधस्य कल्याणघृतादेः। कालं दुर्भिक्षादिरूपं कार्यं सदसद्विनियोगरूपं आसाद्य दंडं अंगछेदरूपं प्रकल्पयेत् ॥ ३२४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **महापशूनामिति**। हस्त्यश्वगोमहिषादीनां महतां पशूनां हरणे खड्गादीनां कल्याणघृतादेश्च कालविग्रहदुर्भिक्षात्मकं कार्यं चापहारप्रयोजनं च्युतवैरज्ववसादादिरूपं पर्यालोच्य राजान्यूनाऽधिकं दण्डं प्रकल्पयेत्। अनुबन्धं परिज्ञाय नैतल्लाघवार्थमपि सादरार्थमुच्यते शस्त्रौषधहस्ताद्यपहारे विग्रहादौ स्थूलानर्थोत्पादनात् ॥ ३२४ ॥

**गोषु ब्राह्मणसंस्थासु खरिकायाश्च भेदने ॥**
**पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥ ३२५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **ब्राह्मणसंस्था** ब्राह्मणाश्रिता ब्राह्मणस्वामिकाः। तासां **हरणे**। षष्ठ्यर्थे सप्तमी। **पशूनां** चाजैडकादीनाम्। बहुवचनं सर्वत्राविवक्षितम्। **सद्यस्तत्क्षणादविचार्य**। पादस्यार्धमर्धपादम्, तदस्यास्तीत्यर्धपादिकः। तच्च संभवति यदि पादार्धे छिद्यते। तेनार्धपादछेदनं कर्तव्यमिति वाक्यार्थः।

**खरिका** यया गोरथक्षेत्रादौ वाह्यते बलीवर्दः। **भेदने** वाह्यमानायाः प्रतोदेन पीडोत्पादने।

'भेदनं' वाहानामुपलक्षणार्थे व्याचक्षते पूर्वे। अवश्यं वाहयन्दुःखयति। प्रतोदेन वाहने एवायं दण्ड इत्यन्ये पठन्ति।

अन्ये तु पादस्य पश्चाद्भागं चतुर्थं **खरिकामाहुः**। खरिकेति या प्रसिद्धा पलायनशीला यां पालोऽन्यो वा भिन्दन्नर्धपादिकः कार्यः।

अन्ये त्वधिकरणसप्तमीं मत्वा गोसंस्थदध्यादीन्यध्याहरन्ति। तदयुक्तम्। श्रुतपदसंबन्धसंभवे कुतोऽध्याहारः ॥ ३२५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ब्राह्मणसंस्थासु ब्राह्मणसंबन्धिनीषु। स्थूरपृष्ठेन भारवोढा वृषः तद्धारः स्थूरिका तस्या भेदने पाटयित्वा तद्गतधान्यादेरपहार इत्यर्थः। पशूनां महिषादीनाम्। अर्धपादिकः छिन्नार्धपादद्वयः ॥ ३२५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणसंबन्धिनीनां गवामपहारे वन्ध्यायाश्च गोर्वाहनार्थे नासाछेदने पशूनां चाजैडकानां दण्डभूयस्त्वाद्यागाद्यर्थानां हरणेऽनन्तरमेव छिन्नार्धपादिकः कार्यः ॥ ३२५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तद्विशेषे अर्धपादछेदोदण्डः स्यादित्याह गोष्विति। ब्राह्मणसंस्थासु तत्संबन्धिनीषु हरण इतिशेषः। भेदनेस्थूरिकायाः वन्ध्यागोर्वाहनार्थं नासिकायां। पशूनां अजाव्यादीनाम् ॥ ३२५ ॥

(५) **नन्दनः**। स्थूरिकानामपार्ष्णेश्चतुरङ्गुलादूर्ध्वःप्रदेशः। ब्राह्मणगोस्थूरिकाभेदने च इतरेषां पशूनां हरणे च भेत्ता हर्त्तार्धपादिकः कार्य्यः ॥ ३२५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। ब्राह्मणसंस्थासु संबन्धिनीषु गोषु पृष्ठे भारयोः प्रच्छुरिकायाः भेदने च पुनः पशूनां हरणे अर्थपादिकः दमः छिन्नार्धद्विपादिकः दमः कार्यः अर्धदण्डः कार्यः ॥ ३२५ ॥

(७) **मणिरामः**। गोषुब्राह्मणसंस्थासु ब्राह्मणसंबंधिनीनां गवामपहारे। छुरिकायाः वंध्यायाः गोः भेदने वाहनार्थं नासाछेदने। पशूनां यागसंबंधिनीनां हरणे **सद्यः** तत्कालमेव। अर्द्धपादिकः **छिन्नार्द्धपादः कार्यः** ॥ ३२५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **गोषु ब्राह्मणसंस्थासु नासिकाश्च भेदने इति**। ब्राह्मणसम्बन्धीनां गवामपहरणे, एवं वन्ध्यायाश्च गोः वाहनार्थं नासिकाभेदने पशूनां चैडकादीनां दण्डभूयस्त्वाद्यागार्थानामपहरणी समनन्तरमेव पादार्धच्छेदयुक्तो दण्डः कार्यः ॥ ३२५ ॥

**सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ।**
**दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च ॥ ३२६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सूत्रमूर्णासणादि**। **लवणानि** सैंधवबिड्लवणादीनि। **यच्चान्यत्पशुसंभवमामिषादि**। **अन्येषामपूपमोदकादीनाम्**। **आदिशब्दः** प्रकारे। प्रकारः सादृश्यं तुल्यता सदृशकार्यकरणोपयोगादिरूपा। तथा च सर्पिर्मण्डेक्षुखण्डशर्कराकिलाटकूर्चिकाद्या अपूपा गृह्यन्ते। **पशुसंभवं** राङ्कवाजिनाद्यपीच्छन्ति केचित्। **आदिग्रहणात्प्रकृतिविकृतिरपि**। । यच्चोभयोपादानं दध्नः क्षीरस्य चेति तदुदाहरणार्थम्। एवं **सूत्रग्रहणेन** सूत्रमयं वासोऽपि गृह्यते। नलिकादीनां सत्यपि सूत्रमयत्वे पशुसंभवत्व उत्तमत्वादुत्तमानां चेत्यस्यापवादविषयः।

प्रकृत्यन्तरे तैलशब्दः स्नेहवाची, न तिलविकार एव। तेनातसीप्रियङ्गुपञ्चाङ्गुलतैलादयोऽपि गृह्यन्ते ॥ ३२६-३२९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। किण्वं मद्यबीजम् ॥ ३२६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ऊर्णादिसूत्रकार्पासिकस्य च किण्वस्य सुराबीजद्रव्यस्य च सूक्ष्मवेणुखण्डनिर्मितजलाहरणभांडादीनां यदप्यन्यत्पशुसंभवं च मृगचर्मखड्गशृङ्गाद्यन्येषामप्येवंविधानामसारप्रायाणां मनःशिलादीनां मद्यानां द्वादशानां पक्वान्नानामोदनव्यतिरिक्तानामप्यपूपमोदकादीनां च कार्पासादिशब्दार्थानां प्रसिद्धानां चापहारे कृतमूल्याद्विगुणो दण्डः कार्यः ॥ ॥ ३२६ ॥ ३२७ ॥३२८ ॥ ३२९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। द्रव्यविशेषेषु तद्द्रव्यमूल्याद्विगुणं दण्डं दापयितुं षडिवशतिं द्रव्यविशेषाननुवदति सूत्रेति चतुर्भिः। किण्वानां सुराबीजानाम्। पानीयस्य पानार्थं संस्कृतस्य ॥ ३२६ ॥

(५) **नन्दनः**। किण्वं सुराप्रकृतिद्रव्यम् ॥ ३२६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। सूत्रादीनां हरणेदण्डमाह सूत्रेतिचतुर्भिः। किण्वानां मद्यबीजानाम् ॥ ४२६ ॥

(७) **मणिरामः**। किण्वानां। सुरोत्पादकद्रव्याणां ॥ ३२६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सूत्रकार्पासकिण्वानामिति** वेणुवैदलभाण्डनामिति। मत्स्यानामिति। अन्येषामिति। ऊर्णादिसूत्रस्य किण्वाख्यस्य च तुराद्रव्यस्थतक्रस्य गोरसस्य **वैदलानाञ्च** वेण्वादित्वङ्निर्मितानां भाण्डानां लवणानां सैन्धवबिड्लवणादीनां मधुनः माक्षिकस्य यदप्यल्पतरपशुप्रभवं शृङ्गदन्तादि तस्य तथाऽन्येषामप्येवंविधानां च सारद्रव्याणां मनःशिलसिन्दूरादीनां ओदनस्य च भक्तसक्त्वादेः पक्वान्नानां चापूपमोदकानां

सर्वेषाञ्च कार्षापणादीनां च प्रसिद्धानां हरणान्मूल्याद् द्विगुणो दण्डःकार्यः ॥ ३२६ ॥ ॥ ३२७ ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥

**वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च ॥**
**मृण्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ॥ ३२७ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । वेणुभाण्डानां तथा वैदलभाण्डानां विदलीकृतान्यकाष्ठभाण्डानाम् ॥ ३२७ ॥

(४) **राघवानन्दः** । वैदलभाण्डानां स्थूलवेणुखण्डनिर्मितजलाहरणादिसमर्थानाम् । भस्मनः कदलीक्षारादेः ॥ ३२७ ॥

(५) **नन्दनः** । वैदलं वेत्रमयं भाण्डमुपकरणम् ॥ ३२७ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । मृण्मयानां भाण्डानाम् ॥ ३२७ ॥

(७) **मणिरामः** । वेणुवैदलभाण्डानाम् । वेणुदंडनिर्मितजलाद्याहरणभाण्डानाम् ॥ ३२७ ॥

**मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च ॥**
**मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥ ३२८ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । पशुसंभवं रोचनादि ॥ ३२८ ॥

(४) **राघवानन्दः** । पशुसंभवं चर्मचामरवर्मरज्जुगोरोचनाशृङ्गास्थिनिर्मितसंपुटकङ्काभरणादिकम् । तस्यापि हरण इत्यनुषज्यते ॥ ३२८ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । पशुसंभवं दुग्धादि ॥ ३२८ ॥

(७) **मणिरामः** । यच्चान्यत् पशुसंभवं मृगचर्मखड्गशृंगादि ॥ ३२८ ॥

**अन्येषां चैवमादीनामद्यानामोदनस्य च ॥**
**पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः ॥ ३२९ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । एवमादिनां पक्वान्नानां व्यञ्जनानाम् । सर्वत्रात्र द्रव्यवर्द्रव्यमूल्यमधिकं देयम् ॥ ३२९ ॥

(४) **राघवानन्दः** । एवमादीनां एवंविधानां पानका*दिद्वादशानाम् । पक्वान्नानामोदनेतरशष्कुल्यादीनाम् ॥ ३२९ ॥

(५) **नन्दनः** । आद्यानां भक्ष्याणाम् ॥ ३२९ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । अन्येषां अजादीनां अद्यानां अदनीयानां च पुनः ओदनस्य भक्तस्य तन्मूल्यात् तद्वस्तुमूल्यात् द्विगुणो दमः ॥ ३२९ ॥

(७) **मणिरामः** । एवमादीनां असारश्रायाणां हरितालादीनां । पक्वान्नानां ओदनतिरिक्तानां ॥ ३२९ ॥

**पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ॥**
**अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ॥ ३३० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। नवमालिकादीनि **पुष्पाणि**। **हरितं धान्यं** क्षेत्रस्थं अपक्वम्। **नगा** वृक्षाः। **अन्येष्वपरिपूतेषु**। बहुवचनात्परिपवनस्य च धान्येष्वेव तुषपलालादि-विमोक्षरूपस्य संभवादुत्तरश्लोके धान्यग्रहणमेवाकृष्यते। **गुल्मादीनां** हि सत्यपि पलाशे व्यामिश्रत्वे पुष्पाणां च परिपूतव्यवहारः।

सप्तमी हरणापेक्षा। तत्तु पूर्वस्मादनुवर्तते।

अत्र **पञ्चकृष्णलो दण्डः**। कृष्णला नानाद्रव्यजाः। अल्पत्वमहत्त्वप्रयोजनापेक्षाः। सुवर्णस्येति पूर्वे ॥ ३३० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। हरिते माषादौ शमीधान्ये धान्येशूकधान्ये। एष्वल्पेषु तथाऽपरिपूतेष्वपृथक्कृतबुसेषु ॥ ३३० ॥

(३) **कुल्लूकः**। पुष्पेषु हरिते क्षेत्रस्थे धान्ये गुल्मलतावृक्षेषु परिवृतेषु अनपावृतवृक्षेषु वक्ष्यमाणश्लोके धान्यादिषु निर्देशात्परिवनसंभवाच्च धान्येषु अन्येषु समर्थपुरुषभारहार्येषु हृतेषु देशकालाद्यपेक्षया सुवर्णस्य रौप्यस्य वा पञ्चकृष्णलमाषपरिमाणो दण्डः स्यात् ॥ ३३० ॥

(४) **राघवानन्दः**। पुष्पादिद्रव्यविशेषापहरणे पञ्चकृष्णलकं दण्डं विदधदपि तान्यनुवदति पुष्पेष्विति। हरिते क्षेत्रस्थधान्ये गृहधान्येषूक्तत्वात्। अपरिपूतेष्वनुत्सादित-तुषादिषु। सुवर्णमाष· पञ्चकृष्णलो माष इत्युक्तोः नतु रूप्यमाषकः ॥ ३३० ॥

(५) **नन्दनः**। धरिमं तुला तेन मेयानामुन्मानयोग्यानांस्वर्णादीनामुत्तमवाससांहरणे पुष्पेषु हरिते नवे धान्येचपरिपूतेष्वशोधितपांसुषु धान्येष्वित्युत्तरश्लोकादपकर्षणीयम् ॥ ३३०

[१] नांपानकादि (न, श) (३३०) अन्येष्व.=अल्पेष्व (क, ख, ग, च, ण, र

(६) **रामचन्द्रः**। हरिते धान्ये माषादौ नगेषु वृक्षेषु अपरिपूतेषु अदूरीकृतबु॰ ॥ ३३० ॥

(७) **मणिरामः**। हिरते क्षेत्रस्थे प्रकर्तिते इति यावत्। नगो वृक्षः। **अन्येषु**। क्षेत्रात्कर्तितेषु धान्येषु अपरिपूतेषु वृषेणादूरीकृततुषेषु। पंचकृष्णालः देशकालाद्यपेक्षया सुवर्णस्य रजतस्य वा ॥ ३३० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पुष्पेष्विति**। पुष्पेषु नीलीक्षेत्रेषु धान्येषु गुल्मलतावृक्षेषु पुरुषभारप्रायेषु वक्ष्यमाणाच्छ्लोकात्परिवपनसंभवाच्च धान्येषु खलवासितापहृतेषु देशकाला-पेक्षया सुवर्णस्य रूप्यस्य वा पञ्चकृष्णलपरिमाणो दण्डःस्यात् ॥ ३३० ॥

---

* पानकादि=मद्य [१] नांपानकादि (राघ. २)=मनःशिलादीनां एवं विधानां मद्य

**परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ।**
**निरन्वये शतं दण्डः सान्वयेऽर्धशतं दमः ॥ ३३१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। मूलमिक्षुद्राक्षादि। **निरन्वये** द्रव्यहरणे। 'अन्वयो'ऽनुनयः, स्वामिनः प्रीत्यादिप्रयोगः—'यत्त्वदीयं तन्मदीयमेवेत्यनया बुद्ध्याऽहं प्रवृत्तः—न चेदेवं तद्-गृहाणे'त्येवमादिवचनम् तद्यत्र न क्रियते **तन्निरन्वयम्**। साहसप्रकारत्वादधिको दण्डः। अन्वयेन सह **सान्वयः**।

अथवा **निरन्वयो** येन सह कश्चिदपि संबन्धो नास्त्येकग्रामवासादिः। ततः शतं दण्डयः। अथवा अनारक्षं **निरन्वयम्**। सति तु रक्षके उभयापराधादल्पो दण्डः। खलस्थेषु धान्येष्वयं **दण्डः**। तत्र हि परिपूयन्ते। गृहस्थेषु त्वेकादशगुणः प्रागुक्तः (३२०) ॥ ३३१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। परिपूतेष्वपास्तबुसेषु। शाकमूलफलेषु बहुमूल्यादत्यन्तोपयुक्तेषु। निरन्वये तद्द्रव्यसंबन्धयोग्यतापादकज्ञानोपाधिकोन्वयो यस्तमभिधाय यत्र हरण न भवति तत्र। तद्विपरीतं सान्वयम् ॥ ३३१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। निष्पुलाकीकृतेषु वृक्षेषु धान्येषु शाकादिषु चापहृतेषु अन्वयो द्रव्यस्वामिनां संबंधः येन सहकश्चिदपि संबन्धो नास्त्येकग्रामवासादिस्तत्र शतंदण्डयः सान्वये तु पञ्चशत्पणो देयः खलस्थेषु च धान्येष्वय दण्डस्तत्र हि परिपूर्यते गृहेष्वेकादशगुणो दण्डः प्रागुक्तः ॥ ३३१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तद्विशेषेषु धान्यादिचतुष्टयेषु व्यवस्थया शतमर्धशतंवा दमं दापयन् तान् उद्दिशति परीति। परिपूतेषु यज्ञाद्यर्थसंस्कृतेषु अपसारिततुषेषु वा। निरन्वये संपूर्णहृते द्रव्यस्वामिना एकग्रामवासादिसंबन्ध इति केचित् ॥ ३३१ ॥

(५) **नन्दनः**। अपहृतेष्वित्येव निरन्वये निःशेषापहारेर्द्धशतम् ॥ ३३१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। परिपूतेषु धान्येषु दूरीकृतबुसेषु निरन्वये अनारक्षे निर्मले सान्वये रक्षासहिते वंशजे ॥ ३३१ ॥

(७) **मणिरामः**। परिपूतेषु अपासिततुषेषु। निरन्वये यस्य धान्यादिकं हृतं तेन एक ग्रामवासादि संबंधाभावे। सान्वये एक ग्रामवासादिसंबंधे ॥ ३३१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। परिपूतेष्विति। अपासितेषु शेषेषु शाकादिषु वाऽपहृतेषु स्वामिना सह संग्रामेऽ (=संग्रꣳस) पहारे पणशतं दण्डः। संगतेषु पुनः पञ्चाशतं दण्डः ॥ ३३१ ॥

**स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् ।**
**निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृतापव्ययते च यत् ॥ ३३२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। परद्रव्यापहरणं **स्तेय**मुच्यते। धात्वर्थप्रसिद्ध्या चास्यैव कर्ता 'स्तेनः'। इह तु विशेषेणायं व्यवहार इष्यते तदर्थोऽयं श्लोकः। न परद्रव्यादानमात्रं स्तेयम्। ऋणादाननिक्षेपादिष्वपि स्तेयदण्डप्रसङ्गात्। संज्ञाभेदो दण्डभेदार्थः।

**कर्म यत्कृतं** परपीडाकं वस्त्रोत्पाटनाग्निदाहद्रव्यापहरणादि। अग्निदाहे यद्यपि द्रव्यापहरणं नास्ति तथापि चौर्यमेव रहसि करणादपह्नवाच्च मन्यन्ते। चौर्ये हि द्रव्यविशेषाश्रयो दण्डः। सोऽत्र न स्यात्। एवमर्थमेव स्तेयप्रकरणोत्कर्षणम्। **प्रसभं कर्मेति** कर्मग्रहणाद्द्रव्यापहारादन्यदप्येवं कृतमयुक्तं साहसमेव। "कस्तर्ह्यग्निदाहादावप्रसभं कृते दण्डः"। कंटकशुद्धौ वक्ष्यामः (९।२५६) अत एव सन्धिच्छेदेऽसत्यपि द्रव्यापहरणे कण्टकशुद्धौ दण्डमामनन्ति। अन्यथा स्तेय एवावक्ष्यत् ॥ ३३२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उपक्लृप्तानि भोजनादिप्रयोजनार्थं सज्जितानि। आद्यं प्रथमसाहसं। अग्निं त्रेताग्निमाधानादिसंस्कृतम् ॥ ३३२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यद्धान्यापहारादिकं कर्मद्रव्यस्वामिसमक्षं बलाद्धृतं तत्साहसं स्यात्सहोबलंतद्भवं साहसमत इह स्तेयदण्डो न कार्यः एतदर्थः स्तेयप्रकरणेऽस्य पाठः। यत्पुनः स्वामिपरोक्षापहृतं तत्स्तेयं भवेत् यच्चहृत्वाऽपह्नुते तदपि स्तेयमेव ॥ ३३२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। स्तेयात्साहसंभिन्दन्नाह स्यादिति। साहसं सहोबलं तेन कृतम्। प्रसभं प्रभोः समक्षम्। अन्वयवत् पयानां शतार्धं दण्डः संख्यान्तरानुक्तेः। स्तेयं प्रभोः परोक्षं हृतंतन्निरन्वयं भवेत् तन्निरन्वयवत् शतदण्डार्हन्। हृता अपव्ययते अपह्नुते यत्र तत्र शतं दण्ड इति ॥ ३३२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। प्रसभं कर्म प्रत्यक्षापहाररूपं कर्म निरन्वयं आरक्षवर्जितम् ॥ ३३२ ॥

(७) **मणिरामः**। साहसस्तेययोर्लक्षणमाह। स्यादिति। यत् धान्यापहारादिकं कर्म अन्वयवत् द्रव्यस्वामिसमक्षं। प्रसभं बलात् कृतं तत्तुसाहसं। निरन्वयं द्रव्यस्वाम्यसमक्षं यत् हृतं तत् स्तेयं। यच्चकृत्वा अपव्ययते अपह्नूते तदपि स्तेयं इत्यर्थः ॥ ३३२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **स्यात्साहसमिति**। यत्कर्मधान्यापहारादिद्रव्यस्वामिसमक्षमेव प्रसह्य कृतं तत्साहसं स्यादतस्तत्र स्तेयदण्डो न कार्यः इत्येवमर्थस्तेयप्रकारस्योपदेशः। यत्पुनः परोक्षं कृतं तत्स्तेयं भवेत्। यद्यपि च हृत्वाऽपह्नुते तदपि स्तेयमेव ॥ ३३२ ॥

**यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः।**
**तस्माद्यं दण्डयद्राजा यश्चाग्निं चोरयेद् गृहात् ॥ ३३३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। एतानि सूत्रादीन्युपक्लृप्तानि प्रत्यासन्नदानोपभोगादिकार्यकालानि अथवा संस्कृतानि कृतसामर्थ्याधानानि तथा तदेवसूत्रं तन्तुवायहस्ते वायनार्थं दत्तं गुणीक्रियते किंचित्परिवर्त्यते – एवं दधिमन्थनमरिचशर्करादिसंस्कृतं क्षीरं घृतमित्यादिसंस्कारः। तत्र शतं दण्डः।

आद्यमिति पाठे प्रथमसाहसः।

**अग्निगृहात्** परिगृहीतं शालाग्निहोत्रेत्यादिकम्–हेमन्ते वा शीतार्दितानां दरिद्राणामप्रणीतमप्यग्नेरुपकल्पनं पाककालः शीतादिनिवृत्त्यर्थं वा तापनकालः। अविशेषेणायमग्नेर्दण्डः स्वल्पस्य बहोरुपक्लृप्तस्यानुपक्लृप्तस्य च।

सत्यपि सूत्रादिदण्डे आदिग्रहणे नाग्नेस्तन्मूल्यादि संभवति, क्रयविक्रयव्यवहाराप्रसिद्धेः। यावता वेन्धनेनाग्निरुपहृतपरिमाण उत्पद्यते यावतीभिर्दक्षणाभिस्तन्मूल्याद्द्विगुणो दण्डः संभवति शक्यते च व्यपदेष्टुम्। तुष्टचुत्पत्तिश्च स्वामिनः स्थितैव। अतस्त्वेताग्निहरणे यावत्पुनराधाने गच्छति प्रायश्चित्तेष्टौ च तावदग्निमते दातव्यः। अतोऽयमग्नेर्दण्डः शालाप्रणीताग्निविषय एव स्वल्पत्वात्। त्रेतायां तु तन्मूल्यादद्विगुण इति। तथा च "सुलभेष्वधिकारनिवृत्तिमकुर्वत्सु यागाङ्गद्रव्येष्वपह्नियमाणेषु कुशकरकाग्निहोत्रद्रव्याण्यपहरतोऽङ्गच्छेदः स्यात्" इति शङ्खः। अग्निषु तु हृतेष्वधिकार एव निवर्तते। तत्र कथं महान् दण्डो न स्यात् ॥ ३३३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्र साहसं सहसा अविविच्य दोषगुणौ यदि कृतौ तदा स्तेयमपि तथैवेत्याशङ्कां प्रसंगादपनयति स्यादिति। नैव तावन्मात्रं साहसं किंतु प्रसभं हठात्स्वामिसमक्षं बलवदन्वयवदनुबन्धि उत्तरकालमपि यत्र न तद्गोप्यते साहसं तदित्यर्थः। निरन्वयं उत्तरकालनिह्नवयत्नसहितं यच्च कृत्वा स्वामिनोऽपव्ययते तदैव निह्नवाय यतते तद्द्रव्याहरणं स्तेयम्। एवं च युद्धादिना यत्परस्वहरणं परमारणादि तत्साहसं निह्नवप्रयत्नवता तु यत्परस्वमादीयते तत् स्तेयमित्यर्थः। तथा अनिह्नवेनचायतकलहादिनिमित्तकं ताडनादि क्रियते तद्दण्डपारुष्यमित्युक्तम् ॥ ३३३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यः पुनरेतानि सूत्रादिद्रव्याण्युपभोगार्थं कृतसंस्काराणि मनुष्यश्चोरयेत् यश्च त्रेताग्निं गृह्याग्निं वाऽग्निगृहाच्चोरयेत्तं राजा प्रथमं साहसं दण्डयेदग्निस्वामिनश्चाधानोपक्षयो दातव्यः। गोविन्दराजस्तुलौकिकाग्निमपिचोरयतो दण्ड इत्याह तदयुक्तमल्पापराधे गुरुदण्डस्यान्याय्यत्वात् ॥ ३३३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। संप्रत्युक्तसूत्रादिद्रव्यापहारे प्रकारविशेषमुपक्षिपन्प्राथमिकं दण्डमाह यस्त्विति। उपक्लृप्तानि उपयोगार्थं कृतसंस्काराणि स्तेनयेत् चौर्यं कुर्यात्। तेषामाद्यं प्रथमसाहसम्। अग्निं गार्हपत्याग्निम्। गृहाग्निगेहात् ॥ ३३३ ॥

(५) **नन्दनः**। एतानि सूत्रकार्पासकिण्वादीनि उपक्लृप्तानि महाभोगार्थं स्तुतानि ॥ ३३३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एतान्युपक्लृप्तानि सूत्रादीनि द्रव्याणि यो नरः स्तेनयेत् चौर्येणगृह्णीयात् तं पुरुषं आद्यं प्रथमसाहसं राजा दण्डयेत् च पुनः यः अग्निं वैतानाग्निं गृह्णीयात् चौर्येण नयेत्सोपि प्रथमसाहसं दण्ड्यः ॥ ३३३ ॥

(७) **मणिरामः**। एतानि पूर्वोक्तसूत्रादिद्रव्याणि। उपक्लृप्तानि उपभोगार्थं कृतसंस्काराणि। अग्निं त्रेताग्निं। गृहात् अग्निं गृहात्। आद्यं प्रथमसाहसं सार्द्धद्विशतपणात्मकं ॥ ३३३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यश्चैतानिति**। एतानि सूत्रादीनि द्रव्याणि उपभोगार्थमुद्यमितानि यो मनुष्यश्चोरयेत् यश्चाग्निं लौकिकमपि चोरयेत् तं प्रथमसाहसं राजा दण्डयेत्। अग्नेश्च

मूल्यव्यवहाराप्रसिद्धेस्तन्मूल्यात् द्विगुणो दम इत्तेतदसंभवे सति सूत्रादिभ्यः पृथग्ग्रहणम् ॥ ३३३ ॥

**येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ॥**
**तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ३३४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। भूयोभूयः प्रवृत्तस्यायं दण्डः। यो धनेन दण्डितोऽपि न मार्गेऽवतिष्ठते तस्य त्रिचतुर्दण्डितस्यानवतिष्ठमानस्य द्रव्यजातिपरिमाणानपेक्षः सन्धिच्छेदाद्यनपेक्षश्चौर्यक्रियामात्राश्रितोऽङ्गच्छेदः। यस्य यस्याङ्गस्य बलमाश्रित्यावतिष्ठते स्तेनश्चौर्ये प्रवर्तते तत्तदस्य हरेच्छिन्द्यात्। यथा कश्चित्पादबलमाश्रित्यावष्टभ्य पलायते 'न मामनुगंतुं कश्चिदपि शक्नोतीति' तस्य पादच्छेदः। अन्यः 'संधिभेदज्ञोऽहं' तस्य हस्तच्छेदः। **प्रत्यादेशाय** प्रतिरूपफलदर्शनाय। स्वावष्टंभेन साभिमानं सक्रोधं सावज्ञं न्यक्करणं वा 'प्रत्यादेशः'—य एवं करोति तस्य तस्याहमेवं कर्तेति व्याख्यापनं 'प्रत्यादेशः' ॥ ३३४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विचेष्टते विरुद्धं चेष्टते द्रव्यं हरति। हरेदपनयेदतिशयितापराधे। प्रत्यादेशायान्यस्यापि निषेधाय ॥ ३३४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। येन येन अङ्गेन हस्तपादादिना येन प्रकारेण संधिच्छेदादिना चौरो मनुष्येषु विरुद्धं धनापहारादिकंचेष्टते तस्य तदेवाङ्गं प्रसङ्गनिवारणाय राजा छेदयेत् तद्व धनस्वाम्युत्कर्षापेक्षयाऽयमङ्गच्छेदः ॥ ३३४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। येनाङ्गविशेषेण द्रव्यस्वामिनमनुरुन्धानोस्तेनयेत्तस्य तत्तदवयवं छिन्द्यादित्याह येनेति। यथा यथावत्। अस्य चोरस्य। प्रत्यादेशाय पुनःप्रसंगवारणाय ॥ ३३४ ॥

(५) **नन्दनः**। अर्थदण्डे पुनरपि स्तेनयन्तं प्रत्याह येन येन यथेति। विचेष्टते स्तेनयति हरेच्छिन्द्यात् प्रत्यादेशाय प्रतिषेधाय अपुनरपराधायेति यावत् ॥ ३३४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। पार्थिवः प्रत्यादेशाय चौर्यनिराकरणाय एतस्य तदेव वस्तु हरेत् ॥ ३३४ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रत्यादेशाय। तदंगेन पुनरेवं प्रसंगो न स्यादिति निवारणाय ॥ ३३४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **येन येनेति**। यच्च येन हस्तपादादिकाङ्गेन येव प्रकारेण ग्रन्थिच्छेदनिःश्रेण्यारोहणादिना चौरो मनुष्येषु विरुद्धं धनाऽपहारादि कर्तुमीहते तत्तदेवाङ्गं तस्याभ्यासप्रवृत्तौ सत्यां तदपराधच्छेदनाय राजा छेदयेत् ॥ ३३४ ॥

**पिताऽऽचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ॥**
**नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥ ३३५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'भार्या पुत्रः स्वका तनुः' आत्मीयं शरीरं—कः पुनरात्मनो दण्डः। प्रायश्चित्ततपोधनदानादिविवक्षितम्। विचलितो धर्मात् स्वकात् यो यः स्वधर्मान्नानुतिष्ठति स सर्वो दण्ड्यः ॥ ३३५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पितेत्यादि येषां हिंसायां पापातिशयस्तेषामपि दण्डचान्तरवद्दण्डने न दोष इत्यर्थः ॥ ३३५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पित्राचार्यमिव भ्रातृपत्नीपुत्रपुरोहितानां मध्यात्स्वधर्मे यो नावतिष्ठते स राज्ञोऽदण्डनीयो नास्त्यपि तु दण्डनीय एव ॥ ३३५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। स्वपित्रादेस्तेयादिकर्तृत्वे राज्ञः का गतिस्तत्राह पितेत्यादि। स्वधर्मे न तिष्ठति स्वधर्माच्च्युतः सोप्यवश्यं दण्डचः ॥ ३३५ ॥

(५) **नन्दनः**। पित्रादिष्वप्यपराधिषु राज्ञा दण्डो धारयितव्यः किं पुनरन्येष्वित्यभिप्रायेणाह पिताचार्य्य इति ॥ ३३५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अदण्डानाह पितेति ॥ ३३५ ॥

(७) **मणिरामः**। पित्रादीनां मध्ये यः स्वधर्मे न तिष्ठति सः राज्ञः दंडनीयो न इति न अपितु सोपि दंडच एवेत्यर्थः ॥ ३३५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पिताचार्य इति**। पित्राचार्यमित्रमातृभार्यापुत्रपुरोहितानां मध्याद्यः स्वधर्मे न प्रवर्तेत स नादण्डनीयो नाम राज्ञो वर्तते, अपितु सोऽपि दण्डनीयः। पितृमात्रादीनां गौरवस्नेहाभ्यां अदण्डशंकायामिदं वचनम् ॥ ३३५ ॥

**कार्षापणं भवेद्दण्डचो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ॥**
**तत्र राजा भवेद्दण्डचः सहस्रमिति धारणा ॥ ३३६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **प्राकृतो जनः** सामान्यपुरुषो यो नातिगुणसंयुक्तः। तस्य **यत्र** यस्मिन्नपराधे यावान् दण्डस्तत्सहस्रगुणो राज्ञः। कार्षापणग्रहणस्य दण्डपरिमाणोपलक्षणार्थत्वात् दृष्टार्थत्वात् दण्डस्य। तस्य चात्मानमनियम्य परो नियन्तुं न शक्यत इति युक्तं प्रत्यपराधे राज्ञो दण्डार्हत्वम्। महाधनत्वादल्पं दण्डं न विगणयेत्। राजाधिकृतानां मन्त्रिपुरोहितादीनामनयैव कल्पनया न्यूनाधिकभावः।

धनदण्डश्च ब्राह्मणेभ्योऽप्सु प्रवेशनेन वरुणाय वा। यतो वक्ष्यति 'राज्ञां' दण्डधरो हि सः' (९/२४५) ॥ ३३६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। किंबहुनाऽऽत्मापि दण्डच एवेत्याह कार्षापणमिति। तच्च द्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो देयमिति तात्पर्यम्। प्राकृतः अधन इति वाच्ये प्राकृत इत्यैश्वर्यापेक्षया राजामात्यादिनामप्यधिकदण्डत्वमुक्तम्। धारणा निश्चयः ॥ ३३६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यत्रापराधे राजव्यतिरिक्तो जनः कार्षापणं दण्डनीयो भवेत्तस्मिन्नपराधे राजा पणसहस्रं दण्डनीय इति निश्चयः स्वार्थदण्डत्वप्सु प्रवेशयेद् ब्राह्मणेभ्यो वा दद्यात् ईशो दण्यस्य वारुण इति वक्ष्यमाणत्वात्॥ ३३६॥

(४) **राघवानन्दः**। ननु तृपतेर्दण्डो नास्ति चेत्प्राप्तं व्यभिचारादित्वमस्ति चेत्कथं दण्डचस्तत्राह कार्षेति। यत्रापराधे प्राकृतः कार्षपणं दण्डमर्हति तस्मिन् राजा सहस्रं पणानां ब्राह्मणाय दद्यात् विद्वान्सर्वस्वमर्हतीत्युक्तेः ॥ ३३६ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ शक्तितारम्यतो दण्डतारतम्यमाह कार्षापणंभवेदिति। यत्रापराधे राजशब्दोयमाढ्यवचनः॥ ३३६॥

(६) **रामचन्द्रः**। राजा उपलक्षणं धनिकस्य॥ ३३६॥

(७) **मणिरामः**। यत्र अपराधे अन्यः प्राकृतो जनः राजव्यतिरिक्तः कार्षापणं पणमात्रं दंड्यः भवेत् तत्रापराधे राजा सहस्रं दंडनीयः इति धारणा निश्चयः। स्वदंडं पुनः राजा-अप्सु प्रक्षियेत् ब्राह्मणेभ्यो वा दद्यादित्यर्थः॥ ३३६॥

(८) **गोविन्दराजः**। **कार्षापणमिति।** यस्मिन्नपराधे राजव्यतिरिक्तो जनः पणं दण्डनीयो भवेत्तस्मिन्नपराधे राजा पणसहस्रं दण्डनीय इति निश्चयः। अप्सु प्रवेश्य तं दण्डमित्यादि वक्ष्यमाणेन तन्मध्ये राजात्मको दण्डः प्रक्षेप्तव्यो ब्राह्मणाय वा देयः॥ ३३६॥

**अष्टापाद्य तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम्॥**
**षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च॥ ३३७॥**

(१) **मेधातिथिः**। **तद्दोषगुणविद्धि स इति** हेत्वभिधानाद्विदुषां दण्डोऽयम्।

यत्र खलजन एकं कार्षापणं दाप्यते तत्र विद्वान् शूद्रोऽष्टगुणम्। अष्टभिः **आपाद्यते** संबध्यते। **यत्किल्बिषं** पापं तदेवमुच्यते। अष्टभिर्वाऽऽपाद्यत आहन्यते गुण्यत इति यावत्। उभयथाऽप्यष्टगुणस्य वाचकोऽऽष्टापाद्यशब्दः। एवं तदेव द्विगुणं वैश्यस्य। स हि साक्षाद-ध्ययनज्ञानयोरधिकृतः। शूद्रस्तु कथंचिद्ब्राह्मणापाश्रिततत्सङ्गत्या कियदपि ज्ञास्यति। क्षत्रियस्तु रक्षाधिकारदोषेण समाने विद्वत्त्वे ततोऽपि द्विगुणं दण्ड्यते। ब्राह्मणे तु दण्डविधौ न तृप्यति। **चतुःषष्टिशतमष्टविंशं** वा शतमिति। तस्य हि प्रवचनमुपदेष्टृत्वं वाधिकं च—यतो रक्षा ततो भवेत्। प्राकृतजनस्य तिर्यक्प्रख्यस्य कोऽपराधः। अविद्वांसो गुणदोषानभिज्ञा अकार्ये प्रवर्तन्ते। विद्वानपि तथैव चेद्वर्तेत हन्त हतं जगत्, तृतीयस्य शिक्षितुरभावात्। तदुक्तं "द्वौ लोकविश्रुतौ राजा ब्राह्मणश्च बहुश्रुत" इति। राज्ञः पूर्वेण दण्डाधिक्यमनेन ब्राह्मणस्य।

आधिक्यमात्राविधिश्चायं न यथाश्रुतसंख्याविधिः—ब्राह्मणदण्डेऽनवस्थाश्रवणादयं वायं वेति। न च विकल्पो युक्तो व्यवस्थाहेतुत्वाभावात्। तुल्यबलस्यैव विकल्पस्य पर-विषयाश्रयानुपपत्तेः। को हि राजा द्विजगुणमृत्सृज्य चतुःषष्टिं ग्रहीष्यति। यदि परमदृष्टार्थो दण्डो विकल्प उपपद्येत—न चादृष्टार्थोऽयमित्युक्तम्। तथा च गौतमः—(१२/१७) "विदुषो-

ऽतिक्रमदण्डभूयस्त्वम्" इत्याह। तस्मादनवस्था विधित्वं व्याहन्ति। न च गुणापेक्षो विकल्पो युक्तो नष्टादिश्लोकेनैव सिद्धत्वात्। अर्थवत्त्वाच्चात्र विध्यवगतिः। स चाधिक्यविधौ लब्धालंबन इति न यथाश्रुतपरिकल्पने विकल्पने समर्थः ॥ ३३७-३३८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अष्टापाद्यमष्टगुणं यदपहृतं द्रव्यं तन्मूल्यादष्टगुणितो दण्डो ग्राह्य इत्यर्थः। एतच्च प्रागुक्तप्रतिनियतदण्डरज्जुघटादिस्तेयव्यतिरेकेण किंविषयस्यापराधस्याष्टगुणत्वं अष्टगुणदण्डापनोद्यतैव ॥ ३३७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तद्दोषगुणविद्विस स इति सर्वत्र संबध्यते यस्मिन्स्तेये यो दण्ड उक्तः सस्तेयगुणदोषज्ञस्य शूद्रस्याष्टभिरापाद्यते गुण्यत इत्यष्टगुणः कर्तव्यः षोडशगुणो गुणदोषज्ञस्य वैश्यस्य द्वात्रिंशद्गुणस्तथाविधक्षत्रियस्य चतुःषष्टि गुणो गुणदोषविदुषो ब्राह्मणस्य शतगुणोवाऽष्टाविंशत्यधिकशतगुणोवा गुणातिशयापेक्षया ब्राह्मणस्यैव ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एवं स्तेयदोषानभिज्ञेषु चतुर्षु वर्णेषु साधारणं दण्डमुक्त्वा तद्विज्ञेषु तद्विशेषमाह अष्टेति द्वाभ्याम्। अष्टापाद्यं अष्टाभिरापाद्यते गण्यत इत्यष्टापाद्यं यस्मिन् स्तेये यो दण्ड उक्तो मूर्खस्य शूद्रस्य तद्दोषज्ञस्य तदष्टगुणं किल्बिषं दण्डरूपम्। एवं षोडशद्वात्रिंशद्वैश्यक्षत्रिययोः ॥ ३३७ ॥

(५) **नन्दनः**। ज्ञानतारतम्यतश्च दण्डतारतम्यं श्लोकद्वयेनाह अष्टापाद्यन्त्विति। स्तेये कृते आपाद्यमापादयितव्यं किल्बिषं दण्डः शूद्रस्याष्टभवत्यपहृतद्रव्याष्टगुणं भवतीत्यर्थः अज्ञत्वात्। वैश्ये तु षोडशगुणमल्पज्ञत्वात्। क्षत्रियस्य द्वात्रिंशद्गुणं ज्ञत्वात् ॥ ३३७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। शूद्रस्य अष्टभिर्भागो ग्राह्यः भवति। वैश्यस्य षोडशो भागः हरेत् किल्बिषं दण्डनिमित्तापराधम् ॥ ३३७ ॥

(७) **माणिरामः**। गुणविद्विष इति सर्वत्रान्वेति। यस्मिंस्तेये यत्किल्बिषं पापमुक्तं तत् स्तेयदोषगुणविद्विषः शूद्रस्य अष्टगुणित वैश्यस्य षोडशगुणित क्षत्रियस्य द्वात्रिंशद्गुणितं ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिगुणितं शतगुणितं वा अष्टाविंशत्यधिकशतगुणं वा भवेत्। स्तेयदोषगुणं ज्ञात्वापि स्तेये प्रवृत्त्या विद्विषतेत्यवधेयं ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। अष्टापाद्यमिति। ब्राह्मणस्येति। यस्मिंस्तेये यो दण्ड उक्तः स गुणदोषज्ञस्य शूद्रस्याष्टभिरापद्यते गुणतोऽष्टगुणः कार्यः। षोडशगुणो विदुषो वैश्यस्य द्वात्रिंशद्गुणः शास्त्रोक्तस्य क्षत्रियस्य चतुःषष्टिगुणो ब्राह्मणस्य द्विचतुःषष्टिगुणो वा पूर्णं वा शतं गुणातिशयापेक्षया यस्मादसौ ब्राह्मणः स्तेयगुणदोषज्ञः ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥

**ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत्।।**
**द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविध्धि सः।। ३३८।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ब्राह्मणस्य पक्षत्रयं निर्गुणगुणवदतिगुणापेक्षया। अतएव तृतीये हेतुतया ज्ञानमुक्तम्। दोषः पापः गुणः पुण्यम्। केचित्तु दोषगुणित्वं विशेषणं तथा च तदज्ञस्य शूद्रस्य स एवाष्टगुणः एवं क्षत्रियादरेपीत्याहुः। अन्ये तु शूद्रादिपदानि राजसेवकशूद्रादिपराण्यत्र तेषामितर-शूद्राद्यपेक्षयाऽष्टगुणत्वादित्याहुः॥ ३३८॥

(४) **राघवानन्दः**। ब्राह्मणस्य तु चतुःषष्ट्यादिविकल्पस्तपो-विद्यादिक्रमापेक्षया। ब्राह्मणस्य दण्डाधिक्ये हेतुस्तद्दोषेत्यादि। अन्येषां तद्वत्त्वं विप्रोपदेशादिति भावः। विदुषि विप्रे चतुःषष्टि तपोयुक्ते तस्मिन् शतं तपोग्नियुक्ते तस्मिन् अष्टाविंशत्युत्तरशतमित्युन्नेयम्॥ ३३८॥

(५) **नन्दनः**। ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिगुणं ज्ञतमत्वात्। ब्राह्मणविषये विज्ञानतारतम्याभि-प्रायेणोक्तं पूर्णं वापीत्यादि तद्दोषगुणवित्तस्य स्तेयस्य करणं दोषोऽकरणं गुण इत्येवं वेत्ति। यद्वा गुण आवर्त्तनमुत्तरोत्तराधिक्यं वेत्तीति तद्दोषगुणविध्धि यस्मात्स ब्राह्मणस्तस्मात्तस्य दण्डो देय इति। एवं हेतुवचनबलादेवैष ज्ञानवैषम्यप्रयुक्तो दण्डे वैषम्यविधिः क्षत्रियादिष्वपि कल्पनीयः। .अन्ये त्वाहुः। किल्बिषशब्दोऽयं दोषवचनः नार्थदण्डवचनः तत्र हेतुर्वाग्दण्डपारूष्ययोर्जात्युत्कर्षवशेन दण्डलाघववचनमिति॥ ३३८॥

**वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च।।**
**तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत्।। ३३९।।**

(१) **मेधातिथिः**। वनस्पत एव वानस्पत्यं वृक्षाः स्वार्थेप्रत्ययः ग्रासार्थं गृह्यमाणमस्तेयं वंशांकुरादिमूलफलं वनस्पतीनामन्याद्वेससस्यादिसूत्रादिगणेऽग्रासार्थं मूलफलाहरणे दण्ड उक्तः अस्तेयवचनं ग्रासार्थं मात्रार्थमक्षीणवृत्तेरपि कथंचिज्जातलौल्यस्य स्मृत्यन्तरदर्शनात्स्वापरिवृत्तेश्च दण्डः। तथा च गौतमः पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानामिति दोषार्थमाहिताग्नेरसंनिहिते वनस्पतावुद्वात्यग्नौ तद्धारणार्थं काष्ठमदोषं पालाशीर्वासमिधो दध्यात् अप्रचुरपलाशे च ग्रामे कथं स्यादित्यादिगृह्येरन्न दोषः तृणं च गोभ्यः तादर्थ्ये चतुर्थी गोग्रगणात्प्रस्तारार्थं दोष एव ये तु ग्रासार्थपदेन गवामभिसंबंधमिच्छन्ति तेषां गोभ्य इति नोपपद्यते षष्ठी हि तत्प्रयुक्ता॥ ३३९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वानस्पत्यं वनस्पतिवृक्षमात्रं तद्भवम्। तेनौषधीमात्रव्यवच्छेदः। एतच्चारण्यगतं अपरिवृतानामिति गौतमस्मरणात्। अपरिवृताऽपरिगृहीताऽत्रेष्टा। अग्न्यर्थं वैतानिकाग्न्यर्थम्। एवं च वृक्षास्तृणकाष्ठादीनि च गृहाच्छादनाद्यर्थमरण्यादपि राजाऽननुमत्या नीतानि स्तैन्यनिमित्तान्येवेत्युक्तम्॥ ३३९॥

(३) **कुल्लूकः**। वीरुद्वनस्पतीनां पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानामिति गौतमवचनात् अपरिवृतवानस्पत्यादीनां मूलफलहोमीयाग्न्यर्थं च दारू गोग्रासार्थं च तृणं परकीयमस्तेयं मनुराह तस्मान्न दण्डो नाप्यधर्मः॥ ३३९॥

(४) **राघवानन्दः**। उपसंहारस्य फलवादेन राज्ञो महत्कार्यं दंडमित्यत्र सूचितस्य प्रतिप्रसवमाह वानस्पत्यमिति। वानस्पत्यं वनस्पत्युद्भवम्। ग्राम्येच्छया गोप्रचारो भूमिराजवशेनवा द्विजस्तृणैधःपुष्पाणि सर्वतः स्ववदाहरेदिति याज्ञवल्क्योक्तेः गोप्रचारः गोचरणार्था भूमिः।

स्ववदात्मीयवत्। तथा गौतमोपि वीरुद्वनस्पतीनांच पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चानृतानामिति॥ ३३९॥

(५) **नन्दनः**। वनस्पतयो वृक्षवल्यादयस्तत्र भवः वानस्पत्यो मूलफलादिरहित इति शेषः अग्न्यर्थं गोभ्यो गवाम्॥ ३३९॥

(६) **रामचन्द्रः**। दारु काष्ठं अग्न्यर्थं अस्तेयं मनुरब्रवीत्॥ ३३९॥

(८) **गोविन्दराजः**। पुष्पाणि फलानि अपरिवृत्तानामिति गौतमस्मरणादपरिवृत्तवनस्पत्यादि-संबंधिमूलफलं गवाग्निसाहचर्यं दृष्टार्थं शास्त्रिताग्न्यर्थं च दारू गत्यन्तराभावे चात्र गोग्रासार्थं तृणं परकीयमपि अस्तेयं मनुराह अतश्चात्र दंडाद्यभावः॥ ३३९॥

**योदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम्॥**
**याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः॥ ३४०॥**

(१) **मेधातिथिः**। अतिदेशोयं यो ब्राह्मणश्चौरानुपजीवति स चौरवद्दण्ड्यो याजनाध्यापनेनापि अपिः क्रियान्तरसूचकः स्तेनं प्रतिगृह्णतां क्षत्रियादीनामन्यथैव वार्तादिस्वकर्मणा चौरं गृह्णतां ब्राह्मणग्रहणन्तु मया किल धर्मेणार्जितं याजयतेत्यभिमाननिवृत्यर्थं अदत्तमादत्ते गृह्णाति इत्यदत्तादायी चौरः लिप्सेत लब्धुमिच्छेद् गृहीतास्वपि दक्षिणासु तत्संबंधादेव चौरनिग्रहः॥ ३४०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स्तेनाद्याजनादिना द्रव्यग्रहणेपि स्तेनवद्दण्डयेदित्याह य इति॥ ३४०॥

(३) **कुल्लूकः**। अदत्तादायिनश्चौरस्य हस्ताद्यो ब्राह्मणो यजनाध्यापनप्रतिग्रहैरपि परकीयधनं ज्ञात्वा लब्धुमिच्छेत्स चौरवच्चौरतुल्यो ज्ञेयः अतः स एव दण्ड्यः॥ ३४०॥

(४) **राघवानन्दः**। याजनाद्युपायैरपि चौराध्धनमिच्छंस्तेनो भवतीत्याह य इति। अदत्तमादातुं शीलं यस्य सोऽदत्तादायी तस्य यज्ञाद्यर्थधनस्वत्वानुत्पत्तेरिति भावः॥ ३४०॥

(५) **नन्दनः**। अदत्तादायीति स्तेनसाहसिकयोर्ग्रहणं हस्तात् सकाशान्न केवलं प्रतिग्रहणं किन्तु याजनाध्यापनेनापीति यथा स्तेनस्तथैव सः सोऽपि स्तेनवद्दण्ड्य इत्यर्थः॥ ३४०॥

(६) **रामचन्द्रः**। यः ब्राह्मणः अदत्तदायिनः स्तेनस्य हस्तात् धनं लिप्सेत याजनाध्यापनेन वा स्तेनान् लब्धधनद्विजः यथा स्तेनः चौरः तथैव स ब्राह्मणः। चौरद्रव्यस्य संग्रहात् संसर्गदोषी भवति॥ ३४०॥

(८) **गोविन्दराजः**। य इति। अदत्तग्राहिणश्चौरस्य ब्राह्मणो याजनाध्यापनप्रतिग्रहैरपि परकीयं धनमप्यपि गृह्णाति सोऽपि चौरो विज्ञेयः अतश्चासौ चौरवद्दण्ड्यः॥ ३४०॥

**द्विजोध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके॥**
**आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति॥ ३४१॥**

(१) **मेधातिथिः**। द्विजग्रहणं शूद्रप्रतिषेधार्थं अध्वगो नैकग्रामवासी तत्रापि क्षीणवृत्तिः क्षीणपथ्योदनः द्वाविक्षुदण्डौ मूलके प्रदर्शनार्थं चैतत्परिमितहरीतकमुद्गादिशमीधान्यानां तथा च शमीत्रपुसयुग्यघासेषु च नाप्रतिषेध इति स्मृत्यन्तरं परक्षेत्रात्परकीयस्थानादित्यर्थः परिवृत्तादपि॥ ३४१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आददानो अनुक्त्वापि॥ ३४१॥

(३) **कुल्लूकः**। द्विजातिः पथिकः क्षीणपाथेयः द्वाविक्षुदण्डौ द्वे वा मूलके परकीयक्षेत्राद् गृह्णन् दण्डदानयोग्यो न भवति॥ ३४१॥

(४) **राघवानन्दः**। क्षीणवृत्तिपथिकद्विजातेर्द्रव्यविशेषे दण्डाभावमाह द्विज इति। मूलके मूलकं प्रसिद्धम्॥ ३४१॥

(५) **नन्दनः**। इक्षुमूलयोर्ग्रहणं प्राधारणार्थानां फलादीनामप्युपलक्षणार्थम्॥ ३४१॥

(६) **रामचन्द्रः**। इक्षू द्वे च पुनः द्वे मूलके॥ ३४१॥

(८) **गोविन्दराजः**। द्विज इति। द्विजातिः पथिकः क्षीणपाथेयः द्वाविक्षू द्वे च मूलके तु त्रपुसीसादि परक्षेत्रात् गृह्णन् दंडं दातुं योग्यो न भवति॥ ३४१॥

**असंदितानां संदाता संदितानां च मोक्षकः॥**
**दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम्॥ ३४२॥**

(१) **मेधातिथिः**। पश्वादयो विमुक्तशृंखलादिबंधना मुस्तादियवभूयिष्ठेषु विजनेषु वार्यन्ते ततश्चेन्निद्रायति स्वामिनि पाले वा कश्चित् सन्दानवतः कुर्यात्। नूनं निनीषत्यसाविति शंकया चौरवद् दंड्यः यस्तु स्वामिगृहच्युतं यूथभ्रंशागतं वा रक्षितुमेव वा बध्नीयान्न तस्य दोष एवं गवादीनामपि गले दामादि संजात एष एव दमः ये च संदिताः पादस्थशृंखलादिना तेषां मोक्षकः दासांश्च रहसि प्रोत्साह्य भक्तदासादीनपहरत्यहन्ते बहु ददामि किमेतं भजस इति कुलीनानां हरणे वध उक्तः पुरुषाणामित्यत्रानेन दासा मुच्यन्ते यद्येवं तत्रैव कुलीनमुक्तमेवं प्रोत्साह्य नयनग्रहणं न कर्तव्यं तत्प्रबलादिना चौर्येण वेति अश्वरथहर्तेति अश्वानां रथानां च महापशूनामित्यत्र राजसंबंधिनोऽश्वा इमे तु जनपदानां राजेच्छया दण्डः इह तु नियतो वधः। यद्यपि बहवश्चौरदंडास्तथापि स्मृत्यन्तरे॥ बंदिग्राहांस्तथा वाजिकुंजराणा च हारिणः॥ प्रसह्यघातिनश्चैव शूलमारोपयेत्तानिति॥ इहापि सामान्यतो येन येनेत्यपक्रम्य तत्तदेव हरेदिति। अन्येत्वश्वयुक्तो रथ इति सामान्यं मन्यन्ते प्रदर्शनाच्चाश्वगोरथादीनां तत्र केवलानामश्वानां रथस्य च दण्डश्चिन्त्यः स्मृत्यन्तरे केवलानामश्वानां चौरदंडस्योक्तत्वात् यद्यप्ययुक्तानामपि सिद्धो ये तु प्रोत्साह्य नयनं हरणं मन्यन्ते तेषामश्वरथशब्देन रथकारो लक्ष्यते रथकर्तेति स च सर्वशिल्पार्थं शिल्पिना हरणे चौरदंडः अश्वानामपि प्रोत्साहनं वडवादर्शनेन॥ ३४२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। असंदितानां अबद्धानां अस्वामिकतयोत्सृष्टानां संवाहनादिकर्ता संदाता। संदितानामन्यपशूनां तद्विरोधाचरणबुद्ध्या मोक्षकः। दासाश्वरथहर्ता कथंचित् प्रतारणादिना तैः स्वकर्म कारयन्। तेन तदस्तेयेपि तत्कर्मस्तेयात्तत्स्तेयादिदेशः॥ ३४२।

(३) **कुल्लूकः**। अबद्धानामश्वादीनां परकीयानां यो दर्पेण बंधयिता बद्धानां मदुरादौ मोचयिता यो दासाश्वरथापहारी स चौरदंडं प्राप्नुयात् स च गुरुलघ्वपराधानुसारेण मारणांगच्छेदनधनाद्यपहाररूपो बोद्धव्यः॥ ३४२॥

(४) **राघवानन्दः**। अस्तेयेष्वपि दंडार्थं स्तेयमाह असंदितानामिति। अनागस्त्वेनाऽवरोधानर्हपरकीयपशूनां दर्पात्संदाताऽवरोद्धा कृतागस्त्वेनाऽवरूद्धानां मोक्षयितेत्यन्वयः। दासादित्रयहर्ता च पणानां सहस्रं दण्ड्यः॥ ३४२॥

(५) **नन्दनः**। असंधितानां संधाता॥ ३४२॥

(६) **रामचन्द्रः**। असंदितानां अबद्धानां संदाता बंधकः च पुनः संदितानां मोक्षकः भृत्यहर्ता अश्वस्य हर्ता सः चौरकिल्विषं चौरस्येव किल्विषे दण्डार्हः स्यात्॥ ३४२॥

(७) **मणिरामः**। असंहितानां अबद्धानामश्वादीनां परकीयानां दर्पेण संदाता बंधयिता। संदितानां बद्धानाम्॥ ३४२॥ ३४३॥

(८) **गोविन्दराजः**। असंदितानामिति। परकीयानामश्वादीनामबद्धानां दर्पेण बंधयिता बद्धानां वा मोचयिता रथानां वा मंदुरादौ चोरयिता यो वा दासाश्वरथापहारी स चौरदण्डं प्राप्नुयात्॥ ३४२॥

**अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम्॥**
**यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥ ३४३॥**

(१) **मेधातिथिः**। अनेनान्तरप्रक्रान्तेन मार्गेण चौरनिग्रहं कुर्वाणो यशः सकलजनसाधुवादो अस्मिल्लोके यावज्जीवनम्—प्रेत्य मृतश्चानुत्तमं स्वर्गाख्यं सुखमश्नुत इति। प्रकरणोपसंहारोऽयम्॥ ३४३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स्तेयम्॥ ३४३॥

(३) **कुल्लूकः**। अनेनोक्तविधानेन राजा चौरनियमनं कुर्वाण इहलोके ख्यातिं परलोके चोत्कृष्टसुखं प्राप्नुयात्॥ ३४३॥

(४) **राघवानन्दः**। स्तेयनिग्रहाद्युपसंहरन्राजानं फलेन तत्रावर्जयति अनेनेति। सुखं प्रजारक्षणपुण्येन॥ ३४३॥

(८) **गोविन्दराजः**। अनेनेति। अनेनोक्तविधानेन चौरनियमनं कुर्वन् नृप इहलोके यशोलाभं परत्र चोत्तमं सुखं प्राप्नुयात्॥ ३४३॥

**ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम्॥**
**नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम्॥ ३४४॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'सहो' बलं, तेन वर्तते साहसिकः। दृष्टादृष्टदोषानपरिगणय्य बलमात्रमाश्रित्य स्तेयहिंसासंग्रहणादिपरपीडाकरेषु वर्तमानः प्रकाशं पुरुषः 'साहसिकः'। तदुक्तं "स्यात्साहसमिति" (३३२)। न स्तेयादिभ्यः पदार्थान्तरं साहसं, किन्तु प्रसह्यकारणात् तान्येव 'साहसानि' भवन्ति। यदप्यग्निदाहवस्त्रपाटनादि तदपि द्रव्यनाशात्मकत्वात्सिद्धमेवेति। तस्य निग्रहात् नोपेक्षेत न विलंबेत क्षणमपि—यदा गृहीतस्तदैव निगृहीतव्यः। इन्द्रस्वामिकं स्थानं स्वर्गाख्यमैन्द्रं तदाभिमुख्येन प्राप्तुमिच्छन्। अथवा स्वमेव राज्यपदमैन्द्रमिवेच्छन्नविचालित्वसामान्यम्। निग्राह्यनिग्रहेण हि प्रतापानुग्रहाभ्यां प्रजा अनुप्रवर्तन्ते। तदुक्तं "समुद्रमिव सिन्धव" इति। यशोऽक्षयमव्ययं च। द्वे विशेष्ये द्वे विशेषणे—स्थानमव्ययं यशोऽक्षयमिति। अथोभयेनापि यशो विशिष्यते—क्षयो मात्रापचयः, व्ययो निरन्वयविनाशः। उभयमपि तन्नास्ति। न मलिनीभवति यशो न कदाचिद्विच्छिद्यते। भूतार्थवादस्तुतिरियम्॥ ३४४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। साहसं प्रक्रमते ऐन्द्रमिति। अक्षयमनाशि। अव्ययमन्यूनम्॥ ३४४॥

(३) **कुल्लूकः**। इदानीं साहसमाह ऐन्द्रमिति सर्वाधिपत्यलक्षणं पदं ख्यातिं चाविनाशिनीमनुपक्षयां चातिशयेन प्राप्तुमिच्छन् राजा बलेन गृहदाहधनग्रहणकारिणं मनुष्यं क्षणमपि

नोपेक्षेत॥ ३४४॥

(४) **राघवानन्दः**। कृतलक्षणं साहसिकं दण्डयितुं दृष्टादृष्टफलेन राजानं तत्रावर्जयति। ऐन्द्रमिति अक्षयं स्थानं कल्पादिवर्ति। अव्ययं यश इति॥ ३४४॥

(५) **नन्दनः**। अथ साहसदण्डनविधिं प्रस्तौति ऐन्द्रस्थानमिति। अक्षय्यं स्वरूपेण अव्ययं फलेन सहो बलन्तेन युक्तं साहसं तस्य कर्त्ता साहसिकः परेषां प्रमापक इत्यर्थः तं नोपेक्षेत॥ ३४४॥

(७) **मणिरामः**। इदानीं साहसमाह। ऐंद्रमिति साहसिकं बलेन गृहदाहधनग्रहणकारिणम्॥ ३४४॥

(८) **गोविन्दराजः**। इदानीं साहसमाह। ऐन्द्रमिति। सर्वाऽधिपत्यलक्षणं पदं चाविनाशनं अनपचयं ख्यातिं चाभिमुख्येनेच्छन् राजा साहसेन बलवशेनापि अग्निदाहवस्त्रपाटनादिकारिणं मनुष्यं क्षणमपि नोपेक्षेत॥ ३४४॥

**वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः॥**
**साहसस्य नरः कर्त्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः॥** ३४५॥

(१) **मेधातिथिः**। अयमपरार्थवादो निग्रहविधिस्तुत्यर्थः। वाचा दुष्टो वाग्दुष्टस्तस्करश्चौरदण्डेनैव — दण्डपारुष्यकृत्। 'दण्डः' प्रहरणोपलक्षणार्थः। त्रिभ्य एतेभ्योऽनन्तरातिक्रान्तेभ्यः पापकारिभ्योऽयमतिशयेन पापकृत्तमः॥ ३४५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वाग्दुष्टो वाक्पारुष्यकृत्। दण्डेन हिंसको दण्डपारुष्यकृत्॥ ३४५॥

(३) **कुल्लूकः**। वाक्पारुष्यकृताच्चोराच्च दण्डपारुष्यकारिणश्च मनुष्यात्साहसकृन्मनुष्योऽतिशयेन पापकारी बोद्धव्यः॥ ३४५॥

(४) **राघवानन्दः**। पारुष्यादिकर्तृभ्यस्त्रिभ्योपि पापकृदयमिति नोपेक्षणीय इत्याह वागिति। तस्करात् चौरात्। यो दण्डेन हिंसकस्तस्मादपि॥ ३४५॥

(५) **नन्दनः**। अस्य दूषणमाह वाग्दुष्टादिति। वाग्दुष्टस्तस्करश्च दण्डेन हिंसकश्च पापकृतः तेभ्यः साहसस्य कर्त्ता पापकृत्तमः तस्मात्तं नोपेक्षेतेति॥ ३४५॥

(७) **मणिरामः**। दंडेनैव च हिंसतः दंडपारुष्यकारिणः। सर्वेभ्यः साहसकर्त्ताऽधिकं पापं करोतीत्यर्थः॥ ३४५॥

(८) **गोविन्दराजः** **वाग्दुष्टादितिः**। वाक्पारुष्यकृच्चौरदण्डकारिभ्यः सकाशात् साहसकृन्मनुष्योऽतिशयेन पापकृद्बोद्धव्यः॥ ३४५॥

**साहसे वर्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः॥**
**स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति॥** ३४६॥

(१) **मेधातिथिः**। अयमप्यर्थवादः। साहसे स्थितं पुरुषं यो मर्षयति। प्रकृत्यर्थेऽयं णिच्। यो मृष्यति क्षमते। स विनाशं प्राप्नोति द्वेष्यतां च प्रजासु प्राप्नोति द्वेष्यैश्चाभिभूयते॥ ३४६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विनाशं साहसकारिण एव सकाशात्। विद्वेषं प्रजासु॥ ३४६॥

(३) **कुल्लूकः**। यो राजा साहसे प्रवर्तमानं क्षमते स पापकृतामुपेक्षणादधर्मबुद्ध्या विनश्यति अपक्रियमाणराष्ट्रतया जनविद्वेषं च गच्छति॥ ३४६।

(४) **राघवानन्दः** । राज्ञस्तत्त्यागेऽदृष्टानर्थावहश्चेत्याह साहस इति। विद्वेषं प्रजाभिः सह॥ ३४६॥

(५) **नन्दनः** । उपेक्षणे दोषमाह साहसे वर्त्तमानन्विति। विनाशं क्षीणकोशादित्वं विद्वेषं लोकगर्हाम्॥ ३४६॥

(७) **मणिराम** । मर्षयति। उपेक्षते। विद्वेषं लोकविद्वेषं॥ ३४६॥

(८) **गोविन्दराजः** । साहस इति। साहसे प्रवृत्तस्य यः क्षमते सोऽतिमात्रं प्रसङ्गात्साहसकारिभिः क्षिप्रमेव विनाश्यते द्वेष्यताञ्च लोके प्राप्नोति॥ ३४६॥

**न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्॥**
**समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान्॥** ३४७॥

(१) **मेधातिथिः** । अत आह पार्श्वस्थस्य कस्यचित्स्नेहहेतोरमात्यादिना प्रार्थ्यमानो न मृष्येत्। अथवा स एवातिबहुधनं ददातीति नोपेक्षेत। सर्वेषां भूतानां भयमावहन्ति साहसिकाः। अयमप्यर्थवादः॥ ३४७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । मित्रकारणादेष मित्रं भविष्यतीति॥ ३४७॥

(३) **कुल्लूकः** । मित्रवाक्येन बहुधनप्राप्त्या वा सर्वभूतभयजनकान्साहसिकान्राजा न त्यजेत्॥ ३४७॥

(४) **राघवानन्दः** । लोभादिनाऽप्येते न क्षन्तव्या इत्याह नेति। अयं मित्रं भवतु मां नापकरोतु प्रत्यपकरिष्यतीति वा विपुलात् प्रचुरात् धनागमाद्धनलाभात् तान्विशिनष्टि सर्वभूतभयावहानित्यनेन मामुपकरिष्यतीति निरस्तम्॥ ३४७॥

(५) **नन्दनः** । उक्तमर्थं निगमयति न मित्रकारणाद्राजेति॥ ३४७॥

(७) **मणिरामः** । भयावहान्-भयजनकान्॥ ३४७॥

(८) **गोविन्दराजः वाग्दुष्टादिति** । वाक्पारुष्यकृच्चौरदण्डकारिभ्यः सकाशात् साहसकृन्मनुष्योऽतिशयेन पापकृद्बोद्धव्यः॥ ३४५॥

**शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते॥**
**द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते॥ ३४८॥**

(१) **मेधातिथिः** । वैणवीं धारयेद्यष्टिमिति विधानादनुदितशस्त्रग्रहणाः श्रोत्रियाःसबलाविष्टा च साहसिके बलातिशयाधायीव शस्त्रमतः साहसिकत्त्वाच्छक्ताय शस्त्रग्रहणमप्राप्तं विधीयते यं द्विजातिभिर्ग्राह्यमिति एतावता वाक्यं विच्छिद्यते अवशिष्टं तु घ्नन्धर्मेणत्यनेनाभिसंबध्यत इत्यतो द्विवाक्ये ये त्वेतेष्वेव निमित्तेषु ग्रहणमिच्छन्ति नान्यदेति तेषामतर्कितोपनताततायीमुखपतितस्याशस्त्रस्य का गतिः? नहि ते शस्त्रग्रहणं तस्य प्रतिपालयन्ति अथैवं व्याख्यायते धर्मो यत्रोपरुद्ध्यते विप्लवे कालकारिते राजनि व्यतिक्रान्ते संस्थायां प्रवृत्तायां शस्त्रं ग्राह्यं अन्यदा तु सौराज्ये राजैव रक्षतीति नहि प्रसार्य हस्तौ राजा प्रतिपुरुषमासितुं शक्नोति भवन्ति केचिद्दुरात्मानो ये राजपुरुषानपि

शूरतमाभियुक्तान्बाधन्ते शस्त्रवतस्तु बिभ्यतीति सार्वकालिक शस्त्रधारण युक्त किंपुनर्ग्रहणमात्र बिभीषिकाजननमात्र नेत्याह घ्नन्धर्मेण न दुष्यतीति हिंसापर्यन्तोयमुपदेशः यत्त्वापस्तबेनोक्त न ब्राह्मणः परीक्षार्थमपि शस्त्रमाददीतेति असति यथाभिहते निमित्त आकर्षणस्य प्रतिषेधो न ग्रहणस्य विकोशा हि परीक्ष्यन्ते धर्मस्योपरोधो यदा यज्ञादीना विनाशः कैश्चित्क्रियते वर्णाना विप्लवोऽव्यवस्थान वर्णसकरादिकार्यकाले तै राजमरणादौ तत्र स्वधनकुटुब-रक्षार्थं शस्त्र ग्राह्यम्। अन्ये तु परार्थ-मप्यस्मिन्नवसरे तथाच गौतमः दुर्बलहिंसाया च विमोचने शक्तश्चेदिति उक्त यज्ञ विना संकरनिवृत्यर्थं शस्त्रग्रहणम् निमित्तातरमाह आत्मनश्च परित्राणे परिसर्वतोभावे शरीरभार्याधनपुत्ररक्षार्थं घ्नन्धर्मेण न दुष्यति। दक्षिणानाच सगरोऽवरोधः यदि यज्ञार्थं कल्पिता दक्षिणाः कैश्चिदपहृयेरस्तदा तन्निमित्ते योद्धव्यं अन्ये त्वेवमभिसबध्नन्ति दक्षिणाना हेतोः सगरे यदुपरोधःप्रवृते धर्मेऽप्रवृत्ते दक्षिणासंगर इति विशेषाणामभ्यवपत्तिपरिभवः। यत्र स्त्रियःसाध्व्यो हठात्केनचिदुपगम्यन्ते हन्यन्ते वा एवं ग्राह्मणाः केनचिद्धन्यन्ते तत्र घ्नन्खड्गादिना न दुष्यति हिंसाप्रतिषेधातिक्रमो न कृतो भवतीत्यर्थः असति प्रतिषेधे कामचारप्राप्तौ विध्यन्तरपर्यालोचनया गौतमवचनमनुध्यायमानेन दुर्बलहिंसाया विमोचने शक्तश्चेदित्य-वश्य हनने प्रवर्तितव्य अथ प्रतिहारशङ्का भवति तदभवत एवात्मान गोपायेदित्यपेक्षा॥ ३४८॥ ३४९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। द्विजातिभिस्त्रिभिरपि ग्राह्यम् किमुत राज्ञेत्यर्थः। धर्मस्योपरोधे बलात्साहसिकैरधर्मप्रवर्तने। द्विजातीनां विप्लव उत्तमायास्त्रिया अधमेन योगात्संकरे कालकारिते न तु देशकृते। तेषां तत्प्रायत्वेन निवर्तनासंभवात्॥ ३४८॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणादिभिस्त्रिभिर्वर्णैः खड्गाद्यायुधं गृहीतव्यं यस्मिन्काले वर्णानामाश्रमिणा च साहसकारादिभिर्धर्मः कर्तुं न दीयते तथा त्रैवर्णिकानामराजकेषु राष्ट्रेषु परचक्रागमनादिकाल-जनिते स्त्रीसङ्गरादौ प्राप्ते तथात्मरक्षार्थं दक्षिणाधनगवाद्यपहारनिमित्ते च संग्रामे स्त्रीब्राह्मणरक्षार्थं च धर्मयुद्धेनानन्यगतिकतया परान्हिसन्न दोषभाग्भवति। परमारणेप्यत्र साहसदण्डो न कार्यः॥ ३४८॥ ३४९॥

(४) **राघवानन्दः**। न केवलं राजाऽनुपेक्षणीयोऽयमपितु प्रजाभिरपीत्याह शस्त्रमिति। धर्मो यागादिः साहसिकैर्धनाद्यपहारनिमित्तं उपरुध्यते नश्यति विप्लवे परचक्राद्यागमननिमित्तस्त्रीव्यतिकरादौ च कालकारिते दुर्भिक्षादिकाले दस्युनिमित्ते विप्लवे वा एतेषु रक्षणार्थं द्विजातिभिरपि शस्त्रं ग्राह्य-मित्यन्वयः॥ ३४८॥

(५) **नन्दनः**। क्वचित्साहसिकत्वस्यापवादमाह शस्त्रंद्विजातिभिरिति। यत्र विषये धर्मोऽप-रुद्ध्यते तत्र शस्त्रं द्विजन्मादिभिर्ग्राह्यं। शस्त्रेण द्विजातिभिर्धर्मोपरोधिवधः कर्तव्यो न तेन तेषां साहसिकत्वमित्यभिप्रायः विप्लवे मर्यादाभङ्गे कालकारिते दुर्भिक्षादियुक्तेन कालेन कारिते॥ ३४८॥

(६) **रामचन्द्रः**। विप्लवे उत्तमस्त्रीणामधमपुंसः संसर्गे॥ ३४८॥

(७) **मणिरामः**।

(८) **गोविदराजः**। शस्त्रमिति। अदमन इति। ब्राह्मणादिभिश्च खड्गाद्यायुधं गृहीतव्यम्। यस्मिन्काले वर्णाश्रमिणां चौरादिभिः धर्मं कर्तुं न दीयते तत्र तथा द्विजानां ब्राह्मणादीनां राजाभाव-परचक्राक्षेपकारादिभिः कालजनिते वर्णानां संकरे तथा आत्मनश्च शरीरदायादिरक्षायां दक्षिणा-सम्बन्धिनि सङ्गरे अपहारनिमित्ते संग्रामे स्त्रीब्राह्मणरक्षायाञ्च धर्मेण कूटयुद्धेन तेन शस्त्रेणानन्यगतिकः परां(न्) हिंसन् न प्रत्यवैति एवञ्चात्र साहसदण्डो न कार्यः॥ ३४८॥ ३४९॥

**आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च सङ्गरे॥**
**स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति॥ ३४९॥**

**(२) सर्वज्ञनारायणः ।** आत्मनःपरित्राणे प्राणरक्षणे। दक्षिणानां दक्षिणार्थं। तदपहारे केनचित्क्रियमाणे। संगरे युद्धे। स्त्रीविप्रयोरभ्युपपत्तौ प्राणरक्षणे। धर्मेण विषदिग्धशराद्यधार्मिकप्रकारत्यागेन॥ ३४९॥

**(४) राघवानन्दः ।** पूर्वस्मिन् श्लोके तस्यावरोधेन रक्षामात्रं विवक्षितमत्र तु तद्वधेनाप्यात्मादीनां रक्षणं सूचितमित्याह आत्मनश्चेति। दक्षिणानां दक्षिणाद्यर्थं वा हरणनिमित्ते संगरे संग्रामे अभ्युपपत्तौ स्त्रीणां रक्षार्थं तान् घ्नन् नाशयन्नपि धर्मेण न दुष्यति न पापी स्यादिति॥ ३४९॥

**(५) नन्दनः ।** आत्मनो दक्षिणानां च परित्राणे परित्राणार्थं संगरे युद्धेऽभ्युपपत्तौ रक्षणार्थं धर्मेण हेतुना घ्नन्नार्थार्थं न दुष्यति न साहसिको भवतीत्यभिप्रायः॥ ३४९॥

**(६) रामचन्द्रः ।** स्त्रीणां विप्रस्य अभ्युपपत्तौ प्राणरक्षणे॥ ३४९॥

**(७) मणिरामः ।** दक्षिणानां संगरे दक्षिणाधनगवाऽपहारनिमित्ते संग्रामे। स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ स्त्रीब्राह्मणरक्षार्थं। एषु स्थलेषु धर्मेण धर्मयुद्धेन अनन्यगतिकतया परान् घ्नन् हिंसन् न दोषभागी भवति। एतादृशसाहसे न दंडः कार्यः॥ ३४९॥

**गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्॥**
**आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥ ३५०॥**

**(१) मेधातिथिः ।**

**(अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।**
**क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः॥ १॥)***
**(उद्यतासिर्विषाग्निभ्यां शापोद्यतकरस्तथा ।**
**आथर्वणेन हन्ता च पिशुनश्चापि राजनि॥ २॥)****
**(भार्यातिक्थापहारी च रन्ध्रान्वेषणतत्परः ।**
**एवमाद्यान्विजानीयात्सर्वानेवाततायिनः॥ ३॥)*****

(१) आत्मपरित्राणार्थमविचारेण योद्धव्यम्। तदनुदर्शयति 'आततायी' उच्यते यः शरीरधनदारपुत्रनाशे सर्वप्रकारमुद्यतः। तमविचारयन् **हन्यात्**। गुर्वादिग्रहणमर्थवादः। एतेऽपि हन्तव्याः किमुतान्य इति। एतेषां त्वाततायित्वेऽपि वधो नास्ति। "आचार्यं च प्रवक्तारम्" इत्यनेनापकारिणामपि वधो निषिद्धः (४।१६२)। "गुरुमाततायिनमिति" शक्यः संबन्धः। तथा सत्याततायिविशेषणमेतत्। ततो गुर्वादिव्यतिरिक्तस्याततायिनः प्रतिषेधः कुतः स्याद्—वाक्यान्तराभावात्। अथ "नाततायिवधे दोष" इत्येतद्वाक्यान्तरं सामान्येनाभ्यनुज्ञापकमिति—तदपि न, विधेरश्रवणात्, पूर्वशेषतया चार्थवादत्वे प्रकृतवचनत्वात्।

इह भवन्तस्त्वाहुः—यद्यपि 'आततायिनमि'त्येव विधिः, अवशिष्टोऽर्थवादः, तथापि गुर्वादीनां वधानुज्ञानम्। यतोऽन्यदपकारित्वमन्यदाततायित्वम्। यो ह्यन्यां कांचन पीडां करोति न सर्वेण शरीरादिना सोऽपकारी, ततस्त्वन्य आततायी। तथा च पठ्यते—"उद्यतासिर्विषाग्निभ्यां शापोद्यतकरस्तथा। आथर्वणेन हन्ता च पिशुनश्चापि राजनि। भार्यातिक्रमकारी च रन्ध्रान्वेषणतत्परः। , एवमाद्यान्विजानीयात्सर्वानेवाततायिनः"॥

"**आयान्तमिति** वचनादात्तशस्त्रो हन्तुमभिधावन्दारान्वा जिहीर्षन्हन्तव्यः। कृते तु दोषे किमन्यत्करिष्यतीत्युपेक्षा" इति ब्रुवते। तदयुक्तम्। यतः "प्रकाशमप्रकाशं वेति" वक्ष्यति

(३५१)। समानौ ह्येतौ करिष्यन्कृतवांश्च। तस्मादायान्तमित्यनुवादः — कर्तुमागतं कृत्वा वा गतमिति। आततायित्वाच्चासौ हन्यते। न च कृतवत आततायित्वमपैति। नास्यात्मनो रक्षार्थं एव वध आत्मनश्च परित्राण इत्यनेनोक्तम्॥ ३५०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्रात्मनः परित्राणे शस्त्रग्रहणमुक्तं तत्प्रपञ्चयति। आततायिनं हननप्रवृत्तं हन्यादेवाङ्गच्छेदादिरूपघातेन नत्वत्यन्तं अन्यत्र गोब्राह्मणादिति गौतमस्मृतेः। आततायी तु। अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः क्षेत्रदारापहारीच षडेते आततायिन इत्यादिना स्मृत्यन्तर उक्तम्। शस्त्रपाणिः शस्त्रेण घातयितुमायातः। यदभावे वृत्युच्छेदस्तेयौ। हिरण्यादिधनधान्याद्युत्पत्तिभूम्योर्धन-क्षेत्रपदाभ्यां ग्रहणम्॥ ३५०॥

(३) **कुल्लूकः**। गुरुबालवृद्धबहुश्रुतब्राह्मणानामन्यतमं वधोद्यतमागच्छन्तं विद्यावृत्तादि-भिरुत्कृष्टं पलायनादिभिरपि स्वनिस्तरणाशक्तौ निर्विचारं हन्यात्। अत एवोशनाः — गृहीतशस्त्रमात-तायिनंहत्वा न दोषः। कात्यायनश्च भृगुशब्दोल्लेखेन मनूक्तश्लोकमेव व्यक्तं व्याख्यातवान्॥ आततायिनि चोत्कृष्टे तपः स्वाध्यायजन्मतः॥ वधस्तत्र तु नैव स्यात्पापं हीने वधो भृगुः। मेधातिथिमोविन्दराजौ तु स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यतीति पूर्वस्यायमनुवादः गुर्वादिकमपि हन्यात्किमुतान्यमपीति व्याचक्षाते॥ ३५०॥

(४) **राघवानन्दः**। एवमपि साहसिकतया गुर्वाद्युपस्थितौ किं कार्यं तत्राह गुरुं वेति। स्वापेक्षया बहुश्रुतं बहुविद्यम् आततायिनम्॥ अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्रदारापहर्ता च षडेते आततायिन इत्युक्तलक्षणम्॥ ३५०॥

(५) **नन्दनः**। अत्राततायिशब्देन धर्मोपरोधकादयो विवक्षिताः स्मृत्यन्तरेऽग्निदो गरद इत्यादय उक्तास्तेऽपि परमार्थत एव संपद्यन्ते॥ ३५०॥

(६) **रामचन्द्रः**। आततायिस्वरूपमाह॥ अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्रदारा-पहारीच षडेते आततायिनः॥ अन्यच्च॥ उद्यतासिर्विषाग्निभ्यां शापोद्यतकरस्तथा। आथर्वणेन हन्ता च पिशुनश्चापि राजनि॥ भार्यातिक्रमकारी च छिद्रान्वेषणतत्परः। एवमाद्यान्विजानीयात्सर्वानेवाततायिनः॥ अविचारयन्गुर्वादीन् हन्यात् त्यागं कुर्यात् नतु हिंसां कुर्यात्। हन हिंसागत्योरित्यस्य धातोर्गत्यर्थता न हिंसार्थम्॥ ३५०॥

(७) **मणिरामः**। आततायिनं वधोद्यतमायांतं हंन्यात् पलायनादिभिरपि स्वनिस्तरणाऽशक्तौ अविचारयन् मारयेत्॥ ३५०॥

**नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन॥**
**प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति॥ ३५१॥**

(१) **मेधातिथिः**। न कश्चनेति। नाधर्मो न दण्डो न प्रायश्चित्तमिति। प्रकाशं जन-समक्षम्। अप्रकाशं विषादिदानेन येनकेनचिदुपायेन। मन्युः क्रोधाभिमानिदेवताऽसौ मन्युमृच्छति। नात्र हन्तृहन्तव्यभावोऽस्ति पुरुषयोरर्थ आततायिक्रोध इतरेण हन्यत इत्यर्थवादोऽयम्। यथा प्रतिग्रहकामः "को मह्यं ददातु नाह प्रतिग्रहीता न त्वं दाता ततश्च कुतः प्रतिग्रहदोषो मम" एवमत्रापि।

इह साहसिके दण्डो नाम्नातः। स दण्डपारुष्ये द्रष्टव्यः। इह त्वधिकतरः, यत पापकृत्तम इति (३४५) ॥३५१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। हन्तुर्वधकर्तुः। न कश्चन दोषो भवतीति ब्रह्महत्यादिकृतमपि पापं न तादृश भवति। तथाहि प्रायश्चित्तमपि तत्राल्पमेव स्मृतिकारैर्निबद्धम्। प्रकाशं युद्धेन अप्रकाशमभिचारेण। मन्युः क्रोधः तज्जन्या हिंसोपलक्ष्यते। हन्तुर्हिंसा आततायिनो हिसा प्रति ऋच्छति

तत्प्रतिरुद्धा न फलंप्रसूते। तन्न कर्तरि पापं जनयति हिंसितेन हिंसाकरणादिति तात्पर्यम्।। साहसम्।। ३५१।।

(३) **कुल्लूकः**। जनसमक्षं रहसि वा वधोद्यतस्य मारणे हन्तुर्न कश्चिदप्यधर्मदण्डः प्रायश्चित्ताख्यो दोषो भवति यस्माद्धन्तृगतो मन्युः क्रोधाभिमानिनी देवता हन्यमानगतं क्रोधं विवर्धयति। साहसे चापराधगौरवापेक्षया मारणाङ्गच्छेदनधनग्रहणादयो दण्डाः कार्याः।। ३५१।।

(४) **राघवानन्दः**। एवंकृते प्रायश्चित्ती न स्यात्तत्राह नेति। प्रकाशं जनानां समक्षम्। अप्रकाशं रहसि। अदोषे मंहेतुर्मन्युरित्यादि मन्युः क्रोधाभिमानी देवता मृत्युं हन्यमानगतं क्रोधं ऋच्छति। निवर्तयतीति अन्यायवधो हि क्रोधेनैव भवतीति क्रोधस्यैव कारणत्वं न हन्तुरितिभावः। अत्राप्यपराध-लाघवगौरवाद्यपेक्षया पापस्य मारणताडनधनाद्यपहारादि। पलायनेऽसमर्थस्य ब्राह्मणस्यैवायं विधिः स्वपरवधे ब्रह्महत्यायास्तुल्यत्वात्। अत आह उशनाः।। गृहीतशस्त्रमाततायिनं हत्वा न दोष इति।। अतः कात्यायनः।। आततायिनि चोत्कृष्टे तपःस्वाध्यायजन्मनः। वधस्तत्र तु नैव स्यात्पापे हीने वधो भृगुरित्यादि इति केचित्।। मेधातिथिगोविन्दराजौ तु स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन् धर्मेण न दुष्यतीति।। अस्यैवार्थवादरूपं श्लोकद्वयमित्याहतुः। युक्तं चैतत्।। न हिंस्यात्सर्वभूतानीति निषेधकधर्मशास्त्रात् श्येनवन्नीतिशास्त्रं रागोपाधीति प्रतीकारसत्वे न कर्तव्यो वधः। अतः धर्मशास्त्रादर्थशास्त्र दुर्बलमित्याहुः।। ३५१।।

(५) **नन्दनः**। प्रकाशवधो युद्धे शस्त्रादिकृतः अप्रकाशो विषाभिचारादिकृतः मन्यु-र्हन्तुर्मन्युः।।३५१।।

(६) **रामचन्द्रः**। प्रकाशं युद्धादिना। प्रकटं वा पक्षान्तरे। अप्रकाशं अभिचारादिना। अप्रकटं मन्युः तं मन्युं आततायिनं यस्य हिंसा ऋच्छति आप्नोति।। ३५१।।

(७) **मणिरामः**। प्रकाशं वा अप्रकाशं वा आततायिमारणे हंतुर्न कश्चिदपि दोषः। यस्मात् प्रथममध्यमोत्तमसाक्षादङ्गच्छेदनिर्वासनादयो दण्डाः कार्याः।। ३५१।।

(८) **गोविन्दराजः**। नेति। प्रकाशं युद्धेनाप्रकाशं चाभिचरणे चाततायिमारणे हन्तुर्न कश्चिदपि अधमदण्डप्रायश्चित्ताख्यदोषो भवति। यस्माद्धन्तृकृतो मन्युः क्रोधाऽभिमानी देवता तं मन्युं हन्यमानगतं क्रोधं निवर्तयतीति पूर्वार्धवादः कामः कामाय स्यादितिवत्। साहसे चापराधापेक्षया प्रथममध्यमोत्तमसाक्षादङ्गच्छेदनिर्वासनादयो दण्डाः कार्याः।। ३५१।।

**परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान् नृन्महीपतिः।।**
**उद्वेजनकरैर्दण्डैश्चिह्नयित्वा प्रवासयेत्।। ३५२।।**

(१) **मेधातिथिः**। विवाहसंस्कृतायां स्त्रियां दारशब्दो वर्तते। आत्मनोऽन्यः परः। अभि-मर्शः सम्भोग आलिङ्गनादिः। आलिङ्गनं जनद्वयसमवायः भोगजन्यायाः प्रीतेः प्रवृत्तिः प्रारंभस्तन्नि-र्वृत्त्यर्थं दूतीसंप्रेषणादिना प्रोत्साहनम्। अथ च संग्रहणमभिमर्शनं प्रचक्षते। तेनायमर्थः—परभार्यागमने प्रवृत्तं पुरुषं ज्ञात्वोद्वेजनकरैस्तीक्ष्णाग्रैः शक्तिशूलादिभिरङ्कयित्वा नासाछेदादिभिर्विवासयेत्। सर्वत्रात्र विशेषदण्डस्योक्तत्वादस्य विषयभावो न सामान्यदण्डोऽयम्। किं तर्हि। पुनः पुनः प्रवृत्तौ। इदं तु युक्तम्। अलभमानस्य विषयान्तरं प्रवासस्य धनदण्डस्य च कार्यभेदात्समुच्चयः। तथा दर्श-यिष्यामः।। ३५२।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दण्डैः शिश्नच्छेदादिभिः।। ३५३।।

(३) **कुल्लूकः** । इदानीं स्त्रीसंग्रहणमाह परदारेति। परदारसंभोगाय प्रवृत्तान्मनुष्यगणानुद्वेजनकरैर्दण्डैर्नासौष्ठकर्तनादिभिरङ्कयित्वा देशान्निःसारयेत्॥ २५२॥

(४) **राघवानन्दः** । परदाराभिरतस्य स्वजातौ दण्डमाह षट्त्रिंशता श्लोकैः परदारेति। नृनिति विशेषणाद् देवतिर्यक्षु न दोषः उद्वेगजनकैः नासौष्ठकर्तनादिभिः सर्वत्र। ब्राह्मणं तु विवासयेत्॥ ३५२॥

(५) **नन्दनः** । दण्डैः शिश्नच्छेदभगादिभिः॥ ३५२॥

(६) **रामचन्द्रः** । महीपतिः परदाराभिमर्शे प्रवृत्तान्पुरुषान् हन्यात्। च पुनः दण्डैः शिश्नच्छेदादिभिः॥ ३५२।

(७) **मणिरामः** । इदानीं स्त्रीसंग्रहमाह॥ परदारेति। परदाराऽभिमर्षेषु परस्त्रीसंभोगाख्येषु। उद्वेजनकरैः॥ ३५२॥

(८) **गोविन्दराजः** । स्त्रीसंग्रहणमिदानीमाह परदाराभिमर्शेष्विति। उद्वेजनकरैर्दण्डैश्चिह्नयित्वा प्रवासयेत्। परदारसंभोगेषु बहुषु प्रवृत्तान्मनुष्यान् पीडाकरैर्दण्डैर्नासौष्ठकर्तनादिभिरङ्कयित्वा राजा देशान्निर्वासयेत्॥ ३५२॥

**तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः॥**
**येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते॥ ३५३॥**

(१) **मेधातिथिः** । समुत्थानमुत्पत्तिः। ततः परदारागमनात्संकरोऽवान्तरवर्णरूपो जायते। येन जातेनाधर्मो मूलस्य लोकस्य दिवः पतिता वृष्टिस्तां हरत्यधर्मः। धर्मे हि सति "आदित्याज्जायते वृष्टिः"। न च संकरे सत्यपि कारीरीयागो नापि पात्रे दानमतो दानयागहोमानां संस्योत्पत्तिहेतुभूतानामभावात्सर्वजगन्नाशसमर्थो भवति। तस्मात्पारदारिकान् 'अधर्ममूलं वर्णसंकरः स्यादिति' सस्यादिनिष्पत्तिमूलां वां वृष्टिं रक्षन्प्रवासयेत्॥ ३५३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । मूलहरो मूलभूतधर्महार्यधर्मः॥ ३५३॥

(३) **कुल्लूकः** । यस्मात्परदाराभिगमनात्संभूतो वर्णस्य संकरः संपद्यते येन वर्णसंकरेण विशुद्धपत्नीकयजमानाभावाद् अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठत्यस्याभावे सति वृष्ट्याख्यजगन्मूलविनाशोऽधर्मो जगन्नाशाय संपद्यते॥ ३५३॥

(४) **राघवानन्दः** । ननु तद्द्रव्यस्य तथैव स्थाने किमिति दण्डनीयं तत्राह तदिति। वर्णसंकरो शूद्रादिमिश्रणं। संकरोपि किं स्यात्तत्राह येनेति। अग्नौ प्रास्ताहुतिभिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते॥ आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा इति प्रजोत्पत्तिहेतुराहुतिः। सा च संकरजेन हुता न फलतीति मूलहरोऽधर्मः। तथाच भगवद्गीता॥ स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः। संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च॥ पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः इत्यादि। मूलं ब्राह्मण्यादि वा॥ ३५३॥

(५) **नन्दनः** । दण्डप्रकर्षे हेतुमाह तत्समुत्थो हीति। तत्समुत्थः परदाराभिमर्शनसंभूतः येन वर्णसंकरेणाधर्म इति पदं मूलं हरेद्धर्मस्य मूलहरः॥ ३५३॥

(६) **रामचन्द्रः** । तत्समुत्थः असत्स्त्रीपुरुणसंयोगात् समुत्थः। वर्णसंकरः येन वर्णसङ्करेण मूलधर्मः तस्य हरः अधर्मः सर्वनाशाय कल्पते॥ ३५३॥

**(७) मणिरामः ।** तत्समुत्थः परदाराऽभिगमनात्संभूतः। येनः वर्णसंकरेण। मूलहरः मूलनाशकः॥ ३५३॥

**(८) गोविन्दराजः ।** तत्समुत्थ इति। यस्मात्परदारसंगमनसमुद्भूतो लोकस्य वर्णसंकर उत्पद्यते येन वर्णसंकरेण यागाद्यधिकृतयजमानाभावादग्नौ प्रास्तेत्येतदभावे सति अवृष्टयास्यजगद्विनाश-मूलधर्मो मूलच्छेदेन विनाशायोत्पद्यते॥ ३५३॥

**परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन् रहः॥**
**पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम्॥ ३५४॥**

**(१) मेधातिथिः ।** संभाषः संभाषणं—तमालापं योजयन् कुर्वन्संग्रहणादिदोषैः तत्स्त्री-प्रार्थनादिभिः पूर्वमाक्षारितोऽभिशस्तः—'अयमेनामुपजपती'त्यमुत्र दृष्टदोषः शंक्यमानदोषो वा चपलः। रहः उद्वातादौ—निषिद्धसंभाषण इति केचित्। कारणादप्यन्यपत्न्या संभाषणं कुर्वन्प्रथमसाहसं दण्डं प्राप्नुयाद्दापयितव्य इत्यर्थः॥ ३५४॥

**(२) सर्वज्ञनारायणः ।** संभाषां योजयन् सत्यपि कारणे। पूर्वमाक्षारितः परपत्नीगमने-नाभिशस्तो यः संभावितपरदारगमन इत्यर्थः॥ ३५४॥

**(३) कुल्लूकः ।** तत्स्त्रीप्रार्थनादिदोषैः पूर्वमुत्पन्नाभिरपवादप्रार्थनाभिशापादिभिः पुरुषः उचितकारणव्यतिरेकेण परभार्यया संभाषणं कुर्वन्प्रथमसाहसं दण्डं प्राप्नुयात्॥ ३५४॥

**(४) राघवानन्दः ।** अदृष्टदोषमुक्त्वा दृष्टदोषनिवृत्त्यै दण्डमाह परस्येति। संभाषां मैथुनाङ्गतया परिहासादिरूपा। तदुक्तम्। ''स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। संकल्पोऽध्यव-सायश्च क्रियानिष्पत्तिरेवच।'' इत्यङ्गानि। एतैर्दोषैः पूर्वमपि यः आक्षारितोऽनभिशस्तः स पूर्वसाहस पणानां सार्धशतद्वयं प्राप्नुयात् दण्डं दद्यात्॥ ३५४॥

**(५) नन्दनः ।** आक्षारितः मैथुनं प्रत्याकृष्टेः॥ ३५४॥

**(६) रामचन्द्रः ।** पुरुषः परस्य पत्न्या सह संभाषां रहो योजयन्। पूर्वं आक्षारितः अभिशस्तः पूर्वसाहसं प्रथमसाहसं दण्डं प्राप्नुयात्॥ ३५४॥

**(७) मणिरामः ।** रहः एकांते। संभाषां संभाषणं। योजयन् कुर्वन्। किं विशिष्टः पुरुषः दोषैः परस्त्रीप्रार्थनादिदोषैः पूर्वं प्रथमतः आक्षारितः अभिशस्तः। पूर्वसाहसं प्रथमसाहसं दंडं प्राप्नु-यात्॥ ३५४॥

**(८) गोविन्दराजः ।** परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषं योजयेत्सहेति। परदारगमनपूर्वदोषैः पूर्वमुत्पन्नाभिशापः परभार्यया सह संभाषणं कुर्यात् सः। प्रथमसाहसं दण्डं प्राप्नुयात्॥ ३५४॥

**यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात्॥**
**न दोषं प्राप्नुयात्किंचिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः॥ ३५५॥**

**(१) मेधातिथिः ।** पूर्वस्य प्रत्युदाहरणमेतत्। अनाक्षारितोऽप्यकारणात्संभाषयन्मिश्रयन्पूर्व-दण्डभाक्॥ ३५५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनाक्षारित इत्यसंभावितपरदारगामित्वमिष्टम्। सोपि करणादावश्यकनिमित्तादेवाभिभाषेतान्यथातु पूर्ववद्दण्ड्यः॥ ३५५॥

(३) **कुल्लूकः**। यः पुनः पूर्वं तत्स्त्रीप्रार्थनाभिशापरहितः, केनचित्कारणेन जनसमक्षमभिभाषणं कुर्यान्न स पुनर्दण्ड्यत्वादिदोषं प्राप्नुयात्तस्मान्न कश्चित्तस्यापराधोस्ति॥ ३५५॥

(४) **राघवानन्दः**। संभाषणमात्रं न दण्डावहमित्याह यस्त्विति। कारणात् क्रयविक्रयभिक्षादिभ्यः। व्यतिक्रमोऽपराधः॥ ३५५॥

(६) **रामचन्द्रः**। यस्तु पूर्वं अनाक्षारितः अनभिशस्तः कारणात्परस्त्रियमभिभाषेत स किंचिद्दोष न प्राप्नुयात्। तस्य व्यतिक्रमः दण्डो न कार्य इत्यर्थः॥ ३५५॥

(७) **मणिरामः**। अनाक्षारितः परस्त्रीप्रार्थनाभिशापरहितः॥ ३५५॥

(८) **गोविन्दराजः**। य इति। यः पुनः पूर्वाभिशापरहितकारणेन केनचिज्जनसमक्ष अभिभाषणं कुर्यात् स न दण्डं प्राप्नुयात् यस्मान्न कश्चिदपराधोऽस्ति॥ ३५५॥

**परस्त्रिय योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा॥**
**नदीनां वाऽपि संभेदे स संग्रहणमाप्नुयात्॥ ३५६॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'परस्य पत्न्येति' प्रकृते पुनः परस्त्रीग्रहणं मातृभगिनीगुरुपत्न्यादीनां प्रतिषेधार्थम्। न हि ताः सत्यपि परसंबन्धित्वे परस्त्रीव्यपदेश्याः।

तीर्थमुच्यते येन मार्गेण नदीतडागादिभ्यो जलमानेतुमवतरन्ति। स हि विजनप्रायो भवति। नानुदकार्थेन तत्र संनिधीयते। सङ्केतस्थानं तादृशमत्र कल्पितमवश्यमेव गन्तव्यमहमपि संनिधीयमानो नाशक्यो भविष्यामीति उदकार्थी दिवा शौचाचारं वा करिष्यन्प्रतिपालयन्निति जना मंस्यन्ते। प्रदेशान्तरे किमत्रायं प्रतिपालयतीति शङ्का स्यात्। अतस्तीर्थे प्रतिषेधः। अरण्यं हि ग्रामाद्विजनो देशो गुल्मवृक्षलतादिगहनः। वने वृक्षसंततौ। नदीनां संभेदः समागमः। सोऽपि हि सङ्केतस्थानम्। स संग्रहणं प्राप्नुयात्। परस्त्रीकामत्वं 'संग्रहणम्'। अतश्च यस्तत्र दण्डः सोऽस्य स्यादित्युक्तं भवति। अनाक्षारितस्यापि सत्यपि कारणेऽयं प्रतिषेधः। यत्त्वापस्तंबेनोक्तं "नासंभाष्य स्त्रियमतिव्रजेदिति" तदन्येषु संनिहितेष्वेतच्छास्त्रज्ञेषु प्रकाश्ये– 'भगिनि नमस्ते' इत्याद्यभिवादनमविलम्बमानेन कर्तव्यम्॥ ३५६॥

तस्यापि सत्यपि कारणेऽयं प्रतिषेधः। यत्त्वापस्तंबेनोक्तं नासंभाष्य स्त्रियमतिव्रजेदिति तदन्येषु संनिहितेष्वेतच्छास्त्रज्ञेषु प्रकाश्ये एतच्छास्त्रं भगिनि नमस्ते इत्याद्याभिवादनमविलंबमानेन कर्तव्यम्॥ ३५६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अभिवदेत् संभाषेत। तीर्थे जलावतारस्थाने। अरण्ये निर्जने एतच्च सर्वविशेषणम्। वनेऽटव्याम्। संभेदः संगमः एतच्च रमणीयैकान्तमात्रोपलक्षणम्। अत्रानाक्षरितस्यापि कारणादपि संभाषणे दण्डः। संग्रहणं समीचीनं ग्रहणं परस्त्रिय आत्मीयताकरणं तत्र य उक्तो दण्डः। परस्य पत्न्येत्यत्र प्रथमसाहसस्तं प्राप्नुयादित्यर्थः॥ ३५६॥

(३) **कुल्लूकः** । तीर्थाद्यरण्यवनादिकनिर्जनदेशोपलक्षणमात्रं यः पुरुषः परस्त्रियमुदकावतरणमार्गेऽरण्ये ग्रामाद्बहिर्गुल्मलताकीर्णे निर्ज्जने वने बहुवृक्षसंतते नदीनां सङ्गमे पूर्वमनाक्षारितोपि संभाषेत स संग्रहणं सहस्त्रपणदण्डं वक्ष्यमाणं प्राप्नुयात्। सम्यग्गृह्यते ज्ञायते येन परस्त्रीसंभोगाभिलाष इति संग्रहणम्॥ ३५६॥

(४) **राघवानन्दः** । स्थलविशेषेपि संभाषणं दण्डावहमित्याह परस्त्रियमिति। तीर्थे उदकाहरणादौ। अरण्ये महति। तदतिरिक्तविजने जले वा। गृह इति क्वचित्पाठः। गोप्यस्थले। संभेदे संगमे नदीवेगकृतगव्हरे वा। संग्रहणं वक्ष्यमाणं संग्रहणोचितदण्डम्॥ ३५६॥

(५) **नन्दनः** । अथ स्त्रीसंग्रहणं प्रथमं तावत्तस्य लक्षणमाह परस्त्रीं योऽभिभाषेतेति। अरण्ये कान्तारे वने उपवने॥ ३५६॥

(६) **रामचन्द्रः** । यः स्त्रियं तीर्थे उदकावतरणमार्गे अभिवदेत्। नदीनां संभेदे स पुरुषः संग्रहणं सम्यक् परस्त्रीग्रहणनिमित्तं दण्डः स्मृतः कथितः॥ ३५६॥

(७) **मणिरामः** । संग्रहणं। सम्यग्गृह्यते ज्ञायते येन परस्त्रीसंभोगाभिलाष इति संग्रहणं वक्ष्यमाणं सहस्त्रपणं दंडं प्राप्नुयात्॥ ३५६॥

(८) **गोविन्दराजः** । परस्त्रियमिति। उदकोत्तीर्यमाणे ग्रामाद्बहिर्निर्जने प्रदेशे वृक्षगुल्मलताकीर्णे वा देशे नदीनां वा सङ्गमे यः परस्त्रियं अनाक्षा (का) रितोऽपि पूर्वकारणादिति संभाषेत स वक्ष्यमाणं दोषं प्राप्नुयात्। सम्यग्गृह्यते ज्ञायतेऽस्याश्रयः संबंध इति येन तत्संग्रहणम्॥ ३५६॥

**उपकारक्रियाकेलिः स्पर्शो भूषणवाससाम्॥**
**सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम्॥ ३५७॥**

(१) **मेधातिथिः** । या न केनचित्संबन्धेन सबन्धिनी तस्या वस्त्रमाल्यादिदानेन उपकारकरणम्। तथा भोजनपानादिना। केलिः परिहासो वक्रभणितादिना। स्पर्शो भूषणवाससाम्। भूषणं हारकटकादि तदङ्गलग्नं – तदीयमेतद्वेति ज्ञात्वा विना प्रयोजनेनान्यगृहीतमपि स्पृश्यते। एकस्यां खट्वायामसंसक्ताङ्गयोरपि सहासनम्। सर्वमेतत्तुल्यदण्डम्॥ ३५७।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । उपचारक्रिया उद्वर्तनादि। भूषणवाससामङ्गस्थानाम्। संग्रहणं तावद्दण्डविषयः। अत्र तु व्यापाराधिक्येन द्वैगुण्यादि कल्प्यम्॥ ३५७॥

(३) **कुल्लूकः** । स्त्रग्गन्धानुलेपनप्रेषणाद्युपचारकरणं केलिः परिहासालिङ्गनादिः अलङ्कारवस्त्राणां स्पर्शनमेकखट्वासनमित्येतत्सर्वं संग्रहणं मन्वादिभिः स्मृतम्॥ ३५७॥

(४) **राघवानन्दः** । संग्रहणान्याह उपचारेति द्वाभ्याम्। उपचारक्रिया स्त्रक् सुगन्धानुलेपनकेशप्रसाधनजलक्षेपादि। केलिस्तदुचितपरिहासादिः भूषणवाससां स्पर्शोऽन्योन्याकर्षणम्। सर्वं संग्रहणं सम्यग् गृह्यते ज्ञायतेऽनेनेति परस्त्रीषु संभोगाभिलाष इति॥ ३५७॥

(५) **नन्दनः** । केलिर्नर्मक्रिया॥ ३५७॥

(६) **रामचन्द्रः** । उपचारादि सर्वं संग्रहणं दण्ड्यं दण्डार्हं स्मृतम्॥ ३५७॥

(७) **मणिराम:** । संग्रहणलक्षणमाह। उपचारेति।। उपचारक्रिया-स्वगंधानुलेपन-प्रेषण्या-द्युपचारकरणं। केलिः परीहासालिंगनादिः। भूषणवाससां स्पर्शः।। ३५७।

(८) **गोविन्दराज:** । उपचारक्रियाकेलिरिति। सह खट्वासनमिति। अङ्गानुलेपनाद्युपचार-करणं क्रीडा अलंकरणवाससां स्पर्शनम्। एकखट्वासनं एकयानगमनं इत्येतत्सर्वं संग्रहणं मन्वादिभिः स्मृतम्।। ३५७।।

**स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया।।**
**परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ।। ३५८।।**

**(कामाभिपातिनी या तु नरं स्वयमुपव्रजेत्।**
**राज्ञा दास्ये नियोज्या सा कृत्वा तद्दोषघोषणम्।। १।।)**

(१) **मेधातिथि:** । अदेशस्पर्शस्य-यत्र विनैव तत्स्पर्शनं गमनागमनादि संसिध्यति। महाजनसंकुले न दोषः। तथा शरीरावयवोऽपि 'देशः'। तत्र हस्तस्कंधधृतभाण्डावरोपणे तत्स्पर्शे न दोषः। ओष्ठचिबुकस्तनादिषु दोषः। तथा वा स्तनादिस्पर्शेनोत्पीडितो यदि तत्सहते 'मा कार्षी' रित्यादिना न प्रतिषेधति। परस्परस्यानुमते मतिपूर्वमेतस्मिन् कृते दोषोऽयम्। न पुनः कर्मादौ। स्खलन्ती पुरुषं कण्ठेऽवलंबते-पुरुषो वा स्तनान्तरे स्त्रियं तद्वस्तगृहितद्रव्यादानप्रवृत्तौ-शुष्के पतिष्यामीति कर्दमे पततीतिवत्तावपि न दुष्येताम्।। ३५८।।

(२) **सर्वज्ञनारायण:** । अदेशे स्तनश्रोण्यादौ। स्पृष्टस्तयाऽदेशे। परस्परस्यानुमते न त्वज्ञानेपि।। ३५८।।

(३) **कुल्लूक:** । यः स्प्रष्टुमनुचिते स्तनजघनादिदेशे। स्त्रियं स्पृशेत्तया वा वृषणादिके स्पृष्टः क्षमते तदाऽन्योन्याङ्गीकरणे सर्वं संग्रहणं मन्वादिभिः स्मृतम्।। ३५८।।

(४) **राघवानन्द:** । किंच। अदेशे स्तनजघनादिदेशे। तया स्पृष्टो वृषणादिदेशे यदि तन्मर्षयेत् क्षमेत। तंवा सापि तदभिरुचिः तदुभयमनुमते सभोगाभिलाषग्रहणं परिभाषितमिदं वा।। ३५८।।

(५) **नन्दन:** । अदेशे विविक्तदेशे अस्पृश्ये स्तनादौ वा। अनुमते अनुज्ञायां परस्त्रीमिति संभेदे संगमे तीर्थादौ परस्त्रीसंभाषणंच संग्रहणमित्यस्यार्थः।। ३५८।।

(६) **रामचन्द्र:** । अदेशे स्तनकट्यादौ स्त्रियं स्पृशेत् एतत्सर्वं संग्रहणं स्मृतं दण्डस्य ग्रहणं स्मृतम्।। ३५८।।

(७) **मणिराम:** । अन्यच्च।। स्त्रियमिति।। अदेशे-स्तनजघनादिदेशे। तया स्पृष्टः प्रजन-नादीन्मर्षयते क्षमते।। ३५८।। ३५९।। ३६०।।

(८) **गोविन्दराज:** । स्त्रियमिति। योऽदेशे स्तनयोरङ्गे वा निर्जने प्रदेशे वा स्पृशेत् तया वा अप्रदेशे श्रोण्यादौ निर्जने वा देशे स्पृष्टस्तूष्णीमासीत तस्यैतदन्योन्यस्याङ्गीकरणे सति संग्रहणं मन्वादिभिः स्मृतम्। अत्र यद्यपि संगमो न जातः तदा संग्रहणमात्रे मुखोपगमदण्डादूनदण्डकल्पना कार्या यतोऽनुबन्ध परिज्ञायेत्युक्तम्।। ३५८।।

**अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति।**
**चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा।। ३५९।।**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तं संग्रहणस्वरूपम्। दण्ड इदानीमत्रोच्यते। अब्राह्मणः क्षत्रियादिः संग्रहणे कृते चतुर्णामपि वर्णानां हीनोत्तमजातिभेदमनपेक्ष्य प्राणान्तं प्राणत्याजने मारणे पर्यवसितं दण्डमर्हति।

कथं पुनर्ब्राह्मण्या शूद्रायाश्च संगृहीतस्य समो दण्डः।

अत्र हेतुस्वरूपमर्थमाह दारा रक्ष्यतमाः सदा। सर्वस्य कस्यचिद्राज्ञा दारा धनशरीरेभ्योऽतिशयेन रक्ष्याः। तुल्ये हि सङ्करे शूद्रस्यापि कुलनाशः। एतदुक्तं भवति। वाचनिकोऽयमर्थोऽत्र हेतुर्वक्तव्यः, उक्तोऽसौ।

अत्र पूर्वे व्याचख्युः — न सर्वस्मिन्संग्रहणे प्रागुक्तदण्डोऽयम्। किं तर्हि मुख्ये स्पर्शविशेषे जन्यप्रीतिविशेषात्मके गमने। कथं हि तीर्थादिष्वभिवदन गमनं च समदण्डावुपपद्येताम्। तस्माद्ब्राह्मणः शूद्रो द्विजातिस्त्रीगमने प्राणच्छेदार्हो नान्यः। न हि विषमसमीकरणं न्याय्यम्। अतश्च प्रागुक्तेषु संग्रहणेष्वनुबन्धाद्यपेक्षया दण्डः कल्प्यः। यत्रैव निश्चित गमनार्थ एवायमुपकार्यक्रियादिरूपक्रमस्तत्र मुख्यदण्ड एव युक्तः। न ह्यत्र वैषम्यमस्ति। दृष्टं चैतदुभयत्रापीति। यच्चेदमुक्तं — "यद्यत्रायं दण्डो मुख्ये संग्रहणे किं करिष्यतीति" — नैवान्यन्मुख्यसंग्रहणमस्ति। न ह्यस्य लौकिकः पदार्थोऽवधृतो येन परदारोपकारादौ प्रयुक्त इत्येवमस्यैव। यं च भवान् मुख्यं संग्रहणं मन्यते तत्र महान्दण्डः। प्रतिषिद्धे परस्त्रीगमने शास्त्रं पर्यनुयोज्यमिति चेत् उपकारादावपि प्रतिषेधं विद्धि। प्रतिषेधवद्धि प्रायश्चित्तमपि तुल्यं प्रसक्तमिति चेत्का नामेयमनिष्टापत्तिः। किन्तु प्रसज्येत यदा संग्रहणशब्देन तदुच्येत। सिक्ते हि रेतसि गमनाद्यभिधानम्। यत्र यादृशो दण्डस्तत्र तत्समान एव प्राप्तम्। अतोऽस्मिन्विपर्यये रेतःसेकनिमित्तं प्रायश्चित्तं तच्छब्देनाभिधानात् उपकारादौ कल्प्यम्। यदि च संलापादौ स्वल्पो दण्डः स्यात्तदा प्रवर्तेरन्। ततश्च परस्त्रीसंलापादिभूतेनान्येनाभिभवता व्यादीपितमन्मथाः स्मरशराकृष्यमाणाः शरीरनिरपेक्षा राजनिग्रहं न गणयेयुः। आद्यायामेव तु प्रवृत्तौ गृह्यमाणेष्वप्रबन्धवृत्तौ रागे शक्य निराकरणम्। तस्मात्परस्त्रीमुपजपतामेव महादण्डो युक्तः।

इह त्वन्तग्रहणादादिभूतेनान्येन दण्डेन भवितव्यम्। न ह्यसत्यादावन्तो भवति। प्राणोऽन्तो यस्य णान्तस्तावत्पातयितव्यो यावत्प्राणेषु पतति। तेन सर्वस्वग्रहणाङ्गच्छेदाद्यप्युक्त भवति। एकैकस्य च ण्डत्वमन्यत्र ज्ञातं न समुदाये दृश्यते इति बहुदण्डेष्वाम्नातेषु स महान् यो द्विजातिस्त्री संग्रहणेऽब्राह्मणस्य। अतो युक्तैव मारणकल्पना सर्वत्र। तत्र कुलस्त्रीभिरनिच्छन्तीभिर्भर्तृमतीभिः संगृह्यमाणस्य प्राणापहरण हीनजातीयाभिरपि।। ३५९।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। संग्रहणे परदारमैथुने न तु सभाषादौ। ब्राह्मणस्य तु दण्डनमेवेत्यर्थः।। ३५९।।

(३) **कुल्लूकः**। अब्राह्मणोऽत्र शूद्रः दण्डभूयस्त्वात्। ब्राह्मण्यामनिच्छत्यामुत्तमं संग्रहणं प्राणान्तं दण्डं प्राप्नोति चतुर्णामपि ब्राह्मणादीनां वर्णानां धनपुत्रादीनामतिशयेन दाराः सर्वदा रक्षणीयाः तेन प्रसङ्गनिवृत्यर्थमुत्कृष्टसंग्रहणादपि सर्ववर्णैर्भार्या रक्षणीया।। ३५९।।

(४) **राघवानन्दः** । तदुचितं दण्डमाह अब्राह्मण इति। अब्राह्मणोऽत्र शूद्रोऽतिदण्डनात्। तेन हि संगता ब्राह्मणी ब्राह्मण्यं जहातीति प्रायश्चित्तगौरवश्रवणात्। यतो हि सर्वैरेव परस्त्री काम्यते पुमात्रदुषकत्वादतः सा रक्षणीयेत्याह चतुर्णामिति। यतःश्रुतिः अप्रमत्ता रक्षत तन्तुमेनमिति स्त्रियं शिक्षयताम्॥ ३५९॥

(५) **नन्दनः** । अब्राह्मणः क्षत्रियादिः संग्रहणे उत्तरोत्तरवर्णस्त्रीसंग्रहणे किमेव ब्राह्मणस्य स्त्रीसंग्रहणमात्रेणापि प्राणान्तिको दण्डविधिरित्याशंकायामुक्तमुत्तरार्द्धं परस्त्रीसंभाषायामर्हानर्हदण्डविधानार्थम्॥ ३५९॥

(६) **रामचन्द्रः** । अब्राह्मणः परस्त्रियः संग्रहणे मैथुनादौ प्राणान्तदण्डं सः अर्हति अतिशयेन रक्ष्याः॥ ३५९॥

(७) **मणिरामः** ।

(८) **गोविन्दराजः** । अब्राह्मण इति। चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाःस्मृताः। दण्डभृयस्त्वादब्राह्मणशूद्रो ब्राह्मण्यामनिच्छन्त्यां संग्रहणे प्राणानां दण्डमर्हति। चतुर्णामपि वर्णानां धनपुत्रादीनां मध्याद् दारा अतिशयेन रक्षणीयाः। अत उत्कृष्टसंग्रहणादपि वर्णैः भार्या संरक्षणीया॥ ३५९॥

**भिक्षुका बन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा॥**
**संभाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः॥ ३६०॥**

(१) **मेधातिथिः** । भिक्षुका भिक्षाजीविनो भिक्षायाचनारूपं संभाषणमवारिताः कुर्युर्यदि स्वामिना न निषिद्धाः। अथवा नैते वारयितव्याः। बन्दिनः स्तावकाः। दीक्षिता यज्ञे भूतिवचनार्थं संभाषेरन्। कारवः सूपकारादयः। एते तीर्थादिष्वपि न निवार्याः॥ ३६०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । दीक्षिताः व्रतादिमध्यस्थाः॥ ३६०॥

(३) **कुल्लूकः** । भिक्षाजीविनः स्तुतिपाठकाः यज्ञार्थकृतदीक्षकाः सूपकारादयः भिक्षादित्वकार्यार्थं गृहिस्त्रीभिः सह संभाषणमनिवारिताः कुर्युः एवं चैषां संग्रहणाभावः॥ ३६०॥

(४) **राघवानन्दः** । केषांचित्परदारासंभाषणे देहयात्रादिकार्यानुत्पत्तेः प्रतिप्रसवतया तत्संभाषणमाह भिक्षुका इति। भिक्षवो ब्रह्मचारिसंन्यासिनः भवति भिक्षां देहीति तद्विना भिक्षाऽलब्धेः। बन्दिनः स्तुतिपाठकाः वदान्या त्वमसि कमलनयने विष्णुमित्रस्यपुत्रीत्यादिनाऽभिमुखीकृत्य वस्त्रान्नादि प्रार्थयमानाः। दीक्षिता यज्ञे वृता ऋत्विजः हविष्कृद्देहीत्याह्वानं कुर्वन्ति हविष्कृद्यजमान-पत्नीति। कारवः शूर्पकारादयः॥ ३६०॥

(५) **नन्दनः** । अप्रतिवारिताः स्त्रीबन्धुभिरनिषिद्धाश्चेत्॥ ३६०॥

(६) **रामचन्द्रः** । भिक्षुकादयःस्त्रीभिःसह प्रतिवारिताःसंभाषणं कुर्युः। दीक्षिता ब्रह्मचारिव्रतस्थाः॥ ३६०॥

(७) **मणिरामः** ।

(८) **गोविन्दराजः** । भिक्षुका इति। भिक्षाजीविनः स्तावकाः यज्ञार्थं कृतदीक्षाः सूपकारादयो भिक्षादिस्वरूपार्थं गृहे स्त्रीभिः सह संभाषणं अनिवारिता एव कुर्युः। तेषां निवारणा नास्त्येव संग्रहणाभावात्॥ ३६०॥

**न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत्।।**
**निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति।। ३६१।।**

(१) **मेधातिथिः** । केचिद्भिक्षुकादीनां निवारितानां संभाषणे दण्डोऽयमिति मन्यन्ते। तदसत्। नैव ते निवार्या इत्युक्तम्। कुतश्च भिक्षुकाणां सुवर्णो दण्डः। तस्मात्कोऽपि प्रकाशमनाक्षारितोऽपि कथंचिन्निषिद्धः स्वामिना समाचरन्सुवर्णं दण्ड्यः।। ३६१।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । प्रतिषिद्धः भिक्षुकादिरपि। सुवर्णमेकम्।। ३६१।।

(३) **कुल्लूकः** । स्वामिना निषिद्धः स्त्रीभिः संभाषणं न कुर्यात्प्रतिषिद्धः संभाषणमाचरन्राज्ञः षोडशमाषात्मकसुवर्णदानयोग्यो भवति।। ३६१।।

(४) **राघवानन्दः** । अप्रतिवारिता इत्युक्तं प्रतिवारणोत्तरसंभाषणे तेषामपि दण्डमाह नेति सुवर्णं।। ३६१।।

(५) **नन्दनः** । प्रतिषिद्धः स्त्रीबन्धुभिः।। ३६१।।

(६) **रामचन्द्रः** । प्रतिषिद्धः भिक्षुकादिभिःअन्यः।। ३६१।।

(७) **मणिरामः** । प्रतिषिद्धः स्वामिना।। ३६१।।

(८) **गोविन्दराजः** । न संभाषं सह स्त्रीभिरिति। स्वामिना निषिद्धः सन् स्त्रिभिः संभाषणं न कुर्यात्। निषिद्धः संभाषमाणस्तु राज्ञः सुवर्णं दण्डं ददाति।। ३६१।।

**नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु।।**
**सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च।। ३६२।।**

(१) **मेधातिथिः** । यः संभाषणप्रतिषेध उपकारक्रियाप्रतिषेधश्च नैष चारणदारेषु स्यात्। चारणा नटगायनाद्याः प्रेक्षणकारिणः। तथा आत्मोपजीविषु वेषेण जीवत्सु ये दाराः। अथवा ऽऽत्मजायैव "अर्धो ह वा एष आत्मेति" तां य उपजीवन्ति उपपतिक्षमकाः। सज्जयन्ति संश्लेषयन्ति ते चारणाः परपुरुषेण। निगूढाः प्रच्छन्नम्। आपणभूमौ न तिष्ठन्ति। गृहवेषत्वादेव ताः प्रसिद्धवेश्याभ्यो भिद्यन्ते। चारयन्ति च ता मैथुनं प्रवर्तयन्ति नेत्रभ्रूविलासपरिहासादिभिः पुरुषानाकर्षयन्ति। तदनुज्ञानं 'सज्जनं', 'चारणं' संप्रयोग एव। अथवा स्वा नारीः 'सज्जयन्ति' योजयन्ति, अन्याश्च स्वस्त्रीभि'श्चारयन्ति' प्रवर्तयन्ति वेश्यात्वं कुट्टनीत्वं च स्वदाराणां कारयन्तीत्यर्थः।। ३६२।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । चारणा नटादयः। ते चारणाः नारीः स्वदारान् निरूढानिहनुतनट-भार्यात्वादिस्वरूपाः चारयन्ति भ्रामयन्ति तत्र-तत्र पुरुषलाभार्थतस्तेषां तद्वृत्तित्वान्न दोषः।। ३६२।।

(३) **कुल्लूकः** । परस्त्रियं योभिवदेदित्यादिसंभाषणनिषेधविधिर्नटगायनादिदारेषु नास्ति तथा भार्या पुत्रः स्वका तनुरित्युक्त्वात् भार्येवात्माऽनयोपजीवन्ति धनलाभाय तस्या जारं क्षमन्ते ये तेषु नटादिव्यतिरिक्तेष्वपि ये दारास्तेष्वप्येवंनिषेधविधिर्नास्ति यस्माच्चारणा आत्मोपजीविनश्च परपुरुषानानीय तैः स्वभार्या संश्लेषयन्ते स्वयमागताश्च परपुरुषान्प्रच्छन्ना भूत्वा स्वाज्ञानं विभावयन्तो व्यवहारयन्ति।। ३६२।।

(४) **राघवानन्दः**। परदाररतानां स्त्रीविशेषे उक्तदण्डाभावमाह नैष इति द्वाभ्याम्। एष उक्तदण्डविधिर्न पञ्चसु परदारेषु चारणनटगायनादि आत्मोपजीविषु आत्माऽत्रआत्मभार्या तां भोगार्थं विक्रीय जीविनस्तेषु। तत्र दृष्टार्थतामाह सज्जयन्तीति। सज्जयन्ति परपुरुषैःसह स्वस्त्रियः श्लेषयन्ति चारयंति स्वागतान्पुरुषान् निगूढाः स्वयं प्रच्छन्ना भूत्वा अज्ञानं विभावयन्तो मैथुनादिना स्वपरस्त्रिया सह॥ ३६२॥

(५) **नन्दनः**। चारणदारेषु रङ्गोपजीविनां दारेषु संभाषितेष्विति विपरिणामः एष पूर्वोक्त-सुवर्णदण्डविधिर्न स्यात् आत्मोपजीविषु रूपाजीवासु वेश्यासु कस्यचिद्दारत्वेन स्थितास्वित्यर्थः। ते चारणा नारीः पुरुषेषु सज्जयन्त्यभिसारयन्ति। एवं तेषां शीलं तस्मान्नैष दण्डविधिरिति॥ ३६२॥

(६) **रामचन्द्रः**। एष विधिः आत्मोपजीविषु चारणदारेषु नटादिस्त्रीषु न कर्तव्यः॥ ३६२॥

(७) **मणिरामः**। एषःविधिः परस्त्रीसंभाषणनिषेधविधिः। चारणदारेषु नटगायनादिदारेषु। युद्धोत्साहवर्णकः। आत्मोपजीविषु भार्यैव आत्मा अनया उपजीवंति धनलाभाय भार्यालाभं क्षमन्ते। ते आत्मोपजीविनः। तेषु। हि यस्मात्। ते नटादयः आत्मोपजीविनश्च नारीः सज्जयंति। परपुरुषैः संश्लेषयंति। गूढाः चारयंति च स्वयमागतान् पुरुषान् प्रछन्ना भूत्वा स्वस्याज्ञानं व्यवहारयंति। तस्मात्तत्र संभाषणे न निषेधः॥ ३६२॥

(८) **गोविन्दराजः**। नैष इति। 'परस्त्रियं योऽभिवदेत्' इत्यादिकः संभाषणनिषेधविधिः नटगायनादिदारेषु वेशजीविदारेषु च श्लेषयन्ति प्रच्छन्नाश्च भूत्वा नैतत्किलास्माभिः ज्ञातमिति कृत्वा वेशकर्मणि सूचयन्त्यस्तद्धारणां वेश्याप्रकारत्वात् नास्ति संभाषणे निषेधः॥ ३६२॥

**किंचिदेव तु दाप्यः स्यात्संभाषां ताभिराचरन्॥**
**प्रेष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च॥ ३६३॥**

(१) **मेधातिथिः**। रहोऽप्रकाशं विजने देशे चारणनारीभिः संभाषां कुर्वन् किंचित्सुवर्णा-द्यत्यन्ताल्पं स त्रिंशद्भागिकं जातिप्रतिष्ठाने अपेक्ष्य दण्ड्यः। यतो न परिपूर्णं तासु वेश्यात्वम्। भर्तृभिरनुज्ञाता हि ताः पत्न्यायन्ते। तत्र भर्तृविज्ञानार्थं दूतीमुखेन व्यवहर्तव्यम्। न तु साक्षात्ताभि-रस्वतन्त्रत्वात्। प्रकाशं तु नृत्यन्तीनां गायन्तीनां वाऽभिनयतालादिनिरूपणावसरे कीदृशमेतदित्यादिप्रश्न-द्वारं संभाषणमनिषिद्धम्।

प्रेष्या दास्यः सप्तभिर्दासयोनिभिरुपनताः। एकं भजन्ते एकभक्ता एकेनावरुद्धाः। तत्रान्योऽप्यस्ति दण्डलेशः।

"किंपुनरयं दासीशब्दः संबन्धिशब्दो य एव यस्याः स्वामी तस्यैव दासी—उत सूपकारादि-शब्दवत् कर्ममूलकः"।

इह तावदाद्या एव स्थितिः। विशेषोपादानेऽसामर्थ्यात्। या यस्य दासी वेश्यावच्चान्यैः संसृज्यते, राजदासीव दासी वा, सा निगृह्यते। सा चेन्नावरुद्धा न दोषः संग्रहणे। अवरुद्धायामनेन दण्ड उक्तः। रिक्थविभागे चैतन्निपुणं वक्ष्यामः। प्रव्रजिताः अरक्षकाः शीलमित्रादयः। ता हि कामुक इव लिङ्ग-प्रच्छन्नाः॥ ३६३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । किंचिद्दाप्यः शक्त्यनुरूपम्। रहःसंभाषमाचरन्नित्यन्वयः एकभक्तास्वेकेन केनचिदवरुद्धासु। प्रव्रजितासु भिक्षुकीप्रभृतिषु॥ ३६३॥

(३) **कुल्लूकः** । निर्जनदेशे चारणात्मोपजीविस्त्रीभिः संभाषणं कुर्वन्स्वल्पदण्डलेशं राज्ञ दाप्यः तासामपि परदारत्वात्। तथा दासीभिरवरुद्धाभिर्बौद्धाभिर्ब्रह्मचारिणीभिः संभाषां कुर्वन्किंचिद्दण्ड मात्रं दाप्यः स्यात्॥ ३६३॥

(४) **राघवानन्दः** । ताभिःसह व्यवहरन्नपि किंचिद्दाप्य इत्याह किंचिदिति। स्त्रीपणं विन पुनःप्रसक्तिवारणाय तासामपि परदारत्वात्। प्रेष्यासु दासीषु प्राकारावरुद्धासु। एकभक्तासु। भुजिष्यास् तदुक्तं याज्ञवल्क्येन॥ अवरुद्धासु दासींसु भुजिष्यासु तथैव च। गम्यास्वपि पुमान्दाप्यः पञ्चाशत्पणिव दमं इति॥ प्रव्रजितासु बौद्धादिव्रतब्रह्मचारिणीषु नित्यं व्रजनशीलासु कुलटासु वा॥ ३६३॥

(५) **नन्दनः** । ताभिश्चारणदारादिभिः सह रहस्संभाषणमाचरन्तास्वेकपुरुषसक्तासु प्रेष्यास् पृच्छिप्रवर्तितासु च संभाषामाचरन्किंचिद्दाप्यः॥ ३६३॥

(६) **रामचन्द्रः** । एकभक्तासु पुनः प्रव्रजिताः बौद्धावृत्तिचारिण्यः ताभिःरहः संभाष आचरन्किंचिदेव तु दाप्यः स्यात्॥ ३६३॥

(७) **मणिरामः** । तत्राप्येकांते संभाषायां स्वल्पदंडमाह ॥किंचिदिति॥ प्रैष्यासु चैव भक्तासु। अवरुद्धासु। प्रव्रजितासु। ब्रह्मचारिणीषु च॥ ३६३॥

(८) **गोविन्दरामः** । किञ्चिदेव तु दाप्यः स्याद्रहः संभाषणं चरन्निति। चारण आत्मोप जीविस्त्रिभिः रहोऽप्रकाशं संभाषणं कुर्वन् किञ्चिदेव स्वल्पं दण्डं दापनीयः। दासीभिरवरुद्धाभि र्बौद्धाभिर्व्रतचारिणीभिश्च सह संभाषणं कुर्वन् काञ्चिद्दण्डमात्रां दाप्यः स्यात्॥ ३६३॥

**योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति॥**
**सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः॥ ३६४॥**

(१) **मेधातिथिः** । प्रासङ्गिकमिदम्। **तुल्यः** समानजातीयः सोऽनिच्छन्तीं कुमा **दुषयेत्**कौमार्यादपच्यावयेत्स्त्रीपुरुषसंभोगेन – **सद्यस्**तस्मिन्नेवहन्यविलंबं हन्तव्यः।

सकामाया दूषणे नास्ति वधप्राप्तिः। यच्चात्र भविष्यति तद्वक्ष्यामः। यद्यपि तुल्य इत्येवात्र श्रु वधोऽपि जात्यपेक्षायामवश्यंभाविन्यां संबध्यते॥ ३६४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । दूषयेन्मैथुनेन। एतच्च सजातित्वेपि। तुल्यः सजातीयः न व प्राप्नुयाद् दण्डमात्रंतु प्राप्नुयादेव॥ ३६४॥

(३) **कुल्लूकः** । यस्तुल्यजातिरनिच्छन्तीं कन्यां गच्छति स तत्क्षणादेव ब्राह्मणेत लिङ्गच्छेदनादिकं वधमर्हति इच्छन्तीं पुनर्गच्छन्वधार्हो मनुष्यो न भवति॥ ३६४॥

(४) **राघवानन्दः** । पंचबाणोन्मथितातिप्रसंगेन कन्यायाःअकामसकामाभ्यां दण तदभावावाह य इति। वधं लिङ्गच्छेदनं दूषणमत्र मैथुनपर्यन्तं। विप्रस्य वधाप्रसक्तेः। ब्राह्मणेतरतुल तुल्यजातिः॥ ३६४॥

(५) **नन्दन:** । यः सवर्णस्तुल्पवर्णः॥ ३६४॥

(६) **रामचन्द्र:** । तुल्यः सजातीयः॥ ३६४॥

(७) **मणिराम:** । यः तुल्यः तुल्यजातिः अकामां दूषयेत्॥ ३६४॥

(८) **गोविन्दराज:** । योऽकामां दूषयेत्कन्यां समानं वधमर्हतीति। यंस्तुल्यजातीयोऽनिच्छन्तीं कन्यां दूषयति गच्छति स तत्क्षणादेव ब्राह्मणवर्जं लिङ्गच्छेदादिकं वर्धमर्हति। सकामां दूषयस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयात्॥ ३६४॥

**कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किंचिदपि दापयेत्॥**
**जघन्यं सेवामानां तु संयतां वासयेद्गृहे॥ ३६५॥**

(१) **मेधातिथि:** । **जातिधनशीलविद्यानामन्यतमेनापि** पितृकुला**दुत्कृष्टं भजन्तीं** प्रवर्तितमैथुनां न **किंचि**द्दण्डयेत्॥ कन्यायाः स्वातंत्र्याभावात्तद्रक्षाधिकृतानां पित्रादीनां दण्डे प्राप्ते प्रतिषेधः। **जघन्यं** जात्यादिभिर्हीनं **सेवमानां** मैथुनायोत्कलयन्तीं **संयतां** निवृत्तक्रीडाविहारां कञ्चुकिभिरधिष्ठितां पितृगृह एव **वासयेद्**यावन्निवृत्ताभिलाषा संजाता। अथ हीनजातीये निर्वृत्तप्रीतिविशेषा तदा आऽन्त्योच्छ्वासात्संयतैव तिष्ठेत्॥ ३६५॥

(२) **सर्वज्ञनारायण:** । न दापयेत् कन्यां पुरुषं च। संयतां बद्धाम्॥ ३६५॥

(३) **कुल्लूक:** । कन्यां संभोगार्थमुत्कृष्टजातिपुरुषं सेवमानां स्वल्पमपि दण्डं न दापयेत् हीनजातिं पुनः सेवमानां यत्नात्स्थापयेत् यथा वा निवृत्तकामा स्यात्॥ ३६५॥

(४) **राघवानन्द:** । कन्याकर्तृकगमने उत्कृष्टतया दण्डाभावमाह कन्यामिति। उत्कृष्टाय तस्मै तां चेद्दद्यादित्यपेरर्थः। जघन्यं जातिन्यूनं सेवमानां संयतां वासयेत् गृहमानीय पुनःप्रसंगवारणाय॥ ३६५॥

(५) **नन्दन:** । उत्कृष्टमुत्कृष्टवर्णं जघन्यमपकृष्टवर्णम्॥ ३६५॥

(६) **रामचन्द्र:** । उत्कृष्टं उत्तमं विप्रं पुरुषं भजन्तीं कन्यां किंचद्दण्डमपि न दापयेत्। जघन्यं शूद्रं सेवमानां कन्यां संयतां अवरुद्धां गृहे वासयेत्॥ ३६५॥

(७) **मणिराम:** । उत्कृष्टः त्वजातेः। उत्कृष्टजातिपुरुषंभजंतीं सेवमानां॥ ३६५॥

(८) **राघवानन्द:** । कन्यामिति। उत्कृष्टं पुरुषं कन्यां सेवमानां न किञ्चिदपि दण्डं राजा दापयेत्। हीनजातिं पुनः सेवमानां रक्षितां पितृगृहे स्थापयेत्। यावदनिवृत्ताभिलाषा स्याद्वृत्तिहीनज्ञातिसंप्रयोगाद्यावज्जीवं स्थापयेत्॥ ३६५।

**उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो दण्डमर्हति॥**
**शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि॥ ३६६॥**

(१) **मेधातिथि:** । अकामायाः कन्याया दूषणे ब्राह्मणवर्जमविशेषेण हीनोत्तमानां वध एव दण्ड इत्युक्तम्। सकामाया दूषणे त्विदमाहुः। **उत्तमां** रूपयौवनजात्यादिभिः। **जघन्यो**ऽत्यन्तनिकृष्टः।

नातिसाम्येऽपि गुणैर्वध्यः। **समां तु** गच्छन्सकामां स **शुल्क**मासुरविवाह इव पित्रे **दद्यात्**। न चेदिच्छति पिता तदा राज्ञे दण्डं तावंतम्।

''ननु च गान्धर्वोऽयं विवाह 'इच्छयाऽन्योन्यसंयोग' इति। तत्र न युक्तो दण्डः।''

केनोक्तं गान्धर्वे नास्ति दण्डः। अत एव नायं सतीधर्मः, न चायं विवाहः, अग्निसंस्कारा-भावात्। यदपि शाकुन्तले व्यासवचनममन्त्रकमनग्निकमिति तद्दुष्यंतेन कामपीडितेनैवं कृतम्। न चेच्छासंयोगमात्रं विवाहः। स्वीकरणोपायभेदादष्टौ विवाहाः, न पुनर्विवाहभेदात्। वृत्तवरणं तत्र पुनः कर्तव्यमेवमिति। अथवा ऋतुदर्शनोत्तरकालं गान्धर्वः। प्रागृतोः शुल्को दण्डो वा।

''अथ कन्यायाः का प्रतिपत्तिः?'' तस्मा एव देया। निवृत्ताभिलाषा चेत्काममन्यत्र प्रतिपाद्या। शुल्कग्रहणं चात्रापि सकृदुपभोगनिष्कृत्यर्थमस्त्येव। वरश्चेन्निवृत्ताभिलाषो हठाद्ग्राहयितव्यः॥ ३६६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उत्तमां स्वोत्तमजातिं कन्याम्। शुल्कं पित्रे मूल्यं दद्यात्। अनुमन्यते यदि तस्मै दातुमिच्छेत् अनिच्छया त्वन्यस्मै कन्यां दद्यात्॥ ३६६॥

(३) **कुल्लूकः**। हीनजातिरुत्कृष्टामिच्छन्तीमनिच्छन्तीं वा गच्छत्यपेक्षयाऽङ्गच्छेदन-मारणात्मकं वधमर्हति समानजातीयां पुनरिच्छंतीं गच्छन् यदि पिता मन्यते तदा पितु शुल्कानुरूपमर्थं वा दद्यान्न च दंड्यःसा च कन्या तेनैव वोढव्या॥ ३६६॥

(४) **राघवानन्दः**। पुंकर्तृके त्वाह उत्तमामिति। उत्तमां उत्कृष्टजातिं जघन्यो जातितो न्यूनःशूद्रो वधमङ्गच्छेदनमारणादिकम्। क्षत्रियादिजातिः समानजातीयां सेवमानः शुल्कं दद्यात्। शुल्कदाने पितुरिच्छैव कारणमित्याह इच्छेदिति। स्वार्थं कन्यार्थं वा। जघन्यां गृहणीयादेव पितुरिच्छया। य इत्यादिश्लोकत्रये एतस्योत्कृष्टरागो द्रष्टव्यः अन्यथा तत्कर्मणो रागं विनानुपपत्तेः॥ ३६६॥

(५) **नन्दनः**। उत्तमामुत्कृष्टवर्णां सेवमानः शुल्कं दद्यात् कन्यापिता शुल्क-मिच्छेद्यदि॥ ३६६॥

(६) **रामचन्द्रः**। समां सवर्णां कन्या सेवमानः यदि पिता शुल्कमिच्छेत्तर्हि दद्यात्॥ ३६६॥

(७) **मणिरामः**। समां इच्छन्तीं। यदि पिता इच्छेत् मन्यते तदा शुल्कं तत्पित्रे दद्यात्। सा च तेनैव वोढव्या॥ ३६६॥

(८) **गोविन्दराजः**। उत्तमामिति। शुल्क दाप्यः सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि। उत्कृष्ट-जातीया कन्या इच्छन्तीं वा हीनजातिर्गच्छन् जात्यपेक्षयाऽङ्गच्छेदमारणात्मक वधमर्हति। समान-जातीया पुनरिच्छन्तीं गच्छन्यदि पिता इच्छति तदा पितुः शुल्कमनुरूपमासुखन्दद्यान्न तु दण्ड्योऽथ पिता नेच्छति तदा राज्ञा शुल्कपरिणामं दाप्यः॥ ३६६॥

**अभिषह्य तु यः कन्यां कुर्याद् दर्पेण मानवः।**
**तस्याशु कर्त्या अंगुल्यो दण्डं चार्हति षट्शतम्॥ ३६७॥**

(१) **मेधातिथिः**। यद्यपि सकामा कन्या पित्रादयस्तु तस्याः सन्निहितास्तानिच्छतो-ऽ**भिषह्याभिभूय दर्पेण** बलेन—कः किं कर्तुं मे शक्तः—कन्यानुरागमात्राश्रितः कन्या

**कुर्याद्वि**कुर्याद्दूषयेत्। अनेकार्थः करोतिः। **तस्याशु कर्त्याः** छेत्तव्या अर्धाङ्गुलयः। षट्शतानि वा दण्ड्यः।

अन्ये तु योऽकामां दूषयेदित्यस्यैव वध्यर्थस्योपसंहारोऽयम्। ताडनात्प्रभृतिमारणं यावद्वध्यर्थः। तत्रेमां निकृष्टजातीयां च दूषयन्न मार्यतेऽपि त्वङ्गुली अस्य च्छिद्येत॥ ३६७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अभिषह्य प्रसह्य कन्यां कुर्यात् योनावङ्गुलीप्रक्षेपेण विवृतयोनिं कुर्यात्। कल्प्ये कर्त्ये। एतच्चाधमजातिपुरुषविषयम्। उत्तमसमयोराह दण्डमिति। चकारो वकारार्थे। एतच्च कन्यायाश्चाकामत्वे॥ ३६७॥

(३) **कुल्लूकः**। यो मनुष्यः प्रसह्य बलात्कारेण समानजातीयां गमनवर्जमहङ्कारेणाङ्गुलिप्रक्षेपमात्रेणैव नाशयेत्तस्य शीघ्रमेवाङ्गुलिद्वयच्छेदः कर्तव्यः षट्पणशतानि चायं दण्ड्यः स्यात्॥ ३६७॥

(४) **राघवानन्दः**। ऋते मैथुनं कन्यादूषकस्य अङ्गुलिच्छेदरूपं दण्डमाह अभिषज्येति। अभिषज्य प्रसह्य कन्यामात्रं धनादेर्दर्पादङ्गुलिप्रवेशादिना विरोधिलक्षणया तामेव कन्यां क्षतयोनिं कुर्यादित्यर्थः। कन्यां कुर्याद्विकुर्यादिति मेधातिथिः। अङ्गुल्यौ तर्जन्यङ्गुष्ठौ॥ ३६७॥

(५) **नन्दनः**। अविषह्यां भार्यत्वेन वोढुमशक्यां अक्षतयोनिमिति यावत् अङ्गुल्योश्छेदनं योनिक्षतकरणत्वात्॥ ३६७॥

(६) **रामचन्द्रः**। यो मानवः अभिषह्य हठात् दर्पेण कन्यां कुर्यात् अङ्गुल्यादिना योनिविदारण कुर्यात् तस्याशु अङ्गुल्यौ कर्तनीये। वा षट्शतं दण्डं अर्हति॥ ३६७॥

(७) **मणिरामः**। अभिषह्य यः कुर्यात् बलात्कारेण समानजातीयां मैथुनवर्जं अंगुलिप्रक्षेपेण नाशयेत्। तस्य आशु अंगुल्यौ कर्त्ये छेदनीये॥ ३६७॥

(८) **गोविन्दराज**:। अभिषह्येति। मनुष्यः प्रसह्य हठाद्दहङ्कारेण समानां समानजातीयां तां गमनवर्जं अङ्गुलिप्रक्षेपमात्रेणैव नाशयेत् तस्य क्षिप्रमेवाङ्गुलिद्वयं कर्तनीयं, दण्डं षट्शतमसौ दापनीयः॥ ३६७॥

**सकामां दूषयंस्तुल्यो नांगुलिच्छेदमाप्नुयात्॥**
**द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसङ्गविनिवृत्तये॥ ३६८॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सकामामि**त्यनुवादः। पूर्वस्यापि सकामविषयात्। अभिषह्य करणे पूर्वं दण्डः, अप्रकाशं चौर्यवद्द्विशतोऽङ्गुलीच्छेदवर्जितः। अथ कस्मिंश्चित्पुरुषेऽनुरागवती कन्या तेन संयुज्यमाना कन्यात्वनिवृत्तौ सकामा येन विकृतीक्रियते तस्यायं दण्डः। अथवा हस्तस्पर्शमात्रमिह दूषणम्। प्रार्थनीयायाः कन्याया हस्तस्पर्शः—मया स्पृष्टां ज्ञात्वा नान्य एतामर्थयिष्यतेऽन्यस्मिन्ननुरागिणीं मन्यमानः॥ ३६८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अन्यत्राह सकामामिति। दूषयन्नङ्गुलीप्रक्षेपेण। तुल्यः सजातिः॥ ३६८॥

(३) **कुल्लूकः**। समानजातिरिच्छन्तीं कन्यामङ्गुलिप्रक्षेपमात्रेण नाशयन्नाङ्गुलिच्छेदमाप्नोति किंत्वतिप्रसक्तिनिवारणाय द्विशतं दण्डं दाप्यः॥ ३६८॥

(४) **राघवानन्दः**। रागस्य वैचित्र्यात्तथेच्छन्तीं दूषयन्न दण्डभागित्याह सकामामिति। प्रसंगविनिवृत्तये पुनःप्रसक्तिवारणाय तेनैव तामनुरज्य यःसंभोगस्तन्निवृत्तये च प्रतिलोमजाऽनुलोमजकन्यामात्रे धनदण्डमात्रमङ्गुलिप्रक्षेपाद्यैरधिकदूषणाभावात्॥ ३६८॥

(५) **नन्दनः**। प्रसङ्गविनिवृत्तयेऽन्यत्र पुनरेवंकरणविनिवर्त्तनाय॥ ३६८॥

(६) **रामचन्द्रः**। सकामां कन्यां दूषयमाणः अङ्गुलिच्छेदं नाप्नुयात्॥ ३६८॥

(७) **मणिरामः**। प्रसंगविनिवृत्तये अतिप्रसक्तिनिवारणाय॥ ३६८॥

(८) **गोविन्दराजः**। सकामामिति। समानजातिरिच्छन्तीं कन्यामङ्गुलिमात्रप्रक्षेपेण नाशयन् अङ्गुलिच्छेदं न प्राप्नुयात् किन्तु पौनःपुन्येन एषः प्रसङ्गान्नावर्तेत तदर्थं शतमयं दण्डं दाप्यः॥ ३६८॥

**कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्याः स्याद्द्विशतो दमः॥**
**शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद् दश॥ ३६९॥**

(१) **मेधातिथिः**। बालभावाद्रूपादिद्वेषाद्वा **कन्यैव कन्यां** नाशयेत्सा **द्विशतं** दाप्या। **शुल्क**श्च त्रिगुणः।

किंपुनः शुल्कस्य परिमाणम्।
एषामन्यतमरूपसौन्दर्याद्यपेक्षं सौभाग्यापेक्षं च।
**शिफा** रज्जुलताप्रहाराः॥ ३६९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कन्यां स्वयमन्यां कन्यां कुर्यात् अंगुलीप्रक्षेपेण। शुल्कं कन्याशुल्कं पित्रे स्पृष्टमैथुनताशङ्कयाऽन्येनापरिणयनात्। शिफावृक्षजटाः दश दशकृत्वस्ताभिस्ताडनं प्राप्नुयात्॥ ३६९॥

(३) **कुल्लूकः**। या कन्यैव परामङ्गुलिप्रक्षेपेण नाशयेत्तस्या द्विशतो दण्डःस्यात् कन्याशुल्कंच द्विगुणं कन्यापितुर्दद्यात् शिफाप्रहारांश्च दश प्राप्नुयात्॥ ३६९॥

(४) **राघवानन्दः**। कन्यान्तरकृताङ्गुलिप्रक्षेपेपि दण्डमाह कन्यैवेति। कन्यां कुर्यात्-कन्यात्वनाशन्यायस्यापि तुल्यत्वात्। शुल्कं संवननमूल्यम्। पुंसः प्रीतिविशेषसंभवेपि कन्यायास्तदभावात्सान्निध्यविशेषाद्विश्वसनीयत्वाच्च दण्डविशेषः। शिफाःशिखाप्रहाराः॥ ३६९॥

(५) **नन्दनः**। कुर्यादविषह्यामित्यनुवर्त्तते। येन शुल्केन तां पिता दास्यति तत्त्रिगुणं। दशशिखाश्चाप्नुयात्तस्याःशिरसि दशशिखाश्च कारयेत्। शिफा इति वा पाठः। शिफा जटा॥ ३६९॥

(६) **रामचन्द्रः**। या कन्यैव कन्यां संभोगेन कुर्यात्तस्या द्विशतो दमःस्यात्। शुल्कंच द्विगुणं दद्यात्पित्रे कन्यामूल्यं स्पष्टमैथुनाकन्यापरिणेयत्वात्। शिफाश्चैवाप्नुयाद्दशदशाप्नुयात् च पुनःदशशिफाः आप्नुयादेव शिरसि दशशिफाः कार्या इत्यर्थः। शाखाशाले शिफाजटे इत्यमरः॥ ३६९॥

(७) **मणिरामः**। कन्यैव कन्यां या कुर्यात्। एका कन्या अन्यां कन्यां अंगुलिप्रक्षेपेण नाशयेत्। शुल्कं द्विगुणं चतुःशतपणात्मकं कन्यापित्र्ये दद्यात्। शिफाप्रहारांश्च दश प्राप्नुयात्॥ ३६९॥

(८) **गोविन्दराजः** । कन्येति। शुल्कञ्च त्रिगुणं दद्यात् शिफाश्चैवाप्नुयाद्दश। या कन्यैव कन्यामपरां अंगुलिप्रक्षेपेण नाशयेत्तस्या द्विशतो दण्डःस्यात्। शुल्कं वासौ कन्यापितुर्दद्यात्। शिखाप्रहारांश्च दश प्राप्नुयात्।। ३६९।।

**या तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति।।**
**अंगुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्वहनं तथा।। ३७०।।**

(१) **मेधातिथिः** । स्त्रियां कन्यानां कन्यालिंगं नाशयन्त्यां **मौण्ड्यं** केशवपनं दण्डोऽङ्गुलिच्छेदो वा **खरेणोद्वहनं** केशच्छेदपक्षे। कन्याजात्यादिभेदान्निग्राह्य भेदात् त्रैवर्णिकस्त्रीणां ब्राह्मणादिक्रमेणेमं दण्डमिच्छन्ति मुद्राश्च कल्पयन्ति। ते प्रमाणाभावादुपेक्षणीयाः।। ३७०।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । स्त्री युवती। मौण्ड्यं ब्राह्मणी। खरेणोद्वाहनं क्षत्रिया। इतरे अंगुलीछेदम्।। ३७०।।

(३) **कुल्लूकः** । या पुनः कन्यामङ्गुलिप्रक्षेपेण स्त्री नाशयेत्सा तत्क्षणादेव शिरोमुण्डनमनुबन्धापेक्षयाङ्गुल्योरेवच्छेदनं गर्दभेण च राजमार्गे वहनमर्हति।। ३७०।।

(४) **राघवानन्दः** । योषित्कर्तृकेऽपि तस्मिन्दण्डमाह यात्विति। स्त्रीपदमत्रक्लीबोपलक्षकं न्यायस्य तुल्यत्वात्। पूर्वेतु कन्यापदं गोबलीबर्दन्यायेन दण्डविशेषार्थम्। मौण्ड्यं शिरोमुण्डनम्। विकल्पश्छिद्रतारतम्यापेक्षया। अत्रापि पूर्वोक्ता हेतवोऽधिकं तु द्वेषमात्रम्।। ३७०।।

(५) **नन्दनः** । प्रकुर्यादविषह्यामित्येव।। ३७०।।

(६) **रामचन्द्रः** । या तु युवती स्त्री कन्याया प्रकुर्यात् कन्यायाःसंभोगं कुर्यात् सा स्त्री सद्यः मौण्ड्यं मुण्डस्यभावःमौण्ड्यं दण्डं अर्हति। तथा खरेण गर्दभेन उद्वहनम् च पुनः अंगुल्योश्छेदनं कर्तनम्।। ३७०।।

(७) **मणिरामः** । स्त्री चेदंगुलिप्रक्षेपं करोति तदा मौण्ड्यं शिरोमुंडनं प्राप्नोति।। ३७०।।

(८) **गोविन्दराजः** । येति। या पुनः स्त्री कन्यां नाशयेत् सा तत्क्षणादेव शिरोमुण्डनसानुबन्धापेक्षया अंगुल्योरेव छेदनमर्हति। तथा खरेण राजमार्गे वहनमर्हति इदञ्चात्र पूर्वाभ्यां विकल्पिताभ्यां समन्वितम्।। ३७०।।

**भर्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता।।**
**तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते।। ३७१।।**

(१) **मेधातिथिः** । 'लङ्घनं' भर्तारमतिक्रम्यान्यत्र गमनम्। तच्चेत् स्त्री करोति। दर्पेण बहवो मे ज्ञातयो बलिनो द्रविणसंपन्नाः। स्त्रीगुणो रूपसौभाग्यातिशयसंपत्। किमनेन शीलरूपेणेत्येव दर्पेण। **तां श्वभिः खादयेद्**यावन्मृता। **संस्थानं** देशः। बहवः संस्थिता यत्र जनाश्चत्वरादौ।। ३७१।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । लङ्घयेदन्यपुरुषगमनेन पित्रादिज्ञातिदर्पिता स्त्रीणां गुणगणैश्च दर्पिता स्त्री। बलेति क्वचित्पाठः तत्रापि बलं गुण एव। संस्थाने सभायां बहुसंस्थिते बहुभिरधिष्ठितायाम्।। ३७१।।

(३) **कुल्लूक**: । या स्त्री प्रबलधनिकपित्रादिबान्धवदर्पेण सौन्दर्यादिगुणदर्पेण च पतिं पुरुषान्तरोपगमनाल्लङ्घयेत्तां राजा बहुजनाकीर्णे देशे श्वभिर्भक्षयेत्॥ ३७१॥

(४) **राघवानन्द**: । स्त्रीप्रसंगेन तस्याः प्रकारान्तरेण दण्डमाह। भर्तारमिति। भर्तारं लङ्घयेत् रतिविशेषलोभेन त्यजेन्नाशयेद्वा। ननु तत्त्यागे जीवनं कुत इत्यत्राह। ज्ञातिः सत्कुलप्रचुरधनादियुक्तपित्रादिः गुणः सौन्दर्यं पुंजोषणादि ताभ्यां गर्विता दर्पिता। तां श्वभिरेव खादयेत्। संस्थाने संस्थाप्यते मार्यतेऽत्रेति वधस्थले बहुसंस्थिते बहुजनाकीर्णे तां दृष्ट्वा यथाऽन्याः न कुर्युरितिभावः॥ ३७१॥

(५) **नन्दन**: । अथ स्त्रीणां व्यभिचारे दण्डमाह भर्त्तारं लंघयेदिति लङ्घयेद्व्यभिचरेत् ज्ञातिगुणदर्पिता ज्ञातिगुणेन पित्रादिसकाशाल्लब्धस्त्रीधनादिगौरवेण स्त्रीगुणेन सौभाग्यसौन्दर्यादिना च गर्विता बहुसंस्थिते बहुभिर्जनैर्वृते संस्थाने वध्यघातस्थाने अथवा बहुभिः पुरुषैरारूढे ऊरुमूलप्रदेशे॥ ३७१॥

(६) **रामचन्द्र**: । बहुसंस्थिते स्थाने तां श्वभिः खादयेद्राजा॥ ३७१॥

(७) **मणिराम**: । लंघयेत्-पुरुषांतरोपगमनात्। बहुसंस्थिते संविस्थाने बहुमनुष्यदेशे श्वभिर्भक्षयेत्॥ ३७१॥

(८) **गोविन्दराज**: । भर्तारमिति। या स्त्री बलवदाढ्यपित्रादिबान्धवदर्पेण रूपवैदग्ध्यादिगुणगणदर्पिता पूर्वेण च भर्तारं पुरुषान्तरकरणेनोल्लंघयेत् तां राजा बहुजनाकीर्णे प्रदेशे श्वभिर्भक्षयेत्॥ ३७१॥

**पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे॥**
**अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत्॥ ३७२॥**

(१) **मेधातिथि**: । योऽसौ पत्न्या जारः स **आयसे** लोहशयने तप्तेऽग्निसमे कृते दाहयितव्यः तत्र च शयनस्थितस्य काष्ठानि वध्यघातिनोऽ**भ्यादध्युरु**परि क्षिपेयुः। यावत्काष्ठप्रहारैरग्निज्वालाभिः शयनतापेन च मृतः॥ ३७२॥

(२) **सर्वज्ञनारायण**: । पुमांसं तस्या व्यभिचारप्रतियोगिनम्॥ ३७२॥

(३) **कुल्लूक**: । अनन्तरोक्तं जारं पापकारिणं पुरुषमयोमयशयने प्रज्वलिते राजा दाहयेत्तत्र शयने वध्यघातिनः काष्ठानि निक्षिपेयुर्यावत्पापकारी दग्धः स्यात्॥ ३७२॥

(४) **राघवानन्द**: । तस्य उपपतेर्दण्डमाह पुमांसमिति। पाप पापिनमितिवक्तव्ये अत्यन्तपापख्यापनार्थम्। शयने अधोनिवेशनसाम्यात्तप्ते प्रज्वलिते। यथाऽधर्दग्धो न पलायते तथा कुर्यादित्याह अभ्यादध्युरिति। तस्माददहेत् अब्राह्मण चेत्। ब्राह्मण चेद्विवासयेदेव नजातु ब्राह्मणं हन्यादिति उदर्कनिषेधात्॥ ३७२॥

(५) **नन्दन**: । ब्राह्मण्याःशूद्रगमनेऽय दण्डः ब्राह्मण्यदूषयितुः शूद्रस्य दण्डमाह पुमांस दाहयेदिति। पुमांस शूद्र दाहयेद्दह्येत भस्मीक्रियेत॥ ३७२॥

(६) **रामचन्द्र**: । काष्ठानि आज्येन अभ्यादध्युः अवसिंचेत् तत्र दह्येत पापकृत्॥ ३७२॥

(७) **मणिरामः** : । परस्त्रीगामिनं पुरुषं किं कार्यं तदाह।। पुमांसमिति। अभ्यादध्युः तप्तायः – शयने काष्ठानि प्रक्षिप्य दाहयेत्।। ३७२।।

(८) **गोविन्दराजः** । तं दर्पिताजारं पुरुषं दाहयेदिति। तं पापकारिणं पुरुषं अयोमये शयने अग्निज्वलिते राजा दाहयेत्। काष्ठानि निक्षिपेयुः यावदसौ पापकृद्दग्धः स्यात्।। ३७२।।

**संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः।।**
**व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु।। ३७३।।**

(१) **मेधातिथिः** । अभिशस्तस्तत्पापकारीत्यभिशब्दितः यो यस्यां स्त्रियां संगृहीतस्सोऽभिशस्तो दण्डितः स चेत्संवत्सरे तस्यामेव संगृह्यते तदा तस्यैकवारमभिशस्तस्य **संवत्सरे** गते पुनर्दुष्टस्य द्विगुणो दण्डः।

**संवत्सराभिशस्तस्येति** समासपाठे कथंचिद्योजना।।

**व्रात्यया सह संवासे** तावदेव। "किं यावदेव पुनर्दुष्टस्य"। नेति ब्रूमः। तत्राप्युत्तमाधममध्यमानामनेकविधो दण्डः। तत्र कोऽसाविह 'द्विगुण' इति न ज्ञायते। किं तर्हि **चाण्डाल्या संवासे** यावदेव **तावदेव व्रात्ययेति**। "सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियमिति" (३८५)। 'व्रातः' पूगः संघस्तेन चरन्ती पुंश्चलीति कथंचिद् यः कर्तव्यः। अथवा व्रातमर्हति व्रात्येत्यस्तु–यकारो दण्डादिः। "का च व्रातमर्हति।" याऽनेकपुरुषोपभोग्या पुंश्चली सा हि पुरुषव्रातमर्हति। अथवाऽनेकपुरुषस्वामिका ग्रामस्य दास्यश्च 'व्रात्याः' ये तूद्वाहहीनां व्रात्यां मन्यन्ते–तेषां मतेन मुख्यः शब्दार्थः। अयं हि व्रात्यशब्दः स्मृतिकारैः सावित्रीपतितेषु प्रयुक्तः। न च स्त्रीणां तत्संभवः। अथ स्त्रीणां विवाहस्य तदापत्तिवचनादुपनयनं तद्धीनपुरुषवद्व्रात्या,–गौणस्तर्हि न मुख्यः। यदि नामोपनयनशब्दोऽनुपनयने विवाहे प्रयुक्तस्तथाप्युपनयनहीनो व्रात्य इत्युक्तेन विवाहहीन इति प्रतीयते। यथाऽसिंहोऽयं देश इत्युक्ते न सिंहशब्दस्य माणवके प्रयुक्तस्यापि देशस्यामाणवकत्वं प्रतीयते। अस्ति तत्र मुख्य इहासंभव इति चेन्नासंभवमात्रनिबन्धना गौणी प्रतीतिः, किं तर्हि, संबन्धमपरमपेक्ष्य। भवेदुपनयनशब्दो विवाहे गौणः, व्रात्यशब्दस्तु गौण इति को हेतुः? गौणत्वेऽपि विवाहाभावनिबन्धन इति दुरुपपादम्। व्रात्यजापि–काकाज्जातः काकः श्येनाज्जातः श्येन इति–व्रात्येति शङ्क्यते। व्रात्यसंबन्धप्रत्यासत्त्या हि तत्र रूपातिदेशप्रतिपत्तिः व्रात्यभार्या तु सत्यपि संबन्धे न व्रात्यशब्देन शक्याऽभिधातुम्। सोऽयमित्यभिसंबन्धे हि पुंयोगादाख्यायामिति (पा. ४/१/४८) तथा भवितव्यम्। तावतश्चायं भेदविवक्षायां तद्धितेनेति। तस्माद्यदि गौणो व्रात्यशब्दो गृहीतव्यस्तज्जाता प्रत्येया। अथशब्दार्थे व्रातमर्हतीति। विवाहभ्रष्टा तु न मुख्या न गौणीति। न च विवाहकालः स्त्रीणां नियतो यत्कालाद्भ्रष्टा व्रात्याः स्युः। यदपि प्रागृतोर्विवाह्याः तदपि स्वयंवरस्य ऋतुमत्या विना तत्परेणाभ्यनुज्ञात एव काममामरणं तिष्ठेद्गृहे कन्या।। ३७३।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । वस्तुतो दुष्टस्य लोकैरभिशस्तस्य संवत्सरपर्यन्तं तच्छोधनमकुर्वतस्तद्दोषार्हदण्डाद्द्विगुणोदमः। व्रात्यया योषिदुपनयनस्थानीयविवाहकालेऽपरिणीतया कन्यया प्रवृत्तरजसा सकृत्संयोगे तेन व्रात्यया सकृत्संबन्धमात्रेण तज्जातीयगमनदण्डाद्द्विगुणोदण्ड इत्यपेक्षितम्। न तु संवत्सराभिशस्तस्येत्यत्राप्यन्वयः। प्रायश्चित्तंतु पृथगेवाचरणीयम्। एवंचाण्डाल्यापि संवासे तावदेवेति यावान्व्रात्यया सह संवासे सर्वातिशयितो द्विगुणीभूतो दण्डस्तावानेव दण्डः। प्रायश्चित्तंत्वन्यदेवेत्यर्थः।। ३७३।।

(३) **कुल्लूकः** । परस्त्रीगमनेन दुष्टस्य पुंसोऽदण्डितस्य च संवत्सरातिक्रमेणाभिशस्तस्य पूर्वदण्डाद्द्विगुणो दमः कार्य। तथा व्रात्यजायागमने यो दण्डः परिकल्पितः निर्देशाच्चाण्डालीगमनरूपः तथा चाण्डालीगमने यो दण्डः सहस्त्रं त्वंत्यजस्त्रियमिति संवत्सरे त्वतीते यदि तामेव व्रात्यजायां तामेवचाण्डालीं पुनर्गच्छति तदा द्विगुणः कर्तव्यः एतत्पूर्वस्सैवोदाहरणद्वयंव्रात्यजायागमनेऽपि चाण्डाली-गमनदंडप्रदर्शनार्थं सर्वस्यैव तु पूर्वाभिशस्तदण्डितस्य संवत्सरातिक्रमे पुनस्तामेव गच्छतः पूर्वाद्द्विगुणो दण्डो बोद्धव्यः॥ ३७३॥

(४) **राघवानन्दः** । ततोन्यत्र दण्डमात्रमेतस्यां पुनर्धृतस्यास्यापि संवत्सरान्ते गमने द्विगुणो दम इत्याह समिति। कस्य गुण्यमित्यपेक्षायामाह व्रात्ययेति। सहस्त्रं त्वन्त्यजस्त्रियमिति वचनाच्चाण्डाल्या गमने यत्प्रायश्चित्तं दण्डं वा तावदेव तु व्रात्यागमने तद्द्वैगुण्यं पुनर्गमन इतिभावः॥ ३७३॥

(५) **नन्दनः** । संवत्सराभिशस्तस्य अस्यां संवत्सरं गूढवर्त्तमानस्य पश्चात्परिज्ञातस्य दुष्टस्य पापकृत्तमस्य द्विगुणो दम उक्तेभ्यः स्त्रीसंग्रहणदण्डेभ्यः व्रात्यया चाण्डाल्या सह संवासे संगमे तावदेव द्वैगुण्यमेव दण्डस्य॥ ३७३॥

(६) **रामचन्द्रः** । संवत्सरपर्यन्तं पापशोधनमकुर्वतः अभिशस्तस्योक्तदण्डाद्द्विगुणो दमः संवत्सरानन्तरं पुनरभिशस्तस्य पूर्वदुष्टस्य दण्डितस्य द्विगुणो दण्डः व्रात्यया सह संवासे अतिक्रान्त-विवाहकाला प्रवृत्तरजा व्रात्या तया सह संवासे संवत्सरे तु पुनः चाण्डाल्या सह संवासे तावानेव दण्डः॥ ३७३॥

(७) **मणिरामः** । संवत्सराभिशस्तस्य एकवारं परस्त्रीगमने दंडितः. संवत्सरानंतरं पुनरभि-शस्तस्य द्विगुणः पूर्वदंडाद्द्विगुणो दंडः कार्यः। तथा व्रात्या चांडाल्याच पूर्वंसंवासंकृत्वा संवत्सरादूर्ध्वं पुनः संवासे गमने कृते तावदेव. पूर्वदत्तसहस्त्रपणाद्द्विगुणमेव दमः कार्य इत्यर्थः॥ इदं च प्रदर्शनार्थमुक्तं। तथा च सर्वस्यैव पूर्वाभिशस्तदंडितस्य संवत्सरातिक्रमे पुनस्तामेव गच्छतः पूर्वदंडाद्द्विगुणो दंडो बोद्धव्यः॥ ३७३॥

(८) **गोविन्दराजः** । संवत्सराभिशस्तस्येति, परस्त्रीगमनदोषेण पुंसो दण्डितस्य पुनः संवत्सरेऽतीते तस्यामेवाभिशस्तस्य तस्य यथोपदेशस्य द्विगुणो दण्डः कर्तव्यः दण्डः कल्पते। इह चाण्डाल्या सह निर्देशात् सहस्त्रं त्वंत्यजस्त्रियः इति चाण्डालीगमनतुल्य एव स पुनः संवत्सरेऽतीते तामेव व्रात्यां गच्छतो॥ ३७३॥

**शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन्॥**
**अगुप्तमङ्गसर्वस्वी गुप्तं सर्वेण हीयते॥ ३७४॥**

(१) **मेधातिथिः** । **शूद्र** आचाण्डालात्। **गुप्तं वर्णं द्वैजातं** द्विजातीनां स्त्रियं **आवसन्**मै-थुनेन गच्छन् रक्षितां भर्त्रादिभिः नियमेन दण्ड्यः। को दण्ड इति चेत्—**अगुप्तां** चेद्गच्छ-**त्यङ्गसर्वस्वी** हीयते। अंगं च सर्वस्वं तद्वान्। केन **हीयते**। प्रकृतत्वात्ताभ्यामेवान्यस्यानिर्देशाद्वि-शेषस्यानुपादानात्। अपरांश्चेवाङ्गम्। **गुप्तं** चेद्गच्छति **सर्वेण हीयते**। नैकेनाङ्गेन यावच्छरीरेणापि। हान्युद्देशेनाङ्गच्छेदनसर्वस्वहरणमरणान्युपदिष्टानि भवन्ति। हानिरस्य कर्तव्येत्यर्थः। तथा च गौतमः (१२ । २-३) "आर्यस्त्र्यभिगमने लिङ्गोद्धारः सर्वस्वहरणं च। गुप्तां चेत्"॥ ३७४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। द्वैजातं वर्णं द्विजातित्रयस्य स्त्रियः। अगुप्ते बाह्याद्येकाङ्गकर्तनं सर्वस्वग्रहणं चेत्येकाङ्गसर्वस्वं तद्वानगुप्तैकाङ्गसर्वस्वी। सर्वेण शरीरेण हीयते वियोज्यते॥ ३७४॥

(३) **कुल्लूकः**। भर्त्रादिभी रक्षितामरक्षितां वा द्विजातिस्त्रियं यदि शूद्रो गच्छेत्तदाऽरक्षितां-रक्षारहितां गच्छन् लिङ्गसर्वस्वाभ्यां वियोजनीयः। अत्राङ्गविशेषाश्रवणेऽप्यार्यस्त्र्यभिगमने लिङ्गोद्धारः सर्वस्वहरणं गुप्तां चेद्वधोऽधिक इति गोतमवचनाल्लिङ्गच्छेदः रक्षितां तु गच्छञ्छरीर-धनहीनः कर्तव्यः॥ ३७४॥

(४) **राघवानन्दः**। गुप्ता गुप्तस्त्री भेदेन परदण्डं वदन्नादौ शूद्रविषयकं तमेवाह शूद्र इति। गुप्तं भर्त्रादिभी रक्षितं भक्षणाच्छादनस्वगृहाद्यैः न रक्षितमगुप्तं द्वैजातं द्विजातिसंबन्धिवर्णं स्त्री-रूपं॥ ३७४॥

(५) **नन्दनः**। द्वैजातं द्विजातिसंबधिनं वर्णमावसन् रक्षायुक्तां द्विजातिस्त्रियं गच्छन्। अत्र द्विजातिशब्दः क्षत्रियवैश्यस्त्रीविषयो ब्राह्मण्या उक्तपूर्वत्वात्। अगुप्ते रक्षारहितद्विजातिस्त्रीगमने एकाङ्गसर्वस्वेन च हीयते एकांगेन हस्तादिना सर्वस्वेन च हीयते अगुप्तैकाङ्गेत्यत्र शाकल्यमतेन यकारलोपे कृते च्छन्दोनुसाराद्यकारलोपस्यासिद्धत्वमनादृत्य वृद्धिविधानं गुप्ते रक्षितद्विजातिस्त्रीगमने सर्वेणाङ्गेन सर्वस्वेन च हीयते॥ ३७४॥

(६) **रामचन्द्रः**। शूद्रः द्विजातं क्षत्रियां वैश्यां वा गुप्तं अगुप्तं वा आवसन् अगुप्तं एकाङ्गच्छेदनं लिङ्गछेदनं सर्वस्वहरणं कार्यम् गुप्ते सर्वेण सर्वाङ्गच्छेदनं सर्वस्वेन हीयते एतत् ब्राह्मणीतरगुप्तासु क्षत्रियासु॥ ३७४॥

(७) **मणिरामः**। गुप्तमगुप्तं वा-भर्त्रा रक्षितामरक्षितां वा तत्र-अगुप्तां आवसन् गच्छन् अंगसर्वस्वी अंगेन लिंगेन सर्वस्वेन च हीयते वियुज्यते। लिंगच्छेदः सर्वस्वहरणं च कर्तव्यमित्यर्थः॥ गुप्तां चेद्गच्छेत्तदा सर्वेण अंगेन हीयते। वधः कर्तव्य इत्यर्थः॥ ३७४॥

(८) **गोविन्दराजः**। शूद्र इति। शूद्रो यदि भर्त्रा रक्षितामरक्षितां पुनर्गच्छेत्तदा स्त्रीरक्षितां गच्छन् लिङ्गच्छेदसर्वस्वापहाराभ्यां योजनीयः। अरक्षितां पुनर्गच्छन् शरीरधनदण्डः कर्तव्यः। कार्यावरुद्धापेक्षया दण्डस्य गुरुलघुभावः कल्पनीयः॥ ३७४॥

**वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः॥**
**सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति॥ ३७५॥**

(१) **मेधातिथिः**। वैश्यस्य **सर्वस्वदण्ड** उक्तः। इह तु साहचर्यात्सत्यपि द्विजातित्वे न **वैश्यस्य** समानजातीयागमने दण्डोऽयं किंतर्हि ब्राह्मणक्षत्रिययोरेव। एवं क्षत्रियस्य ब्राह्मणीगमने सहस्रं मौण्ड्यं च मूत्रेण। उदकस्थाने गर्दभमूत्रं ग्रहीतव्यम्।

अन्ये व्याचक्षते—अन्यस्यानुपादानात्समानजातीय एव संवत्सरनिरोधनेन दण्डाधिक्यम्। यदि संवत्सरमवरुद्धं करोति ततोऽयं दण्डः।

आद्यमेव तु व्याख्यानं न्याय्यम्। न च समहीनोत्तमानां कथं समदण्डत्वमिति वाच्यम्। यत उक्तं "सर्वेषामेव वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा" इति॥ ३७५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । संवत्सरनिरोधः संवत्सरं बन्धनादेतस्य स्थापनंकृत्वा सर्वस्वं दण्ड्य इत्यर्थः। एतच्च ब्राह्मणीतरगुप्तागमने वैश्यस्य। मूत्रेण मुण्डनं नरमूत्रेणार्द्रं शिरः कृत्वा मुण्डनम्॥ ३७५॥

(३) **कुल्लूकः** । वैश्यस्य गुप्तब्राह्मणीगमने संवत्सरबन्धादनंन्तरं सर्वस्वग्रहणरूपो दण्डः कार्यः क्षत्रियागमने तु वैश्यस्य क्षत्रियामिति वक्ष्यति क्षत्रियो गुप्तब्राह्मणीगमने सहस्त्रं दण्डनीयः खरमूत्रेण चास्य मुण्डनं कर्त्तव्यम्॥ ३७५॥

(४) **राघवानन्दः** । वैश्यक्षत्रिययोर्गुप्तब्राह्मणीविषयकमाह वैश्य इति। अगुप्तामित्युत्तरस्वरसाद्गुप्तांगच्छेदित्यवहार्यम्। संवत्सरबन्धनानन्तरं सर्वस्वं दण्ड्यो वैश्यः। क्षत्रियस्तु मूत्रेण श्वमूत्रेण सहस्त्रपणदण्डपुरःसरं मुण्डनमर्हतीत्यन्वयः॥ ३७५॥

(५) **नन्दनः** । निरोधतःकारागृहनिरुद्धः। इच्छन्त्यां ब्राह्मण्यां वर्त्तमानयोरयं दण्डः॥ ३७५॥

(६) **रामचन्द्रः** । वैश्यः संवत्सरनिरोधतः संवत्सरे कारागृहे निरोध्यः सर्वस्वं दण्ड्यः सहस्त्रं क्षत्रियो दंड्यः। पुनः नरस्य मूत्रेण मौंड्यं मुण्डनं अर्हति॥ ३७५॥

(७) **मणिरामः** । वैश्यश्चेदब्राह्मणीं गुप्तां गच्छेत् तदा संवत्सरनिरोधतः संवत्सरपर्यंतं कारागृहे स्थापयित्वा पश्चात्सर्वस्वदंडः कार्यः। क्षत्रियश्चेद् ब्राह्मणीं गच्छेत् तदा सहस्त्रं दंड्यः मूत्रेण खरमूत्रेण मुंडनंच कर्तव्यमित्यर्थः॥ ३७५॥ ३७६॥

(८) **गोविन्दराजः** । वैश्य इति। वैश्यो गुप्तब्राह्मणीगमने संवत्सरबन्धने च स्थाप्यः सर्वस्वं दण्डनीयः। क्षत्रियागमने वैश्यस्य वैश्यश्चेत्क्षत्रियायां गुप्तायामिति वक्ष्यति। क्षत्रियो गुप्तब्राह्मणीगमने सहस्त्रं दण्डनीयः। शिरोमुण्डनं खरमूत्रेणास्य कार्यम्॥ ३७५॥

**ब्राह्मणीं यद्यगुप्तान्तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ।**
**वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात् क्षत्रियन्तु सहस्रिणम्॥ ३७६॥**

(१) **मेधातिथिः** । अगुप्ता व्याख्याता। भ्रष्टशीलाऽनाथा च। तद्गमने **वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्**। करोतिः प्रकरणाद्दण्डने वर्तते। पञ्च शतान्यस्येति **पञ्चशतः**। बहुव्रीहिर्मत्वर्थीयः। तथा कर्तव्यं यथा पञ्च शतान्यस्य भवन्ति। "किं यदधिकं ततस्यापहर्तव्यमित्यर्थः" नेति ब्रूमः। तथा सति यस्य पञ्च वै शतानि धनं वा न्यूनं तस्य दण्डो न कश्चिदुक्तः स्यात्। कस्तर्ह्यर्थः पञ्चशतं कुर्यादिति। दण्डाधिकाराद् दण्डं पञ्चशतसंबन्धिनं कुर्यात्।

एवं **सहस्रिणं क्षत्रियमिति**। सहस्रमस्यास्ति दण्डो, न गृहे धनम्।

अङ्गसर्वस्वीति (३७४) व्याख्येयो दण्डस्तथा कर्तव्यं यथाङ्गं सर्वस्वं च तस्य दण्डो भवति।

क्षत्रियस्याधिको दण्डो रक्षाधिकृतो रक्षति तत्पुनः स एवापराध्यति॥ ३७६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । पञ्चशतं दण्डम्। क्षत्रियं सहस्त्रिणमिति। **अस्य** रक्षाधिकृतत्वादधिको दण्डः। अन्ये तु **पञ्चशतं पञ्चशतमात्रशेषवित्तम्। सहस्रिणं सहस्रमात्रशेषवित्त**मित्याहुः॥ ३७६॥

(३) **कुल्लूकः**। अरक्षितान्तु ब्राह्मणीं यदि वैश्यं पञ्चशतदण्डयुक्तं कुर्यात्क्षत्रियं पुनः सहस्रदण्डोपेतं वैश्ये चायं पञ्चशतदण्डः शूद्राभ्रमादिना निर्गुणजातिमात्रोपजीविब्राह्मणीगमनविषयः तदितरब्राह्मणीगमने वैश्यस्यापि सहस्रं दण्ड एव॥ ३७६॥

(४) **राघवानन्दः**। अगुप्ताविषयकमाह ब्राह्मणीमिति। पञ्चशतं पञ्चशतानि दण्डनीयत्वेनास्य सन्तीति तादृशं वैश्यं कुर्यादेवं क्षत्रियं सहस्रिणम्। आदौ क्षत्रियभुक्तामन्यथा न वैश्यस्य दण्डलघुता बहुपुंभोग्यत्वेन प्रायश्चित्तलघुत्वादतो गच्छेतामिति साहित्यमुक्तम्। वैश्यं सहस्त्रिणमिति मेघातिथिः। शूद्राभ्रमादिति पञ्चशतमिति कुल्लूकः। धनदण्डमात्रमत्र॥ ३७६॥

(५) **नन्दनः**। पञ्चशतं कुर्यात्पञ्चशतपणदण्ड्युक्तं कुर्यात्। क्षत्रिये दण्डभूयस्त्वं रक्षकत्वधर्मपरित्यागात्॥ ३७६॥

(८) **गोविन्दराजः**। ब्राह्मणीमिति। अरक्षितां पुनर्ब्राह्मणीं यदि वैश्यक्षत्रियौ गच्छेतां तदा वैश्यः पञ्चशतं दण्ड्यः। क्षत्रियः पुना रक्षामकृतत्वाद्वैश्यादधिकदण्डः सहस्रदण्डोपेतः कार्यः॥ ३७६॥

**उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह॥**
**विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना॥ ३७७॥**

(१) **मेधातिथिः**। **तावेव** क्षत्रियवैश्यौ **गुप्तया ब्राह्मण्या विप्लुतौ** कृतमैथुनौ मैथुनप्रवृत्तावेव **शूद्रवद्दण्ड्यौ** – 'गुप्तं सर्वेण हीयत' इति (३७४)। **दग्धव्यौ वा कटाग्निना**। वा शब्दो वधप्रकारविकल्पे न वधविकल्पे। न हि शूद्रस्यागुप्ते वधादन्यो दण्ड आम्नातः॥ ३७७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शूद्रवद्दण्ड्यौ एकाङ्गछेदसर्वस्वग्रहणाभ्याम्। कटाग्निना शवाग्निना॥ ३७७॥

(३) **कुल्लूकः**। तावेवोभावपि क्षत्रियवैश्यौ ब्राह्मण्या रक्षितया सह कृतमैथुनौ शूद्रवत्सर्वेण हीयत इति दण्ड्यौ यद्वा **कटेनावेष्ट्य** दग्धव्यौ तत्र वैश्यं लोहितदर्भैः क्षत्रियं शरपत्रैर्वा वेष्ट्य इति वसिष्ठोक्तो विशेषो ग्राह्यः पूर्वं सहस्त्रं क्षत्रियो दण्ड्यो वैश्यः सर्वस्वमित्युक्तत्वादयं प्राणांतिकदण्डो गुणवद्ब्राह्मणीगमनविषयो बोद्धव्यः॥ ३७७॥

(४) **राघवानन्दः**। गुप्तायां तु तस्यां समेत्य गमने शूद्रवद्दण्डेन विकल्पमाह उभावपीति। विप्लुतौ कृतमैथुनौ। शूद्रवच्छरीरसर्वस्वं वैश्यस्य क्षत्रियस्याङ्गसर्वस्वमिति भेदः। अगुणवद्ब्राह्मणीविषयको दण्डः दाहस्तु गुणवद्ब्राह्मणीविषयः। कटाग्निना शरपत्रेण। तत्रापि लोहितदर्भैः संवेष्ट्य क्षत्रियः वैश्यस्तु शरपत्रैरिति वसिष्ठोक्तेः॥ ३७७॥

(५) **नन्दनः**। विप्लुतौ व्यभिचारितौ॥ ३७७॥

(६) **रामचन्द्रः**। उभौ वैश्यक्षत्रियौ विप्लुतौ कृताभिमानौ तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह श्मशाने कटाग्निना उभौ दग्धव्यौ॥ ३७७॥

(७) **मणिरामः**। गुणवद्ब्राह्मणीविषये क्षत्रियवैश्ययोर्दंडमाह॥ उभावपीति॥ तावेवोभौ क्षत्रियवैश्यौ। गुप्तया सह रक्षितया सह विप्लुतौ. कृतमैथुनौ शूद्रवद्दंड्यौ गुप्ते सर्वेण हीयत इति प्रोक्तरीत्या। अथवा कटेनावेष्ट्य अग्निना दग्धव्यौ॥ ३७७॥ ३७८॥

(८) **गोविन्दराजः** । उभाविति। तावेव द्वावपि क्षत्रियवैश्यौ रक्षितया ब्राह्मण्या सह कृतमैथुनौ शूद्रवद् गुप्ते सर्वेण हीयत इति दण्ड्यौ वाग्निना वा सर्वथा दग्धव्याविति चात्यन्तदण्ड्यौ श्रोत्रियदारगुणवद् ब्राह्मणीविषयं दण्डगुरुत्वात्। वैश्यः सर्वस्वदण्ड्यः स्यात् सहस्रं क्षत्रियस्तथा॥ ३७७॥

**सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलाद् व्रजन्॥**
**शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह सङ्गतः॥ ३७८॥**

(१) **मेधातिथिः** । **गुप्ता** भ्रष्टशीलाऽपि यदि केनचिद्रक्ष्यते पित्रा भ्रात्रा बन्धुभिर्वा तां हठाद् **गच्छन् सहस्रं ब्राह्मणो** दाप्यः। गुप्ता शीलवती चेत्प्रवासनाङ्कनेऽधिके। अथापि शीलवत्यपि गुप्तशब्देनोच्यते – तथापि सहस्रमात्राद् ब्राह्मणो मुच्यते। अङ्कनप्रवासने सर्वत्र मुखीक्रियेते परदाराभिमर्शे॥ ३७८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । निर्गुणगुणवद्ब्राह्मणापेक्षया दण्डद्वयम्। बलादनिच्छन्तीम्। इच्छन्त्या गुप्तयैव॥ ३७८॥

(३) **कुल्लूकः** । रक्षितां विप्रां ब्राह्मणो बलेनोपगच्छन्सहस्रं दण्ड्यः स्यात् इच्छन्त्या पुनः सकृन्मैथुने पञ्चशतानि दण्डनीयो भवेत्॥ ३७८॥

(४) **राघवानन्दः** । तादृशापराधे विप्रस्य दण्डमाह सहस्रमिति। बलादनिच्छन्तीम्। इच्छन्त्या ब्राह्मण्या॥ ३७८॥

(८) **गोविन्दराजः** । सहस्रमिति। ब्राह्मणो रक्षितां ब्राह्मणीं हठात् गच्छन् सहस्रं दण्ड्यः। इच्छन्त्या तु पुनः सह मैथुने पञ्चशतानि दण्डनीयः॥ ३७८॥

**मौण्ड्यं प्राणान्तको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते॥**
**इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तको भवेत्॥ ३७९॥**

(१) **मेधातिथिः** । यत्र क्षत्रियादीनां वध उक्तस्तत्र ब्राह्मणस्य **मौण्ड्यम्**। यथा ब्राह्मणः संग्रहणात्प्राणान्तं दण्डमर्हति – तथा तु पुमांसं दाहयेदिति। प्राणानामन्तं गच्छति प्राणान्तं वा करोति **प्राणान्तकः**। "अन्येष्वपि दृश्यते" (पा. सू. ३/२/१०१) इति ण्वुल्। अन्ये तु **प्राणान्तिक** इति पाठान्तरम्। प्राणान्ते प्राणान्तिकः – अध्यात्मादित्वाट्ठञ्॥

**इतरेषां** ब्राह्मणदन्येषां क्षत्रियादीनां **वर्णानां** प्राणान्तिक एव श्रुतं मारणादि पूर्वमेव। तदनन्तरमिदमुच्यते। उच्यमानं मौण्ड्यं तच्छेषतया सहस्रं दण्डो विधीयत इति मन्यन्ते। अन्यथा ब्राह्मणस्य प्राणान्तदण्डाविधानात्कः प्रसङ्गो ब्राह्मणस्य येनैवमुच्यते 'मौण्ड्यं प्राणान्तिक' इति। पुमांसं दाहयेदिति सामान्यविधानप्रसक्तमिति चेत्तत्रैव कर्तव्यं स्यात्तथा हि स्फुटं तद्विषयत्वं प्रतीयेत॥ ३७९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । प्राणान्तिकदण्डस्थाने मुण्डनमेव कार्यमित्यर्थः॥ ३७९॥

(३) **कुल्लूकः** । ब्राह्मणस्य वधदण्डस्थाने शिरोमुण्डनं दण्डः शास्त्रेणोपदिश्यते क्षत्रियादीनां पुनरुक्तेन घातेन दण्डो भवति॥ ३७९॥

(४) **राघवानन्दः**। अन्येषां प्राणान्तिके दण्डे ब्राह्मणस्य मौण्ड्यमिति। जात्यन्तरस्य प्राणान्तिकोऽपराधे यत्र दण्डस्तत्र विप्रस्य मौण्ड्यमात्रमिति सार्वत्रिकः॥ ३७९॥

(५) **नन्दनः**। ब्राह्मणस्य च वधार्हे दण्डे प्राप्ते मौण्ड्यमेव न वधः इतरेषां वध एवेति॥ ३७९॥

(७) **मणिरामः**। ब्राह्मणस्य प्राणांतिको दण्डः शिरोमुंडनमेव वा न वधः। अन्येषांवधः॥॥ ३७९॥

(८) **गोविन्दराजः**। मौण्ड्यमिति। ब्राह्मणस्य वधदण्डस्थाने शिरोमुण्डने शास्त्रेणोपदिश्यते। क्षत्रियादीनां पुनरुक्तेषु वधदण्डो भवति॥ ३७९॥

**न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम्।**
**राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम्॥ ३८०॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सर्वपापेष्विति** प्रकरणविधौ न केवलं संग्रहणे ब्राह्मणो न हन्यते यावदन्येष्वप्यपराधेषु। अपिशब्दो युगपत्सर्वपापकार्येपि ब्राह्मणो न जातु कदाचिद्धन्तव्यः। किं तर्हि तस्य पापकारिणः कर्त्तव्यम्। **राष्ट्रादेनं** विषयाद्ब्राह्मणं **बहिःकुर्यान्नि**र्वासयेत्। **समग्रधनं** सर्वस्वसहितम्। **अक्षत**मक्षतशरीरम्। धनमप्यस्य नापहर्तव्यम्। कथं तर्हि दण्डो ब्राह्मणस्य। केचिदाहुर्निर्वासने त्वाधीयमानं सधनं निर्वास्य धनदण्डं प्रतिषेधति। अन्ये तु समग्रधनं हृतसर्वस्वं कृत्वा निर्यास्यत इति मन्यन्ते॥ ३८०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अक्षतमच्छिन्नाङ्गम्॥ ३८०॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणं सर्वपापकारिणमपि कदाचिन्न हन्यादपि तु सर्वस्वयुक्तमक्षतशरीरं राष्ट्रान्निर्वासयेत्॥ ३८०॥

(४) **राघवानन्दः**। ननु किमिति मौण्ड्यं तत्राह नेति। समग्रधनं समग्रधनयुक्तम् बहिर्निःसारणे धनं न ग्राह्यम् तदभावे धनं क्वचित् सहस्त्रं ब्राह्मण इत्यत्रोक्तम्। अक्षतमित्यनुवादोऽक्षतशरीरमित्यर्थः॥ ३८०॥

(५) **नन्दनः**। न केवलं स्त्रीसंग्रहण एव किन्तु ब्रह्महत्यादिष्वपीत्युक्तं सर्वपापेष्वपीति॥ ३८०॥

(६) **रामचन्द्रः**। अक्षतं अव्याहतम्॥ ३८०॥

(७) **मणिरामः**। अक्षतं अक्षतशरीरं॥ ३८०॥ ३८१॥

(८) **गोविन्दराजः**। न जात्विति। सर्वपापकारिणमपि ब्राह्मणं कदाचिदपि न हन्यात्। अपि सर्वधनसंयुक्तमक्षतशरीरं राष्ट्रान्निर्वासयेत्॥ ३८०॥

**न ब्राह्मणवधाद् भूयानधर्मो विद्यते भुवि॥**
**तस्मादस्य वधं राजा मनसाऽपि न चिन्तयेत्॥ ३८१॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वशेषोऽयमर्थवादः। **न ब्राह्मणवधादन्यो** बहुतरोऽधर्मो दुःख-

फलोऽस्ति। अन्यशब्दाध्याहारेण पञ्चमी। **तस्माद्धेतोरस्य** ब्राह्मणस्य **राजा** मारणमङ्गच्छेदं वा **मनसाऽपि** नेच्छेत्॥ ३८१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भूयानतिशयितः॥ ३८१॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणवधान्महान्पृथिव्यामधर्मो नास्ति तस्माद्राजा सर्वपापकारिणोऽपि ब्राह्मणस्य मनसापि वधं न चिन्तयेत्॥ ३८१॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रार्थवादः नेति। भूयानधर्मो न विद्यते ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां न परं पुण्यपापयोरित्युक्तेः॥ यो ब्राह्मणायावगुरेत्यादिश्रुतेः। राजास्तेनेन गन्तव्यमिदमपि। विप्रातिरिक्त-विषयम्॥ ३८१॥

(५) **नन्दनः**। उक्तेऽर्थे हेतुमाह न ब्राह्मणवधादिति॥ ३८१॥

(६) **रामचन्द्रः**। ब्राह्मणवधाद्भूयान् अधर्मः क्वचित् न विद्यते॥ ३८१॥

(८) **गोविन्दराजः**। न ब्राह्मणवधादिति। ब्राह्मणवधादपि अधिकोऽन्यः पृथिव्यामधर्मो नास्ति। ब्राह्मणं सर्वपापकारिणमपि राजा मनसाऽपि न हन्यात्॥ ३८१॥

**वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत्॥**
**यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः॥ ३८२॥**

**(क्षत्रियां चैव वैश्यां च गुप्तां तु ब्राह्मणो व्रजन्। न मूत्रमुण्डः कर्तव्यो दाप्यस्तूत्तमसाहसम्॥ १॥)**

(१) **मेधातिथिः**। अगुप्ताया ब्राह्मण्या गमने वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं सहस्रिणमिति (३७६) तत्र वैश्यस्य पञ्चशतम्। य एव परिपालयति स एव चेन्नाशयति युक्तं तस्य दण्ड-महत्त्वम्॥ ३८२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां दण्डः पञ्चशतानि वैश्यस्य सहस्रं क्षत्रियस्य॥ ३८२॥

(**सर्वज्ञनारायणः**। न मूत्रमुण्ड इति मौण्ड्यमत्र विधेयं तद्विधौ च क्षत्रियवन्मूत्रेण तन्माभूदित्येतदर्थं-मूत्ररूपविशेषणनिषेधः। तथाच मूत्रार्द्रशिरस्त्वस्य विशेषणमात्रस्य निषेधो मुण्डना तु कर्तव्यैव॥ १॥)

(३) **कुल्लूकः**। रक्षितां क्षत्रियां यदि वैश्यो गच्छेत्क्षत्रियो वा यदि रक्षितां वैश्यां तदा तयोर्ब्राह्मण्यामगुप्तायां गमने यौ दण्डावुक्तौ वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियन्तु सहस्रिणमिति द्वावेव दण्डौ वैश्यक्षत्रिययोर्भवतः। अयं च वैश्यस्य रक्षितक्षत्रियागमने पञ्चशतरूपो दण्डो लघुत्वात् गुणवद्वैश्यस्य निर्गुणजातिमात्रोपजीविक्षत्रियायाः शूद्राभ्रान्त्यादिगमनविषयो बोद्धव्यः। क्षत्रियस्य रक्षितवैश्यायां ज्ञानतो युक्तः सहस्त्रं दण्डः॥ ३८२॥

(४) **राघवानन्दः**। राजन्यवैश्ययोः परस्परस्य गुप्तस्त्रीगमने अगुप्तब्राह्मणीगमनवद्दण्ड-माह वैश्यश्चेति॥ यो वैश्यः पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणमित्यनेनोक्तःसंख्याविशिष्टो दण्डस्तं विड्राजन्यावर्हत इत्यन्वयः। अत्रतु वैश्यस्य गुणवतो क्षत्रियत्वमात्रोपेतागमने लघुदण्डस्य शूद्राभ्रान्त्या गमनेन वा॥ ३८२॥

(६) **रामचन्द्रः** । **यः** दण्डः ब्राह्मण्यामगुप्तायां उक्तस्तमेव तावुभौ वैश्यक्षत्रियौ दण्डं अर्हतः॥ ३८२॥

(**रामचन्द्रः** । क्षत्रियामिति। मूत्रदण्डः न कर्तव्यः मूत्रेण मुण्डनं न कार्यं किंतु उत्तमसाहसं दाप्यः॥ १॥)

(७) **मणिरामः** । ब्राह्मण्यामगुप्तायां यौ दंडौ। वैश्यं पंचशतं दंड्यात् क्षत्रियंतु सहस्त्रिणमित्युक्तौ तावुभौ दंडमर्हतः॥ ३८२॥

(८) **गोविन्दराजः** । वैश्य इति। वैश्यो यदि रक्षितायां क्षत्रियायां गच्छेत् क्षत्रियो वा वैश्यां तदा यो ब्राह्मण्यामरक्षितायां गमने क्षत्रियवैश्ययोः दण्डो वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात् क्षत्रियं तु सहस्रिणमिति दण्डं तौ क्षत्रियवैश्यौ वार्हतः। अतश्च वैश्यस्य क्षत्रियागमने पञ्चशतानि क्षत्रियस्य वैश्याधिगमने रक्षाधिकृतत्वादधिकगुणदण्डसहस्रमिति॥ ३८२॥

**सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन्॥**
**शूद्रायाः क्षत्रियविशोः साहस्रो वै भवेद्दमः॥ ३८३॥**

(१) **मेधातिथिः** । **गुप्ते** क्षत्रियावैश्ये गच्छन्ब्राह्मणः **सहस्रं** दण्ड्यः प्रवासनाङ्कने स्थिते एव **शूद्राया** गमने क्षत्रियवैश्ययोः **साहस्रो** दण्डः। सहस्रमेव साहस्रम्। स्वार्थिकोऽण्। सहस्रं वा यस्मिन् दण्डेऽस्ति साहस्रो दण्डोऽत्र पदार्थः। मत्वर्थीयोऽण्॥ ३८३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । सहस्त्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन्निति अगुप्ते व्रजन्दाप्य एव न मुण्डनीय इत्यर्थः। शूद्रायां गुप्तायामगुप्तायां वा। वैश्यराजन्ये वैश्यां राजन्यां च पूर्वं तयोर्ब्राह्मणस्य सहस्रदण्डतोक्ता। एतत्तु शूद्रतुल्यवृत्तयोर्योग एवेति ज्ञेयम्॥ ३८३॥

(३) **कुल्लूकः** । क्षत्रियावैश्ये रक्षिते ब्राह्मणो व्रजन्सहस्त्रं दण्डं दापनीयः शूद्रायां रक्षितायां क्षत्रियवैश्ययोर्गमने सहस्रमेव स्यात्॥ ३८३॥

(४) **राघवानन्दः** । विट्क्षत्रिययो रक्षिततज्जातीये स्त्रियौ ब्राह्मणो गच्छन्सहस्रमित्यर्धेन। ते विट्क्षत्रिययोषिते। वैश्यक्षत्रिययोरपि रक्षितशूद्रागमने सहस्रं दण्ड इत्याह शूद्रायामिति। गमन इति शेषः। तत्रापि पूर्वं क्षत्रियभुक्तायां वैश्यस्य गमने साहस्रः सहस्त्रपण नियतः॥ ३८३॥

(५) **नन्दनः** । ते गुप्ते क्षत्रियवैश्यस्त्रियौ शूद्रायां गुप्तायामिति विपरिणामः॥ ३८३॥

(६) **रामचन्द्रः** । ते क्षत्रियवैश्ये व्रजन् गुप्ते ब्राह्मणः सहस्त्रं दण्डं दाप्यः शूद्रायां गच्छतोः क्षत्रियविशोः साहस्रो दमः वै भवेत्॥ ३८३॥

(७) **मणिरामः** । गुप्ते ते रक्षिते क्षत्रियवैश्ये। शूद्रायां रक्षितायां। क्षत्रियविशोः गमने॥ ३८३॥

(८) **गोविन्दराजः** । सहस्त्रमिति। क्षत्रियवैश्ये रक्षिते ब्राह्मणो गच्छन् सहस्त्रं दण्ड्यः। क्षत्रियवैश्यौ रक्षितां शूद्रां गच्छतो (तः) सहस्रपरिमाणो दण्डः स्यात्॥ ३८३॥

**क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दमः॥**
**मूत्रेण मौण्ड्यमृच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा॥ ३८४॥**

(१) **मेधातिथिः**। वैश्यस्य पञ्च शतानि दण्डः अगुप्तां चेत् क्षत्रियां गच्छति। क्षत्रियस्य स एव। यदि वा मौण्ड्यं मुण्डनम्~~मृच्छेत्~~प्राप्नुयाद्गर्दभमूत्रेण। एष एव वैश्यागमन उभयोर्दण्डः॥ ३८४॥

(३) **कुल्लूकः**। अरक्षितक्षत्रियागमने वैश्यस्य पञ्चशतानि दण्डः स्यात् क्षत्रियस्य त्वरक्षितागमने गर्दभमूत्रेण मुण्डनं पञ्चशतरूपं वा दण्डमाप्नुयात्॥ ३८४॥

(४) **राघवानन्दः**। तयोरगुप्तक्षत्रियाविषये व्यवस्थितदण्डमाह क्षत्रियायामिति। वैश्ये पञ्चशतं दण्डः। मौण्ड्यमन्विच्छेत्क्षत्रियो दण्डमेव वा। वाशब्दात् मौण्ड्यं नान्विच्छेद्वा॥ ३८४॥

(५) **नन्दनः**। व्रजतीति विपरिणामः॥ ३८४॥

(६) **रामचन्द्रः**। क्षत्रियायां मूत्रेण मौण्ड्यं ऋच्छेत् वा पक्षान्तरं दण्डमेव गच्छेत्॥ ३८४॥

(७) **मणिरामः**। क्षत्रियश्चेत् अरक्षितां क्षत्रियां गच्छेत् तदा गर्दभमूत्रेण मौण्ड्यं पंचशतरूपं दंडं वा प्राप्नुयात्॥ ३८४॥

(८) **गोविन्दराजः**। क्षत्रियामिति॥ ३८४॥

**अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन्॥**
**शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात्सहस्रं त्वंत्यजस्त्रियम्॥ ३८५॥**

**(शूद्रोत्पन्नांशपापीयान्नवं मुच्येत किल्बिषात्। तेभ्यो दण्डाद्हृतं द्रव्यं न कोशे च प्रवेशयेत्॥ १॥**
**अयाजिकं तु तद्राजा दद्याद्भृतकवेतनम्। यथादण्डगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यस्तु लंभयेत्॥ २॥**
**भार्यापुरोहितस्तेना ये चान्ये तद्विधा द्विजाः॥ ३॥**

(१) **मेधातिथिः**। ब्राह्मणस्य क्षत्रियाद्यगुप्तास्त्रीगमने उभयोर्दण्डः। **अन्त्यज**श्चण्डालश्वपचादिः। तत्र **सहस्रम्**॥ तत्रायं सहस्रपणदण्डसंग्रहः। ब्राह्मणस्य चतुर्ष्वपि वर्णेषु गुप्तागमने सहस्रम्। श्रोत्रियदारेषु प्रवासनाङ्कने। अन्यत्र प्रवासनमेव। श्रोत्रियदारेषु प्रायश्चित्तमहत्त्वादेव कल्प्यते। अगुप्तागमने पञ्चशतानि प्रवासनाङ्कने। यद्यप्यगुप्ता परदाराव्यपदेश्या भवति विवाहसंस्कारे सति–, तथापि स्वैरिणी भर्तृस्वतामतिक्रान्ता। अब्राह्मणस्य प्राणान्तो गुप्तागमने दण्डो बलात्। सकामागमने साहस्रो दण्डः प्रवासनाङ्कने च। गुप्तागमने 'वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं सहस्रमिति' (३७६)॥ ३८५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अन्त्यजात्यः। रजकचर्मकृन्नटबुरूडकैवर्तभेदभिल्लाः स्मृत्यन्तरोक्ताः॥ एवं स्त्रीसंग्रहणान्तं समर्थितं उत्तरे चाध्याये शेषं वाच्यम्॥ ३८५॥

(३) **कुल्लूकः**। अरक्षितां क्षत्रियां वैश्यां शूद्रां वा ब्राह्मणो गच्छन्पञ्चशतानि दण्ड्यः स्यात्। अन्ते भवोऽन्त्यजः यस्मादधमो नास्ति चाण्डालादिस्तस्य स्त्रियं गच्छन्सहस्रं दण्ड्यः॥ ३८५॥

(४) **राघवानन्दः**। अगुप्ततिसृष्वपि ब्राह्मणं प्रति दण्डमाह अगुप्त इति। अन्त्यजस्त्रियं चण्डालादिजातिमिति अन्त्यजगुप्तागुप्तसाधारणविषयं चतुर्णां सन्निधेः प्रकरणस्य बलीयस्त्वात्॥ ३८५॥

(५) **नन्दनः**। शूद्रांच अगुप्तां च विपरिणामः॥ ३८५॥

(६) **रामचन्द्रः**। अन्त्यजस्त्रियं ब्राह्मणो व्रजन्सहस्रं दाप्यः॥ ३८५॥

(७) **मणिरामः** । अरक्षितां क्षत्रियां वैश्यां शूद्रां वा ब्राह्मणो गच्छन् पंचशतानि दंड्यः स्यात्। अंत्यजस्त्रियं चांडालादिस्त्रियं गच्छन् सहस्रं दंड्यः॥ ३८५॥

(८) **गोविन्दराजः** । अगुप्ते इति। वैश्यां क्षत्रियां शूद्रां रक्षितां ब्राह्मणो व्रजन् पञ्चशतानि दण्ड्यः स्यात्। चाण्डालादिस्त्रियं गच्छन्पुनः सहस्रं दण्ड्यः॥ ३८५॥

**यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।।**
**न साहसिकदण्डघ्नो स राजा शक्रलोकभाक्॥ ३८६॥**

(१) **मेधातिथिः** । **यस्य** राज्ञः **पुरे** देशे राष्ट्रे **स्तेनश्**चौरो नास्ति स शक्रस्येन्द्रलोकं स्थानं भजते स्वर्गं प्राप्नोति। नान्यस्त्रीगमनम्—अन्यस्य या स्त्री भार्याऽवरुद्धा पुनर्भूर्वा। स्त्री-ग्रहणमभार्याया अप्यसंबन्धिन्याः प्रतिषेधार्थम्। **दुष्टवाक्** त्रिविधस्याक्रोशस्य कर्ता। **साहसिक** उक्तः। दण्डेन हन्ति दण्डपारुष्यकृत्। **शक्रलोकभागिति** सर्वत्रानुषङ्गः। स्तेनादीनां स्त्री-संग्रह-शेषोऽयमर्थवादः॥ ३८६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अत्रान्तरा उच्चावचाननूक्तान्कांश्चिद्राजधर्मान्प्रसंगादाह यस्येति। दुष्टवाक् दुष्टपारुष्यकृत्। दण्डघ्नो दण्डपारुष्यकृत्॥ ३८६॥

(३) **कुल्लूकः** । यस्य राज्ञो राष्ट्रे चौरः परदारगामी परुषवादी गृहदाहादिसाहसकारी दण्डपारुष्यकर्ता च नास्ति स राजा शक्रपुरं याति॥ ३८६॥

(४) **राघवानन्दः** । राजावश्यं स्तेनादिपञ्चसु दण्डपरो भवेदित्येतच्छक्यमाविष्कुर्वन्नाह यस्येतिद्वाभ्याम्। अन्यस्त्रीगः पारदारिकः। स शक्रलोकभाक् मृत्वेतिशेषः॥ ३८६॥

(५) **नन्दनः** । य एते वाक्पारुष्यदण्डपारुष्यस्तेयसाहसस्त्रीसंग्रहणरूपाः पञ्चदोषा उक्तास्तेषु प्रवर्तमानानां निग्रहेण राज्ञां फलमाह यस्य स्तेन इति। यस्य पुरे स्तेनो नास्ति दण्डभयाद्यस्य विषये चौरो नास्ति। दण्डेन हन्तीति दण्डघ्नः दण्डपारुष्यकृत्। पुर इति राष्ट्रस्याप्युपलक्षणम्॥ ३८६॥

(७) **मणिरामः** । दंडघ्नः दंडपारुष्यकर्ता॥ ३८६॥

(८) **गोविन्दराजः** । यस्येति। यस्य राज्ञो राष्ट्रे चौरपारदारिकवाक्पारुष्यकृद्दण्डपारुष्या-ग्निदाहादिसाहसकारिणः न सन्ति स राजा स्वर्गं व्रजेत्॥ ३८६॥

**एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके।।**
**साम्राज्यकृत् सजात्येषु लोके चैव यशस्करः॥ ३८७॥**

(१) **मेधातिथिः** । **साम्राज्यं** परप्राणयिता। स्वातंत्र्यम्। **सजात्येषु।** समानस्पर्द्धिनो राजानः 'सजात्या' अभिप्रेताः। तेषु मूर्द्धन्यधितिष्ठति, तस्याज्ञाकराः भवन्तीत्यर्थः। **लोके च यशस्करः** कीर्तिमुत्पादयति। उभयत्रापि **निग्रह** एव कर्त्ता हेतुत्वात् जनमारकोऽयं क्रोधन इति न वदन्त्यपि तु स्तुवन्ति॥ ३८७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । साम्राज्यं समीचीनं राज्यम्। स्वजात्येषु मध्ये॥ ३८७॥

(३) **कुल्लूकः** । एतेषां स्तेनादीनां पञ्चानां स्वराज्ये निग्रहः समानजातीयेषु राजसु मध्ये राजा साम्राज्यकृदिह लोके च यशस्करो भवति॥ ३८७॥

(४) **राघवानन्दः** । पञ्चानां स्तेनादीनाम्। विषये राष्ट्रे। स्वजात्येषु मध्ये साम्राज्यकृत् एवंकुर्वन् चक्रवर्ती स्यादितिभावः। यशस्करो लोके स्वानुरूपं यशो धत्ते॥ ३८७॥

(७) **मणिरामः** । एतेषां पंचानां स्तेनादीनां पूर्वश्लोकोक्तानां। स्वके विषये स्वराष्ट्रे। निग्रहः यथोक्तदंडदानं। सजात्येषु समानजातीयेषु राजसु मध्ये। राज्ञः साम्राज्यकृत्। लोके च यशस्करोति॥ ३८७॥ ३८८॥

(८) **गोविन्दराजः** । एतेषामिति। एतेषां स्तेनादीनां स्वराष्ट्रे राज्ञो निग्रहः समजातीयेषु मध्ये राजत्वस्य कारको लोके च ख्यातेरुत्पादकः॥ ३८७॥

**ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं चर्त्विक्त्यजेद्यदि॥**
**शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतं शतम्॥ ३८८॥**

(१) **मेधातिथिः** । यज्ञे कर्मकर **ऋत्विग्** होतोद्गात्रादिः। यद्यपि वरणोत्तरकालमाप्रयोग-समाप्तेस्तद्व्यपदेशस्तथाप्यत्र प्रारब्धकर्मणोरितरेतरत्यागे न विधिरयं किं तर्हि प्राग्वरणात्। भूतपूर्वगत्या ऋत्विग्व्यवहारः। यः प्रयोगान्तरे वृतः स एव शक्तः प्रयोगान्तरेऽपि वरितव्यः। न केवलं पूर्ववृतस्यायमत्यागः किं तर्हि तत्पित्रादिभिरपि। तथाहि 'पूर्वो जुष्टः स्वयंवृत' इति नारदः। न चायमैकपुरुषिको नियमः। किं तर्हि कुलधर्मोऽयम्। तथा च महाभारते संवर्त्तमरुत्तीयेषु प्रपञ्चितम्। तेन यत्कुलाः पित्रादिभिर्ऋत्विजो वृतास्त एव वरीतव्याः।

याजनकानामप्येष एव विधिः। तैरपि ते याजनीयाः। **ऋत्विजं** कृतार्त्विज्यं तत्कुलींनं वाऽन्यं यो न वृणीत यियक्षुः, अपि त्वन्यं याजकमर्थयेत्। **शक्तं कर्मणि** यज्ञे प्रयोग**ज्ञमदुष्टम**भिशंसनाङ्ग-वैकल्यादिभिर्दोषैरयुक्तम्। एवमीदृश एवर्त्विगर्थ्यमानो यदि नाङ्गीकुर्याद्याजकत्वं **अदुष्ट**मेभिरेव दोषैरनाक्रान्तं याज्यं **शक्तं** विद्वत्तया च। तादृशे त्यागे **तयोः शतं दण्डः**। ऋत्विक् शतं दाप्यो **याज्यं त्यजन्, याज्य ऋत्विजम्॥**

न केवलमयमृत्विग्याजकधर्मः, शिष्याचार्ययोरपि। तथाच गौतमः-(१२ / १२-१३) "अथायाजकावृत्विगाचार्यौ पतनीयसेवायां च हेयावन्यत्र हानात्पतति" इति। दातृसंप्रदानयोरपि प्रतिग्रहे केचिद्धर्ममिममिच्छन्ति॥ ३८८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । ऋत्विजमित्यादिसंविद्व्यतिक्रमशेषभूतमप्यत्र राज्ञाप्यृत्विङ्न त्याज्य इति दर्शयितुं राजधर्मेषूक्तम्। ऋत्विजं परंपरयायातम्। शतं पणाः। पुनश्च पूर्ववत्परिग्रह इत्यपि ग्राह्यम्॥ ३८८॥

(३) **कुल्लूकः** । यो याज्यः ऋत्विजं कर्मानुष्ठानसमर्थमतिपातकादिदोषरहितमृत्विग्वा याज्यमदुष्टं त्यजति तयोः शतं शतं दण्डः कार्य इति दण्डप्रसङ्गादिदमुक्तम्॥ ३८८॥

(४) **राघवानन्दः** । प्रकृतमनुवर्तयन्दण्डार्थमनुवदति ऋत्विजमिति। याज्यो यजमानः शक्तं कर्मानुष्ठानदक्षिणादानयोः अदुष्टं पातकादिना। एतद्द्वयं याज्ययाजकयोर्विशेषणम्। शतमिति कर्तृभेदविवक्षया वीप्सा॥ ३८८॥

(५) **नन्दनः** । प्रकीर्णकाख्यमनुदिष्टमपि स्मृत्यन्तरप्रसिद्धं व्यवहारपदं प्रस्तौति ऋत्विजं यस्त्यजेदिति। कर्मणि यज्ञकर्मणि शक्तमिति ऋत्विग्विशेषणम्। अदुष्टमिति याज्यविशेषणम्॥ ३८८॥

(६) **रामचन्द्रः** । याज्यो यजमानः कर्मणि शक्तं अदुष्टं ऋत्विजं त्यजेत् च पुनः यदि ऋत्विक् कर्मणि शक्तं कर्मस्थं याज्यं त्यजेत् तयोः ऋत्विक्याज्ययोः दण्डः शतंशतम्॥ ३८८॥

(८) **गोविन्दराजः** । ऋत्विजमिति। यो याज्य ऋत्विजं पारंपर्यागतं कर्मानुष्ठानसमर्थं अतिजापादिदोषरहितं अदुष्टं याज्यं त्यजति तयोः शतं शतं दण्डः कार्य इति प्रसङ्गादेतदाह॥ ३८८॥

**न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति॥**
**त्यजन्नपतितानेतान्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट्॥ ३८९॥**

(१) **मेधातिथिः** । **माता न त्यागमर्हति।** न त्याज्या। 'त्यागः' स्वगृहान्निष्कासनं मातृवृत्तेः स्खलितायाः, उपकारस्योपक्रियायामुदितायामकारणे। एवं पित्रादीनामपि व्याख्येयम्। संबंधसाहचर्यात्**स्त्री** भार्यैवाभिप्रेता। अपतितानामेषां त्यागो नास्ति। मातुस्तु "न माता पुत्रं प्रतिपततीत्येक इति" शातातपः। भार्यायाश्चापि 'त्यागः' असंभोगो गृहकार्यनिषेधः। भक्तवस्त्रादिदानं तु न निषिध्यते। "योषित्सु पतितास्वपि – वस्त्रान्नपानं देयं च वसेयुः स्वगृहान्तिके" इति पठ्यते॥ ३८९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । स्त्री भार्या॥ ३८९॥

(३) **कुल्लूकः** । मातृपितृभार्यापुत्रास्त्यागमपोषणशुश्रूषणाद्यकरणात्मकं नार्हन्ति तस्मादेतान्पातकादिरहितान्परित्यजन्नेकैकपरित्यागे राज्ञा षट्शतानि दण्ड्यः॥ ३८९॥

(४) **राघवानन्दः** । स्त्र्यन्तरादिवशस्यापतितमात्रादेस्त्यक्तुर्दण्डमाह नेति। षट्शतानि पणानामित्यनुवर्तते॥ ३८९॥

(६) **रामचन्द्रः** । अपतितान् मात्रादीन् त्यजन् राज्ञा षट्शतानि दण्ड्यः॥ ३८९॥

(७) **मणिरामः** । त्यागं पोषणशुश्रूषणाद्यकरणरूपं। नार्हति। तस्मात् एतान् पित्रादीन् अपतितान् यः त्यजति सः राज्ञा शतानि षट् दंड्यः॥ ३८९॥

(८) **गोविन्दराजः** । न मातेति। मातृपितृभार्यापुत्रत्यागं भरणशुश्रूषाद्यकरणात्मकं नार्हति। अत एतान्पतितानपि परित्यजन् अन्योन्यपरित्यागे राज्ञा षट्शतानि दण्ड्यः॥ ३८९॥

**आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः॥**
**न विब्रूयान्नृपो धर्मं चिकीर्षन् हितमात्मनः॥ ३९०॥**

(१) **मेधातिथिः** । वानप्रस्थादीनामरण्याश्रमवासि**नामाश्रमेषु कार्यं**- धर्मं संकटरूपम् – अयं शास्त्रार्थो नायमिति – इतरेतरं विवदमानानां न धर्मव्यवस्था सहसा **विब्रूयात्**प्रभुतया निर्णयमन्येषामिव न कुर्यात्। कथं तर्हि? वक्ष्यमाणेन प्रकारेण। एव**मात्मने हितं** कृतं भवति – शास्त्रार्थत्यागो न भवतीत्यर्थः। गृहस्थानां चाश्रमित्वेऽपि यथोक्त एव निर्णयप्रकारः। **कार्यं** धर्मसंशयात्मकविवादपदम्। **आश्रम**ग्रहणाच्च विशिष्टविषयता व्याख्यायते॥ ३९०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । आश्रमेष्वाश्रममध्ये कार्ये कर्तव्ये आश्रमधर्म इत्यर्थः। न विब्रूयात् न धर्मविपरीतमर्थं स्वापेक्षया स्थापयेत्॥ ३९०॥

(३) **कुल्लूकः** । द्विजातीनां गार्हस्थ्याद्याश्रमविषये कार्येऽयं शास्त्रार्थो नायं शास्त्रार्थ इति परस्परं जातविवादानां राजा स्वीयहितं चिकीर्षुरयं शास्त्रार्थ इति सदृशान्विशेषेण न ब्रूयात्॥ ३९०॥

(४) **राघवानन्दः** । दण्डप्रसंगेन पारत्रिकभयं स्मारयन्नृपं शिक्षयति आश्रमेष्विति द्वाभ्याम्। कार्ये गार्हस्थाश्रमधर्मविषये विवदतामयं शास्त्रार्थो नायमिति विपर्यासे अयमेवेति विशेषेण न ब्रूयात्॥ ३९०॥

(५) **नन्दनः** । आश्रमेषु तपोवनेषु द्विजातीनां वानप्रस्थानाम्॥ ३९०॥

(६) **रामचन्द्रः** । आश्रमेषु चतुर्षु द्विजातीनां विवदतां सतामात्मनो हित चिकीर्षुर्नृपो न विब्रूयात् विपरीतं न वदेत्॥ ३९०॥

(७) **मणिरामः** । आश्रमेषु कार्ये गार्हस्थ्याश्रमविषये कार्येषु मिथः विवदता अय शास्त्रार्थः अयं शास्त्रार्थ इति परं जातविवादानां॥ ३९०॥

(८) **गोविन्दराजः** । आश्रमेष्विति। द्विजानां गृहस्थाना आश्रमविषये शास्त्रार्थोऽय नेत्येव परस्परं विवदमानानां राजा आत्मने दृष्टादृष्टहितं कर्तुमिच्छन् नाय शास्त्रार्थ इति महासनविशेषेण ब्रूयात्॥ ३९०॥

**यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः॥**
**सान्त्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत्॥ ३९१॥**

(१) **मेधातिथिः** । यथा तत्कर्तव्यं तथेदानीमाह। यो यादृशीं यामर्हति गुणानुरूपेण तं तथैवाभ्यर्च्य **ब्राह्मणैर्मन्त्रिपुरोहितादिभिः**। अर्चायां साहित्यं धर्मप्रवचने वा। तदा च **ब्राह्मणाः** सत्या विज्ञेयाः। तैः **सह स्वधर्मं** न्याय्यमर्थं बोधयेत्। सिद्धे सहत्वे सभ्येभ्य उपदेशः प्राधान्यार्थः। तान्पुरस्कुर्यात्। तथाहि। न राज्ञः क्रुध्यन्ति शास्त्रेण। प्रीतिस्तुतिवचनैः प्रथमं प्रशमय्य व्यपनीत-क्रोधान्कृत्वा ततो ब्रूयात्॥ ३९१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । ब्राह्मणैः स्वकीयधर्मासनस्थैः। सांत्वेन प्रशमय्य विवादं त्याजयित्वा स्वधर्मं तैरेव विचारं कारयित्वा प्रतिपादयेत् ज्ञापयेत्॥ ३९१॥

(३) **कुल्लूकः** । यो यादृशीं पूजामर्हति तं तथा पूजयित्वाऽन्यैर्ब्राह्मणैः सह प्रथमं प्रीत्याऽपगतकोषं कृत्वा तत एषां यः स्वधर्मस्तं बोधयेत्॥ ३९१॥

(४) **राघवानन्दः** । तर्हि किं कार्यमिति तत्राह यथेति। यथार्हं यो यादृशीं पूजामर्हति तामनतिक्रम्याभ्यर्च्य कथमेव विवदन्त इति सान्त्वनेन प्रशमय्य गतकोपान्कृत्वा तेषा यःस्वधर्मस्त ब्राह्मणैः सह प्रतिपादयेत् बोधयेत्॥ ३९१॥

(५) **नन्दनः** । एतान्वानप्रस्थान् ब्राह्मणैः स्वपुरोहितादिभिः सान्त्वेन प्रशमय्य न दण्डेन स्वधर्ममविवादमविवादो हि तेषां स्वधर्मः॥ ३९१॥

(६) **रामचन्द्रः** । सः पार्थिवः एतान् आश्रमादीन् ब्राह्मणैः सह सान्त्वयन् प्रशमय्य आदौ स्वधर्मं स्वस्वधर्मं प्रतिपादयेत् स्वस्वाश्रमधर्मे स्थापयेत्॥ ३९१॥

(७) **मणिरामः** । तत्र राजा किं कुर्यादित्यत आह। यथार्हमिति। एतान् विवदमानान्-यथार्हं-यो यादृशीं पूजामर्हति तं तथाऽभ्यर्च्य-अन्यैः ब्राह्मणैः सह-आदौ-प्रथमं-सांत्वेन-प्रीत्या-प्रशमय्य-क्रोधरहितं कृत्वा। तदनंतरं एषां यः स्वधर्मः तं प्रतिपादयेत् बोधयेत्॥ ३९१॥

(८) **गोविन्दराजः**। किं तर्हि यथार्हमिति। यादृशीं यः पूजामर्हति तं तथा पूजयित्वा अन्यैर्ब्राह्मणैः सह राजा प्रथमशास्त्रादपगतकोपान् कृत्वा ततस्तेषां यः स्वधर्मः तं बोधयेत्॥ ३९१॥

**प्रतिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विंशति द्विजे॥**
**अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम्॥ ३९२॥**

(१) **मेधातिथिः**। विशन्त्यस्मिन्निति 'वेशो' निवासः — तत्प्रतिगतः 'प्रतिवेशः' गृहाभिमुखं, तत्र भवः **प्रतिवेश्यः**। आदिदीर्घपाठे स्वार्थिकोऽण्। एव**मनुवेश्यः** पृष्ठतो वसन्नुच्यते। तौ चेन्न भोजयेत्। यदि स्वगृहमानीय **कल्याणे** विवाहाद्युत्सवे **विंशति**मात्रा यत्र **द्विजा** अन्ये भोज्यन्ते। तदा माषकं सुवर्णं दण्डं दाप्यः। हिरण्यमित्युत्तरत्र विशेषणादिहापि विज्ञायते। **अर्हौ** — यदि तौ प्रतिवेश्यानुवेश्यौ योग्यौ भवतः, न द्विषन्तौ नात्यन्तनिर्गुणौ॥ ३९२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रातिवेश्यो निरन्तरगृहस्थः। अनुवेश्यस्तदनन्तरः। कल्याणे उत्सवे। विंशतिर्ब्राह्मणा यत्र भोज्यन्ते तत्र। अर्हौ योग्यौ। विप्र इति वचनात्क्षत्रियस्य तादृग्ब्राह्मणभोजने न दोष इत्यर्थः। माषकं सुवर्णस्य॥ ३९२॥

(३) **कुल्लूकः**। निरन्तरगृहवासी प्रातिवेश्यः तदन्तरगृहवास्यनुवेश्यः यस्मिन्नुत्सवे विंशतिरन्ये ब्राह्मणा भोज्यन्ते तत्र प्रातिवेश्यानुवेश्यौ प्रातिवेश्यब्राह्मणातिक्रमकारी चेति विष्णुवचनात् ब्राह्मणौ भोजनार्हावभोजयन्ब्राह्मण उत्तरत्र हैरण्यादिग्रहणादिह रौप्यमाषं दण्डमर्हति॥ ३९२॥

(४) **राघवानन्दः**। ब्राह्मणानन्नदायिनो द्विजस्यैतद्वि शेषाभोजने दण्डमाह प्रातिवेश्येति। प्रातिवेश्यानुवेश्यौ स्वगृहनिकटोपनिकटवासिनौ अर्हौ कुष्ठश्वित्रोपपातकाद्यदुष्टौ। कल्याणे उत्सवे स्वस्त्ययने वा। विंशतिद्विजे द्विजानां विंशतिर्भोजनीयत्वेन यत्र तस्मिन् माषकं रौप्यमिति केचित्। संदिग्धेषु वाक्यशेषादिति न्यायेन हैरण्यमिति तु तत्रत्वं उत्तरवाक्यैर्हैरण्यमितिश्रवणात्। विंशतिरिति न्यूनसंख्याव्यवच्छेदार्थम्। विप्रपदं चातुवर्ण्योपलक्षणम्॥ ३९२॥

(५) **नन्दनः**। स्वगृहस्याभिमुखं गृहं प्रतिवेशः अभितः समीपस्थं गृहमनुवेशस्तत्रस्थौ प्रातिवेश्यानुवेश्यौ विंशतिद्विजे विंशतिद्विजभोजनयुक्ते कल्याणे उत्सवे॥ ३९२॥

(६) **रामचन्द्रः**। प्रातिवेश्यानुवेश्यौ प्रातिवेश्यः पार्श्वगृहवर्ती अनुवेश्यः तत्पार्श्वगृहवर्ती तावर्हौ कल्याणे उत्सवे विंशतिब्राह्मणभोजने एतादृशे समये अर्हौ प्रातिवेश्यानुवेश्यौ विप्रः। अभोजयन् चेन्न भोजयेत्सः माषकं सुवर्णमाषकं अर्हति॥ ३९२॥

(७) **मणिरामः**। निरंतरगृहवासी प्रातिवेश्यः। तदंतरगृहवासी अनुवेश्यः। तौ. विंशतिद्विजे कल्याणे-यस्मिन्नुत्सवे विंशतिरन्ये ब्राह्मणाः भोज्यंते तस्मिन्नेतावप्यर्हौ भोज्यौ॥ ३९२॥

(८) **गोविन्दराजः**। प्रातिवेश्यानुवेश्याविति। यत्रान्ये विंशतिमात्राधिका भोजनीयास्तस्मिन्नुत्सवे वेश्माग्रात्पश्चान्निवासिनौ योग्यावभोजयन् ब्राह्मणादिरुत्तरत्र हिरण्यग्रहणादिह माषकं दण्डमर्हति॥ ३९२॥

**श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधु भूतिकृत्येष्वभोजयन्॥**
**तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हैरण्यं चैव माषकम्॥ ३९३॥**

(१) **मेधातिथिः** । अप्रातिवेश्यार्थोऽयमारंभः। सब्रह्मचारिणामयं नियमः। **श्रोत्रिय**स्तादृशमेव **श्रोत्रियं** गुणवन्तं **भूतिकृत्येषु**। भूतिर्विभवस्तन्निमित्तेषु कार्येषु — विभवे धनसंपत्तौ सत्यां यानि क्रियन्ते गोष्ठीभोजनादीनि। अथवा **भूति**ग्रहणं कृत्यविशेषणम्। भूतिमन्ति यानि कृत्यानि प्राचुर्येण प्रभूततया विवाहादीनि क्रियन्ते — यत्र विंशतेरधिकनरा भोज्यन्ते। तादृशेषूत्सवेषु अभोजयंस्तदर्थमन्नं यावत् भूतिकृत्येषु भोक्तव्यं तावद्**द्विगुणं** तस्मै दापयेत्। राज्ञे वा दातव्यं **हैरण्यं माषकम्**॥ ३९३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । श्रोत्रियमेकग्रामीणं भूतिकृत्येषु कल्याणेषु। तदर्थे दाप्यःश्रोत्रियाय माषकं राज्ञा॥ ३९३॥

(३) **कुल्लूकः** । विद्याचारवांस्तथाविधमेव गुणवन्तं विभवकार्येषु विवाहादिषु प्रकृतत्वात्प्रातिवेश्यानुवेश्यावेव भोजयन् तदन्नं भोजिताद्द्विगुणमन्नं दाप्यो हिरण्यमाषकं च राज्ञः॥ ३९३॥

(४) **राघवानन्दः** । कदर्याय न देयमित्यतःसाधोरदाने दण्डमाह श्रोत्रिय इति। भूतिकृत्येषु विवाहादिषु श्रोत्रियं दैवादुपनतं अभोजयन् न दत्तं तदन्नं तदपराधापनुत्तये तस्मै भोजननिर्वाहकद्रव्यद्विगुणं दाप्यः। राजा तु हैममाषिकं गृह्णीयादित्यर्थः। साधुमित्यधिकारित्वद्योतनाय विशेषणम्। तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकाम इति श्रुतेः। साधुपदमात्मज्ञपरं वा॥ ३९३॥

(५) **नन्दनः** । तदन्नं श्रोत्रियान्नं राज्ञा श्रोत्रियाय दाप्यं माषकं स्वस्मै दण्डत्वेनापेक्ष्यमाणं श्रोत्रियप्रत्याख्यानविषयोयं दण्डविधिः॥ ३९३॥

(६) **रामचन्द्रः** । भूतिकृत्येषु मंगलकार्येषु श्रोत्रियः श्रोत्रियमभोजयन् तदन्नं द्विगुणं दाप्यः। च पुनः अतिशयार्थं हिरण्यं माषकं दाप्यः॥ ३९३॥

(७) **मणिरामः** । भूतिकृत्ये विवाहादौ। श्रोत्रियं प्रातिवेश्याऽनुवेश्यं। तदन्नं भोजिताद्द्विगुणमन्नं॥ ३९३॥

(८) **गोविन्दराजः** । श्रोत्रिय इति॥ ३९३॥

**अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः॥**
**श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्याः केनचित्करम्॥ ३९४॥**

(१) **मेधातिथिः** । **सप्तत्या स्थविरः**। प्रकृत्या विरूप इतिवत्तृतीया। सप्ततिर्वर्षाणि यस्य जातस्य स एवमुच्यते। **श्रोत्रियेषु** वेदाध्यायिषू**पकुर्व**न्पादशुश्रूषादिना कारुकर्मणा वा। एते न केनचित् 'शिल्पिनो मासिमासीत्यादि' (मनु ७।१३८) **दाप्याः**। क्षीणकोशेनापि न दाप्या इति **केनचि**द्ग्रहणम्॥ ३९४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । जडः विकलवागादिः। पीठसर्पी पीठद्वयेन गच्छन्खञ्जः। श्रोत्रियेषूपकुर्वन् तेषां परिचर्यापरःशूद्रादिः। करं निवासनिमित्तकम्॥ ३९४॥

(३) **कुल्लूकः** । अन्धो बधिरः पंगुः संपूर्णसप्ततिवर्षः सप्तत्येति प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानमिति तृतीया। श्रोत्रियेषु धनधान्यशुश्रूषादिनोपकारकाः केनचिदपि क्षीणकोशेनापि राज्ञा त्वग्राह्या करं नादापनीयाः॥ ३९४॥

(४) **राघवानन्दः** । दण्डप्रसंगेन करादानं बुद्धिस्थं क्वचिन्निवर्तयति अन्ध इति। जडो

बधिरः पीठसर्पी पंगुः परायत्त गमनेन पीठवत्सर्तुं शीलमस्येति सप्तत्या स्थविरः सप्तत्युत्तरवयाः एतांश्चतुरः शुश्रूषया धनैर्वोपकुर्वन्न करं दाप्य इत्यन्वयः। श्रोत्रियेष्विति विषयसप्तमी। केनचिद् संज्ञा करपदं दण्डशुल्कयोरुपलक्षणम्॥ ३९४॥

(५) **नन्दनः**। पीठसर्पी पंगुः सप्तत्या वयसा सप्तत्या अब्राह्मणा अप्येते करं न दाप्याः॥ ३९४॥

(६) **रामचन्द्रः**। पीठसर्पी पीठद्वयं कराभ्यामादाय गच्छन्। सप्तत्या वयसा स्थविरः। च पुनःयः श्रोत्रियेषु उपकुर्वन् उपकारं करोति तेन केनचित् क्षीणकोशेनापि। करं निवासनिमित्तकम् दाप्याः॥ ३९४॥

(७) **मणिरामः**। जडः बधिरः पीठसर्पी पंगुः। सप्ततिवर्षस्थविरः पूर्णसप्त प्रतिवर्षः एतादृशो यः अथ च श्रोत्रियेषु उपकुर्वन् धनधान्यशुश्रूषादिना श्रोत्रियाणां तोषकश्च यः सः केनचित् क्षीणकोषेणापि राज्ञा करं न दाप्यः किंतु अपराधेष्यनुग्राह्य एवेत्यर्थः॥ ३९४॥

(८) **गोविन्दराजः**। अन्ध इति। अन्धबधिरपङ्गवः सप्ततिवर्षात्प्रभृति च वृद्धः श्रोत्रियाणाञ्च शुश्रूषादिनोपकारकरणे केनचिदपि क्षीणकोशेनापि राज्ञा धान्यषड्भागं गुल्मदानादिकं राजदेयं न दापनीयः॥ ३९४॥

**श्रोत्रियं व्याधितार्त्तौ च बालवृद्धावकिंचनम्॥**
**महाकुलीनमार्यं च राजा संपूजयेत्सदा॥ ३९५॥**

(१) **मेधातिथिः**। सपूजनमनुग्रहः। अनेकार्थत्वाद्धातूनाम्। न हि बालादीनामन्या पूजोपपद्यते। श्रोत्रियोऽत्र ब्राह्मण एवेति स्मरन्ति। **आर्त्तः** प्रियवियोगादिना। **अकिंचनो** दुर्गतः। **महाकुलीनः**। ख्यातिधनविद्याशौर्यादिगुणे कुले जातो 'महाकुलीनः'। **आर्य** ऋजुप्रकृतिरवक्रः। एतेषां दानमानादिभिरनुग्रहः कर्तव्यः।

केचिद**किंचनं** महाकुलीनविशेषणं व्याचक्षते॥ ३९५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आर्त्तं शोकेन। अकिञ्चनं दरिद्रं। आर्यं आर्यप्रधानं। संपूजयेदर्थ-दानेन॥ ३९५॥

(३) **कुल्लूकः**। विद्याचारवन्त ब्राह्मणं रोगिणं पुत्रवियोगादिदुःखितं · बालवृद्धदरिद्र-महाकुलप्रसूतोदारचरितान्राजा दानमानहितकरणैः संपूजयेत्सदा॥ ३९५॥

(४) **राघवानन्दः**। न केवलमनादान यदि ते निस्वास्तेभ्यः प्रत्युता-धादिद्वादशेभ्यो दानमेवेत्याह श्रोत्रियइति। आर्त्तः पुत्रादिनाशेन। अकिञ्चनः निःस्वः। आर्योऽवक्रबुद्धिर्व्यव-हारेपि॥ ३९५॥

(५) **नन्दनः**। आर्त्तः पुत्रमरणादिना पुनर्वृद्धग्रहणमादरातिशयार्थं संपूजयेत्करं नादद्यात्॥ ३९५॥

(६) **रामचन्द्रः**। व्याधितः व्याधियुक्तः आर्तो ज्वरादिना बालवृद्धौ बालान् वृद्धान् अकिञ्चनं निःस्वं आर्यं एतान् राजा पूजयेत्॥ ३९५॥

(७) **मणिरामः**। अकिञ्चनं दरिद्रं। आर्यं उदारचरितं॥ ३९५॥

(८) **गोविन्दराजः**। श्रोत्रियं व्याधिनार्तञ्चेति। अध्ययनानुष्ठानवन्तं ब्राह्मणं रोगिणं प्रियवियोगाक्रांतं बालवृद्धदरिद्रमहाकुलीनोत्पन्नार्जवोपेतान् राजा दानमानप्रियकरणेन सर्वदा पूजयेत्॥ ३९५॥

**शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्नेजकः शनैः॥**
**न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत्॥ ३९६॥**

(१) **मेधातिथिः**। **शाल्मली** नाम वृक्षस्तद्विकारे **फलके**। स हि प्रकृत्यैव श्लक्ष्णो भवति। न च वाससोऽपि पातैरवयवा अस्य च्यवन्ते। ते हि च्युता वासः पाटयेयुः। न चायं जाति-नियमोऽदृष्टाय। तेनान्यदपि यत्काष्ठमेवं स्वभावं तत्फलके न दोषः। **श्लक्ष्णेऽपरुषे** च **वासांस्यन्**यदीयान्यन्यदीयै**र्वासोभिर्न निर्हरेत्**। बद्ध्वोपरिवेष्ट्य तीर्थे प्रक्षालयितुं न नयेत्। बन्धनाद्वाससां विनाशो माऽभूत्। अधिकं हि तानि पीडितानि भवन्ति। **न च वासयेत्**। अन्यदीयानि वासांस्यन्यस्मै न प्रयच्छेत्। मूल्येन वसनार्थं न दद्यात्। एतद्धि 'वासनं'—वस्तेऽपरः, तं रजको वासयति। अक्षुतत्वाद्दण्डस्य प्रकृतमाषकयोजना कर्तव्या॥ ३९६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नेनिज्यात् क्षालयेत्। नेजकश्चैलनिर्णेजकः। **निर्हरेत्** परिवर्तयेत्। वासयेत् चिरं स्थापयेत्॥ ३९६॥

(३) **कुल्लूकः**। शाल्मल्यादिवृक्षसंबन्धिफलकेऽपरुषे रजकःशनैः शनैर्वासांसि प्रक्षालये-न्न परकीयैर्वस्त्रैरन्यवस्त्राणि नयेत् न चान्यवासांस्यन्यपरिधानार्थं दद्यात् यद्येवं कुर्यात्तदाऽसौ दण्ड्यः स्यात्॥ ३९६॥

(४) **राघवानन्दः**। दण्डार्थं रजकतन्तुवायौ शिक्षयन्नाह शाल्मलीति द्वाभ्याम्। फलके काष्ठमये श्लक्ष्णे मृदुनि नेनिज्यात् क्षालयेत् तत्रापि शनैर्न निर्हरेत् न नयेत्। वासोभिः क्षाल्यमानैर्न वासयेदाच्छादयेदन्यं स्वं वा॥ ३९६॥

(५) **नन्दनः**। वासोभिर्निर्हरेद्वासोभिर्निबध्य निर्हरेत्। न च वासयेत्परान्नाच्छादयेत्॥ ३९६॥

(६) **रामचन्द्रः**। नेजकः वस्त्रप्रक्षालकः शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे शाल्मलीवृक्षस्य फलके पीठे श्लक्ष्णे वासांसि शनैःशनैर्नेनिज्यात्प्रक्षालयेत्। च पुनः वासोभिर्वासांसि न निर्हरेत् न परिवर्तयेत् च पुनः न वासयेत् न चिरं स्थापयेत्। अन्यस्मै परिधानाय भृतकेन न दद्यात् स्वयं च न परिदध्यात्॥ ३९६॥

(७) **मणिरामः**। शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे शाल्मलीवृक्षसंबंधिफलके न तु पाषाणे। रजकः वस्त्रधावकः। नेनिज्यात् वस्त्राणि प्रक्षालयेत्। वासोभिः परकीयवस्त्रैः। वासांसि परकीयानि। न निर्हरेत् न नयेत् न च वासयेत्। अन्यवस्त्रमन्यपरिधानार्थं च न दद्यात्॥ ३९६॥

(८) **गोविन्दराजः**। शाल्मलिफलक इति। शाल्मल्यादिवृक्षसम्बन्धिनि फलके अपरुषे वासोधावकः शनैः शनैः वासांसि क्षालयेत्। न च परकीयैर्वस्त्रैः संवेष्ट्य वस्त्रादि बहिः न चान्यस्याच्छादनार्थं दद्यात्। यद्येवं कुर्यात् तदाऽसौ दण्ड्यः स्यात्॥ ३९६॥

**तन्तुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम्।।**
**अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम्।। ३९७।।**

(१) **मेधातिथिः**। तन्तून्वयति **तन्तुवायः** कुविन्दः। शाटकादेः पटस्य कर्ता। स सूत्रपलानि दश गृहीत्वा शाटकं वयन् एकपलाधिकं वस्त्रं दद्यात्। अनया वृद्ध्या सर्वं दद्यात्। स्थूलसूक्ष्मादिवाससां रोमवतां च कल्पना कर्तव्या। **अन्यथा** द्वादशंपणो दण्डः। वृद्ध्यपदानेऽयं दण्डः। मूलच्छेदे तू गणोक्तः। एवं विंशतिपलं यदि न ददाति वृद्धिं द्विगुणो दण्डः। एवं कल्पना कार्या—त्रिगुणश्चतुर्गुण इत्यादि। अन्ये तु दण्डं राजभागमित्याहुः।। ३९७।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तन्तूनां दशपलं गृहीतमेकपलाधिकं संमाय स्वामिने पटादीन्कृतान्प्रयच्छेन्। एवं गणनयैव सर्वत्र संख्यानम्। द्वादशकं तस्य तन्तोर्द्वादशं भागम्।। ३९७।।

(३) **कुल्लूकः**। तन्तुवायो वस्त्रनिर्माणार्थं दशपलानि सूत्रं गृहीत्वा पिष्टभक्ष्याद्यनुप्रवेशादेकादशपलवस्त्रं दद्याद्यदि न्यूनं दद्यात्तदा ततो द्वादशपणान्राज्ञा दाप्यः स्वामिनश्च तुष्टिः कर्तव्यैव।। ३९७।।

(४) **राघवानन्दः**। पटाद्यर्थतन्तूनां दशपलग्रहणे एकादशपलपरिमितं वस्त्रं दद्यात् मण्डादिनाऽधिकांशस्य संभाव्यमानत्वात्। तदपि दानं स्वामितुष्टिपुरःसरम्। अन्यथावर्तमानोऽददत् पणानां द्वादश देया राज्ञे स्वामिनि एकादशपलं च। अत्रोक्तं याज्ञवल्क्येन।। शते दशपला वृद्धिरौर्णे कार्पासिके तथा। मध्ये पञ्चपला सूत्रे सूक्ष्मे तु त्रिपला मता।। अधिका ग्राह्यत्वेन।। कार्मिके रोमबद्धे तु त्रिंशद्भागः क्षयो मतः। न देयः शिल्पिना।। न क्षयो न च वृद्धिस्तु कौशेये वाल्कलेषु च। अग्नौ सुवर्णमक्षीणं द्विपलं रजते शते।। अष्टौ तु त्रपुसीसेषु ताम्रे पञ्चदशानि तु।। एतद्विकारग्रहणकाले न्यूनं ग्राह्यम्।। ३९७।।

(५) **नन्दनः**। पटकृत्तद् दशपलाद् दशभ्यो लाभेभ्यः एकफलाधिकमेकमधिकलाभं राज्ञो दद्यात् द्वादशकं फलद्वादशभागम्।। ३९७।।

(६) **रामचन्द्रः**। तन्तुवायायुतं तु समर्पितं सूत्रं दशपलं सः तन्तुवायः एकाधिकं एकादशपलप्रमाणं पुनः दद्यात्।। ३९७।।

(७) **मणिरामः**। तंतुवायो वस्त्रनिर्माणार्थं दशपलानि सूत्रं गृहीत्वा पिष्टलेपादिप्रवेशात् एकादशपल तोलयित्वा एव सिद्धं दद्यात्। अतोन्यथा वर्तमानः एकादशपलान्न्यूनं चेद् ददाति तदा द्वादशपणान् राज्ञो दाप्यः।। ३९७।।

(८) **गोविन्दराजः**। तन्तुवाय इति। तन्तुवायिना छेदे दशपलादिसूत्रस्य गृहीत्वा पिष्टखल्यानुप्रवेश्यादेकादशपलं वासो दद्यात्। अतो यच्छिष्टं तत्तद्द्वादशगुणं दण्ड्यः।। ३९७।।

**शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः।।**
**कुर्युरर्घं यथापण्यं ततो विंशं नृपो हरेत्।। ३९८।।**

(१) **मेधातिथिः**। येषु प्रदेशेषु शुल्कमादीयते तानि **शुल्कस्थानानि** राजभिर्वणिग्भिः स्वप्रतिदेशनियतानि कल्पितानि। तेषु स्थानेषु ये **कुशलाः** शौल्किकाः—ये धूर्तैर्न शक्यन्ते

वञ्चयितुं — तथा सर्वेषां पण्यानामागमक्रयविक्रयक्षयव्ययसारासारादिविधिज्ञा **विचक्षणाः**। ते भाण्डस्यागतस्य देशान्तरान्नीयमानस्य **वाऽर्घं कुर्युः**। **ततो विंशति**भागं राजा गृह्णीयात्। "किंपुनरर्धकरणेन। एतावदेव वक्तव्यं पण्यानां विंशतिभागमिति"। सत्यम् यदा स्वरूपेण द्रव्यं राजा गृह्णाति। स्वरूपकान्युपयुज्यन्ते साटकादीनि — तत्र विंशतिभागः न पाटनमन्तरेणोपपद्यत इत्येवमर्थमर्घकरणम्। अविक्रेयाणामात्मोपयोगिनां नास्ति शुल्कः इति ज्ञापितुं **यथापण्यम्**। एवं कालानुरूप्येण। न सर्वपण्यं सर्वदा विक्रियत एकरूपेणार्घेण। अतो देशकालापेक्षया पण्यानामर्घव्यवस्था, न नियतोऽर्घ इति॥ ३९८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शुल्कस्थानेषु पण्यविक्रयस्थानेषु। अर्घ्यं मूल्यं कुर्युर्व्यवस्थापयेयुः नियुक्ताः। विंशं विंशतिभागैकभागं हरेदर्घकरणनिमित्तम्॥ ३९८॥

(३) **कुल्लूकः**। स्थलजलपथव्यवहारतो राजग्राह्यो भागः शुल्कं तस्याऽवस्थानेषु ये कुशलाः तथा सर्वपण्यानां सारासारज्ञास्ते पण्येषु यमर्घं मूल्यमनुरूपं कुर्युः ततो लाभधनाद्विंशतिभागं राजा गृह्णीयात्॥ ३९८॥

(४) **राघवानन्दः**। एवं राजकीयदण्डस्य राजसूयवत्प्राकरणिकत्वाच्छुल्कादेरपि तदन्तर्गतत्वं प्रकटयन्नाह। शुल्केति क्रयस्थानेषु जलस्थलव्यवहर्तृभ्यो ग्राह्यो भागः शुल्कः। अयं तु मूल्यनिर्णयनिमित्तः। सर्वपण्यविचक्षणाःतत्सारासारज्ञाः। अर्घं मूल्यम्। यथापण्यं पण्यं विक्रयद्रव्यं तदनुरूपम्। ततो लाभधनात् विंशतिभागं हरेदित्यन्वयः॥ ३९८॥

(५) **नन्दनः**। विचक्षणाः क्रयविक्रयविधौ विवेकिनः यथापण्यं विक्रेयद्रव्यानुरूपमूल्यं कुर्युः कल्पयेयुः ततो विंशतिभागं नृपो हरेत् विक्रयार्थमापंणमध्य आहृतं द्रव्यं सर्वं दण्डत्वेनापहरेत्॥ ३९८॥

(६) **रामचन्द्रः**। शुल्कस्थाने मौल्यस्थाने ततः लाभे सति विंशांशं नृपः हरेत् गृह्णीयात्॥ ३९८॥

(७) **मणिरामः**। स्थलजलमार्गव्यवहारतो राज्ञा ग्राह्यभागः शुल्कांतस्य अवस्थानेषु कुशलाः तथा सर्वपण्यानां सारासारज्ञाः ते यथापण्यं पण्ययोग्यं अर्घं मूल्यं कुर्युः। ततः लाभधनात् विंशं विंशतिभागं शुल्कं। राजा गृह्णीयात् प्रख्यातानि उपयोगीनि हस्त्यश्वादीनि भांडानि च राजसंबंधीनि। यानि च प्रतिषिद्धानि दुर्भिक्षे धान्यमन्यदेशे न नेतव्यमित्यादीनि। तानि लोभात् निर्हरतः अन्यदेशं नयतः वणिजः सर्वहरणं राजा कुर्यादित्यर्थः॥ ३९९॥

(८) **गोविन्दराजः**। शुल्कस्थानेष्विति। आपणादिव्यवहर्तृभ्यो राजग्राह्यं शुल्कं च स्थाप्यापणस्थलपथजलपथादिषु नियतं लब्धुमशक्याः पण्यानाञ्च सारासारादिज्ञास्ते पणे पणेऽनुरूपमर्घं कुर्युस्ततो लाभधनाद्विंशतिभागं शुल्कं राजा दापयेत्॥ ३९८॥

**राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च॥**
**तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः॥ ३९९॥**

(१) **मेधातिथिः**। **राज्ञः** संबन्धितया **प्रख्यातानि** यानि **भाण्डानि** राजोपयोगितया — यथा हस्तिनः, काश्मीरेषु कुंकुमम्, प्राच्येषु पट्टोर्णादीनि, प्रतीच्येष्वश्वाः, दक्षिणात्येषु मणिमुक्तादीनि।

यद्यस्य राज्ञो विषये सुलभमन्यत्र दुर्लभं तत्र तस्य 'प्रख्यापनं' भवति। तेन हि राजान इतरेतरं संदधते। **प्रतिषिद्धानि यानि** राज्ञा मदीयाद्देशान्नैतदन्यत्र नेयम् अत्रैव वा विक्रेयं यथा दुर्भिक्षे धान्यमित्येवमादीनि। **लोभान्निर्हरतो** देशान्तरं नयतो विक्रीणानस्य वा **सर्वहारं** हरेत्सर्वहरणं 'सर्वहारः'। अयं धनलोभान्नयतो दण्डः। राजान्तरोपायनार्थं त्वधिकतरः शारीरोऽपि दुर्गावरोधादिः॥ ३९९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। राज्ञो योग्यान्येतानीति प्रसिद्धानि सिंहासनादीनि प्रतिषिद्धानि अन्यत्र विक्रेतुं। निर्हरतोऽन्यत्र नयतो वाणिजकस्य लोभादुचितमूल्याधिकेच्छया। सर्वहारं मूल्यमदत्वा तस्य सर्वस्वहरणं यथा स्यात्॥ ३९९॥

(३) **कुल्लूकः**। राज्ञः संबन्धितया यानि विक्रेयद्रव्याणि प्रख्यातानि राजोपयोगीनि हस्त्यश्वादीनि च तद्देशोद्भवानि च प्रतिषिद्धानि च यथा दुर्भिक्षे धान्यं देशान्तरे न नेयमिति तानि लोभाद्देशान्तरं नयतो वणिजः सर्वहरणं राजा कुर्यात्॥ ३९९॥

(४) **राघवानन्दः**। किंचान्यत् राज्ञ इति। प्रख्यातभाण्डानि राजयोग्यानि हस्त्यश्वमणिमुक्तादीनि प्रतिषिद्धानि त्वयैतानि न विक्रेयाणीति तानि देशान्तरं नेतुः क्रेतुर्विक्रेतुर्वा मूल्यमदत्वैव सर्वहारं यथास्यात्तथा हरेदित्यन्वयः॥ ३९९॥

(५) **नन्दनः**। राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि राज्ञ एवोपभोक्तव्यत्वेन प्रख्यातद्रव्याणि प्रतिषिद्धानि शास्त्रे क्रयत्वेन प्रतिषिद्धानि च निर्हरतो विक्रयार्थमाहरतः सकाशात्सर्वहारं हरेत्॥ ३९९॥

(६) **रामचन्द्रः**। प्रख्यातभाण्डानि बहुमूल्यत्वे सति राजयोग्यानि। राजयोग्यानि तानि भाण्डानि लोभात् हरतः गृह्णतः॥ ३९९॥

(८) **गोविन्दराजः**। राज्ञ इति। यानि राज्ञस्तद्देशोद्भवानि मणिमुक्तादीनि यानि च राज्ञा प्रतिषिद्धानि तथा दुर्भिक्षे धान्यं देशान्तरे न नेयमिति तानि लोभाद्देशान्तरं नयतः सर्वहरणं कुर्यात्॥ ३९९॥

**शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्रयी॥**
**मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम्॥ ४००॥**

(१) **मेधातिथिः**। **क्रयविक्रयी** वाणिजक उच्यते। **शुल्कस्थानं परिहरन्नुत्पथेन** गच्छन्। **अकाले** वा रात्रौ शुल्काध्यक्षेषु गतेषु, **संख्याने मिथ्यावादी** न्यूनं कथयति गणनायाम्। उपलक्षणं चैतत्सख्यानम्। तेन प्रच्छादनेऽप्येष एव विधिः। **दाप्योऽष्टगुणमत्ययं दण्डः**। यावदपहनुते तावदष्टगुणम्, यावान्वा तस्यापहनुतस्योचितः शुल्कस्तदष्टगुणं दाप्यः। आद्यमेव युक्तम्। 'अत्यय'शब्दो हि तत्र समजसः तद्धेतुत्वाद्द्रव्ये।

अन्ये **त्वकाले क्रयविकयी** इति संबन्धं कुर्वन्ति। अकालश्चागृहीते शुल्के रहसि वा प्रतिषेधोऽयम्॥ ४००॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शुल्कं क्रयविक्रयराजग्राह्यो भागः। परिहरन्न वर्त्मगमनादिना। अकाले रात्र्यादौ। शुल्कापचयार्थं मिथ्यावाद्यल्पतावादी। संख्याने विक्रेयद्रव्यसंख्यायां विषये। अत्ययं राज्ञोपचितं शुल्कम्॥ ४००॥

(३) **कुल्लूकः**। शुल्कमोषणायोत्पथेन गच्छति अकाले रात्र्यादौ वा क्रयविक्रयं करोति शुल्कखण्डनार्थं विक्रेयद्रव्यस्याऽल्पां संख्यां वक्ति राजदेयमपलपितमष्टगुणं दण्डरूपतया दाप्यः॥४००॥

(४) **राघवानन्दः**। किंचान्यत् शुल्केति। शुल्कस्थानं हद्दपट्टादिकं परिहरन् निह्नुवन् क्रयाधिकारी अकाले क्रयविक्रयी मिथ्यावादी च संख्याने मूल्यसंख्यायां राजशुल्कादत्ययं अतिक्रम्यापत्तेरित्यपलपितं यावत्तदष्टगुणं स दाप्य इत्यन्वयः॥४००॥

(५) **नन्दनः**। परिहरन्परिहृत्यान्यमार्गेण गच्छन्यद्देयमतिक्रान्तं यदकाले विक्रीतं वा यावच्च क्रयविक्रये विक्रये वञ्चितं यच्च संख्याने हृतं तदत्ययमष्टगुणं दाप्यः॥४००॥

(६) **रामचन्द्रः**। शुल्कस्थानं मौल्यस्थानं परिहरन् काले क्रयविक्रयं यो न करोति च पुनः मूलसंख्यायां मिथ्यावादी अष्टगुणं शुल्कं कतिदूरादागतं कतिदूरागन्तव्यमिति दाप्यः॥४००॥

(७) **मणिरामः**। अकाले रात्रादौ। शुल्कस्थानं परिहरन् शुल्कमोक्षणाय तत्पथे न गच्छति। अकाले रात्रादौ क्रयविक्रयी शुल्कखंडनार्थं क्रयविक्रयकर्त्ता। संख्याने मिथ्यावादी च शुल्कखंडनार्थं विक्रेयद्रव्यस्य अल्पां संख्यां वक्ति। यः सःअष्टगुणं अपह्नुतस्याष्टगुणं अत्ययं दंडरूपं दाप्यः॥४००॥

(८) **गोविन्दराजः**। शुल्कस्थानमिति। उक्तपरिजिहीर्षया य उत्पथेन गच्छत्यकाले वा क्रयविक्रयशुल्कम् एव यथार्थं चात्मद्रव्यं स्वल्पां संख्यां वक्ति स राजदेयं यत्तदष्टगुणं दण्डं दाप्यः॥४००॥

**आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ॥**
**विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ॥४०१॥**

(१) **मेधातिथिः**। आपणभूमौ ये विक्रेतारस्ते न स्वेच्छया मूल्यं कर्तुं लभेरन्नापि राजा क्रीणीयात् स्वरुचिकृतेन मूल्येन। कथं तर्हि। इदमिदं निरूप्यम्। **आगमम्**–किं प्रत्यागच्छति देशान्तरादुत न, तथेयतो दूरादागच्छति। एवं **निर्गमस्थाने**। किं संप्रत्येव विक्रियत उत तिष्ठति संप्रति निष्क्रामतो द्रव्यस्य स्वल्पोऽपि लाभो महाफलस्तदुत्थितेन मूल्येन द्रव्यान्तराविषयेण क्रयविक्रयेण पुनर्लाभः। **स्थानाद्वृद्धिक्षयौ**। कियत्यस्य वृद्धिस्तिष्ठति कीदृशो **वा** क्षयः–इत्येतत्सर्वं परीक्ष्य स्वदेशे **क्रयविक्रयौ कारयेत्**। यथा न वणिजां पीडा भवति नापि क्रेतॄणां तथाऽर्घं व्यवस्थापयेत्॥४०१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आगममेतावता व्ययेनागमनमत्रेति। एवं निर्गमश्चकारात्स्थानमेतदवशिष्टं तिष्ठतीति। वृद्धिमेतावद्वर्धत इति। क्षयमानीयमानद्रव्यस्यैवापचय इतस्ततःपातेन॥४०१॥

(३) **कुल्लूकः**। कियतो दूरादागतमिति देशान्तरीयद्रव्यागमनं कियद्दूरं नीयत इति स्वदेशोद्भवस्य निर्गमं कियत्कालस्थितं कियन्मूल्यं लभत इति स्थितं तथा कियती वृद्धिरित्यत्र कर्मकाराणां भक्ताच्छादनादिना कियानपक्षय इत्येवं विचार्य तथा वणिजां क्रेतॄणां यथा पीडा न भवति तथा सर्वपण्यानां क्रयविक्रयौ कारयेत्॥४०१॥

(४) **राघवानन्दः** । विक्रेतुरनुग्रहार्थमाह आगममिति। आगमं विदूरादानीतं निर्गमं स्वदेशाद्विदेशे नयनं स्थानं द्रव्यावस्थितकालवशात्परिमाणक्षयादि वृद्धिक्षयौ लाभालाभौ विचार्योक्तं ज्ञात्वा क्रयविक्रयौ कारयेद्राजेतिशेषः।।४०१।।

(५) **नन्दनः** । आगमनागमनमार्गं निर्गमं निर्गमनकालं उपक्षयरूपेण वणिजो हस्ताद् द्रव्यसंवासः स्थानम्।।४०१।।

(६) **रामचन्द्रः** । सर्वपण्यानां आगमं आगमस्थानं स्थापनस्थानं च तथा उभौ वृद्धिक्षयौ विचार्य क्रयविक्रयौ कारयेत्।।४०१।।

(७) **मणिरामः** । कियद्दूरादागतमित्यागमं। कियद्दूरं नीयत इतिनिर्गमनं। कियत्कालंस्थितमिति स्थानं।।४०१।।

(८) **गोविन्दराजः** । आगममिति। कियतो दूरादानीतमेतदिति देशान्तरीयद्रव्यस्य स्थानं आगमनं विचार्य कियद्दूरं नीयते स्वदेशोद्भवस्य निर्गममवेक्ष्य कियत्कालो वाणिज्यस्य विक्रीतमेतदासितमिति एवञ्च स्थानमालोक्य तथा कियान् तस्य वणिजो लाभोऽनपायो वा भक्ताच्छादनकर्मकरादिमत इति मत्वा सर्वपण्यानां यथा वणिजां कर्तृणाञ्च पीडनं न भवति तथा क्रयविक्रयौ कारयेत्।।४०१।।

**पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते।।**
**कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः।।४०२।।**

(१) **मेधातिथिः** । आगमनिर्गमनादेर्द्रव्यस्यानित्यत्वादुपचयापचयावर्घस्यानेकरूपौ। ततोऽर्घसंस्थापनं **पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे** प्रत्यक्षीकार्यं, न सकृत्कृतं मन्तव्यं, नापि वणिजो विश्वसितव्याः।। किंतर्हि स्वयं प्रतिजागरणीयम्। यद्द्रव्यं चिरेण निष्क्रामति तत्र **पक्षे**ऽर्घगवेषणमन्यत्र पाञ्चरात्रिकम्।।४०२।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । प्रत्यक्षमात्मगोचरम्। कालविकल्पःशङ्कल्पत्वाधिक्यापेक्षया।।४०२।।

(३) **कुल्लूकः** । आगमनिर्गमोपाययोगादेः पण्यानामनियतत्वादस्थिरार्घानां पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे गते स्थिरप्रायार्घाणां पक्षे गते वणिजामर्घविदां प्रत्यक्षं नृपतिराप्तपुरुषैर्व्यवस्थां कुर्यात्।।४०२।।

(४) **राघवानन्दः** । राज्ञा क्रयादावपि तत्परेण भाव्यमित्याह पञ्चेति। स्थिरास्थिरार्थभेदेन पञ्चरात्र इत्यादिविकल्पः। तेषां वणिजाम् अर्घस्थानं तत्स्थानं प्रत्यक्षमाप्तपुरुषैःकुर्यात्। यथा ते विक्रीय न पलायन्तेऽपह्नुवते वा।।४०२।।

(५) **नन्दनः** । अर्घसंस्थापनम्।।४०२।।

(६) **रामचन्द्रः** । एषां पण्यवस्तूनां। सर्वं संस्थापनं प्रत्यक्षं आत्मनः पुरतः नृपः कुर्वीत।।४०२।।

(७) **मणिरामः** । पण्यानामनियतत्वात् पंचमे पंचमे दिवसे पक्षेपक्षे वा गते एषां वणिजां

प्रत्यक्षं राजार्घसंस्थापनं पण्यं। इयता मूल्येन विक्रेयमितिनियमं राजा कुर्यात्। अस्थिरार्घानां पंचमे स्थिरार्घानां पक्षे इत्यर्थः॥४०२॥

(८) **गोविन्दराजः**। पञ्चरात्र इति। आगमोपंयोगादेरनियतत्वादेषां पण्यानामस्थिरार्घाणां पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे तत्तत्स्थिरप्रायार्घाणाञ्च पक्षे पक्षे गते मूल्यस्थापनमात्मनो राज्ञा (जा) प्रत्यक्षी-कुर्यात्॥४०२॥

**तुला मानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम्॥**
**षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत्॥४०३॥**

(१) **मेधातिथिः**। **तुला** प्रसिद्धा। **मानं** प्रस्थो द्रोण इत्यादि। **प्रतीमानं** सुवर्णादीनां परिच्छेदार्थं यत्क्रियते। सर्वतोभागो **तत्सुलक्षितं** राजचिह्नैरङ्कितं कार्यम्। स्वयं प्रत्यक्षेण परिच्छिद्य स्वमुद्रया। **परीक्षयेत्। षट्सु षट्सु मासेषु** पुनः परीक्षां कारयेदाप्तैरधिकारिभिर्यथा न विचालयन्ति केचित्॥४०३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तुलामानं कार्पासादितुलारूपं मानम्। प्रतिमानं माषकादिप्रति-कृत्प्रमाणम्। पार्थिवेन लक्षितं मुद्रितम्॥४०३॥

(३) **कुल्लूकः**। तुलामानं सुवर्णादीनां परिच्छेदार्थं यत्क्रियते प्रतिमानं प्रस्थद्रोणादि तत्सर्वं स्वनिरूपितं यथा स्यात् षट्सु षट्सु मासेषु गतेषु पुनस्तत्सर्वं सभ्यपुरुषैर्नृपतिः परीक्षयेत्॥४०३॥

(४) **राघवानन्दः**। अत्रापि राज्ञा सावधानेन भाव्यमित्याह तुलेति। तुला कार्पासलवणा-दिपरिच्छेदिका मानं प्रस्थद्रोणादि प्रतिमानं सुवर्णादीनां परिच्छेदार्थं यन्निरूपितं सर्वं तत् स्वलक्षितं स्वमुद्रामुद्रितं तुलादि धूर्तवणिजः कदाचित्तन्न्यूनाधिकं कुर्वन्तीति कृत्वा परीक्षयेद् भग्नादिकं त्यक्त्वा पुनर्मुद्रयेत षट्सु षट्सु इति वीप्सा प्रत्यक्षाभिप्राया॥४०३॥

(५) **नन्दनः**। मानं प्रस्थादिलक्षितं राजनामाङ्कनादिना॥४०३॥

(६) **रामचन्द्रः**। तुलामानं तुलया मीयते तत् तुलामानं प्रतीमानं सुवर्णमानं सुलक्षितं स्यात् राज्ञो मुद्रादिनाऽङ्कितम्॥४०३॥

(७) **मणिरामः**। तुलामानं सुवर्णादीनां परिछेदार्थं यत् क्रियते तत्सर्वं सुपरीक्षितमपि यत् स्यात्तत्षट्सु षट्सु मासेषु पुनः आप्तपुरुषैः परीक्षयेत्॥४०३॥

(८) **गोविन्दराजः**। तुलामानमिति । तुलां तथा मानं काष्ठादिमयं द्रोणकुडपातप्रतीमानं सुवर्णादिपरिच्छेदकवर्तकादि तदेतत्सर्वं राजचिह्नाङ्कितं कार्यम्। षट्सु षट्सु मासेषु पुनः पुनः तत्सर्वं आप्तपुरुषैः परीक्षयेत्॥४०३॥

**पणं यानं तरे दाप्यं पौरूषोऽर्धपणं तरे॥**
**पादे पशुश्च योषिच्च** पादार्धं **रिक्तकः पुमान्॥४०४॥**

(१) **मेधातिथिः**। नदीतीरे **यानं** गन्त्री शकटादितरेण **पणं दाप्यम्।** भाण्डपूर्णाना-मुत्तरत्रोपदेशाद्रिक्तभाण्डानां यानानां यानद्रव्यानयनार्थमुत्तार्यमाणानामयं राजभागः। पौरुषवाह्यो भारो

द्रव्यानयनार्थमानीयमानोऽर्धपणं दाप्यः। **पशुर्गोमहिष्यादिः पादम्**। स्त्री च। **रिक्तको** न किंचित्। यो गृहीतवान्भारं स पुमान्पादार्धं दाप्यः। रिक्तस्य पुंसो नदीलङ्घनसामर्थ्यसंभावनया लाघवादल्पमादानम्। स्त्री अशक्तत्वात्स्वयं तरणे बहु दाप्यते। **तरे** तरनिमित्तम्॥४०४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यानं शकटादि। पौरूषं पुरुषहार्यो भारः। पादं पणस्य। पशुश्छागो मेष इत्यादिः। रिक्तको भारशून्यः॥४०४॥

(३) **कुल्लूकः**। भाण्डपूर्णानि यानानीति वक्ष्यति तेन रिक्तशकटादियानान्तरविषये पणं दाप्यं एवं पुरुषभारोर्धपणं तरपण्यं दाप्यः। पशुश्च गवादिः पणचतुर्थभागं भाररहितो मनुष्यः पणाष्टभागं दापनीयः॥४०४॥

(४) **राघवानन्दः**। नद्याद्युत्तरणे दाशादिद्वारा शुल्कविभागमाह पणमिति। तरे नद्याद्युत्तरणे कार्ये यानं रिक्तकं शकटादि प्रति पणं तरशुल्कं दाप्यमित्यन्वयः। एवमुत्तरत्र। पौरुषो मनुष्यवाह्यभारः तत्रार्धपणः। पशुयोषितोर्भारवहनाप्रसिद्धेः प्रसिद्धौ वा तन्मात्रमेव वचनबलात्। रिक्तकोवाह्य-रहितः॥४०४॥

(५) **नन्दनः**। यानं शकटादिकं तरे नावि पणं पणमितिकथंदाप्यं रिक्थं शुल्कं पौरुषः पौरुषवाह्यभरःभारोऽर्द्धपणमितं रिक्थं दाप्यं पशुश्च योषिच्च पादंपणपादं दाप्ये पुमान्पुरुषो निर्भरः पादार्द्धं पणपादार्धमितं रिक्थं दाप्यमितियावत्॥४०४॥

(६) **रामचन्द्रः**। वाहनस्य नद्यां तरे तरणार्थं पणो दाप्यः पौरुषे तरेऽर्धपणो दाप्यः। पशुर्योषिच्च पादम्। रिक्तकः वस्तुशून्यः पुमान्पादार्धम्। पणस्वरूपमाह॥ वराटकानांद्वशकद्वयंच सा काकिणी ताश्च पणश्चतस्त्रः॥ वराटकानामशीतिः ८० पणाइति लीलावत्याम्॥४०४॥

(७) **मणिरामः**। यानं तरे रिक्तशकटादीनां नद्युत्तारणे पणं दाप्यं पौरुषः पुरुषभारे अर्धपणं। तरं दाप्यः। योषित् पशुश्च पादं पणचतुर्थभागं। रिक्तकः भाररहितः पुमान् पादार्द्धं पणाऽष्ट-भागं॥४०४॥

(८) **गोविन्दराजः**। पणमिति। भाण्डपूर्णानि यानि तानीति वक्ष्यति अतो रिक्तं गन्त्र्या-दितरमूल्यं पणं राजा (ज्ञा) दाप्यम्। एवं पुरुषवाह्यो भारोऽर्धपणं दाप्यः। गवादिश्च पशुः स्त्री च पणचतुर्भागं दापनीयो भाण्डरहितो मनुष्यः पणाष्टभागं दापनीयः॥४०४॥

**भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः॥**
**रिक्तभाण्डानि यत्किंचित्पुमांसश्चापरिच्छदाः॥४०५॥**

(१) **मेधातिथिः**। **भाण्डं** द्रव्यं वस्त्रव्रीह्यादि–तेन **पूर्णानि यानानि सारतस्तार्यं** तारार्थं **दाप्यानि**। यदि महार्घं वस्त्रादि तत्र बह्वारोपितं तदा बहु दाप्यानि, अथ व्रीह्यादिना नातिभारेण तदाल्पम्। एवं नद्याः सुतरदुस्तरत्वेन कल्पना कर्तव्या। **रिक्तभाण्डानि** यानानि **यत्किंचित्**–पणपादानि। **भाण्ड**शब्दोऽत्र धनवचनः। ये चा**परिच्छदाः** ते न पादार्धमपि तु यत्किंचित्ततोऽधिकं न्यूनं वा। अत्र न शक्यो नियमोऽतः कल्पनैव शास्त्रार्थः॥४०५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भाण्डपूर्णानि पण्यद्रव्यपूर्णानि। रिक्तभाण्डानि चर्मभाण्डादीनि। अपरिच्छदाः परिकरशून्याः। अत्र यानादीनां दापनं तन्नेतृपुरुषदापनपरम्॥४०५॥

(३) **कुल्लूकः**। पण्यद्रव्यपूर्णानि शकटादीनि द्रव्यगतोत्कर्षापेक्षयाऽऽतरं दाप्यानि द्रव्यरहितानि च गोनीकंबलादीनि यत्किंचित्स्वल्पं तार्यं दाप्यानि अपरिच्छदा दरिद्रा उक्तपदार्थदानापेक्षया किंचिद्दापनीयाः॥४०५॥

(४) **राघवानन्दः**। भाण्डपूर्णानि विक्रयद्रव्यैःपूर्णानि भाण्डानि येषु तानि यानानि शकटादीनि। तार्यं तरशुल्कं पणद्वयादिकम्। सारतः द्रव्यस्य सारासारतः। रिक्तभाण्डानि धनादिशून्यस्वतन्त्राणि शून्ययानं प्रतिपणमात्रस्योक्तत्वात्। अपरिच्छदा दरिद्राः प्रदानेप्यशक्ताः किंचिद् दाप्या इति॥४०५॥

(५) **नन्दनः**। सारतः तार्यं भाण्डसारूप्येण तार्यन्तरः भाण्डानि भाररहितानि यानानि यत्किंचिद् द्रव्यं तत्कालसन्निहितं तार्यं दाप्यानि परिहितयत्किंचित्ताम्बूलादिकं तार्यं दाप्याः॥४०५॥

(६) **रामचन्द्रः**। भाण्डपूर्णानि पण्यद्रव्यपूर्णानि यानानि तार्यं तरणार्थं सारतःवस्तुसारतः दाप्यानि। रिक्तभाण्डानि यत्किंचिद्यत्किमपि देयंच पुनः अपरिच्छदाः वस्तुशून्याः पुमांसः यत्किंचिद्दाप्याः दातुं योग्या अर्हाः॥४०५॥

(७) **मणिरामः**। भांडपूर्णानि यानि यानानि भांडयार्णसहितानि शकटादीनि। सारतः द्रव्यगतोत्कर्षापेक्षया। तार्यं दाप्यानि। रिक्तभांडानि द्रव्यरहिताऽविगोरापादीनि यत्किंचित् उक्तापेक्षयास्वल्पानि तार्यं दाप्यानि॥ अपरिच्छदः दरिद्राः पुमांसश्च स्वल्पं दाप्याः॥४०५॥

(८) **गोविन्दराजः**। भाण्डपूर्णानीति। प्रत्यगूर्णानि गन्त्र्यादीनि द्रव्यगतोत्कर्षापकर्षगुरुलघुभावापेक्षया तरमूल्यं दाप्यानि पुमांसश्च परिच्छदार्हा वणिक्प्रभृतयोऽपि अपरिच्छदा आयाता यत्किञ्चिद्दापनीयाः। अन्यस्य पुंसः पदार्थं रिक्तकः पुमानित्युक्तम्। अत्र नियमस्य कर्तुमशक्यत्वात्। एतावदेवोपदेशार्थं एवं द्रव्यरहितानि मञ्जूषादीनि भाण्डानि यत्किञ्चित्स्वयं दाप्यानि॥४०५॥

**दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत्॥**
**नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम्॥४०६॥**

(१) **मेधातिथिः**। पारावारोत्तारणे पूर्वं दानम्। अयं नावा ग्रामान्तरगमने। **दीर्घाध्वनि** योजनादिपरिमाणेन गन्तव्ये। **यथादेशं**–यस्मिन्देशे यत्तरिदानं नाविकैः स्थापितं तदेव **यथाकालं**–कालो वर्षादिबहूदकस्तत्रान्यन्मूल्यम्। तरमूल्ये कारणे कार्यशब्द**स्तरो भवेदिति**। यावद्यावद्दीर्घो देशस्तावत्तावत्तरपणो वर्धते। एतच्च **नदीतीरेषु विद्यात्। समुद्रे** सागरे **नास्ति** तरल**क्षणम्**। न शक्यते लक्षयितुं कति योजनानि नौर्व्यूढा येन तदनुसारेण मूल्यं कल्प्यम्। नदनदीषु शक्यते ज्ञातुमयं पन्था योजनमात्रो द्वियोजन इति। तत्र हि तत्र ग्रामाः परिमाणचिह्नम्। तत्रैकयोजनेऽध्वनि यन्मूल्यं द्विगुणं तद्द्वियोजने। समुद्रे तु बहुवाह्या नौः, न च सुष्टु शक्यते यौजनादिपरिच्छेदः कर्तुम्। अत एवोक्तं **समुद्रे नास्ति लक्षणमिति**॥४०६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यथादेशं कोशमात्रं नदीपात्रमित्याद्यनुरूपेण। यथाकालमल्पवर्त्मत्वेपि स्त्रोतसा विलम्बादिना नदीतीरेषु तद्विद्यादिति। एतद्द्वयं नदीतीरेष्वेवेत्यर्थः। नास्ति लक्षणं नियामकं तत्र विलम्बादि न नियन्तुं शक्यमतस्तत्तरेऽधिकग्रहोपि न दोषाय॥४०६॥

(३) **कुल्लूकः**। पूर्वपारावारे तरणार्थमुक्तमिदानीं नदीमार्गे दूराध्वनि गन्तव्ये प्रबलवेग-

स्थिरोदकनद्यादिदेशग्रीष्मवर्षादिकालापेक्षया तरमूल्यं कल्पनीयं। एतच्च नदीतीरे बोद्धव्यं। समुद्रे तु वाताधीनपोतगमनत्वात्स्वायत्तत्वाभावे तरपण्यविशेषज्ञापकं नदीवद्वियोजनादिकं नास्ति ततस्तत्रोचितमेव तरपण्यं ग्राह्यम्॥४०६॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच दीर्घेति। यथादेशं नौकया यदि दूरदेशं गच्छति कालं वा वर्षवातादियुक्तं तत्र तदनुरूपस्तरो देयः। समुद्रे देशपरिमाणाभावात् सर्वदा वाताक्रान्तत्वेन तदधीनगमनत्वाच्च नास्ति लक्षणम् योजनादिनियमिततार्यमित्यत उचितमेव नौयायिभिः स्थापितं ग्राह्यमिति॥४०६॥

(६) **रामचन्द्रः**। दीर्घाध्वनि दीर्घमार्गे यथादेशं कोशमात्रनदीयात्रानुसारेण यथाकालं तरो भवेत्। सोऽत्रकृतविलम्बानुसारेण नदीतीरेषु तरणं तरणप्रकारं ज्ञेयं। समुद्रे समुद्रतरणे लक्षणं नियमः नास्ति॥४०६॥

(७) **मणिरामः**। पारावारे तरणार्थमिदमुक्तं। इदानीं नदीमार्गेण दूराऽध्वनि गंतव्ये दाप्यमाहदीर्घेति। यथादेशं प्रबलवेगस्थिरोदकनद्यादिदेशापेक्षया। यथाकालं ग्रीष्मवर्षादिकालापेक्षया तरो भवेत् तरमूल्यं कल्पनीयं। एतच्च नदीतरे बोद्धव्यं। समुद्रे नास्ति लक्षणं तत्र वाताधीनपोतगमनत्वात्स्वायत्ताभावात्तरपण्यविशेषज्ञापकं नदीवत् द्वियोजनादिकं नास्ति ततःसमुचितमेवतरपण्यं ग्राह्यं॥४०६॥

(८) **गोविन्दराजः**। दीर्घाध्वनीति। पारावारतरणार्थं पूर्वमुक्तं दूराध्वनि पुनः नदीमार्गेण नावादिना यातव्यस्खलनाद्युपलाद्युपेतदूरदेशापेक्षया ग्रीष्महेमन्तादिकालापेक्षया तरमूल्यं कल्पयितव्यमेतच्च नदीतीरेषु बोद्धव्यं समुद्रे पुनर्वातवशतः पातालादिवहनात् आयतत्वाभावे सति तरमूल्यविशेषज्ञापकम्। नदी च योजनादिकं नास्त्यतोऽत्रोचितमेव शुल्कं ग्राह्यम्॥४०६॥

**गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः॥**
**ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं तरे॥४०७॥**

(१) **मेधातिथिः**। द्वाभ्यां मासाभ्यामृतुदर्शनस्य व्यक्तगर्भा स्त्री भवति तस्या अनुग्राह्यत्वात्तरपणो न ग्राह्यः। **प्रव्रजितश्चतुर्थाश्रमी**। **मुनिस्तापसः**। **ब्राह्मणा लिङ्गिनो** ब्रह्मचारिणः ब्राह्मणग्रहणं विशेषणम्। तेन बाह्यप्रव्रज्यालिङ्गधारिणां नैष विधिः। तरप्रयोजनं **तारिकं** पणादि तरनिमित्तं न दाप्याः। वृत्तानुरोधात् **तारिकमिति** सिद्धे **तर**ग्रहणम्॥४०७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। मुनिर्वनस्थः। लिङ्गिनो ब्रह्मचारिणः। तारिकं तरशुल्कम्॥४०७॥

(३) **कुल्लूकः**। संजातगर्भा स्त्री मासद्वयादूर्ध्वं तथा प्रव्रजितो भिक्षुर्मुनिर्वानप्रस्थो-ब्राह्मणाश्च लिङ्गिनो ब्रह्मचारिणः तरमूल्यं तरे न दाप्याः॥४०७॥

(४) **राघवानन्दः**। रिक्तपुरुषयोषितोस्तार्यत्वमुक्तं तद्विशेषे तन्निषेधति गर्भिणीति। द्विमासादिः विदितगर्भा। मुनिर्वानप्रस्थः। लिङ्गिनो ब्रह्मचारिणः प्रव्रजितपदेन संन्यासिनो ग्रहणात्॥४०७॥

(५) **नन्दनः**। दीर्घाध्वन्यनेकदिनगन्तव्याध्वनि दैर्घ्यानुगुण्येन तरः शुल्कं पणं यानमित्यादिनोक्तस्य विषयमुत्तरार्द्धेन नियच्छति लक्षणं शुल्कनिर्णयम्। मुनिर्वानप्रस्थः लिङ्गिनस्तीर्थयात्रादिपराः

ब्राह्मणग्रहणेन सिद्धेऽपि प्रव्रजितग्रहणं क्षत्रियस्य क्वचित्स्मृत्यन्तरे संन्यासो भवेदिति तारिकं तरशुल्कम्॥४०७॥

(६) **रामचन्द्रः**। प्रव्रजितः यतिः मुनिर्वानप्रस्थः लिङ्गिनो गैरिकादिना तरे कैवर्ते तारिकं मौल्यं न दाप्याः। न दातुंयोग्याः॥४०७॥

(७) **मणिरामः**। द्विमासादिः मासद्वयानंतरं॥४०७॥

(८) **गोविन्दराजः**। गर्भिणीति। गृहीतगर्भा स्त्री मासद्वयादूर्ध्वं ब्रह्मचारिणः तरमूल्यं ते न दाप्याः॥४०७॥

**यन्नावि किंचिद् दाशानां विशीर्येतापराधतः॥**
**तद्दाशैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोंऽशतः॥४०८॥**

(१) **मेधातिथिः**। नाव्यारोपितभाण्डं तरणिकायां यदि **दाशानां** नाविकानामपराधादावर्तमानं जलेन प्रदेशेन नयतां वा तत्स्थानं ज्ञात्वा दृढबन्धेन जलप्रवेशमकुर्वतां बन्धनादिहीनैरयोमयोभिश्चर्मबन्धैः सूत्रबन्धैर्वा शिथिलीकृतवतां–यदि भाण्डं **विशीर्येत** भ्रंश्येत तदा तैरेव **दातव्यं स्वतोंऽशतः** स्वभागाद्भाण्डस्वामिने। **समागम्य** यावन्तो नाव्यारूढा दाशाः॥४०८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दाशानामपराधत इतिकिंचिद्वणिजो विशीर्येत नश्येत। स्वतोंशतः स्वधनात् न राजधनात्॥४०८॥

(३) **कुल्लूकः**। नौकारूढानां यत्किंचिन्नाविकापराधेन नष्टं द्रव्यं तन्नाविकैरेव मिलित्वा यथाभागं दातव्यम्॥४०८॥

(४) **राघवानन्दः**। नौयायिनां द्रव्यनाशे दाशानां दण्डमाह यदिति। दाशानामपराधतः पथिकस्य विशीर्येत नाशं गच्छति वस्त्रादिकं समागम्य मिलित्वा स्वांशतः दातव्यमित्यन्वयः॥४०८॥

(५) **नन्दनः**। विशीर्येत जले पतेत्। समागम्य संहत्य तद्दातव्यं विशीर्णद्रव्यप्रत्यर्पणम्॥४०८॥

(६) **रामंचन्द्रः**। यत्किंचित्सद्वस्तु दाशाना कैवर्तानां अपराधतः नावि नौकायां विशीर्येत जरयेद्वस्तु दाशैरेव दातव्यं किंकृत्वा स्वतःअंशतः समागम्य संगृह्य॥४०८॥

(७) **मणिरामः**। दाशानां नाविकानां अपराधतः नावि नौकायां यत्किंचिद्विशीर्येत नष्टं भवति तत्दाशैरेव समागम्य मिलित्वा स्वतोंऽशतः यथाविभागं दातव्यमित्यर्थः॥४०८॥४०९॥

(८) **गोविन्दराजः**। यदिति। नावारूढैः प्रदेयं तत्समागम्य स्वतोंशतः। यत्किञ्चिद्द्रव्यं नाविकाऽपराधेन विपद्येत तन्नावारूढैः संभूय स्वांशाद्दातव्यम्॥४०८॥

**एष नौयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः।**
**दाशापराधतस्तोये दैविके नास्ति निग्रहः॥४०९॥**

(१) **मेधातिथिः**। नौभिर्यान्ति तच्छीला **नौयायिन**स्तेषा**मेष** विधिरुक्तो यथा **दाशापराधा**द्यद्भ्रष्टमुदके तद्दद्युः। **दैविके** दोष उत्पाते वातादिना नौभंगे **नास्ति** नाविकानां द्रव्यनाशे **निग्रहः**।

**एष** स्थले भाण्डवाहकानां भारिकाणां वा न्यायः। यद्यप्रमादेन प्रक्रामति भारिको गृहीत-दण्डावलंबनो दृढबन्धोपरिभागोऽकस्माद् वृष्ट्या पथि कर्दमीकृते पतितस्य भाण्डं नश्येन्न भारिकस्य दोषः स्यात्॥४०९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दैविके वात्यादिना द्रव्यनाशे। निग्रहो तद्द्रव्यग्रहः॥४०९॥

(३) **कुल्लूकः**। नाविकापराधाद्यद्युदके नष्टं तन्नाविकैरेव दातव्यमिति पूर्वोक्तमनूदितं दैविके नास्ति निग्रह इति विधातुं नौयायिनामेष व्यवहारस्य निर्णय उक्तः। दैवोपजातवातादिना नौभंगेन धनादिनाशे नाविकानां न दण्डः॥४०९॥

(४) **राघवानन्दः**। दैवाद्द्रव्यनाशे दाशो न दण्डभागित्याह एष इति। नौयायिनां नौकया गंतुशीलानाम्। निग्रहो दण्डादिः॥४०९॥

(५) **नन्दनः**। एषः पूर्वोक्तश्लोकोक्तः दैविकेऽपराधे निग्रहो नास्ति न प्रत्यर्पणम्॥४०९॥

(६) **रामचन्द्रः**। दैविके वात्यादिकृते नाशे निग्रहः दण्डः नास्ति॥४०९॥

(८) **गोविन्दराजः**। एष इति। नाविकापराधेन यदुक्तं तत्सर्वं नाविकैर्दातव्यम्। इत्येष नौयायिनां व्यवहारनिर्णय उक्तो दैविके पुनर्दोषे उत्पातवातनौभंगादौ स च न नाविकानां दंडबन्धनादिविग्रहो विद्यते॥४०९॥

**वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च॥**
**पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम्॥४१०॥**

(१) **मेधातिथिः**। इह केचिद्व्याचक्षते — अनिच्छन्तावपि वैश्यशूद्रौ बलादेव तानि कर्माणि कारयितव्यौ यत एतयोः स्वधर्मोऽयम्। सत्यपि दृष्टार्थत्वेऽदृष्टार्थता विद्यते नियमविधित्वात्। एवं च सति ब्राह्मणोऽपि हठात्प्रतिग्राहयितव्य इत्यापतति। पक्ष एव दोषत्वेनायमुक्त इति चेदत्राप्येष एव पक्षः।

तदयुक्तम्। सत्यां धनार्थितायां शास्त्रतो नियमः। न तु विधिनिबन्धनैव प्रवृत्तिः। यत्र स्वयं प्रयोजकमस्ति तत्र न विधेः प्रयोक्तृत्वम्। नियमांशे तु विधेर्व्यापारः। स चेदृशो नियमः। **वैश्यमेव कारयेद्वाणिज्यम्** — अन्यं कुर्वाणमसत्यामापदि दण्डयेत्। एवं ब्राह्मणमेव प्रतिग्रहम्। तथा च प्रतिग्रहसमर्थोऽपि संतोषपरश्च स्यादित्यापद्यते। यदपि श्रूयते — 'अनिच्छतोपीति' (४१२) सोऽर्थवादः। **शूद्रमेव दास्यमित्येवं** सर्वत्र नियमरूपता द्रष्टव्या॥४१०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कुसीदं वृद्धिजीवनम्। दास्यं मलोच्छिष्टापनयनादिकर्म॥४१०॥

(३) **कुल्लूकः**। वाणिज्यं कुसीदकृषिपशुरक्षणानि वैश्यं कारयेत्। शूद्रं च राजा द्विजातीनां दास्यं कारयेत्। अकुर्वाणौ वैश्यशूद्रौ राज्ञो दण्ड्यावित्येवमर्थोयमिहोपदेशः॥४१०॥

(४) **राघवानन्दः**। राजा हि धर्मस्य कारणमिति ज्ञापयंस्तस्य वैश्यादीनां स्वस्वधर्म-प्रवर्तकत्वमाह वाणिज्यमिति। कुसीदं। अशीतिभागो वृद्धिःस्यान्मासिमासिसबन्धक इत्याद्युक्तलभ्यम्। शूद्रं दास्यं सेवां कारयेदित्यर्थः॥४१०॥

(५) **नन्दनः**। द्विजन्मनां त्रैवर्णिकानाम्॥४१०॥

(६) **रामचन्द्रः**। शूद्रं द्विजानां ऋणार्थं राजा दास्यं कारयेत्॥४१०॥

(७) **मणिरामः**। द्विजन्मनां वाणिज्यकुसीदकृषिपशुरक्षणानि राजा वैश्यं कारयेत्। शूद्रं च दास्यं कारयेत्। अकुर्वाणौ वैश्यशूद्रौ राज्ञोदण्ड्यावित्यर्थः॥४१०॥

(८) **गोविन्दराजः**। वाणिज्यमिति। वाणिज्यधनप्रयोगकृषिपशुरक्षणानि दृष्यत्वाद्वैश्यं, शूद्रं च द्विजन्मनां दास्यं नियमेन राजा कारयेत् अकुर्वाणौ राज्ञा दण्ड्यौ इहोपदेशात्॥४१०॥

**क्षत्रियं चैव वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्शितौ॥**
**बिभृयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयन्॥४११॥**

(१) **मेधातिथिः**। **वृत्त्या कर्शितौ ब्राह्मणो बिभृयाद्**भक्तदानादिना क्षत्रियवैश्ययोर्भरणं कुर्यात्। **आनृशंस्ये**नानुकम्पया **स्वानि कर्माणि कारयेत्**। ब्राह्मणस्य यानि स्वानि समित्कुशोद-कुंभाहरणादीनि। अथवा क्षत्रियवैश्ययोर्यानि स्वानि। क्षत्रियो ग्रामरक्षादौ नियोक्तव्यो वैश्यः स्वकृषिपशुपाल्यादौ। महाधनो यो ब्राह्मणो महापरिच्छदश्च सामर्थ्यात्तस्यैष विधिः। **स्वानि कर्माणीति** वचनात् दास्यं न कारयितव्यौ गर्हितोच्छिष्टमार्जनादि॥४११॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स्वानि कर्माण्यस्त्रधारणकृष्यादीनि॥४११॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणः क्षत्रियवैश्यौ भृत्यभावेन पीडितौ करुणया स्वानि कर्माणि रक्षणकृष्यादीनि कारयन्ग्रासाच्छादनादिना पोषयेत्। एवं धनवान्ब्राह्मणस्तावुपगतावबिभ्रन्राज्ञा दण्डनीय इति प्रकरणसामर्थ्याद्गम्यते॥४११॥

(४) **राघवानन्दः**। ब्राह्मणस्यानृशंस्यं वदन्विट्क्षत्रिययोस्तत्पोष्यतामाह क्षत्रियमिति। स्वानि विप्रसंबन्धिकृष्यादीनि॥४११॥

(५) **नन्दनः**। स्वानि कर्माणि कारयन्नतु दासकर्माणि तानि कारयतो दण्डविधानार्थोय-मारम्भः॥४११॥

(६) **रामचन्द्रः**। ब्राह्मणो वृत्तिकर्शितौ क्षत्रियवैश्यौ आनृशंस्येन बिभृयात् स्वानि अस्त्रधारणकृष्यादीनि कारयेत्॥४११॥

(७) **मणिरामः**। स्वानि कर्माणि। पशुरक्षणकृष्यादीनि॥४११॥

(८) **गोविन्दराजः**। क्षत्रियमिति। क्षत्रियवैश्यौ वृत्त्यभावे पीडितौ ब्राह्मणः कारयेत्स्वानि कर्माणि रक्षणकृष्यादीनि कारयन् ग्रासाच्छादनादिना बिभृयादेवञ्च (न कुर्वाणो) महाधनो ब्राह्मणस्तावद्विधिवत् राज्ञा ताडनीयमिति प्रकरणम्॥४११॥

**दास्यं तु कारयँल्लोभाद् ब्राह्मणः संस्कृतान्द्विजान्।।**
**अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट्।।४१२।।**

(१) **मेधातिथिः।** **संस्कृता** उपनीताः। यद्यपि द्विजग्रहणादेवैतल्लभ्यते तथापि त्रैवर्णिकजात्युपलक्षणार्थं न विज्ञायीति। यो ब्राह्मणः समानजातीया**न्दास्यं** पादधावनोच्छिष्टावकरणसंमार्जनादिरूप**मनिच्छतः**। प्रभावतो वाचः **प्राभवत्यं** प्रभुत्वम्। शक्त्यतिशययोगतो बलादिना यः कारयति **स षट्शतानि दण्ड्यः। लोभादेत**द्, द्वेषादिभिस्त्वधिको दण्ड्यः। शत्रन्तस्य भवतेर्भावप्रत्यये प्राभवत्यादिति रूपम्। प्रभुत्वेनेति वचनाद्गुरोर्न दोषः। **अनिच्छत** इति वचनादिच्छतामल्पो दण्डः।।४१२।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** प्रभुत्वेन शक्तत्वेन। प्राभवत्यादिति क्वचित्पाठस्तत्रापि प्रभुत्वार्थत्वेन तन्नेयम्।।४१२।।

(३) **कुल्लूकः।** प्रभवतो भावः प्राभवत्यं ब्राह्मणः कृतोपनयनान्द्विजातीननिच्छतः प्रभुत्वेन लोभाद् दास्यकर्मपादधावनादि कारयन्षट्शतानि दण्ड्यः।।४१२।।

(४) **राघवानन्दः।** दास्यमनिच्छतो ब्राह्मणस्य तत्कारणे दण्डमाह दास्यमिति। लोभात्कर्मदाक्षिण्यादिज्ञानस्य संस्कृतानिति व्रात्यादीनां दास्यत्वे न दोषः। प्राभवत्यात् नवैश्वर्यात् प्रभोर्भावः प्राभवत्यं तस्माद्दास्यं कारयन् ब्राह्मणान् ब्राह्मणोंपि दण्ड्य इति।।४१२।।

(५) **नन्दनः।** एतान्क्षत्रियवैश्यान्। प्राभवत्यात्प्रभावेन समृद्ध्या।।४१२।।

(७) **मणिरामः।** संस्कृतान् कृतोपनयनान्। प्राभवत्यात्। प्रभुत्वेन।।४१२।।

(८) **गोविन्दराजः।** यो दास्यमिति। ब्राह्मण उपनीतान् द्विजान् दास्यकर्मणि लौल्यात्तदा तत्कर्म पादधावनादि कारयन् राज्ञा षट्पणशतानि दण्ड्यः।।४१२।।

**शूद्रं तु कारयेद् दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा।।**
**दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा।।४१३।।**

(१) **मेधातिथिः।** **क्रीतमक्रीतं** भक्ताद्युपनतम्। वक्ष्यमाणस्य विधेरनुवादोऽयम्। **दास्यायै**वेत्यर्थवादः।।४१३।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** अक्रीतं भक्तादिभृतम्।।४१३।।

(३) **कुल्लूकः।** शूद्रं पुनर्भक्तादिभृतमभृतं वा दास्यं कारयेत् यस्मादसौ ब्राह्मणस्य दास्यायैव प्रजापतिना सृष्टः।।४१३।।

(४) **राघवानन्दः।** शूद्रस्तु भृतिदानादाने दास एवेत्याह शूद्रं त्विति। असौ शूद्रस्त्रैवर्णिकस्य दास्याय दासोचितकर्मणे सृष्टो विशेषतो ब्राह्मणस्यातस्तं दास्यं कारयेदेव।।४१३।।

(५) **नन्दनः।** क्षत्रियं चैव वैश्यं चेत्यादिश्लोकत्रये ब्राह्मणशब्दस्त्रैवर्णिकोपलक्षणार्थः।।४१३।।

(६) **रामचन्द्रः।** दास्यायैव दासस्य भावो दास्यम्।।४१३।।

(८) **गोविन्दराजः**। शूद्रमिति। शूद्रं पुनर्भक्तादिना भृतमभृतं वा दास्यं कारयेत्। यस्मादसौ ब्राह्मणदासा(स्या)र्थमेव प्रजापतिना सृष्टः॥४१३॥

**न स्वामिना निसृष्टोऽपि शुद्रो दास्याद्विमुच्यते॥**
**निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति॥४१४॥**

(१) **मेधातिथिः**। यमाश्रितः सप्तभिर्दासयोनिभिस्तेन **निसृष्टोऽपि** तन्मुक्तोऽपि। **न स्वामिना निसृष्टोऽपि दास्याद् विमुच्यते**। किंतु **निसर्गजं** सहजं जातिसहभावि **कः तस्माच्छूद्राद् तत्** दास्यम**पोहत्य**पनयति। यथा शूद्रजातिर्न तस्यापनेतुं शक्यैवं दास्यमपि। अर्थवादोऽयम्। यतो वक्ष्यति निमित्तविशेषे शूद्रस्य दास्यान्मोक्षम्॥४१४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। निसृष्टो दास्यान्मोचितः। दास्यात् दासकर्मकरणात्॥४१४॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्मादसौ ध्वजाहृतत्वादिना दासत्वगतः स तेन त्यक्तः स्वदास्याभावेपि शूद्रो ब्राह्मणस्य दास्यान्न विमुच्यते तस्माद्दास्यं शूद्रस्य सहजं कः शूद्रत्वजातिमिव दास्यमपनयति अदृष्टार्थमप्यवश्यं शूद्रेण ब्राह्मणादिद्विजशुश्रूषाकर्त्तव्येत्येव परमेतत् अन्यथा वक्ष्यमाणदास्यकरण-परिगणनमनर्थकं स्यात्॥४१४॥

(४) **राघवानन्दः**। ननु स्वामिना त्यक्तस्य शूद्रस्य दास्यमस्ति न वा नास्ति चेत्प्राप्तं स्वातन्त्र्यं तत्राह नेति। निसृष्टोपि त्यक्तोपि दास्याविमुक्तौ हेतुः निसर्गजमिति। अग्नेरूष्मप्रकाशवत्स्वाभाविकं तेनानर्घ्यादौ बलादपि शूद्राद्धनं ग्राह्यमिति भावः॥४१४॥

(५) **नन्दनः**। तस्य तद्दास्यं निसर्गजं हि तद्दास्यं तस्मात्॥४१४॥

(६) **रामचन्द्रः**। स्वामिना निसृष्टः आज्ञप्तःशूद्रः दास्यात् दासभावात् न विमुच्यते। तत् दास्यं तस्य निसर्गजम्। तस्माद्दास्यभावात्तं शूद्रं कः पुरुषः अपोहति॥४१४॥

(७) **मणिरामः**। निसृष्टोपि। दास्यत्वेन त्यक्तोपि। निसर्गजं सहजं॥४१४॥

(८) **गोविन्दराजः**। न स्वामिनेति। यस्यासौ स्वजातिविहितत्वात् दासत्वमापन्नस्तेन विमुक्तोऽपि शूद्रो दास्यान्न मुच्यते। तस्माद्दास्य हि शूद्रस्य सहजं शूद्रत्वं वदतः कः शूद्रात्तद्दास्यमपनेतुं दृष्टार्थमपि दृश्यते। न दास्यं कर्तव्यमित्येवं परमेतदन्यथा वर्तमानदासयोनि-गणितम्॥४१४॥

**ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ॥**
**पैत्रिको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः॥४१५॥**

(१) **मेधातिथिः**। ध्वजिनी सेनोच्यते। तत **आहृतः**। संग्रामे जितः सन्दासीकृतः। "किंपुनरिदं क्षत्रियस्य वचनम्—युद्धे जितः क्षत्रियो दासीभवति।" नेति ब्रूमः। शूद्रस्यैव प्रकृतत्वात्। "दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ" इति। स्वामिनं जित्वा तदीयो दास **आहृतः। आहर्तुर्दास्यं** प्रतिपद्यते। "ननु शूद्रस्याविशेषेणैव दास्यमुक्तं 'निसर्गजं तत्तस्य' इति"।

नैवम्। तथा सत्यव्यवस्था स्यात्—कस्यासौ दास इति न विज्ञायेत। सर्वे हि त्रैवर्णिकास्तस्य दास्याः। स्वधर्ममनुवृत्तस्य चानियमोऽविधित्वात्।

अन्ये तु 'सर्वे चोत्तरोत्तरं परिचरेयुरिति क्षत्रियादीनामपि दास्यमस्ति' (गौतम १०/६६)।

तदसत्। अन्यद् 'दास्यम्' अन्या 'परिचर्या'। निकृष्टकर्मकारित्वमप्यज्ञातस्य 'दास्यम्', सर्वस्य प्रेषितस्याप्रतिबन्धः। 'परिचर्या' तु शरीरसंवाहनमर्थदारादिरक्षाधिकारः। नारदेन चैतत्प्रपञ्चितम्।

भक्तलाभार्थं दास्यं प्रतिपन्नो **भक्तदासः**।

गृहे जातो **गृहजः**। दास्यामुत्पन्नो गर्भदासः।

**क्रीतो** मूल्येन स्वामिनः सकाशात्।

**दत्रिमः** प्रीत्याऽदृष्टार्थं वा दत्तः।

क्रमागतः **पैत्रिकः**।

"अथ गृहजस्यास्य च को विशेषः"।

गृहजस्तदीयायामेव दास्यां जात इतरस्तु क्रमागतः।

**दण्डदासो** राज्ञे दण्डं दातुमशक्तो दासीक्रियते। "कर्मणाऽपि समं कुर्यात्" इत्यन्यर्णस्यापि दास्यमिच्छन्ति। तदयुक्तम्। अन्यद्दास्यमन्यच्च तत्कर्मकारित्वम्। न चायं दण्डो येनान्तर्भवेत्। न च दासयोनिपुरुषधारणमुक्तं, केवलं कर्मणापीति। तथा दासकर्माऽप्यस्ति।

"ननु च धर्मोपनतोऽपि शूद्रो दास इष्यते। तत्र कथं **सप्त दासयोनयः**"।

नैष दोषः। न तस्यौत्पत्तिकं दासत्वम्। इच्छाधीनत्वाद्धर्मार्थिनः। न हि तस्य दानाधानक्रिया युज्यते—क्रीतगृहजादिदासवत्। एवं ह्युक्तं—'यथायथां हि सद्वृत्तमिति' (१०/१२८)। तेनैवं ब्रुवतैतत्प्रदर्शितं भवति—न तस्य नित्यं दास्यं किं तर्हि फलविशेषार्थिनः। ततश्चानिच्छतो न दास्यमस्ति। अतो यदि शूद्रो विद्यमानधनः स्वातन्त्र्येण जीवेद्ब्राह्मणाद्यनपाश्रितो न जातु दुष्येत्॥४१५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ध्वजाहृतो युद्धजित इति कश्चित्। ध्वजलिंग तेनाहृतोवडवाहृतापरनामा दासीसंबन्धाद्दास्यं प्राप्त इति यावदिति तु युक्तम्। भक्तदासो दुर्भिक्ष्यभक्तदानेन दासीकृतः। गृहजो दासाज्जातः। दत्रिमो दत्तःकेनचित्। पैतृकः पितृतो दायभागादागतः। दण्डदासो दण्डदेयस्य शोधनार्थं दास्यं यातः। प्रव्रज्यावसितो राज्ञो दास इत्येवं रूपो वा। दण्डार्थं दास्याद्दण्डदासः। दासरूपा योनयो जातयः॥४१५॥

(३) **कुल्लूकः**। संग्रामस्वामिसकाशाज्जितो भक्तलोभाभ्युपगतदास्यो भक्तदासः तथादासीपुत्रः मूल्येन क्रीतोऽन्येन दत्तः पित्रादिक्रमागतो दण्डादिधनशुद्ध्यर्थं स्वीकृतदास्यभाव इत्येतानि सप्तध्वजाहृतत्वादीनि दासत्वकारणानि॥४१५॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्र कतिविधा दासा इत्यपेक्षायामाह ध्वजेति। ध्वजाहृतः संग्रामे स्वामिसकाशाज्जितः। भक्तादिलोभेन दासत्वं गतो भक्तदासः। गृहजो दास्यां जातः। दत्रिमः अन्येन दत्तः। दण्डदासः दण्डादिधनशुद्धौ दास्यंगतः। दासयोनयः दासो दास्यं तस्य योनिः निमित्तं संग्रामजित्त्वादि येषु ते तथा॥४१५॥

(५) **नन्दनः**। दास्यप्रसंगाद्दासभेदानाह ध्वजाहृत इति। ध्वजशब्देनात्र युद्धमुपचर्यते ध्वजाहृतो युद्धनिर्जितः। भक्तदासोऽन्नदानेन स्वीकृतः। गृहजो दासीपुत्रः। क्रीतदत्रिमौ क्रयदानस्वीकृतौ। पैतृकः क्रमागतः दण्डदासः प्रव्रज्यावसितः दासत्वं हि तस्य दण्डः धनाभावे न दण्डद्रव्यार्थं पित्रादिना दास्यप्रवेशितः स्वयं वा प्रविष्ट इति केचित् ध्वजाहृतादयो भावप्रधाना निर्देशाः। एते ध्वजाहृतत्वादयो दस्युयोनयः स्वकारणानि॥४१५॥

(६) **रामचन्द्रः**। ध्वजाहृतः युद्धजितः १ भक्तदासः २ गृहजः ३ क्रीतः ४ दत्तः ५ पैतृकः ६ पितृपितामहादागतः ७ दण्डदासः सप्तैते दासयोनयः॥४१५॥

(७) **मणिरामः**। दासोत्पादकानाह॥ ध्वजेति॥ ध्वजाकृतः संग्रामसकाशाज्जित्वाऽनीतः। भक्तदासः भक्तलाभाद्युपगतः। गृहजः तद्दासीपुत्रः। दंडदासः दंडादिधनशुद्ध्यर्थं स्वीकृत-दास्यभावः॥४१५॥

(८) **गोविन्दराजः**। ध्वजाहृत इति। संग्रामे स्वामिना कोशाज्जितो वेतनभूतो दासीपुत्रोऽन्यस्मात्क्रीतोऽन्येन दत्तः पित्रादिप्रबन्धायातो निर्धनतया दण्डशुद्ध्यभावे सति शुद्ध्यर्थं दास्यमुपगत इति सप्तध्वजाः सप्ततत्त्वादीनि दासत्वकारणानि॥४१५॥

**भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः॥**
**यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्॥४१६॥**

(१) **मेधातिथिः**। एते त्रयोऽर्जितधना **अप्यधनाः**। स्वामिनो धनम्। यत्किंचित्ते धनमर्जयन्ति **तद्धनं तस्य** स्वं यस्य ते स्वत्वमापन्नाः। भार्याधनं भर्तुः, पितुः पुत्रस्य, स्वामिनो दासस्य।

"ननु च यद्येते निर्धनाः कथमेषां कर्मभिरधिकारः। तत्रेदं नोपपद्यते — 'पुत्रौ चेदाहिताग्नी स्यातां येभ्यः पिता दद्यात्तेभ्यः पुत्र" इति। दम्पत्योरपि सहधर्मश्चरितव्यः। "धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्या त्वयेति।" यदि च निर्धनाः कोऽन्योऽर्थेऽनतिचारः। शूद्रस्यापि 'पाकयज्ञैः स्वय यजेतेति' निर्धनत्वे विरुद्ध्यते। स्वच्छन्दशूद्रविषयत्वेन विरोधो न भवेत्। अस्ति तावद्दासानां स्वधने स्वाम्यं, यदा स्वधनमिति व्यपदिश्यते। न ह्यसति संबन्धे व्यपदेशः। अर्जनं च स्वत्वं नापादयतीति विप्रतिषिद्धम्। तस्माद्विरुद्धमिदं **यत्ते समधिगच्छन्ति** न तत्तेषां स्वमिति। यथा कश्चिदब्रूयाद्यस्या अहं पुत्रः सा न मम जननीति तादृगेतत्। असति वा स्त्रीणां स्वाम्ये पत्न्यै वा तदनुमत क्रियते। "पत्नी वै पारिणाह्यस्येष्टे" इत्यादि श्रुतयो निरालम्बनाः स्युः"।

अत्रोच्यते। पारतन्त्र्यविधानमेतत्। असत्यां भर्तुरनुज्ञायां न स्त्रीभिः स्वातन्त्र्येण यत्र क्वचिद्धनं विनियोक्तव्यम्। एवं पुत्रदासयोरपि द्रष्टव्यम्।

अन्ये तु मन्यन्ते — भार्यापुत्रग्रहणं दासार्थम्। तस्य चैतद्वचनमुत्तरार्थम्। आपदि तेषां धनग्रहणे न विचिकित्सितव्यं — भर्तुरिव हि तत्स्वम्॥४१६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अधिगच्छन्ति परकर्मकरणादिनापि॥४१६॥

(३) **कुल्लूकः**। पुत्रभार्यादासास्त्रयोऽमी निर्धना एव मन्वादिभिः स्मृताः यस्माद्यद्धनं तेऽर्जयन्ति यस्य ते भार्यादयस्तस्य तद्धनं भवति एतच्च भार्यादीनां पारतन्त्र्यप्रदर्शनार्थं परमध्यग्न्यादेः षड्विधस्य स्त्रीधनस्य वक्ष्यमाणत्वाद्धनसाध्यादृष्टार्थं कर्मोपदेशार्थं च भार्यादीनां पत्न्यधिकरणे

पत्न्यर्थेपि यागाधिकारस्योक्तत्वात् स्त्रीपुंसयोर्मध्यएकधने चानुमतिद्वारेण स्त्रिया अपि कर्तृत्वात्॥४१६॥

(४) **राघवानन्दः**। दासप्रसंगेनान्ययोरपि धनास्वामित्वमाह भार्येति। एते त्रयो यत्समधिगच्छन्त्यर्जयन्ति यस्य संबन्धिनस्ते तस्यैव तेषां धनं तेन तस्मिन् जीवति तदनुज्ञां विना धनव्यये नाधिकारः अनीशास्ते हि जीवतोरित्युक्तेः। पुत्रं प्रतिस्वत्वं च पितुरूर्ध्वं हरेद्धनमित्युक्तेः। स्त्रियं प्रति तु स्वत्वं अध्यग्न्यध्यावाहनिकमित्यादिषट्प्रकारजं स्त्रीपुंसोर्मध्यगं धनमित्यादिसिद्धं न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हतीत्यनधिकारात्। दासस्यापि जीवेत्कारुककर्मभिरित्यादि वक्ष्यमाणं स्वत्वहेतुर्न कार्यो धनसंग्रह इत्यादिनिषेधबलाच्च, त्रयाणाम् स्वातन्त्र्यम् अस्वातंत्र्यम्॥४१६॥

(५) **नन्दनः**। अत्र भार्यापुत्रयोस्स्वधनत्वप्रसंगादुपन्यासः भार्यापुत्रदासभर्तृपितृस्वामिषु जीवत्स्वधनाः अजीवत्सु सधनाः स्मृत्यन्तरानुगुण्यात् यत एवं ततः॥४१६॥

(६) **रामचन्द्रः**। यद्द्रव्यं ते भार्यादयः समधिगच्छन्ति प्राप्नुवन्ति॥४१६॥

(७) **मणिरामः**। अधनाः स्वोपार्जितधनस्याप्यस्वामिनः। यस्मात् यत् धनं ते पुत्रादयः समधिगच्छति उपार्जयंति तद्धन यस्य ते पुत्रादयः तस्य भवतीत्यर्थः॥४१६॥

(८) **गोविन्दराजः**। भार्येति। अतोऽपि निर्धन एव मन्वादिभिः स्मृतः यस्माद्यद्वित्तं तेऽर्जयन्ति यस्य ते भार्यादयस्तत्सम्बन्धि तद्धनमिति। तत्पारतन्त्र्यादि वा यस्यैतदुच्यते॥४१६॥

**विश्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद् द्रव्योपादानमाचरेत्॥**
**न हि तस्यास्ति किंचित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः॥४१७॥**

(१) **मेधातिथिः**। अत्र कश्चिदाह—"धर्मोपगतशूद्रविषयमिदम्"। तदयुक्तं, विशेषे प्रमाणाभावात्। तस्मात्सर्वस्य दासः शूद्रस्तस्यैव प्रतिग्राह्यत्वमुच्यते।

**विश्रब्धं** निःशंकम्। शूद्रधनं कथं प्रतिगृह्णीयात्प्रतिषिद्धं हि तदित्येषा शंका न कर्तव्या। यतो न तस्य किंचिदर्थो यस्य निचयः स्यादित्युक्तं भवति। स्वामी न ह्रियते धनस्य एतदेवार्जने तस्य प्रयोजनं स्वामी हीयते। अतो **विश्रब्धं द्रव्योपदानं** द्रव्यग्रहणं कुर्यात्। तेनोपनीयमानमपि स्वगृहस्थमिव विनियुञ्जीत। सति प्रयोजन एतद्युक्तं भवति—अविद्यमानधनस्य दासाच्छूद्रात्प्रतिगृह्णतो न दोषः॥४१७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अतःशूद्राद्दासात् विश्रब्धं निःशंकं द्रव्यादानमाचरेत्। नतु शूद्रधनादिशंकया तद्धनत्यागः॥४१७॥

(३) **कुल्लूकः**। निर्विचिकित्समेव प्रकृताद् दासशूद्राद्धनग्रहणं कुर्यात् ब्राह्मणो यतस्तस्य किंचिदपि स्वं नास्ति यस्माद्भर्तृग्राह्यधनोऽसौ एवं चापदि बलादपि दासाद्ब्राह्मणो धनं गृह्णन्न राज्ञा दण्डनीय इत्येवमर्थमेतदुच्यते॥४१७॥

(४) **राघवानन्दः**। अत एवाह विस्रब्धमिति। विस्रब्धं कृतविश्वासं यथा स्यात्तथा शूद्रात्सप्तविधदासात् द्रव्योपादानं द्रव्यादानं तमाचरेत् तत्र हेतुः भर्तृहार्यधनो हि स इति। भर्त्रर्थमेवाहार्यं जीवेत्कारुककर्मभिरित्यादिनोक्तं धनं यस्य स इत्यर्थः॥४१७॥

(५) **नन्दनः** । विस्रब्धः शूद्रप्रतिग्रहः भयरहितब्राह्मणस्त्रैवर्णिकः॥४१७॥

(६) **रामचन्द्रः** । विस्रब्धं निःशंकं तस्य शूद्रस्य किंचित्स्वं द्रव्यं नास्ति॥४१७॥

(७) **मणिरामः** । विश्रब्धं निर्विचिकित्सं। शूद्रात् स्वदासशूद्रात्। तस्य दासस्य किंचिदपि स्वं नास्ति। हि यस्मात् सः दासः भर्तृहार्यधनः स्वामिग्रहणधनः। तथा चापदि बलादपि दासाद्ब्राह्मणो धनं गृह्णन् न राजदंड्य इति तात्पर्यं॥४१७॥

(८) **गोविन्दराजः** । विश्रब्धमिति। ब्राह्मणो निर्विचिकित्समेव प्राकृताद् दासशूद्रत्वेन अयुक्तः। तस्मात्तस्य दासशूद्रस्य न किञ्चित्स्वं विद्यते यतोऽस्य स्वामिनो धनमपहियते एवञ्च यदि विश्रब्धं द्रव्यं दासाद्ब्राह्मणो गृह्णन् न दण्डनीय एव इत्येवं सर्वमित्येतदुच्यते॥४१७॥

**वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्॥**
**तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत्॥४१८॥**

(१) **मेधातिथिः** । कर्म व्यतिक्रामन्तः क्षोभयेयुराकुलीकुर्युर्जगत्। अतस्ते **प्रयत्नेन** स्वकर्मभ्यश्च्यावयितुं न लभेरन्। अनल्प एवातिक्रामे भूयसा दण्डेन योजनीया वैश्या अपि। बन्धनं नास्त्यपि, धनशक्यः स्वधर्मः॥४१८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । कारयेद्राजा॥४१८॥

(३) **कुल्लूकः** । वैश्यं कृष्यादीनि शूद्रं च द्विजातिशुश्रूषादीनि कर्माणि यत्नतो राजा कारयेद्यस्मात्तौ स्वकर्मभ्यश्च्युतावशास्त्रीयोपार्जितधनग्रहणमदादिना जगदाकुलीकुर्याताम्॥४१८॥

(४) **राघवानन्दः** । विट्शूद्रौ स्वानि कर्माणिं स्वामिनोः विप्रराजन्ययोः कर्माणि कृषि-शुश्रूषादीनि कारयेद्राजा ब्राह्मणो वा स्वानीति क्वचित्पाठः। अन्यथादोषमाह तौहीति। स्वकर्मभ्यश्च्युतौ जगदिदं क्षोभयेताम्। वैश्यशूद्रौ धनवत्तया विप्रानधीनौ प्रचुरधनरुचितया गोरक्षाकृष्याद्य-करणाज्जगन्नाशयेद्वैश्यः। शूद्रोपि शुश्रूषाद्यकरणेन विप्रकृत्यधर्मादावननुकूलत्वाज्जगन्नाश-हेतुरिति॥४१८॥

(५) **नन्दनः** । कारयेद्राजा॥४१८॥

(६) **मणिरामः** । स्वानि कर्माणि वैश्यं कृष्यादीनि शूद्रं द्विजातिः शुश्रूषादीनि कर्माणि राजा कारयेत्। यतः तौ वैश्यशूद्रौ स्वकर्मभ्यः च्युतौ इदं जगत् क्षोभयेता॥४१८॥

(८) **गोविन्दराजः** । वैश्यशूद्राविति। वैश्यशूद्रौ कृषिदास्यादीनि स्वकर्माणि राजा कारयेत्। यस्माद्वैश्यः कृषिवाणिज्यादि शूद्रो दास्याद्यकुर्वन् धर्मक्षयादिदं जगदाकुलीकुर्यात्। शूद्रश्च दास्यमकुर्वन् अनतिमभिज्ञाय कदाचित् द्वैजाते कर्मणि प्रवर्तमानो दुर्भिक्षनरकाद्युपद्रवकृत्स्यात्॥४१८॥

**अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च॥**
**आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोशमेव च॥४१९॥**

(१) **मेधातिथिः** । राजधर्माणामनुसन्धानार्थम्। **कर्मान्ताः** कृषिशुल्कस्थानादयः। **वाहनम्** हस्त्यादि। **आयव्ययौ**–इदमस्य प्रविष्टमिदं निर्यातमित्येव सततं गवेषणीयम्। **आकरा** धातवः सुवर्णाद्युत्पादे भवन्ति भूमयः। **कोशो** द्रव्यनिचयस्थानम्॥४१९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । कर्मान्तान् शस्त्रपातादिकर्मशालाः। आकरान् सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानानि।।४१९।।

(३) **कुल्लूकः** । प्रत्यहं तदधिकृतद्वारेण प्रारब्धदृष्टादृष्टार्थकर्माणि निरूपयेत्तथा हस्त्यश्वादीनि किमद्यप्रविष्टं किंनिःसृतमिति सुवर्णरत्नोत्पत्तिस्थानानि भाण्डागारं चावेक्षेत व्यवहारदर्शनासक्तोऽपि राजा धर्मान्नपरित्यजेदिति दर्शयितुमुक्तस्यापि पुनर्वचनम्।।४१९।।

(४) **राघवानन्दः** । राजधर्मान्प्रवक्ष्यामीत्युपक्रम्याध्यायद्वयसमाप्यं सार्थवादमुपसंहरति अहन्यहनीतिद्वाभ्याम्। कर्मान्तं प्रारब्धकर्मसमाप्तिं वाहनानि हस्त्यश्वादीनि आकरान् सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानानि कोशं धनागारं अवेक्षेत रक्षणार्थमीक्षेतेत्यर्थः।।४१९।।

(५) **नन्दनः** । कर्मान्तान्कर्मनिष्पत्तिं नियतौ राजशास्त्रसिद्धौ।।४१९।।

(६) **रामचन्द्रः** । अहन्यहनि राजा आयव्ययौ नियतौ आकरान् उत्पत्तिस्थानानि च पुनः कोशमेव वीक्षेत पश्येत्।।४१९।। इति श्री रामचन्द्रभट्टविरचितायां मनुभावार्थदीपिकायां न्यायप्रकरणे व्यवहारो नामाष्टमोध्यायः।।८।।६।।

(७) **मणिरामः** । कर्मांतान् प्रारब्धदृष्टादृष्टकर्मणां निष्पत्तिं। आकरान् सुवर्णरत्नोत्पत्तिस्थानानि।।४१९।।४२०।।

(८) **गोविन्दराजः** । अहनीति। प्रत्यहं कर्मान्तान् कृषिशुल्कादिस्थानानि धनसञ्चयं योगक्षेमार्थं प्रति जागृयादिति व्यवहारदर्शनाशक्तस्यापि राजधर्माऽपरित्यागार्थं पुनर्वचनम्।।४१९।।

**एवं सर्वानिमान्राजा व्यवहारान् समापयन्।।**
**व्यपोह्य किल्विषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम्।।४२०।।**

**इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां**

**(राजधर्मे व्यवहारनिर्णये सामान्यव्यवहारो नाम)**

**अष्टमोऽध्यायः**।।८।। समाप्तः;

(१) **मेधातिथिः** । उक्तेन प्रकारेण **व्यवहार**ानृणादी**न्समापय**न्निर्णयावसानं कुर्वन्यत्किञ्चित्तत्सर्वमविज्ञातदोष **तत्सर्वं व्यपोह्या**पनुद्य – **परमा** गतिमभिप्रेता स्वर्गापवर्गभूमिं **प्राप्नोति** लभते।।४२०।।

इति श्री भट्टमेधातिथिविरचिते मनुभाष्येऽष्टमोऽध्यायः।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । बव्हर्थविषयत्वेनाध्यायस्य दीर्घत्वादतः परमध्यायानुसंतानेऽतिदीर्घता स्यादित्यपर्यवसित एव प्रतिज्ञातार्थेऽध्यायमुपसंहरति एवमिति। समापयन् संस्थां नयन् व्यपोह्य निरुह्य। परमां गतिं ब्रह्मप्राप्तिलक्षणामिति।।४२०।। श्रीनारायणसर्वज्ञकृता वृत्तिर्मनुस्मृतेः। कुनिबन्धकृतव्याख्यामिव दूरे निरस्यते।। इति मन्वर्थनिबन्धे सर्वज्ञश्रीनारायणकृतेऽष्टमोध्यायः।।८।। समाप्तश्चाय व्यवहारक्षमोऽध्यायः।। छ।। छ।।

(३) **कुल्लूकः** । एवमुक्तप्रकारेणैतान्सर्वानृणादानादीन्व्यवहारान् तत्त्वतो निर्णयेनान्तं नयन्-पापं सर्वमपहाय स्वर्गादिप्राप्तिरूपामुत्कृष्टां गतिं लभते॥४२०॥ इति श्रीकुल्लूकभट्टविरचितायां मन्वर्थमुक्तावल्यामष्टमोऽध्यायः॥८॥

(४) **राघवानन्दः** । **किंच।** एवमुक्तानृणादिकानष्टादश समापयन्। समाप्तिपर्यन्तमनु-तिष्ठन्। अतएवावश्यकस्य करणात्। इति श्रीराघवानन्दसरस्वतीविचितायां मन्वर्थचन्द्रिकायामष्ट-मोऽध्यायः॥८॥

(५) **नन्दनः** । इमानुक्तान्व्यवहारानृणादानादीन्समापयन्यथाशास्त्रं नयन्निर्णयन्ब्रह्मलोके हरिश्चंद्रानिवासस्थाने॥४२०॥ इति मानवव्याख्याने नन्दनकृतेऽष्टमोध्यायः॥

(७) **मणिरामः** । इति श्रीमणिरामकृतायां सुखबोधिन्यां मनुवृत्तावष्टमोऽध्यायः समाप्तः॥

(८) **गोविन्दराजः** । एवमिति। व्यपोह्य कल्मषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम्। एवमुक्तनीत्या एतानृणादानादीन् व्यवहारानिर्णयेनान्तं नयन् राजा अपक्षपातव्यवहारदर्शनेन शास्त्र दान सामर्थ्यात् प्रमादकृतसञ्चितपापं अपनुद्य ब्रह्मलोकं प्राप्नोति इति समस्तव्यवहारासमाप्तावपि प्रधानविवादसमाप्ता-भिप्रायेणेदं फलकथनम्॥४२०॥

इति श्री भट्टमाधवात्मजगोविन्दराजविरचितायां मन्वाशयानुसारिण्यां सर्वव्यवहार-निर्णयो नामाष्टमोऽध्यायः॥